CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

।। श्री ।।

भगवत्पादपतञ्जलिप्रणीतं

व्याकरणमहाभाष्यम्

'ज्योत्सना' समुद्भासितम्

चतुर्थोऽध्यायः

टीकाकारः सम्पादकश्च
डॉ० हरिनारायणतिवारी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्या. १५६६

R

८५

R.८५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

।। श्रीः ।।

विद्याभवन प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला

१६८

भगवत्पादपतञ्जलिप्रणीतं

व्याकरणमहाभाष्यम्

'ज्योत्स्ना' समुद्भासितम्

(चतुर्थोऽध्यायः)

टीकाकारः सम्पादकश्च

डॉ० हरिनारायणतिवारी

चौखम्बा विद्याभवन

वाराणसी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकाशक

चौखम्बा विद्याभवन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)

पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

दूरभाष : 2420404

ई-मेल : cvbhawan@yahoo.co.in

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

संस्करण 2009 ई०

मूल्य : 300.00

1 - 9 भाग : Rs. 3000.00

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)

गली नं. 21-ए, अंसारी रोड

दरियागंज, नई दिल्ली 110002

दूरभाष : 32996391

ACC 39802/31402 R

❖

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर

पो. बा. नं. 2113

दिल्ली 110007

दूरभाष : 23856391

❖

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन

पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001

दूरभाष : 2335263

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:MJDA

पादानुक्रमचतुर्थाऽध्यायस्याह्निकानुक्रमणी

आह्निकम्	पृष्ठाङ्काः
प्रथमः पादः	
प्रथममाह्निकम्	१-७७
द्वितीयमाह्निकम्	७८-१६५
तृतीयमाह्निकम्	१६६-२३५
चतुर्थमाह्निकम्	२३६-३०१
द्वितीयः पादः	
प्रथममाह्निकम्	३०२-३५७
द्वितीयमाह्निकम्	३५८-३८९
तृतीयः पादः	
प्रथममाह्निकम्	३९०-४३६
द्वितीयमाह्निकम्	४३७-४७१
चतुर्थः पादः	
प्रथममाह्निकम्	४७२-४८९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

॥ श्रीः ॥

भगवत्पादपतञ्जलिप्रणीतं

व्याकरणमहाभाष्यम्

'ज्योत्स्ना' समुद्भासितम्

चतुर्थोऽध्यायः

❀ प्रथमे पादे प्रथममाह्निकम् ❀

ङ्याप्प्रातिपदिकात् ४.१.१

ङ्याप्प्रातिपदिकग्रहणं किमर्थम् ?

ङ्याप्प्रातिपदिकात्स्वादयो यथा स्युः, धातोर्मा भूवन्निति।

यह अधिकार सूत्र है। पञ्चमाध्यायसमाप्तिपर्यन्त इस का अधिकार चलेगा।

प्रश्नभाष्य—**ङ्याप्प्रातिपदिकेति**। 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ऐसा अधिकार सूत्र क्यों पढते हैं। प्रश्न में हेतु यह है कि 'परश्च' ३.१.२ सूत्र से प्रकृति से पर में प्रत्यय विहित है। 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ का अधिकार कर प्रकृति से पर में ही प्रत्यय होंगे । प्रकृति से पर में स्वादि भी हैं तथा तव्यदादि भी हैं, प्रत्ययार्थसंबन्ध योग्यार्थाभिधायिनी ङ्याप्प्रातिपदिकलक्षण'-प्रकृति की अपेक्षा स्वादि प्रत्यय करेंगे तथा तव्यदादि की अपेक्षा धातु करेंगे, इससे ङी, आप् और प्रातिपदिक से परमें स्वादि तथा धातु से पर में तव्यदादि होंगे। इससे धातु से पर में स्वादि की प्राप्ति नहीं होगी, तथा ङी, आप् और प्रातिपदिक से पर में तव्यदादि की प्राप्ति नहीं होगी। 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ में पञ्चमीनिर्देश से परत्व अर्थ सुतराम् आ जायेगा, अतः स्वादि प्रत्यय पूर्व अथ वा मध्य में विहित नहीं होंगे, इस दशा में 'परश्च' ३.१.२ सूत्र प्रत्याख्यात होगा। यदि उक्त सूत्र को पञ्चम्यन्त नहीं मानेंगे तो परत्वप्रतिपादन के लिए 'परश्च' ३.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१.२ सूत्र चरितार्थ है, अतः उस का प्रत्याख्यान नहीं हो सकेगा। अथ वा प्रत्याख्यानपक्ष में प्रत्ययद्योत्य वाच्यार्थसम्बन्धी अर्थ का वाचक प्रकृति का आक्षेप हो जायेगा। इस तरह ङी, आप् और प्रातिपदिक से पर में ही स्वादि प्राप्त हो रहे हैं, पुनः उसी अर्थ को बताने के लिए 'ङ्याप्राति- पदिकात्' ४.१.१ यह अधिकारसूत्र क्यों किया गया है?

उत्तरपक्षी आचार्य—**ङ्याप्रातिपदिकादिति**। ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिक से ही पर में स्वादि हों, धातु से पर में न हों, इसके लिए प्रकृत सूत्र का आरम्भ किया गया है।

नैतदस्ति प्रयोजनम्, धातोस्तव्यदादयो विधीयन्ते, तेऽपवादत्वाद् बाधका भविष्यन्ति। तिङन्तात्तर्हि मा भूवन्निति। एकत्वादिष्वर्थेषु स्वादयो विधीयन्ते; ते चाऽत्र 'तिङ उक्ता एकत्वादय' इति कृत्वा उक्तार्थत्वान्न भविष्यन्ति। टाबादयस्तर्हि तिङन्तान्मा भूवन्निति।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। उक्त अधिकारसूत्र का यह प्रयोजन नहीं हो सकता है। 'धातोः' ३.१.९१ का अधिकार तृतीयाध्याय की समाप्तिपर्यन्त ही चलता है, अतः चतुर्थाध्याय के आरम्भ से ही उस की निवृत्ति हो जायेगी। 'ङ्याप्रातिपदिकात्' ४.१.१ सूत्र के अभावपक्ष में स्वादिप्रत्यय प्रकृति- मात्र से विहित होंगे, जब कि तव्यत् आदि प्रकृतिविशेष धातु की अपेक्षा करने से स्वादि के अपवाद होंगे, अतः अपवादत्वात् स्वादिप्रत्ययों का बाध कर धातु से पर में तव्यत् आदि ही होंगे, स्वादि नहीं, अतः पारिशेष्यात् ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिक से ही स्वादि होंगे, अन्यत्र इसकी अतिव्याप्ति नहीं हो रही है, पुनः अधिकारसूत्र का आरम्भ क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**तिङन्तात्तर्हीति**। तिङन्त से स्वादि न हों इसके लिए 'ङ्याप्रातिपदिकात्' ४.१.१ सूत्र का आरम्भ किया है। स्वादि प्रत्ययों के अर्थ कर्म आदि हैं। 'पुत्रमात्मन इच्छतीति पुत्रीयति' यहाँ पर जैसे अन्तर्भूत कर्म और क्रिया का वाचक 'पुत्रीय' शब्द से कर्त्ता अर्थ में लकार उत्पन्न होता है वैसे कर्तृविशिष्ट क्रियावाची तिङन्त शब्द से भी कर्म आदि अर्थों में द्वितीया आदि विभक्तियाँ प्राप्त होंगी, वे न हों इसके लिए अधिकारसूत्र का आरम्भ किया गया है।

अथ वा जैसे 'द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने' १.४.२२ 'बहुषु बहुवचनम्' १.४.२३ इत्यादि के द्वारा एकत्व, द्वित्व, आदि अर्थों में स्वादिप्रत्ययों का विधान है,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकशब्द से एकत्व, द्विशब्द से द्वित्व और बहुशब्द से बहुत्व अर्थ उक्त होने पर भी क्रमशः एकत्व, द्वित्व और बहुत्व अर्थ का वाचक सु, औ, जस् प्रत्यय प्रकृति से उत्पन्न हो कर प्रकृति द्वारा अभिहित अर्थ को भी 'एकः, द्वौ, बहवः' में कहते हैं, वैसे तिङ् से अभिहित एकत्वादि अर्थ के वाचक होने पर भी तिङन्त से पर में स्वादि प्राप्त होंगे, वे न हों इसके लिए 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ का आरम्भ किया गया है।

पूर्वपक्षी—**एकत्वादिष्वर्थेष्विति**। एकत्व, द्वित्व आदि अर्थों में स्वादि तथा तिङ् विभक्तियाँ विहित हैं। तिङन्तस्थल में एकत्व आदि अर्थ तिङ् से उक्त है, अतः 'उक्तार्थानामप्रयोगः'न्याय के अनुसार उसी एकत्व आदि अर्थों को कहने के लिए पुनः तिङन्त से स्वादि की उत्पत्ति नहीं होगी । एक, द्वि और बहु शब्द से एकत्वादि उक्त होने पर भी पुनः एकत्वादि अर्थ के वाचक स्वादि प्रत्यय पर में 'प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा' २.३.४६ सूत्रघटक वचनपदका ग्रहणसामर्थ्य से होते हैं, परन्तु तिङन्तस्थल में कोई प्रमाण न होने से तिङ् के द्वारा एकत्व अर्थ उक्त होने पर उसी अर्थ में पुनः स्वादि नहीं हो सकेंगे। एक क्रिया की अपेक्षा रखने वाला कर्म, कर्त्ता अर्थ का एकत्र तिङन्त स्थल 'पचति' में सम्भव नहीं है। यहाँ कर्त्ता अर्थ का वाचक 'पचति' पद के अनन्तर कर्मादि का वाचक द्वितीया आदि की उत्पत्ति सम्भव नहीं है। अन्तर्भूतकर्मक्रिया का वाचक 'पुत्रीय' शब्द से पर में कर्त्ता अर्थ में लकार इस लिए होता है कि यहाँ धात्वर्थ के द्वारा कर्म संगृहीत है। जैसे-'जीवति=प्राणान् धारयति' में प्राणरूप कर्म के अन्तर्भूत होने से कर्त्ता में लकार होता है, वैसे अन्तर्भूत कर्म का वाचक विशिष्टक्रियावाची 'पुत्रीय' से भी कर्त्ता अर्थ में लकार की उत्पत्ति में कोई बाधा नहीं होगी। 'अनभिहिते' २.३.१ सूत्र का अधिकार कर तिङ् से अनभिहित कर्मादि अर्थ में द्वितीया आदि का विधान है।

उत्तरभाष्य—**टाबादयस्तर्हीति**। जैसे-तिङ् के द्वारा कारकगत संख्या ही वाच्य होती है, वैसे कारक=प्रातिपदिकगत लिङ्ग भी तिङन्त से वाच्य होने लगेगा, अतः स्त्रीत्व द्योत्य होने पर तिङन्त से 'अजाद्यतष्टाप्' ४.१.४ इत्यादि सूत्रों से आप् आदि प्रत्यय न हों, इसके लिए 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ सूत्र पढा गया है।

स्त्रियां टाबादयो विधीयन्ते, न च तिङन्तस्य स्त्रीत्वेन योगोऽस्ति। अणादयस्तर्हि तिङन्तान्मा भूवन्निति। अपत्यादिष्वर्थेष्वणादयो विधीयन्ते, न च तिङन्तस्यापत्यादिभिर्योगोऽस्ति। अथा-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऽपि कथञ्चिद्योगः स्यात्। एवमपि न दोषः, आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति-'न तिङन्तादणादयो भवन्ती'ति; यदयं क्वचित्तद्धितविधौ तिङ्ग्रहणं करोति-'अतिशायने तमबिष्ठनौ' 'तिङश्चे'ति।

पूर्वपक्षी—**स्त्रियां टाबादय इति**। 'भावप्रधानमाख्यातं सत्त्वप्रधानानि नामानि' इस यास्कवचन के अनुसार तिङन्त क्रियाप्रधान होते हैं तथा प्रातिपदिक **सत्त्व**= 'सीदतः=तिष्ठतः लिङ्गसंख्ये यस्मिँस्तत्सत्त्वम्' लिङ्गसंख्यान्वयी होते हैं। यही पक्ष वैयाकरणों को भी मान्य है। भाष्यकार ने इसी वचन को सप्तमाध्याय में भी कहा है। तिङन्तस्थल में क्रियाप्रधान बोध होता है। क्रिया में लिङ्ग और संख्या का अन्वय नहीं होने से तिङन्त से टाप् आदि की प्राप्ति नहीं हो सकेगी।

उत्तरभाष्य—**अणादयस्तर्हीति**। 'तस्यापत्यम्' ४.१.९२ सूत्रघटक 'तस्य' पद में सम्बन्ध होने पर प्रत्ययविधानार्थ सर्वनाम पद 'तद्' से षष्ठीनिर्देश है, अतः जैसे-'गर्गस्यापत्यं पुमान् गार्ग्यः' यहाँ अपत्य-अपत्यवत्सम्बन्ध सम्भव है वैसे 'पचति' इत्यादि तिङन्त से भी सर्वनामबोध्य तिङन्तार्थाधारसम्बन्ध सम्भव है, अतः तिङन्त से भी अपत्यादि अर्थों में अण् आदिप्रत्यय होंगे, वे न हों इसके लिए 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ यह अधिकारसूत्र का आरम्भ किया गया है।

खण्डनभाष्य—**न च तिङन्तस्येति**। 'भावप्रधानमाख्यातं सत्त्वप्रधानानि नामानि' इस यास्कवचन के अनुसार क्रियाप्रधान तिङन्त को असत्त्वभूत होने से अपत्यादि के साथ सम्बन्ध नहीं होगा। शाब्दबोध में क्रिया के प्रति अप्रधान होने से कारक का भी अपत्य आदि के साथ सम्बन्ध नहीं हो सकेगा। जैसे 'पाचकस्यापत्यम्' में सम्बन्ध की प्रतीति नहीं होती है वैसे 'पचत्यपत्यम्' में भी सम्बन्ध की प्रतीति नहीं हो सकेगी, अतः अपत्य आदि अर्थों में अण् आदि तद्धित की उत्पत्ति नहीं हो सकेगी।

उत्तरपक्षी की वात को पूर्वपक्षी प्रकारान्तर से पोषण करके भी तिङन्त से तद्धितप्रत्ययों की अनुत्पत्ति सिद्ध करता है-**अथापि कथञ्चिदिति**। 'तस्यापत्यम्' ४.१.९२ सूत्रघटक सर्वनामबोध्य अर्थ का अपत्यादि के साथ सम्बन्ध कर देने से तिङन्त से भी अपत्यादि अर्थों का योग मान लिया जाये तो इस पक्ष में तिङन्त से तद्धितप्रत्ययों की उत्पत्ति नहीं हो सकेगी; इस पक्ष में आचार्य ने 'अतिशायने तमबिष्ठनौ' ५.३.५५ 'तिङश्च' ५.५.५६ सूत्र का आरम्भ कर तिङन्त से अतिशय अर्थ द्योत्य होने पर तमप्रत्यय का विधान किया है। यदि तिङन्त से तद्धितोत्पत्ति होती तो आचार्य 'तिङश्च' ५.३.५६ सूत्र का आरम्भ नहीं करते। चूँकि आचार्य ने 'तिङश्च' ५.३.५६ सूत्र का आरम्भ किया है, वह व्यर्थ पड

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर ज्ञापन करेगा-'तिङन्त से तद्धितप्रत्ययों की उत्पत्ति नहीं होती है'।

अत उत्तरं पठति- *ङ्याप्प्रातिपदिकग्रहणम् अङ्गभपदसंज्ञार्थम् * अङ्गभपदसंज्ञा ङ्याप्प्रातिपदिकस्य यथा स्युरिति। क्व पुनरिहाङ्गभपदसंज्ञार्थेन ङ्याप्प्रातिपदिकग्रहणेनाऽर्थः? टाबादिषु। नैतदस्ति प्रयोजनम्, ग्रहणवद्भ्यष्टाबादयो विधीयन्ते-'उगितो ङीब्भवती'ति, 'अतष्टाब्भवती'ति। यत्तच्छब्दरूपं गृह्यते तस्मादुत्पत्तिः, तस्यैताः संज्ञा भविष्यन्ति। अथापि कश्चिदग्रहणः। एवमपि न दोषः। स्त्रियां टाबादयो विधीयन्ते। यत्तच्छब्दरूपं स्त्रियां वर्त्तते तस्मादुत्पत्तिः, तस्यैताः संज्ञा भविष्यन्ति।

पूर्वपक्षी के प्रश्न का एकदेशी आचार्य उत्तर देते हैं—**अत उत्तरमिति**। अङ्गसंज्ञा, भसंज्ञा और पदसंज्ञा ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिक को हो इसके लिए 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ सूत्र का आरम्भ किया गया हैं। 'यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादिप्रत्ययेऽङ्गम्' १.४.१३ सूत्र में विधिपद का ग्रहण किया गया है। 'प्रत्ययविधौ' इस शब्द से जिसका आश्रयण किया गया है उसी की अङ्गसंज्ञा होगी। एवं भसंज्ञाविधायक 'यचि भम्' १.४.४८ और पदसंज्ञाविधायक 'सुप्तिङन्तम्पदम्' १.४.१४ सूत्र में भी 'यस्मात्प्रत्ययविधिः' पद का अनुवर्त्तन होता है, अतः जिससे प्रत्ययविधि है, उस प्रत्यय के पर रहते प्रत्यय की प्रकृति को ही भसंज्ञा और पदसंज्ञा होगी। इस तरह ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिक की अङ्ग, भ, पदसंज्ञा प्रयोजन है।

पूर्वपक्षी इस प्रयोजन का खण्डन करता है-**क्व पुनरिहेति**। अङ्ग, भ और पदसंज्ञा के लिए प्रकृत सूत्र का आरम्भ आप ने बताया है, इस अङ्ग आदि संज्ञाओं का कहाँ प्रयोजन है ?

उत्तरपक्षी—**टाबादिषु इति**। इन संज्ञाओं का प्रयोजन टाप् आदि में है।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। प्रकृत सूत्र में अङ्ग आदि संज्ञाओं का प्रयोजन टाबादि नहीं हो सकते हैं। टाप् आदि प्रत्यय किस-किस से पर में विहित होंगे? इसके लिए सूत्रकार ने सूत्र में ही ग्रहण किया है। जो गृहीतप्रातिपदिक आदि हैं उनसे पर में टाप् आदि प्रत्यय हो जायेंगे। सूत्रकार ने टाप् आदि की प्रकृति का तीन प्रकार से ग्रहण किया है-१-कहीं पर साक्षात् गृहीत हैं, जैसे-'अजाद्यतष्टाप्' ४.१.४ सूत्र में अज आदि प्रातिपदिक का साक्षाद् ग्रहण है। २-कहीं पर संज्ञा के द्वारा ग्रहण है, जैसे-'अजाद्यतष्टाप्' ४.१.४ सूत्र में ही अकार के द्वारा अदन्तों का ग्रहण है। एवम् कहीं पर अनुबन्धनिर्देशोपलक्षित संज्ञानिर्देश के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वारा टाप् आदि की प्रकृति का ग्रहण है, जैसे-'उगितश्च' ४.१.६। यहाँ पर स्त्र्यर्थवाचकशब्द आक्षिप्त होकर अकार और उगित् से विशेषित हैं। इस तरह टाप् आदि की उत्पत्ति में जो शब्दरूप गृहीत है,उसी से टाप् आदि की उत्पत्ति होगी तथा टाप् आदि की प्रकृति को अङ्ग, भ, पदसंज्ञा हो जायेगी।

यदि उपर्युक्त तीन प्रकार से ही प्रकृति का ग्रहण मानने में 'वयसि प्रथमे' ४.१.२० से कुमारीघटक ङीप् की प्रकृति कुमार का ग्रहण का अभाव कहेंगे तो उसका भी समाधान करते हैं-**अथापीति**। 'वयसि प्रथमे' ४.१.२० सूत्र में सामर्थ्यवश प्रकृति का आक्षेप होगा। इस सूत्र में भी पूर्वसूत्र 'अजाद्यतष्टाप्' ४.१.४ से 'अतः' पञ्चम्यन्त की अनुवृत्ति होगी। वर्णग्रहण से वह तदन्त अर्थ को कहेगा, अतः अकारान्त का ग्रहण होने से कोई भी अग्रहण नहीं हो सकेगा। इस तरह स्त्रीत्व द्योत्य होने पर टाप् आदि विहित हैं, स्त्रीत्व का वाचक शब्द से पर में स्त्रीत्व का द्योतक प्रत्यय की आपत्ति होगी तथा स्त्रीत्व का वाचक प्रातिपदिक की अङ्ग, भ, पदसंज्ञा हो जायेगी ।

अणादिषु तर्हि। अणादयोऽपि ग्रहणवद्भ्यो विधीयन्ते,-'गर्गादिभ्यो यञ्' 'नडादिभ्यो फगि'ति। यत्तच्छब्दरूपं गृह्यते तस्मादुत्पत्तिस्तस्यैताः संज्ञा भविष्यन्ति। अथापि कश्चिदग्रहणः। एवमपि न दोषः,-अपत्यादिष्वर्थेष्वणादयो विधीयन्ते। यत्तच्छब्दरूपमपत्यादिष्वर्थेषु वर्त्तते तस्मादुत्पत्तिस्तस्यैताः संज्ञा भविष्यन्ति।

यदि अङ्ग, भ, पदसंज्ञा का प्रयोजन अणादिप्रत्यय की विषयता में मानेंगे तो यह भी संभव नहीं है। वह इस तरह कि अपत्य आदि अर्थों में अण् आदिप्रत्ययों का विधान ग्रहणवान् प्रातिपदिक से है, जैसे-गर्गादि से यञ् हो एवम् नडादि से फक् हो। अण् आदि की उत्पत्ति में जो शब्दरूप गृहीत हैं उन्हीं शब्दों से अपत्य आदि अर्थों में अण् आदि प्रत्यय होंगे। अपत्य आदि अर्थों में शक्त **शब्द**=प्रातिपदिकरूप से ही अण् आदि की उत्पत्ति होगी तथा अण् आदि की प्रकृति तत्तत् प्रातिपदिकों की ही अङ्ग, भ, पदसंज्ञा होगी, अतः अण् आदि की उत्पत्ति होने पर अण् आदि पर रहते तत्तत् शब्दों की अङ्ग आदि संज्ञाविधान भी सूत्रारम्भ का फल नहीं है।

स्वार्थिकेषु तर्हि। स्वार्थिका अपि ग्रहणवद्भ्यो विधीयन्ते,-'यावादिभ्यः कन्' 'प्रज्ञादिभ्योऽणि'ति। यत्तच्छब्दरूपं गृह्यते तस्मादुत्पत्तिः, तस्यैताः संज्ञा भविष्यन्ति। यस्तर्ह्यग्रहणः-शुक्लतमः, शुक्लतरः, कृष्णतमः, कृष्णतर इति। अत्रापि न यावच्छुक्लस्तावच्छुक्ल-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तरः। प्रकृष्टः शुक्लः शुक्लतरः। यत्तच्छब्दरूपं प्रकृष्टे वर्तते तस्मादुत्पत्तिस्तस्यैताः संज्ञा भविष्यन्ति।

यदि स्वार्थ प्रत्ययों में अङ्ग आदि संज्ञाओं का प्रयोजन मानेंगे तो यह भी सम्भव नहीं है। वह इस लिए की स्वार्थप्रत्यय भी ग्रहणवान् प्रतिपदिक से होते हैं; जैसे-'यावादिभ्यः कन्' ५.४.२९, 'प्रज्ञादिभ्यश्च' ५.४.३८ सूत्रों में यवादि और प्रज्ञादि क्रमशः कन् और अण् प्रत्यय की उत्पत्ति में गृहीत हैं। एवं जहाँ पर तद्धितप्रत्यय का ग्रहणवान् प्रातिपदिक नहीं है वहाँ भी तद्धितप्रत्यय की प्रकृति को ही अङ्ग, भ और पदसंज्ञा होगी। जैसे 'अतिशयेन शुक्लः शुक्लतमः' में 'अतिशायने तमबिष्ठनौ' ५.३.५५ सूत्र से अतिशय अर्थ में तमप् विहित है; परन्तु तमप् की प्रकृति का सूत्र में निर्द्देश नहीं है; एवम् 'अयमनयोः प्रकृष्टेन शुक्लः शुक्लतरः' में 'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ' ५.३.५७ सूत्र से प्रकृष्ट अर्थ में तरप् प्रत्यय विहित है; परन्तु सूत्र में ग्रहणवान् प्रातिपदिक नहीं है; फिर भी प्रकृष्ट अर्थ में शक्त प्रातिपदिक से तरप् आदि उत्पन्न होते हैं; अतः प्रकृष्ट अर्थ का वाचक शुक्लपद की अङ्ग आदि संज्ञायें हो जायेंगी।

स्वादिषु तर्हि। एकत्वादिष्वर्थेषु स्वादयो विधीयन्ते, यत्तच्छब्दरूपमेकत्वादिष्वर्थेषु वर्त्तते-तस्मादुत्पत्तिस्तस्यैताः संज्ञा भविष्यन्ति।

यदि अङ्ग, भ, पदसंज्ञा का प्रयोजन स्वादि की उत्पत्ति में मानेंगे तो वह इस लिए सम्भव नहीं है कि 'द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने' १.४.२०, 'बहुषु बहुवचनम्' १.४.२१ सूत्र से एकत्व आदि अर्थों में स्वादिप्रत्यय विहित हैं। एकत्वादि अर्थों में शक्त प्रातिपदिक से स्वादि की उत्पत्ति होगी, अतः स्वादि प्रत्यय के पर रहते एकत्वादि अर्थ का वाचक प्रातिपदिक की अङ्ग, भ और पद संज्ञा हो जायेगी। यहाँ भाष्यकार-'यत्तच्छब्दरूपमेकत्वादिषु वर्त्तते, तस्मादुत्पत्तिस्तस्यैताः संज्ञा भविष्यन्ति' ऐसा इस लिएं कह रहे हैं कि 'जातिः, व्यक्तिः, लिङ्गं, संख्या, कारकं च पञ्चकं प्रातिपदिकार्थः' पक्ष है, 'संख्या प्रातिपदिकार्थः' पक्ष को मान कर भाष्यकार ने इस भाष्य का अवतरण किया है।

कथं पुनरिहोच्यमानाः स्वादय एकत्वादिष्वर्थेषु शक्या विज्ञातुम्? * एकवाक्यत्वात् * एकं वाक्यं-तच्चेदं च। यद्येकं वाक्यं तच्चेदं च-किमर्थं नानादेशस्थं क्रियते? कौशलमात्रमेतदाचार्यो दर्शयति यदेकं वाक्यं सन्नानादेशस्थं करोति,-'अन्यदपि किञ्चित्संग्रहीष्यामी'ति।

पूर्वपक्षी—**कथं पुनरिहेति**। 'स्वौजामौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसो-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

साम्ङ्योस्सुप्' ४.१.२ और 'द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने' १.४.२०, 'बहुषु बहुवचनम्' ४.१.२१ सूत्र भिन्न-भिन्न देश में पढे गये हैं। फिर स्वादिप्रत्ययों को एकत्वादि अर्थों में कैसे जाना जा सकता है?

उत्तरपक्षी—**एकवाक्यत्वादिति**। भिन्नदेशस्थ होने पर भी 'स्वौजसमौट्छस्-' ४.१.२ और 'द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने' १.४.२० इत्यादि वाक्यों की परस्पर एक-वाक्यता है, अतः एकत्वादि अर्थों में स्वादि विहित हैं।

पूर्वपक्षी—**यद्येकं वाक्यमिति**। यदि इन दोनों सूत्रों की एकवाक्यता है तो आचार्य ने इन्हें भिन्न-भिन्न देश में क्यों पढा है?

उत्तरपक्षी—**कौशलमिति**। यह आचार्य की चातुरी है कि वे एकवाक्यतापन्न दो वाक्यों को भी अनेकदेश में पढते हैं,-इससे आचार्य **अन्यदपि**=तिङ्विधि-वाक्य 'तिप्तस्झिसिप्थस्थ-' ३.४.७८ के साथ भी 'द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने' १.४.२० इत्यादि की एकवाक्यता कर लेंगे। इस तरह भाष्यकार ने जो पूर्व में 'अत उत्तरं पठति-ङ्याप्प्रातिपदिकग्रहणम् अङ्गभपदसंज्ञार्थम्' पढा था, उसका पूर्वपक्षी आचार्य ने खण्डन कर दिया।

***यच्छयोश्च लुगर्थम्* यच्छयोस्तर्हि लुगर्थं ङ्याप्प्रातिपदिकग्रहणं क्रियते। 'कंसीयपरशव्ययोर्यञञौ लुक्चे'ति ङ्याप्प्रातिपदिकात्परस्य लुग्यथा स्यात्। अक्रियमाणे हि ङ्याप्प्रातिपदिकग्रहणे प्रकृतेरपि लुक्प्रसज्येत। एतदपि नास्ति प्रयोजनम्। यथापरिभाषितं 'प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपो भवन्ती'ति प्रत्ययस्य भविष्यति। एवमप्युकारसकारयोः प्रसज्येत-'कमेः सः'-कंसः। पराञ् शृणातीति परशुरिति। 'उणादयो-ऽव्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानि'।**

अतः अब 'ङ्याप्प्रातिपदिकग्रहणं किमर्थम्' भाष्य का उत्तर देने के लिए वार्तिक का अवतरण करते हैं-**यच्छयोश्चेति**। 'यच्छयोश्च लुगर्थम्' इस वार्तिक में वार्तिककार को 'च' शब्द से समुच्चय अर्थ इष्ट है, परन्तु भाष्यकार को पूर्वप्रयोजन के दूषित होने से तर्हि' अर्थ इष्ट है। 'कंसीयपरशव्ययोर्यञञौ लुक्च' ४.३.१६८ सूत्र में छप्रत्ययान्त कंसीय शब्द से पर में विकार अर्थ वाच्य होने पर यञ् प्रत्यय विहित है, तथा कंस शब्द से पर में विहित 'छ' प्रत्यय का लुक् है। जैसे-'कंसाय हितं कंसीयम्। कंसीयस्य विकारः कांस्यम्। इसी तरह 'परशवे हितं परशव्यम्' में परशु पद से यत् प्रत्यय है। यत्प्रत्ययान्त परशव्यपद से विकार अर्थ में अञ् प्रत्यय है तथा परशुपद से पर में विहित यत् प्रत्यय का लुक् है। यहाँ पर ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिक से पर में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विहित यत् और 'छ' का लुक् हो, इसके लिए 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' यह अधिकार-सूत्र पढना चाहिये। यदि इस अधिकारसूत्र को नहीं रखेंगे तो प्रत्यय यत् और छ के साथ-साथ प्रकृतिभाग कंश और परशु का भी लुक् होने लगेगा।

दूसरे आचार्य 'प्रकृतेरपि लुक्प्रसज्येत' इस भाष्य में 'प्रकृतेः' को स्थान-षष्ठी मान कर कहते हैं-**एतदपि नास्तीति**। अधिकारसूत्र का प्रयोजन प्रकृतिभाग के लुक् का निषेध करना नहीं हो सकता है। आचार्य ने 'प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः' १.१.६१ ऐसा सूत्र पढा है, इससे लुक्, श्लु और लुप् संज्ञा प्रत्यय की ही होगी, प्रकृति की नहीं , अतः प्रकृतिभाग का लुग्-निषेध के लिए किया गया अधिकारसूत्र व्यर्थ है।

दूसरे आचार्य पूर्व अर्थ को ही स्पष्ट करते हैं-**एवमपीति**। कमु कान्तौ धा. पा. ४३३ धातु से 'कमेः सः' से औणादिक 'स' प्रत्यय होकर 'कंसः' की सिद्धि है, एवं **'पराञ्शृणाति**=हन्ति परशुः' पद 'पर' उपपद रहते शृ हिंसायाम् धा.पा.१४८६ धातु से औणादिक 'डु'प्रत्यय होकर परशुशब्द निष्पन्न है। इस तरह 'कंसः' में 'स' और परशु में 'उ' प्रत्यय है, अतः उसको लुक् प्राप्त होगा, जिसका निषेध के लिए अधिकारसूत्र किया गया है।

सिद्धान्ती—**उणादय इति**। उणादि अव्युत्पन्न प्रातिपदिक होते हैं; 'अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य' ८.३.४६ सूत्र में कमिग्रहण से ही कंसग्रहण सिद्ध था, पुनः कंसग्रहण व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा-'क्वचिदेषां व्युत्पत्तिकार्यं न भवति'। अर्थात् कहीं पर कृकमि इत्यादि को व्युत्पत्तिकार्य नहीं होते हैं, अतः कंसघटक औणादिक प्रत्यय 'स' और परशुघटक औणादिक प्रत्यय 'उ' का लुक् नहीं होगा। यञ् और अञ् का क्रमशः कंसीय और परशव्यपद से पर में विहित होने से विधानसामर्थ्य से लुक् नहीं होगा, अतः पारिशेष्यात् यत् और 'छ' का ही लुक् होगा।

* वृद्धाऽवृद्धावर्णस्वरद्व्यज्लक्षणे च प्रत्ययविधौ तत्संप्रत्ययार्थम् * **वृद्धाऽवृद्धावर्णस्वरद्व्यज्लक्षणे तर्हि प्रत्ययविधौ तत्संप्रत्ययार्थं ङ्याप्प्रातिपदिकग्रहणं क्रियते। 'वृद्धात्', 'अवृद्धात्', 'अवर्णान्तात्', 'अनुदात्तादेः', 'द्व्यच' इत्येतानि ङ्याप्प्रातिपदिकविशेषणानि यथा स्युरिति।**

वार्तिककार 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ सूत्र का अन्य प्रयोजन भी दे रहे हैं-**वृद्धाऽवृद्धाविति**। यहाँ भी 'च'शब्द वार्तिककार के मत में सम्मुचयार्थक है तथा पूर्वप्रयोजन के दूषित होने से भाष्यकार के मत में 'तर्हि' अर्थ को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहेगा। 'वृद्धावृद्धसंज्ञक आदि हैं **लक्षण**=निमित्त जिस प्रत्ययविधि के, उस प्रत्ययविधि की कर्तव्यता में वृद्ध आदि ङ्याप्प्रातिपदिकविशेषण होंगे' यह वार्तिकार्थ है। वृद्ध, अवृद्ध, अवर्णान्त, अनुदात्तादिस्वर और द्व्यज्रूप ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिक से पर में प्रत्यय-विधि हो, इसके लिए 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ सूत्र किया गया है।

अथाऽक्रियमाणे ङ्याप्प्रातिपदिकग्रहणे कस्यैतानि विशेषणानि स्युः? समर्थविशेषणानि। तत्र को दोषः? 'उदीचां वृद्धादगोत्रात्'। इह च प्रसज्येत—ज्ञानां ब्राह्मणानामपत्यमिति। एतद्धि समर्थं वृद्धम्। इह च न स्याज्ज्ञयोर्ब्राह्मणयोरपत्यमिति। एतद्धि समर्थमवृद्धम्। वृद्ध।

पूर्वपक्षी—**अथाऽक्रियमाण इति**। यदि 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ सूत्र का आरम्भ नहीं किया जाये तो वृद्धादि किसके विशेषण होंगे? सूत्र के अनारम्भपक्ष में प्रत्ययार्थसम्बन्धयोग्यार्थ का वाचक होने से भी वृद्धादि 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' के ही विशेषण होंगे, अन्य के नहीं, अतः जब सूत्र के अनारम्भपक्ष में भी वृद्धादि 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' के ही विशेषण हो रहे हैं, तब सूत्र का आरम्भ क्यों किया गया है?, यह प्रश्न में हेतु है। 'कस्यैतानि' में 'किम्'शब्द क्षेप अर्थ में है।

उत्तरपक्षी—**समर्थविशेषणानीति**। 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ सूत्र के अनारम्भपक्ष में वृद्धादि समर्थविशेषण होंगे। 'समर्थानां प्रथमाद्वा' २.१.१ इस अधिकार सूत्र से विभक्ति के अभाव में सामर्थ्य का बोध नहीं हो सकेगा, अतः सामर्थ्य-बोध के लिए विभक्त्यन्तपर्यन्त बोध करना पडेगा, फिर वृद्धादि **समर्थस्य**=विभक्त्यन्त के विशेषण होने लगेंगे। तरन्तु जब 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ सूत्र का आरम्भ करते हैं तो सूत्रारम्भसामर्थ से वृद्धादि ङ्याप्प्रातिपदिक में ही विशेषण होंगे, समर्थ में नहीं।

पूर्वपक्षी—**तत्र क इति**। यदि वृद्धादि को समर्थविशेषण मान लिया जाये तो क्या दोष होगा?

उत्तरपक्षी—**उदीचामिति**। 'जानन्ति इति ज्ञाः' 'आतोऽनुपसर्गे कः' ३.२.३ से क प्रत्यय हो कर ज्ञाः, उसका षष्ठीबहुवचनान्त 'ज्ञानाम्' रूप है। 'वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम्' १.१.६३ से **समर्थः**=विभक्त्यन्त 'ज्ञाः' वृद्धसंज्ञक है। षष्ठी-विभक्त्यन्त वृद्धसंज्ञक अगोत्रप्रत्ययान्त 'ज्ञानाम्' से प्राचीनों के मत में अपत्यार्थक फिञ् प्रत्यय 'उदीचां वृद्धादगोत्रात्' ४.१.१४७ से प्राप्त होगा। एवम् 'जानीत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इति ज्ञौ, तयोर्ज्ञयोर्ब्राह्मणयोरपत्यम्' यहाँ **समर्थ**=विभक्त्यन्त नहीं है, अतः अपत्य अर्थ में प्रत्यय की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। इस तरह समर्थ का विशेषण होने से समानप्रकृतिक को एकत्र प्राप्त होना तथा अन्यत्र प्राप्त नहीं होना ही दोष है। **वृद्ध**।

अवृद्धम्,-'प्राचामवृद्धात् फिन्बहुलम्'। इह च प्रसज्येत-ज्ञयोर्ब्राह्मणयोरपत्यमिति। एतद्धि समर्थमवृद्धम्। इह च न स्याज्-ज्ञानां ब्राह्मणानामपत्यमिति । एतद्धि समर्थं वृद्धम्। अवृद्ध।

अवर्ण,-अत इञ् भवति। इहैव स्याद्-दक्षस्यापत्यं दाक्षिरिति। एतद्धि समर्थमकारान्तम्। इह च न स्याद्-दक्षयोरपत्यं, दक्षाणामपत्यमिति। एतद्धि समर्थमनवर्णान्तम्। अवर्ण।

अवृद्ध—'जानीत इति ज्ञौ, तयोर्ज्ञयोर्ब्राह्मणयोरपत्यम्' इस विग्रह में **समर्थ**= विभक्त्यन्त 'ज्ञयोः' अवृद्धसंज्ञक है, अतः उससे पर में 'प्राचामवृद्धात्फिन्बहुलम्' ४.१.१६० से अपत्य अर्थ में फिन् प्राप्त होगा, परन्तु 'जानन्तीति ज्ञास्तेषां ज्ञानामपत्यम्' इस विग्रह में विभक्त्यन्त 'ज्ञानाम्' पद वृद्धसंज्ञक है, अतः समानप्रकृतिक पद को भी एकत्र प्राप्ति तथा अन्यत्र अप्राप्ति होने से समर्थविशेषणपक्ष में दोष है। **अवृद्ध**।

अवर्ण—'दक्षस्यापत्यं दाक्षिः' यहाँ पर विभक्त्यन्त 'दक्षस्य' अदन्त है, अतः 'अत इञ्' ४.१.९५ से अदन्तविभक्त्यन्त से पर में अपत्यार्थक इञ् प्रत्यय हो जायेगा। परन्तु 'दक्षयोरपत्यम्' इस विग्रह में 'दक्षयोः' यह अदन्तविभक्त्यन्त नहीं है, अतः उससे पर में अपत्यार्थक इञ् प्रत्यय की अप्राप्ति होने से दोष होगा। **अवर्ण**।

स्वर,-अनुदात्तादेरञ्भवति। इह च प्रसज्येत-वाचो विकारः, त्वचो विकार इति। एतद्धि समर्थमनुदात्तादि। इह च न स्यात्-सर्वेषां विकार इति। एतद्धि समर्थमुदात्तादि। स्वर।

स्वर—'तस्य विकारः' ४.३.१३४ के अधिकार में 'अनुदात्तादेश्च' ४.३.१४० सूत्र है। इससे अनुदात्तादि से पर में विकार अर्थ में अञ् प्रत्यय होता है। 'वाचो विकारः, त्वचो विकारः' इस विग्रह में 'सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः' ६.१.१६८ सूत्र से एकाच् से पर में तृतीयादि विभक्ति के उदात्त होने पर 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' ६.१.१६८ के द्वारा शेष अनुदात्त होने से 'वाचः, त्वचः' अनुदात्तादि होगा, उससे पर में विकारार्थक अञ् वेद में प्राप्त होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परन्तु 'सर्वेषां विकारः' इस विग्रह में 'सर्वस्य सुपि' ६.१.१९१ से सुप् पर रहते सर्व शब्द के आदि-उदात्त होने से 'सर्वेषाम्' यह विभक्त्यन्त अन्तानुदात्त होगा। इस तरह अनुदात्तादि नहीं होने से 'सर्वेषां विकारः' इस विग्रह में अञ् प्रत्यय की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। **स्वर**।

द्व्यज्लक्षण,-द्व्यचष्ठन्निति। इह च प्रसज्येत वाचा तरति, त्वचा तरतीति। एतद्धि समर्थं द्व्यच्। इह च न स्याद्-घटेन तरतीति। एतद्धि समर्थमद्व्यच्।

द्व्यज्लक्षण—समर्थविशेषण मानने में द्व्यज्लक्षणदोष होगा। 'वाचा तरति, त्वचा तरति' इस विग्रह में विभक्त्यन्त 'वाचा, त्वचा' द्व्यच् है, उससे 'तरति' अर्थ में 'नौद्व्यचष्ठन्' ४.४.७ से अनिष्ट ठन् प्रत्यय प्राप्त होगा। एवं 'घटेन तरति' इस विग्रह में 'घटेन' यह विभक्त्यन्त द्व्यच् नहीं है, अतः उससे पर में इष्ट ठन् नहीं हो सकेगा। इस तरह वृद्धादि को समर्थविशेषण मानने में उपर्युक्त दोष हैं। ये दोष न हों, इसके लिए वृद्धादि को ङ्याप्प्रातिपदिकविशेषण मानना चाहिये, अतः इस के लिए 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ सूत्र आवश्यक है।

अस्ति पुनः समर्थविशेषणे सति किञ्चिदिष्टं संगृहीतं भवति, आहोस्विद्दोषान्तमेव? अस्तीत्याह। किम्? साम्ना तरति, वेम्ना तरतीति। एतद्धि समर्थमपि-द्व्यच्, ङ्याप्प्रातिपदिकमपि। अथ ङ्याब्ग्रहणं किमर्थम्?-न प्रातिपदिकादित्येव सिद्धम्?

पूर्वपक्षी—**अस्ति पुनरिति**। वृद्धादि को समर्थविशेषण मानने में कुछ लक्ष्यों का संग्रह भी होता है?, अथ वा संपूर्ण दोष ही दोष हैं?

उत्तरपक्षी—**अस्तीत्याहेति**। कुछ लक्ष्यों का संग्रह भी होता है। जैसे-'साम्ना तरति, वेम्ना तरति' यहाँ विभक्त्यन्त 'साम्ना' और 'वेम्ना' भी दो अचों वाला है तथा टाप्रत्यय की प्रकृति सामन्, वेमन् भी दो अचों वाला है, अतः यह लक्ष्य भी संगृहीत है।

प्रश्नभाष्य—**अथेति**। 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ सूत्र में ङ्याब्ग्रहण क्यों करते हैं?, 'प्रातिपदिकात्' इतना ही सूत्र रखिये। 'प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्याऽपि ग्रहणम्' परिभाषा के द्वारा प्रातिपदिक के ग्रहण में लिङ्गबोधकप्रत्ययविशिष्ट का ग्रहण होने से ङीप्, टाप् आदि का ग्रहण हो जायेगा। इसके लिए सूत्र में ङ्याब्ग्रहण क्यों किया गया है?

न सिध्यति-'अप्रत्यय' इति प्रातिपदिकसंज्ञायाः प्रतिषेधः प्राप्नोति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यद्येष ङ्याब्ग्रहणे हेतुः त्यूङ्ग्रहणमपि कर्तव्यम्। तावपि हि प्रत्ययौ। तिग्रहणे तावद्वार्तम्। तद्धितः प्रातिपदिकमिति प्रातिपदिकसंज्ञा भविष्यति। ऊङ्ग्रहणे चापि वार्तम्। उवर्णान्तादूङ् विधीयते। तत्रैकादेशः। एकादेशे कृतेऽन्तादिवद्भावात्प्रातिपदिकसंज्ञा भविष्यति।

उत्तरपक्षी—**न सिध्यतीति**। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' १.२.४५ सूत्र में 'अप्रत्ययः' यह निधषेवचनं पढा है। ङीप्, टाप् आदि प्रातिपदिक से विहित हैं, अतः प्रत्ययान्त होने से 'अप्रत्ययः' यह निषेध लग जायेगा। इससे ङ्यन्त, आबन्त आदि के प्रातिपदिक नहीं होनें से उससे पर में स्वादि प्रत्यय नहीं हो सकेंगे, अतः ङ्यन्त, आबन्त से भी पर में स्वादिविधानार्थ ङ्याब्ग्रहण किया गया है।

आक्षेपक आचार्य—**यद्येष ङ्याब्ग्रहण इति**। ङ्याब्ग्रहण में यदि उपर्युक्त हेतु है तो वही हेतु 'ऊङुतः' ४.१.६६ इत्यादि सूत्रों से स्त्र्यर्थद्योतक ऊङ्प्रत्यय के वियष में भी है। वहाँ पर 'अप्रत्ययः' इस निषेधवचन की प्रवृत्ति होने से ऊङन्त से पर में स्वादि की उत्पत्ति नहीं हो सकेगी, अतः सूत्र में ऊङ् का ग्रहण कर 'ङ्याबूङ्प्रातिपदिकात्' ऐसा सूत्र पढना चाहिये? एवं 'तद्धिताः' ४. १.७६ के अधिकार में 'यूनस्तिः' ४.१.७७ सूत्र पढ कर युवन् शब्द से पर में स्त्र्यर्थद्योतक ति प्रत्यय का विधान किया है, अतः उसका भी ग्रहण करने से 'ङ्याबूङ्तिप्रातिपदिकात्' ऐसा सूत्र पढना चाहिये था। ऊङ् और ति ये भी प्रत्यय हैं, अतः इनका भी सूत्र में ग्रहण होना चाहिये था?

उत्तरपक्षी—**तिग्रहणे तावदिति**। तिग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है। ति की तद्धितसंज्ञा होने से समासान्त मान कर 'कृत्तद्धितसमासाश्च' १.२.४६ के द्वारा प्रातिपदिकसंज्ञा होने से ति **वार्तम्**=प्रातिपदिकत्वयुक्त है। एवम् **'ऊङ्ग्रहणे चापीति'**=ऊङ्प्रत्ययान्त की भी प्रातिपदिकसंज्ञा हो जायेगी। तथा ऊङन्त से पर में स्वादि की उत्पत्ति भी जायेगी। वह इस तरह कि उवर्णान्त से स्त्र्यर्थ द्योत्य होने पर ऊङ् प्रत्यय हुआ है। पूर्वपर के स्थान में सवर्ण-एकादेश हो कर दीर्घ ऊकारान्त रूप होगा। अन्तादिवच्च' ६.१.८५ सूत्र से पूर्वान्तवद्भाव के द्वारा उवर्णान्त पूर्वसमुदायवृत्ति धर्म प्रातिपदिकत्व का एकादेशविशिष्ट में अतिदेश करने से प्रातिपदिकत्व एकादेशविशिष्ट में चला जायेगा, अतः उससे पर में स्वादि की उत्पत्ति हो जायेगी।

यद्येष ऊङोऽग्रहणे हेतुः-आब्ग्रहणमपि न कर्तव्यम्। आबपि ह्यकारान्ताद्विधीयते। तत्रैकादेशः। एकादेशे कृतेऽन्तादिवद्भावात्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रातिपदिकसंज्ञा भविष्यति। यस्तर्ह्यनकारान्तात्-क्रुञ्चा उष्णिहा देवविशेति। अत्राप्यकारान्ताद् वृत्तिर्लक्ष्यते-क्रुञ्चानालभेत, उष्णिहककुभौ, देवविशञ्च मनुष्यविशञ्चेति। इह तावद् उष्णिहककुभाविति। आप एवौत्तरपदिकं ह्रस्वत्वम्। इह खल्वपि-देवविशञ्च, मनुष्यविशञ्चेति, नास्ति विशेषः-अकारान्तादम उत्पत्तौ सत्यां, व्यञ्जनान्ताद्वेति।

आक्षेपक आचार्य—**यद्येष ऊङ इति**। यदि ऊङ् के अग्रहण में यह कारण है तो आप् के ग्रहण में भी वही कारण चरितार्थ होगा आप् प्रत्यय भी अकारान्त से पर में विहित है। सर्वणदीर्घ-एकादेश के द्वारा अजा आदि रूप-सिद्धि होती है। वहाँ पर भी 'अन्तादिवच्च' ६.१.८५ अतिदेशसूत्र से अन्त्याक्षरविशिष्ट पूर्वसमुदायवृत्तिप्रातिपदिकत्वधर्म का एकादेशविशिष्टसमुदाय में अतिदेश कर देने से प्रातिपदिकत्व का लाभ हो जायेगा, अतः सूत्र में आब्ग्रहण भी नहीं करना चाहिये था।

उत्तरपक्षी—**यस्तर्हीति**। 'अजाद्यतष्टाप्' ४.१.४ गणसूत्र में क्रुञ्च्, उष्णिह् और देवविश् शब्द हलन्त पढे गये हैं, यहाँ स्त्रीत्व द्योत्य होने पर हलन्त से पर में टाप् विहित होकर 'क्रुञ्चा, उष्णिहा, देवविशा' रूप है। जातिलक्षण ङीष् का बाध करने के लिए इनका अजादिगण में पाठ है। यहाँ एकादेश नहीं होने से आबन्त में प्रातिपदिकत्व का लाभ नहीं हो सकेगा, अतः उससे पर में स्वादि- विधानार्थ आप् का ग्रहण है।

आक्षेपक आचार्य—**अत्रापीति**। क्रुञ्चा इत्यादि में भी अकारान्त से ही पर में आप् प्रत्यय देखा जाता है, तथा क्रुञ्चा इत्यादि अकारान्तप्रयुक्त भी देखे जाते हैं। जैसे-'क्रुञ्चानालभेत' इत्यादि; अतः एकादेश होने से पूर्वसमुदायवृत्ति धर्म प्रातिपदिकत्व एकादेशविशिष्ट में आ जायेगा।

इस पर आब्ग्रहणवादी आचार्य कहते हैं—**इह तावदिति**। 'उष्णिहा च ककुभ् च उष्णिहककुभौ' यहाँ 'ङ्यापोः संज्ञाच्छन्दसोर्बहुलम्' ६.३.६३ से उत्तरपद पर रहते हलन्त से विहित पूर्वपदस्थ आप् को ही ह्रस्व होता है। एवं 'देवविशञ्च मनुष्यविशञ्च' में अकारान्त से अम्प्रत्यय की उत्पत्ति होने पर 'अमि पूर्वः' ६.१.१०७ से पूर्वरूप एकादेश होकर वही रूप रहेगा, अथ वा हलन्त से अम् की उत्पत्ति करने पर भी 'देवविशम्, मनुष्यविशम्' ही रूप रहेगा, रूपभेद नहीं; अतः 'देवविश्, मनुष्यविश्' से पर ही अम् का विधान मानेंगे।

यत्तावदुच्यते-'इह तावदुष्णिहककुभावित्याप एवौत्तरपदिकं ह्रस्व-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्वमिति। संज्ञाच्छन्दसोरित्येवं तद्। नैषा संज्ञा, नापीदं छन्दः। यदप्युच्यते-'इह खल्वपि देवशिञ्च मनुष्यविशञ्चेति। नास्ति विशेषः-अकारान्तादम उत्पत्तौ सत्यां व्यञ्जनान्ताद्वे'ति। स्वरे विशेषः। यद्यत्र व्यजनान्तादुत्पत्तिः स्याद्देवविशमित्येवं स्वरः प्रसज्येत। देवविशमिति चेष्यते। तस्मात्क एष एवंविषयः।

अन्य आचार्य—**यत्तावदिति**। आप ने जो कहा था कि 'उष्णिहककुभौ' में उत्तरपद पद रहते पूर्वपदस्थ आप् को ह्रस्व होता है। उष्णिहककुभौ' इस स्थल में न तो संज्ञा गम्य है, एवं छन्दोविषय भी नहीं है, अतः आबन्त उष्णिहा को ह्रस्व नहीं होगा। इस लिए 'उष्णिहककुभौ' में उष्णिह शब्द अदन्त ही मानना चाहिये। एवम् आप ने जो दूसरी वात कही थी-'देवविशञ्च, मनुष्यविशञ्च' में अदन्त से अम् किया जाये, अथ वा हलन्त से अम् किया जाये, इसमें कोई रूपभेद नहीं होगा', वह भी पक्ष उचित नहीं है। यदि हलन्त से अम् करेंगे तो 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' ३.१.४ सुप् अम् को अनुदात्तस्वर होकर 'देवविशम्, मनुष्यविशम्' ऐसा रूप होने से विभक्त्यन्त 'श' घटक 'अ' अनुदात्त होगा। यदि अदन्त से करेंगे तो इस पक्ष में 'कप्रकरणे मूलविभुजादिभ्यश्च' वा.३.२.५ से देवविश्, मनुष्यविश् शब्द के अनन्तर 'क' प्रत्यय होने से 'क' प्रत्ययान्त देवविश और मनुष्यविश शब्द 'थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम्' ६.२.१४४ से अन्तोदात्त है, अतः 'देवविश+अम्, मनुष्यविश+अम्' इस स्थिति में 'अमि पूर्वः' ६.१.१०७ से पूर्वरूप एकादेश होने पर पूर्वरूप का पूर्वस्थानी उदात्त और परस्थानी अनुदात्त होने से 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' ८.२.५ से 'देवविशम्, मनुष्यविशम्' यहाँ पर 'श' घटक अ उदात्त होगा; इस तरह हलन्त अथ वा अदन्त से अम् प्रत्यय की उत्पत्ति में रूपभेद नहीं है, अतः 'देवविशम्, मनुष्यविशम्' अन्तोदात्त होने से यह 'क' विषय है।

इदं तर्हि-'पादोऽन्यतरस्यां' 'टाबृची'ति। 'ऋची'त्युच्यते। तत्र च्छान्दसत्वाद् भविष्यति। 'ऋची'ति नेदं छन्दो विवक्षितं-काठकं, कालापकं, मौदकं, पैप्पलकञ्च। किन्तर्हि? प्रत्ययार्थविशेषणमेतद्-'ऋक्चेत्प्रत्ययार्थो भवती'ति।

अब उत्तरपक्षी अपना दूसरा पक्ष देता है—**इदं तर्हीति**। 'पादोऽन्यतरस्याम्' ४.१.८ एवं 'टाबृचि' ४.१.९ सूत्र से ऋक् वाच्य होने पर हलन्त पद् शब्द से टाप् प्रत्यय होता है। जैसे-द्वौ पादौ यस्यां सा द्विपदा ऋक्, त्रयः पादा यस्यां सा त्रिपदा ऋक्' यहाँ पर हलन्त से टाप् विहित है, अतः अकादेश नहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होने से अन्तवद्भाव के द्वारा पूर्वसमुदायवृत्तिधर्म प्रातिपदिकत्व समुदाय में नहीं लाया जा सकता है, अतः 'द्विपदा, त्रिपदा' इत्यादि से पर में स्वादिसिद्धि के लिए ङ्याब्ग्रहण अनिवार्य है।

पूर्वपक्षी—**ऋचीत्युच्यत इति**। 'टाबृचि' ४.१.९ सूत्र में 'ऋचि' ऐसा कहा जा रहा है, अतः छन्दोविषय होने से प्रातिपदिक नहीं होने पर भी छान्दसत्वात् 'द्विपदा, त्रिपदा' में स्वादि की उत्पत्ति हो जायेगी।

उत्तरपक्षी—**ऋचीति**। 'टाबृचि' ४.१.९ सूत्र में 'ऋचि'पद से काठक, कालापक, मौदक, पैप्पलाद यह वेदभाग विवक्षित नहीं है, अपि तु 'ऋचि' यह प्रत्ययार्थविशेषण है। अर्थाद् ऋक् यदि प्रत्ययार्थ हो तो टाप् कहना चाहिये।

एतदपि नास्ति प्रयोजनम्। पदशब्दः पादशब्दसमानार्थोऽकारान्तश्छन्दसि दृश्यते। 'तस्याः सप्ताक्षरमेकं पदम्'। एकः पाद इत्यर्थः। तस्मादुत्पत्तिर्भविष्यति।

खण्डनभाष्य—**एतदपि नास्तीति**। आब्ग्रहण का यह भी प्रयोजन नहीं है। यहाँ पर पादशब्द को हलन्त पद् आदेश होकर हलन्त से आप् प्रत्यय विहित नहीं है, अपि तु पादशब्द का पर्याय पदशब्द अदन्त है; उस अदन्त पदशब्द से पर में आप् का विधान है। भाष्यकार अदन्त पदशब्द का पाद अर्थ में प्रयोग दिखाते हैं-तस्याः सप्ताक्षरमेकं पदम्।

इदं तर्हि-'डाबुभाभ्यामन्यतरस्या'मिति। बहुराजा, बहुराजे, बहुराजा इति * ङ्याब्ग्रहणमनर्थकं-प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्याऽपि ग्रहणात् * **ङ्याब्ग्रहणमनर्थकम्। किं कारणम्? प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्याऽपि ग्रहणात्। 'प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्याऽपि ग्रहणं भवती'त्येषा परिभाषा कर्त्तव्या।**

आब्ग्रहण का प्रयोजन सिद्ध करने के लिए अन्य हेतु देते हैं-**इदं तर्हीति**। 'डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्' ४.१.१३ सूत्र में हलन्त से डाप् प्रत्यय करके 'बहवो राजानो यस्यां नगर्य्यां सा बहुराजा, ते बहराजे, ता बहुराजाः' में एकादेश नहीं है, अतः पूर्वसमुदायवृत्ति प्रातिपदिकधर्म के 'बहुराजा' में नहीं आने से स्वादि की उत्पत्ति नहीं हो सकेगी, यहाँ स्वादि की उत्पत्ति हो, इसके लिए सूत्र में आब्ग्रहण किया गया है।

सिद्धान्ती—**ङ्याब्ग्रहणमिति**। 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ सूत्र में ङ्याब्ग्रहण नहीं करना चाहिये। 'प्रतिपदिक के ग्रहण में लिङ्गबोधकप्रत्ययविशिष्ट का भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ग्रहण होता है' इस परिभाषा से ही आबन्त और ङ्यन्त में प्रातिपदिकत्व आ जायेगा, तथा उससे पर में स्वादि की उत्पत्ति हो जायेगी, अतः आचार्य को प्रातिपदिकात्' इतना ही सूत्र रखना चाहिये। इससे लिङ्गविशिष्टबोधकपरिभाषा का पाठ करके हम कार्यसिद्धि कर लेंगे। यथाकथञ्चित् प्रातिपदिकग्रहण में यह परिभाषा उपस्थित होती है, प्रातिपदिक के स्वरूपग्रहण में नहीं।

कः पुनरत्र विशेषः-एषा परिभाषा क्रियेत, ङ्याब्ग्रहणं वा? अवश्यमेषा परिभाषा कर्तव्या। बहून्येतस्याः परिभाषायाः प्रयोजनानि। कानि? * प्रयोजनं-सर्वनामस्वर-समासतद्धितविधिलुगलुगर्थम् *** सर्वनामविधिः प्रयोजनम्। सर्वनाम्नः सुट्। इहैव स्याद्-येषां, तेषाम्। यासां तासामित्यत्र न स्यात्। नैतदस्ति प्रयोजनम्अवर्णान्ताट्टाब्विधीयते। तत्रैकादेशे कृतेऽन्तादिवद्भावात्सुड् भविष्यति। इदन्तर्हि प्रयोजनं- 'सर्वनाम्नस्तृतीया च'। इहैव स्याद्-भवता हेतुना, भवतो हेतोरिति। 'भवत्या हेतो'रित्यत्र न स्यात्।** सर्वनाम। स्वर**'कुसूलकूपकुम्भशालं बिले'। इहैव स्यात्-कुसूलबिलम्। 'कुसूलीबिल'मित्यत्र न स्यात्।** स्वर।

आक्षेपक आचार्य—**कः पुनरत्रेति**। ङ्याब्ग्रहण से भी बहुराजा इत्यादि आबन्तस्थल में स्वादि की उत्पत्ति हो रही है, तथा लिङ्गविशिष्टपरिभाषा से भी स्वादि की उत्पत्ति हो रही है। यहाँ परिभाषा पढी जाये, अथ वा ङ्याब्ग्रहण किया जाये?

उत्तरपक्षी—**अवश्यमिति**। लिङ्गविशिष्टपरिभाषा ही पढनी चाहिये। इस परिभाषा के अन्य भी बहुत सारे प्रयोजन हैं।

इस परिभाषा के प्रयोजनों को गिनाते हैं—**प्रयोजनमिति**। सर्वनाम, स्वर, समास, तद्धितविधि, लुक् और अलुक् ये सभी इस परिभाषा के प्रयोजन हैं। **सर्वनाम**-'आमि सर्वनाम्नः सुट्' ७.१.५२ के द्वारा अवर्णान्त सर्वनाम से पर में आम् को सुड् विहित है, वह 'येषां, तेषाम्' में ही होगा, 'यासां, तासाम्' में आबन्त से पर में प्राप्त नहीं हो सकेगा, आबन्त से पर में आम् को भी सुडागम हो, इसके लिए परिभाषा माननी चाहिये। **सर्वनाम**। **स्वर**-'कुसूलकूपकुम्भशालं बिले' ६.२.१०२ सूत्र से बिलशब्द पर रहते कुसूल आदि को अन्तोदात्त होता है। जैसे-कुसूलबिलम्। 'कुसूलीबिलम्' में भी अन्तोदात्त हो, इसके लिए परिभाषा माननी चाहिये। **स्वर**।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समास,-द्वितीया श्रितादिभिः सह समस्यते। इहैव यथा स्यात्-कष्टं श्रितः कष्टश्रितः। कष्टं श्रिता कष्टश्रिता इत्यत्र न स्यात्। एतदपि नास्ति प्रयोजनम्। श्रितशब्दोऽकारान्तस्तत्रैकादेशे कृतेऽन्तादिवद्भावाद् भविष्यति। इदं तर्हि-'पूर्वसदृशे'ति। इहैव स्यात्-पित्रा सदृशः पितृसदृशः। 'पित्रा सदृशी पितृसदृशी'त्यत्र न स्यात्। समास।

समास—इस परिभाषा का प्रयोजन समास भी है। 'कष्टं श्रितः कष्टश्रितः' यहाँ 'द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः' २.१.२४ से समास है। 'कष्टं श्रिता कष्टश्रिता' इस आबन्त श्रिता शब्द के साथ द्वितीयान्त समश्रित हो सके, इसके लिए परिभाषा माननी चाहिये।

आक्षेपक—**एतदपि नास्तीति**। 'कष्टश्रिता' यह समासग्रहण का प्रयोजन नहीं हो सकता है। श्रित अदन्त शब्द से स्त्रीत्व द्योत्य होने पर टाप् होकर सवर्णदीर्घ-एकादेश है। पूर्वान्तवद्भाव के द्वारा श्रिता इस आबन्त में श्रितशब्दत्व का अतिदेश करके 'कटश्रिता' यह समास हो जायेगा।

इस पर उत्तरपक्षी आचार्य समास का अन्य उदाहरण प्रस्तुत करते हैं-**इदं तर्हीति**। 'पित्रा सदृशः पितृसदृशः' यहाँ 'पूर्वसदृशसमोनार्थकलह- निपुणमिश्रश्लक्ष्णैः' २.१.३१ से समास है। सूत्र में सदृश यह अदन्त प्रातिपदिक है, अतः 'पित्रा सदृशी' इस विग्रह में 'पितृसदृशी' यह अप्राप्त होगा। यहाँ भी ङी प्रत्यय होने पर 'यस्येति च' ६.४.१४८ से अकार का लोप है, अतः अतिदेश के द्वारा सदृशशब्दत्व सदृशी में लाया जा सकता है। सदृशग्रहण से सदृशी का ग्रहण हो इसके लिए परिभाषा करनी चाहिये। **समास**।

तद्धितविधि,-'अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्'। इहैव स्याद्-हस्तिनां समूहो हास्तिकम्। हस्तिनीनां समूहो हास्तिकमित्यत्र न स्यात्। एतदपि नास्ति प्रयोजनम्। पुंवद्भावेनैतत्सिद्धम्। इदं तर्हि-प्रमाणे द्वयसच्। यथेह भवति हस्तिद्वयसं, हस्तिमात्रम्। एवं हस्तिनीद्वयसमित्यपि यथा स्यात्। तद्धितविधि।

तद्धितविधि—समूह अर्थ में 'अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्' ४.२.४७ से 'हस्तिनां समूहो हास्तिकम्' में ठक् विहित है। सूत्र में हस्तिन् यह नान्त पद का ग्रहण है, अतः नान्तलक्षण ङीप् होने पर हस्तिनीपद से 'हस्तिनीनां समूहः' इस अर्थ में ठक् अप्राप्त रहेगा। परिभाषा मानने पर हस्तिन् पद से स्त्रीलिङ्ग-बोधक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ङीब्विशिष्ट हस्तिनी का भी ग्रहण होता है, अतः 'हस्तिनीनां समूहः' इस विग्रहवाक्य में हस्तिनी पद से भी समूह अर्थ में ठक् हो कर 'हास्तिकम्' बनता है। इस अर्थ में हस्तिन् पद से पर में द्वयसच् आदि प्रत्यय हैं। परिभाषा के द्वारा लिङ्गबोधक प्रत्यय ङीब्विशिष्ट हस्तिनी पद से भी द्वयसच् आदि होकर 'हस्तिनीद्वयसम्' हो, यह परिभाषा का प्रयोजन है। **तद्धित**।

खण्डनभाष्य—**एतदपि नास्तीति**। परिभाषा का तद्धितविधि में यह प्रयोजन नहीं हो सकता है। 'हस्तिनीनां समूहः' इस अर्थ में ठक्प्रत्यय होने पर 'ठक्छसोश्च' वा० ३६२६ से पुंवद्भाव होकर 'हास्तिकम्' हो जायेगा। यहाँ विद्वानों को विचार करना चाहिये कि उत्तरपक्षी की वात को विना समझे पूर्वपक्षी ने आक्षेप किया है। वह इस तरह कि ठक्प्रत्यय होने के बाद पुंवद्भाव होगा, जबकि यहाँ ठक्प्रत्यय ही अप्राप्त है, उस अप्राप्त ठक्प्रत्यय की प्राप्ति हेतु उत्तरपक्षी ने परिभाषा पढी है। ठक् आने के अनन्तर ही तन्निमित्तक पुंवद्भाव होगा।

उत्तरपक्षी तद्धितविधि का दूसरा उदाहरण प्रस्तुत करता है—**इदं तर्हीति**। 'हस्ती प्रमाणमस्य इति हस्तिद्वयसम्, हस्तिमात्रम्' यहाँ 'प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः' ५.२.३७ से 'तदस्य प्रमाणम्' इस अर्थ में हस्तिन् पद से पर में द्वयसच् आदि प्रत्यय हैं। परिभाषा के द्वारा लिङ्गबोधक प्रत्यय ङीब्विशिष्ट हस्तिनीपद से भी द्वयसच् आदि होकर 'हस्तिनीद्वयसम्' आदि रूप हो सके यह परिभाषा का तद्धितविधि में प्रयोजन है। **तद्धितविधि**।

लुक्,-'**नेन्त्सिद्धबध्नातिषु च**'। **इहैव स्यात्-स्थण्डिलशायी। स्थण्डिलशायिनीत्यत्र न स्यात्**। लुक्। अलुक्-'**शयवासवासिष्वकालात्**'। **इहैव स्याद्-ग्रामेवासी। ग्रामेवासिनीत्यत्र न स्यात्**। अलुक् * मानिनि च विधिप्रतिषेधार्थम् * **मानिनि च विधिप्रतिषेधार्थं प्रयोजनम्। विध्यर्थं तावत्,-'क्यङ्मानिनोश्च'। इहैव स्याद्-दर्शनीयमानी। दर्शनीयमानिनीत्यत्र न स्यात्। 'प्रतिषेधार्थमपि'। वक्ष्यति-'स्वाङ्गाच्चेतोऽमानिनि'। तस्मिन् क्रियमाणे इहैव स्याद्-दीर्घमुखमानी। दीर्घमुखनानिनीत्यत्र न स्यात्**।

लुक्—'स्थण्डिले शायी इति स्थण्डिलशायी' यहाँ पर 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' ६.३.१४ से प्राप्त सप्तमी-अलुक् का 'नेन्त्सिद्धबध्नातिषु च' ६.३.१६ से निषेध है, अतः इन्नन्त शायी शब्द पर में रहते सप्तमी का लुक् है। लिङ्गविशिष्ट-परिभाषा के द्वारा नान्तलक्षण ङीब्विशिष्ट शायिनी शब्द परमें रहते स्थण्डिलशायिनी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में भी सप्तमी का लुक् हो, तदर्थ परिभाषा करनी चाहिये। **लुक्**।

अलुक्—'ग्रामे वासी' इस विग्रह में ग्रामेवासी यह समास है, तथा 'शयवास-वासिष्वकालात्' ६.३.१८ से णिनिप्रत्ययान्त वासिन् शब्द पर रहते सप्तमी का अलुक् है। लिङ्गविशिष्ट परिभाषा के द्वारा ङीब्विशिष्ट वासिनीशब्द पर रहते भी 'ग्रामेवासिनी' में सप्तमी का अलुक् हो, इसके लिए परिभाषा करनी चाहिये।

उत्तरपक्षी परिभाषा का अन्य प्रयोजन भी देते हैं—**मानिनि चेति**। मानिन् शब्द पर में रहते विधि और प्रतिषेध के लिए भी लिङ्गविशिष्ट परिभाषा करनी चाहिये। जैसे-विधि के लिए-'दर्शनीयमात्मानं मन्तुं शीलमस्य स दर्शनीयमानी' में 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' 3.2.78 से मनु अवबोधने धा0 पा0 १४७२ धातु से णिनि प्रत्यय होकर दर्शनीयमानी रूप है, यहाँ 'क्यङ्मानिनोश्च' ६.३.३६ सूत्र से पुंवद्भाव होता है, वह दर्शनीयमानिनी मे अप्राप्त रहेगा, अतः यहाँ ङीबन्त-स्थल में पुंवद्भावार्थ परिभाषा करनी चाहिये।

प्रतिषेधार्थ जैसे 'स्वाङ्गाच्चेतः' ६.३.४0 सूत्र से स्वाङ्गवाची ईकारान्त स्त्रीप्रत्यय को पुंवद्भाव का निषेध है, जैसे-'सुकेशी भार्या यस्य स सुकेशीभार्यः'। इस पर 'अमानिनीति वक्तव्यम्' यह भाष्यवार्तिक है। इससे 'दीर्घमुखमानी' यहीं पर पुंवद्भावप्रतिषेध का प्रतिषेध हो सकेगा, 'दीर्घमुखमानिनी' इस ङीबन्तस्थल में नहीं। यहाँ भी पुंवद्भावप्रतिषेध का प्रतिषेध हो, इस के लिए परिभाषा करनी चाहिये।

*** प्रत्ययग्रहणोपचारेषु च * प्रत्ययग्रहणोपचारेषु च प्रयोजनम्। 'तृजकाभ्यां कर्तरि'। इहैव स्याद्-अपां स्रष्टा। अपां स्रष्ट्रीत्यत्र न स्यात्। प्रत्यय। उपचार,-अतः कृकमिकंसकुम्भ'। इहैव स्याद्-अयस्कुम्भः। अयस्कुम्भीत्यत्र न स्यात्। एतान्येतस्याः परिभाषायाः प्रयोजनानि यदर्थमेषा परिभाषा कर्तव्या। एतस्यां च सत्यां नार्थो ङ्याब्ग्रहणेन।**

उत्तरपक्षी परिभाषा का अन्य प्रयोजन देते हैं—**प्रत्ययग्रहणोपचारेष्विति**। प्रत्ययग्रहण और उपचार के विषय में भी इस परिभाषा का प्रयोजन है। जैसे-प्रत्ययग्रहण-'अपां स्रष्टा' यहाँ पर प्राप्त षष्ठीसमास का 'तृजकाभ्यां कर्तरि' २.२.१५ से निषेध है, वह तृजन्त स्रष्टा के साथ ही निषेध करेगा तथा ऋदन्तलक्षण ङीप् होने पर 'अपां स्रष्ट्री में निषेध अप्राप्त रहेगा, यहाँ भी समासनिषेध प्राप्त हो, इसके लिए परिभाषा करनी चाहिये। **प्रत्यय**।

उपचार—अकारादि से पर में विसर्ग को करोत्यादि पर रहते 'अतः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य ८.३.४६ से सत्त्व होकर :अयस्कुम्भः' रूपसिद्धि है। 'अयस्कुम्भी' में कुम्भरूपता नहीं होने से तत्पर रहते सत्त्व प्राप्त नहीं हो रहा है, अतः यहाँ सत्त्वप्राप्ति के लिए यह परिभाषा अवश्य करनी चाहिये। लिङ्गविशिष्ट परिभाषा के इतने प्रयोजन है, इसके लिए 'प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्' यह परिभाषा अवश्य पढनी चाहिये। इस परिभाषा के पढने पर 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ सूत्र में ङ्याब्ग्रहण की आवश्यकता नहीं होगी।

*** अतिप्रसङ्ग उपपदविधौ * उपपदविधावतिप्रसङ्गो भवति। द्विषत्परयोस्तापे। यथेह भवति-द्विषन्तप इति। एवं द्विषतीताप इत्यत्रापि स्यात् * यञिञोः फकि * यञिञोः फकि अतिप्रसङ्गो भवति। यथेह भवति गार्ग्यायणः, दाक्षायणः। एवं गार्गेयो दाक्षेय इत्यत्रापि स्यात्। नैष दोषः। ढगत्र बाधको भविष्यति।**

अन्य आचार्य परिभाषा का अतिप्रसंग दिखाते हैं-**अतिप्रसंग इति**। इस परिभाषा की उपपदविधि में अतिव्याप्ति होगी। जैसे-तप दाहे धा.पा. ९८५, १८१९ से णिच् प्रत्यय होने पर 'द्विषत्परयोस्तापेः' ३.१.३९ से द्विषत् और पर उपपद रहते खच्-प्रत्यय हो कर 'द्विषन्तं परं वा तापयति' इस विग्रह में द्विषन्तपः, परन्तपः रूप होता है। लिङ्गविशिष्टपरिभाषा के द्वारा द्विषद्ग्रहण से लिङ्गबोधकप्रत्ययविशिष्ट द्विषती का ग्रहण होने से द्विषतीतापः में भी खच्-प्रत्यय की अतिव्याप्ति होगी। **यञिञोरिति**। गोत्रार्थक यञ् और अञ्, तदन्त से अपत्य अर्थ में 'यञिञोश्च' ४.१.१०१ से फक् होकर 'गार्ग्यस्यापत्यं गार्ग्यायणः, दाक्षेरपत्यं दाक्षायणः' ऐसा रूपसिद्धि है। लिङ्गविशिष्टपरिभाषा के द्वारा स्त्र्यर्थक ङीप्-विशिष्ट गार्गी, दाक्षी पद से भी यञन्त और अञन्त मान कर गार्गेयः, दाक्षेयः में फक् की अतिव्याप्ति होगी।

इतर आचार्य—**नैष दोष इति**। गार्गेयः, दाक्षेयः में लिङ्गविशिष्टपरिभाषा के द्वारा 'यञिञोश्च' ४.१.१०१ से फक् प्राप्त है तथा 'स्त्रीभ्यो ढक्' ४.१.१२० से ढक् प्राप्त है। गार्ग्यायणः, दाक्षायणः में फक् चरितार्थ है तथा वैनतेयः में ढक् चरितार्थ है। अन्यत्रान्यत्र लब्धावकाश फक् और ढक् का एकत्र गार्गेयः, दाक्षेयः में एककालावच्छेदेन प्रवृत्ति हो रही है, अतः समान बल होने से परत्वात् ढक् के द्वारा फक् का बाध हो जायेगा।

*** समासान्तेषु च * समासान्तेषु चातिप्रसंगो भवति। 'राजाहःसखिभ्यष्टच्'-यथेह भवति-मद्रराजः, कश्मीरराजः, एवं मद्रराज्ञी,**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कश्मीरराज्ञीत्यत्रापि स्यात्। न वा भवति-मद्रराजीति? भवति यदा समासान्तादीकारः। लिङ्गविशिष्टग्रहणे तु ईकारान्तात्समासान्तः प्रसज्येत।

दोषवादी आचार्य—**समासान्तेषु चेति**। लिङ्गविशिष्टपरिभाषा की समासान्तविधि में भी अतिव्याप्ति होगी। जैसे-'**मद्रस्य**=मद्रदेशविशेषस्य राजा मद्रराजः, **कश्मीरस्य**=देशविशेस्य राजा कश्मीरराजः' यहाँ उभयत्र 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' ५.४.९१ से टच् प्रत्यय होता है, लिङ्गविशिष्टपरिभाषा के द्वारा ङीब्विशिष्ट राज्ञी शब्द का भी राजन् शब्द से ग्रहण होगा, अतः 'मद्रस्य राज्ञी मद्रराज्ञी, कश्मीरस्य राज्ञी कश्मीरराज्ञी' में 'पुंयोगादाख्यायाम्' ४.१.४८ से ङीष् होने पर यहाँ भी समासान्त टच्-प्रत्यय की आपत्ति होगी।

इतर आचार्य—**न वा भवतीति**। तो क्या मद्रराजी यह प्रयोग नहीं होता है?

उत्तरपक्षी आचार्य—यदि समासान्त टजन्त से टित् मान कर 'टिड्ढाण–' ४.१.१५ से ङीप् करेंगे तो मद्रराजी प्रयोग होगा। परन्तु लिङ्गविशिष्ट-परिभाषा स्वीकार करने पर ङीष् होने के पश्चात् ईकारान्त से अनिष्ट टच्-प्रत्यय प्राप्त हो रहा है।

तत्र को दोषः? पुंवद्भावष्टिलोपश्च। तत्र मद्रराजीत्येवं रूपं स्यात्। मद्रराज्ञीति चेष्यते * महदात्त्वे प्रियादिषु *** महदात्त्वे प्रियादिषु अतिप्रसङ्गो भवति। 'आन्महतः समानाधिकरणजातीययो'रिति यथेह भवति-महान् प्रियोऽस्य महाप्रियः, एवं-महती प्रियाऽस्य महतीप्रिय इत्यत्रापि स्यात्।**

अन्य आचार्य—**तत्र क इति**। यदि ङीबन्त राज्ञी पद से टच् किया जाये तो क्या दोष होगा? टच् करने पर 'यस्येति च' ६.४.१४८ से ईकारलोप होकर टिलू-लक्षण ङीप् करके पुनः मद्रराज्ञी यही रूप रहेगा, ऐसा मान कर प्रश्न है।

दोषवादी आचार्य—**पुंवद्भाव इति**। ङीबन्त राज्ञीपद से समासान्त टच् करने पर पुंवद्भाव और टिलोप होकर मद्रराजी रूप होने लगेगा, जबकि मद्रराज्ञी रूप इष्ट है।

इस परिभाषा का अन्यत्र भी दोष है—**महदात्त्व इति**। 'महान् प्रियो यस्य स महाप्रियः' यहाँ पर 'आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः' ६.३.४६ से महत् शब्द को आत्त्व है, परिभाषापक्ष में महद्-ग्रहण से महती का ग्रहण होगा, अतः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'महती प्रियाऽस्य स महतीप्रियः' में भी आत्त्व की आपत्ति होगी।

किमुच्यते-प्रियादिष्विति? यत्र पुंवद्भावः प्रतिषिध्यते। यत्र तु न प्रतिषिध्यते-भवितव्यमेव तत्रात्त्वेनेति * ञ्नित्स्वरे * ञ्नित्स्वरेऽतिप्रसंगो भवति। ञ्नित्यादिरुदात्तो भवतीति यथेह भवति-दाक्षिः, अहिचुम्बकायनिः। एवं-दाक्षी, अहिचुम्बकायनीत्यत्रापि स्यात्।

आक्षेपक आचार्य—**किमुच्यत इति**। 'प्रियादिषु महदात्त्वेतिप्रसङ्ग' ऐसा आप ने क्या कह दिया?, 'स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंसकादनूङ्समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु' ६.३.३४ सूत्र में अपूरणीप्रियादि पुंवद्भाव का प्रतिषेध है।

दोषवादी आचार्य—**यत्र तु नेति**। जहाँ पुंवद्भावप्रतिषेध नहीं है वहाँ पर 'महती जङ्घा यस्य स महाजङ्घः' में आत्त्व होगा।

परिभाषा का अन्यत्र भी दोष देते हैं-**ञ्नित्स्वर इति**। 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' ६.१.१९७ सूत्र से ञित्, नित् प्रत्यय का आदि-उदात्त होता है। 'दक्षस्यापत्यं दाक्षिः' में 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ्, 'अहिचुम्बकस्याऽपत्यम् अहिचुम्बकायनिः' में 'प्राचामवृद्धात्फिन्बहुलम्' ४.१.१६० से नित्प्रत्यय फिन् होने पर 'दाक्षिः' और 'अहिचुम्बकायनिः' आद्युदात्त है। लिङ्गविशिष्टपरिभाषा के पक्ष में दाक्षिग्रहण से दाक्षी और अहिचुम्बकायनिग्रहण से अहिचुम्बकायनी का ग्रहण होने लगेगा। दाक्षी इत्यादि में 'इतो मनुष्यजातेः' ४.१.६५ से ङीष् तथा प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्ता इष्ट है।

*** राज्ञः स्वरे ब्राह्मणकुमारयोः * कर्मधारये समासे राज्ञः स्वरेऽतिप्रसंगो भवति। 'राजा च' 'ब्राह्मणकुमारयो'रिति-यथेह भवति-राजब्राह्मणः, राजकुमारः। एवं राजब्राह्मणी, राजकुमारीत्यत्रापि स्यात् * समाससंघातग्रहणेषु च * समाससंघातग्रहणे चाऽतिप्रसंगो भवति। 'बहोर्नञ्वदुत्तरपदभूम्नि' यथेह भवति-बहुगोमान्, बहुयवमान्। एवं बहुगोमती, बहुयवमतीत्यत्रापि स्यात्। किमुच्यते-'समाससंघातग्रहणेष्वि'ति? यदवयवग्रहणं-प्रयोजनमेवैतस्याः परिभायाः- 'कुसूलकूपकुम्भशालं बिले'। कुसूलीबिलमिति यथा * विभक्तौ चोक्तम् * विभक्तौ चोक्तम्। किमुक्तम्? 'न वा विभक्तौ लिङ्गविशिष्टाऽग्रहणादि'ति। एतेऽस्याः परिभाषाया दोषाः। एतानि च प्रयोजनानि स्युः। एते दोषाः समा भूयांसो वा,-तस्मान्नार्थोऽनया परिभाषया।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राज्ञः स्वर इति। कर्मधारय-समास में राजन् शब्द को स्वर करने में भी अतिव्याप्ति होगी। 'आर्यो ब्राह्मणकुमारयोः' ६.२.५८ से 'ब्राह्मणकुमारयोः' इस सप्तम्यन्त पद की अनुवृत्ति उत्तरसूत्र 'राजा च' ६.२.५९ में करके ब्रह्मण और कुमार पद पर में रहते कर्मधारय में राजन् शब्द को प्रकृतिस्वर होता है। जैसे-राजब्राह्मणः, राजकुमारः। लिङ्गविशिष्टपरिभाषा के द्वारा ब्राह्मण-पद से ब्राह्मणी का तथा कुमार-पद से कुमारी का ग्रहण होने से राजब्राह्मणी, राजकुमारी इस कर्मधारयस्थल में पूर्वपदप्रकृतिस्वर की अतिव्याप्ति होगी।

समाससंघातग्रहणेषु चेति। समास और संघातग्रहण में भी इस की अतिव्याप्ति होगी। 'बहोर्नञ्वदत्तरपदभूम्नि' ६.२.१७५ सूत्र 'बहुशब्द से पर में उत्तरपदार्थ बहुत्ववाची तदन्तसमास को नञ् की तरह स्वर हो' यह अतिदेशार्थ है। इससे 'बहवो गोमन्तोऽस्य इति बहुगोमान्, बहवो यवमन्तोऽस्य इति बहुयवमान्' में जैसे बहुशब्द से पर में बहुत्ववाची उत्तरपद गोमान्, यवमान् को नञ्-स्वरातिदेश होता है वैसे परिभाषापक्ष में गोमान् के ग्रहण से गोमती का ग्रहण और यवमान् के ग्रहण से यवमती का ग्रहण होने से बहुगोमती, बहुयवमती में भी नञ्स्वरातिदेश होगा।

आक्षेपक आचार्य—**किमुच्यत इति**। 'समाससंघातग्रहणेषु' ऐसा कह कर परिभाषा की अतिव्याप्ति संघात में कैसे दे दी? जहाँ प्राप्ति होगी वहीं पर अतिव्याप्ति भी होगी। लिङ्गविशिष्टपरिभाषा का प्रयोजन अवयवग्रहण है, अतः अवयव में ही इसकी अतिव्याप्ति देनी चाहिये, संघात में नहीं। जैसे-'कुसूलकूपकुम्भशालं बिले' ६.२.१०२ सूत्र से बिलशब्द पर रहते कुसूलादि को अन्तोदात्त विहित है, जैसे-कुसूलबिलम्। परिभाषा रहने पर कुसूलीबिलम् में भी इसकी अतिव्याप्ति होगी।

उत्तरपक्षी आचार्य बहुगोमती, बहुयवमती में दोष का परिहार करते हैं-**विभक्तौ चोक्तमिति**। 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' ७.१.७० सूत्र पर मैं कहूँगा कि 'न वा विभक्तौ लिङ्गविशिष्टाऽग्रहणाद्', अर्थात् विभक्त्याश्रय कार्य की कर्तव्यता में लिङ्गविशिष्टपरिभाषा इष्ट नहीं है, अतः जैसे गोमान् में नुम् होता है वैसे गोमती में नुम् नहीं हो सकेगा। लिङ्गविशिष्टपरिभाषा के दोष भी गिना दिये गये तथा प्रयोजन भी। इस परिभाषा के जितने प्रयोजन हैं उतने दोष भी हैं, अथ वा प्रयोजन से अधिक दोष हैं, अतः यह परिभाषा नहीं करनी चाहिये।

'नहि दोषाः सन्ती'ति परिभाषा न कर्तव्या, लक्षणं वा न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परिणेयम्। नहि 'भिक्षुकाः सन्ती'ति स्थाल्यो नाधिश्रीयन्ते। न च 'मृगाः सन्ती'ति यवा नोप्यन्ते। दोषाः खल्वपि साकल्येन परिगणिताः, प्रयोजनानामुदाहरणमात्रम्। कुत एतद्?, नहि दोषाणां लक्षणमस्तीति। तस्माद्यान्येतस्याः परिभाषायाः प्रयोजनानि तदर्थमेषा परिभाषा कर्तव्या। प्रतिविधेयं च दोषेषु।

सिद्धान्ती आचार्य—**नहि दोष इति**। दोष हैं इस लिए परिभाषा न की जाये, अथ वा लक्षणों का प्रणयन नहीं किया जाये, ऐसा नहीं है। कुछ दोष होने पर उसके कुछ प्रयोजन भी हैं, अतः प्रयोजनों के लिए परिभाषा करनी ही चाहिये। भिक्षुक आकर भोजन की याच्ञा करेंगे इस लिए कोई चूल्ही पर भोजनपात्र ही नहीं चढावे, ऐसा नहीं है, अपि तु भिक्षुकों के रहने पर भी भोजन बनाया जाता है। भिक्षुकों को देने के बाद कुछ अपने लिए भी बचता है। पशु आकर चर जायेगा इस लिए कृषक यव की खेती नहीं करेगा, ऐसा नहीं है, अपि तु पशु के रहने पर भी यव का वपन किया जाता है। यदि कुछ अंश पशु खा भी लेता है तब भी कुछ अंश अपने लिए भी बचता है। इस परिभाषा का सम्पूर्णदोष गिना दिया गया, परन्तु प्रयोजनों का उदाहरणमात्र है। जो प्रयोजन गिनाये गये हैं उनसे भी अधिक प्रयोजन हैं। प्रयोजनों के लिए परिभाषा पढनी चाहिये परिभाषा के पढने पर जो दोष उपस्थित हो रहे हैं उस का मार्जन के लिए पृथक्पृथक् विधान करना चाहिये।

*** तद्धितविधानार्थन्तु * तद्धितविधानार्थन्तु ङ्याब्ग्रहणं कर्तव्यं-ङ्याबन्तात्तद्धितोत्पत्तिर्यथा स्यात्। कालितरा। हरिणितरा। खट्-वातरा। मालातरा। किम्पुनः कारणं न सिध्यति? * विप्रतिषेधाद्धि तद्धितबलियस्त्वम् * विप्रतिषेधाद्धि तद्धितोत्पत्तिः प्राप्नोति। तत्र को दोषः? * तत्र समासान्तेषु दोषः * तत्र समासान्तेषु दोषो भवति-बहुगोमत्का। बहुयवमत्का। समासान्ता अपि ङ्याबन्तात्स्युः * त्यूङोश्चापि ग्रहणम् * त्यूङोश्चापि ग्रहणं कर्तव्यं भवति। युवतिका। ब्रह्मबन्धुकेति।**

सिद्धान्ती आचार्य—**तद्धितविधानार्थन्त्विति**। तद्धितविधानार्थ ङ्याब्ग्रहण करना चाहिये। 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ सूत्र में ङ्याब्ग्रहण करते हैं तो तद्धितविधि के प्रति ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिक ये तीन अधिकार होते हैं। ङ्याब्ग्रहणसामर्थ्य से तद्धितोत्पत्ति से पूर्व ङी और आप् की उत्पत्ति होगी तथा ङ्यन्त और आबन्त से पर में तद्धितोत्पत्ति होगी। जैसे-'इयमनयोरतिशयेन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

काली इति कालितरा, इयमनयोरतिशयेन हरिणी इति हरिणितरा में 'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ' ५.३.५७ से तरप्रत्यय अतिशय अर्थ में होता है, वह ङ्यन्त से ही पर में होगा, प्रातिपदिक से पर में नहीं। एवम् 'खट्वातरा, मालातरा' में भी आबन्त से तद्धित प्रत्यय तरप् उत्पन्न है।

पूर्वपक्षी आचार्य—**किम्पुनरिति**। क्या कारण है कि ङ्याब्ग्रहण नहीं करने पर प्रातिपदिक से ही तद्धित प्राप्त हो रहा है, ङ्यन्त और आबन्त से नहीं?

उत्तरपक्षी—**विप्रतिषेधादिति**। विप्रतिषेध के द्वारा तद्धितोत्पत्ति प्राप्त है। जहाँ प्रकर्ष अर्थ विवक्षित नहीं है वहाँ काली इस स्थल में स्त्रीप्रत्यय का अवकाश है। जहाँ स्त्रीत्व अर्थ विवक्षित नहीं है वहाँ प्रकर्षार्थक प्रत्यय का अवकाश है। कालितरा में स्त्रीत्वार्थक ङी और प्रकार्षार्थक तद्धितप्रत्यय तरप् इन दोनों की युगपत् प्राप्ति हो रही है। 'अन्यतो ङीष्' ४.१.४० की अपेक्षा 'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ' ५.३.५७ पर है, अतः विप्रतिषेध के द्वारा परत्वात् तद्धित से ङी का बाध प्राप्त होगा। जब ङ्याब्ग्रहण करते हैं तब तत्सामर्थ्यात् पर शास्त्र तद्धित का भी बाध हो जाता है।

प्रश्नभाष्य—**तत्र क इति**। यदि ङ्यन्त, आबन्त से पर में तद्धितोत्पत्ति करेंगे तो उसका क्या दोष होगा?

दोषवादी आचार्य—**तत्र समासान्तेष्विति**। समासान्त में दोष होगा। जैसे 'बहवो गोमन्तो यस्यां नगर्यां सा बहुगोमत्का नगरी, बहवो यवमन्तो यस्यां नगर्यां सा बहुयवमत्का नगरी' यहाँ पर ङीप् होने पर 'शेषाद्विभाषा' ५.४.१५४ से समासान्त कप्-प्रत्यय की आपत्ति होने पर 'बहुगोमतीका, बहुयवमतीका' ऐसा अनिष्ट रूप की आपत्ति होगी।

अन्य आचार्य—**त्यूङोश्चापीति**। 'अनुकम्पिता युवतिरिति युवतिका' में युवन् शब्द से स्त्रित्वविवक्षा में 'यूनस्तिः' ४.१.७७ से 'ति' प्रत्यय हो कर 'अनुकम्पायाम्' ५.३.७६ से अनुकम्पार्थक कन्-प्रत्यय है, एवम् 'अज्ञाता ब्रह्मबन्धूरिति ब्रह्मबन्धुका' में कप्-प्रत्यय और 'केऽणः' ७.४.१३ से ह्रस्व है। यहाँ 'ऊङुतः' ४.१.६६ से स्त्रीत्व द्योत्य होने पर ऊङ् प्रत्यय होकर ऊङन्त से अज्ञातादि अर्थों में तद्धित कप् आदि प्रत्यय 'अज्ञाते' से हों, इसके लिए 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ सूत्र में 'ति' और ऊङ् का भी ग्रहण करना चाहिये। इससे त्यन्त और ऊङन्त से ही तद्धितप्रत्यय होंगे जो इष्ट हैं।

ऊग्रहणेन तावन्नार्थः। नास्त्यत्र विशेषः-उकारान्ताद् उत्पत्तौ सत्यामूङन्ताद्वा। इदं तर्हि-युवतितरा। ब्रह्मबन्धुतरा। ब्रह्मबन्धूतरेति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

*** तदन्तस्य च प्रत्ययार्थेनाऽयोगात् तद्धिताऽनुत्पत्तिः * तदन्तस्य च ङ्याबन्तस्य प्रत्ययार्थेनाऽयोगात् तद्धितोत्पत्तिर्न प्राप्नोति-कालितरा। खट्वातरा। मालातरेति।। किं कारणम्? ङ्याबन्तमेतत्स्त्रीप्रधानं, न च स्त्रीप्रत्ययस्य प्रकर्षाऽप्रकर्षौ स्तः। नैष दोषः-न हि किञ्चिदुच्यते एवञ्जातीयकाद् उत्पत्तव्यमेवञ्जातीयकान्नेति। एतावदुच्यते-ऽतिशायने तमबिष्ठनौ, तिङश्चेति। यस्य च प्रकर्षोऽस्ति तस्य प्रकर्षे प्रत्ययो भविष्यति। अस्ति चाऽप्रधानस्य गुणस्य प्रकर्षः।**

उत्तरपक्षी—**ऊग्रहणेनेति**। यदि ह्रस्व-उकारान्त ब्रह्मबन्धु शब्द से कप् की उत्पत्ति करेंगे तब भी 'ब्रह्मबन्धुका' रूप होगा। यदि दीर्घ ऊकारान्त ब्रह्मबन्धू शब्द से कप् करेंगे तब भी 'केऽणः' ७.४.१३ से ह्रस्व होकर 'ब्रह्मबन्धुका' यही रूप होगा, अतः रूपभेद नहीं होने से ऊङ्ग्रहण का कोई प्रयोजन नहीं है।

इदं तर्हीति। तिग्रहण का प्रयोजन युवतितरा है, यहाँ यौवन के जातिरूप होने से 'जातेश्च' ६.३.४१ से पुंवद्भाव का प्रतिषेध है, एवम् ऊग्रहण का प्रयोजन ब्रह्मबन्धुतरा, ब्रह्मबन्धूतरा में तरप्-प्रत्यय पर रहते 'नद्याः शेषस्याऽन्यतरस्याम् ६.३.४४ से ह्रस्वनिषेध है।

तदन्तस्य चेति। कालितरा में ङ्यन्त से तद्धित प्रत्यय अतिशय अर्थ में है, खट्वातरा, मालातरा में आबन्त से तरप् प्रत्यय अतिशय अर्थ में है। यहाँ 'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ' ५.३.५७ सूत्र से विहित तरप्प्रत्यय अतिशय अर्थ को कहता है, वह अतिशयरूप अर्थ प्रत्ययार्थ ङ्यर्थ अथ वा आबर्थ सम्भव नहीं है। काली, खट्वा, माला इत्यादि में प्रत्ययार्थ प्रधान है तथा प्रकृत्यर्थ गौण है। प्रधान और अप्रधान के उपस्थित होने पर प्रधान में ही अन्वय होना चाहिये, इस नियम से तरप्प्रत्यय के द्वारा प्रत्ययार्थ स्त्रीत्व का अतिशयबोध होना चाहिये था, परन्तु कालितरा इत्यादि स्थलों में तरबर्थ अतिशय का प्रधान प्रत्ययार्थ स्त्रीत्व में अन्वय न होकर अप्रधान प्रकृत्यर्थ में ही अन्वय होता है। इस तरह प्रधान प्रत्ययार्थ में अन्वय नहीं होने से कालितरा, खट्वातरा इत्यादि में तद्धितप्रत्यय तरप् की उत्पत्ति नहीं हानी चाहिये।

उत्तरपक्षी—**नैष दोष इति**। काली इत्यादि में ङ्यर्थ स्त्रीत्व प्रकर्षबोध न होना कोई दोष नहीं है। 'अतिशायने तमबिठनौ' ५.३.५५ और 'तिङश्च' ५.३.५६ सूत्र से अतिशय अर्थ में तिङन्त आदि से पर में तमप् और इष्ठन् तद्धितप्रत्यय विहित हैं, जिसका प्रकर्ष सम्भव है उसका प्रकर्ष द्योत्य होने पर प्रत्यय होंगे। यहाँ पर भी जैसे प्रधान का प्रकर्ष सम्भव नहीं है, अतः अप्रधान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का प्रकर्ष वाच्य होने पर ही तमबादि प्रत्यय होते हैं, वैसे कालितरा आदि में भी अप्रधान का प्रकर्ष वाच्य होने पर भी तरप् आदि प्रत्यय हो जायेंगे।

उत्तरपक्षी—**नैष दोष इति**। काली इत्यादि में ङ्यर्थ स्त्रीत्व का प्रकर्षबोध न होना कोई दोष नहीं है। 'अतिशायने तमबिष्ठनौ' ५.३.५५ और 'तिङश्च' ५.३.५६ सूत्र से अतिशय अर्थ में तिङन्त आदि से पर में तमप् और इष्ठन् तद्धितप्रत्यय विहित हैं, जिसका प्रकर्ष सम्भव है, उसका प्रकर्ष द्योत्य होने पर प्रत्यय होंगे। यहाँ पर भी जैसे प्रधान का प्रकर्ष सम्भव नहीं है, अतः अप्रधान का प्रकर्ष वाच्य होने पर ही तमबादि प्रत्यय होते हैं वैसे कालितरा आदि में भी अप्रधान का प्रकर्ष वाच्य होने पर भी तरप् आदि प्रत्यय हो जायेंगे।

अन्य आचार्य—**किं कारणमिति**। कालितरा, खट्वातरा में तद्धित के अप्राप्त होने का क्या कारण है?

पूर्वपक्षी—**ङ्याबन्तमिति**। काली, खट्वा आदि में ङ्यन्त, आबन्त स्त्री-प्रधान है। उससे अतिशय अर्थ में प्रकर्ष अथवा अप्रकर्षबोध नहीं हो रहा है।

खण्डनभाष्य—**नैष दोष इति**। 'कालितरा' में ङ्यर्थ स्त्रीत्व का प्रकर्षबोध न होना कोई दोष नहीं है। 'अतिशायने तमबिष्ठनौ' ५.३.५५ और 'तिङश्च' ५.३.५६ सूत्र से अतिशय अर्थ में तिङन्त आदि से पर में तद्धित प्रत्यय तमप् और इष्ठन् विहित हैं। जिसका प्रकर्ष सम्भव है उसका प्रकर्ष द्योत्य होने पर प्रत्यय होंगे। यहाँ पर भी प्रधान का प्रकर्ष सम्भव नहीं है; अतः अप्रधान के ही प्रकर्ष वाच्य होने पर ही तमप् आदि प्रत्यय होते हैं। वैसे 'कालितरा' आदि में भी अप्रधान का प्रकर्ष वाच्य होने पर भी तरप् आदि प्रत्यय हो जायेंगे।

इह खल्वपि शुक्लतरः, कृष्णतर इति, द्रव्यं प्रधानम्। गुणस्य च प्रकर्षे प्रत्यय उत्पद्यते *उक्तं वा* उक्तं वा। किमुक्तम्? *सिद्धं तु स्त्रियाः प्रातिपदिकविशेषणत्वात्स्वार्थे टाबादय इति* प्रातिपदिकविशेषणं स्त्रीग्रहणं स्वार्थिकाष्टाबादयः। नैवं विज्ञायते 'स्त्रियाम् अभिधेयायामि'ति, नापि 'स्त्रीसमानाधिकरणात् प्रातिपदिकादि'ति। कथं तर्हि? यत्प्रातिपदिकं स्त्रियां वर्तते तस्माट्टाबादयो भवन्ति। कस्मिन्नर्थे? स्वार्थे इति।

एवं शुक्लतर, कृष्णतर में द्रव्यप्रधान है, जबकि गुण के प्रकर्ष में प्रत्यय उत्पन्न होते है, अत कहीं पर भी प्रत्यय से प्रधान का प्रकर्ष वाच्य नहीं है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस दोष का उत्तरपक्षी उद्धार करता है-**उक्तं वेति**। इसके विषय में बताया जा चुका है-'लिङ्ग भी प्रातिपदिक के ही अर्थ होते हैं'। इसमें आचार्य का 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' १.२.४७ यह सूत्र ही प्रमाण है। यहाँ नपुंसक में विद्यमान प्रातिपदिक को ह्रस्व का विधान है, अतः स्त्रीत्व भी प्रातिपदिक का ही अर्थ होता है, इस लिए स्त्रीत्व में विद्यमान प्रातिपदिक से पर में टाबादि होते हैं, यही शास्त्रसम्मत अर्थ किया गया है, इससे स्त्रीग्रहण प्रातिपदिक में विशेषण है, टाबादि में नहीं। स्त्रीत्व द्योत्य होने पर स्त्रीत्व का वाचक प्रातिपदिक से टाबादि अर्थ स्वार्थ में होते हैं यही सिद्धान्त है। सूत्रों का अर्थ यह नहीं किया गया है कि स्त्रीत्व वाच्य होने पर स्त्रीप्रत्यय हो, अथ वा स्त्रीत्वसमानाधिकरणप्रातिपदिक से पर में टाबादि हों, अपि तु जो प्रातिपदिक स्त्रीलिङ्ग में हैं, उससे पर में टाबादि प्रत्यय हो, यही अर्थ किया जाता है।

पूर्वपक्षी—**कस्मिन्नर्थे इति**। वे टाबादि किस अर्थ में होते हैं?

उत्तरपक्षी—**स्वार्थे**। अनिर्दिष्ट अर्थ वाले प्रत्यय स्वार्थ में **स्व**=प्रकृति के अर्थ में होते हैं।

ननु चोक्तम्-'तत्र समासान्ते दोष' इति। समासान्ता अपि स्वार्थिकाः। उभयोः स्वार्थिकयोः परत्वात्समासान्ता भविष्यन्ति। कथं कालिकेति? 'प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्ये'- तीत्त्वम्भविष्यति।

ननु चोक्तमिति—समासान्त में लिङ्गविशिष्टपरिभाषा की अतिव्याप्ति दी थी। 'राजाहस्सखिभ्यष्टच्' ५.४.९१ से जैसे-'मद्रराजः, कश्मीरराजः' में समासान्त टच् प्राप्त है वैसेः लिङ्गविशिष्टपरिभाषा के द्वारा 'मद्रराज्ञी, कश्मीरराज्ञी' में समासान्त टच् प्राप्त होगा यह दोषवादी आचार्य ने दोष दिया था।

अन्य आचार्य इस दोष का निवारण करते है-**समासान्ता इति**। स्त्रीत्व, पुंस्त्व आदि प्रातिपदिकार्थ हैं, यह पूर्व में बताया जा चुका है, अतः उससे पर में विहित ङीप्, टाप् आदि भी स्वार्थ में होते हैं तथा समासान्त प्रत्यय भी स्वार्थ में ही होते हैं। गोमती में स्त्रीप्रत्यय चरितार्थ हैं तथा 'बहवो गोमन्तो यस्मिन् ग्रामे स बहुगोमत्को ग्रामः' समासान्त कप्प्रत्यय चरितार्थ है। 'बहवो गोमन्तो यस्यां नगर्यां सा बहुगोमत्का नगरी' यहाँ पर अन्यपदार्थ स्त्र्यर्थ में बहुव्रीहि का विधान है, अतः स्त्रीप्रत्यय और समासान्त इन दोनों का विप्रतिषेध होगा। 'उगितश्च' ४.१.६ की अपेक्षा 'शेषाद्विभाषा' पर है, अतः परत्वात् समासान्त प्रत्यय से स्त्रीप्रत्यय का बाध हो जायेगा, अतः स्त्र्यर्थ बहुव्रीहि होने पर भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समासान्त से स्त्रीप्रत्यय का बाध होने से बहुगोमत्का, बहुयवमत्का यही रूप होगा।

पूर्वपक्षी—**कथं कालिकेतीति**। 'कालाच्च' ५.४.३३ सूत्र से पूर्वसूत्र 'वर्णे चाऽनित्ये' ५.४.३१ और 'रक्ते' ५.४.३२ की अनुवृत्ति होकर अनित्य वर्ण और रक्त अर्थ में शक्त काल शब्द से पर में 'कालाच्च' से स्वार्थ में कन् प्रत्यय विहित है। यहाँ स्वार्थ कन् प्रत्यय की अपेक्षा स्त्रीप्रत्यय का अन्तरङ्गत्व नहीं है, अतः परत्वात् कन् ही हो सकेगा, फिर कन्नन्त से टाप् होने पर 'कालका' ऐसा रूप होगा, 'कालिका' नहीं, अतः कालिका की सिद्धि कैसे होगी?

उत्तरपक्षी—**प्रत्ययस्थात्कादिति**। कालशब्द से टाप्, सवर्णदीर्घ-एकादेश करके पुनः अन्तवद्भाव के द्वारा काल शब्द से पर में स्वार्थिक कन् करेंगे। 'केऽणः' ७.४.१३ से ह्रस्व होकर पुनः कालकशब्द से अदन्तलक्षण स्त्र्यर्थ-द्योतक टाप्-प्रत्यय होगा तथा 'प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः' ७.३.४४ से इत्त्व होकर कालिका की सिद्धि है।

कथं हरिणिकेति? हरिणशब्दः प्रकृत्यन्तरमस्ति। कथं लोहिनिकेति? वक्ष्यत्येतत्-'लोहिताल्लिङ्गबाधनं वे'ति। {ङ्याप्प्रा}।

प्रश्नभाष्य—**कथं हरिणिकेति**। 'हरितवर्णविशिष्टा स्त्री हरिणी' में 'वर्णादनुदात्तात्तोपधातो नः' ४.१.३९ से 'त' को 'न' और ङीप् प्रत्यय है। अब यहाँ सन्देह होता है कि हरिणिका में स्त्रीप्रत्यय भी प्राप्त है तथा स्वार्थिक कन् प्रत्यय भी प्राप्त है। विप्रतिषेध के द्वारा पर होने से कन् प्रत्यय होगा, इससे तोपध नहीं होने से नत्व और ङीप् नहीं हो सकेगा, फिर हरिणिका शब्द कैसे निष्पन्न होगा? यहाँ अज्ञात अर्थ में कन् की आशङ्का नहीं करनी चाहिये, अन्यथा अज्ञातार्थक कन् के बहिरङ्ग होने से अन्तरङ्गत्वात् पहले स्त्रीप्रत्यय ही होगा, अतः स्वार्थ कन् प्रत्ययान्त में ही आशङ्का करनी चाहिये।

उत्तरपक्षी—**हरिणशब्देति**। यहाँ हरितशब्द से हरिणिका नहीं है, अपि तु हरितशब्द का समानार्थक हरिणशब्द है। हरितशब्द से स्वार्थ में कन्-प्रत्यय करने पर हरितिका रूप होता है, हरिणिका के लिए हरित शब्द से स्वार्थ में कन् प्रत्यय है।

पूर्वपक्षी—**कथं लोहिनिकेति**। लोहिन प्रातिपदिक नहीं है, अतः लोहितशब्द से ही स्वार्थिक कन्-प्रत्यय है। यहाँ पर होने से कन् प्रत्यय हो जाने से तोपध

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं रहेगा, अतः नत्व और ङीप् नहीं हो सकेंगे, फिर लोहिनिका की सिद्धि कैसे होगी?

उत्तरपक्षी—**वक्ष्यत्येतदिति**। 'वर्णे चाऽनित्ये' ५.४.३१ सूत्र पर वार्तिककार 'लोहिताल्लिङ्गबाधनं वा' ऐसा वार्तिक पढेंगे। 'लोहितशब्द से पर स्त्रीलिङ्ग-बोधक प्रत्यय का कन् से बाध विकल्प से हो' यह वातिकार्थ है। जब कन् से ङीप् का बाध नहीं होगा तब नत्व और ङीप् होकर लोहिनीशब्द से पर में स्वार्थ में कन् प्रत्यय होकर 'केऽणः' ७.४.१३ से ह्रस्व होकर लोहिनिका रूप होगा। परन्तु जब कन् से ङीप् का बाध होगा तब लोहितशब्द से टाप् होकर लोहिता-शब्द से स्वार्थ में कन्-प्रत्यय, 'केऽणः' ७.4.१३ से ह्रस्व, टाप् और 'प्रत्यय-स्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः' ७.३.४४ से इत्त्व होकर लोहितिका रूप रहेगा।। **ङ्या-**।

स्त्रियाम् ४.१.३

स्त्रियामित्युच्यते, का स्त्री नाम? * लोकतः * लोकत एते शब्दाः प्रसिद्धाः-'स्त्री पुमान्नपुंसकमि'ति। यल्लोके दृष्ट्वा एतदवसीयते-'इयं स्त्री' 'अयं पुमान्' 'इदं नपुंसकमि'ति-सा स्त्री, स पुमान्, तन्न-पुंसकमिति।

यह अधिकार सूत्र है। 'समर्थानां प्रथमाद्वा' ४.१.८२ सूत्र से पूर्व तक इसका अधिकार चलेगा। 'स्त्रियाम्' यह पञ्चम्यर्थ में सप्तमी है। लिङ्ग भी प्रातिपदिक का अर्थ है, जैसा कि आचार्य ने 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' १. २.४७ सूत्र पढ कर स्पष्ट किया है, अतः 'स्त्र्यर्थ-बोधक प्रातिपदिक से पर में टाप्-आदि प्रत्यय स्वार्थ में हों' यह आगे के सूत्रों में अर्थ किया जायेगा।

प्रश्नभाष्य—**स्त्रियामित्युच्यत इति**। अब तक इस शास्त्र में स्त्री परिभाषित नहीं है, शास्त्र में जो खट्वा आदि शब्द स्त्रीलिङ्ग में देखे जाते हैं, उनका लोक में स्त्रीशब्द से व्यवहार सम्भव नहीं है।

यदि लौकिक स्त्रीरूप अर्थ लेंगे तो खट्वादि में अव्याप्ति तथा तथा **भ्रूकुंस**=स्त्रीवेशधारी पुरुष नर्तक में अतिव्याप्ति होगी, अतः अनिश्चय की स्थिति में वस्तुस्वरूप की जिज्ञासा से प्रश्न करते हैं-**का स्त्री नामेति**।

उत्तरपक्षी—**लोकत इति**। प्राश्निक ने 'का स्त्री नाम' इस प्रश्न से अर्थ की जिज्ञासा की थी, परन्तु उत्तरपक्षी अर्थ न बता कर स्त्रीशब्द इस लिए बता रहा है कि व्याकरणशास्त्र में शब्दों का ही निर्वचन है, अर्थों का नहीं, अतः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरपक्षी कहता है-लोक में स्त्री, पुमान् और नपुंसक शब्द प्रसिद्ध हैं। शब्द देख कर लोक में निर्णायक निर्णय कर नेता है कि 'इयं स्त्री, अयं पुमान्, इदं नपुंसकम्'। अर्थात् जिस निमित्त को मान कर निमित्तवान् अर्थ में प्रत्यय होता है, वह स्त्री आदि वाच्य होते हैं; उसके योग से निमित्तवान् अर्थ भी स्त्री आदि शब्दों के वाच्य होते हैं; अतः स्त्री अर्थ वाच्य होने पर तद् प्रातिपदिक से टाप् लाकर 'सा स्त्री', पुलिङ्ग में 'स पुमीन्' और नपुंसकलिङ्ग में 'तन्नपुंसकम्' ऐसा व्यवहार करते हैं।

पूर्वपक्षी ने 'का स्त्री नाम' यही प्रश्न किया था, परन्तु उत्तरपक्षी ने अज्ञान-निराकरणार्थ पुमान् और नपुंसक को भी परिभाषित कर दिया। 'लोकतः' यहाँ पर पञ्चम्यन्त अथ वा सप्तम्यन्त से तसिः प्रत्यय है। **प्रवृत्तिः**=आविर्भावः।

किम्पुनर्लोके दृष्ट्वैतदवसीयते-'इयं स्त्री, अयं पुमान्, इदं नपुंसकमि'ति? * लिङ्गम् * किम्पुनस्तद्?

स्तनकेशवती स्त्री स्याल्लोमशः पुरुषः स्मृतः।
उभयोरन्तरं यच्च तदभावे नपुंसकम्।।

पूर्वपक्षी—**किम्पुनर्लोक इति**। लोक में क्या देख कर 'इयं स्त्री, अयं पुमान्, इदं नपुंसकम्' ऐसा निश्चय किया जाता है? पूर्वपक्ष में सत्ता, संख्या, कर्मत्व आदि अनेक अर्थ देखे जाते हैं। उनमें क्या देख कर 'इयं स्त्री' आदि निर्णय किया जायेगा?

उत्तरपक्षी—**लिङ्गमिति**। 'लीनमर्थं गमयतीति लिङ्गम्'। चिन्ह देख कर स्त्रीत्व आदि का निर्णय किया जायेगा।

प्रश्नभाष्य—**किम्पुनरिति**। वह लिङ्ग क्या है?

उत्तरपक्षी—**स्तनकेशवतीति**। लोक में स्तन और केश वाली स्त्री होती है, **लोमशः**=शरीर पर बाल वाला पुरुष होता है तथा जिनको स्तन और केश भी न हो तथा शरीर पर बाल भी न हो उसे लोक में नपुंसक समझा जाता है। यहाँ स्तनकेशवती इत्यादि लक्षणों में 'स्वबोधकत्वे सति स्वेतरबोधकत्वम् उपलक्षणत्वम्' ऐसा उपलक्षण समझना चाहिये। जन्मकाल में प्राणी को स्तन, केश और शरीर का बाल यह तीनों नहीं होता है। यह तीनों युवावस्था में ही प्रकट होते हैं, अतः जन्मकाल में 'इयं स्त्री' यह निर्णय असम्भव होगा, इस लिए 'स्तनकेशवती'पद योनि में तथा 'लोम'पद लिङ्ग अर्थ में शक्त है। जिनको योनि होती है वह स्त्री, लिङ्ग होता है वह पुमान् तथा योनि और लिङ्ग दोनों का अभाव होने पर नपुंसक अर्थ लोक में समझा जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

*** लिङ्गात्स्त्रीपुंसयोर्ज्ञाने भ्रूकुंसे टाप्प्रसज्यते * लिङ्गात्स्त्रीपुंसयोर्ज्ञाने सति भ्रूकुंसे टाप्प्राप्नोति। यद्धि लोके दृष्ट्वैतदवसीयते-'इयं स्त्री'ति, अस्ति तद् भ्रूकुंसके * नत्वं खरकुटीः पश्य * इह-'चञ्चाः पश्य'। 'वद्धिकाः पश्य'। 'खरकुटीः पश्ये'ति। 'तस्माच्छसो नः पुंसी'ति नत्वं प्राप्नोति। यद्धि लोके दृष्ट्वैतदवसीयते-अयं पुमानिति, अस्ति तद् वद्धिकादि।**

आक्षेपक आचार्य—**लिङ्गादिति**। यदि लिङ्ग से स्त्री, पुमान् और नपुंसक का ज्ञान करेंगे तो **भ्रूकुंस**=स्त्रीवेशधारी पुरुष-नर्तक को स्तन और केश दोनों देखा जाता है, अतः स्तनकेशवती होने से भ्रूकुंसपद से पर में टाप्प्रत्यय की आपत्ति होगी।

नत्वं खरकुटीरिति। 'खरकुट्यामिव' इस विग्रह में 'संज्ञायां च' ५.३.९७ से इवार्थ में कन् प्रत्यय, कन् प्रत्यय का 'लुम्मनुष्ये' ५.३.९८ से लुक् है। यहाँ इवार्थ मनुष्य वाच्य है। मनुष्य लोम वाला होता है, अतः पुंस्त्व होने से 'खरकुटीः पश्य' में 'तस्माच्छसो नः पुंसि' ६.१.१०३ से नत्व की अतिव्याप्ति होगी। **खरकुटी**=नापितगृह। इसी तरह 'चञ्चाः पश्य' 'वद्धिकाः पश्य' में भी नत्व की आपत्ति होगी। **चञ्चा**=तृणनिर्मित पुरुष। **वद्धिका**=तृणनिर्मित रज्जू=बरही। यहाँ भी उभयत्र इवार्थ में कन् तथा 'लुम्मनुष्ये' ५.३.९८ से कन् का लुक् होकर चञ्चा, वद्धिका शब्द है। लोक में पुमान् का जो चिन्ह लोम है वह चञ्चा, वद्धिका में है, अतः यहाँ नत्व प्राप्त होगा।

*** खट्वावृक्षौ न सिध्यतः * खट्वावृक्षयोश्च लिङ्गं न सिध्यति। यद्धि लोके दृष्ट्वैतदवसीये-'इयं स्त्री' 'अयं पुमानि'ति, न तत्खट्वा-वृक्षयोरस्ति। किं तर्हि तयोर्लिङ्गं न्याय्यम्? * नापुंसकं भवेत्तस्मिन् * नापुंसकं खट्वावृक्षयोर्लिङ्गं न्याय्यम्। किमिदं नापुंसकमिति? नपुंसके भवं नापुंसकम् * तदभावे नपुंसकम् * तदभावे-स्त्रीपुंसलिङ्गाभावे-नपुंसकं लिङ्गं न्याय्यम्।**

आक्षेपक आचार्य 'स्तनकेशवती स्त्री' इत्यादि लक्षण की अतिव्याप्ति दे रहे हैं-**खट्वावृक्षौ नेति**। स्त्री और पुरुष का जो लिङ्ग बताया है वह खट्वा और वृक्ष में सिद्ध नहीं हो पा रहा है, अर्थात् खट्वा स्तनकेशवती नहीं है तथा वृक्ष लोमवान् नहीं है, अतः खट्वा को स्त्री और वृक्ष को पुमान् नहीं कहा जा सकेगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्य आचार्य—**किं तर्हीति**। यदि खट्वा और वृक्ष में स्त्री और पुमान् का चिन्ह नहीं है तब ये दोनों किस लिङ्ग में प्रयुक्त होंगे?

उत्तरपक्षी—**नापुंसकमिति**। 'नपुंसके वस्तुनि भवं लिङ्गं नापुंसकम्'। 'एतयोरन्तरं यच्च तदभावे नपुंसकम्' इस हेतु से खट्वा और वृक्षशब्द नपुंसक होगा। जो शब्द स्त्री और पुमान् नहीं है वह नपुंसक होता है।

*** असत्तु मृगतृष्णावत् * असत्तु-खट्वावृक्षयोर्लिङ्गं द्रष्टव्यम्। कथं पुनरसन्नाम लिङ्गं शक्यं द्रष्टुम्? मृगतृष्णावत्। तद्यथा मृगास्तृषिता अपां धाराः पश्यन्ति, न च ताः सन्ति * गन्धर्वनगरं यथा * तद्यथा गन्धर्वनगराणि दूरतो दृश्यन्ते, उपसृत्य च नोपलभ्यन्ते, तद्वत्खट्वावृक्षयोरसल्लिङ्गं द्रष्टव्यम् * आदित्यगतिवत्सन्न * अथ वा यथा आदित्यस्य गतिः सती नोपलभ्यते, तद्वत्खट्वावृक्षयोः सल्लिङ्गं नोपलभ्यते * वस्त्रान्तर्हितवच्च तद् * यथा वस्त्रान्तर्हितानि द्रव्याणि नोपलभ्यन्ते तद्वत्खट्वावृक्षयोः सल्लिङ्गं नोपलभ्यते।**

एकदेशी आचार्य—**असत्तु मृगतृष्णावदिति**। मृगतृष्णा का विषय मरुमरीचिका जैसे असत्य जलरूप से भासता है वैसे खट्वा और वृक्ष भी असत्य स्त्रीत्व और पुंस्त्वरूप से भासित होता है। अब यहाँ विचार करना चाहिये-मरुस्थल में मरीचिदर्शन से तत्सादृश्यपूर्वानुभूत जल का स्मरण होता है, वस्तुतः वहाँ पर जल प्रकाशित नहीं होता है।

खट्वा और वृक्ष में अविद्यमान लिङ्ग स्त्रीत्व, पुंस्त्व की प्रतीति तब होती जब स्त्रीत्व, पुंस्त्व आदि कहीं पूर्वानुभूत होते, जबकि अब तक स्त्रीत्व आदि अनुभूत नहीं हैं अतः उसका खट्वा आदि में स्मरण सम्भव नहीं हो सकेगा, अतः इस पक्ष से असन्तुष्ट होकर उत्तरपक्षी अन्य पक्ष प्रस्तुत करता है-**गन्धर्वनगरं यथेति**। जैसे दूर से देखने पर कभी-कभी अन्तरिक्ष में गन्धर्वनगर देखा जाता है, परन्तु समीप जाने पर उसकी उपलब्धि नहीं होती है। गन्धर्वनगर पूर्वानुभूत नहीं है, अतः तत्सदृश की कल्पना नहीं की जा सकती है। फिर भी दूर से दृष्ट वस्तु गन्धर्वनगर जैसा प्रतीत होता है, अतः जैसे अचिन्त्य कारणवशाद् असत्पदार्थ गन्धर्वनगर आदि का भान होता है, वैसे खट्वा आदि में स्त्रीत्व आदि असत्पदार्थों का भान होता है।

उत्तरभाष्य—**आदित्यगतिवदिति**। जैसे आकाश में सूर्य की गति है, फि भी उसका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं किया जा सकता है, वैसे खट्वा और वृक्ष पद को सल्लिङ्ग होने पर भी उसमें लिङ्ग की प्रतीति अशक्य है। अब यहाँ भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विचार करना चाहिये-आकाश में नक्षत्रमण्डल उदीयमान है, सूर्य जिस राशि पर रहेगा उसी पर उसका दर्शन होगा, जब एक राशि को छोड कर दूसरी राशि पर जाता है; राशि का ग्रहण और परित्याग से सूर्य की गति का अनुमान किया जाता है। प्रत्यक्ष इस लिए नहीं कर सकते हैं कि हमारी आँखें सूर्य के प्रबलप्रकाश को देखने में समर्थ नहीं हैं। जबकि खट्वा और वृक्ष शब्द में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे इन्द्रिय का विषय बनने में कष्ट हो, अतः दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिक में साम्य नहीं है।

इससे असन्तुष्ट होकर आचार्य अन्य हेतु देते हैं-**वस्त्रान्तर्हितवदिति**। जैसे वस्त्र से ढका हुआ वस्तु उपलब्ध नहीं होता है, इस लिए वस्तु नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सकता है; अपि तु वस्तु है, परन्तु वस्त्र आदि से आच्छन्न होने के कारण अनुपलब्ध है। वैसे खट्वा और वृक्ष शब्द में भी लिङ्ग है, परन्तु आच्छन्न होने के कारण अनुपलब्ध है।

विषम उपन्यासः-वस्त्रान्तर्हितानि द्रव्याणि वस्त्रापाये उपलभ्यन्ते। खट्वावृक्षयोः पुनर्येऽप्येते रथकारा वाशीवृक्षादनहस्ता मूलात्प्रभृति आ अग्राद् वृक्षाँस्तक्ष्णुवन्ति तेऽपि तयोर्लिङ्गं नोपलभन्ते?, केनैतदवसीयतेखट्वावृक्षयोः सल्लिङ्गं-नोपलभ्यन्ते' इति?

खण्डनभाष्य—**विषम उपन्यास इति**। आप ने जो 'वस्त्रान्तरहितवच्च तद्' कहा, वह बिलकुल उल्टा कथन है। जो वस्तु वस्त्र से ढका हुआ होता है वस्त्र के हटाने पर उसका दर्शन होता है, परन्तु खट्वा और वृक्ष में ऐसा कुछ भी उपलब्ध नहीं होता है। रथ बनाने वाले बढई लौहकार आदि अपने हाथ में **वाशी**=बसुली और **वृक्षादन**=आरी लेकर वृक्ष के जड से आरम्भ कर अग्र भाग पर्यन्त काटते और छिलते हैं, परन्तु सम्पूर्ण वृक्ष और खट्वा का छेदन आदि करने पर कहीं भी लिङ्ग का दर्शन नहीं होता है, तब **'केन एतदवसीयते'**=किस प्रमाण से निश्चय किया जाये कि लिङ्ग सत् होता है? अर्थात् लिङ्ग की सत्ता में काई भी प्रमाण नहीं हैं; फिर भी लिङ्ग की सत्ता है तथा प्रमाण का अभाव में भी उसकी उपलब्धि हाती है। अथवा यदि असत् है तो उपलब्धि क्यों होगी? यदि उपलब्धि है तो उसे असत् कैसे मानेंगे?

षड्भिः प्रकारैः सतां भावानामनुपलब्धिर्भवति,-अतिसन्निकर्षाद् अतिविप्रकर्षान्मूर्त्यन्तरव्यवधानात् तमसाऽऽवृतत्वादिन्द्रियदौर्बल्याद् अतिप्रमादादिति, अतोऽत्र कश्चिच्छेतुर्द्रष्टव्यो येन खट्वावृक्षयोः सल्लिङ्गं नोपलभ्यते। केनैतदवसीयते-'खट्वावृक्षयोः सल्लिङ्गं नोप-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लभ्यते' इति?

इतर आचार्य सत् लिङ्ग की अनुपलब्धि में अत्यन्त सूक्ष्म होना कारण देते हैं-**षड्भिः प्रकारैरिति। सतां भावानाम्**=विद्यमान पदार्थों की अनुपलब्धि छह प्रकार से होती है-

१-**अतिसन्निकर्षात्**=आँखों के अत्यन्त समीप होने से, जैसे आँखों में अजन।

२-**अतिविप्रकर्षात्**=आँखों के अत्यन्त दूर स्थित कोई छाटी वस्तु, जैसे-सुदूर आकाश में उड रहे छोटी पक्षी आदि।

३-**मूर्त्यन्तरव्यधानात्**=काष्ठ, कुड्य आदि अन्य द्रव्य के व्यवधान होने से, अथ वा मृत्तिका आदि से आच्छन्न होने से, जैसे-सुवर्ण आदि।

४-**तमसावृतत्वात्**=अन्धकार से ढके हाने से।

५-**इन्द्रियदौर्बल्यात्**=इन्द्रियों के दुर्बल होने से।

६-**अतिप्रमादात्**=विषयान्तर में चित्त के आसक्त होने से।

इस तरह वस्तु की अनुपलब्धि में उपर्युक्त छह कारण हैं जो खट्वा और वृक्ष शब्द में विद्यमान लिङ्ग की अनुपलब्धि में कारण हैं। इन्द्रियदौर्बल्य के द्वारा खट्वा और वृक्ष शब्द में विद्यमान लिङ्ग की उपलब्धि नहीं होती है।

पूर्वपक्षी—**केनैतदवसीयत इति**। इससे पूर्व आपने दोनों वातें कह दी-असत् गन्धर्वनगर की उपलब्धि तथा सत् लिङ्ग की अनुपलब्धि। जबकि खट्वा, वृक्ष आदि शब्दों में सर्वदा लिङ्ग की अनुपलब्धि ही होती है, अतः सन्देह होता हैकि यहाँ लिङ्ग है, अथवा नहीं?

*** तयोस्तु तत्कृतं दृष्ट्वा * स्त्रीकृतं शब्दं दृष्ट्वा 'स्त्री'त्यवसीयते, पुंस्कृतं शब्दं दृष्ट्वा 'पुमानि'ति * यथाऽऽकाशेन ज्योतिः * तद्यथा आकाशं दृष्ट्वा 'ज्योतिरत्रेति' गम्यते। ज्योतिर्निमित्तं ह्याकाशम्।**

दूसरे आचार्य लिङ्ग के होने में अनुमानप्रमाण देते हैं-**तयोस्त्विति**। खट्वाशब्द से स्त्रीकार्य टाप् देखा जाता है, अतः समझते हैं कि खट्वा शब्द स्त्री है, एवं 'वृक्षान् सिञ्चति' में 'तस्माच्छसो नः पुंसि' ६.१.१०३ से नत्व देखा जाता है, अतः पुमान् कार्य नत्व के होने से वृक्षशब्द को पुमान् मानेंगे।

इस पक्ष में अन्य अनुमान करते हैं-**यथाकाशेनेति**। जैसे-**आ**=समन्तात् काशते=प्रकाशते इति **आकाशः**=आलोक, यहाँ आकाश से जैसे मेघान्तरित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ज्योति का अनुमान करते हैं वैसे शब्दान्तरित लिङ्ग का भी अनुमान करेंगे।

*** अन्योऽन्यसंश्रयं त्वेतत् * अन्योऽन्यसंश्रयं त्वेतद् भवति-स्त्रीकृतः शब्दः, शब्दकृतञ्च स्त्रीत्वम्। तदेतदितरेतराश्रयं भवति। इतरेतराश्रयाणि च न प्रकल्पन्ते *** प्रत्यक्षेण विरुध्यते *** प्रत्यक्षेण खल्वपि स विरुध्यते, य आह-'खट्वावृक्षयोः सल्लिङ्गं नोपलभ्यते' इति। तत्र स्वेन्द्रियविरोधः कृतो भवति। न च नाम स्वेन्द्रियविरोधिना भवितव्यम्।**

आक्षेपक आचार्य—**अन्योऽन्यसंश्रयमिति**। ज्योतिः और प्रकाश का प्रत्यक्ष होने से कार्यकारणभाव स्पष्ट है। परन्तु खट्वा आदि शब्दों में कभी भी लिङ्ग का ग्रहण नहीं होता है, अतः टाप् से लिङ्गरूप कार्य का अनुमान नहीं किया जा सकता है, अतः खट्वा आदि शब्दों में कार्यकारणभाव का ग्रहण नहीं किया जा सकता है। कार्यकारणभाव मानने में खट्वा आदि शब्दों में अन्योन्याश्रय भी होगा। वह इस प्रकार कि स्त्री आदि लिङ्ग का ज्ञान करके शब्दप्रयोग होगा तथा शब्दप्रयोग से लिङ्गज्ञान होगा, अतः शब्द और ज्ञान का अन्योन्याश्रय स्पष्ट हो गया।

अन्योन्याश्रय कार्य नहीं होते हैं, जैसे नदी की धारा में नाव से बँधी नाव एक दूसरे की रक्षा नहीं कर सकती है। इससे पूर्व 'आदित्यगतिवत्सन्न' ऐसा कहा था, उसका खडन करते हैं-**प्रत्यक्षेणेति**। लिङ्गस्वरूप से रहित खट्वादि के प्रत्यक्ष से भी अनुमान का बाध हो जायेगा।

इस तरह जहाँ किसी वस्तु का एक काल में प्रत्यक्ष और अनुमान यह दोनों हो रहा हो तो वहाँ प्रत्यक्ष से अनुमान का बाध होगा। समानविषया प्रत्यक्षसामग्री और अनुमानसामग्री होने पर प्रत्यक्षसामग्री से अनुमानसामग्री का बाध होता है, इसे मैं व्युत्पत्तिवाद की तत्त्वबोधिनी में स्पष्ट कर चुका हूँ। एवम् इससे पूर्व अनुपलब्धि में छह कारण बताया था। उसमें इन्द्रियदौर्बल्य पाँचवा था। उसका आशय था कि खट्वा आदि शब्दों में सत्-लिङ्ग होने पर भी इन्द्रियदौर्बल्य के कारण उसकी उपलब्धि नहीं होती है, उसका खडन करते हैं-**तत्रेति**। 'मेरा इन्द्रिय दुर्बल है, इस लिए मैं नहीं देख पा रहा हूँ' ऐसा कहने से स्वेन्द्रियविरोध होगा। यदि अनुपलब्धि के लिए इन्द्रियदौर्बल्य को कारण माना जाये तो अलीकपदार्थ शशविषाण आदि के अनुपलब्ध होने में भी इन्द्रियदौर्बल्य को कारण मानना पडेगा; इससे अलीकपदार्थों की सत्ता सिद्ध होने लगेगी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

*** तटे च सर्वलिङ्गानि दृष्ट्वा कोऽध्यवसास्यति * तटे च खल्वपि सर्वाणि लिङ्गानि दृष्ट्वा-तटः, तटी, तटमिति,-कस्तदध्यवसातुमर्हति-'इयं स्त्री' 'अयं पुमान्' 'इदं नपुसकमि'ति? तस्मान्न वैयाकरणैः शक्यं लौकिकं लिङ्गमास्थातुम्। अवश्यं च कश्चित्स्वकृतान्त आस्थेयः। कोऽसौ स्वकृतान्तः? * संस्त्यानप्रसवौ लिङ्गमास्थेयौ स्वकृतान्ततः * संस्त्यानङ्गसवौ लिङ्गमास्थेयौ। किमिदं 'संस्त्यानप्रसवावि'ति? * संस्त्याने स्त्यातेर्ड्रट् स्त्री सूतेः सप् प्रसवे पुमान् * इति। ननु च लोकेऽपि स्त्यातेरेव स्त्री, सूतेश्च पुमानिति। अधिकरणसाधना लोके स्त्री, 'स्त्यायत्यस्यां गर्भ' इति। कर्तृसाधनश्च पुमान्-'सूते पुमानि'ति। इह पुनरुभयं भावसाधनं-संस्त्यानं स्त्री, प्रवृत्तिश्च पुमान्।**

इससे पूर्व टाप्, नत्व आदि कार्य से लिङ्ग का अनुमान करने की वात कही थी, उसका भी खण्डन करते हैं-**तटे चेति**। तट शब्द सर्वलिङ्ग है। उसका रूप स्त्रीलिङ्ग में तटी, पुमान् में तटः और नपुंसक में तटम् होता है। तटशब्द को सर्वलिङ्ग देख कर कोई भी निश्चय नहीं कर सकता है कि तटशब्द सर्वलिङ्ग है। वह इस तरह कि इससे पूर्व में स्त्री, पुमान् और नपुंसक का लक्षण 'स्तनकेशवती स्त्री' इत्यादि कहा है जो लौकिक लिङ्ग है। स्त्री और पुमान् के अभाव में नपुंसक होता है। यहाँ तटशब्द में स्त्री, पुमान् और नपुंसक तीनों ही लिङ्ग है, अतः 'तदभावे नपुंसकम्' यह लक्षण स्त्रीपुंस्त्वसमानाधिकरण नपुंसक तटशब्द में नहीं जा पा रहा है, अतः वैयाकरण लौकिक लिङ्ग का आश्रय नहीं कर सकता है, अतः लिङ्गनिर्णय के लिए वैयाकरण को अवश्य ही **स्वकृतान्त**= अपना सिद्धान्त स्थापित करना चाहिये।

एकदेशी आचार्य वैयाकरणमत में लिङ्ग का सिद्धान्त देते हैं-**संस्त्यानप्रसवाविति**। वैयाकरणों के मत में संस्त्यान और प्रसव ही लिङ्ग का लक्षण है। '**स्त्र्यायेते**=संघातरूपं प्राप्नुतः शुक्रशोणिते यस्यां सा स्त्री, अथ वा **स्त्र्यायते**=वृद्धिं प्राप्नोति गर्भः यस्यां सा स्त्री'। यहाँ स्त्यै शब्दसंघातयोः' धा. पा.६३५ धातु से ड्रट् प्रत्यय अधिकरण अर्थ में करके डित्त्वसामर्थ्य से टिलोप एवं 'लोपो व्योर्वलि' ६.१.६६ से यलोप होकर टित्त्वान्ङीप् है। इस तरह अधिकरणसाधन स्त्री है, एवं कर्तृसाधन प्रसवार्थक शब्द पुमान् है। षू प्रणे धा. पा.१४३३ धातु के ष को स आदेश, औणादिक मसुन्, बाहुलकात् ह्रस्व होकर पुमान् शब्द है। वे दोनों ही शब्द संस्त्यान तथा प्रसव भावसाधन हैं-**संस्त्यानम्**=गर्भ का तिरोभाव स्त्री और **प्रसवः**=स्थित होना, यह अवस्था शब्दगोचर ही होती है, अतः इसी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से लिङ्गनिर्णय करना चाहिये।

कस्य पुनः संस्त्यानं स्त्री, प्रवृत्तिर्वा पुमान्? गुणानाम्। केषाम्? शब्दस्पर्शरूपरसगन्धानाम्। सर्वाश्च पुनर्मूर्त्तय एवमात्मिकाः संस्त्यानप्रसवगुणाः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धवत्यः। यत्राल्पीयांसो गुणास्तत्रावरतस्त्रयः शब्दः स्पर्शो रूपमिति। रसगन्धौ न सर्वत्र। प्रवृत्तिः खल्वपि नित्या। न हीह कश्चिदपि स्वस्मिन्नात्मनि मुहूर्त्तमप्यवतिष्ठते, वर्द्धते वा यावदनेन वर्द्धितव्यम्, अपायेन वा युज्यते। तच्चोभयं सर्वत्र। यद्युभयं सर्वत्र कुतो व्यवस्था? 'विवक्षातः'। संस्त्यानविवक्षायां स्त्री। प्रसवविवक्षायां पुमान्। उभयोरविवक्षायां नपुंसकम्।

पूर्वपक्षी—**कस्य पुनरिति**। किसका **संस्त्यान**=संघातरूप होना अथ वा तिरोभाव स्त्री है, अथ वा किसकी **प्रवृत्तिः**=आविर्भाव अथ वा उपचयावस्था की स्थिति पुमान् है? 'कस्य पुनः' यहाँ जाति में एकवचन है।

सिद्धान्ती आचार्य-**गुणानामिति**। गुणों की अपचयावस्था स्त्रीत्व तथा उपचयावस्था पुंस्त्व है। किन गुणों की? शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध गुणों की। यहाँ शब्द आदि गुण कार्य हैं तथा उसका कारण सत्त्वादि गुण हैं। प्रकृति के सत्त्व, रजः और तमः ये तीन गुण होते हैं। उन तीनों गुणों के परिणामरूप त्रिगुणात्मक ही शब्द होते हैं। सत्त्व, रजः और तमः की अपचयावस्था स्त्रीत्व है एवम् उपचयावस्था पुंस्त्व है तथा साम्यावस्था नपुंसक है। यहाँ प्रश्नभाष्य में 'केषाम्' का आशय इस प्रकार है-सत्त्व, रजः और तमः प्रकृति के गुण जब कार्यों का आरम्भ नहीं किये होते हैं तब वे अपने कारण मूलप्रकृति में लीन रहते हैं तथा उनका दर्शन नहीं होता है, तब वे गुण व्यवहार के योग्य नहीं होते हैं, अतः पूर्वपक्षी को सन्देह है कि 'कार्य को आरम्भ करने से पूर्व जो प्रकृति के सत्त्वादि गुण अप्रत्यक्ष होते हैं उनकी अपचयावस्था स्त्रीत्व, उपचयावस्था पुंस्त्व और साम्यावस्था नपुंसक है, अथ वा शब्द, स्पर्श आदि कार्य के आरम्भ होने पर शब्दादि पञ्च तन्मात्राओं के कारण सत्त्वादि गुण जो प्रत्यक्षविषय होते हैं उन गुणों की अपचयावस्था स्त्रीत्व हैं?

सिद्धान्ती—**शब्दस्पर्शेति**। संस्त्यान और प्रसवगुणत्व का हेतुकथन शब्दस्पर्शादि है। 'शब्दस्पर्शरूपरसगन्धानाम्' यहाँ 'अर्शआदिभ्योऽच्' ५.२.१२७ से मत्वर्थीय अच् प्रत्यय है, अतः शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का कारण जो कार्य को आरम्भ किया हुआ सत्त्वादि, उसकी अपचयावस्था स्त्रीत्व है। इतना ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं संसार की सम्पूर्ण **मूर्तियाँ**=संस्त्यान-प्रसवगुण वाले द्रव्यादि **एवमात्मिकाः**= उद्भूतावस्था में प्राप्त प्रकृति के सत्त्वादिगुणों से ही जन्य होते हैं। त्रिगुणात्मिका मूलप्रकृति महत्-शब्दव्यवहार्या बुद्धिरूप से परिणत होती है। इस तरह मूलप्रकृति से महान्, महान् से अहंकार, अहंकार से शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध यह पञ्च तन्मात्रायें, दश इन्द्रियाँ और मन ये सभी उत्पन्न होते हैं। सत्त्वादि से उत्पन्न होने वाले शब्दादि पञ्च तन्मात्रायें आकाशादिरूप से परिणत होते हैं। शब्द का परिणाम आकाश है। शब्द और स्पर्श का परिणाम वायु है। शब्द, स्पर्श और रूप का परिणाम तेजः है। शब्द, स्पर्श, रूप और रस इन चार का परिणाम जल है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन पाँच का परिणाम पृथिवी है, अतः शब्दादि के कारण सत्त्वादि से ही संसार की **संस्त्यान**=अपचयावस्थापन्न तथा **प्रसव**=उपचयावस्थापन्न सम्पूर्ण वस्तुयें उत्पन्न हुई हैं। इस तरह प्रकृति सर्वरूपा पुरुष की भोग्या है। पुरुष चैतन्यरूप है, वह न तो **प्रकृति**=किसी का कारण है, एवं **विकृति**=किसी का कार्य नहीं है। अब यहाँ पुर्वपक्षी को सन्देह हो रहा है कि कारण के गुण कार्य में होते हैं। जैसे तुलानिर्मित सूत्र में तुला है, मृत्तिकानिर्मित घट में मृत्तिका है।

यदि विश्व की **संस्त्यान**=प्रसवगुण वाली मूर्त्तियाँ पञ्च तन्मात्राओं से उत्पन्न हैं तो उनके कार्य आकाशादि में पञ्च तन्मात्राओं को अनुस्यूत होना चाहिये, परन्तु पृथिवी में ही पञ्च तन्मात्रायें हैं। शेष जल में गन्ध को छोड कर चार, तेज में गन्ध और रस को छोड कर तीन, वायु में गन्ध, रस और रूप को छोड कर दो, तथा आकाश में गन्ध, रूप, रस औरस्पर्श को छोड कर मात्र एक ही गुण है, अतः कैसे माना जाये कि शब्दादि पञ्च तन्मात्रायें निखिल मूर्त्ति का कारण है?

इस प्रश्न का उत्तरपक्षी समाधान करता है—**यत्राल्पीयांस इति**। जहाँ पर जिस मूर्त्ति में तन्मात्राओं क **अवरतः** =अन्ततः जितने गुण उपलब्ध हैं उतनी ही मात्रा से उनकी उत्पत्ति मानी जायेगी। जैसे शब्द से आकाश, शब्द और स्पर्श से वायु इत्यादि। जहाँ तेज में शब्द, स्पर्श, रूप ये तीन गुण उपलब्ध हैं वहाँ तीन मात्राओं को ही शब्द का कारण माना जायेगा। रस मात्र जल और पृथिवी में है तथा गन्ध मात्र पृथिवी में है, अतः इनकी सार्वत्रिक उपलब्धि नहीं है।

प्रकृति के इन गुणों की सर्वपदार्थव्यापिता बताते हैं—**प्रवृत्तिरिति**। प्रकृति के सत्त्वादि गुणों का आविर्भावादिरूप प्रवृत्ति शब्दवाच्य नित्य परिणाम होता हैं। प्रलयावस्था में भी ये सत्त्वादि गुण परिणत होते रहते हैं, तब उस समय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सृष्टि क्यों नहीं होती है? इसका उत्तर यह दिया जायेगा कि प्रलयावस्था में प्रकृति के सत्त्वादि गुण सत्त्व सत्त्व में, रजः रजः में और तमः तमः में परिणत होते हैं, अतः सृष्टि नहीं होती है। सृष्टि होने के लिए सत्त्व को रजः और तमः में, रजः को सत्त्व और तमः में तथा तमः को सत्त्व और रजः में परिणाम होना आवश्यक है। सत्त्वादि गुणों की **प्रवृत्ति**=परिणाम नित्य है। प्रकृति का कोई भी गुण ऐसा नहीं है जो एक क्षण भर भी विना परिणाम के रह सके। जब इन गुणों के वर्द्धन का समय आता है तब ये सत्त्वादि गुण **वर्द्धते**=सृष्टिरूप में परिणत हो जाते है; जब प्रलय की स्थिति आती है तब ये गुण अपने कारण मूलप्रकृति में '**अपायेन वा युज्यते**'-लीन हो जाते हैं। इस तरह इन गुणों का आविर्भाव और तिरोभाव की अन्तरालावस्था का नाम स्थिति है। इस तरह अब तक यह सिद्ध हुआ कि गुणों की अपचयावस्था स्त्रीत्व, उपचयावस्था पुंस्त्व और साम्यावस्था नपुंसक है।

तच्चोभयं सर्वत्रेति—प्रकृति के गुणों का अपचय और उपचय सभी कालों में सार्वत्रिक है। फिर भी इनके सार्वत्रिक होने पर भी स्त्रीत्व आदि की व्यवस्था विवक्षा से होती है। **संस्त्यान**=गुणों की तिरोहितावस्था की विवक्षा में स्त्रीत्व, **प्रसव**=गुणों का **संवर्द्धन**=बढनारूप अवस्था की विवक्षा होने पर पुंस्त्व और **उभयोः**=अपचय और उपचय दोनों की विवक्षा, यानि साम्यावस्था की विवक्षा होने पर नपुंसक होता है।

*** तस्योक्तौ लोकतो नाम * तस्य-उक्तौ च-वचने लोकतो नामैतद् भवति-'स्त्री पुमान्नपुंसकमि'ति * गुणो वा लुपि युक्तवत् * वधिकादिषु भूयान् परिहारः; 'लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने' इत्येवमत्र गुणो भवति। न चैतन्मन्तव्यं स्वमनीषिकयोच्यत इति। पठिष्यति ह्याचार्यः-**'लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्ये'ति। **पुनः पठिष्यति**-'एकार्थे शब्दान्यत्वाद् दृष्टं लिङ्गान्यत्वम्, अवयवान्यत्वाच्चे'ति।

अब यहाँ सन्देह होता है कि सामान्यमनुष्यों को गुणों की अपचयावस्था का ज्ञान कैसे होगा; जिसकी जब जैसी मरजी हुई तब उसने वैसी विवक्षा कर ली। इस तरह एक ही शब्द को एक ही काल में एक ही सभा में बैठे अनेक लोग विवक्षाभेद से अनेक लिङ्गों में व्यवहार करने लगेंगे। इससे लिङ्गनिर्णय में दुर्व्यवस्था स्पष्ट है अतः इस दुर्व्यवस्था को दूर करने के लिए कहते हैं-**तस्योक्ताविति**। **तस्य**=लिङ्ग के **उक्तौ**=निर्णय में **लोकतः**=शिष्टों मनु, व्यास आदि महर्षियों का प्रयोग देखना चाहिये तथा उसी के अनुसार अपचय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आदि अवस्था की विवक्षा करनी चाहिये। शिष्ट मन्वादि महर्षियों ने जिस का प्रयोग स्त्रीलिङ्ग में किया है वहाँ गुणों की अपचयावस्था की विवक्षा करनी चाहिये, जिसका प्रयोग पुंस्त्व में है वहाँ उपचयावस्था की विवक्षा करनी चाहिये, जिसका प्रयोग नपुंसक में है वहाँ साम्यावस्था की विवक्षा करनी चाहिये।

गुणो वेति। 'स्तनकेशवती स्त्री' इत्यादि पुर्वोक्त लक्षण का परित्याग होने से भ्रूकुंस, वद्भ्रिका, चञ्चा इत्यादि में स्तनकेशादिमत्त्वलक्षणलिङ्ग का परित्याग है, अतः 'चञ्चाः पश्य, वद्भ्रिकाः पश्य' इत्यादि में नत्व की आपत्ति नहीं होगी। 'खरकुटीः पश्य' इत्यादि में नत्ववारण के लिए आचार्य ने 'लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने' १.२.५१ सूत्र पढ कर लुप होने पर प्रकृतिवत् लिङ्गवचन कहा है। इससे 'खरकुटीः' इत्यादि में कन्-प्रत्यय का लुप् होने पर कन्-प्रत्यय की जो प्रकृति खरकुटी, वद्भ्रिका आदि, उसका जो लिङ्ग और वचन वही होगा, अन्य नहीं, अतः खरकुटी आदि के स्त्रीलिङ्ग होने पर कन्-प्रत्यय के लुप् के पश्चात् स्त्रीलिङ्ग ही रहेगा।

दूसरे आचार्य जो सूत्रकार के आशय की अवहेलना कर रहे हैं वे कहते हैं-**न चैतन्मन्तव्यमिति**। 'लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने' यह सूत्र आचार्य ने अपनी मनीषा से पढ दिया, यह उनकी अपनी इच्छा हो सकती है कि लुप् होने पर प्रकृतिवद् लिङ्गवचन करेंगे। परन्तु मैं उसे मानूँ, क्या ऐसी राजाज्ञा हो सकती है?

उत्तरपक्षी इसका समाधान करता है—**लिङ्गमशिष्यमिति**। लिङ्ग लोकाश्रयी-**लोक**=मनु, व्यासप्रभृति महर्षियों के आश्रयी होते हैं, अतः लिङ्गनिर्णय के लिए किया गया प्रकरण वस्तुतः **अशिष्यम्**=नहीं करना चाहिये। महर्षियों शिष्टों द्वारा जो शब्द जिस लिङ्ग में प्रयुक्त है उस शब्द को उस लिङ्ग में प्रयोग कर लेंगे। इससे लिङ्गानुशासन पढने की आवश्यकता नहीं है।

पुनः आचार्य इसी विषय में दूसरा समाधान देंगे—**एकार्थे शब्दान्यत्वादिति**। एक ही अर्थ में जब अनेक शब्द होते हैं तब अर्थ समान होने पर भी शब्दभेद होने से लिङ्गभेद भी देखा जाता है। जैसे स्त्री-अर्थ में नारी और दार दोनों शब्द हैं। समानार्थक होने पर भी नारी शब्द नित्य स्त्रीलिङ्ग सर्ववचन होने पर भी उसी का समानार्थक दार शब्द पुल्लिङ्ग तथा बहुवचनान्त है। एवं समान-अर्थ में एक ही शब्द में अवयव-वर्ण के अन्य होने पर भी अन्य लिङ्ग देखा जाता है। जैसे-कुटी और कुटीर शब्द पर्याय हैं। कुटी शब्द नित्य स्त्रीलिङ्ग है, परन्तु रेफरूप अवयव के अधिक होने से कुटीर शब्द में लिङ्गभेद हो गया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यद्यपि लिङ्ग का विना विचार किये ही वक्ता शब्दों का प्रयोग करता है तथा श्रोता उसका ग्रहण भी करता है तथापि भाष्यकार ने वस्तुतत्व का निर्णय किया है। भाष्यकार के इस लिङ्गविचारप्रकरण से अन्य आचार्य द्वारा उक्त 'संस्त्यायादिलक्षणमलौकिकं लिङ्गम्' इस पक्ष का खण्डन हो जाता है।

संस्त्याने स्त्यायतेर्ड्रट् स्त्री, सूतेः सप् प्रसवे पुमान्।
तस्योक्तौ लोकतो नाम गुणो वा लुपि युक्तवत्।।

कथं पुनरिदं विज्ञायते-'स्त्रियामभिधेयायां टाबादयो भवन्ती'ति, आहोस्वित्-'स्त्रीसमानाधिकरणात्प्रातिपदिकादि'ति?

कारिकार्थ-स्त्यै शब्दसंघातयोः धा.पा.६३५ धातु से ड्रट्-प्रत्यय अधिकरण अर्थ में करके 'स्त्र्यायेते शुक्रशोणिते गर्भस्य कारणे यस्यां सा स्त्री' ऐसा अर्थ में स्त्री शब्द की सिद्धि है। सू प्रेरणे धा.पा.१४३३ धातु से प्रसव अर्थ में पुमान् शब्द है। सू धातु के स को प आदेश है, बाहुलकात् ऊ को ह्रस्व और औणादिक मसुन्-प्रत्यय होकर पुमान् शब्द निष्पन्न है। **सुवति**=स्त्रियं प्रेरयति गर्भकारणयोः शुक्रशोणितयोः धारणायेति पुमान्। जो गर्भ का कारण शुक्र और शोणित धारण करने के लिए स्त्री को प्रेरित करता है उसे पुमान् कहते हैं। स्त्री और पुमान् का निर्णय लोक से ही हो जायेगा, एवं चञ्चा, वर्द्धिका आदि में 'लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने' १.२.५१ से परिहार हो जायेगा।

पूर्वपक्षी—**कथं पुनरिति**। आचार्य ने 'स्त्रियाम्' ४.१.३ सूत्र पढा है। यहाँ सन्देह होता है कि स्त्रीशब्द गुणमात्र में शक्त है, अथ वा गुणी द्रव्य में शक्त है? यदि शुक्लादिशब्दवत् स्त्रीशब्द को गुणमात्रपरक मानेंगे तो 'द्रव्यवाचिप्रातिपदिक से पर में स्त्रीत्व वाच्य होने पर टाप् आदि प्रत्यय हों' ऐसा अर्थ होगा। इससे 'प्रत्ययों का अर्थ स्त्रीत्व है' यह पक्ष आयेगा। परन्तु यदि स्त्रीत्वयुक्त-द्रव्य स्त्रीशब्द से प्रकृत में वाच्य होगा तो 'स्त्रीत्वसमानाधिकरण प्रातिपदिक से पर में टाप् आदि हों' ऐसा अर्थ होगा। अर्थात् 'स्त्रीत्वोपलक्षित द्रव्यवाची प्रातिपदिक से पर में टाप् आदि हों' यह दूसरा अर्थ होगा। यहाँ दोनों प्रकार का अर्थ सम्भव है, कौन सा अर्थ माना जाये?

कश्चात्र विशेषः? * स्त्रियामिति स्त्र्यर्थाभिधाने चेट्टाबादयो द्विवचन-बहुवचनानेकप्रत्ययानुपपत्तिः *** स्त्रियामिति स्त्र्यर्थाभिधाने चेट्टाबादयो भवन्ति, द्विवचनबहुवचनयोरनुपपत्तिः। कुमार्यौ, कुमार्यः। किशोर्यौ, किशोर्यः। किं कारणम्? *** 'एकत्वात् स्त्रीत्वस्य' *** एकोऽयमर्थः स्त्रीत्वं नाम। तस्यैकत्वादेकवचनमेव प्राप्नोति। 'अनेकप्रत्ययानुपपत्तिश्च'।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनेकश्च प्रत्ययो नोपपद्यतेगार्ग्यायणी। कारीषगन्ध्या। कालितरा इति।

आक्षेपक आचार्य—**कश्चात्र विशेष इति**। यहाँ पूर्व अर्थ माना जाये अथ वा पर अर्थ माना जाये इसमें क्या भेद है?

पूर्वपक्षी अपना सन्देह स्पष्ट करता है—**स्त्रियामिति**। यदि 'स्त्रियाम्' ४.१.३ सूत्र पर प्रत्यय का वाच्य अर्थ स्त्रीत्व मानोंगे तो टाप् आदि स्त्रीवाचक प्रत्ययों के होने पर 'कुमार्यौ, कुमार्यः, किशोर्यौ, किशोर्यः' इत्यादि में द्विवचन और बहुवचन सिद्ध नहीं हो पायेंगे।

पूर्वपक्षी द्विवचन और बहुवचन नहीं होने में कारण स्पष्ट करता है—**एकत्वादिति**। किशोरी, कुमारी में 'वयसि प्रथमे' ४.१.२० से विहित ङीप् से एकत्व-संख्याविशिष्ट स्त्रीत्वरूप अर्थ वाच्य होगा, अतः एकवचन में किशोरी, कुमारी यही रूप रहेगा। टाप् आदि अनेक प्रत्यय किशोरी, कुमारी में इस लिए नहीं होंगे कि कौमार्य आदि एक ही अवस्था है। यदि एक ही अवस्था में कालकृत द्वित्व अथ वा बहुत्व की विवक्षा कर भी ली जाये तब भी शब्दों के सन्निवेश-मात्र में शब्दबहुत्व होने पर भी जैसे सन्निवेश की अभेदविवक्षा में 'घटः' ऐसा एकवचन ही होता है, वैसे अवस्थाविशेष संस्त्यान आदि लिङ्गभेद का एकत्व ही रहेगा; अतः प्रत्ययार्थ स्त्रीत्व मानने पर द्वित्व, बहुत्व नहीं हो सकेगा। यदि द्योतकत्वपक्ष मानते हैं तो एक प्रत्यय एक ही अर्थ को एक साथ एक प्रदीप की भाँति प्रकाशित करता है तथा अनेक भी; अतः कुमारीशब्द से एक ङीप् भी होगा तथा अनेक ङीप् भी होगा; अतः द्योतकत्वपक्ष में द्वित्व और बहुत्व प्रत्यय उपपन्न हो जायेंगे।

वाचकत्वपक्ष में पूर्वपक्षी अन्य दोष देता है—**अनेकप्रत्ययेति**। वाचकत्वपक्ष में 'उक्तार्थानामप्रयोगः' इस न्याय से गार्ग्यायणी, कारीषगन्ध्या, कालितरा में स्त्र्यर्थवाचक अनेक प्रत्यय नहीं हो सकेंगे। 'गर्गस्यापत्यं स्त्रीति गार्गी' में 'गर्गादिभ्यो यञ्' ४.१.१०५ यञ् और 'यञश्च' ४.१.१६ से ङीप् है। पुनः ङ्यन्त से 'प्राचां ष्फ तद्धितः' १.४.१७ से ष्फ प्रत्यय हो कर तदन्त से 'षिद्गौरादिभ्यश्च' ४.१.४१ से ङीष् है। एवं 'करीषगन्ध इव गन्धो यस्याऽसौ करीषगन्धिः' 'उपमानाच्च' ५.४.१३७ से इत्व, करीषगन्धेरपत्यं स्त्री' इस विग्रह में 'तस्यापत्यम्' ४.१.९२ से अण्, ङीप् हो कर कारीषगन्धी, पुनः ङीबन्त कारीषगन्धीशब्द से गोत्रवाच्य होने पर 'अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे' ४.१.७८ से गोत्र वाच्य होने पर स्त्री अर्थ में ष्यङ् प्रत्यय होकर कारीषगन्ध्या शब्द है। एवम् 'इयमनयोरतिशयेन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कालीति कालितरा' यहाँ वर्णवाची काल पद से ङीष् प्रत्यय होने पर अतिशय अर्थ में ङ्यन्त से 'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ' ५.३.५७ सूत्र के द्वारा तरप् प्रत्यय हो कर तदन्त से टाप् है। इस तरह वाचकत्वपक्ष में उपर्युक्त स्थलों में अनेक ङीप् प्रत्यय नहीं हो सकेंगे।

किं कारणम्? 'एकत्वात् स्त्रीत्वस्य'। एकोऽयमर्थः स्त्रीत्वं नाम, तस्यैकेनोक्तत्वाद् द्वितीयस्य प्रयोगेण न भवितव्यम्। किं कारणम्? 'उक्तार्थानामप्रयोग' इति * स्त्र्यर्थस्य च प्रतिपदिकार्थत्वात् स्त्रियामिति लिङ्गानुपपत्तिः * **स्त्र्यर्थस्य च प्रातिपदिकार्थत्वात् 'स्त्रियामि'ति ईकारो न प्राप्नोति। अस्तु तर्हि-'स्त्रीसमानाधिकरणात् प्रातिपदिकादि'ति** * स्त्रीसमानाधिकरणादिति चेद् भूतादिष्वतिप्रसंगः * **स्त्रीसमानाधिकरणादिति चेद् भूतादिष्वतिप्रसंगो भवति। भूतमियं ब्राह्मणी। कारणमियं ब्राह्मणी। आवपनमियमुष्ट्रिकेति।**

इसका क्या कारण है? इसका कारण यह है कि स्त्रीत्व अर्थ एक ही है। एक प्रत्यय से उक्त होने से पुनः उसी अर्थ को कहने के लिए दूसरे प्रत्यय का प्रयोग नहीं हो सकेगा। इतर स्त्रीप्रत्ययों के प्रयोग में 'उक्तार्थानामप्रयोगः' न्याय विरोध करेगा। एवं वाचकत्वपक्ष में दूसरा पक्ष यह भी होगा कि संस्त्यानवाची ड्रट् प्रत्यय से जहाँ ड्रट्प्रत्ययान्त स्त्र शब्द से ही स्त्रीरूप अर्थ उक्त है वहाँ 'उक्तार्थानामप्रयोगः' न्याय के द्वारा पुनः ङीप् प्रत्यय प्राप्त नहीं हो सकेगा।

यदि वाचकत्वपक्ष मानने में दोष है तो द्योतकत्वपक्ष मान कर 'स्त्रीसमानाधिकरणात् प्रातिपदिकाट् टाबादयो भवन्ति' ऐसा अर्थ माना जाये तो इस पक्ष में भी दोष देता है-**स्त्रीसमानाधिकरणादिति**। स्त्रीसमानाधिकरण प्रातिपदिक से पर में टाबादि कहने पर भूतमियं ब्राह्मणी, कारणमियं ब्राह्मणी, आवपनमियमुष्ट्रिका, यहाँ पर स्त्रीत्वोपलक्षित ब्राह्मणी का सामानाधिकरण्य भूतशब्द व कारणशब्द, एवम् उष्ट्रिकाशब्द का सामानाधिकरण्य आवपनशब्द से पर में स्त्रीप्रत्यय की अतिव्याप्ति होगी।

स्त्र्यर्थाभिधाने पुनष्टाबादिषु सत्सु-इह तावद्-'भूतमियं ब्राह्मणी'ति, नाऽत्र स्त्रीत्वं विवक्षितम्। किं तर्हि? पौतन्यम्। 'कारणमियं ब्राह्मणी'ति, नाऽत्र स्त्रीत्वं विवक्षितम्। किं तर्हि? प्राधान्यम्। 'आवपनमियमुष्ट्रिके'ति, नाऽत्र स्त्रीत्वं विवक्षितम्। किं तर्हि? सम्भवनम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्त्र्यर्थाभिधान इति। परन्तु 'टाबादिप्रत्ययार्थः स्त्री' इस पक्ष में 'भूतमियं ब्राह्मणी' इत्यादि स्थलों में पुनःस्त्रीप्रत्ययप्रसङ्गरूप दोष नहीं होता है। 'भूतमियं ब्राह्मणी' इत्यादि स्थलों में पौतन्य आदि अर्थ विवक्षित होंगे। उनका सम्बन्ध स्त्री के साथ नहीं होने से भूत आदि शब्दों से पर में प्रत्ययोत्पत्ति प्राप्त नहीं हो सकेगी। 'भूतमियं ब्राह्मणी' में स्त्रीत्व विवक्षित नहीं है, अपि तु प्राधान्यरूप अर्थ विवक्षित है। एवम् 'आपनमियमुष्ट्रिका' में स्त्रीत्व विवक्षित नहीं है, अपि तु संभवरूप अर्थ विवक्षित है।

* षट्संज्ञकेभ्यश्च प्रतिषेधः * **षट्संज्ञकेभ्यश्च प्रतिषेधो वक्तव्यः। पञ्च ब्राह्मण्यः। दश ब्राह्मण्यः। स्त्र्यर्थाभिधाने पुनष्टाबादि सत्सु-नात्र स्त्रीत्वं विवक्षितम्। किं तर्हि? भेदो विवक्षितः-संख्या। इह च 'स्त्री'ति,-ईकारो न प्राप्नोति। न हि तेनैव तस्य सामाना-धिकरण्यमस्ति।**

द्योतकत्वपक्ष मानने में अन्यत्र भी दोष देते हैं—**षट्संज्ञकेभ्यश्चेति**। द्योतकत्वपक्ष में स्त्रीसमानाधिकरण प्रातिपदिक से पर में टाबादि कहने पर 'पञ्च ब्राह्मण्यः, दश ब्राह्मण्यः' में षट्संज्ञक पञ्चन्, दशन् शब्द और स्त्री ब्राह्मणी का सामानाधि-करण्य है, अतः पञ्चन्, दशन् से पर में 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' ४.१.५ से नान्तलक्षण ङीप् की प्राप्ति होगी, जिसका प्रतिषेध कहना पडेगा।

अन्य आचार्य पूर्वपक्षी का खण्डन करते हैं—**स्त्र्यर्थाभिधाने पुनरिति**। प्रातिपदिक से स्त्रीत्व अर्थ वाच्य होने पर टाप् आदि प्रत्ययों के विधान होने से 'पञ्च ब्राह्मण्यः, दश ब्राह्मण्यः' में षट्संज्ञक पञ्चन् और दशन् शब्द से पर में ङीप् प्रत्यय की आपत्ति नहीं होगी। वह इस तरह कि यहाँ पर पञ्चन् और दशन् शब्द स्त्रीत्वसमानाधिकरण नहीं है, अपि तु पञ्चन् और दशन् पद से भेदरूप संख्या विवक्षित है, अतः स्त्रीत्व वाच्य नहीं होने से पञ्चन् और दशन् शब्द से पर में ङीप् की प्राप्ति नहीं है। यहाँ स्त्रीरूप अर्थ का ब्राह्मण पद के साथ सामानाधिकरण्य है, पञ्चन् और दशन् के साथ नहीं।

* सिद्धन्तु स्त्रियाः प्रातिपदिकविशेषणत्वात्स्वार्थे टाबादयः * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'स्त्रियाः प्रातिपदिकविशेषणत्वात्'। प्रातिपदिकविशेषणं स्त्री-ग्रहणम्। स्वार्थिकाष्टाबादयः। नैवं विज्ञायते-'स्त्रियामभिधेया-यामि'ति। नापि-'स्त्रीसमानाधिकरणादि'ति। कथं तर्हि?-स्त्रियां यत्प्रातिपदिकं वर्त्तते तस्माट् टाबादयो भवन्ति। कस्मिन्नर्थे? स्वार्थे।**

उपर्युक्त दोनों पक्षों का परित्याग कर तृतीयपक्ष का आश्रय लेकर भाष्यकार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहते हैं—**सिद्धन्त्विति**। 'स्त्रियाम्' ४.१.३ यह प्रातिपदिक का विशेषण है, अतः स्त्रीत्वयुक्त अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से पर में टाप् आदि प्रत्यय स्वार्थ में होंगे। 'स्त्रियाम्' ४.१.३ का 'प्रत्ययार्थ स्त्रीत्व होने पर अथ वा स्त्रीत्वसमानाधिकरण प्रातिपदिक से पर में स्त्रीत्व द्योत्य होने पर टाबादिप्रत्यय हों' हम ऐसा अर्थ नहीं करेगे। अपितु 'स्त्री-अर्थ में शक्त जो प्रातिपदिक उससे पर में टाबादि प्रत्यय हों' ऐसा अर्थ करेंगे।

अन्य आचार्य—**कस्मिन्नर्थे इति**। स्त्र्यर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से पर में टाबादि किस अर्थ में होंगे?

उत्तरभाष्य—**स्वार्थ इति**। **स्वम्**=प्रकृति के अर्थ में होंगे।

अथ वा पुनरस्तु-'स्त्रियामभिधेयायामि'ति। ननु चोक्तं'स्त्रियामिति स्त्र्यर्थाभिधाने चेट् टाबादयो द्विवचनबहुवचनानेकप्रत्ययानुपपत्तिः'। स्त्र्यर्थस्य च प्रातिपदिकार्थत्वात् स्त्रियामिति लिङ्गानुपपत्तिरि'ति।

अब पूर्वपक्ष में खण्डित भाष्य का उद्धार करते हैं-**अथ वेति**। प्रत्ययार्थ को स्त्रीत्व मान लीजिये। इस पक्ष में आप ने 'कुमार्यौ, कुमार्यः, किशोर्यौ, किशोर्यः' में द्विवचन और बहुवचन की अनुपपत्ति दी थी। एवं स्त्र्यर्थ को प्रातिपदिकार्थ होने से स्त्र शब्द में ङ्रट् प्रत्यय स्त्रीत्व अर्थ उक्त होने पर ङीप् की अनुपपत्ति दी थी, वह भी–

नैष दोषः। यत्तावदुच्यते-'द्विवचनबहु- वचनयोरनुपपत्तिरि'ति। * गुणवचनस्य चाऽऽश्रयतो लिङ्गवचनभावात् * गुणवचनानां हि शब्दानामाश्रयतो लिङ्गवचनानि भवन्ति। तद्यथा-शुक्लं वस्त्रम्। शुक्ला शाटी। शुक्लः कम्बलः। शुक्लौ कम्बलौ, शुक्लाः कम्बलाः-इति। यदसौ द्रव्यं श्रितो भवति गुणस्तस्य यल्लिङ्गं वचनं च तद् गुणस्याऽपि भवति। एवमिहापि यददो द्रव्यं श्रितं भवति स्त्रीत्वं गुणस्तस्य यल्लिङ्गं वचनञ्च तत्स्त्रीत्वस्यापि भविष्यति। यदप्युच्यते-'ऽनेकप्रत्ययानुपपत्तिरि'ति- * भावस्य च भावयुक्तत्वात् * भावस्य च भावयुक्तत्वात्। भावो भावेन युज्यते। तद्यथा-इषिरिषिणा निमन्त्रिश्च निमन्त्रिणा।

नैष दोष इति। वह दोष भी नहीं रहेगा। 'कुमार्यौ, कुमार्यः, किशोर्यौ, किशोर्यः' में द्विवचन और बहुवचन की अनुपपत्ति नहीं रहेगी। वह इस तरह कि लिङ्ग और वचन गुणवचन-प्रकृत्यर्थ को मान कर होते हैं, प्रत्ययार्थ को मान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर नहीं। जैसे 'शुक्लं वस्त्रम्' यहाँ पर गुणवचन वस्त्र पद नपुंसक और एकवचन है, अतः शुक्लपद भी नपुंसक और एकवचन हुआ। 'शुक्ला शाटी' में गुणवचन शाटीपद स्त्रीलिङ्ग और एकवचन है, अतः शुक्ला पद भी एकवचन और स्त्रीलिङ्ग हुआ। एवं 'शुक्लः कम्बलः' में कम्बल पद पुलिङ्ग और एकवचन है, अतः शुक्ल भी पुल्लिङ्ग और एकवचन हुआ। इसी तरह 'शुक्लौ कम्बलौ, शुक्लाः कम्बलाः' में भी पुल्लिङ्ग और द्विवचन, बहुवचन है। यहाँ द्रव्य का आश्रित गुण, उस गुण=अप्रधान=विशेषण का जो लिङ्ग और वचन वही उससे विहित प्रत्यय से भी होगा। वैसे 'कुमारत्वजातिविशिष्टा स्त्री कुमारी, किशोरत्वजातिविशिष्टा स्त्री किशोरी' इस शाब्दबोध में गुण=विशेषण कुमार और किशोर का जो लिङ्ग और वचन वे ही ङीबन्तादि प्रत्यय से भी होंगे।

आप ने इस पक्ष में गार्ग्यायणी, कारीषगन्ध्या, कालितरा में अनेक प्रत्ययों की उत्पत्ति नहीं होना बताया था, वह भी दोष नहीं रहेगा। इसका हेतु देते हैं-**भावस्य भावयुक्तत्वादिति**। जैसे इषि इषि के साथ युक्त होता है तथा निमन्त्रि निमन्त्रि के साथ युक्त होता है, वैसे अनेक टाबादि स्त्र्यर्थक प्रत्यय होने पर भी उनका परस्पर स्त्रीत्व का स्त्रीत्व के साथ योग हो जायेगा। एषितुमिच्छतीति इषिः। 'निमन्त्रये' इस विधिलिङ्.में विग्रह कर निमन्त्रिशब्द निष्पन्न करना चाहिये।

विषम उपन्यासः। युक्तं तत्रान्यत्वं,-साधनभेदात्, कालभेदाच्च। उक्तं तत्रैकस्य बाह्यं साधनं, सर्वकालश्च प्रत्ययः। अपरस्याभ्यन्तरं साधनं वर्त्तमानकालश्च प्रत्यय इति। इह पुनरेकं स्त्रीत्वम्। अथैकमप्युपलभ्यते? किं चाऽऽतः? यद्येकमुपलभ्यते द्वितीयमप्युपलभ्यताम्। अथैकमप्यनुमानगम्यम्-द्वितीयमप्यनुमानाद् गम्यताम्।

अन्य आचार्य—**विषम उपन्यास इति**। आप ने 'भावस्य च भावयुक्तत्वात्, यह विपरीत वात कह दी। इषि का इषि से और निमन्त्रित का निमन्त्रित से योग होने में साधनभेद और कालभेद है। यहाँ पर **'एकस्य बाह्यं साधनम्'**=निमन्त्रित का निमन्त्रित के साथ योग होने में बाह्य साधन भोजनादिक है तथा दूसरे इषि का इषि के साथ योग होने में 'समानकर्तृके तुमुन्' ३.३.१५८ सूत्र से कालमात्र में तुमुन् का विधान होने से **सर्वकाल**=तुमुन् प्रत्यय है। **अपरस्येति**-'एषितुमिच्छति इति इषिः' यहाँ पर 'इच्छति' इस तिङन्त क्रिया का **साधन**=इषि कर्म है, वह 'एषिषिषति' में प्रकृत्यर्थ होने से आभ्यन्तर है, तथा 'एषितुमिच्छति' इस विग्रह में तिप्स्थानिक लट् का वर्तमान काल भी वाच्य है। परन्तु 'कुमार्यौ, कुमार्य,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किशोर्यौ, किशोर्यः' में ङीष् प्रत्यय के द्वारा मात्र स्त्रीत्व ही वाच्य है, यहाँ भेद का कोई भी हेतु उपस्थित नहीं है।

अन्य आचार्य—**अथैकमपीति**-यदि खट्वा आदि में असत् एक ही स्त्रीत्व की उपलब्धि हो रही है तो इससे क्या हानि है? यदि एक स्त्रीप्रत्यय टाप् के द्वारा उपलब्ध हो रहा है तो दूसरे स्त्रीप्रत्यय के द्वारा भावतलन्त खट्वता में दूसरा स्त्रीत्व की भी उपलब्धि कर लीजिये। अब कहेंगे कि दो स्त्रीप्रत्यय करने पर भी 'किशोर्यौ' में रूप तो एक ही रहेगा तब कैसे समझा जायेगा कि यहाँ एक प्रत्यय है, अथ वा दो?, तो इसके उत्तर में आप अनुमान करेंगे कि 'किशोरी' में जहाँ जातिपक्ष में अनेक अर्थ कहा जा रहा है वहाँ एकत्ववाचक 'सु' के रहते 'किशोर' पद से पर में एक ही ङीष् विहित है, जहाँ प्रत्यय हुआ है वहाँ दो ङीष् और जहाँ जस् आदि होंगे वहाँ बहुत ङीष् है।

कस्य तावद् भवानेतं गुणं न्याय्यं मन्यते स्त्रीत्वं नाम? द्रव्यस्य। द्रव्ये च भवतः कः संप्रत्ययः? यदि तावद् गुणसमुदायो द्रव्यं, का गतेर्य एते भावाः कृदभिहितास्तद्धिताऽभिहिताश्च,-चिकीर्षा, गोतेति?

पूर्वपक्षी—**कस्य तावदिति**। आप स्त्रीत्व को किसका गुण मान रहे हैं? स्त्रीत्व गुण है, गुण स्वतन्त्ररूप से कहीं नहीं रहता है, अपि तु किसी के अधीन ही रहता है, अतः प्रश्न है।

उत्तरपक्षी—**द्रव्यस्येति**। द्रव्य का गुण स्त्रीत्व है।

पूर्वपक्षी—**द्रव्ये चेति**। आप किस-किस को द्रव्य का आश्रित मानते हैं? यदि रूप आदि गुणसन्निवेशमात्र को द्रव्य मानेंगे तो-'गोर्भावः गोता' में 'तस्य भावस्त्वतलौ' ५.१.११९ तल् प्रत्यय हुआ है, तथा तलन्त स्त्रीलिङ्ग में होता है। एवं 'कर्तुमिच्छा चिकीर्षा' में सन्नन्त से 'अप्रत्ययात्' ३.३.१०२ से स्त्र्यर्थ में अ प्रत्यय है। यहाँ 'गोता' में तद्धित से अभिहित भाव है तथा 'चिकीर्षा' में कृदभिहित भाव है। यदि 'गुणसमुदायो द्रव्यम्' ऐसा द्रव्य का लक्षण मानेंगे तो 'चिकीर्षा, गोता' में गुणसमुदाय नहीं होने से स्त्रीत्व नहीं रह सकेगा।

अथ मतमेतत्,-'कृदभिहितो भावो द्रव्यवद् भवती'ति। स्त्रीत्वमपि स्त्रीत्वेनाभिहितं द्रव्यवद् भविष्यति। क्व च तावद् दोषः स्यात्? दृष्टस्य हि दोषस्य सुसुखः परिहारः। गार्ग्यायणी, कारीषगन्ध्या, कालितरेति।

द्रव्य का लक्षण बताने के लिए द्वितीय पक्ष का अवतरण करते हैं—**अथ**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मतमेतदिति। 'गुणसमूहो द्रव्यम्' ऐसा द्रव्य का लक्षण न मान कर 'इदं तद्' ऐसा सर्वनामपद से कहे जाने योग्य वस्तु को द्रव्य मानेंगे जो इस शास्त्र में गृहीत है, अथ वा 'कृदभिहितो भावो द्रव्यवत्प्रकाशते' पक्ष मानेंगे तो स्त्रीत्व भी द्रव्यरूप हो जायेगा तथा 'चिकीर्षा' इत्यादि में स्त्रीत्व भी द्रव्यरूप ही लिया जायेगा, एवं दूसरे स्त्रीत्व के साथ उसका अन्वय होने में कोई बाधा नहीं होगी। एक शब्द से अनेक स्त्र्यर्थक प्रत्ययों के होने पर भी समान लिङ्ग होने से अन्वय हो जायेगा।

अन्य आचार्य—**क्व च तावदिति**। यदि एक शब्द से अनेक स्त्रीप्रत्ययों के होने पर लिङ्गान्तर न होना मान लिया जाये, तो भी उसी स्त्रीत्व को प्रथम स्त्र्यर्थक प्रत्यय कह रहा है तथा उससे पर में उत्पन्न दूसरा एवं तीसरा भी कहेगा। फिर एक ही स्त्रीत्व को कहने के लिए यदि एक ही प्रत्यय लाया जाये तथा दूसरा नहीं लाया जाये तो कहाँ दोष होगा?

उत्तरपक्षी—**दृष्टस्य हि दोषस्येति**। इससे पूर्व में आप ने गार्ग्यायणी, कारीषगन्ध्या, कालितरा में अनेक स्त्रीप्रत्ययों की उत्पत्ति दिखायी थी, वह सिद्ध नहीं हो सकेगी। लिङ्गान्तर नहीं होने पर जहाँ अनेक स्त्र्यर्थक प्रत्ययों से स्त्रीत्व उक्त होगा वहाँ 'इदं तद्' ऐसा द्रव्यलक्षण के अनुसार स्त्रीत्व के भी द्रव्यरूप होने से स्त्रीत्व को अपर स्त्रीत्व के साथ अन्वय होने में कोई बाधा नहीं होगी। इससे आप द्वारा प्रदत्त 'गार्ग्यायणी' इत्यादि में अन्वयदोष समाप्त हो गया।

इह तावद्-गार्ग्यायणीति। षित्करणसामर्थ्यान्ङीष् भविष्यति। कारिषगन्ध्येति,-वचनाच्चाब्भविष्यति। कालितरेति,-न यावत् काली तावत्कालितरेति। किं तर्हि?-प्रकृष्टा काली कालितरा। यत्तच्छब्दरूपं प्रकर्षे वर्तते तस्याऽनुक्तं स्त्रीत्वमिति कृत्वा ङीब्भविष्यति। यदप्युच्यते,-इह च 'स्त्री'ति, ईकारो न प्राप्नोती'ति, निपातनादेतत्सिद्धम्। किं निपातनम्? 'स्त्रियाम् अवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्चे'ति।

पूर्वोक्त सभी दोषों का सिद्धान्ती आचार्य निवारण करते हैं—**इह तावदिति**। गार्ग्यायणी में गार्गीशब्द से 'प्राचां ष्फ तद्धितः' ४.१.१७ से षित्प्रत्यय ष्फ है; अतः षित्करण से 'षिद्गौरादिभ्यश्च' ४.१.४१ से ङीष् है। 'अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे' ४.१.७८ इस वचनप्रमाण से कारीषगन्धी शब्द से भी ष्यङ् प्रत्यय हो जायेगा। कालितरा में तरप् प्रत्यय से प्रकर्ष अर्थ वाच्य है, वह प्रकर्ष स्त्रीत्व का न होकर ङी की प्रकृति काल का वाच्य है। एवं काल का भी स्त्रीत्व उक्त होने पर भी तरबन्त का स्त्रीत्व अनुक्त है, अतः तरबन्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का स्त्रीत्व बताने के लिए टाप् हो जायेगा। एवम् आप ने स्त्रै धातु से स्त्र्यर्थक ड्रट् प्रत्यय होने पर 'उक्तार्थानामप्रयोगः' न्याय से ङीप् की अप्राप्ति दिखायी थी, वह भी दोष नहीं रहेगा। स्त्री में टित्त्वसामर्थ्य से ङीप् हो जायेगा। अथ वा निपातन से भी 'स्त्री' ऐसा रूप हो जायेगा। 'स्त्रियामवन्ति-कुन्तिकुरुभ्यश्च' ४.१.१७६ सूत्र में 'स्त्रियाम्' ऐसा पाठ किया है, तत्सामर्थ्य से 'स्त्र' ऐसा रूप प्राप्त होने पर निपातन के द्वारा 'स्त्री' ऐसा रूप समझा जायेगा।

* स्त्रीविषये ङ्यापोरप्रसिद्धिरकारान्ताऽदर्शनात् * **स्त्रीविषये ङ्यापोर-प्रसिद्धिः। खट्वा, माला। किं कारणम्? 'अकारान्ताऽदर्शनात्'। न ह्यकारान्तता दृश्यते। ननु चेयं दृश्यते-अतिखट्वः, अतिमाल इति। नैष अकारान्तता, आप एवैतद्ध्रस्वत्वम्** * सर्वेषान्तु स्वरवर्णा-नुपूर्वीज्ञानार्थ उपदेशः * **सर्वेषामेव तु प्रातिपदिकानां स्वरवर्णा-नुपूर्वीज्ञानार्थ उपदेशः कर्तव्यः। शशः षषः इति मा भूत्। मञ्चको मञ्जक इति मा भूत्** * तस्मात्सिद्धम् * **तस्मात्सिद्धमेतद् भवति। अथ वा इयमकारान्तता दृश्यते,-पञ्चभिः खट्वाभिः क्रीतः पटः पञ्चखट्वः। दशखट्वः।**

पूर्वपक्षी—**स्त्रीविषय इति**-जो खट्वा, माला आदि शब्द नित्यस्त्रीलिङ्ग हैं उनको अदन्तप्रयोग नहीं होने से अदन्तत्वप्रकृतित्व नहीं माना जा सकता है।

अन्य आचार्य—**ननु चेयमिति**। 'अतिखट्वः, अतिमालः' में खट्वा और माला का अकारान्त प्रयोग है।

पूर्वपक्षी—**नैष अकारान्ततेति**। अतिखट्वः, अतिमालः यह अकारान्त नहीं है, अपि तु 'खट्वामतिक्रान्तोऽतिखट्वः, मालामतिक्रान्तोऽतिमालः' में नियत-विभक्तिक 'खट्वाम्' और 'मालाम्' उपसर्जन होने से 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' १.२.४८ से आप् को ह्रस्व है। 'सर्व नाम धातुजमाह शकटस्य च तोकः' इस सिद्धान्त के अनुसार सभी शब्दों को व्युत्पन्न किया जाना सम्भव है। इस लिए स्वर, वर्ण का आनुपूर्वी ज्ञान के लिए सभी शब्दों का **उपदेशः**=व्युत्पत्ति करनी चाहिये। इससे खरगोश अर्थ में शश शब्द ही साधु होगा, षष शब्द नहीं, एवं धारण आदि अर्थों में 'मञ्चते इति मञ्चकः' यही साधु है, 'मञ्जकः' नहीं। इससे सभी शब्द सिद्ध हो जायेंगे। स्त्री, गार्ग्यायणी, कारीषगन्ध्या, कालितरा इत्यादि सभी शब्दों का आनुपूर्वी उपदेश होने से कहीं सन्देह नहीं रहेगा। अथवा खट्वा, माला आदि शब्दों का अकारान्तप्रयोग भी होता है। जैसे-'पञ्चभिः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

खट्वाभिः क्रीत इति पञ्चखट्वः, दशभिर्मालाभिः क्रीत इति दशमालः' में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' २.१.५१ से ठक् तथा ठक् का 'अध्यर्धपूर्वद्विगोर्लुगसंज्ञायाम्' ५.१.२८ से लुक् है। 'लुक् तद्धितलुकि' १.२.४६ से स्त्रीप्रत्यय टाप् का लोप होने पर पञ्चखट्वः, दशखट्वः, पञ्चमालः, दशमालः में खट्वा और मालाशब्द अकारान्त प्रयुक्त है। **स्त्रियाम्**।

अजाद्यतष्टाप् ४.१.४

***शूद्रा चाऽमहत्पूर्वा* शूद्रा चाऽमहत्पूर्वेति वक्तव्यम्। शूद्रा। अमहत्पूर्वेति किमर्थम्? महाशूद्री *जातिः* जातिरिति वक्तव्यम्। या हि महती शूद्रा-महाशूद्रा सा हि भवति। शूद्राशब्दोऽजादिषु पठ्यते, तत्र कः प्रसङ्गो यन्महत्पूर्वात् स्यात्!, नैव प्राप्नोति नार्थः प्रतिषेधेन। तदन्तविधिना प्राप्नोति।**

अज आदिर्येषान्तेऽजादयः, तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि, अजादयश्च अच्चेत्यनयोः समाहारोऽजाद्यत्, तस्मात्। इसमें 'स्त्रियाम्' ४.१.३ तथा '-प्रतिपदिकात्' ४.१.१ का अधिकार आता है।

सूत्रार्थ—'स्त्र्यर्थ में शक्त अजादिगणपठित और अदन्त प्रातिपदिक से पर में स्वार्थ में टाप् प्रत्यय हो'। जैसे-अजा, एडका इत्यादि। अदन्त-खट्वा।

यहाँ शब्दकौस्तुभकार 'अजाद्यतः' को षष्ठ्यन्त मानते हैं तथा अनुवृत्त 'प्रातिपदिकात्' को षष्ठ्यया विपरिणाम करते हैं, परन्तु 'स्त्रियाम्' ४.१.३ सूत्र पर भाष्य का निर्दुष्ट सिद्धान्त टाबादि प्रत्ययों का स्वार्थ में ही होना निश्चित हुआ है। मध्यमसिद्धान्ती के द्योतकत्वपक्ष को भी सिद्धान्ती ने पुष्ट किया है, अतः 'स्त्रीत्वे द्योत्ये टाप्' यह भी अर्थ साधु है, परन्तु इस पक्ष में अनुवृत्त 'प्रातिपदिकात्' इस पञ्चम्यन्तपद का षष्ठ्यन्त विपरिणाम करना होगा। 'अजाद्यतः' को पञ्चम्यन्त मान कर प्रातिपदिक से पर में स्वार्थ में टाप् का विधान करने से षष्ठ्या विपरिणाम नहीं करना पडता है, अतः आगे के सम्पूर्ण सूत्रों में स्वार्थ में ही टाप् आदि प्रत्ययों का विधान किया जायेगा, इसका पाठकगण ध्यान रखेंगे।

शूद्रा में 'जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्' ४.१.६३ से जातिलक्षण ङीष् प्राप्त है, उसका बाध करने के लिए अजादिगण में शूद्राशब्द का पाठ किया गया है, अतः टाप् से जातिलक्षण ङीष् का बाध हो जायेगा। परन्तु 'गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसंप्रत्ययः' न्याय के द्वारा 'शूद्रस्य स्त्री' इस विग्रह में 'पुंयोगादाख्यायाम्' ४.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१.८८ सूत्र से प्राप्त पुंयोगलक्षण ङीष् होगा, अतः 'शूद्रस्य स्त्री शूद्री' ऐसा ही होगा।

सिद्धान्त वार्तिक-**शूद्रा चेति**। अजादिगण में 'अजा, एडका, मूषिका, शूद्रा' यह स्त्रीप्रत्ययान्त शब्द पढे गये हैं। वहाँ गणपठित शूद्रा में 'अमहत्पूर्वा' कहना चाहिये। अर्थात् महत् शब्द पूर्व होने पर जातिलक्षण वाच्य होने पर भी आप् नहीं होगा, अपि तु वहाँ जातिलक्षण ङीष् हो कर 'महाशूद्री' यही प्रयोग होगा। अमहत्पूर्वा 'शूद्रा' ऐसा प्रयोग होगा, अत एव आगे का 'शूद्राशब्दोऽजादिषु पठ्यते' (अत्रैव) यह भाष्य संगत होता है।

प्रश्नभाष्य—**अमहत्पूर्वेति**। 'अमहत्पूर्वा' ऐसा निषेधवचन क्यों पढते हैं? प्रश्न में हेतु यह है कि 'महती शूद्रा महाशूद्रा' में समास की अपेक्षा अन्तरङ्ग होने से टाप् पहले होगा, उसके बाद सुप् उत्पन्न होने पर समास होगा, फिर 'जातसंस्कारो न निवर्तते' इस नियम से 'महाशूद्रा' यही रहेगा, टाप् की निवृत्ति दुःशक होगी, उसके लिए 'अमहत्पूर्वा' इस निषेध का कोई प्रयोजन नहीं है?

उत्तरभाष्य—**महाशूद्रीति**। महाशूद्र पद आनुपूर्वी समुदायविशिष्ट आभीर अर्थ का वाचक है, यहाँ अवयवार्थ नहीं है, अतः समुदायव्युत्पादन होने पर अवयवार्थ से स्त्रीत्वरूप अर्थ का बोध नहीं हो सकेगा। यहाँ पर अवयव का अर्थ की अविवक्षा में ही समास होगा। इस तरह टाप् प्राप्त होने पर जाति-लक्षण ङीष् का विधान करने के लिए 'अमहत्पूर्वा' यह निषेध पढा है।

जातिरिति—महाशूद्रशब्द आनुपूर्वीविशिष्टसमुदाय जब जातिवाची होगा तब टाप् का निषेध हो जायेगा, परन्तु जब महत्त्वविशिष्टा शूद्रा अर्थ को कहेगा तब 'महाशूद्रा' यह टाप्-घटित रूप ही होगा। जातिग्रहण नहीं होने पर भी 'अमहत्पूर्वा' इस प्रतिषेधसामर्थ्य से अन्तरङ्ग होने पर भी ङीष् से टाप् का बाध हो जायेगा।

प्रश्नभाष्य—**शूद्राशब्द इति**। अजादिगण में शूद्राशब्द का पाठ है, इससे शूद्रशब्द से ही टाप् प्राप्त होगा, महाशूद्रपद से नहीं। प्राप्ति होने पर ही निषेध होता है। जब महाशूद्रपद से टाप् प्राप्त नहीं है तब उसका निधषेवचन क्यों पढते हैं? प्राप्ति नहीं होने से 'अमहत्पूर्वा' यह निषेध व्यर्थ है।

उत्तरभाष्य—**तदन्तविधिनेति**। अजादिगण में शूद्रशब्द का पाठ है, इससे तदन्त-महाशूद्र पद को भी टाप् प्राप्त हो गया, अतः उस का निधषेवचन पढा गया है।

ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिः प्रतिषिध्यते। एवं तर्हि ज्ञापयत्याचार्यः-'भवतीह तदन्तविधिरि'ति। किमेतस्य ज्ञापने प्रयो-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जनम्? भवती, अतिभवती। महती, अतिमहती। अत्र तदन्त-विधिः सिद्धो भवति। जातिरिति च वक्ष्यामीति।

आक्षेपभाष्य—**ग्रहणवतेति**। 'ग्रहणवान् प्रातिपदिक से तदन्त का ग्रहण नहीं होता है' यह निधषेवचन है। इससे शूद्रशब्द से ही टाप् प्राप्त होगा, महाशूद्रशब्द से नहीं।

उत्तरभाष्य—**एवन्तर्हीति**। इस तरह यहाँ 'अमहत्पूर्वा' यह निषेधचवन पढ कर आचार्य वार्तिककार कात्यायन ज्ञापन करते हैं कि 'इह-स्त्रीलिङ्गप्रकरण में तदन्तविधि होती है'। इस ज्ञापन का फल यह है कि उगित् 'भवतु' से ङीप् होकर 'भवती' यह रूप होता है तथा 'भवन्तमतिक्रान्ता अतिभवती, महान्त-मतिक्रान्ता अतिमहती' में भी 'उगितश्च' ४.१.६ से उगिल्लक्षण ङीप् होता है। 'अमहत्पूर्वा' प्रतिषेध से तदन्तविधि सिद्ध होती है, अन्यथा प्रतिषेध के अभाव में महाशूद्री, महाशूद्रा में विषयविभाग होने से इनके साधुत्व की प्रतीति कठिन होती।

यद्येतज्ज्ञाप्यते-पञ्चाजी, दशाजी,-अत्रापि प्राप्नोति। नैष दोषः-अजादिभिरत्र स्त्रियं विशेषयिष्यामः-'अजादीनां या स्त्री'ति।

आक्षेपभाष्य—**यद्येतदिति**। यदि 'अमहत्पूर्वा' निषेध से तदन्तविधि का ज्ञापन करेंगे तो 'पञ्चानामजानां समाहारः पञ्चाजी, दशानामजानां समाहारः दशाजी' में भी अजाशब्दान्त है, अतः यहाँ भी टाप् प्राप्त होना चाहिये?

उत्तरभाष्य—**नैष दोष इति**। पञ्चाजी, दशाजी में तदन्तलक्षण टाप् की प्राप्ति नहीं होगी। इसके लिए हम अजादि से स्त्रीत्व को विशेषित करेंगे-'अजादि का वाच्य जो स्त्रीत्व उससे पर में टाप् हो'। ऐसा कहने से पञ्चाजी में पञ्चाज का वाच्य स्त्रीत्व है, अज का नहीं, अतः टाप् नहीं होगा। **अजाद्यतष्टाप्।**

उगितश्च ४.१.५

कथमिदं विज्ञायते-उगितः प्रातिपदिकादिति, आहोस्विदुगिदन्तात् प्रातिपदिकादिति? किं चातः? यदि विज्ञायते-'उगितः प्रातिपदिका-दि'ति। सिद्धं-भवती, महतीति। अतिभवती, अतिमहतीति न सिध्यति। तदन्तविधिना भविष्यति। ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्त-विधिः प्रतिषिध्यते।

'उगितः' पञ्चम्यन्त, 'च' अव्ययपद होने से यह दो पदों का सूत्र है। उक् इत् यस्य स उगित्। 'प्रातिपदिकात्, स्त्रियाम्' और ङीप्' का अधिकार है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूत्रार्थ—स्त्र्यर्थ-वाचक उगित् प्रतिपदिक से पर में ङीप् हो। जैसे-भवती, महती।

प्रश्नभाष्य—**कथमिदमिति**। 'प्रातिपदिकात्' ४.१.१ की अनुवृत्ति होती है। 'उगितः' के साथ उसका अन्वय है। विशेणविशेष्य में कामचार होने से जब 'प्रातिपदिकात्'पद को विशेषण तथा 'उगितः' को विशेष्य मानेंगे तब 'उगितः प्रातिपदिकान्ङीब्भवति' ऐसा अर्थ होगा। इस पक्ष में उगित् के विशेष्य होने से तदन्तविधि नहीं हो सकेगी, अतः भवती, महती में ही ङीप् हो सकेगा। परन्तु इस पक्ष में तदन्त अर्थ का लाभ नहीं होने से अतिभवती, अतिमहती में ङीप् की अप्राप्ति होने से अव्याप्ति रहेगी। यदि अधिकृत 'प्रातिपदिकात्' ४.१.१ को विशेष्य तथा 'उगितः' को विशेषण मानेंगे तब 'येन विधिस्तदन्तस्य' १.१.७२ तदन्त अर्थ का लाभ होने पर 'उगिदन्तात् प्रातिपदिकान्ङीप् स्याद्' ऐसा अर्थ होगा। इससे अतिभवती, अतिमहती में ङीप् सिद्ध होने पर भी भवती, महती में ङीप् की अप्राप्ति होने से अव्याप्ति स्पष्ट है। इस तरह 'उगितः' को विशेष्य अथ वा विशेषण जो भी माना जाये दोनों ही पक्षों में अव्याप्ति हो रही है, अतः 'कथमिदं विज्ञायते' यह पूर्वपक्षी का प्रश्न है।

उत्तरपक्षी आचार्य 'उगितः' को विशेष्य मानने के पक्ष में अतिभवती में ङीप् की सिद्धि के लिए प्रयास करते हैं-**तदन्तविधिनेति**। तदन्तविधि का ग्रहण होने से अतिभवती, अतिमहती में ङीप् सिद्ध होने से अव्याप्ति दूर हो जायेगी।

अन्य आचार्य इस का खण्डन करते हैं—**ग्रहणवतेति**। 'ग्रहणवान् प्रातिपदिक से तदन्तविधि नहीं होती है' परिभाषा से तदन्तविधि का प्रतिषेध होने से अतिभवती में ङीप् नहीं हो सकेगा।

अथ विज्ञायते-'उगिदन्तात् प्रातिपदिकादि'ति। सिद्धम्-अतिभवती, अतिमहती'ति। भवती, महतीति न सिध्यति। व्यपदेशिवद्भावेन भविष्यति। 'व्यपदेशिवद्भावोऽप्रातिपदिकेन'। उभयथा च-निर्गोमती, निर्यवमतीति न सिध्यति। किं कारणम्? 'प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स विहितस्तदादेर्ग्रहणं भवती'ति।

अमहत्पूर्वा प्रतिषेध से इस प्रकरण में तदन्तविधि ज्ञापित है, अतः उसको ध्यान में रख कर कहते हैं-**अथेति**। यदि 'उगितः' को विशेषण मानेंगे तो 'उगिदन्तात्प्रातिपदिकान्ङीप् स्यात्' ऐसा अर्थ होने पर अतिभवती, अतिमहती में ङीप् सिद्ध होने पर भी भवती, महती में ङीप् असिद्ध ही रहेगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इतर आचार्य—**व्यपदेशिवद्भावेनेति**। 'उगितः' को विशेषणपक्ष में व्यपदेशिवद्भाव के द्वारा भवती, महती में ङीप् हो जायेगा।

इतर आचार्य इसका खण्डन करते हैं-**व्यपदेशिवद्भाव इति**। प्रातिपदिक के ग्रहण में व्यपदेशिवद्भाव नहीं होता है। अन्यथा 'सपूर्वाच्च' ५.२.८७ सूत्र के रहते 'पूर्वादिनिः' ५.२.८६ नहीं पढते। यहाँ 'पूर्वादिनिः' ५.२.८६ सूत्र व्यर्थ पड कर 'व्यपदेशिवद्भावोप्रातिपदिकेन' का ज्ञापन करा देगा। इस परिभाषा से 'उगितः' को विशेषण तथा 'प्रातिपदिकात्' को विशेष्य मानने के पक्ष में व्यपदेशिवद्भाव के द्वारा भवती, महती में ङीप् नहीं हो सकेगा।

उभयथेति—चाहे 'उगितः' को विशेषण मानिये अथ वा विशेष्य मानिये, दोनों ही पक्षों में 'गोमतः निष्क्रान्ता इति निर्गोमती, यवमतः निक्रान्ता इति निर्यवमती' में ङीप् सिद्ध नहीं हो सकेगा। आद्य पक्ष में निर्गोमती में ङीप् इस लिए सिद्ध नहीं होगा कि उगित् मतुप् है, वह गोमान् में नुमर्थ है। द्वितीय अर्थ से भी यहाँ ङीप् सिद्ध नहीं हो सकेगा। वह इस तरह कि मतुप् के उगित् होने से उगिदन्त गोमत् शब्द है। समास कर देने पर निरादि निर्गोमान् और निर्यवमान् समुदाय से मतुप् विहित नहीं है, अपि तु गो और यव शब्द से पर में विहित है, अतः उभयपक्षों में निर्गोमती, निर्यवमती में ङीप् सिद्ध नहीं हो पायेगा। इस पक्ष में 'प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स विहितस्तदादेस्तदन्तस्य ग्रहणम्' परिभाषा के द्वारा मतुबन्त तदादि गोमान्, यवमान् ही लिया जायेगा, निर्गोमान्, निर्यवमान् नहीं।

यथेच्छसि तथाऽस्तु। अस्तु तावदुगितः प्रातिपदिकादिति। कथम्-अतिभवती, अतिमहतीति? तदन्तविधिना भविष्यति। ननु चोक्तं 'ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिः प्रतिषिध्यत' इति। नैतत् प्रातिपदिकग्रहणम्। प्रातिपदिकाऽप्रातिपदिकयोरेतद् ग्रहणम्। अथवा पुनरस्तु-'उगिदन्तात् प्रातिपदिकादि'ति। कथं भवती, महतीति? व्यपदेशिवद्भावेन भविष्यति। ननु चोक्तं 'व्यपदेशिवद्भावोऽप्रातिपदिकेने'ति। नैतत् प्रातिपदिकग्रहणम्। प्रातिपदिकाऽप्रातिपदिकयोरेतद्ग्रहणम्।

सिद्धान्ती आचार्य—**यथेच्छसि तथेति**। आप जैसा चाहते हैं वैसा कर लीजिये। 'उगितः' को विशेष्य ही मान लीजिये। इस पक्ष में आप ने अतिभवती, अतिमहती में अव्याप्ति दी थी, वह नहीं रहेगी। यहाँ 'अमहत्पूर्वा'ग्रहण से आचार्य वार्तिककार ने स्त्रीप्रत्ययप्रकरण में तदन्तविधि का ज्ञापन किया है, उससे अतिभवती, अतिमहती में ङीप् हो जायेगा। अथ च तदन्तविधि में आप ने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'व्यपदेशिवद्भावोऽप्रातिपदिकेन' के द्वारा **ग्रहणवता**=प्रातिपदिक के स्वरूपग्रहण में तदन्तविधि का प्रतिषेध कहा था, प्रकृत में वह भी दोष नहीं रहेगा। वह इस तरह कि उक्त परिभाषा प्रातिपदिक के ग्रहण में प्रवृत्त होती है। जब कि प्रकृत में 'उगितः' यह प्रातिपदिक का ग्रहण नहीं है, अपि तु प्रातिपदिक=भवतु आदि तथा अप्रातिपदिक=मतुप् आदि प्रत्यय, इन दोनों का ग्रहण है।

अथवा दूसरा अर्थ-'उगितः' को विशेषण मान कर तदन्त अर्थ ही कर लीजिये। इस पक्ष में आप ने भवती, महती में अव्याप्ति दी थी। उसका निवारण व्यपदेशिवद्भाव के द्वारा हो जायेगा। प्रयोगभेद से भवान्, भवती ऐसा जो शब्दरूप प्रयुक्त होते हैं, उसी का भवत् शब्द अन्त है, ऐसा मान कर भवती, महती इत्यादि में अव्याप्ति नहीं रहेगी। व्यपदेशिवद्भाव के पक्ष में आप ने 'व्यपदेशिवद्भावोऽप्रातिपदिकेन' ऐसा दोष दिया था, वह भी प्रकृत में नहीं रहेगा। जहाँ पर प्रातिपदिक का असाधारणरूप लिया जाता है वहीं पर प्रातिपदिक-ग्रहण में व्यपदेशिवद्भाव का प्रतिषेध होता है। प्रकृत में उगित् से प्रातिपदिक= भवतु इत्यादि तथा अप्रातिपदिक=मतुप् आदि प्रत्यय इन दोनों का ग्रहण है, अतः उक्त परिभाषा की प्रकृत प्रवृत्ति नहीं हो सकेगी।

यदप्युच्यते-'उभयथा निर्गोमती निर्यवमतीति न सिध्यति, किं कारणं?, प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स तदादेर्ग्रहणं भवति-'इति। नैतत् प्रत्ययग्रहणम्। प्रत्ययाऽप्रत्ययोरेतद् ग्रहणम्। कथम्? वर्णोऽप्युगित्, प्रत्ययोऽप्युगित्, प्रातिपदिकमप्युगित् * धातोरुगितः प्रतिषेधः *** धातोरुगितः प्रतिषेधो वक्तव्यः। उखास्रद् ब्राह्मणी,। पर्णध्वद् ब्राह्मणी *** अञ्चतेश्चोपसंख्यानम् *** अञ्चतेश्चोपसंख्यानं कर्तव्यम्। प्राची। प्रतीची *** उगित्यञ्चतिग्रहणात्सिद्धमधातोः *** उगिति-अञ्चतिग्रहणाद् अधातोः सिद्धम्। अञ्चतिग्रहणं नियमार्थं भविष्यति'अञ्चतेरेवोगितो धातोर्नान्यस्योगितो धातोरि'ति।**

एवं विशेष्यविशेषण के कामचारपक्ष में उभयपक्षों में निर्गोमती, निर्यवमती में ङीप् की अप्राप्ति दिखायी थी। उस पक्ष में प्रत्ययग्रहणपरिभाषा के द्वारा निर्गोमती में मतुप्रत्ययान्त गोमान् है निर्गोमान् नहीं, यह भी दोष नहीं रहेगा। उपर्युक्त परिभाषा प्रत्यय का असाधारणरूप के ग्रहणपक्ष में लगती है। यहाँ 'उगित्' में प्रत्ययमात्र का ग्रहण नहीं है, अपि तु प्रातिपदिक और प्रत्यय दोनों का ग्रहण है। वर्ण भी उगित् होते हैं। जैसे-'अर्वणस्त्रसावनञः' ६.४.१२७ में न् को तृ आदेश होने से ङीप् है। प्रत्यय भी उगित् होते हैं। जैसे-मतुप् आदि। प्राति-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पदिक भी उगित् होते हैं। जैसे-भवतु इत्यादि। अतः निर्गोमती, निर्यवमती इत्यादि में प्रत्ययग्रहणपरिभाषा के प्रवृत्त नहीं होने से मतुबन्ततदादि का ग्रहण नहीं हो सकेगा, इस तरह यहाँ ङीप् हो जायेगा।

एकदेशी आचार्य—**धातोरुगित इति**। उगित् धातु से पर में ङीप् का प्रतिषेध कहना चाहिये। जैसे-उखा=कुण्डी, उखायाः स्रंसते इति उखास्रत्, पर्णाद् ध्वसंते इति पर्णध्वत्। यहाँ उभयत्र स्रंसु धा.पा.७५४, ध्वंसु धा.पा.७५५ अवस्रंसने इस उगित् धातु से 'क्विप् च' ३.२.७६ से क्विप् है तथा उपपदसमास, सुब्लुक्, 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' ६.४.२४ से नलोप, हल्ङ्यादि के द्वारा सुलुक्, 'वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः' ८.२.७२ से दत्व होकर उखास्रत्, पर्णध्वत् रूप है। यहाँ उगित् मान कर ङीप् प्राप्त है, उसका निषेध कहना चाहिये।

एकदेशी आचार्य—**अञ्चतेश्चेति**। उगित् धातु से पर ङीप् का निषेध कहने पर अञ्चु गतिपूजनयोः धा. पा.१८८ धातु से भी ङीप् का निषेध प्राप्त होगा, अतः अञ्चु धातु से पर में ङीप् का विधान किया है। इससे प्राची, प्रतीची में ङीप् सिद्ध हो जायेगा।

सिद्धान्ती आचार्य—**उगित्यञ्चतिग्रहणादिति**। 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' ७.१.७० सूत्र में आचार्य ने अज्-ग्रहण से अञ्चु धातु का ग्रहण किया है। यदि धातु को उगित्-कार्य होता तो अञ्चु धातु को भी नुम् प्राप्त हो जाता, फिर अज्-ग्रहण व्यर्थ पड कर नियम करता है-'यदि धातु को उगित्कार्य हो तो अञ्चु को ही हो, अन्य उगित् धातु को नहीं '। इससे 'धातोरुगितः प्रतिषेधः' तथा 'अञ्चतेश्चोपसंख्यानम्' यह दोनों वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं है।। **उगितश्च**।

वनो र च ४.१.७

इह कस्मान्न भवति-निःशुनी, अतियूनीति? 'अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्ये'ति। एवमपि-मघोनी-अत्र प्राप्नोति। मघवञ्छब्दोऽव्युत्पन्नं प्रातिपदिकम् * वनो न हशः * 'वनो र चे'त्यत्र 'हशन्तान्न भवती'ति वक्तव्यम्। इह मा भूत्-'सह युध्वा ब्राह्मणी'ति। यदि 'न हश' इत्युच्यते-शर्वरीति न सिध्यति। विहितविशेषणं हश्ग्रहणं-'हशन्ताद्यो विहित' इति। एवमपि ईर गतौ-प्रेर्त्वरीति न सिध्यति। कथं चात्र तुगागमः? छान्दसत्वात्। ङीब्रावपि तर्हि च्छान्दसत्वादेव भवि-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ष्यतः * बहुलं छन्दसि * **'बहुलं छन्दसि' ङीब्रौ वक्तव्यौ'। यज्वरीरिषः। यज्वनीरिषः।**

'वनः' यह पञ्चम्यन्त पद है। वन् यहाँ प्रत्ययसामान्य का ग्रहण होने से ङ्वनिप्, क्वनिप् और वनिप् का सामान्यग्रहण है। 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' ४.१.५ से ङीप् की अनुवृत्ति है। 'र' यह लुप्तप्रथमाक है। अकार उच्चारणार्थक है। वन् प्रत्यय का ग्रहण होने से तदन्त अर्थ को कहेगा, अतः प्रातिपदिकविशेषण होने से तदन्तान्त अर्थ भी लब्ध होगा।

सूत्रार्थ—'स्त्र्यर्थक वन्नन्त और वन्नन्तान्तप्रकृति से पर में स्वार्थ में ङीप् हो तथा प्रकृति को र अन्तादेश हो'। जैसे-सुत्वान-मतिक्रान्ता अतिसुत्वरी, धीवान-मतिक्रान्ता अतिधीवरी, शर्वरी।

प्रश्नभाष्य—**इह कस्मान्नेति**। शुनः निक्रान्ता निःशुनी, यहाँ 'निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या' वा.१३३९ से समास होकर नान्तलक्षण ङीप् है। यद्यपि गौरादि ४.१.४१ गण में श्वन् शब्द का पाठ है तथापि प्रकृत प्रकरण में श्वन् शब्द के उपसर्जन होने से ङीष् नहीं हुआ। एवं 'युवानमतिक्रान्ता अतियूनी' यहाँ भी 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' वा.१३३६ से समास होकर नान्तलक्षण ङीप् है। पूर्वपक्षी का आक्षेप है कि वन्नन्त तथा वन्नन्तान्त से पर में ङीप् कहने पर निःशुनी और अतियूनी में ङीप् और रत्व क्यों नहीं होता है?

उत्तरपक्षी—**अर्थवद्ग्रहणेति**। वन् अर्थवान् के ग्रहण में अनर्थक का ग्रहण नहीं होगा। वन् प्रत्ययरूप अर्थवान् है तथा श्वन् और युवन्घटक वन् निरर्थक है।

प्रश्नभाष्य—**एवमपीति**। यदि अर्थवद्ग्रहणपरिभाषा से श्वन् और युवन्-शब्दघटक वन् के निरर्थक होने से ङीप्सन्नियोगशिष्ट रत्व का वारण कर भी लेंगे तब भी 'मघमस्याऽस्तीति मघवन्' इस विग्रह में 'छन्दसीवनिपौ वक्तव्यौ' इस भाष्यवार्तिक से मघशब्द से वनिप् विहित है, अतः मघवन्घटक वन् के अर्थवान् होने से मघोनी में ङीप् सन्नियोगशिष्ट रत्व क्यों नहीं होता है?

उत्तरपक्षी—**मघवञ्छब्द इति**। मघवन् शब्द अव्युत्पन्न प्रातिपदिक है। 'श्वन्नुक्षन्-' उण्णा.सू.१५७ सूत्र में मघवन् शब्द औणादिक क्वनिप्प्रत्ययान्त निपातित है। उण्णादि अव्युत्पन्न प्रातिपदिक होते हैं। उसमें व्युत्पत्तिनिमित्तक कार्य का होना आवश्यक नहीं है, यह बहुत स्थलों पर बताया जा चुका है।

सिद्धान्त वार्तिक—**वनो नेति**। हशन्त से पर में विहित वन् को ङीप् रत्व का निषेध कहना चाहिये। जैसे-'सह योधितवतीति सहयुध्वा' में 'सहे च' ३.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२.९६ से क्वनिप् है। यहाँ ङीप् और रादेश नहीं हुआ।

आक्षेपक आचार्य 'न हशः' की अव्याप्ति दिखाते हैं—**यदि 'न हश' इति**। यदि हशन्त से पर में वन् को ङीप् और रत्वनिषेध कहेंगे तो शर्वरी में भी निषेध प्राप्त होगा। वह इस तरह कि शॄ हिंसायाम् धा.पा.१४८९ धातु से पर में 'अन्येभ्योऽपि दृश्यते' ३.२.७५ से वनिप् हो कर प्रकृतिभाग को गुण, रपरत्व होने पर शर् यह हशन्त हो गया, इससे पर में वन् को ङीप्, रत्वनिषेध प्राप्त होगा।

उत्तरपक्षी—**विहितविशेषणमिति**। 'वनो न हशः' वार्तिक में वन् को विहित विशेषण मानेंगे। इससे हशन्त से विहित वन् को ही ङीप्, रत्वनिषेध प्राप्त होगा। प्रकृत में अजन्त से वन् विहित है, हशन्त से नहीं, अतः 'न हशः' यह निषेधवचन नहीं लगेगा।

इतर आचार्य 'न हशः' इस निषेधवचन की अतिव्याप्ति देते हैं-**एवमपि ईर इति**। प्रपूर्वक ईर गतौ धा.पा.१८११ धातु से वनिप् हो कर प्रेर्त्वरी में भी ङीप्, रत्वनिषेध प्राप्त होगा।

अन्य आचार्य—**कथं चात्रेति**। प्रेर्त्वरी में तुगागम कैसे है?

इतर आचार्य—**छान्दसत्वादिति**। प्रेर्त्वरी में छान्दस तुक् है।

उत्तरपक्षी—**ङीब्रावपीति**। यहाँ पर ङीप् और रत्व भी छान्दस कर लीजिये। 'सर्वे विधयश्छन्दसि विकल्प्यन्ते' परिभाषा से 'न हशः' यह छान्दसनिषेध विकल्प से होगा।

इस पक्ष में वार्तिककार कहते हैं-**बहुलमिति**। ङीप् और रत्व को वेद में बाहुलक से कहेंगे। इससे कहीं पर प्रवृत्ति तथा कहीं पर निषेध भी हो जायेगा। वस्तुतः 'प्र ईरशदोस्तुट् च' उणा.सू.५५६ इस औणादिक सूत्र से प्रेर्त्वरी में तुट् प्राप्त था, परन्तु उसकी उपेक्षा कर भाष्यकार ने 'छान्दसत्वात्' समाधान किया है। ङीप्, रत्व के छन्दः में बाहुलकात् होने से 'यज्वरीरिः' में भी ङीप्, रत्व होता है। यहाँ 'यज्वरीः+इः ऐसा पदच्छेद करना चाहिये। यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु धा.पा.१००२ धातु से 'सुयजोर्ङ्वनिप्' ३.२.१०३ से ङ्वनिप्, ङीप्, रत्व होकर यज्वरी शब्द से जस् पर रहते 'वा च्छन्दसि' ६.१.१०७ से पूर्वसवर्णदीर्घ है। 'यज्वरीः' यह सम्बोधन है। 'भो अश्विनौ द्रवत्पाणी शुभस्पती पुरुभूजौ! **यज्वरीः**!-यजनशीलाः! **वो**=प्रजाभ्य **इः**-रसवन्ति **चनस्**=दन्नानि देयत्वेन **चनस्यतम्**-प्रार्थयेथाम्' ऋग्वेदसं.म.१.सू.१मं.३. ऐसा मन्त्रार्थ है। बाहुलकात् ङीप्, रत्व का निषेध होने से 'यज्वनीरिः' में मात्र ङीप् ही हुआ है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'यज्वनीः+इः' ऐसा पदच्छेद करना चाहिये। अर्थ पूर्ववत् है।

*** रविधाने बहुव्रीहेरुपसंख्यानं प्रतिषिद्धत्वात् * रविधाने बहुव्रीहेरुपसंख्यानं कर्तव्यम्। बहुधीवरी। बहुपीवरी। किं पुनः कारणं न सिध्यति? 'प्रतिषिद्धत्वात्'। 'अनो बहुव्रीहे'रिति प्रतिषेधः प्राप्नोति * अनो बहुव्रीहेः प्रतिषेधे वोपधालोपिनो वावचनम् * अथ वा-अनो बहुव्रीहिप्रतिषेधे 'उपधालोपिनो वे'ति वक्तव्यम्। अन्यथा कृत्वा चोदितमन्यथा कृत्वा परिहारः!। यथोपसंख्यानं चादितं तथा-नित्याभ्यां ङीब्राभ्यां भवितव्यम्। यथा परिहारस्तथा विभषया भवि-तव्यम्!।**

वार्तिककार—**रविधान इति**। 'अनो बहुव्रीहेः' ४.१.१२ से रत्व का प्रति-षेध है, अतः बहुव्रीहि में वन्नन्त व तदन्तान्त को ङीप्, रत्व कहना चाहिये। जैसे-'बहवः धीवानो यस्यां नगर्यां सा बहुधीवरी, बहवः पीवानो यस्यां नगर्यां सा बहुपीवरी नगरी' में ङीप्, रत्व है। यहाँ 'अनो बहुव्रीहेः' ४.१.१२ से ङीब्निषेध प्राप्त है। ङीप्सन्नियोगशिष्ट रेफ का विधान है, अतः ङीप् के निषिद्ध होने से रत्व भी निषिद्ध हो जायेगा, अतः ङीप्, रत्वविधानार्थ 'वनो र च बहुव्रीहेः' एक ऐसा ही सूत्र पढना चाहिये था, यह वार्तिकार्थ है।

अनो बहुव्रीहेरिति। 'अनो बहुव्रीहेः' ४.१.१२ सूत्र के अनन्तर 'उपधा-लोपिनो वा' ऐसा सूत्र पढना चाहिये। इससे 'अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम्' यह सूत्र नहीं करना पडेगा। इस तरह जहाँ उपधा का लोप नहीं है वहाँ सुपर्वा इत्यादि में नित्य डाप् प्राप्त होगा। परन्तु जहाँ उपधा का लोप है वहाँ ङीप् का विकल्प होने से 'बहुराज्ञी, बहुराजा एवं बहुराजानौ' ऐसा तीन रूप होगा। डाप् के प्रतिषेध होने पर एकवचन में रूपभेद नहीं होने से 'बहुराजानौ' ऐसा द्विवचन का रूप उदाहरणस्पष्टार्थ दिया जा रहा है। एवम् उपधालोपी वन्नन्त का भी 'बहुधीवरी, बहुधीवा, बहुधीवानौ' ये तीन रूप होंगे।

दूसरे आचार्य पूर्वोक्त अभिप्राय न समझ कर कहते हैं—**अन्यथा कृत्वेति**। 'वनो न हशः' ऐसा निषेधवचन पढने से 'प्रेर्त्वरी' में ङीप्, रत्व का निषेध प्राप्त है। इसका परिहार आप ने छान्दसत्वात् किया है। जैसे 'वनो र च' सूत्र से नित्य ही ङीप्, रत्व प्राप्त है, परन्तु उसका परिहार आप ने विकल्प से दिखा कर 'यज्वरीरिः, यज्वनीरिः' में विकल्प से ङीप्, रत्व किया है। यदि यज्वनीः में ङीप् प्राप्त है तो तत्सन्नियोगशिष्ट रत्व भी होना चाहिये था, परन्तु इसका परिहार आप नें विकल्प से किया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यथोपसंख्यानं चोदितमेवमपि विभाषया भवितव्यम्। न ह्यत्र ङीब् दुर्लभः। सिद्धोऽत्र ङीप्-'अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्यमि'ति। ङीप्सन्नियोगेन र उच्यमानोऽन्येन सति न स्यादित्येवम् अर्थमुपसंख्यानं चोद्यते।

जबकि उचित यह है कि जिस क्रम से प्राप्ति है, उसी क्रम से निषेध और विकल्प भी होना चाहिये था। 'वनो र च' से ङीप्, रत्व प्राप्त है तो निषेध और विकल्प दोनों ही ङीप्, रत्व का एक साथ होना चाहिये था। परन्तु 'यज्वरीरिः, यज्वनीरिः' में यह क्रम नहीं रहा। अथ च 'बहुधीवरी, बहुपीवरी' में 'अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम्' ४.१.२८ से ङीप् प्राप्त होने से दुर्लभ नहीं है। ङीप् के सन्नियोग से रत्व कहा गया है तथा अन्य से ङीप् होने पर अन्य से रत्व नहीं हो सकेगा, अतः ङीप्सन्नियोग रत्वविधानार्थ 'रविधाने बहुव्रीहेरुपसंख्यानं प्रतिषिद्धत्वात्' वचन पढा गया है।

किं पुनः कारणं ङीप्सन्नियोगेन र उच्यते? इह मा भूत्-सुपर्वा, चारुपर्वेति। तत्तर्ह्युपसंख्यानं कर्तव्यम्? न कर्तव्यम्। वक्ष्यति-'डाबुभाभ्यामन्यतरस्या'मित्यत्राऽन्यतरस्यांग्रहणस्य प्रयोजनंडाप्रतिषेधाभ्याम्मुक्ते ङीब्रावपि यथा स्यातामि'ति। (वनो र च।।७।।)

पूर्वपक्षी—**किं पुनः कारणमिति**। ङीप्सन्नियोग रत्वविधान का क्या कारण है?, इन दोनों को अलग-अलग क्यों नहीं विधान किया गया है?

उत्तरपक्षी—**इह मा भूदिति**। यदि रेफ को ङीप्सन्नियोगविधान नहीं करके वन्नन्त को पृथक् रेफविधान करते तो 'बहुधीवरी, बहुपीवरी' इत्यादि में इष्ट रेफ के सिद्ध होने पर भी 'सुपर्वा, चारुपर्वा' में अनिष्ट रेफ की आपत्ति होती, वह न हो इसके लिए ङीप्सन्नियोगशिष्ट रेफ का विधान किया है।

पूर्वपक्षी—**तत्तर्ह्युपसंख्यानमिति**। तो क्या 'वनो र च' सूत्र के अनन्तर 'बहुव्रीहेश्च' 'उपधालोपिनो वा' यह वचन पढा जाना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। उक्त दोनों वचन पढने की आवश्यकता नहीं है। आगे 'डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्' ४.१.१३ सूत्र पर 'अन्यतरस्याम्' ग्रहण का प्रयोजन बतायेंगे-जिस पक्ष में डाप् और डाप् का प्रतिषेध दोनों नहीं होगा, उस पक्ष में ङीप् और रत्व होगा। इस तरह इष्ट सभी रूप संगृहीत हो जायेंगे तथा अतिरिक्त वचन पढने की आवश्यकता नहीं होगा।। **वनो र च**।।

न षट्स्वस्रादिभ्यः ४.१.१०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कस्यायं प्रतिषेधः? ङीबनन्तरस्तस्य प्रतिषेधः। अथेदानीं ङीपि प्रतिषिद्धे- * षट्संज्ञानामन्ते लुप्ते टाबुत्पत्तिः कस्मान्न स्यात् * 'अत' इति प्राप्नोति। असिद्धो नलोपस्तस्याऽसिद्धत्वान्न भविष्यति। परिगणितेषु कार्येषु नलोपोऽसिद्धो, न चेदन्तत्र परिगण्यते।

सूत्रार्थ—'षट्संज्ञक और स्वस्रादि से पर में ङीप् का निषेध हो'। जैसे- पञ्च, षट्, स्वसा, माता, दुहिता इत्यादि।

पूर्वपक्षी—**कस्यायं प्रतिषेध इति**। स्त्रीप्रत्ययप्रकरण में 'टाप्, डाप्, चाप्, ङीप्, ङीष्, ङीन्, ङील्, ऊङ्' और 'ति' ये नव प्रत्यय पढे गये हैं। 'न षट्स्वस्रादिभ्यश्च' से आप किसका निषेध कर रहे हैं?, सभी का या किसी एक का?

उत्तरपक्षी—**ङीबनन्तर इति**। विधि या निषेध अनन्तर को ही होता है। इससे पूर्व में ङीप् प्राप्त है, उसके अनन्तर 'न षट्स्वस्रादिभ्यः' निषेध है, अतः ङीप् का ही निषेध होगा।

पूर्वपक्षी—**अथेदानीमिति**। यदि ङीप् का प्रतिषेध है तो जहाँ पञ्च, दश इत्यादि में प्रत्यय का लुक् और न् का लोप होने पर अदन्त है वहाँ अदन्तलक्षण टाप् क्यों नहीं होता है?

उत्तरपक्षी—**षट्संज्ञेति**। टाप् की कर्तव्यता में त्रिपादि 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य च' ८.२.७ के असिद्ध होने से अदन्तत्व का विघात हो जायेगा, अतः टाप् प्राप्त नहीं है।

पूर्वपक्षी—**परिगणितेष्विति**। नलोप कहाँ-कहाँ असिद्ध होगा इसका परिगणन- 'नलोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति' ८.२.२ से किया गया है। परिगणन में टाप् परिगणित नहीं है, अतः टाप् की कर्तव्यता में नलोप असिद्ध नहीं हो सकेगा।

इदमपि तत्र परिगण्यते। कथम्? * प्रत्याहाराच्चापा सिद्धम् * 'सुबि'ति नेदं प्रत्ययग्रहणं, किन्तर्हिप्रत्याहारग्रहणम्। क्व सन्निविष्टानां प्रत्याहारः? प्रथमैकवचनात् प्रभृत्या चापः पकारात्। यदि प्रत्याहारग्रहणम्- * दोषस्त्वित्त्वे * इत्त्वे दोषो भवति। बहुचर्मिका। बहुवर्मिका। 'प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्यात' इतीत्त्वं न प्राप्नोति।

उत्तरपक्षी—**इदमपीति**। 'नलोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति' ८.२.२ सूत्र में भी आप् का परिगणन है। यहाँ सुप्पद से प्रत्यय का ग्रहण नहीं है, अपि तु 'स्वौजसमौट्-'४.१.२ के 'सु' से आरम्भ कर 'यङश्चाप्' ४.१.७४ के पकार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर्यन्त प्रत्यय का ग्रहण है, अतः आप् की कर्तव्यता में भी नलोप असिद्ध होगा।

प्रत्याहारग्रहणपक्ष में पूर्वपक्षी अतिव्याप्ति देता है-**यदि प्रत्याहारेति**। यदि 'नलोपः सुप्स्वरसंज्ञा-'८.२.२ सूत्र में सुब्ग्रहण से प्रत्याहार का ग्रहण करेंगे तो बहुचर्मिका, बहुवर्मिका में 'प्रत्ययस्थात् कात्-'७.३.४४ सूत्र से इत्त्व अप्राप्त रहेगा। आप्स्थानिक अत् को ही इत्त्व होता है। बहुचर्मन्, बहुवर्मन् पद नान्त है, अतः यहाँ टाप् की कर्तव्यता में नलोप के असिद्ध होने से टाप् अप्राप्त रहेगा, फिर तत्स्थानिक अत् नहीं होने से इत्त्व की अप्राप्ति होगी।

***तस्मान्नोभौ* तस्मात् 'षट्संज्ञकेभ्य उभौ न भवत' इति वक्तव्यम्। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। 'स्त्रियामि'ति वर्तते, स्त्रियां यत्प्राप्नोति तस्य प्रतिषेधः।**

षट्संज्ञानामन्ते टाबुत्पत्तिः कस्मान्न स्यात्?
प्रत्याहाराच्चापा सिद्धं दोषत्वित्त्वे, तस्मान्नोभौ।।

एकदेशी—**तस्मादिति**। अतः षट्संज्ञक से पर में ङीप् और टाप् दोनों का निषेध कहना चाहिये।

प्रश्नभाष्य—**तत्तर्हीति**। तो क्या 'षट्संज्ञकेभ्य उभौ न भवतः' यह अतिरिक्त वचन पढना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। अतिरिक्तवचन पढने की आवश्यकता नहीं है। 'स्त्रियाम्' ४.१.३ का अधिकार आता है। इससे स्त्रीलिङ्ग में शक्त प्रातिपदिक से पर में जो-जो प्रत्यय स्वार्थ में प्राप्त होंगे उन सभी का निषेध हो जायेगा। कारिका का अर्थ उपर की व्याख्या से स्पष्ट है, अतः पुनरुक्ति के भय से पुनः अर्थ नहीं किया जा रहा है। **न षट्स्वस्रादिभ्यः**।

डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम् ४.१.१३

किमर्थमुभाभ्यामित्युच्यते? उभाभ्यां योगाभ्यां डाब्यथा स्याद्-मन्नन्तादन्नन्ताच्च बहुव्रीहेः। नैतदस्ति प्रयोजनम्, प्रकृतमुभयमनुवर्तते।

यहाँ 'उभाभ्याम्' पद से इससे पूर्व में पठित 'मनः' ४.१.११ और 'अनो बहुव्रीहेः' ४.१.१२ यह दो सूत्र विवक्षित हैं। 'मनः' सूत्र के द्वारा मन्नन्त से पर में ङीप् का निषेध है। जैसे-सीमा, सीमानौ। एवम् 'अनो बहुव्रीहेः' के द्वारा अन्नन्त बहुव्रीहि से पर में ङीप् का निषेध है। जैसे-बहुयज्वा, बहु-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यज्वानौ। 'पूर्वोक्त इन दोनों सूत्रों के विषय में डाप् विकल्प हो' यह सूत्रार्थ है। डाप् होने पर 'सीमा, सीमे। बहुयज्वा, बहुयज्वे। डाप् के अभावपक्ष में 'सीमानौ, बहुयज्वानौ।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। सूत्र में 'उभाभ्याम्' पद का ग्रहण क्यों करते है?

उत्तरभाष्य—**उभाभ्यामिति**। 'मनः' और 'अनो बहुव्रीहेः' इन दोनों योगों से डाप् हो सके इसके लिए 'उभाभ्याम्' पद का ग्रहण किया गया है। 'योगाभ्याम्' में योगपद से योगस्था प्रकृति कही जा रही है। यदि 'उभाभ्याम्' पद का ग्रहण नहीं करते तो अनन्तर को ही डाब्विकल्प होने से 'अनो बहुव्रीहेः' ४.१.१२ से ही डाब्विकल्प होता, परन्तु 'उभाभ्याम्' कहने से 'मनः' ४.१.११ भी संगृहीत हो जाता है।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। 'उभाभ्याम्' ग्रहण का फल प्रकृत दोनों सूत्रों का संग्रह नहीं हो सकता है। 'डाबुन्यतरस्याम्' इतना सूत्र रखने पर भी स्वरितत्व-प्रतिज्ञा के बल से दोनों का अनुवर्तन हो जायेगा। जहाँ ङीप्रतिषेध होगा वहीं पर डाप् होगा। प्रतिषेधविधान किये विना ही मन्नन्त से डाप् कहते हैं। इसके बाद 'अनो बहुव्रीहेः' ४.१.१२ से भी डाप् का ही विधान होगा। इस तरह डाप् से ङीप् का बाध हो जायेगा। प्रतिषेध का कुछ भी प्रयोजन नहीं है, अतः उभयविधानसामर्थ्य से दोनों ही होगा, अतः उसके लिए 'उभाभ्याम्'ग्रहण की आवश्यकता नहीं है।

अथाऽन्यतरस्यां ग्रहणं किमर्थम्? अन्यतरस्यां डाब्यथा स्याड्, डापा मुक्ते विप्रतिषेधोऽपि यथा स्यादिति। नैतदस्ति प्रयोजनम्-इह डाबप्युच्यते, प्रतिषेधोऽपि तावुभौ वचनाद् भविष्यतः।

प्रश्नभाष्य—**अथाऽन्यतरस्यामिति**। 'अन्यतरस्याम्'पद का ग्रहण करने का क्या प्रयोजन है?

उत्तरभाष्य—**अन्यतरस्यामिति**। विकल्प से डाप् हो, डाप् के अभावपक्ष में प्रतिषेध भी हो सके, यह 'अन्यतरस्याम्'ग्रहण का प्रयोजन है।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। 'अन्यतरस्याम्'ग्रहण का उक्त प्रयोजन नहीं हो सकता है। मन्नन्त से और अन्नन्त बहुव्रीहि से मात्र डाप् का ही विधान कीजिये। 'मनः' ४.१.११ और 'अनो बहुव्रीहेः' ४.१.१२ से ङीप् का निषेध भी विहित है। इस तरह डाप् और निषेध दोनों हो जायेंगे, इसके लिए 'अन्यतरस्याम्' पद के ग्रहण की आवश्यकता नहीं है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इदं तर्हि प्रयोजनं-डाप्रतिषेधाभ्याम्मुक्ते ङीबपि यथा स्यात्। सिद्धोऽत्र ङीप्-'अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्यामि'ति। अथ तदन्यतरस्यांग्रहणं शक्यमकर्तुम्? बाढं शक्यम्। कथम्? इह डाबप्युच्यते, प्रतिषेधोऽपि, ङीबपि। तत्सर्वं वचनाद् भविष्यति। नैवं शक्यं विज्ञातुम्-अक्रियमाणे हि तत्राऽन्यतरस्यांग्रहणेऽनवकाशो ङीब् डाप्रतिषेधौ बाधेत। डाप्रतिषेधावप्यनवकाशौ तौ वचनाद् भविष्यतः। सावकाशौ डाप्रतिषेधौ। कोऽवकाशः? सुपर्वा, चारुपर्वेति। तस्मात्तदन्यतरस्यांग्रहणं कर्तव्यम्। इदं तु खल्वन्यतरस्यांग्रहणं शक्यमकर्तुम्। इदमप्यवश्यं कर्तव्यम्। किं प्रयोजनम्? 'डाप्रतिषेधाभ्याम्मुक्ते ङीब्रावपि यथा स्यातामि'ति। रविधाने बहुव्रीहेरुपसंख्यानं चोदितं तन्न वक्तव्यं भवति।

इस पर उत्तरपक्षी 'अन्यतरस्याम्' पद का ग्रहण करने का दूसरा प्रयोजन देते हैं-**इदं तर्हीति**। जिस पक्ष में डाप् भी नहीं है तथा निषेध भी नहीं है उस पक्ष में ङीप् हो सके इसके लिए 'अन्यतरस्याम्' पद का ग्रहण किया गया है।

खण्डनभाष्य—**सिद्धोत्रेऽति**। 'अन्यतरस्याम्' पदग्रहण का उपर्युक्त प्रयोजन भी नहीं हो सकता है। डाप् और निषेध से मुक्तपक्ष में 'अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम्' ४.१.२८ से ङीप् सिद्ध हो जायेगा। यदि सुपर्वा इत्यादि में जहाँ पर 'अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम्' ४.१.२८ से उपधालोपी नहीं होने से ङीप् प्राप्त नहीं है, उन स्थलों में ङीब्विधानार्थ 'डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्' सूत्रस्थ 'अन्यतरस्याम्'ग्रहण से पक्ष में ङीप् का अभावबोध करेंगे, तब 'अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम्' ४.१.२८ सूत्र नियम करेगा-'उपधालोपिन एवान्नन्तान्ङीब्भवति, नान्यस्माद्'। इस तरह 'अन्यतरस्याम्'पद का ग्रहण किया जाये, अथवा नहीं किया जाये, दोनों ही पक्षों में उपधालोपी अन् को ङीप् नहीं हो सकेगा।

उत्तरभाष्य—**अथेति**। 'डाबुभाभ्यामन्यतरस्यम्' सूत्रस्थ 'अन्यतरस्याम्' पद को रखिये। 'अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम्' ४.१.२८ सूत्र में 'अन्यतरस्याम्' पद को हटा दीजिये। इससे 'अन उपधालोपिनः' यह नियामक होगा। यदि दोनों 'अन्यतरस्याम्' पद को हटा देंगे तब 'सुपर्वा' में डाप् और ङीप्प्रतिषेध दोनों सावकाश है, बहुराजा में ङीप् से डाप् का बाध होने लगेगा। ऐसा न हो इसके लिए मात्र 'अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम्' ४.१.२८ सूत्र का 'अन्यतरस्याम् पद ही हटाया जा रहा है। इससे 'बहुराजा' में ङीप्, डाप्, और प्रतिषेध ये तीनों सिद्ध होते हैं, और 'सुपर्वा' में ङीप् का अभाव सिद्ध होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इतर आचार्य भी इसका समर्थन करते हैं—**बाढमिति**। 'अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम्' ४.१.२८ का 'अन्यतरस्याम्' पद ही हटाया जा सकता है। वह इस लिए कि 'डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्' सूत्र में 'अन्यतरस्याम्' पद का ग्रहण किया गया है, इससे डाप् भी विहित है, और प्रतिषेध भी विहित है, तथा 'अन्यतरस्याम्' पद का ग्रहण से ङीप् भी विहित है। इस सूत्र में 'अन्यतरस्याम्' पद का ग्रहण करने से ये तीनों हो जा रहे हैं, अतः 'बहुराजा, बहुराज्ञी, बहुराजानौ' ये सभी इष्ट रूप सिद्ध हो जायेंगे।

खण्डनभाष्य—**नैवमिति**। यहाँ 'अन्यतरस्याम्'ग्रहण से डाप्, ङीप् और प्रतिषेध ये तीनों प्राप्त नहीं हो सकते है। यदि 'अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम्' ४.१.२८ सूत्र में 'अन्यतरस्याम्'पद का ग्रहण नहीं करेंगे तो 'अन उपधालोपिनः' इतना मात्र सूत्र रखने से यह नित्यविधि होगा, उससे 'बहुराज्ञी' इस अन्नन्त-उपधालोपी से पर में ङीप् प्राप्त होगा तथा 'डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्' से डाप् और प्रतिषेध प्राप्त होगा। अन्नन्त-उपधालोपी का ङीप् अनवकाश होने से डाप् और प्रतिषेध का अपवाद होगा। परन्तु जब 'डाबुभाभ्याम्-' में 'अन्यतरस्याम्'ग्रहण करते हैं तब डाप् और प्रतिषेध दोनों का विकल्प होने से अभावपक्ष में ङीप् भी रहेगा।

इतर आचार्य—**डाप्प्रतिषेधावपीति**। डाप् और प्रतिषेध भी अनवकाश ही रहेंगे, अतः सूत्रारभसामर्थ्य से वे भी हो जायेंगे। ङीप् से डाप् और प्रतिषेध का बाध नहीं हो सकेगा।

अन्य आचार्य—**सावकाशाविति**। सुपर्वा और चारुपर्वा में डाप् और ङीप् दोनों ही सावकाश हैं, अतः 'अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम्' ४.१.२८ सूत्र में 'अन्यतरस्याम्'ग्रहण करना चाहिये। इससे यह सूत्र नियमार्थक होगा। यदि यहाँ 'अन्यतरस्याम्'ग्रहण नहीं करेंगे तो 'डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्' सूत्रस्थ 'अन्यतरस्याम्' पद का ग्रहण से बोधित विकल्प सुपर्वा इत्यादि में भी होने लगेगा जो इष्ट नहीं है। एवम् 'डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्' सूत्र में भी 'अन्यतरस्याम्' पद का ग्रहण करना चाहिये। इससे डाप् और प्रतिषेध के अभावपक्ष में ङीप् और रत्व भी हो सकेगा। इससे 'वनो र च' ४.१.७ सूत्र पर वातिककार ने 'रविधाने बहुव्रीहेरुपसंख्यानं प्रतिषिद्धत्वात्' यह वार्तिक पढा है, वह नहीं पढना पडेगा।

अथेह कथं भवितव्यं-बहवः श्वानोऽस्यां रथ्यायां, बहवो युवानोऽस्यां शालायामिति? बहुशूका, बहुयूकेति भवितव्यम्। का रूपसिद्धिः? डाप्, टिलोपः, सम्प्रसारणं, सम्प्रसारणपरपूर्वत्वं, नद्यृतश्चेति कप्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रश्नभाष्य—**अथेह कथमिति**। यदि 'बहवः श्वानोऽस्यां रथ्यायाम्' और 'बहवो युवानोऽस्यां शालायाम्' ऐसा विग्रह करेंगे तो समास होने पर कैसा रूप होगा? संशय में हेतु यह है कि यदि 'नद्यृतश्च' ५.४.१५३ के द्वारा नद्यन्त बहुव्रीहि से कप् का विधान है, अतः उपर्युक्त विग्रह में समास होने पर भी कप् होना चाहिये।

अथ वा 'नद्यन्त पदों का जो बहुव्रीहि उससे पर में कप् हो' ऐसा अर्थ करेंगे तो उपर्युक्त में नद्यन्त पदों का बहुव्रीहि नहीं होने से कप् की प्राप्ति नहीं हो सकेगी, इस तरह का संशय कर पूर्वपक्षी पूछता है-**अथेहेति**।

एकदेशी आचार्य—**बहुशूकेति**। उक्त विग्रह में बहुशूका,, बहुयूका रूप होगा। यहाँ 'डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्' से डाप्, डित्वसामर्थ्य से टिलोप, 'श्वयुवमघोनामतद्धिते' ६.४.१३३ से सम्प्रसारण, 'सम्प्रसारणाच्च' ६.१.१०८ से पूर्वपर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश, 'हलः' ६.४.२ सूत्र से सम्प्रसारण को दीर्घ होने पर नद्यन्त बहुव्रीहि हो गया, अतः 'नद्यृतश्च' ५.४.१५३ से कप् प्रत्यय होकर बहुयूका, बहुशूका रूपसिद्धि होगी। एकदेशी ने 'नद्यृतश्च' ५.४.१५३ सूत्र का 'नद्यन्त बहुव्रीहिं से कप् हो' ऐसा अर्थ मान कर भाष्य कहा है।

कपा तावन्न भवितव्यम्। किं कारणम्? नद्यन्तानां यो बहुव्रीहिरित्येवं तद्विज्ञायते, न चैष नद्यन्तानां बहुव्रीहिः। सम्प्रसारणेनापि न भवितव्यम्। वक्ष्यत्येतत्- *श्वादीनां सम्प्रसारणे नकारान्तग्रहणमनकारान्तप्रतिषेधार्थम्* इति। परपूर्वत्वेन चापि न भवितव्यम्। वक्ष्यत्येतत्- *सम्प्रसारणपूर्वत्वे समानाङ्गग्रहणमसमानाङ्गप्रतिषेधार्थम्* इति। तस्माद् बहुश्वा, बहुयुवेति भवितव्यमिति।

खण्डनभाष्य—**कपा तावन्नेति**। 'नद्यृतश्च' ५.४.१५३ सूत्र में 'नद्यन्त बहुव्रीहि' ऐसा अर्थ इष्ट नहीं है; अपि तु 'नद्यन्तानां यो बहुव्रीहिस्ततः कप् स्यात्' यह अर्थ इष्ट है। प्रकृत में नद्यन्तपदों का बहुव्रीहि नहीं है; अतः कप् नहीं हो सकेगा। एवम् सम्प्रसारण भी नहीं हो सकेगा। 'श्वयुवमघोनामतद्धिते' ६.४.१३३ सूत्र पर आचार्य वार्तिककार-'श्वादीनां सम्प्रसारणे नकारान्तग्रहणमनकारान्तप्रतिषेधार्थम्' ऐसा वचन कहेंगे। इससे नान्त श्वन् आदि शब्दों को ही सम्प्रसारण हो सकेगा। प्रकृत में डाप् प्रत्यय होने पर डित्वसामर्थ्य से टि का लोप होने से नान्त नहीं रहा, अतः सम्प्रसारण भी प्राप्त नहीं हो सकेगा। एवम् सम्प्रसारण होने पर 'सम्प्रसारणाच्च' ६.१.१०८ सूत्र से पूर्वपर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश कहा है, वह भी नहीं हो सकेगा। इसके लिए 'सम्प्रसारणाच्च'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

६.१.१०८ सूत्र पर वार्तिककार-'सम्प्रसारणपूर्वत्वे समानाङ्गग्रहणमसमानाङ्गप्रतिषेधार्थम्' ऐसा कहेंगे। इससे समान अङ्ग होने पर ही पूर्वरूप हो सकेगा। प्रकृत में डाप् प्रत्यय पर रहते पूर्वभाग प्रकृति की अङ्गसंज्ञा है, एवम् डाबन्त से पुनः स्वादि विहित होने पर स्वादिप्रत्यय पर रहते डाबन्त अङ्ग है। इस तरह सम्प्रसारण और डाबन्त की समान अङ्गसंज्ञा नहीं होने से प्रकृत में उकार और आकार का पूर्वरूप एकादेश नहीं हो सकेगा।

उपर्युक्त विग्रह में सिद्धान्ती आचार्य रूपसिद्धि बताते हैं—**तस्मादिति**। अतः 'बहवः श्वानोऽस्यां रथ्यायाम्' इस विग्रह में मात्र डाप् और टिलोप होकर बहुश्वा, एवं 'बहवो युवानो यस्यां शालायाम्' इस विग्रह में मात्र डाप् और टि लोप होकर बहुयुवा यही रूप होगा। **डाबुभाभ्याम्**।

अनुपसर्जनात् ४.१.१४

अनुपसर्जनादिति किमर्थम्? बहुकुरुचरा मथुरा। प्रियकुरुचरा मथुरा। नैतदस्ति प्रयोजनम्, कुरुचरशब्दात् प्रत्ययो विधियते, तत्र कः प्रसंगो-यद् बहुकुरुचरशब्दात् स्यात्?, नैव प्राप्नोति-नार्थः प्रतिषेधेन। तदन्तविधिना प्राप्नोति।

यह अधिकार सूत्र है। 'यूनस्तिः' ४.१.७७ सूत्रपर्यन्त इसका अधिकार चलेगा। इसका अधिकार ही स्त्रीप्रत्ययों का तदन्तविधि ज्ञापित करता है। यहाँ पर समास का अवयवभूत शास्त्रीय उपसर्जन ही गृहीत है। उसका तात्पर्य है कि अवयव को कहा गया कार्य समुदाय को नहीं होगा। जो कार्य अवयव में प्राप्त नहीं है वही समुदाय में प्राप्त होगा। जैसे-'जुगुप्सते' में गुपू रक्षणे धा. पा.३९५ को नित्य परस्मैपद होने से अवयव में आत्मनेपद प्राप्त नहीं है, अतः समुदाय में आत्मनेपद होता है। परन्तु जो अवयव में कृतार्थ है वह समुदाय में नहीं हो सकेगा। जैसे-पण व्यवहारे स्तुतौ च धा.पा.४३९ धातु से आत्मनेपद अवयव में चरितार्थ है, अतः 'पणयति' में आत्मनेपद नहीं होगा।

'ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिर्नास्ति' परिभाषा के द्वारा तदन्तविधि प्रतिषिद्ध है। प्राप्ति होने पर ही निषेध होता है। तदन्त में प्राप्ति नहीं होने से 'अनुपसर्जनात्' यह निषेध व्यर्थ है, ऐसा मान कर प्रश्न करते हैं-**अनुपसर्जनादिति**। 'अनुपसर्जनात्' यह निषेधवचन क्यों पढते हैं?

इतर आचार्य 'अमहत्पूर्वा' इस निषेधवचन से भी तदन्तविधि का ज्ञापन करते हैं, इसे 'अजाद्यतष्टाप्' ४.१.४ सूत्र पर बताया जा चुका है, अतः उत्तर देते हैं-**बहुकुरुचरेति**। 'बहवः कुरुचरा अस्यामिति बहुकुरुचरा मथुरा'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एवं 'प्रियाः कुरुचरा अस्यामिति प्रियकुरुचरा मथुरा' यहाँ उभयत्र कुरुचर शब्द समासार्थ में उपसर्जन है, अतः 'चरेष्टः' ३.२.१६ से ट होने पर टिल्-लक्षण ङीप् नहीं हुआ।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। 'टिड्ढाण-'४.१.१५ सूत्र में टित् प्रातिपदिक गृहीत है। वह कहीं साक्षात् लिया जायेगा। जैसे-नदट्, चोरट्। कहीं पर अवयव के द्वारा टित् लिया जायेगा। जहाँ अवयव में टित् अकिञ्चित्कर होगा वहाँ समुदायार्थ टित् होगा; जैसे-'सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यस्ट्युट्युलौ तुट् च' ४.३.२३। कहीं पर कृत् भी टित् होते हैं; जैसे-'ल्युट् च' ३.३.११५ यहाँ पर जो समुदाय जिस समुदाय से व्यभिचरित नहीं होता है तदर्थ अवयव को टित्त्व कहा गया है, इस अभिप्राय से कहा गया है-**कुरुचरशब्दादिति**। 'कुरुषु चरतीति कुरुचरी' में 'चरेष्टः' ३.२.१६ से कुरु उपपद रहते चर धातु से टित् ट प्रत्यय विहित है, कुरुचर से नहीं, अतः कुरुचर से ही पर में ङीप् होना चाहिये। बहुकुरुचर शब्द से पर में ङीप् का कौन सा अवसर है? चूँकि बहुकुरुचर शब्द से पर में ङीप् प्राप्त नहीं है, अतः उससे निषेध भी नहीं करना चाहिये।

उत्तरभाष्य—**तदन्तविधिनेति**। स्त्रीप्रत्ययप्रकरण में तदन्तविधि ज्ञापित है, अतः कुरुचर से ङीप् प्राप्त होने पर तदन्त बहुकुरुचर से भी प्राप्त होगा, अतः उसका विधि के लिए 'अनुपसर्जनात्' पढा गया है।

अत उत्तरं पठति- * अनुपसर्जनग्रहणमनर्थकं प्रातिपदिकेन तदन्तविधिप्रतिषेधात् *** अनुपसर्जनग्रहणमनर्थकम्। किं कारणम्? प्रातिपदिकेन तदन्तविधिप्रतिषेधात्। ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिः प्रतिषिध्यते *** ज्ञापकन्तु पूर्वत्र तदन्ताऽप्रतिषेधस्य *** एवन्तर्हि ज्ञापयत्याचार्यः-'पूर्वत्र तदन्तविधिप्रतिषेधो न भवती'ति।**

अब पूर्वपक्षी द्वारा पूछे गये 'अनुपसर्जनादिति किमर्थम्' का उत्तर देते हैं-**अनुपसर्जनग्रहणमिति**। प्रातिपदिक के स्वरूपमात्र का उच्चारण करने में तदन्तविधि का 'समासप्रत्ययविधौ प्रतिषेधः' ऐसा वचन पढ कर प्रतिषेध किया गया है, अतः तदन्त में प्राप्ति नहीं होने से अनुपसर्जनाधिकार व्यर्थ है। इस तरह तदन्त में स्त्रीप्रत्यय के अप्राप्त होने पर भी आचार्य ने जो अनुपसर्जनाधिकार किया वह व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा।

इस वात को इतर आचार्य कहते हैं—**ज्ञापकन्तु पूर्वत्रेति**। 'अनुपसर्जनात्' से पूर्व में पढे गये 'अजाद्यतष्टाप्' ४.१.४ से लेकर 'डाबुभाभ्याम्-'पर्यन्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तदन्तविधि का प्रतिषेध नहीं होता है।

किं ज्ञापने प्रयोजनम्? भवती, अतिभवती, महती, अतिमहतीत्यत्र तदन्तविधिः सिद्धो भवति। नैतदस्ति प्रयोजनम्,-उक्तमेतद्-वर्णोऽप्युगित्, प्रत्ययोऽप्युगित्, प्रातिपदिकमप्युगिदिति। इदन्तर्हि-बहुधीवरी, बहुपीवरीति? एतदपि नास्ति प्रयोजनम्। अत्राप्युक्तं-* रविधाने बहुव्रीहेरुपसंख्यानं प्रतिषिद्धत्वात् * इति। इदन्तर्हि-अतिधीवरी, अतिपीवरीति?

प्रश्नभाष्य—**किमिति**। इस ज्ञापन का क्या फल है?

उत्तरभाष्य—**अतिभवतीति**। 'अनुपसर्जनात्' से पूर्व में तदन्तविधि का ज्ञापन होने से भवती, महती में उगिल्-लक्षण ङीप् होता है तथा तदन्त अतिभवती, अतिमहती में भी उगिल्-लक्षण ङीप् सिद्ध हो जाता है।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। उगिदन्त से ङीप् होना तदन्तविधिज्ञापन का फल नहीं हो सकता है। इसके विषय में मैं पहले भी कह आया हूँ-वर्ण भी उगित् होते हैं, जैसे 'अर्वणस्त्रसावनञ्' ६.४.१२७ सूत्र में अर्वन् शब्द को तृ आदेश उगित् है, वहाँ अर्वती में ङीप् होता है। प्रत्यय भी उगित् होते हैं, जैसे-मतुप्, क्तवतु इत्यादि। एवं प्रातिपदिक भी उगित् होते हैं, जैसे-भवतु। इस तरह यहाँ प्रातिपदिकमात्र का ग्रहण नहीं होने से तदन्तविधि का प्रतिषेध नहीं हो सकेगा, अतः अतिभवती, अतिमहती में ङीप् सिद्ध हो जायेगा।

अब उत्तरपक्षी तदन्तविधिज्ञापन का अन्य प्रयोजन देता है-**इदन्तर्हीति**। 'बहवो धीवानो यस्यां नगर्यां सा बहुधीवरी नगरी, बहवः पीवानो यस्यां नगर्यां सा बहुपीवरी नगरी' यहाँ 'वनो र च' ४.१.७ से तदन्तान्त को रत्वसन्नियोगशिष्ट ङीप् होता है।

खण्डनभाष्य—**एतदपीति**। तदन्तज्ञापन का यह भी फल नहीं हो सकता है। बहुधीवरी, बहुपीवरी में रत्व और ङीप्सिद्धि के लिए मैंने 'वनो र च' ४.१.७ सूत्र पर 'रविधाने बहुव्रीहेरुपसंख्यानं प्रतिषिद्धत्वात्' वार्तिक कहा है, उसी से लक्ष्य सिद्ध हो जायेगा।

अब उत्तरपक्षी आचार्य तदन्तविधिज्ञापन का अन्य प्रयोजन देते हैं—**इदन्तर्हीति**। 'धीवानमतिक्रान्ता अतिधीवरी, पीवानमतिक्रान्ता अतिपीवरी' यहाँ बहुव्रीहि नहीं होने से ङीप् और रत्व प्राप्त नहीं हो सकेगा, अतः यहाँ पर तदन्त में ङीप् और रत्वविधान के लिए तदन्तविधि का प्रतिषेध है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

*** पूर्वसूत्रनिर्देशो वाऽऽपिशलमधीत इति * पूर्वसूत्रनिर्देशो वा पुनरयं वक्तव्यः। पूर्वसूत्रेऽप्रधानस्योपसर्जनमिति संज्ञा क्रियते, यावद् ब्रूयात् प्रधानाद् उत्पत्तव्यमप्रधानान्नेति तावदनुपसर्जनादिति। किं प्रयोजनम्? आपिशलमधीते ब्राह्मणी-आपिशला ब्राह्मणी। अण्णन्ताद् इतीकारो मा भूदिति।**

यदि 'अजाद्यतष्टाप्' ४.१.४ सूत्र पर 'अमहत्पूर्वा'निषेध से ही तदन्तविधि का ज्ञापन होना मान लिया जाये तो 'अनुपसर्जनात्' सूत्र से तदन्तज्ञापन का कोई प्रयोजन नहीं है, इस आशय से कहते हैं-**पूर्वसूत्रनिर्देश इति**। यहाँ वार्तिक में 'वा'शब्द 'तर्हि' अर्थ में है। अथ वा पूर्व में तदन्तविधि ज्ञापित होने पर भी 'उपसर्जन से भी तदन्तविधि हो' इस प्रयोजन का समुच्चय के लिए 'वा'शब्द है। वार्तिक में पूर्वसूत्रपद से पूर्वाचार्यकृत व्याकरण वाच्य है। वार्तिकार्थ-'अथ वा 'अनुपसर्जनात्' सूत्र में पूर्वाचार्यकृत व्याकरण में गृहीत अनुपसर्जन लेना चाहिये'। पूर्वाचार्यकृत व्याकरणशास्त्र में अप्रधान की उपसर्जनसंज्ञा की गयी है। इससे उनके अनुसार प्रधान से ही स्त्रीप्रत्यय उत्पन्न होना चाहिये, अप्रधान से नहीं। इससे 'आपिशला ब्राह्मणी' में अण्णन्त से ङीप् नहीं हो सकेगा। 'अपिशलस्य अपत्यं पुमानापिशलिः' यहाँ 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ् प्रत्यय, इञन्त 'आपिशलि से 'तेन प्रोक्तम्' अर्थ में 'इञश्च' ४.२.११२ से अण् प्रत्यय है। इस तरह 'आपिशलिना प्रोक्तमापिशलमधीते वेत्ति वा' इस विग्रह में अध्येत्री अर्थ में 'तदधीते तद्वेद' ४.२.५९ से अण् प्रत्यय एवं 'प्रोक्ताल्लुक्' ४.२.६४ से अण् का लुक् है। यहाँ प्रोक्तार्थक प्रत्यय अण् **उपसर्जन**=अप्रधान है, अतः आपिशला में ङीप् नहीं हुआ।

अथाऽनुपसर्जनादित्युच्यमाने कस्मादेवात्र न भवति? अण्णन्तं ह्येतदनुपसर्जनम्। नाऽनुपसर्जनग्रहणेनाऽणन्तं विशेष्यते'अणन्तादनुपसर्जनादि'ति। किं तर्हि? अणेव विशेष्यते-'अण्योऽनुपसर्जनमि'ति।

प्रश्नभाष्य—**अथानुपसर्जनादिति**। आचार्य अनुपसर्जनाधिकार कर रहे हैं। 'आपिशलमधीते' इस विग्रह में अध्येत्री अर्थ में अण् प्रत्यय किया गया है तथा उसका लुक् है। अध्येत्री अर्थ में विहित अण् प्रत्यय का लुक् होने पर भी 'यो हि शिष्यते स लुप्यमानार्थामभिधायी' इस नियम से अध्येत्र्यर्थक अण् का प्रकृतिभाग ही तदर्थ को कहेगा, अतः 'आपिशला' अनुपसर्जन ही है, उससे पर में ङीप् क्यों नहीं होता है?

उत्तरभाष्य—**नानुपसर्जनग्रहणेनेति**। हम यदि अनुपसर्जनग्रहण से अणन्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

को विशेषित कर 'अणन्त अनुपसर्जन से पर में स्त्रीप्रत्यय हो' ऐसा अर्थ करते तो 'आपिशला' में ङीप् हो सकता था, परन्तु ऐसा अर्थ न करके अनुपसर्जनग्रहण से अण् को ही विशेषित कर रहे हैं, इससे प्रोक्तार्थ उपसर्जन है तथा प्रोक्त अर्थ के द्वारा अण् प्रत्यय भी उपसर्जन है। परन्तु अध्येत्री अर्थ में जो अण् प्रत्यय उत्पन्न है, उसका लुक् हुआ है, अतः तदाश्रय ङीप् नहीं होता है। यदि 'आपिशला' में 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' १.१.६२ से भी अण् लाकर ङीप् करना चाहें तो वह भी इस लिए सम्भव नहीं है कि 'अण् योऽकारः' ऐसा नहीं मिलेगा, अतः 'आपिशला' में ङीप् नहीं होता है।

*** जातिशब्देभ्यस्त्वतिप्रसङ्गः * जातिशब्देभ्यस्त्वतिप्रसङ्गो भवति। अवन्ती। कुन्ती। गान्धारी * सिद्धन्तु जातेरनुपसर्जनत्वात् * सिद्धमेतत्। कथम्? अनुपसर्जनादित्युच्यते, न च जातिरुपसर्जनम्।**

पूर्वपक्षी अनुपसर्जनाधिकार की अतिव्याप्ति दिखाता है-**जातिशब्देभ्य इति**। अनुपसर्जनाधिकार की अतिव्याप्ति जातिशब्द से पर में होगी। जैसे-'अवन्तेरपत्यं स्त्री अवन्ती, कुन्तेरपत्यं स्त्री कुन्ती' यहाँ उभयत्र 'वृद्धेत्कोसलाजादञ् ञ्यङ्' ४.१.१७१ से ञ्यङ् प्रत्यय हो कर उसका 'स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च' ४.१.१७६ से लुक् है। एवं 'गान्धारेरपत्यं स्त्री गान्धारी' में 'साल्वेयगान्धारिभ्यां च' ४.१.१६९ के द्वारा विहित अ का 'अतश्च' ४.१.१७५ से लुक् है। यहाँ प्रत्ययार्थ के प्रति प्रकृत्यर्थ उपसर्जन है। 'दक्षस्यापत्यं स्त्री दाक्षी' में 'इतो मनुष्यजातेः' ४.१.६५ से ङीप् चरितार्थ है, अतः 'अवन्ती' इत्यादि में प्रत्ययार्थ के प्रति प्रकृत्यर्थ के उपसर्जन होने से 'जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्' ४.१.६५ से होने वाला ङीष् प्राप्त नहीं हो सकेगा।

उत्तरपक्षी इस अतिव्याप्ति को दूर करता है—**सिद्धन्त्विति**। अवन्ती इत्यादि में प्रत्ययार्थ के प्रति प्रकृत्यर्थ के उपसर्जन होने पर भी जाति अनुपसर्जन है, अतः जातिलक्षण ङीप् हो जायेगा।

एतदपि नास्ति प्रयोजनं-'स्त्रियामि'ति वर्तते, तेनाऽणं विशेषयिष्यामः-'स्त्रियां योऽण्विहित' इति। एवमपि काशकृत्सिना प्रोक्ता मीमांसा-काशकृत्स्नी, काशकृत्स्नीमधीते काशकृत्स्ना ब्राह्मणी,-अत्र प्राप्नोति।

इससे पूर्व में'पूर्वसूत्रनिर्देशो वाऽऽपिशलमधीत इति' ऐसा वचन कह कर आक्षेप किया था, भाष्यकार उसका प्रत्याख्यान कर रहे हैं-**एतदपि नास्तीति**। अनुपसर्जनाधिकार का 'आपिशला ब्राह्मणी' में अण्णन्त से ङीब्वारण भी फल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं है। 'स्त्रियाम्' ४.१.३ का अधिकार आ रहा है, हम 'स्त्रियाम्' से अण् को विशेषित करेंगे। अर्थ होगा-'स्त्र्यर्थ में विहित जो अण्, उससे पर में ङीप् हो'। ऐसा अर्थ करने से आपिशला में ङीप् की आपत्ति नहीं होगी। 'आपिशलमधीते' इस अर्थ में अण् प्रत्यय स्त्र्यर्थ में नहीं है, अपि तु अध्येत्री अर्थ में है, अतः आपिशला में ङीप् की आपत्ति नहीं होगी।

इस तरह अनुवृत्त 'स्त्रियाम्' को अण् से विशेषित करने पर आक्षेपक आचार्य अन्यत्र इसकी अतिव्याप्ति दे रहे हैं-**एवमपीति**। 'काशकृत्स्निना प्रोक्तेति काशकृत्स्नी मीमांसा', 'इञश्च' ४.२.११२ से 'तेन प्रोक्ता' उस अर्थ में अण्, अणन्त से ङीप् होकर काशकृत्स्नी रूप है, पुनः 'काशकृत्स्नीमधीते इति काशकृत्स्ना ब्राह्मणी' यहाँ अध्येत्री अर्थ में अण् प्रत्यय है, अतः अण् के द्वारा 'अध्येत्री' ऐसा स्त्र्यर्थ कहा जा रहा है। यदि आप 'स्त्रियाम्' से अण् को विशेषित करके 'स्त्रियां योऽण् विहितः' ऐसा अर्थ करेंगे तो 'काशकृत्स्ना ब्राह्मणी' में भी ङीप् की आपत्ति होगी।

नैष दोषः,-अध्येत्र्यामभिधेयायामण ईकारेण भवितव्यम्। यश्चात्राध्येत्र्यामभिधेयायामण् उक्तो, लुप्तः सः,-यश्च श्रूयते-उत्पन्नस्तस्मादीकार इति कृत्वा पुर्नन भविष्यति। इदन्तर्हि प्रयोजनम्-प्रधानेन तदन्तविधिर्यथा स्यात्-कुम्भकारी, नगरकारी। अत्र हि 'प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स तदादेर्ग्रहणं भवती'त्यवयवाद् उत्पत्तिः प्राप्नोति। 'कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणं भवती'ति संघातादुत्पत्तिर्भविष्यति। 'कृद्ग्रहण' इत्युच्यते, न चैतत्कृद्ग्रहणम्, कृदकृद्ग्रहणमेतत्,- कृदप्ययमण्, तद्धितोऽपि।

उत्तरपक्षी यह दोष हटाता है-**नैष दोष इति**। 'स्त्रियां योऽण् विहितः' इस अर्थ में 'काशकृत्स्ना ब्राह्मणी' में ङीप् की आपत्ति नहीं है। वह इस तरह कि 'अध्येत्री अर्थ का वाचक अण् से पर में ङीप् हो' ऐसा अर्थ करेंगे। प्रकृत में अध्येत्री अर्थ का वाचक अण् प्रत्यय का 'प्रोक्ताल्लुक्' ४.२.६४ से लुक् है, अतः लुक् से अण् का अपहार होने से उससे पर में ङीप् नहीं हो सकेगा। एवं जो अण् प्रकृत में श्रुत है, उससे पर में एक वार ङीप् उत्पन्न हो चुका है तथा 'लुक् तद्धितलुकि' १.२.४९ से उस ङीप् का लुक् हो चुका है। एक लक्ष्य में जब शास्त्र एक वार प्रवृत्त हो जाता है तब पुनः उसकी प्रवृत्ति उसी लक्ष्य में दुबारा नहीं होती है, अतः अकारान्त से अध्येत्री स्त्री अर्थ वाच्य होने पर टाप् प्रत्यय ही होगा, ङीप् नहीं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रयोजनवादी आचार्य—**इदन्तर्हीति**। 'इतरसूत्रों में प्रधान के साथ तदन्तविधि का ज्ञापन हो' इसके लिए अनुपसर्जनाधिकार है। इस ज्ञापन का फल देते हैं-**कुम्भकारीति**। 'कुम्भं करोति या सा कुम्भकारी' में 'कर्मण्यण्' ३.२.१ से अण् होकर अण्णन्तलक्षण ङीप् है। यदि अनुपसर्जनाधिकार नहीं करते तो प्रत्ययग्रहणपरिभाषा से अण्णन्त-तदादि 'कार' होगा, कुम्भकार नहीं। ङीप् की उत्पत्ति कार पद से होगी, कुम्भकार से नहीं। पुनः जब ङ्यन्त से अपत्यार्थक ढगादि की उत्पत्ति करेंगे तब ढगादि का योग भी कार से होगा, कुम्भकार से नहीं। परन्तु तब अनुपसर्जनाधिकार से प्रधान के साथ तदन्त अर्थ का ज्ञापन करते हैं तब ङीप् प्रत्यय अण्णन्तान्त से भी होता है। इस तरह कुम्भकार इस समुदाय से ङीप् होने से तन्निमित्तक अपत्यार्थक 'स्त्रीभ्यो ढक्' ४.१.१२० भी समुदाय से विहित होगा, तथा कित्-निमित्तक वृद्धि भी समुदाय के आदि अच् को होगी, 'कार' अवयव को नहीं।

खण्डनभाष्य—**कृद्ग्रहण इति**। 'कृदन्त के ग्रहण में गतिपूर्व और कारकपूर्व का भी ग्रहण होता है' यह परिभाषा है। प्रकृत में कृदन्त 'कार' के ग्रहण से कारकपूर्व कुम्भ और नगर का भी ग्रहण होगा, अतः समुदाय से ङीप् की उत्पत्ति मानी जायेगा, अवयव से नहीं।

अन्य आचार्य—**कृद्ग्रहण इति**। परिभाषा में कृद्ग्रहण कहा गया है। प्रकृत में अण् प्रत्यय गृहीत है। वह 'कृदतिङ्' ३.१.९३ के अधिकार में पठित है, अतः कृत्प्रत्यय भी है, तथा 'तद्धिताः' ४.१.७६ के भी अधिकार में है, अतः तद्धित भी है। इस तरह अण्-प्रत्यय का कृद्ग्रहण एवं तद्धितग्रहण से ग्रहण होता है। इस लिए अण् को कृत् प्रत्यय नहीं कह सकते हैं, अतः कुम्भकारी, नगरकारी में अण्णन्त मात्र 'कार' होगा, तथा उसी से ङीबुत्पत्ति होगी, तदन्त से नहीं, इसके लिए आचार्य ने अनुपसर्जनाधिकार पढा है।

एवन्तर्हि ईकारान्तेन समासो भविष्यति। यद्येवं लभ्येत कृतं स्यात्, तत्तु न लभ्यम्। किं कारणम्? अत्र हि गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासो भवती'ति समास एव तावद् भवति। समासे च कृतेऽवयवादुत्पत्तिः प्राप्नोति। अवयवादुत्पत्तौ सत्यां को दोषः? कौम्भकारेयो न सिध्यति। अवयवस्य वृद्धिस्वरौ स्याताम्। तस्माद् अनुपसर्जनाधिकारः।

उक्त ज्ञापन के विना ही पूर्वपक्षी कुम्भकारी, नगरकारी में समुदाय से ढक् आदि की उत्पत्ति सिद्ध करने के लिए कहता है-**एवन्तर्हीति**। 'कुम्भस्य कारी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुम्भकारी, नगरस्य कारी नगरकारी' यहाँ पर ईकारान्त-ङीबन्त के साथ 'उपपदमतिङ्' २.२.१९ से उपपदलक्षण समास करेंगे। समास होने पर तन्निमित्तक प्रातिपदिकसंज्ञा ङीबन्त पर होगी। 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ के अधिकार में विहित तद्धितप्रत्यय ढगादि के प्रातिपदिक से पर में विहित होने के कारण कुम्भकारी, नगरकारी इस समुदाय से होगा, अवयव से नहीं, अतः कुम्भकारी आदि में अवयव से ङीप् होने पर भी ढगादि प्रत्यय समुदाय से ही होंगे तथा किन्निमित्तक आदिवृद्धि समुदाय का आदि अच् को होगी, अवयव 'कार' के आदि अच् को नहीं।

उत्तरपक्षी—**यद्येवं लभ्येतेति**। यदि ङीबन्त के साथ समास हो सकता था तब तन्निमित्तक प्रातिपदिक से पर में अपत्यार्थक ढक् आदि हो सकता था, परन्तु यहाँ समास ङीबन्त के साथ न हो कर कृदन्त के साथ है।

इस पक्ष में भाष्यकार प्रमाण उद्धृत करते हैं—**अत्र हीति**। सुबन्त की उत्पत्ति से पूर्व ही कृदन्त के साथ गति, कारक और उपपद का समास होता है। समास होने के बाद अवयव-कार शब्द से ङीबुत्पत्ति होगी, समुदाय से नहीं।

इतर आचार्य—**अवयवादिति**। यदि अवयव से ङीबुत्पत्ति होगा तो क्या दोष होगा?

पूर्वपक्षी—**कौम्भकारेय इति**। अवयव से ङीबुत्पत्ति होने पर 'कौम्भकारेयः' की सिद्धि नहीं हो सकेगी। वह इस तरह कि 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ के अधिकार में तद्धितोत्पत्ति होती है। अवयव से ङीप् होने पर ङीबन्त से तद्धितोत्पत्ति होगी, अतः 'कुम्भकारी+ढक्, नगरकारी+ढक्' इस स्थिति में आदि अच् को किन्निमित्तक वृद्धि भी अवयव के आदि अच् को होगी, समुदाय के आदि अच् को नहीं। इस तरह इष्ट रूप 'कुम्भकार्या अपत्यं पुमान् कौम्भकारेयः, नगरकार्या अपत्यं पुमान् नागरकारेयः' सिद्ध नहीं हो सकेगा। एवं ढक् होने पर 'आद्युदात्तश्च' ४.१.३ से होने वाला आद्युदात्तस्वर भी अवयव को ही होगा, समुदाय को नहीं। प्रधान के साथ तदन्तविधि होने से समुदाय से ढक् आदि की उत्पत्ति तथा समुदाय को स्वर हो सके इसके लिए अनुपसर्जनाधिकार किया गया है।

*** अनुपसर्जनाधिकारे जातेर्ङीब्विधाने सुपर्ण्या उपसंख्यानम् * अनुपसर्जनाधिकारे जातेर्ङीब्विधाने सुपर्ण्या उपसंख्यानं कर्तव्यम्। सुपर्णी * न वा, समासस्याऽनुपसर्जनत्वाज्जातिवाचकत्वाच्च शब्दस्य सामान्येन ङीब्विधानम् * न वैष दोषः। किं कारणम्? समासस्याऽनुपसर्जन-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्वात्। समासोऽत्रानुपसर्जनम्। स च जातिवाचकः। समासस्यानुपसर्जनत्वात् तस्य जातिवाचकत्वाच्छब्दस्य सामान्येन ङीब्भविष्यति-'जातेरस्त्रीविषयादयोपधादि'ति। कथं कृत्वा चोदितं, कथं कृत्वा परिहारः? 'बहुव्रीहिरि'ति कृत्वा चोदितं, 'तत्पुरुष' इति कृत्वा परिहारः।

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये
चतुर्थाऽध्यायस्य प्रथमे पादे प्रथममाह्निकम्

●

पूर्वपक्षी आचार्य अनुपसर्जनाधिकार के पक्ष में अव्याप्ति दिखाते हैं-**अनुपसर्जनेति**। अनुपसर्जनाधिकार करने पर 'शोभनानि पर्णानि यस्याः सा सुपर्णी' इस विग्रहात्मक बहुव्रीहि में पर्ण शब्द उपसर्जन-अप्रधान है, अतः 'पाककर्णपर्णपुष्पफलमूलवालोत्तरपदाच्च' ४.१.६४ से विहित जातिलक्षण ङीष् प्राप्त नहीं हो सकेगा, अतः उसका विधान करना होगा।

उत्तरपक्षी आचार्य—**न वेति**। अनुपसर्जनाधिकार में सुपर्णी में ङीष् की अव्याप्ति नहीं होगी। 'शोभनानि पर्णानि यस्याम्' इस विग्रह में समास अनुपसर्जन है। 'जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्' ४.१.६३ से 'जातेः' की अनुवृत्ति 'पाककर्णपर्णपुष्पफलमूलवालोत्तरपदाच्च' ४.१.६४ सूत्र में होती है। यहाँ जातिवाचक शब्द का हम सामान्यरूप से ग्रहण करेंगे। 'शोभनानि पर्णानि यस्याम्' इस विग्रह में समास अनुपसर्जन और जातिवाची है, अतः जातिवचन अनुपसर्जन-समास होने से सुपर्ण पद से ङीष् सिद्ध हो जायेगा।

अन्य आचार्य—**कथं कृत्वेति**। पूर्वपक्षी ने क्या अर्थ करके पूर्वपक्ष उढाया था तथा उत्तरपक्षी ने क्या अर्थ करके उत्तरपक्ष दिया है?

इतर आचार्य—**'अनुपसर्जनात्'** ४.१.१४ पद में 'अविद्यमानमुपसर्जनम् अस्मिँस्तदुपसर्जनम्' ऐसा बहुव्रीहि मान कर सुपर्णी में पर्ण शब्द के उपसर्जन होने से ङीष् की अप्राप्ति दिखायी थी। उत्तरपक्षी ने 'न उपसर्जनमनुपसर्जनं तस्मात्' ऐसा तत्पुरुष मान कर समाधान किया है।

श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य
चतुर्थ अध्याय प्रथम पाद प्रथम आह्निक पर
डॉ. हरिनारायण तिवारी द्वारा रचित
'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

❀ प्रथमे पादे द्वितीयमाह्निकम् ❀

टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठ-क्ठञ्कञ्क्वरपः ४.१.१५

***** ढग्रहणे सानुबन्धकस्योपसंख्यानम् *** ढग्रहणे सानुबन्धकस्योपसंख्यानं कर्तव्यम्। कारिकेयी, हारिकेयी। किं पुनः कारणं न सिध्यति? *** अननुबन्धकग्रहणे हि न सानुबन्धकस्य *** अननुबन्धकग्रहणे हि न सानुबन्धकस्य ग्रहणं भवतीत्येषा परिभाषा कर्तव्या। कान्येतस्याः परिभाषायाः प्रयोजनानि?**

टित्, ढ, अण्, अञ्, द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच्, तयप्, ठक्, ठञ्, कञ् और क्वरप् इन द्वादश का समाहारद्वन्द्व होकर पञ्चमी-एकवचन है। ढादि एकादश प्रत्यय हैं, अतः प्रत्ययग्रहणपरिभाषा से तदन्त अर्थ लब्ध होगा। परन्तु टित् प्रत्यय भी है, जैसे-'ल्युट् च' ३.३.११५ से विहित ल्युट् आदि और 'सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च' ४.३.२३ से विहित ट्यु, ट्युल् आदि प्रत्यय। एवं टित् प्रातिपदिक भी हैं। जैसै-नदट्, चोरट् आदि।

सूत्रार्थ—'स्त्रीत्व का वाचक टिदन्त और ढादि-प्रत्ययान्तान्त अनुपसर्जन अदन्त प्रातिपदिक से पर में स्वार्थ में ङीप् हो'।

एकदेशी आचार्य—**ढग्रहण इति**। ढप्रत्यय के ग्रहण में सानुबन्धक का ग्रहण कहना चाहिये। 'करोतीति कारिका, हरतीति हारिका। कारिकाया अपत्यं स्त्री कारिकेयी, हारिकाया अपत्यं स्त्री हारिकेयी' में 'स्त्रीभ्यो ढक्' ४.१.१२० से ढक् प्रत्यय है।

प्रश्नभाष्य—**किं पुनरिति**। यदि ढग्रहण से सानुबन्धक का ग्रहण न किया जाये तो क्या कारण है कि 'कारिकेयी, हारिकेयी' में ढप्रत्ययान्त अदन्त प्रातिपदिक से ङीप् सिद्ध नहीं हो पायेगा?

उत्तरभाष्य—**अननुबन्धकेति**। यदि निरनुबन्धक ढ का ग्रहण करेंगे तो सानुबन्धक ढक् का ग्रहण नहीं हो सकेगा। इस पक्ष में 'न निरनुबन्धकग्रहणे सानुबन्धकस्य ग्रहणम्' यह परिभाषा है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जिज्ञासु का प्रश्नभाष्य—**कानीति**। निरनुबन्धकग्रहण परिभाषा का क्या प्रयोजन है?

***** तव्यग्रहणेऽतव्यद्ग्रहणम् *** तव्यग्रहणे तव्यद्ग्रहणं मा भूद् *** दिव्ग्रहणेऽदिवुग्रहणम् *** दिव्ग्रहणे दिवुग्रहणं मा भूद्। ननु चेयमपि कर्तव्या 'तदनुबन्धकग्रहणेऽतदनुबन्धकग्रहणं ने'ति। कान्येतस्याः परिभायाः प्रयोजनानि? *** यद्ग्रहणेऽप्यद्ग्रहणम् *** यद्ग्रहणे ण्यद्ग्रहणं मा भूद् *** अङ्ग्रहणेऽचङ्ग्रहणम् *** अङ्ग्रहणे चङ्ग्रहणं मा भूत् *** अज्ग्रहणेऽणज्ग्रहणम् *** अज्ग्रहणे णज्ग्रहणं मा भूत्।**

परिभाषा का प्रयोजन देते हैं-**तव्यग्रहण इति**। 'तव्यतव्यानीयरः' ३.१.९६ सूत्र से तव्य और तव्यत् ये दो कृत् प्रत्यय धातु से पर में भावकर्म अर्थ वाच्य होने पर विहित हैं। निरनुबन्धकग्रहण परिभाषा के मानने से तव्य के ग्रहण से तव्यत् का ग्रहण नहीं होगा, यह परिभाषा का प्रयोजन है। जैसे-'पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन' २.२.११ सूत्र से तव्य प्रत्यय के साथ षष्ठीसमास का निषेध है, वह तव्यत् के साथ नहीं होगा, अतः जब कृ धातु से तव्यत् करेंगे तब 'ब्राह्मणस्य कर्तव्यम्' इस विग्रह में 'ब्राह्मणकर्तव्यम्' ऐसा समास होगा, एवं 'तित् स्वरितम्' ६.१.१८५ के द्वारा कृत्स्वर से तव्यत् को स्वरित होने पर अन्तस्वरित होगा। परन्तु जब तव्य प्रत्यय के साथ समास करेंगे तब 'आद्युदात्तश्च' ३.१.३ के द्वारा कृत्-स्वर से 'त'शब्दघटक अकार उदात्त होगा।

निरनुबन्धकग्रहण परिभाषा का अन्य भी प्रयोजन देते हैं—**दिव्ग्रहण इति**। 'दिव औत्' ७.१.८४ सूत्र में निरनुबन्धक दिव् शब्द अव्युत्पन्न स्वर्ग अथ वा अन्तरीक्षवाची प्रातिपदिक अनुबन्धरहित का अथ वा 'दिवेर्डिवि' इससे औणादिक डिवि प्रत्ययान्त दिव् का ग्रहण है, अतः सु पर रहते उसी को औत्त्व होकर 'द्यौः' यह औत्त्वघटित रूप होता है। उक्त परिभाषा से दिव् इस निरनुबन्धक के ग्रहण से दिवु धा.पा.११०७ इस सानुबन्धक धातु का ग्रहण नहीं होता है, अतः 'अक्षैर्दिव्यतीति अक्षद्यूः' भी ऊठ् करने पर 'एकदेशविकृतमनन्यवत्' परिभाषा से औत्त्व की आपत्ति होती। परन्तु निरनुबन्धकग्रहणपरिभाषा के रहने से स्वर्गान्तरीक्षवाची अव्युत्पन्न दिव् प्रातिपदिक का ही ग्रहण होगा, सानुबन्धक 'दिवु' का नहीं, अतः इसके लिए परिभाषा करनी चाहिये।

इतर आचार्य—**ननु चेयमिति**। निरनुबन्धकग्रहण परिभाषा की तरह सानुबन्धकग्रहण परिभाषा भी करनी चाहिये-'सानुबन्धकग्रहणे न निरनुबन्धकस्य ग्रहणम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सानुबन्धक के ग्रहण में निरनुबन्धक का ग्रहण क्यों नहीं होता है? इस परिभाषा का प्रयोजन दिखाते हैं-**यद्ग्रहण इति**। 'यद्' के ग्रहण में ण्यद् का ग्रहण न हो, यह परिभाषा का प्रयोजन है। जैसे-'यतोऽनावः' ६.१.२१३ सूत्र के द्वारा द्व्यच् यत्प्रत्ययान्त को आद्युदात्त विहित है, वह यत्प्रत्ययान्त को ही हो,'ऋहलोर्ण्यत्' ३.१.१२४ से विहित ण्यत्-प्रत्ययान्त को न हो।

परिभाषा का अन्य प्रयोजन भी दिखाते हैं—**अङ्ग्रहण इति**। अङ् के ग्रहण होने पर चङ् का ग्रहण न हो। जैसे-'ऋदृशोऽङि गुणः' ७.४.१६ में अनिमित्तक गुणनिषेध है। 'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्' ३.१.४८ सूत्र द्वारा ण्यादि से पर में कर्त्रर्थक प्रत्यय पर रहते च्लि को चङ् आदेश है, यहाँ चकार की इत्संज्ञा होने पर अ रहेगा। परन्तु चघटक अ पर रहते 'अशिश्वियत्' में 'श्वयतेरः' ७.४.१८ से अत्त्व की प्रवृत्ति नहीं होगी।

परिभाषा का इतर प्रयोजन भी देते हैं—**अज्ग्रहण इति**। अच् के ग्रहण से णच् का ग्रहण न हो, इस के लिए भी परिभाषा करनी चाहिये। 'एरच्' ३.३.५६ के ग्रहण में 'कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम्' ३.३.४६ तथा 'णचः स्त्रियामञ्' ५.४.१४ का ग्रहण नहीं होगा।

ते द्वे एते परिभाषे कर्तव्ये? न कर्तव्ये। आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति-भवत एते परिभाषे इति-यदयं 'वामदेवाड्यड्ड्याविति' यथतौ डितौ करोति।

अन्य आचार्य—**ते द्वे एते इति**। तो क्या ये दोनों परिभाषायें करनी चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न कर्तव्ये इति**। उपर्युक्त दोनों परिभाषायें अलग से पढने की आवश्यक नहीं है। 'वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ' ४.२.९ सूत्र पर आचार्य ने 'य' और 'यत्' दोनों को डित् किया है, इससे दोनों परिभाषाओं का ज्ञापन हो जायेगा। तित् अनुबन्धविर्निमुक्त ड्य के ग्रहण से सानुबन्धक तित्-विशिष्ट ड्यत् का ग्रहण नहीं हो रहा है, एवं सानुबन्धक तित् ड्यत् प्रत्यय के ग्रहण से निरनुबन्धक ड्य का ग्रहण नहीं हो रहा है, अतः ड्यप्रत्ययघटक डित्कार्य ड्यत् में प्राप्त नहीं है, एवं ड्यत्प्रत्ययघटक डित्कार्य ड्य में प्राप्त नहीं है। इस तरह ड्य और ड्यत् का डित्करण ही दोनों परिभाषाओं का ज्ञापन कर देगा।

तत्तर्ह्युपसंख्यानं कर्तव्यम्? न कर्तव्यम्। अननुबन्धको ढशब्दः स्त्रियां नास्तीति कृत्वा सानुबन्धकस्य ग्रहणं विज्ञास्यते। ननु चायमस्ति 'शिलाया ढ' इति। नैष स्त्रियां वर्तते। 'अयं तर्हि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'सभाया यः' 'ढश्छन्दसी'ति। एषोऽपि न स्त्रियां वर्तते। किं कारणम्? 'तत्र साधुरि'ति वर्तते। कथं च स्त्री नाम सभायां साध्वी स्यात्?

प्रश्नभाष्य—**तत्तर्हीति**। तो क्या 'ढग्रहणे सानुबन्धकस्योपसंख्यानम्' यह परिभाषा करनी चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न कर्तव्यमिति**। निरनुबन्धक ढ प्रत्यय कहीं पर भी स्त्र्यर्थ में विहित नहीं है, अतः असम्भव होने से सानुबन्ध का ही ग्रहण होगा।

आक्षेपक आचार्य—**ननु चायमिति**। आप कैसे कहते हैं कि निरनुबन्धक ढ प्रत्यय स्त्रीलिङ्ग में नहीं है? 'शिलाया ढः' ५.३.१०२ सूत्र से विहित ढ प्रत्यय स्त्रीलिङ्ग में है।

खण्डनभाष्य—**नैष दोष इति**। 'शिलाया ढः' ५.३.१०८ सूत्र से विहित ढ प्रत्यय स्त्रीलिङ्ग में नहीं है। 'शिला इव शिलेयम्' इस विग्रह में इवार्थ में ढ प्रत्यय तथा शब्दशक्तिस्वभाववश नपुंसक लिङ्ग में है।

आक्षेपक आचार्य—**अयं तर्हीति**। 'सभाया यः' ४.४.१०५ के अधिकार में विहित 'सभायां साधुः सभेयः' में छन्दः में 'ढश्छन्दसि' ४.४.१०६ से ढ विहित है, वह स्त्रीलिङ्ग में है।

उत्तरपक्षी—**एषोऽपीति**। 'ढश्छन्दसि' ४.४.१०६ भी स्त्रीलिङ्ग में नहीं है। वह इस तरह कि 'ढश्छन्दसि' ४.४.१०६ सूत्र 'तत्र साधुः' ४.४.९८ के अधिकार में विहित है। स्त्री सभा में साध्वी नहीं होती है। यज्ञ और सभा में विद्वान् पुरुष ब्राह्मणों का ही अधिकार है, स्त्री का नहीं। यदि 'सभायां साधुरियं ब्राह्मणपङ्क्तिः, परिषद् वा' ऐसा कहेंगे तो स्त्र्यर्थ का भी सभा में साधुत्व सम्भव हो जायेगा, परन्तु ऐसा इस लिए नहीं कहा जा सकता है कि वेद में सभेय शब्द का इस अर्थ में प्रयोग नहीं है। व्याकरणशास्त्र शिष्टप्रयुक्त शब्दों का निर्वचन करता है, अपूर्व शब्द की निष्पत्ति नहीं।

*** अञ्ग्रहणमनर्थकं तदन्ताद्धि ङीन्विधानम् * अञ्ग्रहणमनर्थकम्। किं कारणम्? 'तदन्ताद्धि ङीन्विधानम्'। तदन्ताद्ध्यञन्तान्ङीन् विधीयते-'शार्ङ्गरवाद् यञो ङीन्नि'ति। न चास्ति विशेषोऽञन्तान्ङीनो वा ङीपो वा। तदेव रूपं, स एव स्वरः * न वा जात्यधिकारात् * न वाऽनर्थकम्। किं कारणम्? 'जात्यधिकारात्'। जातेरिति**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तत्राऽनुवर्तते। अजात्यर्थोऽयमारम्भः। औत्सी, औदपानी। तच्चावश्यं जातिग्रहणम् अनुवर्त्यम्. * अनधिकारे हि पुंयोगादाख्यायां ङीन्प्रसंगः * अननुवर्तमाने हि जातिग्रहणे पुंयोगादाख्यायां ङीन्प्रसज्येत-बैदस्य स्त्री बैदीति।

पूर्वपक्षी—**अञ्ग्रहणमिति**। 'टिड्ढाणञ्-' ४.१.१५ सूत्र में अञ् ग्रहण नहीं करना चाहिये था। 'शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्' ४.१.७३ सूत्र से अञन्त से ङीन् का विधान है। अञन्त से चाहे ङीन् करें, अथ वा ङीप् करें, कोई रूपभेद नहीं है, एवं स्वर में भी दोष नहीं आयेगा। ङीन् करने पर 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' ६.१.१९७ से आद्युदात्त होगा तथा ङीप् होने पर भी 'आद्युदात्तश्च' ३.१.३ से आद्युदात्त होगा। इस तरह रूप और स्वर किसी में भी भेद नहीं होने से 'टिड्ढाणञ्-' ४.१.१५ सूत्र में अञ्ग्रहण व्यर्थ है।

खण्डनभाष्य—**न वेति**। उक्त सूत्र में अञ्ग्रहण व्यर्थ नहीं है। 'जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्' ४.१.६३ सूत्र से 'जातेः' इस पञ्चम्यन्तपद की अनुवृत्ति 'शार्ङ्गरवाद् यञो ङीन्' ४.१.७३ में होती है, अतः जाति वाच्य होने पर अञन्त से ङीन् होगा। जहाँ जाति वाच्य नहीं है वहाँ अञन्त से ङीप्-विधान के लिए अञ्ग्रहण किया गया है। इस तरह रूपभेद तथा स्वरभेद नहीं होने पर भी अर्थभेद स्पष्ट है। जैसे 'उत्से भवा औत्सी' यहाँ भव आदि अर्थो 'उत्सादिभ्योऽञ्' ४.१.८६ से अञ् का विधान है, अतः जाति वाच्य नहीं होने से अञन्तलक्षण ङीप् है। एवम् 'उदपाने भवा औदपानी' यहाँ भी उदपान शब्द के उत्सादिगणपठित होने से भव आदि अर्थों में अञ् है, अतः जाति वाच्य नहीं होने से अजातिलक्षण अञन्त से ङीप् है।

शार्ङ्गरवादिसूत्र में 'जातेः' की अनुवृत्ति की जाये [illegible]वा नहीं? इस संशय का उच्छेद करते हैं-**तच्चावश्यमिति**। 'जातेः' का 'शार्ङ्गरवाद् यञो ङीन्' ४.१.७३ में अवश्य अनुवर्तन करना चाहिये।

अनुवर्तन न करने के पक्ष में दोष देते हैं—**अनधिकारे हीति**। उत्तरसूत्रों में 'जातेः' की अनुवृत्ति नहीं करने पर 'पुंयोगादाख्यायाम्' ४.१.४८ से ङीन् की प्रवृत्ति होगी। जैसे-'बिदस्यापत्यं पुमान् बैदः' में 'अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्' ४.१.१०४ से अ होकर 'बैद' शब्द अञन्त है। 'बैदस्य स्त्री बैदी' यहाँ पर भगिनी अर्थ में जातिनिमित्त बैद शब्द प्रवृत्त है, पुंयोगनिमित्त नहीं, इस बा[illegible] को 'बैदस्य भगिनी' पद से स्पष्ट किया है।

यदि तर्ह्यस्य निबन्धनमस्तीदमेव कर्त्तव्यं तन्न कर्त्तव्यम्। तद-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्यवश्यं कर्त्तव्यम्। अक्रियमाणे हि तस्मिन् बैदस्य भगिनी बैदीति परत्वाज्जातिलक्षणो ङीष् ङीपं बाधेत। ङीनि पुनः सति परत्वान्ङीन् ङीषं बाधते * ख्युन उपसंख्यानम् * **ख्युन उपसंख्यानं कर्तव्यम्। आढ्यङ्करणी, सुभगङ्करणी। अत्यल्पमिदमुच्यते-ख्युन इति** * नञ्स्नञ्ञीकक्ख्युंतरुणतलुनानामुपसंख्यानम् * **नञ्स्नञीकक्ख्युंतरुणतलुनानाम् उपसंख्यानं कर्तव्यम्।** नञ्, स्नञ्-**स्त्रैणी, पौंस्नी। ईकक्-शाक्तीकी, याष्टीकी।** ख्युन्-**आढ्यङ्करणी, सुभगङ्करणी।** तरुण, तलुन-**तरुणी, तलुनी।**

उत्तरपक्षी के आशय को न समझते हुए इतर आचार्य मध्य में प्रश्न करते हैं-**यदि तर्ह्यस्येति**। यदि 'पुंयोगादाख्यायाम्' ४.१.४८ ङीन् का निमित्त है तो यही सूत्र रखिये, 'टिड्ढाणञ्-' ४.१.१५ सूत्र में अञ्ग्रहण न कीजिये। उत्तरपक्षी-'टिड्ढाणञ्-' सूत्र में अञ्ग्रहण भी करना चाहिये। यदि यहाँ अञ्ग्रहण नहीं करेंगे तो 'बैदस्य भगिनी बैदी' में जातिनिमित्त बैद शब्द है, पुंयोगनिमित्त नहीं। 'जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्' ४.१.६३ से विहित जातिलक्षण ङीष् अञन्तलक्षण ङीप् की अपेक्षा से पर है, अतः परत्वात् ङीष् से ङीप् का बाध हो जायेगा।

वार्तिक—**ख्युन उपसंख्यानमिति**। ख्युन्प्रत्ययान्त से भी ङीप् कहना चाहिये। जैसे-'अनाढ्यः आढ्यः क्रियतेऽनयेति आढ्यङ्करणी, असुभगः सुभगः क्रियतेऽनयेति सुभगङ्करणी' यहाँ उभयत्र अच्व्यन्त च्व्यर्थ आढ्य और सुभग उपपद रहते डुकृञ् करणे धा.पा.१४७३ धातु से 'आढ्यसुभगस्थूलपलितनग्नान्धप्रियेषु च्व्यर्थेष्वचौ कृञः करणे ख्युन्' ३.२.५६ से ख्युन् प्रत्यय है, तदन्त से ङीप् कहना चाहिये। **अत्यल्पमिदमिति**। ख्युनन्त से ङीप्-विधान अत्यल्प है। नञ्, स्नञ्, ईकक्, ख्युन्, तरुण और तलुन से भी पर में ङीप् कहना चाहिये। यहाँ नञ् आदि चार प्रत्यय हैं तथा तरुण और तलुन प्रातिपदिक है। **नञ्, स्नञ्**–'स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्' ४.१.८७ से नञ् होकर स्त्रैण तथा पुंस् से स्नञ् होकर पौंस्न रूप है। इस नञन्त और स्नञन्त से ङीप् होकर स्त्रैणी, पौंस्नी रूप बनता है। **ईकक्**, जैसे-शाक्तीकी, याष्टीकी, यहाँ उभयत्र 'शक्तियष्ट्योरीकक्' ४.४.५९ से ईकक् प्रत्यय है। तदन्त से ङीप् हुआ है। ख्युन् का उदाहरण आढ्यङ्करणी, सुभगङ्करणी समझा जा चुका है। **तरुण**-तरुणी, **तलुन**-तलुनी' यहाँ दोनों प्रातिपदिक से पर में ङीप् है। **टिड्ढाणञ्-**।

यङश्च ४.१.१६

* आपत्यग्रहणंद्वीपाद्यञः प्रतिषेधार्थम् * **आपत्यग्रहणं कर्तव्यं 'द्वीपा-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्यञः प्रतिषेधार्थम्', इह मा भूद्-द्वैप्येति। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यं, नैवं विज्ञायते-'कञ्क्वरपो यञश्चे'ति। कथं तर्हि? 'कक्वरपो-ऽयञश्चे'ति।

सूत्रार्थ—'ड्यन्त से स्वार्थ में ङीप् हो'। जैसे-गर्गस्य गोत्रापत्यं स्त्री गार्गी। यहाँ 'गर्गादिभ्यो यञ्' ४.१.१०५ से यञ् तथा यञन्त से ङीप् है।

एकदेशी आचार्य—**आपत्यग्रहणमिति**। अपत्ये भवः आपत्यः- आपत्यार्थक यञ् प्रत्यय से पर में ङीप् कहना चाहिये। इससे 'गार्गी' में ङीप् सिद्ध होगा। परन्तु 'द्वीपे भवा द्वैप्या' में भी द्वीप पद से भवार्थ में 'द्वीपादनुसमुद्रं यञ्' ४.३.१० से यञ् है, अतः अपत्यार्थक यञ् नहीं होने से द्वैप्या में यञन्तलक्षण ङीप् की प्राप्ति नहीं रही।

प्राश्निक आचार्य—**तत्तर्हीति**। तो क्या 'आपत्यग्रहणं द्वीपाद्यञ्प्रतिषेधार्थम्' यह वचन पढना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। 'टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्क-ञ्क्वरपोयङश्च' ऐसा संहितापाठ है। इसका 'कक्वरपोयङश्च' ऐसा पदच्छेद करेंगे। इससे 'गर्गादिभ्योयञ्' ४.१.१०५ ऐसा पाठ मान कर अयञन्त से ङीप् का विधान करेंगे। इससे 'गार्गी' इत्यादि में ङीप्सिद्धि हो जायेगी। 'द्वीपादनुसमुद्रं यञ्' ४.३.१० में अयञन्त इस पदच्छेद की आपत्ति नहीं रही, अतः द्वैप्या में ङीप् की अतिव्याप्ति नहीं होगी। **यङश्च**।

प्राचां ष्फ तद्धितः ४.१.१७

तद्धितवचनं किमर्थम्? * तद्धितवचनं षितः प्रातिपदिकाद् ईकारार्थम् * तद्धितवचनं क्रियते, षितः प्रातिपदिकादीकारो यथा स्यात्। नैतदस्ति प्रयोजनं-षित्करणसामर्थ्यादेवात्रेकारो भविष्यति। यथैव तर्हि षित्करण-सामर्थ्यादप्रातिपदिकादपीकारो भवत्येवं प्रातिपदिकादित्यस्याऽनुवर्त्तन-सामर्थ्यादषितोऽपि प्रातिपदिकादीकारः स्यात्। अस्त्यन्यत्प्रातिपदिका-दित्यनुवृत्तौ प्रयोजनम्। किम्? उत्तरार्थम्। अत इञ्-दाक्षिः। प्लाक्षिः।

यहाँ 'यङश्च' ४.१.१६ सूत्र अनुवृत्त है। प्रत्ययग्रहण से तदन्त अर्थ लब्ध होगा।

सूत्रार्थ—'यञन्त से स्त्रीलिङ्ग में ष्फ विकल्प हो तथा ष्फ की तद्धितसंज्ञा हो'। जैसे-गार्ग्यस्यापत्यं स्त्री गार्ग्यायणी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्वपक्षी—**तद्धितवचनमिति**। सूत्र में तद्धितवचन क्यों करते हैं?

उत्तरपक्षी—**तद्धितवचनमिति**। तद्धितवचन का प्रयोजन षकार की इत्संज्ञा है। षित्प्रातिपदिक से पर में ङीष् हो, इसके लिए तद्धितग्रहण करते हैं।

पूर्वपक्षी—**नैतदस्तीति**। तद्धितग्रहण का यह प्रयोजन नहीं हो सकता है। फ प्रत्यय षित् है। षित्करणसामर्थ्य से ही 'षिद्गौरादिभ्यश्च' ४.१.४१ से ङीष् प्राप्त हो जायेगा, इसके लिए तद्धितपद का ग्रहण नहीं करना चाहिये।

अन्य आचार्य—**यथैव तर्हीति**। यदि षित्करणसामर्थ्य से अप्रातिपदिक से भी पर में स्त्र्यर्थक ङीष् होगा तो 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ सूत्र का अधिकार होने से 'प्रातिपदिकात्' यह पद भी 'प्राचां ष्फ तद्धितः' में अनुवृत्त होगा, इससे जो षिद्भिन्न प्रातिपदिक है उस से पर में भी ङीष् प्राप्त होने लगेगा। इसका तात्पर्य यह है कि जब अनुवृत्त 'प्रातिपदिकात्' पद और 'षिद्गौरादिभ्यश्च' ४.१.४१ सूत्रस्थ षित् का विशेष्यविशेषणभाव नहीं है तब समुच्चय होना चाहिये। अर्थात् अप्रातिपदिक षित् जैसे डुपचष् पाके धा.पा.९९६ धातु भी है, इससे भी षित् होना चाहिये, तथा 'प्रातिपदिकात्' का अनुवर्तनसामर्थ्य से षिद्भिन्न प्रातिपदिक से पर में भी ङीष् होना चाहिये?

उत्तरपक्षी—**अस्त्यन्यदिति**। प्रातिपदिकाधिकार का प्रयोजन उत्तरसूत्र 'अत इञ्' ४.१.९५ के लिए है। वहाँ 'अतः' से प्रातिपदिक को विशेषित करते हैं, **अतः**='अदन्त प्रातिपदिक से पर अपत्य आदि अर्थों में इञ् हो' ऐसा अर्थ होता है। इससे 'दक्षस्यापत्यं पुमान् दाक्षिः, प्लक्षस्यापत्यं पुमान् प्लाक्षिः' में इञ् की सिद्धि हुई। मध्य में 'षिद्गौरादिभ्यश्च'४.१.४१ में 'प्रातिपदिकात्' का सम्बन्ध नहीं करेंगे। **प्राचां-**।

सर्वत्र लोहितादिकतन्तेभ्यः ४.१.१८

'सर्वत्र'ग्रहणं किमर्थम्? प्राचामेव हि स्यात्। नैतदस्ति प्रयोजनम्। सिद्धं प्राचां पूर्वेण। इदन्तर्हि प्रयोजनं-सर्वेषामेव यथा स्याद्-आवट्यायनी,-चापं बाधित्वा ष्फो यथा स्यात्।

गर्गाद्यन्तर्गण लोहितादिगण है। 'लोहित आदिर्येषान्ते लोहितादयः, कत अन्तो येषान्ते कतन्ताः' यहाँ 'शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्' वा.३६३२ से पररूप-एकादेश है। 'यङश्च' ४.१.१६ सूत्र से 'यङः' एवं 'प्राचां ष्फ तद्धितः' ४.१.१७ सूत्र से 'प्राचाम्' पद को छोड कर शेष दोनों पद अनुवृत्त हैं। 'सवत्र' पद से 'सर्वेषां मते' ऐसा अर्थ वाञ्छित है। इससे 'नित्य' अर्थ आयेगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूत्रार्थ—'लोहितादि कतन्तान्त यञन्त से पर में नित्य ष्फ हो'। जैसे-लोहितस्यापत्यं स्त्री लौहित्यायनी, कतस्यापत्यं स्त्री कात्यायनी' यहाँ उभयत्र गर्गादि से यञ् हो कर यञन्त लौहित्य और कात्य शब्द से ष्फ प्रत्यय है। षित् होने से ङीष् होगा।

प्रश्नभाष्य—**सर्वत्रेति**। सर्वत्रग्रहण क्यों करते है?

उत्तरभाष्य—**प्राचामेवेति**। यदि 'सर्वत्र'पद का ग्रहण नहीं करते तो 'लोहितादिकतन्तेभ्यः' मात्र इतन ही सूत्र रखने पर पूर्वसूत्र से 'प्राचाम्'पद की अनुवृत्ति होती, अतः विकल्प से ष्फ प्राप्त होता, जब कि नित्य ष्फ इष्ट है, अतः 'सर्वत्र'ग्रहण किया गया है।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। सर्वत्रपद का यह प्रयोजन नहीं है। आप 'लोहितादिकतन्तेभ्यः' इतना ही सूत्र रखिये। पृथक् सूत्र का आरम्भमात्र से उत्तरसूत्र में 'प्राचाम्'पद की अनुवृत्ति नहीं होगी, अतः वह नित्य ष्फविधान करेगा।

उत्तरपक्षी—**इदं तर्हीति**। सर्वत्रपद का इस लिए ग्रहण है कि सभी के मत में ष्फ हो। इससे नित्य ष्फ होगा, विकल्प से नहीं। इस सूत्र के आरम्भसामर्थ्य से ही नित्य ष्फ होगा, अतः 'सर्वत्र' पद का आरम्भ करने से पूर्व सूत्र 'प्राचां ष्फ तद्धितः' ४.१.१७ के साथ सर्वत्र पद का सम्बन्ध होगा। इससे गर्गादिगणपठित अवट शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में यञ् होने पर यञन्त से ष्फ हो कर 'आवट्यायनी' एक ही रूप बनता है। यहाँ पर अपवादविषय 'आवट्याच्च' ४.१.७५ को भी बाध कर मात्र ष्फ ही होता है। यदि 'सर्वत्र' पद का ग्रहण नहीं करते तो 'प्राचां ष्फ तद्धितः' ४.१.१७ विकल्पविधि होता तथा आप् से ष्फ का बाध होता जो इष्ट नहीं है।

* लोहितादिषु शाकल्यस्योपसंख्यानम् * **लोहितादिषु शाकल्यस्योपसंख्यानं कर्तव्यम्। शाकल्यायनी। यदि पुनरयं शकलशब्दो लोहितादिषु पठ्येत? नैवं शक्यम्। इह हि शाकल्यस्य च्छात्राः शाकला इति,- 'कण्वादिभ्यो गोत्रे' इत्यण्न स्यात्। एवन्तर्हि-** * कण्वात्तु शकलः पूर्वः * **कण्वशब्दाच्छकलशब्दः पूर्वः पठितव्यः** * कतादुत्तर इष्यते * **कतशब्दाच्शकलशब्द उत्तरः पठितव्यः** * पूर्वोत्तरौ तदन्तादी * **पूर्वोत्तरौ गणौ तदन्तादी द्रष्टव्यौ। ये कण्वादयस्ते शकलादयः। ये कतपर्यन्तास्ते शकलपर्यन्ताः।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकदेशी आचार्य—**लोहितादिष्विति**। लोहितादि से ष्फ-विधि में शाकल्यशब्द से पर में भी ष्फ कहना चाहिये। यदि शकलशब्द को गर्गादि में पाठ मान लेंगे तब 'लोहितादि शाकल्यस्योपसंख्यानम्' यह वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं है।

अन्य आचार्य—**नैवं शक्यमिति**। शकलशब्द का गर्गादिगण में पाठ किया जाना सम्भव नहीं है। गर्गादिगण में शकलशब्द का पाठ करने पर 'शाकल्यस्य च्छात्राः शाकलाः' में 'कण्वादिभ्यो गोत्रे' ४.२.१११ से अण् सिद्ध नहीं हो सकेगा।

शकलशब्द का गर्गादिगण में पाठसन्निवेश के लिए कहते हैं—**एवं तर्हीति**। कण्वशब्द से पूर्व में शकलशब्द पढना चाहिये।

अन्य आचार्य—**कादुत्तर इष्यत इति**। कतशब्द से पर में शकलशब्द का पाठ करना चाहिये। गर्गादि में कपि, कत, कुरुकत, अनडुह्, कण्व, शकल, इस तरह गणसन्निवेश है। यहाँ अनडुह् और कुरुकत शब्द हटा कर अन्यत्र पढना चाहिये अथ वा शकलशब्द को कत और कण्व शब्द के मध्य में कत, शकल, कण्व, ऐसा पढना चाहिये। सूत्र में 'कतस्याऽन्तः कतन्तः' इस तत्पुरुष समास से शकल शब्द वाच्य है। 'कत+ अन्तः' इस पदच्छेद में निपातन से अथ वा शकन्ध्वादिगण में पाठ होने से पूर्वपर के स्थान में पररूप एकादेश है। 'कतः अन्तो येषान्तानि कतन्तानि' ऐसा बहुव्रीहि भी है। तत्पुरुष होने पर कतन्तशब्द 'समासस्य' ६.१.२२३ से अन्तोदात्त है तथा बहुव्रीहि होने पर 'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्' ६.२.१ से पूर्वपदप्रकृतिस्वर है। इस तरह 'स्वरभिन्नानां यस्योत्तरस्वरविधिः स शिष्यते' १.२.६४ इस वचन के अनुसार बहुव्रीहि और तत्पुरुष के मध्य में बहुव्रीहि का शेष रहेगा। इसी तरह 'कण्वादिभ्यो गोत्रे' ४.१.१११ सूत्र में भी 'कण्वस्यादिः कण्वादिः' तत्पुरुष तथा 'कण्व आदिर्येषान्तानि कण्वादीनि' ऐसा बहुव्रीहिसमास है। यहाँ पर भी एकशेष करना चाहिये। **पूर्वोत्तरौ तदादी इति**। **पूर्व**=लोहितादि शकलान्त, **उत्तर**=कण्वादि शकलान्त रखना चाहिये। जो कण्वादि हैं वे शकलादि हैं जो कतपर्यन्त हैं, वे शकलपर्यन्त हैं।

किं प्रयोजनम्? * ष्फाणौ तत्र प्रयोजनम् * ष्फाणौ तत्र प्रयोजयतः।

कण्वात्तु शकलः पूर्वः कतादुत्तर इष्यते।
पूर्वोत्तरौ तदन्तादी ष्फाणौ तत्र प्रयोजनम्।।

प्रश्नभाष्य—**किं प्रयोजनमिति**। इस तरह का गणपाठ की कल्पना करने का क्या प्रयोजन है?

उत्तरपक्षी आचार्य इसका प्रयोजन देते हैं—**ष्फाणौ तत्रेति**। इस तरह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का गणपाठ मानने से शाकल्यायनी में ष्फ प्रत्यय सिद्ध होता है। यञन्त शाकल्य शब्द से 'अपत्यं स्त्री' अर्थ में 'सर्वत्र लोहितादिकतन्तेभ्यः' ४.१.१८ से ष्फ प्रत्यय होता है, एवं 'शाकल्यस्य च्छात्राः शाकलाः' यहाँ सामान्यशास्त्र 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ से प्राप्त छ प्रत्यय का अपवाद शास्त्र 'कण्वादिभ्यो गोत्रे' ४.२.१११ से बाध हो कर शैषिक अण् प्रत्यय होता है। श्लोकवार्तिक का अर्थ उपर दिया जा चुका है, अतः पुनरुक्ति के भय से पुनः व्याख्या नहीं की जा रही है।। **सर्वत्र-**।

कौरव्यमाण्डूकाभ्यां च ४.१.१९

*** कौरव्यमाण्डूकयोरासुरेरुपसंख्यानम् * कौरव्यमाण्डूकयोरासुरेरुपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। आसुरायणी * छश्च * छश्चेति वक्तव्यम्। आसुरीयः कल्पः।**

सूत्रार्थ—'कौरव्य और माण्डूक पद से पर में स्त्रीत्व-द्योत्य होने पर ष्फ हो'। जैसे 'कुरोरपत्यं स्त्री' इस अर्थ में 'कुर्वादिभ्यो ण्यः' ४.१.१५१ सूत्र से ण्य हो कर कौरव्य शब्द से ष्फ है-कौरव्यायणी। मण्डूकनामक ऋषिस्तस्याऽपत्यं स्त्री' इस विग्रह में 'ढक्च मण्डूकात्' ४.२.११९ से अण्, अण्णन्त से ष्फप्रत्यय हो कर माण्डूकायनी रूप है। यहाँ उभयत्र 'गोत्रं च चरणैः सह' से जाति होने पर जातिलक्षण ङीष् प्राप्त है, उसका बाध कर प्रकृत सूत्र से ष्फ हुआ है।

सिद्धान्त वार्तिक—**आसुरेरुपसंख्यानमिति**। इञन्त आसुरि शब्द से भी स्त्र्यर्थक ष्फ कहना चाहिये। 'आसुरेरपत्यं स्त्री आसुरायणी'। **छश्चेति**। इन्त आसुरि शब्द से छ प्रत्यय भी कहना चाहिये। यद्यपि 'आसुरिणा प्रोक्तः' इस शेष अर्थ में 'इञश्च' ४.२.११२ से छ का अपवाद अण् प्राप्त है, फिर भी लाघव होने से छ प्रत्यय का विधान यहीं किया गया है। अन्यथा दो वार आसुरिग्रहण करना पडता। **कौरव्य-**।

वयसि प्रथमे ४.१.२०

*** वयस्यचरम इति वक्तव्यम् * वयस्यचरम इति वक्तव्यम्। इहापि यथा स्याद्-वधूटी, चिरण्टीति। इह कस्मान्न भवति-उत्तानशया, लोहितपादिका, द्विवर्षा, त्रिवर्षेति? नैतानि वयोवाचीनि। कथं तर्हि वयो गम्यते? सम्बन्धात्। यदि तर्हि यत्र सम्बन्धाद् वयो गम्यते-तत्र न भवति-इहापि न प्राप्नोति-कुमारीति। अत्रापि हि सम्बन्धाद् वयो गम्यते। कोऽसौ सम्बन्धः? योऽसौ पुंसा सहाऽसम्प्रयोगः।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सम्बन्धादेवात्र वयो गम्यते, इह पुनः सम्बन्धसम्बन्धाद् ।

'प्रथमवयोवाची स्त्रीत्व में शक्त अदन्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में ङीप् हो' यह सूत्रार्थ है। जैसे-कुमारी।

सिद्धान्ती आचार्य—**वयस्यचरम इति**। अन्त्य वयः से भिन्न वयः वाच्य होने पर ङीप् कहना चाहिये। इससे यौवनवाची वधूट और चिरण्ट शब्द से भी ङीप् हो जायेगा। जो आचार्य कुमार, यौवन और वार्धक्य यह तीन अवस्था मानते हैं उनके मत में वधूट और चिरण्ट शब्द द्वितीय वयः का वाचक होगा, अतः उससे पर में ङीप् प्राप्त नहीं होगा। परन्तु जिस आचार्य के मत में उपचय-अपचयलक्षण मात्र दो ही वयः है, उस के मत में वधूट और चिरण्ट शब्द भी प्रथमवयोवाची ही होगा, अतः यौवन के भी प्रथमवयोवाची होने से वधूट और चिरण्ट शब्द से भी ङीप् हो जायेगा।

पूर्वपक्षी—**इह कस्मान्नेति**। उत्तानशया, लोहितपादिका, द्विवर्षा, त्रिवर्षा शब्द भी प्रथम-वयोवाची है, इससे पर में ङीप् क्यों नहीं होता है?

उत्तरपक्षी—**नैतानीति**। उत्तानशया आदि शब्द वयोवचन नहीं हैं, अतः इससे पर में ङीप् प्राप्त नहीं होगा।

पूर्वपक्षी—**कथं तर्हीति**। यदि उत्तानशया आदि शब्द वयोवचन नहीं है तो इनके उच्चारण से वयः अर्थ की प्रतीति क्यों होती है?

उत्तरपक्षी—**सम्बन्धादिति**। उत्तानशया आदि शब्दों के उच्चारण करने से विशेष्यविशेषणभावलक्षण-सम्बन्ध से वयः अर्थ की प्रतीति होती है।

पूर्वपक्षी—**यदि तर्हीति**। यदि सम्बन्ध से वयः अर्थ की प्रतीति होने से उत्तानशया से स्त्र्यर्थक प्रत्यय ङीप् नहीं होगा तो कुमारी में भी ङीप् नहीं होना चाहिये? पुरुष के द्वारा अभुक्ता को ही कुमारी कहते हैं। इस तरह कोई महिला यदि वृद्ध हो जाये तो अन्त्य वयः में होने पर भी 'वृद्धकुमारी' ऐसा प्रयोग होता है। परन्तु प्रथम वयः में होने पर भी यदि पुरुष द्वारा पाणिगृहीती है तो वह कुमारीशब्द से नहीं कही जाती है, अतः कुमारी शब्द में भी सम्बन्ध से ही वयः गम्य है, इस लिए यहाँ भी ङीप् अप्राप्त होना चाहिये।

उत्तरपक्षी—**सम्बन्धादेवात्रेति**। कुमारी शब्द में कुमारप्रातिपदिक प्रथम वयःप्रवृत्ति-निमित्त है। कुमारी शब्द में स्वाभाविक वाच्यवाचकभावलक्षणसम्बन्ध है। पुरुष के साथ असम्प्रयोग को ले कर अन्त्य वयः-वृद्धावस्था में कुमारी शब्द का प्रयोग गौण है। परन्तु 'उत्तानशया' में सम्बन्ध से वयः की प्रतीति नहीं होती है,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपि तु सम्बन्धसम्बन्ध से वयः की प्रतीति होती है। 'उत्तानं शेते या सा उत्तानशया' में वयः अर्थ का ज्ञान करने के लिए सम्बन्ध के अतिरिक्त प्रकरण भी इष्ट है, अतः प्रथमवयोवियत्व के बहिरङ्ग होने से उत्तानशया इत्यादि में ङीप् नहीं होगा।

इह तावद्-उत्तानशयेति; यदा कर्तृत्वं विशेषितं भवति तत उत्तरकालं वयो गम्यते। लोहितपादिकेति,-यदा बहुव्रीह्यर्थो विशेषितस्तत उत्तरकालं वयो गम्यते। द्विवर्षा, त्रिवर्षेति,-यदा द्विग्वर्थो विशेषितस्तत उत्तरकालं वयो गम्यते। यदि तर्हि यत्र सम्बन्धादेव वयो गम्यते तत्र भवति,-इहापि तर्हि प्राप्नोति-कन्येति। निपातनादेतत् सिद्धम्। किं निपातनम्? 'कन्यायाः कनीन चे'ति।

इसी को पुनः स्पष्ट करते हैं-**इह तावदिति**। 'उत्तानं शेते या सा उत्तानशया' में जब कर्ता अर्थ में प्रत्यय करके कर्तृत्व को विशेषित करेंगे तब शब्दस्वभावात् उत्तरकालगम्य होगा। एवं लोहितपादिका में 'लोहितौ पादौ यस्याः सा लोहितपादिका' ऐसा विग्रह कर समासार्थ बहुव्रीह्यर्थ को विशेषित करेंगे, तब भी उत्तर काल गम्य होगा। एवं द्विवर्षा में भी 'द्वे वर्षे भूतेति द्विवर्षा' इस अर्थ में 'तमधीष्टो भृतो भूतो भावी' ५.१.८० से ठ प्रत्यय है। ठ का 'वर्षाल्लुक्' ५.१.८८ से अथ वा 'चित्तवति नित्यम्' ५.१.८९ से लुक् है। इसी तरह 'त्रीणि वर्षाणि भूतेति त्रिवर्षा' में भी समझें। यहाँ पर 'द्वे वर्षे भूतेति द्विवर्षा शाला, त्रीणि वर्षाणि भूतेति त्रिवर्षा शाला' ऐसा भी अर्थ हो सकता है, अतः द्विवर्षा आदि में परिमाण आदि अर्थ की प्रतीति होती है। यहाँ वयः अर्थ की उपस्थिति प्रकरण के अधीन है, अतः उत्तानशया से सम्बन्धसम्बन्ध से वयः अर्थ की प्रतीति होने से ङीप् की प्राप्ति नहीं है।

आक्षेपक आचार्य—**यत्र तर्हीति**। यदि सम्बन्धमात्र से वयोगम्य होने पर ङीप् मानेंगे तो कुमारी में ङीप् सिद्ध हो जायेगा। परन्तु कन्या शब्द में उसकी अतिव्याप्ति होगी। यहाँ पर भी पुरुष से असम्प्रयोगरूप सम्बन्ध गम्य है।

उत्तरपक्षी—**निपातनादिति**। कन्याशब्द में सम्बन्ध से ही वयो गम्य है, अतः यहाँ ङीप् की आपत्ति है। इस को हम निपातन से हटायेंगे। आचार्य ने 'कन्यायाः कनीन् च' ४.१.११६ ऐसा सूत्र पढा है। इससे निपातन के द्वारा ङीप् का अभाव तथा आप् का विधान करेंगे। **वयसि प्रथमे**।

अपरिमाणबिस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकि ४.१.२२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इमौ द्वौ प्रतिषेधावुच्येते-तत्रैकः शक्योऽवक्तुम्। कथम्? एवं वक्ष्यामि 'परिमाणान्तात्तद्धितलुकि'ङीब्भवतीति,-तन्नियमार्थं भविष्यति'परिमाणान्तादेव तद्धितलुकि ङीब्भवति, नान्यत' इति। ततो 'बिस्ताचितकम्बल्येभ्यो ने'ति। 'तद्धितलुकी'त्येव।

यहाँ 'द्विगोः' ४.१.२१ की अनुवृत्ति होती है। सूत्रार्थ-'अपरिमाणान्त और बिस्ताद्यन्त द्विगु से पर में तद्धितलुक् होने पर ङीप् न हो'। जैसे-पञ्चभिरश्वैः क्रीतेति पञ्चाश्वा। 'तेन क्रीतम्' ५.१.३७ के अधिकार में 'आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणान्ताद् ठक्' ६.१.१९ से ठक्, 'अध्यर्धपूर्वाद् द्विगोर्लुगसंज्ञायाम्' ५.१.२८ से ठक् का लुक् है। यहाँ 'द्विगोः' ४.१.२१ से ङीप् प्राप्त है, जिसका प्रकृत सूत्र से निषेध किया गया है। एवं 'द्वौ बिस्तौ पचतीति द्विबिस्ता' में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' २.१.५१ से समास, 'सम्भवत्यवहरति पचति' ५.१.५२ से ठक्, 'अध्यर्धपूर्वाद् द्विगोर्लुगसंज्ञायाम्' ५.१.२८ से ठक् का लुक् है। यहाँ भी 'द्विगोः' ४.१.२१ से प्राप्त ङीप् का प्रकृत सूत्र निषेधक है।

सिद्धान्तिभाष्य—**इमौ द्वाविति**। 'न परिमाण अपरिमाण' यह प्रथम निषेध तथा 'न तद्धितलुकि' में न-पद से दूसरा निषेध कहते हैं। नञ्द्वय प्रकृत्यर्थ में दार्ढ्यबोध कराता है। परन्तु यहाँ पर किसी भी एक निषेध को छोडा जा सकता था। सूत्र को 'परिमाणबिस्ताचितकम्बल्येभ्योनतद्धितलुकि' ऐसा मात्र एक नकाररहित संहितापाठ मानेंगे। इसके स्थान पर भी 'परिमाणान्तात् तद्धितलुकि' यह प्रथम सूत्र रखेंगे तथा 'बिस्ताचितकम्बल्येभ्यो न' यह दूसरा सूत्र रखेंगे। प्रथम सूत्र का अर्थ होगा-'तद्धितलुक् होने पर परिमाणान्त से ङीप् हो'। यहाँ 'द्विगोः' ४.१.२१ से ही ङीप् सिद्ध था, पुनः इसका आरम्भ व्यर्थ पड कर 'तद्धितलुक् होने पर परिमाणान्त से ही ङीप् हो, अन्य से नहीं' ऐसा नियम करेगा। इससे 'द्वाभ्यामाढकाभ्यां क्रीतेति द्व्याढकी' में 'द्विगोः ठँश्च' ५.१.५४ से विहित ठन् का 'अध्यर्धपूर्वाद् द्विगोर्लुगसंज्ञायाम्' ५.१.२८ से लुक् होने पर ङीप् सिद्ध होता है। नियम का व्यावर्त्य फल है-'पञ्चभिरश्वैः क्रीतेति पञ्चाश्वा'। यहाँ तद्धितलुक् होने पर भी परिमाण वाच्य नहीं होने से ङीप् नहीं है। चूँकि लक्षण लक्ष्यानुसारि होते हैं, अतः 'तद्धितलुक्येव' ऐसा विपरीत नियम नहीं किया गया है। द्वितीय योग में भी 'तद्धितलुकि' का सम्बन्ध करेंगे। यहाँ बिस्तादि के परिमाणवाची होने से प्रतिषेध विधेय है। **अपरिमाण-**।

बहुव्रीहेरूधसो ङीष् ४.१.२५

*** ऊधसो नकारो लिङ्गाधिकारे * ऊधसो नकारो लिङ्गाधिकारे**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर्तव्यः, इह मा भूद्-महोधाः पर्यन्य इति * न वा, समासान्ताधिकारे स्त्रीग्रहणात् * **न वा लिङ्गाधिकारे नकारः कर्तव्यः। किं कारणम्? 'समासान्ताऽधिकारे स्त्रीग्रहणात्'। समासान्ताधिकार एव स्त्रीग्रहणं कर्तव्यम् *** इतरथा हि कब्विधिप्रसङ्गः * **इतरथा हि कब्विधिः प्रसज्येत। कस्यां पुनरवस्थायां कप्प्राप्नोति? प्राङीषुत्पत्तेः। प्राक्तावन्न प्राप्नोति। किं कारणम्? न हि ङीष्विभाषेति। उत्पन्ने तर्हि ङीषि प्राप्नोति।**

सूत्रार्थ—'ऊधसन्त बहुव्रीहि से ङीष् हो'। जैसे-कुण्ड इव ऊधो यस्याः सा कुण्डोघ्नी। यहाँ अनङ्, ङीष्, 'अल्लोपोऽनः' ६.४.१३४ से उपधा अ का लोप है।

पूर्वपक्षी—**ऊधसो नकार इति। लिङ्गाधिकार**='स्त्रियाम्' के अधिकार में ऊधस् को नकारान्तादेश कहना चाहिये। इससे 'महद् ऊधो यस्याऽसौ महोधाः पर्यन्यः' में जहाँ समासार्थ पुल्लिङ्ग है वहाँ नकारान्तादेश नहीं होगा। अर्थात् समासान्त-प्रकरण में 'ऊधसोऽनङ्' ५.४.१३१ सूत्र न पढ कर 'बहुव्रीहेरूधसो ङीष् नश्च' एक ही ऐसा सूत्र पढना चाहिये, यह पूर्वपक्षी का आशय है। 'अलोन्त्यस्य' १.१.५२ परिभाषासूत्र के बल से ऊधस् का अन्त्य स् को न होगा। यह नत्व स्त्रीत्व में विहित है, अतः अन्यत्र 'महोधाः पर्यन्यः, कुण्डोधो धेनुकम्' में जहाँ स्त्रीत्व वाच्य नहीं है वहाँ नत्व की आपत्ति नहीं रहेगी।

उत्तरपक्षी—**न वेति**। लिङ्गाधिकार में ऊधस् को नत्वविधान करने की आवश्यकता नहीं है। समासान्ताधिकार में ही 'ऊधसोऽनङ् स्त्रियाम्' सूत्र पढना चाहिये।

समासान्तप्रकरण में अनङ्विधान का फल देते हैं—**इतरथा हीति**। यदि समासान्तप्रकरण में उक्त सूत्र पढ कर अनङ् का विधान नहीं करेंगे तो 'कुण्डमिवोधो यस्याः सा कुण्डोघ्नी' में 'शेषाद् विभाषा' ५.४.१५४ से कप् की आपत्ति होगी। समासान्त कप् की निवृत्ति हो जाये इसके लिए समासान्तप्रकरण में ही स्त्रीलिङ्ग में अनङ् का विधान उचित है।

पूर्वपक्षी—**कस्यां पुनरिति**। किस अवस्था में कप् प्राप्त है? सन्देह में हेतु यह है कि प्रकृत में दो कप् प्रत्यय प्राप्त हैं। एक ङीष् की उत्पत्ति के अनन्तर 'नद्यृतश्च' ५.४.१५३ से नद्यन्तलक्षण, तथा दूसरा 'शेषाद् विभाषा' ५.४.१५४ से शेषलक्षण कप् विकल्प है, यहाँ किसका अवसर है?

उत्तरपक्षी—**प्राङीषुत्पत्तेरिति**। ङीष् की उत्पत्ति से पूर्व शेषलक्षण कप्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का विकल्प प्राप्त होगा।

अन्य आचार्य—**प्राक्तावन्नेति**। ङीष् नित्य है, अतः नित्य ङीष् से विकल्प कप् का बाध होने से शेषलक्षण कप् ङीषुत्पत्ति से पूर्व सम्भव नहीं है।

इतर आचार्य—**उत्पन्ने तर्हीति**। यदि ङीष्-उत्पत्ति से प्राक् कप् की उत्पत्ति सम्भव नहीं है तो ङीष् की उत्पत्ति के बाद नद्यन्तलक्षण कप् कर लीजिये।

उत्पन्ने चापि न प्राप्नोति। किं कारणम्? 'नद्यन्तानां यो बहुव्रीहि'रित्येवं सः,-न चैष नद्यन्तानां बहुव्रीहिः। प्रागेव तर्हि प्राप्नोति। ननु चोक्तं 'न हि ङीब्विभाषे'ति। यद्यपि न ङीब्विभाषा, कप्तु विभाषा। कपोऽवकाशः-अन्यो बहुव्रीहिः-अयवकः, अव्रीहिकः। ङीषोऽवकाशः-विभाषा कप्। यदा न कप्सोऽवकाशः-कुण्डोघ्नी, घटोघ्नी। कप्प्रसंग उभयं प्राप्नोति। परत्वात् कप् स्यात्। तस्मात्सूच्यते- *न वा समासान्ताधिकारे स्त्रीग्रहणादितरथा हि कब्विधिप्रसङ्ग'इति *

अन्य आचार्य—**उत्पन्ने चापीति**। ङीष् की उत्पत्ति के बाद भी नद्यन्तलक्षण कप् प्राप्त नहीं हो सकेगा। वह इस तरह कि नद्यन्तपदों का बहुव्रीहि मानने पर ही 'नद्यृतश्च' ५.४.१५३ कप् करता है। प्रकृत में ऊधस् पद का बहुव्रीहि है, वह नद्यन्त नहीं है।

उत्तरपक्षी—**प्रागेव तर्हीति**। ङीष् की उत्पत्ति से पूर्व ही कप् कीजिये।

इस पक्ष में पूर्वपक्षी द्वारा प्रदत्त दोष का मार्जन करते हैं-**ननु चोक्तमिति**। आप ने कहा था कि ङीष् विकल्प नहीं है, अपि तु नित्य है, अतः शेषलक्षण विकल्प से कप् का बाध हो जायेगा, यह पक्ष उचित नहीं है। अन्यत्र बहुव्रीहि में समासान्त कप् प्रत्यय सावकाश है। जैसे-अविद्यमानो यव इति अयवकः, अविद्यमानो व्रीहिरिति अव्रीहिकः' में 'शेषाद् विभाषा' ५.४.१५४ से शेषलक्षण कप् चरितार्थ है। शेषलक्षण कप् के विकल्प होने से कप् के अभावपक्ष में कुण्डोघ्नी, घटोघ्नी में ङीष् चरितार्थ है। इस तरह ङीष् और कप् दोनों ही अन्यत्रान्यत्र लब्धावकाश हैं। कप् की प्राप्ति होने पर ङीष् और कप् दोनों ही प्राप्त होंगे। विप्रतिषेध के द्वारा परत्वात् कप् होगा। उस कप् का वारण करने के लिए वार्तिककार ने जो 'न वा समासान्ताधिकारे स्त्रीग्रहणादितरथा हि कब्विधिप्रसङ्गः' कहा वह उचित है। **बहुव्रीहेरू-**।

दामहायनान्ताच्च ४.१.२७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

*** दामहायनान्तात्संख्यादेः * दामहायनान्तात् संख्यादेरिति वक्तव्यम्। इह मा भूद्-उद्दामा वडवेति * तत्पुरुषविज्ञानाद्वा सिद्धम् * तत्पुरुषविज्ञानाद्वा सिद्धम्। बहुव्रीहेरिति वर्तते, तत्पुरुषश्चायम्-उत्क्रान्ता दाम्न उद्दामेति। भवेत्सिद्धं यदा तत्पुरुषो यदा तु खलु बहुव्रीहिस्तदा न सिध्यति-उत्क्रान्तं दामाऽस्या इति। ननु चेतनावदेतद् भवति-उत्क्रमणं वाऽपक्रणं वा, दाम चाऽचेतनम्। अचेतनेष्वपि चेतनावदुपचारो दृश्यते, तद्यथा-स्रस्तान्यस्या बन्धनानि, स्रस्यन्ते चाऽस्या बन्धनानीति। तत्र हि संख्यादेरिति वक्तव्यम्। न वक्तव्यं, प्रकृतमनुवर्तते। क्व प्रकृतम्? 'संख्याव्ययादेर्ङी'बिति।**

'बहुव्रीहेरूधसो ङीष्' ४.१.२५ से 'बहुव्रीहेः' एवं 'संख्याव्ययादेर्ङीप्' ४.१.२६ से 'संख्यादेः' और 'ङीप्' इन दोनों पदों की अनुवृत्ति होती है।

सूत्रार्थ—'संख्यादि बहुव्रीहि दामान्त और हायनान्त स्त्रीत्व में शक्त से पर में स्वार्थ में ङीप् हो'। दामान्त से डाप् और प्रतिषेध तथा हायनान्त से टाप् प्राप्त होने पर ङीब्विधानार्थ सूत्र का आरम्भ है। जैसे-द्वे दामनी यस्याः सा द्विदाम्नी। द्वे हायने यस्याः सा द्विहायनी बाला।

एकदेशी आचार्य—**दामहायनेति**। 'दामहायनान्ताच्च' सूत्र में संख्यादि का ग्रहण करना चाहिये। इससे 'उद्गतं दाम यस्याः सा उद्दामा वडवा' में ङीप् की आपत्ति नहीं होगी।

अन्य एकदेशी—**तत्पुरुषेति**। 'बहुव्रीहेरूधसो ङीष्' ४.१.२५ से 'बहुव्रीहेः' की अनुवृत्ति होती है, अतः 'दामहायनान्ताच्च' बहुव्रीहि में ही प्रवृत्त होगा। 'उद्दामा' में हम 'उत्क्रान्ता दाम्न इति उद्दामा' ऐसा तत्पुरुषसमास कर लेंगे। इससे बहुव्रीहि के अभाव में ङीप् नहीं हो सकेगा, अतः डाप् हो कर 'उद्दामा' यही रूप बनेगा।

अन्य आचार्य—**भवेत्सिद्धमिति**। यदि 'उत्क्रान्ता दाम्नः' ऐसा विग्रह करेंगे तथा 'निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या' वा.१३३९ से समास करेंगे तब 'उद्दामा' ऐसा रूप सिद्ध हो सकता है। परन्तु जब 'उत्क्रान्तं दामास्याः' ऐसा विग्रह कर बहुव्रीहि करेंगे तब ङीप् की आपत्ति होगी।

अन्य आचार्य—**ननु चेतनावत इति**। उत्क्रमण अथवा अपक्रमण यह दोनों ही क्रिया चेतननिष्ठ है। जब कि दाम निर्जीव और अचेतन है, अतः 'उत्क्रमणं दामास्याः' ऐसा विग्रह कैसे सम्भव है?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इतर आचार्य—**अचेतनेष्वपीति**। अचेतनों का भी एकदेश से दूसरे देश में प्राप्त होना देखा जाता है। एवं 'स्रस्तान्यस्या बन्धनानि, स्रस्यते चास्या बन्धनानि' ऐसा प्रयोग अचेतन में भी चेतनवद् **उपचार**=व्यवहार करके होता है, अतः 'उत्क्रान्तं दाम अस्याः' इस तरह का विग्रह भी हो जायेगा।

जिज्ञासु का प्रश्नभाष्य—**तत्र हीति**। तो क्या तत्र-'दामहायनान्ताच्च' सूत्र में 'संख्यादेः' पद का निवेश करना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। 'संख्याव्ययादेर्ङीप्' ४.१.२६ सूत्र से 'संख्यादेः' की अनुवृत्ति हो जायेगी, अतः पृथक् ग्रहण की आवश्यकता नहीं है।

यदि तदनुवर्तते-अव्ययादेरपि प्राप्नोति। नैष दोषः- संख्यादेरित्यनुवर्तते, अव्ययादेरिति निवृत्तम्। कथं पुनरेकयोगनिर्दिष्टयोरेकदेशोऽनुवर्तते, एकदेशो न? एकयोगनिर्दिष्टानाम् अप्येकदेशानुवृत्तिर्भवति, तद्यथा-'तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ'। 'पक्षात्ति'रित्यत्र 'मूल' इत्यनुवर्तते, 'पाक' इति निवृत्तम्।

पूर्वपक्षी सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति मान कर प्रश्न करता है—**यदि तदनुवर्तत इति**। यदि संख्याव्ययादेर्ङीप्' ४.१.२६ सूत्र की अनुवृत्ति करेंगे तो अव्ययपूर्वपद रहते भी ङीप् होना चाहिये? इससे उत् अव्यय पूर्व रहते 'उद्दामा' में ङीप् की प्राप्ति होगी?

खण्डनभाष्य—**नैष दोष इति**। अव्यय पूर्व पद रहते 'उद्दामा, उद्धायना' में ङीप् की आपत्ति नहीं रहेगी। यहाँ मात्र 'संख्यादेः' की ही अनुवृत्ति होगी तथा 'अव्ययादेः' की निवृत्ति हो जायेगी, अतः अव्ययादि दामान्त से ङीप् की आपत्ति नहीं होगी।

प्रश्नभाष्य—**कथं पुनरेकयोगेति**। एक योग-सूत्र में निर्दिष्ट पदों के मध्य में एक की अनुवृत्ति हो तथा दूसरे की अनुवृत्ति न हो यह कैसे सम्भव है?

उत्तरभाष्य—**एकयोगनिर्दिष्टानामिति**। एक सूत्र में निर्दिष्ट अनेक पदों के मध्य से एक का अनुवर्तन होता है। ऐसा अन्यत्र भी है। इसे उदाहरण से स्पष्ट करते हैं-जैसे-'तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ' ५.२.२४ सूत्र में 'पाकमूले' पद सह निर्दिष्ट है। परन्तु उत्तर सूत्र 'पक्षात्तिः' ५.२.२५ में मात्र 'मूल' पद का ही अनुवर्तन होता है, 'पाक' पद का नहीं। यहाँ विद्वानों को विचार करना चाहिये-एकदेशानुवृत्ति में पूर्व में जो सन्देह है वही उत्तर में भी रहेगा। इस तरह उभय सन्देह होने से एकदेशानुवृत्ति क्यों होती

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है?, इस प्रश्न का समाधान हो सकता है, अतः भाष्य का तात्पर्य यह है कि एकयोग निर्दिष्ट अनेक पदों के मध्य में जिस पद में आचार्य ने स्वरितत्व-प्रतिज्ञा की है, उसी की अनुवृत्ति होगी। स्वरितत्वप्रतिज्ञा के अभाव में शेष की निवृत्ति स्वयं हो जायेगी। इस पक्ष में 'स्वरितेनाधिकारः' १.३.११ यह शास्त्रकारीय सूत्र ही प्रमाण है।

अथेह कथं भवितव्यं-द्वौ हायनावस्याः शालायाः?, त्रयो हायना अस्याः शालायाः? द्विहायना, त्रिहायनेति *हायनो वयसि स्मृतः* वयोवाचिनो हायनशब्दस्य ग्रहणं, न चैष वयोवाची। अथ णत्वं कस्मान्न भवति? णत्वमपि वयोवाचिन एव।

अथेह—**कथमिति**। यदि 'द्वौ हायनौ यस्याः शालायाः, त्रयः हायना अस्याः शालायाः' इस तरह का विग्रह किया जाये तो कैसा रूप होगा?

उत्तरभाष्य—**द्विहायनेति**। उक्त विग्रह में द्विहायना, त्रिहायना यही रूप होगा। इसका हेतु देते हैं-**हायनो वयसीति**। हायन शब्द स्वभाव से ही वयोवाची है, उसी का सूत्र में ग्रहण होगा। प्रकृत में हायन शब्द वयोवाची नहीं है, अतः ङीप् नहीं होगा, अपि तु अदन्तलक्षण टाप् होगा।

प्रश्नभाष्य—**अथ णत्वमिति**। 'त्रिहायना' में 'त्रिचतुर्भ्यां हायनस्य णत्वं वाच्यम्' वा.५०३८ से णत्व हो कर त्रिहायणा रूप क्यों नहीं होता है?

उत्तरपक्षी—**णत्वमपीति**। वयोवाची हायन शब्द को ही उक्त वार्तिक से णत्वविधान है। प्रकृत में वयोवाची हायन शब्द नहीं होने से णत्व नहीं है।

दामहायनान्ताच्च।

केवलमामकभागधेयपापापरसमानार्यकृत-सुमगलभेषजाच्च ४.१.३०

मामकग्रहणं किमर्थम्?, न अणन्तादित्येव सिद्धम्? नियमार्थोऽयमारम्भः-'मामकशब्दात्संज्ञाछन्दसोरेव'। क्व मा भूत्? मामिका बुद्धिरिति।

सूत्रार्थ—'केवलादि स्त्र्यर्थक प्रातिपदिक से स्वार्थ में ङीप् हो'। जैसे-केवली, मामकी इत्यादि।

प्रश्नभाष्य—**मामकग्रहणमिति**। 'मम इयम्' इस विग्रह में 'युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च' ४.३.१ से अण् प्रत्यय, 'तवकममकावेकवचने' ४.३.३ से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अण् प्रत्यय पर रहते अस्मद् को ममक आदेश, णिद्-निमित्तक वृद्धि हो कर अण्णन्त से ही ङीप् सिद्ध था, पुनः सूत्र में मामकग्रहण क्यों किया गया है?

उत्तरभाष्य—**नियमार्थोऽयमिति**। ङीप् सिद्ध होने पर मामकग्रहण व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा-'संज्ञा गम्य होने पर तथा छन्दः में ही मामक से ङीप् हो, अन्यत्र नहीं'। इससे जहाँ संज्ञा गम्य नहीं है तथा छन्दोविषय भी नहीं है वहाँ अदन्तलक्षण टाप् हो कर 'मामिका' यही रूप रहेगा। 'मामिका' में 'मामकनरकयोरुपसंख्यानम्' से इत्त्व है। केवल-।

रात्रेश्चाऽजसौ ४.१.३१

***** अजसादिष्विति वक्तव्यम् *** अजसादिष्विति वक्तव्यम्। इहापि यथा स्याद्—**

रात्रिं रात्रिं स्मरिष्यन्तो रात्रिं रात्रिमजानन्तः।
सर्वां रात्रिं सहोषित्वा पत्या एकान्तरात्रिकाम्।।१।।

सूत्रार्थ—'अजसू छन्दोविषय में रात्रिशब्द से ङीप् हो'। जैसे-रात्री व्यख्यदायती। लोक में 'कृदिकारादक्तिनः' ग.सू.५० से ङीष् हो कर रात्री शब्द अन्तोदात्त होगा। 'न जसिः अजसिस्तस्मिन्नजसौ' इकार उच्चारणार्थक है।

भाष्यवार्तिक—**अजसादिष्विति**। 'अजसौ' इस निषेध में 'अजसादि' ऐसा कहना चाहिये। इससे जसादि अम् आदि पर रहते भी रात्रि शब्द से पर में स्वार्थ में ङीप् हो जायेगा। इसे उदाहरणों से स्पष्ट करते हैं-रात्रिं रात्रिं स्मरिष्यन्त इति। **रात्रेश्चाजसौ**।

अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक् ४.१.३२

***** अन्तर्वत्पतिवदिति गर्भभर्तृसंयोगे *** अन्तर्वत्पतिवदिति गर्भभर्तृसंयोग इति वक्तव्यम्। इह मा भूत्-'प्रथते त्वया पतिमती पृथिवी'ति। अथान्तःशब्दस्याऽगर्भसंयोगे किं प्रत्युदाह्रियते? अन्तरस्यां शालायामस्ती'ति। किं पुनः कारणं वाक्यमेवोदाह्रियते, न पुनर्मतुप्? अस्तिसामानाधिकरण्ये मतुब्विधीयते, न चात्राऽस्तिना सामानाधिकरण्यमस्ति।**

गर्भिणी अर्थ में अन्तर्वत् और जीवद्भर्तृका अर्थ में पतिवत् शब्द नुक्-सन्निशिष्ट निपातित है। 'अन्तः अस्ति गर्भः अस्याम्' इस विग्रह में 'अन्तः' शब्द अधिकरणशक्तिप्रधान है, अतः 'अन्तः' शब्द के साथ अस्ति का सामानाधि-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करण्य नहीं होने से मतुप् प्राप्त नहीं है, उसका निपातन किया गया है। एवं 'पतिरस्ति यस्याः' इस विग्रह में अस्तिक्रिया का पतिपद के साथ सामानाधिकरण्य होने पर मतुप् प्राप्त है, फिर भी यहाँ 'म' को वत्व अप्राप्त है, उसका निपातन किया गया। उभयत्र 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' ४.१.५ से ङीप् है-अन्तर्वत्नी, पतिवत्नी। जहाँ गर्भिणी अर्थ वाच्य नहीं होगा वहाँ 'अन्तः अस्ति अस्यां पाठशालायां छात्रः' ऐसा वाक्य ही रहेगा। एवं पतिशब्द से मतुप् होने पर 'पतिमती पृथिवी' ऐसा रूप रहेगा, वत्व और नुम् नहीं होगा।

वार्तिककार—**अन्तर्वदिति**। गर्भसंयोग और भर्तृसंयोग वाच्य होने पर अन्तर्वत् और पतिवत् निपातन करना चाहिये। इससे जहाँ भर्तृसंयोग वाच्य नहीं है वहाँ 'पतिमती पृथिवी' ऐसा ही रूप रहेगा, वत्व और नुम् नहीं होगा।

प्रश्नभाष्य—**अथान्तरिति**। अन्तःशब्द का गर्भसंयोग वाच्य नहीं होने पर क्या प्रत्युदाहरण होगा?

उत्तरपक्षी—**अन्तरस्यामिति**। 'अन्तः अस्यां शालायामस्ति' यह वाक्य ही रहेगा।

प्रश्नभाष्य—**किं पुनरिति**। क्या कारण है कि आप वाक्य का ही प्रत्युदाहरण दे रहे हैं?

इहापि तर्हि न प्राप्नोति-अन्तर्वत्नीति? एवं तर्हि- * अन्तर्वत्पतिवतोर्नुङ् मतुब्वत्वे निपातनात् *** अन्तर्वदिति मतुम्निपात्यते, वत्वं सिद्धम्। पतिवदिति वत्वं निपात्यते, मतुप्सिद्धः। किमविशेषेण? नेत्याह-** * गर्भिण्यां जीवपत्यां च *** एतस्मिन् विषये *** वा च च्छन्दसि नुग्भवेत् *** वा च च्छन्दसि नुग्वक्तव्यः। सान्तर्वती देवानुपैतु, सान्तर्वत्नी देवानुपैतु। पतिवती तरुणवत्सा, पतिवत्नी तरुणवत्सा।**

अन्तर्वत्पतिवतोर्नुङ्मतुब्वत्वे निपातनात्।
गर्भिण्यां जीवपत्यां च वा च च्छन्दसि नुग्भवेत्।।

आक्षेपक आचार्य—**इहापीति**। यदि 'अस्ति' इस क्रियापद के साथ सामानाधिकरण्य नहीं होने से मतुप् नहीं होता है तो अन्तर्वत्नी में भी मतुप् नहीं होना चाहिये?

सिद्धान्ती—**अन्तर्वदिति**। अन्तर्वत्नी और पतिवत्नी यह शब्द निपातित है। अन्तर्वत्नी में मतुप् और वत्व निपातित हैं तथा पतिवत्नी में मतुप् सिद्ध है, परन्तु वत्व निपातित है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रश्नभाष्य—**किमविशेषेणेति**। क्या उक्त निपातन सामान्यरूप से है, अथवा अर्थविषेश में है?

उत्तरभाष्य—**नेत्याहेति**। उक्त निपातन सामान्यरूप से सर्वत्र नहीं है, अपि तु गर्भिणी अर्थ में अन्तर्वत्नी और जीवत्पतिका अर्थ में पतिवत्नी निपातन है। उभयत्र दोनों ही अर्थों में छन्दोविषय होने पर नुग्विकल्प होगा। जैसे-'सान्तर्वती देवानुपैत्' में नुक् का अभाव है, एवं 'सान्तर्वत्नी देवानुपैत्' में नुग्विशिष्ट प्रयोग है। 'पतिवती तरुणवत्सा, पतिवत्नी तरुणवत्सा' यहाँ भी श्रुतिविषय में नुग्विकल्प है। छन्दः में वत्व नित्य होगा। श्लोकवार्तिक का अर्थ उपर स्पष्ट हो चुका है। **अन्तर्वत्-**।

पत्युर्नो यज्ञसंयोगे ४.१.३३

यज्ञसंयोग इत्युच्यते, तत्र नेदं सिध्यति-इयमस्य पत्नी। क्व तर्हि स्यात्? पत्नीसंयाजा इति, यत्र यज्ञसंयोगः। नैष दोषः। पतिशब्दोऽयमैश्वर्यवाची। सर्वेण गृहस्थेन पञ्च महायज्ञा निर्वर्त्याः। यच्चादः सायंप्रातर्होमचरुपुरोडाशान्निर्वपति तस्यासावीष्टे। एवमपि 'तुजकस्य पत्नी'ति न सिध्यति। 'उपमानात्सिद्धं'-पत्नीव पत्नीति।

सूत्रार्थ—'यज्ञ के साथ सम्बन्ध होने पर स्त्रीत्व की विवक्षा में पतिशब्द को नत्व हो एवं उससे डीप् हो'। जैसे-वशिष्ठस्य पत्नी। यहाँ 'वशिष्ठकर्तृकयज्ञफल की भोक्त्री' यह अर्थ गम्य है।

प्रश्नभाष्य—**यज्ञसंयोग इति**। 'यज्ञसंयोग' ऐसा कहने से पतिशब्द का विशेषण गम्य है, अतः यज्ञवाची समवधान होने पर जहाँ 'पत्नीसंयाजा' इत्यादि में पतिशब्द का प्रयोग है वहीं पर नत्व होगा। अन्यत्र 'इयमस्य पत्नी' में प्राप्त नहीं होने से अव्याप्तिदोष है।

उत्तरपक्षी—**नैष दोष इति**। यह कोई दोष नहीं है। पतिशब्द ऐश्वर्य अर्थ का वाचक है। पतिशब्दार्थ यज्ञसंयोग में विशेषण है। जायापती का यज्ञकर्म में सह अधिकार होने से यज्ञ में पत्नी का भी अधिकार हुआ। इससे कर्तृता पत्नी में भी आयेगी तथा फलसम्बन्ध से पत्नी का भी सज्ञसंयोग गम्य होगा। सभी गृहस्थ को प्रतिदिन ब्रह्म, देव, पितृ, नृ और भूत यह पञ्च महायज्ञ करना चाहिये। सायम्-प्रातः होम, चरु और पुरोडाश से निर्वपन करने वाला फलवान् होता है।

पूर्वपक्षी—**एवमपीति**। त्रैवर्णिक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का ही यज्ञ में अधिकार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। शूद्र का यज्ञ में अधिकार नहीं है, फिर भी 'तुजकस्य पत्नी' में जहाँ 'शूद्र की पत्नी' ऐसा अर्थ गम्य है वहाँ नत्व कैसे होगा?

उत्तरभाष्य—**उपमानादिति**। अग्नि को साक्षी मान कर शूद्र भी दारपाणि-ग्रहण करता है, तदाश्रयरूप सादृश्य को ले कर शूद्र की पाणिगृहीती को भी पत्नी कहा जायेगा। अर्थात् वहाँ भी नत्व हो जायेगा।। **पत्युर्नो-**।

विभाषा सपूर्वस्य ४.१.३४

***** पत्युः सपूर्वादुपसर्जनसमास उपसंख्यानम् *** पत्युः सपूर्वादुपसर्जन-समास उपसंख्यानं कर्तव्यम्। वृद्धपतिः, वृद्धपत्नी। स्थूलपतिः, स्थूलपत्नी। वचनाद् भविष्यति। अस्ति वचने प्रयोजनम्। किम्? आशापतिः, आशापत्नी।**

सूत्रार्थ—'सपूर्वप्रातिपदिक पतिशब्दान्त को नत्व एवं ङीप् विकल्प हो'। जैसे-गृहस्य पतिः-गृहपत्नी, गृहपतिः। नत्वसन्नियोगशिष्ट ङीप् है, अतः नत्व नहीं होने से ङीप् भी नहीं होगा।

'सपूर्वस्य' में 'विद्यमानं सपूर्वं, तस्य' ऐसा अर्थ होने से सह शब्द विद्यमान-वचन है। 'सपुत्र आगतः' की तरह तुल्ययोग अर्थ में नहीं है। यहाँ पूर्व को नकारादेश इष्ट नहीं है, अन्यथा पूर्व को भी नकारादेश होता। पतिशब्द का विशेषण सपूर्वग्रहण है, ऐसा मान कर कहते हैं-**पत्युः सपूर्वादिति**। सपूर्व पति-शब्दान्त को उपसर्जनसमास में नत्वविकल्प कहना चाहिये। 'वृद्धः पतिः यस्याः सा वृद्धपतिः, वृद्धपत्नी' यहाँ बहुव्रीहि-समास में समासार्थ विशेष्य है तथा पतिशब्द **उपसर्जन**=विशेषण=अप्रधान है, अतः यहाँ पतिशब्दान्त को नत्वविकल्प हुआ। इसी तरह 'स्थूलः पतिः यस्याः सा स्थूलपतिः, स्थूलपत्नी' में भी उपसर्जन पतिशब्द को नत्व-विकल्प है।

पूर्वपक्षी—**वचनादिति**। 'पत्युः सपूर्वादुपसर्जनसमास उपसंख्यानम्' यह अतिरिक्त वचन पढने की आवश्यकता नहीं है। 'विभाषा सपूर्वस्य' इस वचन के सामर्थ्य से ही नत्व हो जायेगा।

अन्य आचार्य—**अस्ति वचन इति**। इस वचन का अन्यत्र प्रयोजन 'आशायाः पतिः आशापतिः, आशापत्नी' में नत्व-विकल्प है। यहाँ पतिशब्दार्थ प्रधान है। सूत्र जब प्रधान अर्थ में चरितार्थ है तब अप्रधान में उपस्थित नहीं होगा, अतः 'वृद्धपतिः, वृद्धपत्नी' में नत्वविधान के लिए उक्त वार्तिक पढना चाहिये।

***** सिद्धन्तु पत्युः प्रातिपदिकविशेषणत्वात् *** सिद्धमेतत्। कथम्?**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'पत्युः प्रातिपदिकविशेषणत्वात्'। नैवं विज्ञायते-'अस्त्यस्मात् पतिशब्दात् पूर्वः सोऽयं सपूर्वः, सपूर्वात् पतिशब्दाद् अनुपसर्जनादि'ति। कथं तर्हि? 'अस्त्यस्मिन् प्रातिपदिके पूर्वस्तदिदं सपूर्वं, सपूर्वात्त् प्रातिपदिकात् पत्यन्ताद् अनुपसर्जनादि'ति।

उत्तरपक्षी—**सिद्धन्त्विति**। 'स्थूलपतिः, स्थूलपत्नी' सिद्ध हो जायेंगे। इस के लिए हम अनुवृत्त प्रातिपदिक को विशेष्य तथा पति को विशेषण मानेंगे। विशेषण होने से तदन्त अर्थ को कहेगा-'पत्यन्त प्रातिपदिक को नत्व हो'। पत्यन्त प्रातिपदिक को उपसर्जनग्रहण से तथा सपूर्वग्रहण से विशेषित करेंगे। शब्द में अवयव के होने से तथा सामर्थ्यवशात् भी प्रकृत में पूर्वशब्द भी अवयववाची ही लिया जायेगा, व्यवस्थावाची नहीं। ग्रहणवान् प्रातिपदिक के साथ तदन्तविधि का प्रतिषेध होता है, अतः पतिशब्द से तदन्त अर्थ उपस्थित होगा। इस पक्ष में सपूर्वपद में 'अस्ति अस्मिन् प्रातिपदिके पूर्वस्तदिदं सपूर्वम्, तस्मात्सपूर्वात् प्रातिपदिकादनुपसर्जनात्' ऐसा बहुव्रीहिगर्भ अर्थ करेंगे। विद्यमानपूर्व अवयव केवल पतिशब्द में नहीं है, पकाररूप अवयव अव्यभिचारी होने से पतिशब्द में सर्वत्र रहेगा, अतः लक्ष्यानुसारी व्याख्यान से 'अनुपसर्जनात्' यह भी तदन्तविशेषण है। इसको 'पत्यन्तादनुपसर्जनात्' पद से कहा है।। **विभा-**।

पूतक्रतोरै च ४.१.३६

* पूतक्रत्वादीनां पुंयोगप्रकरणे वचनम् * **पूतक्रत्वादयः पुंयोगप्रकरणे वक्तव्याः। पूतक्रतोः स्त्री पूतक्रतायी। यया हि पूताः क्रतवः पूतक्रतुः सा भवति** * लिङ्गसन्नियोगेन सर्वत्रागमादेशानां वचने लिङ्गलुकि तत्कृतप्रसंगः * **लिङ्गसन्नियोगेन सर्वत्रागमादेशानां वचने लिङ्गलुकि तत्कृतं प्राप्नोति। पञ्चेन्द्राण्यो देवता अस्य पञ्चेन्द्रः। पञ्चाग्निः। दशाग्निः। किमुच्यते 'सर्वत्रे'ति? अन्यत्रापि नावश्यमिहैव। क्वान्यत्र? पञ्चभि- र्धीवरीभिः क्रीतः-पञ्चधीवा, दशधीवेति।**

सूत्रार्थ—'पूतक्रतुशब्द को पुंयोगलक्षण स्त्रीत्व गम्य होने पर ऐ आदेश हो तथा ङीप् हो'। जैसे-पूतक्रतोः स्त्री पूतक्रतायी।

सिद्धान्ती—**पूतक्रत्वादीनामिति**। 'पूतक्रतोरै च' ४.१.३६ 'वृषाकप्यग्निकुसितकुसिदानामुदात्तः' ४.१.३७ और 'मनोरौ च' ४.१.३८ ये त्रीसूत्री पुंयोग में ही प्रवृत्त होंगे। जब पुंयोग होगा तभी इससे स्त्र्यर्थ में पूतक्रतु आदि को ऐ आदि आदेश और ङीप् होंगे, अन्यत्र नहीं। जैसे-पूतक्रतोः स्त्री पूतक्रतायी, ऐ, ङीप्,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आयादेश। पुंयोग का प्रयोजन दे रहे हैं-**यया हीति**। 'पूताः क्रतवो यया सा पूतक्रतुः' यहाँ बहुव्रीहि है।

आक्षेपक आचार्य—**लिङ्गसन्नियोगेनेति**। **लिङ्ग**=लिङ्गार्थ विहित प्रत्यय टाप्, ङीप् आदि के लुक् होने पर उसके साहचर्य से विहित आगम और आदेश का सर्वत्र **वचने**=सभी स्थलों में श्रवण की आपत्ति होगी। आदेश-जैसे-धीवरी में 'वनो र च' ४.१.७ से ङीप्-सन्नियोगशिष्ट रत्व है। पञ्चभिः धीवरीभिः क्रीत इति पञ्चधीवा, दशभिर्धीवरीभिः क्रीत इति दशधीवा, 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' २.१.५१ से समास है। यहाँ आर्हीय ठक् 'अध्यर्धपूवाद् द्विगोर्लुगसंज्ञायाम्' ५.१.२८ से लुक् है, एवं 'लुक्तद्धितलुकि' १.२.४९ से ङीप् का लुक् है। यहाँ ङीप् का लुक् होने पर रत्व का श्रवण प्राप्त होगा। जैसे-जुडवे=यमल पैदा हुये दो बच्चों के मध्य में एक का मरण हो जाने पर दूसरे का मरण नहीं होता है। एवम् आगम-जैसे-'पञ्च इन्द्राण्यो देवता अस्य स पञ्चेन्द्रः, पञ्च अग्नाय्यो देवता अस्य स पञ्चाग्निः, दश अग्नाय्यो देवता अस्य स दशाग्निः' यहाँ सर्वत्र 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' २.१.५१ से तद्धितार्थ में द्विगु है। 'साऽस्य देवता' ४.२.४ से अण्, 'द्विगोर्लुगनपत्ये' ४.१.८८ से तद्धित प्रत्यय अण् का लुक्, 'लुक्तद्धितलुकि' १.२.४९ से ङीप् का लुक् है। ङीप् का लुक् होने पर उसके सन्नियोग से जायमान 'इन्द्राणी' में 'इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामानुक्' ४.१.४९ से विहित आनुक् और अग्नायी में 'वृषाकप्यग्नि-' ४.१.३७ से विहित ऐ के श्रवण की आपत्ति होगी।

लिङ्गग्रहणेन नार्थः,-'सर्वत्रागमादेशानां वचने लुकि तत्कृतप्रसंगः' इत्येव, इदमपि सिद्धं भवति,-पञ्चमेन गृह्णाति पञ्चकः। नैतदस्ति। मडयं परादिः, स डटो ग्रहणेन ग्राहिष्यते। इदन्तर्हि प्रयोजनं-षष्ठेन गृह्णाति षट्कः * सिद्धन्त्वागमादेशानामङ्गतः स्त्रीप्रकरणवचनात् * सिद्धमेतत्। कथम्? आगमादेशा य इह स्त्रीप्रकरणे उच्यन्ते तेऽङ्गाधिकारे कर्त्तव्याः।

अन्य आचार्य—**लिङ्गग्रहणेनेति**। 'लिङ्गसन्नियोगेन सर्वत्रागमादेशानां वचने लुकि तत्कृतप्रसङ्गः' वार्तिक में लिङ्गग्रहण नहीं करना चाहिये। उक्त वार्तिक के स्थान पर 'सर्वत्रागमादेशानां वचने लुकि तत्कृतप्रसङ्गः' ऐसा ही वचन पढना चाहिये। इससे 'पञ्चमेन गृह्णातीति पञ्चकः' में पूरणार्थक प्रत्यय डट् का लोप होने पर डट् का आगम मट् का भी लुक् हो जायेगा।

अन्य आचार्य—**नैतदस्तीति**। यहाँ 'तस्य पूरणे डट्' ५.२.४८ 'नान्ताद-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संख्यादेर्मट्' ५.२.४९ से डट् को मट् हुआ है। 'पञ्चकम्' में 'तावतिथं ग्रहणमिति लुग्वा' से कन् प्रत्यय और पूरणार्थक डट् प्रत्यय का लोप है। 'नान्तादसंख्यादेर्मट्' ५.२.४८ से डट् को मट् विहित है, अतः वह टित्त्वात् पर का आद्यवयव होगा। यदागमपरिभाषा के द्वारा डट् से मड्विशिष्ट का ग्रहण होगा, अतः डट् का लोप होने पर मट् का भी लोप हो जायेगा।

इस पर प्रयोगवादी आचार्य वार्तिक का अन्य प्रयोजन देते हैं—**इदं तर्हीति**। 'षष्ठेन गृह्णातीति षट्कः' में 'तस्य पूरणे डट्' ५.२.४८ से पूरणार्थक डट् प्रत्यय होने पर तन्निमित्तक 'षट्कतिकतिपयचतुरां थुक्' ५.२.५१ प्रकृति षट् को थुगागम है। कित् होने से प्रकृति का अन्तावयव होगा। 'तावतिथं ग्रहणमिति लुग्वा' ५.२.७७ से कन् प्रत्यय तथा पूरणार्थक डट् का लुक् है। यहाँ डट् का लुक् होने पर थुक् के श्रवण की आपत्ति होगी। यदि कन् प्रत्यय पर रहते 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' १.४.१७ से थुक्प्रत्ययान्त षष्ठ् की पदसंज्ञा मानेंगे तब पदत्वात् 'संयोगान्तस्य लोपः' ८.२.२३ से थ् का लोप हो जायेगा, इस तरह उपर्युक्त वातिक का 'षट्क' भी प्रयोजन नहीं हो सकेगा। तब 'चतुर्थेन गृह्णातीति चतुष्कः' उदाहरण समझना चाहिये। 'रात्सस्य' ८.२.२४ सूत्र को 'रात्परस्य संयोगान्तस्य लोपश्चेत् सस्यैव, नान्यस्य' इत्यर्थक नियामक सूत्र माना गया है, अतः 'चतुष्कः' में कन् पर रहते पदसंज्ञा होने पर भी थुक् का संयोगान्त-लोप नहीं हो सकेगा।

सिद्धान्ती—**सिद्धमिति**। स्त्रीप्रकरण में जो आगम और आदेश कहे जा रहे हैं, उन को हम **अङ्गतः**=अङ्गाधिकार में पढेंगे। इससे स्त्रीप्रत्यय को निमित्त मान कर जायमान आगम और आदेश स्त्रीप्रत्यय का लुक् होने पर 'न लुमतागस्य' १.१.६३ के द्वारा प्रत्ययलक्षण का प्रतिषेध होने से निषिद्ध हो जायेंगे।

'स्त्रीप्रकरण'ग्रहणेन नार्थः। 'सिद्धन्त्वागमादेशानामङ्गतो वचनादि'त्येव। इदमपि सिद्धं भवति-षष्ठेन गृह्णाति षट्क इति * लुङ्गलुकि वा प्रकृतिप्रत्यापत्तिवचनम् * अथवा लुगलुक्येव प्रकृतिप्रत्यापत्तिर्वक्तव्या। लिङ्गग्रहणेन नार्थः 'लुकि वा प्रकृतिप्रत्यापत्तिवचनमि'त्येव, इदमपि सिद्धं भवति-षष्ठेन गृह्णाति षट्क इति।

इतर आचार्य—**स्त्रीप्रकरण इति**। यदि स्त्रीप्रत्यय पर रहते विहित आगम और आदेश को अङ्गाधिकार में पढेंगे तो 'सिद्धन्त्वागमादेशानामङ्गतः स्त्रीप्रकरणवचनात्' वार्तिक में 'स्त्रीप्रकरण'पद का ग्रहण नहीं करना पडेगा। उक्त वार्तिक के स्थान पर 'सिद्धन्त्वागमादेशानामङ्गतो वचनात्' यही वार्तिक रखना चाहिये। इससे प्रत्यय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का लुक् होने पर तन्निमित्तक विहित आगम और आदेश का भी 'न लुमताङ्गस्य' १.१.६३ से निषेध हो जायेगा। इससे 'षष्ठेन गृह्णातीति षट्कः' में 'तावतिथं ग्रहणमिति लुग्वा' ५.२.७७ से पूरणार्थक डट् का लुक् होने से प्रकृति को थुक् का आगम नहीं हो सकेगा।

उसी विषय को प्रकारान्तर से भी सिद्ध करते हैं—**लिगलुकीति**। अथवा पूर्व में वार्तिककार ने जो '-लिङ्गलुकि तत्कृतः' कहा था उसे वैसे ही रहने दीजिये। इस पक्ष में 'लिङ्गलुकि वा प्रकृतिप्रत्यापत्तिवचनम्' वार्तिक पढ कर नियम करेंगे- 'लिङ्गलुक्येव प्रकृतिप्रत्यापत्तिर्भवति, नान्यत्र'। 'लिङ्गबोधक प्रत्यय का लुक् होने पर ही लिङ्गबोधक प्रत्यय की प्रकृति अवशिष्ट होगी, उससे 'इन्द्राणी' में ङीप् की प्रकृति 'इन्द्र' ही शेष रहेगी, इन्द्रान् नहीं। परन्तु इस तरह का नियम मानने में 'षट्कः' में अव्याप्ति होगी। यहाँ लिङ्गबोधक प्रत्यय नहीं है, अतः उसका भी संग्रह हो, इसके लिए 'लुकि वा तत्प्रकृतिप्रत्यापत्तिवचनम्' ऐसा वार्तिक पढना चाहिये। इससे प्रत्ययभाग का लोप होने पर उसकी प्रकृति ही शेष रहेगी, शेष आगम और आदेश की स्वतः निवृत्ति हो जायेगी। इससे स्त्रीप्रत्यय तथा उससे भिन्न सभी का ग्रहण हो जाता है।

किं पुनरत्र ज्यायः? 'लुकि प्रकृतिप्रत्यापत्ति- वचनमि'त्येव ज्यायः, इदमपि सिद्धं भवति-पञ्चभिः पट्वीभिः क्रीतः-पञ्चपटुः, दशपटुरिति। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। 'सन्नियोगशिष्टा-नामन्यतरापाय उभयोरप्यपायः'। तद्यथा-देवदत्तयज्ञदत्ताभ्यामिदं कर्म कर्तव्यम्। देवदत्तापाये यज्ञदत्तोऽपि न करोति। {पूतक्रतोरै च}।

अन्य आचार्य—**किं पुनरत्रेति**। आप ने उक्त वार्तिक के सन्दर्भ में 'लिङ्गलुकि वा प्रकृतिप्रत्यापत्तिवचनम्' तथा 'लुकि वा प्रकृतिप्रत्यापत्तिवचनम्' यह दोनों वातें कह दीं। यहाँ कौन सा पक्ष श्रेष्ठ है?, 'लिङ्गलुकि' पक्ष अथवा 'लुकि' पक्ष?

उत्तरपक्षी--**लुकीति**। 'लुकि प्रकृतिप्रत्यापत्तिवचनम्' यह पक्ष उचित है। इससे 'षष्ठेन गृह्णातीति षट्कः' का भी संग्रह हो जाता है, एवं 'पञ्चभिः पट्वीभिः क्रीतः पञ्चपटुः, दशभिः पट्वीभिः क्रीतः दशपटुः' का भी संग्रह हो जाता है। यहाँ तद्धितार्थ में द्विगु हो कर 'तेन क्रीतम्' ५.१.३७ से विहित ठ प्रत्यय का 'अध्यर्धपूर्वाद् द्विगोर्लुगसंज्ञायाम्' ५.१.२८ से लुक् है। तद्धित प्रत्यय का लुक् होने पर 'लुक्तद्धितलुकि' १.२.४९ स्त्रीप्रत्यय ऊ का लोप हो गया, फिर तन्निमित्तक जायमान यणादेश की भी प्रवृत्ति हो जाती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आक्षेपक आचार्य—**तत्तर्हीति**। क्या 'लुकि वा प्रकृतिप्रत्यापत्तिवचनम्' यह वार्तिक पढना चाहिये?

उत्तरपक्षी—**न वक्तव्यमिति**। उक्त वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं है। वार्तिक के अभाव में भी लक्ष्यसिद्धि दिखाते हैं-**सन्नियोगशिष्टानामिति**। यह लौकिकन्याय है। समान कर्म में जहाँ दो का अधिकार एक साथ विहित है वहाँ एक के नहीं रहने पर दूसरा भी वह कार्य नहीं करता है। जैसे-'देवदत्त और यज्ञदत्त इस कार्य को करें' ऐसा विधि करने पर देवदत्त के नष्ट होने पर यज्ञदत्त भी नहीं करता है, वैसे 'पूतक्रतायी' में आदेश ऐ और ङीप् स्त्रीत्व अर्थ को कहते हैं, वहाँ एक के लोप होने अथवा अपाय आदि होने से दूसरे का भी स्वतः अपाय हो जाता है। यह वात लोक से सिद्ध है, अतः इसके लिए अतिरिक्त शास्त्र करने की आवश्यकता नहीं है।{**पूतक्रतोरै च**}।

वर्णादनुदात्तात्तोपधात् तो नः ४.१.३९

* असितपलितयोः प्रतिषेधः * **असितपलितयोः प्रतिषेधो वक्तव्यः। असिता। पलिता** * छन्दसि क्नमेके * **छन्दसि क्नमेके इच्छन्ति। असिक्न्यस्योषधे!। असिक्नीरिद्युवतयो भवन्ति। पलिक्नीरिद्युवतयो भवन्ति** * वर्णान्ङीब्विधाने पिशङ्गादुपसंख्यानम् * **वर्णान्ङीब्विधाने पिशङ्गाद् उपसंख्यानं कर्तव्यम्। पिशङ्गी।**

सूत्रार्थ—'वर्णवाची जो अनुदात्तान्त तोपध तदन्त अनुपसर्जन स्त्र्यर्थक प्रातिपदिक से पर में स्वार्थ में ङीप् हो और तकार को नकारादेश हो'। जैसे-एतवर्णविशिष्टा स्त्री एनी, रोहितवर्णविशिष्टा स्त्री रोहिणी। **एत**=श्वेतवर्ण, **रोहित**=रक्तवर्ण। ङीप् के अभावपक्ष में नत्व भी नहीं होगा, अतः अदन्तलक्षण टाप् हो कर एता, रोहिता रूप रहेगा।

सिद्धान्तवार्तिक—**असितपलितयोरिति**। **असित**=कृष्णार्थक और **पलित**=श्वेतार्थक शब्द भी तोपध अनुदात्तान्त वर्णवाची है। उससे ङीप् और नत्व प्राप्त है, उस का प्रतिध कहना चाहिये। जैसे-असिता, पलिता। **छन्दसीति**-असित और पलित शब्द को वेद में अन्य आचार्य क्नम् आदेश कहते हैं। लोक में ङीप्-सन्निशिष्ट नत्व विहित है, वेद में विकल्प से ङीप् तथा असित और पलित को क्नम् आदेश होगा। जैसे-पलिक्नी, असिक्नी। इस को भाष्यकार ने 'असिक्न्यस्योषधे!' इत्यादि उदाहरणों से स्पष्ट किया है।

वर्णान्ङीब्विधान इति—वर्णवाची से ङीब्विधि में पिशङ्ग शब्द से भी ङीप्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहना चाहिये। जैसे-पिशङ्गी। उत्तर सूत्र 'अन्यतो ङीष्' ४.१.४० से पिशङ्ग पद से ङीष् प्राप्त है, अतः ङीब्विधानार्थ वार्तिक पढा गया है। 'लघावन्ते द्वयोश्च बह्वषो गुरुः' फि.सू.४२ सूत्र से पिशङ्ग शब्द अन्तोदात्त है। यद्यपि ङीष् और ङीप् में रूपभेद नहीं है तथापि स्वर में भेद होने से ङीप्-विधान किया गया। {वर्णादनुदा-}।

जापदकुण्डगोणस्थलभाजनागकालनीलकुशकामुककबराद् वृत्यमत्रावपनाकृत्रिमाश्राणास्थौल्यवर्णानाच्छादना-ऽयोविकारमैथुनुच्छाकेशवेशेषु ४.१.४२

*** नीलादोषधौ * नीलादोषधाविति वक्तव्यम्। नीली ओषधिः * प्राणिनि च * प्राणिनि चेति वक्तव्यम्। नीली गौः। नीली वडवा * वा संज्ञायाम् * वा संज्ञायामिति वक्तव्यम्। नीली, नीला।{जानपद}।**

'अन्यतो ङीष्' ४.१.४० से ङीष् की अनुवृत्ति है। जानपद आदि एकादश प्रातिपदिक परिगणित हैं। उनसे क्रमशः वृत्ति आदि अर्थों में ङीष् हो'। जैसे-जनपदे भवा जानपदी वृत्तिः=जीविका।

वार्तिक—**नीलादोषधाविति**। नील प्रातिपदिक से ओषधि अर्थ वाच्य होने पर स्त्रीत्व में ङीष् कहना चाहिये। जैसे-नीली ओषधि। **प्राणिनीति**=प्राणी अर्थ वाच्य होने पर नील पद से ङीष् कहना चाहिये। जैसे-नीली गौः, नीली वडवा। वा **संज्ञायामिति**-संज्ञा अर्थ गम्य होने पर नील प्रातिपदिक से ङीष् विकल्प कहना चाहिये। जैसे-नीली, नीला। यह किसी की संज्ञा है।{**जानपद-**}।

वोतो गुणवचनात् ४.१.४४

गुणवचनादित्युच्यते को गुणो नाम?

सत्त्वे निविशतेऽपैति पृथग्जातिषु दृश्यते।
आधेयश्च क्रियाजश्च सोऽसत्त्वप्रकृतिर्गुणः।।

'वा, उतः, गुणवचनात्' ऐसा पदच्छेद है। 'उतः' पञ्चम्यन्त पद 'गुण-वचनात्' में विशेषण होने से तदन्त अर्थ को कहेगा।

सूत्रार्थ—'स्त्र्यर्थक उदन्त गुणवाची से पर में स्वार्थ में विकल्प से ङीष् हो'। जैसे-मृद्वी, मृदुः।

पूर्वपक्षी—**गुणवचनादिति**। 'उच्यत इति वचनः, गुणश्चासौ वचनो गुणवचन-स्तस्मात्'। इस शास्त्र में 'अदेङ् गुणः' १.१.२ के द्वारा अत् और एङ् की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गुणसंज्ञा कही गयी है, अतः गुणपद से अत्, एङ् का बोध हो जायेगा। परन्तु प्रकृत में एदन्त गुणवाची से ङीष् कहते हैं। उत् की गुणसंज्ञा नहीं होती है। 'उतः' कहने से अदन्त, एदन्त में सम्भव नहीं है, अतः प्रश्न करते हैं-'गुण-वचनात्'पद में गुणपद से क्या विवक्षित है?

उत्तरपक्षी—**सत्त्वे निविशत इति**। **सीदतः**=तिष्ठतः लिङ्गसंख्ये **यस्मिँस्तत्सत्त्वं**=द्रव्यम्। जिसमें लिङ्ग और क्रिया का अन्वय हो उसे सत्त्व कहते हैं। **सत्त्वे**=द्रव्य में **समवैति**=समवायसम्बन्ध से रहने वाला गुण कहलाता है। द्रव्य में समवायसम्बन्ध से लिङ्ग और क्रिया दोनों रहते हैं। 'गुणक्रियाश्रयत्वं द्रव्यत्वम्' ऐसा नैयायिकों का द्रव्य का लक्षण है, अतः उक्त लक्षण क्रिया में अतिव्याप्त हो गया। उसका वारण करते हैं-**अपैति**=द्रव्य से पृथक् हो कर भिन्न जातियों में भी देखा जाता है।

क्रिया को द्रव्य से पृथक् ग्रहण नहीं किया जा सकता है। अथ च द्रव्य में द्रव्यत्व जाति भी समवेत है, उसको भी पृथक् करके नहीं देखा जा सकता है, अतः जाति से भी अतिव्याप्ति दूर हो गयी। एवं गोत्वादि जाति में अति-व्याप्तिवारण के लिए पुनः कहते हैं-**पृथगिति**। **पृथक्**=भिन्न जातियों में जिसका ग्रहण हो सके वह गुण है। गोत्व जाति गो में ही रहेगा, अश्व में नहीं। परन्तु मृदु गुण गो, महिष, अश्व आदि सर्व द्रव्यवृत्ति सम्भव है।

क्रिया में अतिव्याप्तिवारण के लिए कहते हैं—**आधेयश्चाक्रियाजश्चेति**। **आधीयते**=उत्पाद्यते **इत्याधेयः**=उत्पाद्यः, **अक्रियाजः**=अनुत्पाद्यः। उत्पाद्य और अनुत्पाद्य भेद से गुण द्विविध होता है। जैसे-उत्पाद्य=मृत्तिका का कच्चा घट परिपक्व होने से पूर्व हरित वर्ण का होता है। परिपाक के द्वारा उसमें रक्त वर्ण उत्पन्न किया जाता है। अनुत्पाद्य=वृक्षों के पत्ते आदि स्वभाव से ही हरित होते हैं। उस में हरित उत्पन्न नहीं किया जाता है। नित्य और अनित्य भेद से गुण दो प्रकार का होता है-नित्यद्रव्यगत नित्यगुण तथा अनित्यद्रव्यगत अनित्यगुण। क्रिया में सभी उत्पाद्य ही होते हैं, अतः अतिव्याप्ति नहीं है।

इस तरह सर्वत्र अतिव्याप्ति दूर होने पर भी अवयवद्रव्य में संयोग गुण है, असमवायिकारण संयोग का नाश होने पर द्रव्य से नष्ट होने पर भी विजातीय पार्थिव आदि द्रव्यों में नित्य और अनित्यभेद से रहेगा, इस अतिव्याप्ति को दूर करने के लिए कहते हैं-**असत्त्वप्रकृतिरिति**। 'असत्त्वं **प्रकृतिः**=स्वभावो यस्य सः असत्त्वप्रकृतिः'=अद्रव्यस्वभाव गुण होता है। अर्थाद् द्रव्यभिन्न गुण होता है। इस तरह क्रिया, जाति और द्रव्य से भिन्न द्रव्य में समवायसम्बन्ध से रहने वाला सर्वद्रव्यवृत्ति गुण कहलाता है। 'पृथग्जातिषु दृश्यते' से क्रिया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का अतिव्याप्ति दूर किया है। 'असत्त्वप्रकृतिः' से भी द्रव्य की अतिव्याप्ति दूर किया है।

अपर आह—

उपैत्यन्यज्जहात्यन्यद् दृष्टो द्रव्यान्तरेष्वपि।
वाचकः सर्वलिङ्गानां द्रव्यादन्यो गुणः स्मृतः।।

अपर आहेति—दूसरे आचार्य भी गुण का लक्षण करते हैं-**उपैत्यन्यदिति**। पूर्व श्लोक में गुण का जो लक्षण कहा गया था यहाँ भी श्लोकान्तर से उसी को कह रहे हैं। शुक्लत्व आदि गुण अन्य द्रव्य में आते हैं, अन्य द्रव्य का परित्याग करते हैं तथा भिन्न द्रव्यों में देखे जाते हैं। जो विशेष्यवाचक पदों के साथ अन्वित हो कर विशेष्यवाचक पद के लिङ्ग का वाचक होने से सर्वलिङ्ग होगा तथा द्रव्य से भिन्न होगा, वही गुण है।

* गुणवचनान्ङीबाद्युदात्तार्थम् * **गुणवाचनान् ङीब्वक्तव्यः। किं प्रयोजनम्? 'आद्युदात्तार्थम्'। आद्युदात्ताः प्रयोजयन्ति-वस्वी। पट्वी।** * खरुसंयोगोपधप्रतिषेधः * **खरुसंयोगोपधानां च प्रतिषेधो वक्तव्यः। खरुरियं ब्राह्मणी। पाण्डुरियं ब्राह्मणी।।** वोतो गुणवचनात्।।

सिद्धान्तिवार्तिक—**गुणवचनादिति**। आद्युदात्तविधानार्थ गुणवचन से ङीष् प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे गुणवचन वसु शब्द से ङीष्, यण् होकर वस्वी रूप है। 'धान्ये नित्' उ.सू.९ से 'नित्' का अनुवर्त्तन होकर 'शृस्वृस्निहित्रप्यसिवसिह-निक्लिदिबन्धिमनिभ्यश्च' उ.सू.१० से वसु शब्द आद्युदात्त व्युत्पादित है; अतः ङीप् होने पर 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' ६.१.१५८ से ईकार अनुदात्त होता है। परन्तु ङीष् करने पर उदात्त होता है। उदात्त वसु शब्द से चाहे ङीष् करें, अथ वा ङीप् करें, दोनों ही प्रत्ययों में 'उदात्तयणो हल्पूर्वात्' ६.१.१७४ से उदात्तत्व का ही विधान होगा। पटु+ङीप्=पट्वी। **खरुसंयोगोपधेति**। खरुप्रातिपदिक एवं संख्योगोपध प्रातिपदिक से पर में ङीप् और ङीष् का प्रतिषेध कहना चाहिये। जैसे-खरुरियं ब्राह्मणी। **खरुः**=पाणिग्रहणोत्कण्ठावती। **संयोगोपध**=पाण्डुरियं ब्राह्मणी।{**वोतो गुणवचनात्**}।

पुंयोगादाख्यायाम् ४.१.४८

* गोपालिकादीनां प्रतिषेधः * **गोपालिकादीनां प्रतिषेधो वक्तव्यः। गोपालिका। पशुपालिका। किं पुनरत्रोदाहरणम्? प्रष्ठी। प्रचरीति।**

अन्यतो ङीष्' ४.१.४० से ङीष् की अनुवृत्ति है। 'स्त्रियाम्' ४.१.३ का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अधिकार है। 'पुंसा योगः पुंयोगः' में 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' २.१.३२ से समास है। 'तस्मात् पुंयोगात्' यहाँ हेतु अर्थ में पञ्चमी है। 'आख्यायाम्' यह पञ्चम्यर्थ में षष्ठी है।

सूत्रार्थ—'पुंयोगहेतु से जो प्रातिपदिक स्त्र्यर्थ में है, उससे ङीष् हो'। जैसे-गोपस्य स्त्री गोपी। आख्याग्रहण का अन्य से सम्बन्ध सम्भव नहीं है, अतः गुणभूत पुमान् के साथ ही सम्बद्ध होगा। योगः=सम्बन्धः, यहाँ दम्पतिभाव-सम्बन्ध ही लिया जाये इस में 'असौ अकुर्वती किंचित्पापं भर्तृकृतान् बन्धनादि-क्लेशाँल्लभते' इस भाष्यप्रमाण से जन्यजनकभाव नहीं लेना चाहिये। इससे 'कौसल्य-याऽसावि सुखेन रामः प्राक्केकयीतो भरतस्ततोऽभूत्' इस भट्टीप्रयोग में 'केकयस्य दुहिता केकयी' में 'षिद्गौरादिभ्यश्च' ४.१.४१ से ङीष् करना चाहिये। यदि 'जनपदशब्दात्क्षत्रियादञ्' ४.१.१६८ सूत्र से अपत्यार्थक अञ् प्रत्यय करेंगे तो आदि अच् को वृद्धि होने से 'कैकेयी' रूप होगा।

सिद्धान्त वार्तिक—**गोपालिकादीनामिति**। गोपालिका आदि शब्दों की सिद्धि के लिए ङीष् का निषेध कहना चाहिये-गोपालकस्य स्त्री गोपालिका, पशुपालकस्य स्त्री पशुपालिका।

पूर्वपक्षी—**किं पुनरत्रेति**। प्रष्ठ आदि शब्दों को 'प्रकृष्टेन तिष्ठतीति प्रष्ठः, प्रकृष्टेन चरतीति प्रचरः' ऐसा पुमान् में ही शब्द शक्त होगा, प्रष्ठादि शब्द स्त्रीवृत्त नहीं होंगे।

यदि प्रष्ठा आदि शब्दों को स्त्रीलिङ्ग में व्युत्पत्ति करेंगे तो समास की अपेक्षा अन्तरङ्ग होने से पहले टाप् होगा, बाद में समास होने पर अदन्त नहीं होने से ङीष् की अप्राप्ति रहेगी, अतः सन्देह में प्रश्न करता है-**किं पुनरत्रेति**। उत्तर देते हैं-षष्ठी, प्रचरी ये रूप होंगे।

कथं पुनरयं प्रष्ठशब्दोऽकारान्तः स्त्रियां वर्तते? तस्येदमित्यनेना-ऽभिसम्बन्धेन। यथैव ह्यसौ तत्कृतान् स्नानोद्वर्तनपरिष्काराँल्लभते एवं प्रष्ठशब्दमपि लभते। यद्येवं- * पुंयोगादाख्यायां तद्धितलुग्वचनम् *** पुंयोगादाख्यायां तद्धितस्य लुग्वक्तव्यः।-'तस्येदमि'ति प्राप्नोति। न तर्हीदानीमिदं भवति-प्राष्ठ्य इमाः, प्राचर्य इमा इति? भवति च। विभाषा लुग्वक्तव्यः। यदा लुक् तदा प्रष्ठी, यदा न लुक् तदा प्राष्ठी। यद्येवं नार्थो लुका, विभाषा तद्धितोत्पत्तिः, यदा तद्धितोत्पत्तिस्तदा प्राष्ठी। यदा न तद्धितोत्पत्तिस्तदा प्रष्ठी।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्वपक्षी—**कथं पुनरयमिति**। अकारान्त प्रष्ठ शब्द स्त्रीलिङ्ग में कैसे है?

उत्तरपक्षी—**तस्येदमिति**। 'तस्येदम्' यह 'सामान्ये नपुंसकम्'वा.२.४.१७ से नपुंसक निर्देश है। इसका अर्थ 'तस्य इयम्' ऐसा समझना चाहिये। '**तस्य**= प्रष्ठस्य इयम्-स्त्री' ऐसा कहने से प्रष्ठ शब्द भार्यावाचक भी होगा। जैसे राजा का मन्त्री राजा का कर्म करता है तथा व्यवहारवशात् राजमन्त्री में भी 'अयं राजा' ऐसा प्रयोग होता है, वैसे अकारान्त प्रष्ठ शब्द से 'प्रष्ठभार्या' ऐसा अर्थबोध होगा। जैसे-'तस्य इयम्' इत्येतत्सम्बन्धकृत स्नान, उद्वर्तन और अभिषेक का अधिकारी होता है, वैसे प्रष्ठ शब्द भी 'तस्येयम्' इत्येतद् अभि-सम्बन्ध से भार्यावाचक होगा। यहाँ 'स्नान्ति अनेनेति स्नानम्' ऐसा करणसाधन होने से स्नानशब्द गन्ध, तैल आदि का वाचक है; अतः परिषेकपद के साथ उसकी पुनरुक्ति नहीं होगी।

आक्षेपक आचार्य—**यद्येवमिति**। यदि 'तस्येदम्' इस अभिसम्बन्ध से प्रष्ठ शब्द को स्त्रीवाचक कहेंगे तो 'तस्य' यह भेदनिबन्धन षष्ठी है; अतः भेदाश्रय तद्धित की उत्पत्ति होने पर तद्धित का लुक् कहना होगा। 'प्रष्ठस्य इदम्' इस अर्थ में 'तस्येदम्' ४.३.१२० से अण् प्राप्त होगा, उसका लुक् कहना होगा।

न तर्हीदानीमिति—यदि तद्धित का लुक् नहीं कहेंगे तो प्रष्ठ तथा प्रचर शब्द से अण् उत्पन्न होने पर णित् लक्षण आदि अच् को वृद्धि हो कर प्राष्ठ, प्राचर ऐसा रूप होगा। इससे ङीप् करने पर प्राष्ठी, प्राचरी ऐसा रूप होगा।

उत्तरपक्षी—**भवति चेति**। 'प्रष्ठस्येदम्, प्रचरस्येदम्' ऐसा कहने से तद्धित प्रत्यय अण् की उत्पत्ति होती है। यहाँ प्रष्ठी, प्राष्ठी, प्रचरी, प्राचरी यह दोनों रूप इष्ट है, अतः तद्धित प्रत्यय का विकल्प से लुक् कहेंगे। जब तद्धित का लुक् होगा तब प्रष्ठी, प्रचरी यही रूप होगा। जब तद्धित का लुक् नहीं होगा तब वृद्धिघटित प्राष्ठी, प्राचरी रूप होगा।

अन्य आचार्य—**यद्येवं नार्थ इति**। यदि प्रष्ठी, प्राष्ठी, प्रचरी, प्राचरी यह दो रूप इष्ट है तो इसके लिए तद्धित का लुक् विकल्प से कहने की आवश्यकता नहीं है। 'समर्थानां प्रथमाद्वा' ४.१.८२ का अधिकार 'अहंशुभमोर्युस्' ५.२.१४० पर्यन्त चलता है। इस में विभाषाऽधिकार भी है, अतः 'तस्येदम्' ४.३.१२० से विकल्प से तद्धित की उत्पत्ति होगी। जब तद्धित उत्पन्न होगा तब वृद्धिघटित प्राष्ठी, प्राचरी रूप होगा। जब तद्धित उत्पन्न नहीं होगा तब 'प्रष्ठस्येयं स्त्री, प्रचरस्येयं स्त्री' इस विग्रह में प्रष्ठी, प्रचरी रूप रहेगा।

एवमपि लुग्वक्तव्यो,-न ह्यन्तरेण तद्धितस्य लुकं परार्थे शब्दो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वर्तते। यदि पुनस्तस्यामेव प्रष्ठशब्दो वर्त्तते। कथम्पुनस्तस्याम् एवाऽप्रतिष्ठमानायां प्रष्ठशब्दो वर्तते? यथैव ह्यसावकुर्वती किञ्चित्पापं भर्तृकृतान् बन्धनादिक्लेशाँल्लभते एवं प्रष्ठशब्दमपि लभते।

अन्य आचार्य—**एवमपीति**। विकल्प से तद्धितोत्पत्ति मानने के पक्ष में भी तद्धितलुक् कहना होगा। तद्धित का लुग्विधान नहीं होने पर प्रष्ठ आदि शब्द स्त्री-अर्थ को नहीं कह सकेंगे। अथ च विकल्प से तद्धित की उत्पत्ति होने पर तद्धित के अभावपक्ष में 'प्रष्ठस्येयं स्त्री' यह वाक्य ही रहेगा, उस अर्थ में 'प्रष्ठी' यह रूप नहीं हो सकेगा, अतः यदि प्रष्ठशब्द से स्त्र्यर्थबोध करना चाहते हैं तो तद्धितप्रत्यय का लुग्विधान करना ही चाहिये।

इतर आचार्य—**यदि पुनस्तस्यामिति**। 'प्रकृष्टेन तिष्ठति या सा प्रष्ठः' ऐसा यदि स्त्र्यर्थ में विग्रह करेंगे तो प्रष्ठशब्द स्त्री अर्थ का भी वाचक होगा। उक्त विग्रह प्रस्थान आदि क्रिया के साथ जैसे पुरुष का सम्बन्ध है वैसे स्त्री का भी सम्बन्ध है।

आक्षेपभाष्य—**कथं पुनस्तस्यामिति**। प्रस्थान आदि क्रिया को साक्षात् नहीं करने से प्रष्ठशब्द को स्त्र्यर्थ में अकर्तृत्व क्यों मानते हैं?

उत्तरपक्षी—**यथैव ह्यसाविति**। शुभ-अशुभ कर्म में दम्पती की सहभागिता है। तज्जन्य फल के भी दोनों समानरूप से भोक्ता होते हैं। जैसे स्त्री यदि पाप न करे, परन्तु यदि उसका पति पापकर्म करता है तो तज्जन्य बन्धनादि क्लेश को दोनों समानरूप से भोगते हैं। वैसे स्त्री पुमान् का प्रस्थातृत्व के द्वारा सम्बन्ध होने से सम्बन्धमहिम्ना प्रष्ठशब्द स्त्री अर्थ में भी शक्त होगा। 'यथैव ह्यसावकुर्वती किं चित् पापं भर्तृकृतान् बन्धनादिक्लेशाँल्लभते एवं प्रष्ठशब्दमपि लभते' इस भाष्यप्रमाण से आचार्य नागेशजी ने 'तथा च दाम्पत्यलक्षण एव पुंयोगो भगवतोऽभिमतः। केकयी, देवकी, रेवतीत्यादौ गौरादित्वान्ङीषिति तदाकूतम्' ऐसा इसी सूत्र के उद्योतग्रन्थ में कहा है, अतः यहाँ पर दम्पतिभाव के अलावा जन्यजनकभावरूप पुंयोग स्त्रीत्व को लेकर केकयी में 'पुंयोगादाख्यायाम्' से ङीष्-विधान करने वाले तत्त्वबोधिनीकार श्रीमज्ज्ञानेन्द्रसरस्वतीजी का पक्ष गिर जाता है।

*** सुबन्तसमासवचनाच्चाऽकारान्तानुपपत्तिः * सुबन्तसमासवचनाच्चाकारान्तता नोपपद्यते। सुबन्तानां समासस्तत्राऽन्तरङ्गत्वाट्टाप्। टाप्युत्पन्ने समासः। स्थाशब्दः समस्येत। तत्र पुंयोगादाख्यायाम् अकारान्तादितीकारो न प्राप्नोति।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्वपक्षी—**सुबन्तसमासेति**। 'प्रकृष्टेन तिष्ठति या सा' इस विग्रह में 'सुपि स्थः' ३.२.४ सूत्र से आश्रय अर्थ में क प्रत्यय करने पर 'उपपदमतिङ्' २.२.१९ से समास करेंगे। यहाँ सुबन्त पदों का ही समास होगा। सुबुत्पत्ति और स्त्र्यर्थक टाप् आदि प्रत्ययों की उत्पत्ति में सुप् की अपेक्षा टाप् ही प्रथम होगा। प्रातिपदिक का वाच्य अर्थ यद्यपि लिङ्ग और संख्या दोनों है तथापि प्रातिपदिक पहले लिङ्ग को कहेगा, तत्पश्चात् संख्या अर्थ को कहेगा, अतः लिङ्ग की अपेक्षा संख्या के बहिरङ्ग होने से सर्वप्रथम प्रष्ठशब्द से टाप् की उत्पत्ति होगी। इस तरह प्रकृष्ट और आबन्त स्था का समास होने से प्रष्ठाशब्द अदन्त नहीं रहा, अतः 'पुंयोगादाख्यायाम्' ४.१.४८ से अदन्तलक्षण ङीष् की आपत्ति नहीं हो सकेगी।

* सिद्धन्तु स्त्रियाः पुंशब्देनाऽभिधानात् * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'स्त्रियाः पुंशब्देनाऽभिधानात्'। स्त्री पुंशब्देनाऽकारान्तेनाऽभिधीयते। ननु चोक्तं-'पुंयोगादाख्यायां तद्धितलुग्वचनमि'ति। नैष दोषः। आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति-'नाऽतस्तद्धितोत्पत्तिर्भवती'ति-यदयं 'पुंयोगादाख्यायामि'तीकारं शास्ति।**

उत्तरपक्षी—**सिद्धन्त्विति**। 'प्रकृष्टेन तिष्ठति या सा' इस विग्रह में अदन्त प्रष्ठशब्द ही स्त्रीत्व अर्थ का वाचक है, आबन्त नहीं। एवं 'प्रष्ठस्येयं स्त्री' इस विग्रह में आप ने इदमर्थ में तद्धितोत्पत्ति कही थी, वह भी दोष नहीं रहेगा। 'पुंयोगादाख्यायाम्' सूत्र से ङीष्-विधान कर आचार्य बताते हैं कि स्त्र्यर्थक अदन्त प्रष्ठ आदि शब्दों से 'इयं स्त्री' इस अर्थ में तद्धित प्रत्यय नहीं होता है। यदि यहाँ 'इयं स्त्री' अर्थ में प्रष्ठशब्द से पर में तद्धित प्रत्यय अण् का विधान होता तो आचार्य 'पुंयोगादाख्यायाम्' सूत्र से ङीष् का विधान नहीं करते। अण्णन्त से ङीप् होकर भी वही रूपसिद्धि होती जो प्रष्ठशब्द से हो रही है। ङीप् अथ वा ङीष् करने में कोई रूपभेद अथ वा स्वरभेद नहीं है। उदात्तनिवृत्तिस्वर से ङीप् भी उदात्त है तथा ङीष् भी प्रत्ययस्वर से उदात्त ही रहेगा।

नैतदस्ति ज्ञापकम्। अस्ति ह्यन्यदेतस्य वचने प्रयोजनं,-येऽनीकारास्तद्धितास्तदर्थमेतत्स्यात्। यत्तर्हि आख्याग्रहणं करोति,-न हि तद्धितान्तमाख्या भवति। अथ वा पुनरस्तु'तस्येदमित्यनेनाऽभिसम्बन्धेन'। ननु चोक्तं-'पुंयोगादा- ख्यायां तद्धितलुग्वचनमि'ति। नैष दोषः। नाऽवश्यम् अयमेवाऽभिसम्बन्धो भवति-'तस्येदमि'ति,-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अयम् अप्यभिसम्बन्धो भवति-'सोऽयमि'ति।

अन्य आचार्य—**नैतदस्तीति**। 'पुंयोगादाख्यायाम्' ४.१.४८ सूत्र का आरम्भ तद्धित की अनुत्पत्ति का ज्ञापक नहीं हो सकता है। इस सूत्र का अन्यत्र प्रयोजन ईकारप्राप्ति के अयोग्य तद्धित का बाध करना है। जैसे-भानोरियं भानवीया' में 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ से छ प्रत्यय प्राप्त है,। छ प्रत्ययान्त से टाप् है। यहाँ टाप्-बाधनार्थ सूत्र चरितार्थ है, अतः उक्त विषय का ज्ञापक नहीं हो सकता है।

उत्तरपक्षी—**यस्तर्हीति**। यदि सम्पूर्ण सूत्र ज्ञापक नहीं हो सकता है तो आचार्य जो आख्याग्रहण करते हैं वह उक्त अर्थ का ज्ञापक होगा। तद्धितान्त शब्द प्रकृत्यर्थ पुमान् में कहीं भी शक्त नहीं है। इस तरह पुमाख्या के स्त्रीलिङ्ग में शक्त नहीं होने से आख्याग्रहण व्यर्थ होगा। इस तरह व्यर्थ पड कर आख्याग्रहण 'तस्येदम्' इस भेदविवक्षा में भी तद्धितोत्पत्ति के अभावपक्ष में भी प्रष्ठशब्द का स्त्रीलिङ्ग में शक्ति और साधुत्व का ज्ञापन करता है। इस भाष्य से प्रष्ठशब्द का स्त्रीत्व अर्थ में शक्ति और साधुत्व का ज्ञापन होने से 'न केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या' इस नियम का बाध हो जाता है। यदि 'प्रसूता' आदि में ङीष् की व्यावृत्ति के लिए आख्याग्रहण को चरितार्थ मान कर उक्तार्थ में ज्ञापन न होना माना जाये तो यह पक्ष उचित नहीं है। उक्त अर्थ के ज्ञापन में यह भाष्य ही प्रमाण है, अतः भाष्य-विरुद्ध तर्क नहीं किया जा सकता है। इस भाष्यप्रमाण से उक्त सूत्र का-'जो पुंशब्द स्वार्थयोग से स्त्र्यर्थ में है' ऐसा अर्थ करेंगे। इससे प्रसूताशब्द के पुंयोग से स्त्री अर्थ में नहीं होने से आख्याग्रहण चरितार्थ नहीं है। परन्तु इस व्याख्यान से तद्धित का बाध प्राप्त हो रहा है, अतः इस बाध की निवृत्ति के लिए 'सिद्धन्तु स्त्रियाः' इसके द्वारा अन्य पक्ष का आश्रयण करने के लिए कहते हैं-**अथ वेति**।

इससे पूर्व में 'कथं पुनरयं प्रष्ठशब्दोऽकारान्तः स्त्रियां वर्तते' के उत्तर में 'तस्येदमित्यनेनाऽभिसम्बन्धेन' कहा था, इस पक्ष में पूर्वपक्षी ने 'पुंयोगादाख्यायां तद्धितलुग्वचनम्' कह कर दोष दिया था; उसका मार्जन करते हैं-**नैष दोष इति**। यह कोई आवश्यक नहीं है कि 'तस्येदम्' ही अभिसम्बन्ध हो, अपि तु 'सोऽयम्' ऐसा भी अभिसम्बन्ध हो सकता है; अतः हम यहाँ 'सोऽयम्' ऐसा ही अभिसम्बन्ध मानेंगे। इस पक्ष में तद्धित की प्राप्ति नहीं होने से उस का लुग्विधान की आपत्ति नहीं आयेगी। 'सोऽयम्' कहने से भेद की प्रतीति नहीं होती है। 'तस्येदम्' से भेद अर्थ की प्रतीति होने पर ही तद्धितोत्पत्ति कहा था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कथं पुनरतस्मिन् 'स' इत्येतद् भवति? चतुर्भिः प्रकारैरतस्मिन् 'स' इत्येतद् भवति-तात्स्थ्यात्, ताद्धर्म्यात्, तत्सामीप्यात्, तत्साहचर्यादिति। तात्स्थ्यात्तावन्,-मञ्चा हसन्ति, गिरिर्दह्यते। ताद्धर्म्याज्-जटिनं, पीनं ब्रह्मदत्त इत्याह। ब्रह्मदत्ते यानि कार्याणि जटिन्यपि तानि क्रियन्त इत्यतो जटी 'ब्रह्मदत्त' इत्युच्यते। तत्सामीप्याद्,-गङ्गायां घोषः, कूपे गर्गकुलम्। तत्साहचर्यात्,-कुन्तान् प्रवेशय, यष्टीः प्रवेशयेति।

पूर्वपक्षी—**कथं पुनरिति**। अतद् में तद्बुद्धि कैसे होगी। अर्थात् प्रष्ठशब्द स्त्रीत्व में नहीं है, उस में स्त्रीत्वबुद्धि कैसे होगी?

उत्तरपक्षी—**चतुर्भिरिति**। चार प्रकार से अतद् में तद्बुद्धि होती है।

१-तात्स्थ्यात्। २-ताद्धर्म्यात्। ३-तत्सामीप्यात्। ४-तत्साहचर्यात्।

इसे उदाहरणों से स्पष्ट करते हैं—**तात्स्थ्यातावदिति**। 'तस्मिँस्तिष्ठतीति तत्स्थः, तत्स्थस्य भावस्तात्स्थ्यं, तस्मात्'। जैसे-'मञ्चा हसन्ति' से 'मञ्चस्था हसन्ति' ऐसा अर्थबोध करेंगे। हसनक्रिया मञ्च में सम्भव नहीं है, अतः अतद् पुरुष में मञ्च का आरोप कर 'मञ्च पर बैठा हुआ पुरुष हसता है' ऐसा अर्थबोध करेंगे। एवं 'गिरिर्दह्यते' में गिरि पत्थररूप है, उसमें दाह असम्भव है, अतः 'गिरिस्थ वृक्ष आदि जल रहे हैं' ऐसा अर्थबोध करेंगे।

ताद्धर्म्यात्-जटिनमिति। अतद् जटी अथवा पीन में ब्रह्मदत्तधर्म का लाभ होने से ब्रह्मदत्तत्वारोप है। एवं 'सिंहो माणवकः' में अतद् माणवक में तत् सिंहत्व का आरोप है। ब्रह्मदत्त में जो कार्य हैं वे जटी में भी पाये जाते हैं अतः जटी को ब्रह्मदत्त कहा है।

तत्सामीप्यात्-गङ्गायामिति। 'गङ्गायां घोषः, कूपे गर्गकुलम्' में सामीप्य होने से तीर में गङ्गात्व का आरोप है। यदि यहाँ गङ्गासम्बन्धि तीर में लक्षणा करेंगे तो 'तस्येदम्' ४.३.१२० इस अण्णन्त की ही यहाँ साधुता होने से 'गङ्गायां घोषः' वाक्य असाधु होने लगेगा। यदि मत्वर्थीय में लक्षणा कर गङ्गापद का गङ्गावान् अर्थ करेंगे तब भी प्रकृति की असाधुतापत्ति होगी, अतः यहाँ पर सम्बन्धमात्रोपलक्षण साहचर्य ही लेना चाहिये। 'कूपे गर्गकुलम्' में भी 'कूपसमीपे गर्गकुलम्' ऐसा आरोप है।

तत्साहचर्यात्-कुन्ताविति। 'कुन्तान् प्रवेशय, यष्टीः प्रवेशय' ऐसा कहने से 'कुन्तविशिष्ट पुरुष, यष्टीविशिष्ट पुरुष' में कुन्त और यष्टीपद का आरोप करेंगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ वा पुनरस्तु तस्यामेव प्रष्ठशब्दः। ननु चोक्तं'सुबन्त-समासवचनाच्चाकारान्तानुपपत्तिरि'ति। नैष दोषः- * गतिकारकोप-पदानां कृद्भिः सह समासवचनम् *** 'गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासो भवती'त्येषा परिभाषा कर्तव्या। कानि पुनरस्याः परिभाषायाः प्रयोजनानि? *** प्रयोजनं क्तादल्पाख्यायाम् *** प्रयोजनं क्तादल्पाख्यायाम्। अभ्रविलिप्ती। सूर्यविलिप्ती।**

पूर्व में दाम्पत्यलक्षणपुंयोग को ले कर अदन्त प्रष्ठशब्द को ही स्त्रीत्व का वाचक माना था। उस पक्ष में प्राप्त दोष का निरास के लिए कहते हैं-**अथ वेति**। 'प्रकृष्टेन तिष्ठति या सा' ऐसी व्युत्पत्ति होने पर आप ने सुबन्त की अपेक्षा टाप् को अन्तरङ्ग बता कर प्रष्ठाशब्द की आपत्ति दी थी, वह भी दोष नहीं रहेगा।

इस पक्ष में सिद्धान्ती कहता है—**गतिकारकेति**। गति, कारक, और उपपद का कृदन्त के ही साथ समास होता है; इस के लिए परिभाषा की गयी है। इससे सुबुत्पत्ति की अपेक्षा टाप् नहीं होने से पदन्त प्रष्ठ शब्द ही स्त्री-अर्थ का वाचक होगा।

उक्त परिभाषा के अन्य भी प्रयोजन गिनाते हैं—**प्रयोजनमिति**। 'अभ्रेण विलिप्ता द्यौरित्यभ्रविलिप्ती' यहाँ 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' २.१.३२ से समास है। यह समास सुबुत्पत्ति से पूर्व कृदन्त के ही साथ होगा। अन्यथा सुबुत्पत्ति की कर्तव्यता में अन्तरङ्गत्वात् पहले टाप् होगा, फिर टाबन्त से सुबुत्पत्ति हो कर समास होने से अदन्त के अभाव में 'क्तादल्पाख्यायाम्' ४.१.५१ से ङीष् नहीं हो सकेगा। सुबुत्पत्ति से पूर्व अदन्त से समास होने पर 'क्तादल्पाख्यायाम्' ४.१.५१ से ङीष् हो कर 'अभ्रविलिप्ती द्यौः, सूर्यविलिप्ती द्यौः' रूप बनता है।

सुबन्तानां समासः। तत्राऽन्तरङ्गत्वाट्टाप्। टाप्युत्पन्ने समासः। विलिप्ताशब्दः समस्येत। तत्र 'क्तादल्पाख्यायाम्' अकारान्तादिति ङीष्न प्राप्नोति * जातेर्ङीष्विधाने *** जातेर्ङीष्विधाने प्रयोजनम्। व्याघ्री। कच्छपी। सुबन्तानां समासः। तत्राऽन्तरङ्गत्वाट्टाप्, टाप्युत्पन्ने समासः। घ्राशब्दः समस्येत। तत्र 'जातेरस्त्रीविषयादयोपधाद'-कारान्तादिति-ङीष्न प्राप्नोति।**

यदि यहाँ सुबन्तों का समास कहेंगे तो अन्तरङ्ग होने से पहले टाप् होगा, फिर सुबन्त हो कर विलिप्ता शब्द के साथ समास होगा, अतः अदन्त नहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होने से 'क्तादल्पाख्यायाम्' ४.१.५१ से ङीष् की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। इस परिभाषा का अन्य प्रयोजन जाति अर्थ में शक्त प्रातिपदिक से ङीष् विधान में है। विशेषेण आ=समन्ताज्जिघ्रतीति व्याघ्री। 'जिघ्रः संज्ञायां प्रतिषेधः' से श प्रत्यय का प्रतिषेध होने पर 'वि+आ+ घ्रा' इस दशा में उपसर्ग की अविवक्षा में मात्र घ्रा से पर में 'आतोऽनुपसर्गे कः' ३.२.३ से क प्रत्यय है। एवं 'कच्छं=तीरं, तेन पिबति या सा कच्छपि' यहाँ भी आदन्त से क प्रत्यय है। यहाँ सुबन्तों का समास कहने पर सुबुत्पत्ति से पूर्व अन्तरङ्ग होने से पहले टाप् होगा तथा आबन्त से सुबुत्पत्ति हो कर आबन्त के साथ समास होने से 'जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्' ४.१.६३ के द्वारा अदन्त नहीं होने से विहित जातिलक्षण ङीष् प्राप्त नहीं हो सकेगा।

*** समासान्तस्य णत्वे * समासान्तस्य णत्वे प्रयोजनम्। वक्ष्यति- * प्रातिपदिकस्य णत्वे समासान्तग्रहणम् असमासान्तप्रतिषेधार्थम् * इति। तस्मिन् क्रियमाणे-माषवापिणी, व्रीहिवापिणी। सुबन्तानां समासः। तत्रारान्तरङ्गत्वान् नकारान्तान्ङीप्। ङीप्युत्पन्ने समासः। वापिनीशब्दः समस्येत। तत्र 'समासान्तस्ये'ति णत्वं न प्राप्नोति।**

समासान्तस्येति—समासान्त को णत्व करने में परिभाषा का प्रयोजन है। णत्वप्रकरण में 'प्रातिपदिकान्तस्य णत्वे समासान्त- ग्रहणमसमासान्तप्रतिषेधार्थम्' ऐसा कहेंगे। इस का अर्थ है-'समासान्तप्रातिपदिक का जो अन्त नकार उसको णत्व कहना चाहिये, एवम् असमासान्त नकार के णत्व का प्रतिषेध भी कहना चाहिये'। यहाँ पर 'माषान् वपति अभीक्ष्णम्' इस अर्थ में माष. उपपद रहते वप धा.पा.१००३ धातु से 'बहुमाभीक्ष्ण्ये' ३.२.८१ के द्वारा णिनि प्रत्यय हो कर 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' ४.१.५ से नान्तलक्षण ङीप् करेंगे। ङीप् के अनन्तर यदि सुबन्त के साथ समास करेंगे तो समास का अन्त ईकार होगा, नकार नहीं, अतः 'माषवापिणी' में णत्व प्राप्त नहीं हो सकेगा। कृदन्त के साथ समास करने पर समासान्त न् पर होता है जिसको णत्व हो जा रहा है।

*** कृदन्तात्तद्धिते वृद्धिस्वरौ च * कृदन्तात्तद्धिते वृद्धिस्वरौ च प्रयोजनम्। साङ्कूटिनम्। व्यावक्रोशी। अत्राऽवयवादुत्पत्तिः प्रसज्येत। 'गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासो भवती'ति न दोषो भवति।**

कृदन्तादिति—कुट कौटिल्ये धा.पा.१३६७ धातु से 'अभिविधौ भाव इनुण्' ३.३.४४ के द्वारा इनुण् प्रत्यय हो कर कुटिन् शब्द है। यहाँ कुटिन् शब्द से समासार्था विभक्ति भी प्राप्त है तथा 'अणिनुणः' ५.४.१५ के द्वारा तद्धित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रत्यय अण् भी प्राप्त है। यहाँ स्वार्थिक और अन्तरङ्ग होने से समास से पूर्व अण् प्रत्यय ही होगा। इस तरह अण्-प्रत्ययनिमित्तक अङ्गसंज्ञा कुटिन् की होगी तथा 'तद्धितेष्वचामादेः' ७.२.११७ से कुटिन्शब्द के आदि अच् को ही वृद्धि होगी जिससे 'संकौटिनम्' ऐसा अनिष्टरूप होगा। परिभाषा के रहने पर कृदन्त इनिणन्त के साथ सम् का समास होने से संकुटिन् से अण् आता है, अतः अण्-निमित्त अङ्गसंज्ञा संकुटिन् पर रहती है तथा उसी के आदि अच् को वृद्धि हो कर 'सांकुटिनम्' प्रयोग होता है। इसी तरह 'वि+अव-पूर्वक क्रुशी धा.पा. १७६३ से 'कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम्' ३.३.४३ से विहित णच् प्रत्यय होता है। णच्प्रत्ययनिमित्तक अङ्गसंज्ञा व्यावक्रोश की होती है तथा उसी का आद्यच् को वृद्धि हो कर व्यावक्रोशी रूप है। **गतिकारकोपपदानामिति**-परिभाषा के होने से गति, कारक और उपपद का कृदन्त के साथ समास होने से व्यावक्रोशी और सांकुटिनम् में दोष नहीं आता है।

सत्यामेतस्यां परिभाषायामवयवादुत्पत्तिः प्राप्नोति। किं कारणम्? 'प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स तदादेर्ग्रहणम् भवती'ति। 'कृद्ग्रहणे गतिकारक-पूर्वस्यापि ग्रहणं भवती'ति संघाताद् उत्पत्तिर्भविष्यति। यदि तर्ह्येषा परिभाषाऽस्ति, नैतदस्याः परिभाषायाः प्रयोजनम्भवति, एतयैव सिद्धम्। न सिध्यति। किं कारणम्? अप्रातिपदिकत्वात्।

पूर्वपक्षी—**सत्यामेतस्यामिति**। इस परिभाषा के रहने पर भी सांकुटिनम्, व्यावक्रोशी में अवयव कुटिन् से अण् और क्रोशी से अ प्राप्त होगा, तदन्त समुदाय से नहीं। प्रत्ययग्रहण परिभाषा के द्वारा इनुणन्त कुटिन् है, संकुटिन् नहीं। एवं णजन्त क्रोश है, व्यावक्रोश नहीं, अतः अवयव के अच् को ही वृद्धि प्राप्त होगी, संघात के अच् को नहीं।

उत्तरपक्षी—**कृद्ग्रहण इति**। प्रत्ययग्रहणपरिभाषा के द्वारा उपर्युक्त दोष प्राप्त होने पर उस का वारण कृद्ग्रहण परिभाषा से करते हैं-**कृद्ग्रहणे**-कृदन्त के ग्रहण में गतिपूर्व एवं कारकपूर्व का ग्रहण होता है, अतः व्यावक्रोशी में णजन्त समुदाय होगा, उसी से अञ् की उत्पत्ति होगा, अवयव से नहीं। कृदन्त के ग्रहण में कारकपूर्व का भी ग्रहण होता है, अतः संकुटिनम् में कारकपूर्व कृदन्त का ग्रहण होने से संघात से अण् प्रत्यय उत्पन्न होगा तथा उसी के आदि अच् को वृद्धि होगी।

पूर्वपक्षी—**यदि तर्ह्येषेति**। यदि 'कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम्' परिभाषा है तो इसी से पूर्वोक्त सभी लक्ष्य सांकुटिनम्, व्यावक्रोशी आदि की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सिद्धि हो जायेगी, इनकी सिद्धि के लिए 'गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समास-वचनम् प्राक्सुबुत्पत्तेः' यह परिभाषा नहीं करनी चाहिये, इस परिभाषा का कोई प्रयोजन नहीं हैं।

उत्तरपक्षी आचार्य 'गतिकारकोपपदानाम्-' परिभाषा का प्रयोजन सिद्ध करने के लिए कहते हैं-**न सिध्यतीति**। कृद्ग्रहण परिभाषा से पूर्वोक्त लक्ष्य सिद्ध नहीं होता है। कृद्ग्रहणपरिभाषा से गतिपूर्व तथा कारकपूर्व का ग्रहण होता है। प्रातिपदिकाधिकार में विहित होने से 'णचः स्त्रियामञ्' ५.४.१४ और 'अणिनुणः' ५.४.१५ सूत्र णजन्त और इनुण्णन्त से तद्धित का विधान करेगा। कृद्ग्रहण-परिभाषा से णजन्तत्व और इनुण्णन्तत्व सिद्ध होता है, प्रातिपदिकत्व नहीं। 'कृत्तद्धितसमासाश्च' १.२.४६ सूत्र में समासग्रहणकृत नियम से संघात की प्रातिपदिकसंज्ञा का निषेध है, अतः संघात से तद्धितोत्पत्ति नहीं हो सकेगी। परन्तु जब 'गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनम्' परिभाषा रखते हैं तब कृदन्त के साथ समास होने से समासप्रयुक्त प्रातिपदिकत्व संघात में चला जाता है तथा संघात से तद्धितोत्पत्ति होती है।

कृत्त्वात्प्रातिपदिकसंज्ञा भविष्यति। ननु चेदानीम् प्रातिपदिक-संज्ञायामप्येतया परिभाषयेह शक्यमुपस्थातुम्? 'ने'त्याह। इह हि 'मूलकेनोपदंशं भुङ्क्ते' इति वाक्येऽपि लुक्प्रसज्येत। स्वरे च दोषः स्यात्-प्रकारकः, प्रकरणम्। 'गतिकारकोपपदात्कृदन्तमुत्तरपदं प्रकृति-स्वरं भवती'त्येष स्वरो न स्यात्। नैष दोषः। द्वे अत्र प्रातिपदिक-संज्ञेअवयवस्यापि, समुदायस्यापि। तत्राऽवयवस्य या प्रातिपदिकसंज्ञा तदाश्रयः स्वरो भविष्यति।

पूर्वपक्षी—**कृत्त्वादिति**। 'कृत्तद्धितसमासाश्च' १.२.४६ सूत्र में कृत् का ग्रहण है। कृद्ग्रहण परिभाषा से यहाँ भी कृद्ग्रहण से गतिपूर्व और कारकपूर्व का ग्रहण करेंगे। इससे गतिपूर्वकृदन्त, कारकपूर्वकृदन्त तथा केवलकृदन्त की भी प्रातिपदिकसंज्ञा होगी। इस तरह 'संकुटिन्' इस समुदाय के प्रातिपदिक होने से समुदाय से तद्धितोत्पत्ति हो जायेगी। इस तरह 'गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनम्' इस परिभाषा का कोई प्रयोजन नहीं है।

खण्डनभाष्य—**नेत्याहेति**। कृद्ग्रहणपरिभाषा से 'गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनम्' परिभाषा के सम्पूर्ण लक्ष्यों का संग्रह असम्भव है। इसे स्पष्ट करते हैं-**इह हीति**। 'कृत्तद्धितसमासाश्च' १.२.४६ सूत्र में यदि कृद्ग्रहण-परिभाषा से गतिपूर्व और कारकपूर्व कृदन्त की यदि प्रातिपदिकसंज्ञा होती तो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'मूलकेनोपदंशम्' में जहाँ 'उपदंशस्तृतीयायाम्' ३.४.४७ से कृत्प्रत्यय णमुल् है वहाँ कारकपूर्व 'मूलकेन'पदविशिष्ट की प्रातिपदिकसंज्ञा कृद्ग्रहण से होती, फिर 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' २.४.७१ से सुब्लुक् करके 'मूलकोपदंशम्' रूप वाक्य भी होने लगेगा। जब कि वाक्य में 'मूलकेनोपदंशं भुङ्क्ते' यही रूप इष्ट है।

कृद्ग्रहणपरिभाषा से 'कृत्तद्धितसमासाश्च' १.२.४६ सूत्र में अन्यत्र भी दोष दे रहे हैं-**स्वरे चेति**। प्रकारकः, प्रकरणम् में कृद्ग्रहणपरिभाषा से गतिपूर्व का ग्रहण होगा, अतः प्रपूर्व कारक और प्रपूर्व करण की प्रातिपदिकसंज्ञा होगी। प्रातिपदिकसंज्ञानिमित्तक सुबुत्पत्ति प्रकारक और प्रकरण पद से होगी। कारक और करण से नहीं। कृदन्तत्व-व्यवहार भी प्रपूर्वक कारक और प्रपूर्व करण में होगा। इस तरह कृदन्तत्वकुक्षि में ही गति का प्रवेश होने से गति से पर में कृदन्तत्व नहीं मिलेगा। जो कृदन्त है वह उत्तरपद नहीं है, जो गति से उत्तर है वह कृदन्त नहीं है, तथा समुदाय के ही पद होने से पृथक् पद भी नहीं है, अतः गति से पर में कृदन्त उत्तरपद को होने वाला प्रकृतिस्वर प्रकारकः, प्रकरणम् में नहीं हो सकेगा।

उत्तरपक्षी—**नैष दोष इति**। प्रकारकः, प्रकरणम् में उत्तरपद को प्रकृतिस्वर अप्राप्त नहीं है। प्रकारकः, प्रकरणम् में दो प्रातिपदिक संज्ञा है, इससे प्र अवयव भी पद है तथा प्रकारकः आदि समुदाय भी पद है। यहाँ अवयव प्र पद की जो प्रातिपदिकसंज्ञा है उसको निमित्त मान कर कृदन्त उत्तरपद कारक और करण को 'गतिकारकोपपदात् कृदन्तमुत्तरपदं प्रकृतिस्वरं भवति' से प्रकृतिस्वर हो जायेगा।

इहापि तर्हि सांकूटिनं व्यावक्रोशीति। द्वे अत्रापि प्रातिपदिकसंज्ञे-अवयवस्यापि, प्रातिपदिकस्यापि। तत्रावयवस्य या प्रातिपदिकसंज्ञा तदाश्रयाऽवयवादुत्पत्तिः प्रसज्येत। अवयवादुत्पत्तौ सत्यां को दोषः? कौम्भकारेयो न सिध्यति। अवयवस्य वृद्धिस्वरौ स्याताम्। तस्मात् प्रयोजनमेवैतस्याः परिभाषायाः। उभाभ्यां तु खलु सिध्यति।

प्रकारक आदि में अवयव की प्रातिपदिकसंज्ञा मानने पर उसकी अतिव्याप्ति दे रहे हैं-**इहापि तर्हीति**। यदि प्रकारकः, प्रकरणम् में अवयव प्र की प्रातिपदिकसंज्ञा मानते हैं तो सांकूटिनम्, व्यावक्रोशी में भी अवयव सम् और वि तथा कुटिन् और क्रोश की प्रातिपदिकसंज्ञा मानिये। इस तरह '-प्रातिपदिकात्' ४.१.१ के अधिकार में विहित 'अणिनुणः' ५.४.१५ तथा 'णचः स्त्रियामञ्' ५.४.१४ के द्वार प्रातिपदिक इनुणन्त कुटिन् तथा णजन्त प्रातिपदिक क्रोश से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तद्धितोत्पत्ति होने लगेगा।

अन्य आचार्य—**अवयवादिति**। यदि अवयवप्रातिपदिक से तद्धितोत्पत्ति की जाये तो क्या दोष होगा।

दोषवादी आचार्य—**कौम्भकारेय इति**। अवयवप्रातिपदिक से सुबुत्पत्ति मानने पर 'कौम्भकारेयः' की सिद्धि नहीं हो सकेगी। 'कुम्भं करोति या सा कुम्भकारी, तस्या अपत्यं पुमान् कुम्भकारेयः' यहाँ अवयवप्रातिपदिक 'कारी' से 'स्त्रीभ्यो ढक्' ४.१.१२० से अपत्यार्थक ढक् प्रत्यय होने पर ढक्प्रत्ययनिमित्तक अङ्गत्व कारी शब्द पर रहेगा, कुम्भकारी पर नहीं। अङ्गाधिकारीय 'तद्धितेष्वचामादेः' ७.२.११७ से अङ्ग के आदि अच् को वृद्धि विहित है। वह कारी शब्द को होगा, कुम्भकारी को नहीं, अतः इष्टरूप कौम्भकारेयः के स्थान पर अनिष्टरूप कुम्भकारेयः की आपत्ति होगी। यहाँ कुम्भकारेयः उपलक्षणविधया सांकुटिनम् और व्यावक्रोशी का भी बोधक है। यहाँ भी अवयवप्रातिपदिक से तद्धितोत्पत्ति होकर अवयवप्रातिपदिक के आदि अच् को वृद्धि होने से संकौटिनम्, व्यवक्रौशी ऐसा अनिष्टरूप होगा। **तस्मादिति**-'गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनम्' इस परिभाषा का सांकुटिनम्, व्यावक्रोशी, कौम्भकारेयः इत्यादि प्रयोजन हैं, एदर्थ परिभाषा माननी चाहिये। **उभाभ्यामिति**-'कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम्' तथा 'गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनम्' यह दोनों परिभाषायें करनी चाहिये। इससे लक्ष्य सिद्ध हो जाता है तथा कहीं दोष नहीं आता है।

*** अवदातायां ङीप्रसङ्गः * अवदातायान्तु ङीप्प्राप्नोति। अवदाता ब्राह्मणी। 'वर्णादनुदात्तात्तोपधात् तो न' इति। नैष वर्णवाची। किंन्तर्हि? विशुद्धवाची। आतश्च विशुद्धवाची,-एवं ह्याह-**

त्रीणि यस्याऽवदातानि विद्या योनिश्च कर्म च।
एतच्छिवे! विजानीहि ब्राह्मणप्रयस्य लक्षणम्।। इति।

*** सूर्याद्देवतायां चाप् * सूर्याद्देवतायां चाब्वक्तव्यः। सूर्यस्य स्त्री सूर्या। देवतायां किमर्थम्? सूरी। {पुंयोगादाख्यायाम्}।**

सुबुत्पत्ति से पूर्व समास मानने के पक्ष में अन्य आचार्य अतिव्याप्ति देते हैं-**अवदातेति**। सुबुत्पत्ति से पूर्व समास मानने पर 'अवदाता ब्राह्मणी' में 'वर्णादनुदात्तत्तोपधातो नः' ४.१.३९ ङीष्-सन्नियोगशिष्ट नत्व हो कर 'अवदानी ब्राह्मणी' की आपत्ति होगी। अवदातपद गौरवर्णवाची तथा अनुदात्तान्त है।

उत्तरभाष्य—**नैष वर्णवाचीति**। अवदातपद वर्णवाची नहीं है, अपि तु विशुद्ध-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाची है, अतः 'अवदाता ब्राह्मणी' का 'विशुद्धा ब्राह्मणी' अर्थ होगा। अवदातपद विशुद्ध अर्थ का वाचक है, इसमें प्रमाण प्रस्तुत करते हैं-**एवं ह्याहेति**। हे शिवे! पार्वति! जिसकी **विद्या**=ब्रह्मविद्या, **योनि**=ब्राह्मण द्वारा ब्राह्मणकन्या का सविधि दारपाणिग्रहण किया गया हो तथा उसी पाणिगृहीती भार्या में ब्राह्मण से उत्पत्ति हो, एवं **कर्म**=वेदविहित संस्कार से सुसंस्कृत हो कर वेदाध्ययन करके वेदविहित निष्काम कर्मों का विधिवत् अनुष्ठान, ये तीन जिसके **अवदातानि**=विशुद्ध हों वही ब्राह्मणों में अग्रणी होता है। ये तीनों ब्राह्मणाग्र्य के लक्षण हैं।

सिद्धान्ती—**सूर्याद्देवतायामिति**। देवता अर्थ वाच्य होने पर दम्पतिभाव-लक्षणसम्बन्ध में सूर्य पद से चाप् प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे-सूर्यस्य स्त्री सूर्या। यहाँ 'सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां य उपधायाः' ६.४.१४९ से यलोप है। जहाँ देवता वाच्य नहीं है वहाँ 'सूर्यस्य स्त्री' इस अर्थ में 'पुंयोगादाख्यायाम्' ४.१.४८ से ङीष्, यलोप हो कर सूरी रूप बनेगा। {**पुंयोगादाख्यायाम्**}।

इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवन-मातुलाचार्याणामानुक् ४.१.४९

*** हिमाऽरण्ययोर्महत्त्वे * हिमाऽरण्ययोर्महत्त्व इति वक्तव्यम्। महद्धिमं हिमानी। महदरण्यम् अरण्यानी * यवाद्दोषे * यवाद्दोष इति वक्तव्यम्। दुष्टो यवो यवानी * यवनाल्लिप्याम् * 'यवनाल्लिप्यामि'ति वक्तव्यम्। यवनानी लिपिः * उपाध्यायमातुलाभ्यां वा * 'उपाध्यायमातुलाभ्यां वे'ति वक्तव्यम्। उपाध्यायी। उपाध्यायानी। मातुली। मातुलानी।**

'अन्यतो ङीष्' ४.१.४० से ङीष् प्रथमान्त विधेयवचन की अनुवृत्ति है। इन्द्र आदि द्वादश प्रातिपदिक स्वरूपतः परिगणित हैं।

सूत्रार्थ—स्त्र्यर्थ वाचक इन्द्र आदि से पर में स्वार्थ में ङीष् हो तथा इन्द्र आदि को आनुगागम हो'। यह ङीष् और आनुक् पुंयोगस्त्रीत्व से ही होगा। जैसे-इन्द्रस्य स्त्री इन्द्राणी। वरुणस्य स्त्री वरुणानी।

सिद्धान्त वार्तिक—**हिमारण्ययोरिति**। हिम और अरण्य पद से महत्त्व अर्थ गम्य होने पर ङीष् तथा हिम और अरण्य पद को आनुगागम कहना चाहिये। जैसे-महद्धिमं हिमानी। महदरण्यमरण्यानी। **यवाद्दोष इति**। दोष अर्थ गम्य होने पर यव पद से ङीष् और यव को आनुगागम कहना चाहिये। जैसे-दुष्टो यवो यवानी। **यवनाल्लिप्यामिति**। लिपि अर्थ गम्य होने पर यवनपद से ङीष्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और यवनपद को आनुगागम कहना चाहिये। जैसे-यवनानां लिपिः यवनानी।

उपाध्यायेति। स्त्र्यर्थक उपाध्याय और. मातुल पद से आनुग् विकल्प कहना चाहिये। उपाध्यायस्य स्त्री उपाध्यायानी, मातुलस्य स्त्री मातुलानी। आनुक् के अभावपक्ष में मात्र ङीष् होकर उपाध्यायी, मातुली। मातुल से नित्य आनुक् प्राप्त था तथा उपाध्याय से अप्राप्त होने पर आनुग्विकल्प से प्राप्ताऽप्राप्तविभाषा है।

*** मुद्गलाच्छन्दसि लिच्च * 'मुद्गलाच् छन्दसि लिच्चे'ति वक्तव्यम्। रथीरभून्मुद्गलानी * आचार्यादणत्वं च * 'आचार्यादणत्वं चे'ति वक्तव्यम्। आचार्यानी * अर्यक्षत्रियाभ्यां वा * 'अर्यक्षत्रियाभ्यां वे'ति वक्तव्यम्। अर्या। अर्याणी। क्षत्रिया। क्षत्रियाणी। {इन्द्रवरुणभव}।**

मुद्गलाच्छन्दसीति। मुद्गलप्रातिपदिक से ङीष् को वेद में लित् कहना चाहिये। जैसे-'रथीरभून्मुद्गलानी' इस श्रुतिवाक्य में 'मुद्गलस्य स्त्री मुद्गलानी' प्रयोग है। यहाँ लित्करण से 'लिति' ६.१.१९३ के द्वारा प्रत्यय से पूर्व उदात्त होगा। **आचार्यादणत्वं चेति**। आचार्यशब्द से ङीष्-प्रकृति को आनुगागम हो तथा णत्व का निषेध कहना चाहिये। आचार्यस्य स्त्री आचार्यानी। **अर्यक्षत्रियाभ्यामिति**। अर्य और क्षत्रियपद से ङीष् विकल्प कहना चाहिये। अर्यस्य स्त्री अर्याणी, क्षत्रियस्य स्त्री क्षत्रियाणी। ङीष्-सन्नियोगशिष्ट आनुक् है, अतः ङीष् के अभावपक्ष में आनुक् भी नहीं होगा। पक्ष में अदन्तलक्षण टाप् हो कर-अर्य्यस्य स्त्री अर्य्या, क्षत्रियस्य स्त्री क्षत्रिया।{इन्द्रवरुणभवशर्व}।

क्रीतात्करणपूर्वात् ४.१.५०

करणपूर्वादिति किमर्थम्? गवा क्रीता। अश्वेन क्रीता। 'करणपूर्वादि'त्युच्यमानेऽप्यत्र प्राप्नोति, एषोऽपि क्रीतशब्दः करणपूर्वः। विभक्त्या व्यवहितत्वान्न भविष्यति। यदि तर्हि विभक्तिरपि व्यवधायिका भविष्यति,-मनसाक्रीतीति न सिध्यति। एवन्तर्हि नैवं विज्ञायते'करणं पूर्वमस्मात् क्रीतशब्दात् सोऽयं करणपूर्वः, तस्मात्करणपूर्वात् क्रीतशब्दादनुपसर्जनादि'ति। कथन्तर्हि? 'करणमस्मिन् प्रातिपदिके पूर्वं तदिदं करणपूर्वं, तस्मात् करणपूर्वात् प्रातिपदिकात् क्रीतान्तादनुपसर्जनादि'ति। क्रीतात्करण-।

'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ से 'प्रातिपदिकात्', 'अजाद्यतष्टाप्' ४.१.४ से 'अतः' 'अन्यतो ङीष्' ४.१.४० से ङीष्' और 'अनुपसर्जनात्' की अनुवृत्ति है। 'क्रीतात्' और 'अतः' 'प्रातिपदिकात्' में विशेषण हैं, अतः तदन्तविधि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होगा। 'क्रीतात्' का करणपूर्वात्' विशेषण पद है।

सूत्रार्थ—'स्त्र्यर्थ में वृत्त अनुपसर्जन क्रीतान्त अदन्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में ङीष् हो'। जैसे-वस्त्रेण क्रीतेति वस्त्रक्रीती।

पूर्वपक्षी—**करणपूर्वादिति**। मात्र 'क्रीतात्' इतना ही सूत्र रखने से वस्त्रक्रीती में ङीष् सिद्ध हो जायेगा, उस के लिए 'करणपूर्वात्' पद का ग्रहण क्यों किया गया है? यदि 'करणपूर्वात्'पद का ग्रहण करते हैं तब भी पूर्वपद के व्यवस्थावाची होने से अनिष्ट की आपत्ति होगी, इस आशङ्का से पूर्वपक्ष करते हैं-**करणपूर्वादिति**।

उत्तरपक्षी—**गवा क्रीता**, अश्वेन क्रीतेति। 'करणपूर्वात्' कहने से 'गवा क्रीता' में ङीष् नहीं होता है।

पूर्वपक्षी—**करणपूर्वादिति**। 'करणपूर्वात्' ऐसा कहने पर भी 'गवा क्रीता' में ङीष् प्राप्त होगा, यहाँ क्रीतशब्द भी करणपूर्व है।

उत्तरपक्षी—**विभक्त्येति**। क्रयणक्रिया में गो करण है, मध्य में विभक्ति का व्यवधान होने से क्रीतशब्द से अव्यवहित पूर्व करण नहीं है, अतः क्रीतशब्द के करणपूर्व नहीं होने से ङीष् प्राप्त नहीं है। करण, कर्म आदि प्रातिपदिक के ही अर्थ होते हैं, 'स्वादि विभक्तियाँ करण आदि अर्थों का द्योतन मात्र करती हैं' यह मान कर यह भाष्य कहा गया है।

आक्षेपक आचार्य—**यदि तर्हीति**। यदि विभक्ति का व्यवधान होने से 'गवा क्रीता, अश्वेन क्रीता' में ङीष् का अभाव कहेंगे तो 'मनसाक्रीती' में भी जहाँ 'मनसः संज्ञायाम्' ६.३.४ से तृतीया का अलुक् होने से टा का व्यवधान है वहाँ ङीष् नहीं होना चाहिये।

सिद्धान्ती इस दोष को हटाता है—**एवन्तर्हीति**। 'करणपूर्वात्' इस पद में 'करणं पूर्वमस्मात्' ऐसा पञ्चम्यर्थ में बहुव्रीहि नहीं करेंगे, अपि तु 'करणं पूर्वमस्मिन् प्रातिपदिके' ऐसा सप्तम्यर्थ में बहुव्रीहि करेंगे। पूर्वशब्द अवयववचन है। समासप्रातिपदिक अन्य पदार्थ होगा, अतः वाक्य में ङीष् नही हो सकेगा। 'मनसाक्रीती' में 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' २.१.३२ से समास हो कर तत्प्रयुक्त प्रातिपदिकत्व तथा 'मनसः संज्ञायाम्' ६.३.४ से तृतीया का अलुक् है।{**क्रीतात्करण-**}।

बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात् ४.१.५२

* अन्तोदात्ते जातप्रतिषेधः * **अन्तोदात्ते जातस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः। दन्तजाता। स्तनजाता** * पाणिगृहीत्यादीनां विशेषे * **पाणिगृहीत्यादीनां विशेष इति वक्तव्यम्। पाणिगृहीती-भार्या चेत्।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यस्या हि यथाकथंचित् पाणिर्गृह्यते पाणिगृहिता सा भवति।

पूर्वसूत्र 'क्तादल्पाख्यायाम्' ४.१.५१ से 'क्तात्', 'अजाद्यतष्टाप्' ४.१.४ से 'अतः', 'अन्यतो ङीष्' ४.१.४० से ङीष् और 'अनुपसर्जनात्' ४.१.१४ की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'अनुपसर्जन क्तान्त अन्तोदात्त अदन्त स्त्र्यर्थक प्रातिपदिक से स्वार्थ में ङीष् हो'।

सिद्धान्तिभाष्य—**अन्तोदात्त इति**। क्तान्त अन्तोदात्त जात पद से ङीष् का प्रतिषेध कहना चाहिये। जैसे-दन्तजाता, स्तनजाता। यहाँ 'वा जातेः' ६. २.१६१ के द्वारा विकल्प से जात पद अन्तोदात्त है। **पाणिगृहीती**-पाणिगृहीती आदि में अर्थविशेष में ङीष् कहना चाहिये। जैसे-पाणिगृहीती भार्या। जैसे तैसे ला कर रख लिया जाये जिसे लोक में रखैल पद से कहा जाता है तो उस अर्थ में ङीष् न हो कर टाप्घटित 'पाणिगृहीता' रूप होगा। आदि पद से हस्तगृहीती आदि लेना चाहिये।

***** बहुलं तणि *** 'बहुलं तणी'ति वक्तव्यम्। किमिदं तणी'ति? संज्ञाच्छन्दसोर्ग्रहणम्। किं प्रयोजनम्? *** प्रवद्धविलून्याद्यर्थम् *** प्रवद्ध-विलूनी। प्रवृद्धविलूना *** अन्तोदात्तादबहुनञ्सुकालसुखादिपूर्वात् *** 'अन्तो-दात्ताद् अबहुनञ्सुकालसुखादिपूर्वादि'ति वक्तव्यम्।** बहु-**बहुकृता।** बहु। नञ्-**अकृता।** नञ्। सु-**सुकृता।** सु। काल-**मासजाता। संवत्सर-जाता।** काल। सुखादि-**सुखजाता। दुःखजाता। तृप्रजाता।** सुखादि ***** जातिपूर्वाद् वा *** अथ वा 'जातिपूर्वादि'ति वक्तव्यम्।** {बहुव्रीहेश्चा}।

बहुलं तणीति—तण् में ङीष्-विकल्प कहना चाहिये। तण् शब्द की किसी अर्थविशेष या सामान्य में प्रसिद्धि नहीं होने से शाब्दबोध नहीं होने की स्थिति में पूर्वपक्षी आचार्य जिज्ञासा करते हैं-**किमिदं तणीति**। यह तण् पदार्थ क्या है?

उत्तरपक्षी—**संज्ञाच्छन्दसोरिति**। तण्शब्द से संज्ञा और छन्दः का ग्रहण होगा, अतः 'बहुलं तणि' का अर्थ 'बहुलं संज्ञाच्छन्दसोः' समझना चाहिये।

पूर्वपक्षी—**किमिति**। संज्ञा और छन्दः में 'बाहुलकात्' कहने का क्या प्रयोजन है?

उत्तरपक्षी—**प्रवृद्धविलूनीति**। प्रवृद्धविलूनी आदि प्रातिपदिक से बाहुलकात् ङीष् हो यही प्रयोजन है। जैसे-प्रवृद्धविलूनी, प्रवृद्धविलूना। प्रवृद्धं विलूनं यस्याः सा। **अन्तोदात्तादिति**। यदि क्तान्त अदन्त अन्तोदात्त बहु, न, सु, काल, सुखादि पूर्व हो तो ङीष् का प्रतिषेध कहना चाहिये। जैसे-**बहुपूर्व**- बहुकृता।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नपूर्व-अकृता। **सु**पूर्व-सुकृता। **काल**पूर्व-मासजाता। यहाँ काल पद से स्वरूप का ग्रहण न हो कर व्याख्यानात् अर्थ का ग्रहण है, अतः भाष्यकार कालजाता एवं संवत्सरजाता उदाहरण दे रहे हैं। **सुख**पूर्व-सुजाता। आदिपद से गृहीत का उदाहरण दे रहे हैं-दुःखजाता, तृप्रजाता। 'सुखादिभ्यः कर्तृवेदनायाम्' ३.१.१८ में गणपठित सुखादि यहाँ गृहीत हैं। उपर्युक्त निषेधक वार्तिक के न करने के लिए कहते हैं-**जातिपूर्वादिति**। अथ वा 'बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात्' सूत्र में जातिपूर्व ग्रहण करना चाहिये। {**बहुव्रीहेश्चा-**}।

स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् ४.१.५४

स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादि'त्युच्यते, किं स्वाङ्गं नाम?

अद्रवं मूर्तिमत्स्वाङ्गं प्राणिस्थमविकारजम्।
अतस्थं तत्र दृष्टं च, तस्य चेत्तत्तथायुतम्।।

अप्राणिनोऽपि स्वाङ्गम्।

'अजाद्यतष्टाप्' ४.१.४ से 'अतः' पञ्चम्यन्त, 'अन्यतो ङीष्' ४.१.४० से ङीष्, 'अस्वाङ्गपूर्वपदाद्वा' ४.१.५३ से 'वा', तथा 'प्रातिपदिकात्' ४.१.१ की अनुवृत्ति है। अनुवृत्त 'अतः' पद 'अनुपसर्जनात्' एवं अनुवृत्त 'प्रातिपदिकात्' में विशेषण है। 'अविद्यमानः संयोगोपधो यस्मिँस्तदसंयोगोपधात्'।

सूत्रार्थ—'असंयोगोपध उपसर्जन=अप्रधान जो स्वाङ्ग, तदन्त स्त्र्यर्थक अदन्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में विकल्प ये ङीष् हो'। जैसे-केशानतिक्रान्तेति अतिकेशी, चन्द्र इव मुखं यस्याः सा चन्द्रमुखी। ङीष् के अभावपक्ष में अदन्तलक्षण टाप् होगा-अतिकेशा, चन्द्रमुखा।

पूर्वपक्षी—**स्वाङ्गाच्चेति**।सूत्रकार 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनात्' कह रहे हैं। यहाँ सन्देह होता है-स्वमेवाङ्गं स्वाङ्गम्' माना जाये, अथ वा स्वाङ्ग का कोई अतिरिक्त लक्षण है?

उत्तरपक्षी—**अद्रवमिति**। यहाँ स्वाङ्गपद से 'स्वमङ्गं स्वाङ्गम्' ऐसा अर्थ विवक्षित नहीं है; अपि तु पारिभाषिक स्वाङ्ग विवक्षित है। वह तीन प्रकार का है। १-अद्रवं मूर्तिमत्स्वाङ्गं प्राणिस्थमविकारजम्। २-अतस्थं अत्र दृष्टं च। ३-तस्य चेत्तथायुतम्। क्रमशः इनका अर्थ इस प्रकार है-न विद्यते द्रवो यस्य तदद्रवम्, अथवा द्रवतीति द्रवं, न द्रवमद्रवम्' अर्थात् द्रव से अन्य। इससे रुधिर आदि की व्यावृत्ति होती है। अद्रव होता हुआ मूर्तिमत् हो, **मूर्तिः**=अवयवसंयोगोऽस्यास्तीति **मूर्तिमत्**= अवयवसंयोग का असमवायी कारण कठोर द्रव्य, अथवा **मूर्तिः**=असर्वद्रव्यगत परिमाण, सा यस्याऽस्ति तन्मूर्तिमत्। **प्राणिनि**=प्राणवति जन्तौ तिष्ठतीति प्राणिस्थम्,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राणवान् जन्तु में रहने वाला। **अविकारजम्**=रोग आदि विकारों से जन्य न हो। यह स्वाङ्ग का प्रथम लक्षण है। जैसे-सुस्तनी, सुस्तना वा प्रतिमा। **सु**=शोभना **स्तनौ**-स्तनाकृती अवयवौ यस्याः सा। अद्रवम् पद देने से सुस्वेदा में अति-व्याप्ति नहीं है। **सु**=शोभनः **स्वेदो**=घर्मज उदकप्रस्रवो यस्याः सा। दुर्गन्धत्व का अभाव ही स्वेद का शोभनत्व है। अमूर्त कहने से सुज्ञाना में ङीष् की व्यावृत्ति होती है-**सु**=शोभनं ज्ञानं यस्याः सा। प्राणिस्थ पद से **सु**=शोभनं मुखं यस्याः सा सुमुखा शाला में ङीष् की व्यावृत्ति है। अविकारज पद से **सु**=शोभनः **शोफः**=श्यथुः यस्याः सा सुशोफा में ङीष् की व्यावृत्ति है। द्वितीय स्वाङ्गलक्षण में तत्पद से प्राणी विवक्षित है। 'तस्मिँस्तिष्ठतीति तत्स्थम्' प्राणी में देखा गया हो तथा वही अप्राणी में हो तो उसे स्वाङ्ग कहते हैं। जैसे-केश, लोम, नख आदि प्राणी में हैं वह अप्राणी रथ्या में देखा जाता है-सुशोभनाः केशा यस्यां सा सुकेशी, सुकेशा वा **रथ्या**=गली। **सु**-शोभनानि नखानि यस्यां सा सुनखी, सुनखा वा प्रतोलिका। रथ्यस्थ केश सम्प्रति प्राणिस्थ नहीं हैं, अतः प्रथमलक्षण से उसका अग्रहण होने पर आचार्य ने द्वितीय लक्षण कहा है। तृतीय लक्षण में 'अप्राणि-नोऽपि स्वाङ्गम्' इतना अतिरिक्त वचन है। इसका योग कर तृतीय स्वाङ्ग-लक्षणार्थ होगा-चेत्पद 'यदि' अर्थ में है। 'यदि प्राणिस्थ स्तन आदि आकृति के सदृश अप्राणिस्थ प्रतिमा आदि में स्थित स्तन आदि आकृति हो तो वह भी प्राणिसदृश प्रतिमा आदि में स्थित होने से प्राणिवत् स्वाङ्ग है'। जैसे-सुशोभनौ स्तनौ यस्यां सा सुस्तनी, सुस्तना वा प्रतिमा।

'अद्रव'मिति किमर्थम्? बहुलोहिता। नैतदस्ति-'बह्वचो ने'ति प्रतिषेधो भविष्यति। इदन्तर्हि-बहुकफा। 'मूर्तिम'दिति किमर्थम्? बहुबुद्धिः, बहुमनाः। नैतदस्ति-'अत' इति वर्तते। इदन्तर्हि-बहुज्ञाना। 'अप्राणिस्थ'मिति किमर्थम्? श्लक्ष्णमुखा शाला। अविकारज'मिति किमर्थम्? बहुगडुः, बहुपिटका। नैतदस्ति-इह तावद् बहुगडुरिति। 'अत' इत्यनुवर्तते। बहुपिटकेति'बह्वचो ने'ति प्रतिषेधो भविष्यति। इदन्तर्हि-बहुशोफा। 'अतत्स्थं तत्र दृष्टं च'। अप्राणिस्थं प्राणिनि दृष्टं च स्वाङ्गसंज्ञं भवति। दीर्घकेशी रथ्या। 'तस्य चेत्तत्तथायुतम्-अप्राणिनोऽपि स्वाङ्गसंज्ञं भवती'ति। दीर्घनासिक्यर्चा। तुङ्गना-सिक्यर्चा।

पूर्वपक्षी—**अद्रवमिति**। अद्रवपद का व्यावर्त्य क्या है?

उत्तरपक्षी—**बहुलोहितेति**। उत्तरपद का व्यावर्त्य बहुलोहिता है-बहूनि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लोहितानि=रुधिराणि यस्यां सा बहुलोहिता।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। यह अद्रवपद का व्यावर्त्य नहीं है। यहाँ 'बह्वचो न' ४.१.५६ से ङीष् का निषेध हो जायेगा। उत्तरपक्षी अद्रवपद का उदाहरणान्तर देते हैं-**इदन्तर्हीति**। 'बहवः कफा यस्यां सा बहुकफा' यह अद्रवपद का व्यावर्त्य है। कफ द्रव है, अतः ङीष् की निवृत्ति होती है।

पूर्वपक्षी—**मूर्तिमदिति**। मूर्तिमत् पद का व्यावर्त्य क्या है?

उत्तरपक्षी—**बहुबुद्धिरिति**। बहुबुद्धिः, बहुमनाः यह मूर्तिमत् पद का व्यावर्त्य है। यहाँ 'बह्वी बुद्धिर्यस्यां सा, बहूनि मनांसि यस्यां सा' इस विग्रह में बहुबुद्धिः, बहुमनाः में ङीष् की व्यावृत्ति होती है। बुद्धि और मनः ये दोनों मूर्तिमान् नहीं है, अतः उससे ङीष् प्राप्त नहीं होगा।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। पूर्वसूत्र से 'अतः' की अनुवृत्ति होती है। वह 'प्रातिपदिकात्' में विशेषण होने से तदन्त अर्थ को कहेगा, अतः अदन्त प्रातिपदिक से ङीष् होने से बहुबुद्धिः, बहुमनाः में ङीष् नहीं हो सकेगा। उदाहरण भाष्य-**इदन्तर्हीति**। 'बहूनि ज्ञानानि यस्यां सा बहुज्ञाना' में ङीष् की निवृत्ति के लिए मूर्तिमत् पद है।

पूर्वपक्षी—**प्राणिस्थमिति**। प्राणिस्थपद का क्या व्यावर्त्य है?

उत्तरपक्षी—**श्लक्ष्णमुखेति**। प्राणिस्थपद का 'श्लक्ष्णमुखा' यह व्यावर्त्य है-श्लक्ष्णं मुखं यस्याः सा श्लक्ष्णमुखा शाला। यहाँ मुख प्राणिस्थ नहीं है, अतः ङीष् नहीं हुआ।

पूर्वपक्षी—**अविकारजमिति**। अविकारजपद का क्या व्यावर्त्य है?

उत्तरपक्षी—**बहुगड्विति**। 'बहवो **गडवो**=मांसशोथा यस्यां सा बहुगडुः, बहव पिटका यस्यां सा अहुपिटका' में ङीष् व्यावृत्यर्थ अविकारज पद है। गडु और पिटक ये विकारज हैं, अतः प्राणिस्थ होने से इनसे पर में ङीष् प्राप्त था; इसकी व्यावृत्ति के लिए अविकारज पद दिया गया है।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। अविकारज पद का व्यावर्त्य बहुगडुः नहीं हो सकता है। अदन्त से पर में ङीष् विहित है। गडु पद अदन्त नहीं है, अतः ङीष् की प्राप्ति नहीं होगी। बहुपिटका में अदन्त होने से प्राणिस्थत्वात् ङीष् प्राप्त होगा, परन्तु 'बह्वचो न' ४.१.५६ से इसका निषेध हो जायेगा।

उत्तरपक्षी—**इदन्तर्हीति**। 'बहवः शोफा मांसग्रन्थयः सन्ति यस्यां सा बहुशोफा' में ङीष् की व्यावृत्ति के लिए अविकारज पद है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वितीय स्वाङ्गलक्षण की व्याख्या करते हैं—**अततस्थमिति**। जो प्राणी में देखा गया है तथा वह अप्राणी में भी देखा जाये वह भी स्वाङ्ग होता है। जैसे-केश। दीर्घाः केशा यस्यां सा दीर्घकेशी रथ्या।

तृतीय लक्षण की व्याख्या करते हैं—**तस्य चेति**। अप्राणी को भी स्वाङ्ग होता है। जैसे-दीर्घा नासिका यस्यां सा दीर्घनासिकी **अर्चा**=प्रतिमा। तुङ्गा नासिका यस्याः सा तुङ्गनासिकी अर्चा।

अथोपसर्जनग्रहणं किमर्थम्? इह मा भूद्-अशिखा * उपसर्जन-ग्रहणमनर्थकं बहुव्रीह्यधिकारात् * **उपसर्जनग्रहणमनर्थकम्। किं कारणम्? बहुव्रीह्यधि- कारात्। 'बहुव्रीहे'रिति प्रकृतमनुवर्तते। क्व प्रकृतम्? 'बहुव्रीहेश्चान्तोदात्ता'दिति** * बह्वजर्थन्तर्हि * **बह्वजर्थन्तर्ह्युपसर्जन-ग्रहणं कर्तव्यम्। बह्वचो ने'ति प्रतिषेधं वक्ष्यति तद् बह्वज्ग्रहणमुप-सर्जनविशेषणं यथा विज्ञायेत'बह्वच उपसर्जनान्ने'ति। अथाऽ-क्रियमाणे उपसर्जनग्रहणे कस्य बह्वज्ग्रहणं विशेषणं स्यात्? 'बहुव्रीहे'-रिति वर्तते, बहुव्रीहिविशेषणं विज्ञायेत। अस्ति चेदानीं कश्चिदब-ह्वज्बहुव्रीहिर्यदर्थो विधिः स्यात्? 'अस्ती'त्याह-स्वडा, स्वडीति** * बह्वजर्थमिति चेत्स्वाङ्गग्रहणात्सिद्धम् * **बह्वजर्थमिति चेत्स्वाङ्गग्रहणा-त्सिद्धम्। स्वाङ्गग्रहणं क्रियते। तद्बह्वज्ग्रहणेन विशेषयिष्यामः-'स्वाङ्गाद् बह्वचो ने'ति।**

प्रश्नभाष्य—**अथोपसर्जनेति**। सूत्र में उपसर्जनग्रहण किया गया है, उसका क्या फल है?

उत्तरभाष्य—**अशिखेति**। 'अविद्यमाना शिखा यस्याः सा अशिखा' में ङीष् का निषेध फल है।

अन्य आचार्य—**किमिति**। आप के प्रश्न में हेतु क्या हैं?

प्रश्नभाष्य—**बहुव्रीहीति**। 'बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात्' ४.१.५२ सूत्र से 'बहुव्रीहेः' का अधिकार आ रहा है। बहुव्रीहि में समासार्थ विशेष्य होता है तथा पद विशेषण। इस तरह उपसर्जन अर्थ का स्वयं लाभ हो जाता, पुनः उपसर्जन पद का ग्रहण क्यों किया गया है?

उत्तरभाष्य—**बह्वजर्थमिति**। आचार्य 'बह्वचो न' ४.१.५६ ऐसा निषेधवचन पढेंगे। वहाँ 'उपसर्जन'पद 'बह्वचः' का विशेषण होगा-'बह्वच उपसर्गान्न' ऐसा अर्थबोध करेंगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रश्नभाष्य—**अथाक्रियमाण इति**। यदि उपसर्जनपद का ग्रहण नहीं करेंगे तो बह्वज्ग्रहण किसका विशेषण होगा।

उत्तरभाष्य—**बहुव्रीहेरिति**। अनुवृत्त 'बहुव्रीहे'' का विशेषण होगा।

प्रश्नभाष्य—**अस्ति चेदानीमिति**। क्या कोई बहुत अच् से रहित बहुव्रीहि है? जिसके लिए 'बहुव्रीहेः' का विशेषण 'बह्वच्' को करते हैं?

उत्तरभाष्य—**अस्तीत्याहेति**। हाँ, बहुत अच् से रहित भी बहुव्रीहि है। जैसे-'**सु**=शोभनः **अङः**=वृश्चिकावयवविशेषो यस्याः सा स्वङा' यह अबह्वच् बहुव्रीहि है। उससे ङीष् की व्यावृत्ति के लिए 'बहुव्रीहेः' का 'बह्वचः' विशेषण है।

अन्य आचार्य—**बह्वजर्थमिति**। यदि बह्वजर्थ उपसर्जनग्रहण का अनुवर्तन करेंगे तो मैं उसकी आवयकता नहीं समझता हूँ। इसके लिए मैं स्वाङ्गग्रहण से 'बह्वचः' को विशेषित करूँगा। अर्थ होगा-'स्वाङ्गवाची बह्वच् से ङीष् न हो'। इससे बहुलोहिता इत्यादि में ङीष् की निवृत्ति हो जायेगी।

*** अनन्तोदात्तार्थन्तर्हि * एवन्तर्हि 'अन्तोदात्तादि'ति वर्तते, अनन्तोदात्तार्थोऽयमारम्भः। अनन्तोदात्तार्थमुपसर्जनग्रहणं क्रियते * अनन्तोदात्तार्थमिति चेत्सहादिकृतत्वात्सिद्धम् * अनन्तोदात्तार्थमिति चेत्सहादिकृतत्वात्सिद्धम्। यदयं 'सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्चे'ति प्रतिषेधं शास्ति तज्ज्ञापयत्याचार्योऽनन्तोदात्तादपि भवती'ति * स्वाङ्गसमुदायप्रतिषेधार्थन्तु * स्वाङ्गसमुदायप्रतिषेधार्थं तर्ह्युपसर्जनग्रहणं कर्तव्यं-स्वाङ्गाद्यथा स्यात् स्वाङ्गसमुदायान्मा भूत्-कल्याणपाणिपादा।**

इतर आचार्य—**अनन्तोदात्तार्थमिति**। 'बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात्' ४.१.५२ से 'अन्तोदात्तात्' पद की अनुवृत्ति होने से अन्तोदात्त उपसर्जन स्वाङ्गवाची से ङीष् प्राप्त था। 'बहुव्रीहेः' का अधिकार होने से समासार्थ बहुव्रीहि के विशेष्य होने पर स्वाङ्ग का उपसर्जनत्व लब्ध था। फिर भी आचार्य ने उपसर्जनपद का ग्रहण किया है; वह व्यर्थ पड कर उपसर्जनमात्र का ग्रहण करायेगा। इससे **अनन्त**=मध्य अथ वा आदि स्वर के उदात्त होने पर भी ङीष् होता है।

अन्य आचार्य इस का खण्डन करते हैं—**सहादिकृतत्वादिति**। उपसर्जनपद का ग्रहण करने से अनन्तोदात्त से ङीष् की उत्पत्ति का ज्ञापन नहीं कर सकते हैं। 'अनन्तोदात्त से भी ङीष् की उत्पत्ति होती है' इस अर्थ का ज्ञापन 'सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्च' इस निषेधवार्तिक से हो जायेगा। सहादिपूर्व बहुव्रीहि का 'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्' ६.२.१ से पूर्वपदप्रकृतिस्वर के द्वारा शेषनिघात होने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर अन्तोदात्त नहीं रहेगा। अन्तोदात्त नहीं होने से सहादिपूर्व ङीष् प्राप्त नहीं था। प्राप्ति के अभाव में निषेधवचन व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा-'अनन्तोदात्त स्वाङ्ग से भी ङीष् होता है' अतः इसके लिए भी उपसर्जनग्रहङ्ग नहीं हो सकता है।

इतर आचार्य—**स्वाङ्गसमुदायेति**। स्वाङ्गसमुदाय से ङीष् का निषेध के लिए उपसर्जनग्रहण किया गया है। जैसे-'पाणी च पादौ चेत्यनयोः समाहारः पाणिपादम्, पाणिपादं कल्याणं यस्याः सा कल्याणपाणिपादा' में स्वाङ्गसमुदाय पाणिपाद है, उससे ङीष् का निषेधार्थ उपसर्जनग्रहण है।

अथ क्रियमाणेऽप्युपसर्जनग्रहणे कस्मादेवात्र न भवति? स्वाङ्गं ह्येतदुपसर्जनम्। न स्वाङ्गसमुदायः स्वाङ्गग्रहणेन गृह्यते। तद्यथा न जनपदसमुदायो जनपदग्रहणेन गृह्यते,-काशिकोशलीया इति,-'जनपद-तदवध्योश्चे'ति वुञ्न भवति। एतदपि नास्ति प्रयोजनम्'अस्वाङ्ग-पूर्वपदादि'ति वर्त्तते तेन स्वाङ्गं विशेषयिष्यामः-'अस्वाङ्गपूर्वपदात्परं यत्स्वाङ्गं तदन्ताद् बहुव्रीहे'रिति। यच्चात्राऽस्वाङ्गपूर्वपदात्परं स्वाङ्गं न तदन्तो बहुव्रीहिः, यदन्तश्च बहुव्रीहिर्न तदस्वाङ्गपूर्वपदात्परं स्वाङ्गम्।

प्रश्नभाष्य—**अथेति**। उपसर्जनग्रहण करने पर 'कल्याणपाणिपादा' में ङीष् क्यों नहीं होता है?

उत्तरभाष्य—**स्वाङ्गमिति**। 'कल्याणपाणिपादा' में पाणिपाद'शब्द उपसर्जन है। वह स्वाङ्गसमुदायवाची है, स्वाङ्गवाची नहीं। जो स्वाङ्गवाची पादशब्द है वह उपसर्जन नहीं है, अतः ङीष् नहीं होता है। यदि उपसर्जनग्रहण नहीं करते तो स्वाङ्गवाची पादशब्द के साथ स्वाङ्गान्त बहुव्रीहि होने से ङीष् होता। जैसे-जनपद-समुदाय जनपदशब्द से गृहीत नहीं होता है, अतः 'काशयश्च कोशलाश्चेति काशिकोश-लास्ते काशिकोशले भवाः' इस अर्थ में 'जनपदतदवध्योश्च' ४.२.१२४ से वुञ् नहीं होता है, अपि तु वृद्धलक्षण छ ही होता है।

अन्य आचार्य—**एतदपि नास्तीति**। उपसर्जनग्रहण का यह भी प्रयोजन नहीं है। 'अस्वाङ्गपूर्वपदाद्वा' ४.१.५३ की अनुवृत्ति 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनात्-' ४.१.५४ में होगी। 'अस्वाङ्गपूर्वपदात्' से स्वाङ्ग को विशेषित करेंगे। अर्थ होगा-'अस्वाङ्गपूर्वपद से पर में जो स्वाङ्ग, तदन्त बहुव्रीहि, उससे पर में ङीष् हो'। इस तरह कल्याणि-पाणिपादा में जो अस्वाङ्गपूर्वपद=कल्याङ्गपद से पर में स्वाङ्गवाची पाणिपद है, तदन्त बहुव्रीहि नहीं है, एवं यदन्त=पादशब्दान्त बहुव्रीहि है, वह अस्वाङ्गपूर्वपद से पर नहीं है, अतः कल्याणिपाणिपादा में ङीष् की प्राप्ति नहीं होने से उसके लिए भी उपसर्जनग्रहण नहीं हो सकता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ननु च तत्पूर्वस्मिन् योगे बहुव्रीहिविशेषणम्? 'ने'त्याह। पूर्वपदविशेषणं तद्।-'न स्वाङ्गमस्वाङ्गम्, पूर्वं पदं पूर्वपदम्, अस्वाङ्गं पूर्वपदमस्वाङ्गपूर्वपदम्, अस्वाङ्गपूर्वपदादि'ति। यद्येवं पूर्वस्मिन् योगे बहुव्रीहिरविशेषितो भवति * बहुव्रीहिश्च विशेषितः * बहुव्रीहिश्च विशेषितः। कथम्? क्तादिति वर्तते, तेन बहुव्रीहिं विशेषयिष्यामः-'अस्वाङ्गात्पूर्वपदात्परं यत्क्तान्तं तदन्ताद्बहुव्रीहे'रिति। इदन्तर्हि प्रयोजनं-'बहुव्रीहे'रिति वर्त्तमाने उपसर्जनग्रहणम् उपसर्जनमात्राद्यथा स्यात्। निष्केशी यूका। अतिकेशी मालेति।

पूर्वपक्षी—**ननु च तदिति**। पूर्वयोग='अस्वाङ्गपूर्वपदात्' में अस्वाङ्गपूर्वपद अनुवृत्त-बहुव्रीहि का विशेषण है। उसका उत्तरसूत्र 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनात्' में अनुवर्तन होने पर वह बहुव्रीहि का ही विशेषण होगा, स्वाङ्ग का नहीं; अतः उससे कल्याणपाणिपादा में ङीष् का वारण सम्भव नहीं है।

खण्डनभाष्य—**नेत्याहेति**। पूर्वसूत्र में अस्वाङ्गपद पूर्वपद में विशेषण है, बहुव्रीहि में नहीं। पूर्वपद में विशेषण दिखाने के लिए विग्रह से अर्थ स्पष्ट करते हैं-**न स्वाङ्गमिति**।

आक्षेपभाष्य—**यद्येवमिति**। यदि पूर्वसूत्र में अस्वाङ्गपद पूर्वपद में विशेषण है तो बहुव्रीहि अविशेषित होता है, अर्थात् बहुव्रीहि का कोई विशेषण नहीं है?

उत्तरभाष्य—**बहुव्रीहिश्चेति**। 'क्तादल्पाख्यायाम्' ४.१.५१ से 'क्तात्' पञ्चम्यन्त पद की अनुवृत्ति होती है, उससे बहुव्रीहि विशेषित है। अर्थ होता है-अस्वाङ्गपूर्वपद से पर में जो क्तान्त, तदन्तबहुव्रीहि से ङीष् हो'। जैसे-अभ्रलिप्ती द्यौः।

प्रयोजनवादी आचार्य उपसर्जनग्रहण का प्रयोजन देते है-**इदन्तर्हीति**। 'बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात्' ४.१.५२ से 'बहुव्रीहेः' ग्रहण का अनुवर्तन होने पर बहुव्रीहि में सभी के उपसर्जन होने से उपसर्जन अर्थ स्वतः लब्ध था; पुनः आचार्य द्वारा किया गया उपसर्जनग्रहण व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा-'उपसर्जनमात्र से ङीष् हो'। जैसे-निष्केशी यूका, अतिकेशी माला। केशेभ्यो निष्क्रान्तेति निष्केशी। केशानतिक्रान्तेति अतिकेशी माला।{**स्वाङ्गाच्चोपसर्जनात्**}।

नासिकोदरौष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गाच्च ४.१.५५

* नासिकादीनां विभाषायां पुच्छाच्च * 'नासिकादीनां विभाषायां पुच्छाच्चे'ति वक्तव्यम्। कल्याणपुच्छी, कल्याणपुच्छा * कबरमणि-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषशरेभ्यो नित्यम् * **'कबरमणिविषशरेभ्यो नित्य'मिति वक्तव्यम्। कबरपुच्छी।** कबर। **मणिपुच्छी।** मणि। **विषपुच्छी।** विष। **शरपुच्छी।** शर * उपमानात्पक्षाच्च पुच्छाच्च * **'उपमानात्पक्षाच्च पुच्छाच्चे'ति वक्तव्यम्। उलूकपक्षी शाला, उलूकपुच्छी सेनेति।**

'अन्यतो ङीष्' ४.१.४० से 'ङीष्' प्रथमान्त विधेयवचन अनुवृत्त है। नासिका आदि परिगणित सात प्रातिपदिकों का समाहारद्वन्द्व हो कर पर में पञ्चमी है। 'स्वाङ्गात्, उपसर्जनात्' और 'बहुव्रीहेः' पद भी अनुवृत्त हैं। प्रातिपदिक में नासिका आदि विशेषण होने से तदन्त अर्थ को कहेंगे।

सूत्रार्थ—'उपसर्जन स्वाङ्गवाची नासिकाद्यन्त स्त्र्यर्थक प्रातिपदिक से स्वार्थ में ङीष् विकल्प हो'। जैसे-तुङ्गा नासिका यस्याः सा तुङ्गनासिका इत्यादि। नासिका और उदर शब्द से 'न क्रोडादिबह्वचः' ४.१.५६ से निषेध प्राप्त था, एवम् ओष्ठ आदि पाँच के संयोगोपध होने से '-असंयोगोपधात्' ४.१.५४ यह निषेध प्राप्त था, अतः अप्राप्त ङीष् का विकल्पविधान किया गया है।

सिद्धान्त वार्तिक—**नासिकादीनामिति**। नासिका आदि से ङीष्विकल्प की कर्तव्यता में पुच्छशब्द से भी ङीष्विकल्प कहना चाहिये। जैसे-कल्याणः पुच्छो यस्याः सा कल्याणपुच्छी। **कबरमणीति**-इसमें 'पुच्छात्' की अनुवृत्ति है। वार्तिकार्थ-'कबर, मणि, विष और शर पूर्वपद से पर में पुच्छ उत्तरपद से पर में ङीष् कहना चाहिये'। जैसे-कबरः=मणिविशेषः पुच्छो यस्याः सा कबरपुच्छी, मणिरिव पुच्छो यस्याः सा मणिपुच्छी, विषं पुच्छो यस्याः सा विषपुच्छी, शर इव पुच्छो यस्याः सा शरपुच्छी। **उपमानादिति**-उपमानवाची पूर्वपद से पर में उत्तरपद पक्ष और पुच्छ से नित्य ङीष् कहना चाहिये। उलूकस्य पक्ष उलूकपक्ष, उलूकपक्ष इव पक्षो यस्याः सा उलूकपक्षी, 'सप्तम्युपमानपूर्वपदस्योत्तरपदलोपो वाच्यः' भा. वा.२.२.२३ से समास है। इसी तरह 'उलूकपुच्छ इव पुच्छो यस्याः सा उलूकपुच्छी'।

* नासिकादिभ्यो विभाषायां सहनञ्विद्यमानपूर्वेभ्यः प्रतिषेधो विप्रतिषेधेन * **'नासिकादिभ्यो विभाषायां सहनञ्विद्यमानपूर्वेभ्यः प्रतिषेधो भवति विप्रतिषेधेने'ति वक्तव्यम्। नासिकादिभ्यो विभाषाया अवकाशः-कल्याणनासिकी, कल्याणनासिका। सहनञ्विद्यमानपूर्वलक्षणस्य प्रतिषेधस्याऽवकाशः-सुमुखा, अमुखा, विद्यमानमुखेति। इहोभयं प्राप्नोति-सनासिका, अनासिका, विद्यमाननासिकेति। सहनञ्विद्यमानपूर्वेभ्यः प्रतिषेधो भवति विप्रतिषेधेन। नैष युक्तो विप्रतिषेधः। अयं विधिः स प्रतिषेधः। विधिप्रतिषेधयोश्चाऽयुक्तो विप्रतिषेधः। अयमपि**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विधिर्न मृदूनामिव कार्पासानां कृतः, प्रतिषेधविषये प्रारभ्यते, स यथैव बह्वज्लक्षणं च संयोगोपधलक्षणं च प्रतिषेधं बाधते, एवं सहनञ्विद्यमानपूर्वलक्षणमपि बाधेत। का तर्हि गतिः?

नासिकादिभ्य इति—'नासिकोदरौष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गाच्च' ४.१.५५ की अपेक्षा 'सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्च' ४.१.५७ पर है। 'न क्रोडादिबह्वचः' ४.१.५६ से 'न' पद का अनुवर्तन करके सह, नञ् आदि त्रिकपूर्व से ङीष्निषेध है। कल्याण-नासिका, कल्याणनासिकी आदि में ङीष्विकल्प करके 'नासिकोदरौष्ठ-' ४.१.५५ चरितार्थ है, एवं सुमुखा, अमुखा, विद्यमानमुखा में 'सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्च' ४.१.५७ चरितार्थ है। सनासिका, अनासिका, विद्यमाननासिका में दोनों प्राप्त हैं। अन्यत्रान्यत्र लब्धावकाश होने से दोनों का समान बल है, अतः पर होने से विप्रतिषेध के द्वारा 'सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्च' ४.१.५७ की प्रवृत्ति होने से सुमुखा आदि में ङीष्निषेध होगा।

अन्य आचार्य—**नैष युक्त इति**। 'नासिकोदरौष्ठ-' एवं 'सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्च' का विप्रतिषेध सम्भव नहीं है। पूर्व विधिसूत्र है तथा पर निषेधसूत्र है। विधि और निषेध का विप्रतिषेध उचित नहीं है। निषेध अपवाद होता है। विधि उत्सर्ग होता है। 'प्रकल्प्य चापवादविषयं तत उत्सर्गः प्रवर्तते' परिभाषा से निषध-विषय को छोड कर उत्सर्गशास्त्र प्रवृत्त होता है। अतः निषेधशास्त्र 'सहनञ्विद्य-मान-' ४.१.५७ के विषय को छोड कर 'नासिकोदरौष्ठजङ्घा-'४.१.५५ प्रवृत्त होगा।

उत्तरपक्षी—**अयमपीति**। 'नासिकोदरौष्ठ-'४.१.५५ भी विधिसूत्र है। जैसे-**मृदु**=कोमल **कार्पास**=कपास से निर्मित वस्त्र भी मृदु होता है। अर्थात् कारण का गुण कार्य के गुण का आरभक होने से कार्य में देखा जाता है। 'न क्रोडादि-बह्वचः' ४.१.५६ इस निषेध के विषय में 'नासिकोदरौष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गाच्च' ४.१.५५ का आरम्भ है। यह जैसे बह्वज्लक्षण और संयोगोपधलक्षणनिषेध का बाध करेगा, वैसे सहनञ्विद्यमानपूर्वलक्षणप्रतिषेध का भी बाध करेगा, अतः यह प्रतिषेधलक्षण बाध है, विप्रतिषेधलक्षण बाध नहीं। इस तरह प्रतिषेध का अप-वाद होने से यह विधिशास्त्र है।

इतर आचार्य—**का तर्हीति**। यदि प्रतिषेध का अपवाद होने से 'नासिकोदरौष्ठ-जङ्घादन्तकर्णशृङ्गाच्च' ४.१.५५ को विधि मानेंगे तो क्या गति होगी?

इह तावन्नासिकोदर इति,-बह्वज्लक्षणश्च प्रतिषेधः प्राप्नोति, सहनञ्विद्यमानपूर्वलक्षणश्च। 'पुरस्तादपवादा अनन्तरान् विधीन्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बाधन्ते न परान्' इत्येवमियं विभाषा बह्वज्लक्षणं प्रतिषेधं बाधिष्यते, सहनञ्विद्यमानलक्षणं न बाधिष्यते। 'ओष्ठजङ्घादन्त-कर्णशृङ्गाच्चे'ति संयोगोपधलक्षणश्च प्रतिषेधः प्राप्नोति, सहनञ्विद्य-मानपूर्वलक्षणश्च। 'मध्येऽपवादाः पूर्वान् विधीन् बाधन्ते' इत्येवमियं विभाषा संयोगोपधलक्षणं प्रतिषेधं बाधिष्यते, सहनञ्विद्यमानपूर्वलक्षणं प्रतिषेधं न बाधिष्यते।

अब जैसे विप्रतिषेधोपपत्ति होगी उसे दिखा रहे हैं—**इह तावदिति**। 'नासिकोद-रौष्ठ-' ४.१.५५ सूत्र में 'न क्रोडादिबह्वचः' ४.१.५६ सूत्रघटक बह्वंज्लक्षणप्रतिषेध प्राप्त है, तथा सहनञ्विद्यमानपूर्वलक्षण प्रतिषेध भी प्राप्त है। अपवाद **अनन्तर**= जिसके उत्तर में पढा गया है, उसी का बाध करेगा, इतर का नहीं। 'नासिकोदरौष्ठ-' के अनन्तर 'न क्रोडादिबह्वचः' पढा गया है, अतः 'न क्रोडादिबह्वचः' का बाध करेगा। इससे तुङ्गनासिकी, तुङ्गनासिका में ङीष्विकल्प होगा। सहनञ्विद्यमान-पूर्वलक्षण प्रतिषेध का बाध नहीं करेगा, अतः सनासिका, अनासिका, विद्यमान-नासिका में ङीष् की प्रवृत्ति नहीं होगी। एवम् 'ओष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गाच्च' ४.१.५५ में संयोगोपधलक्षण प्रतिषेध प्राप्त है, तथा सहनञ्विद्यमानपूर्वलक्षण प्रतिषेध भी प्राप्त है। मध्य में पठित अपवाद पूर्वविधि का बाध करता है, उत्तरविधि का नहीं। इस दृष्टि से 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्' ४.१.५४, 'नासिकोदरौष्ठजङ्घा-दन्तकर्णशृङ्गाच्च' ४.१.५५ और 'सहनञ्विद्यमान- पूर्वाच्च' ४.१.५७ यह सूत्रों का क्रम है। इसमें ओष्ठ, जङ्घा आदि मध्य में पढे गये हैं, अतः पूर्वनिषेध असंयोगोपधात्' का ही बाध करेंगे, सहनञ्विद्यमानपूर्वलक्षण का नहीं। {नासिको-दरौ-}।

दिक्पूर्वपदान्ङीप् ४.१.६०

*** दिक्पूर्वपदान्ङीषोऽनुदात्तत्वम् * दिक्पूर्वपदान् ङीषोऽनुदात्तत्वं वक्तव्यम्। प्राङ्मुखी, प्रत्यङ्मुखी * ङीब्विधाने ह्यन्यत्रापि ङीष्विषयान् ङीप्रसङ्गः * ङीब्विधाने हि सत्यन्यत्रापि ङीष्विषयान्ङीप्राप्नोति। प्राग्गुल्फा, प्रत्यग्ललाटा। ननु चैते विशेषा अनुवर्तेरन्-असंयोगोपधाद्' 'बह्वचो ने'ति। यद्यप्येते विशेषा अनुवर्तेर'न्नसंयोगोपधाद् बह्वचो ने'त्येवमपि दिक्पूर्वपदान्ङीपा मुक्ते ङीष्प्रसज्येत। नैष दोषः, उक्तमेतद्यत्रोत्सर्गापवादं विभाषा तत्रापवादेन मुक्ते उत्सर्गो न भवती'ति।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'अन्यतो ङीष्' ४.१.४० से ङीष् अनुवृत्त है। इससे 'दिक्पूर्वपदान्ङीष् ङीप्' ऐसा सूत्र होगा। 'पञ्चमी अपने से उत्तर में षष्ठी की प्रकल्पना कराती है' इत्यर्थक परिभाषा 'तस्मादित्युत्तरस्य' १.१.६७ से ङीष् प्रथमान्त को 'ङीषः' ऐसा स्थानषष्ठी की प्रकल्पना होगी। 'स्वाङ्गात्' ४.१.५४ और 'प्रातिपदिकात्' ४.१.१ की अनुवृत्ति हो कर सूत्रार्थ होगा-'दिक्पूर्वपद स्वाङ्गान्त प्रातिपदिक से पर में ङीष् के स्थान पर ङीप् आदेश हो'। जैसे-प्रत्यङ्मुखी। ङीष् को ङीप् आदेश करने से पद आद्युदात्त होता है। ङीप् पित् है, अतः 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' ३.१.४ से पित् के अनुदात्त होने से बहुव्रीहिप्रकृतिस्वर के द्वारा उदङ्मुखी आद्युदात्त पद होगा। परन्तु ङीष् करने पद प्रत्ययस्वर के द्वारा अन्तोदात्त होगा।

सिद्धान्त वार्तिक—**दिक्पूर्वपदादिति**। दिक्पूर्वपदघटक समस्तपद से विहित ङीष् को अनुदात्त कहना चाहिये। जैसे-प्रामुङ्खी, प्रत्यङ्मुखी। यहाँ प्रत्ययस्वर से ङीष् को उदात्तस्वर प्राप्त था, अतः वार्तिककार ने उसे इष्ट अनुदात्तस्वर का विधान किया है। **ङीब्विधान इति**। दिक्पूर्वपद ङीष् के स्थान में ङीप् आदेश करने से **अन्यत्रापि**='दिक्पूर्वपदान् ङीष्' ४.१.६० से भिन्न सूत्र से जहाँ ङीष् प्रसिद्ध है वहाँ ङीष् के स्थान में ङीप् आदेश प्राप्त होगा। जैसे-'प्राङ् गुल्फो यस्याः सा प्राग्गुल्फा, प्रत्यङ् ललाटो यस्याः सा प्रत्यग्ललाटा' में ङीष् प्राप्त है, उसको भी ङीप् आदेश प्राप्त होगा।

खण्डन भाष्य—**ननु चैत इति**। '-असंयोगोपधात्' ४.१.५४ और 'बह्वचो न' ४.१.५६ की अनुवृत्ति 'दिक्पूर्वपदान्ङीष्' ४.१.६० में करेंगे। इससे दिक्पूर्वपद रहते असंयोगोपध बह्वच् से ङीप् का निषेधक 'दिक्पूर्वपदान्ङीष्' होगा।

अन्य आचार्य—**यद्यप्येत इति**। 'असंयोगोपधात्' और 'बह्वचो न' इन दो विशेष पदों का अनुवर्तन करेंगे तो प्रकृत सूत्र से 'दिक्पूर्वपद असंयोगोपध बह्वच् प्रातिपदिक से ङीप् न हो' ऐसा अर्थबोध होगा। इससे ङीप् के अभावपक्ष में ङीष् की प्रवृत्ति होने लगेगी।

इतर आचार्य—**नैष दोष इति**। '-असंयोगोपधात्' और 'बह्वचो न' इन दो विशेषपदों की अनुवृत्ति होने पर भी ङीप् का निषेधपक्ष में दिक्पूर्वपद से ङीष् का प्राप्तिरूप दोष नहीं होगा। इस विषय में इससे पूर्व 'पारे मध्ये षष्ठ्या वा' २.१.१० सूत्र पर बताया जा चुका है कि जहाँ उत्सर्ग और अपवाद दोनों विकल्प से होते हैं वहाँ अपवाद के अभावपक्ष में उत्सर्गशास्त्र की प्रवृत्ति नहीं होती है, अतः ङीप् के अभावपक्ष में टाप् प्रत्यय ही होगा। सूत्रभङ्ग का प्रयोजन नहीं है। 'अनन्तरस्य विधिर्भवति प्रतिषेधो वा' परिभाषा से 'स्वाङ्गाच्चोप- सर्जनादसंयोगो-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पधात्' ४.१.५४ से विहित ङीष् के विषय में ही ङीब्विधान करेंगा, ऐसा मान कर 'ङीब्विधाने ह्यन्यत्राऽपि ङीष्विषयान्ङीप्रसंगः' वार्तिक पढा गया है, अतः 'स्वाङ्गाच्चोप- सर्जनात्' ४.१.५४ से विहित ङीष् ही 'दिक्पूर्वपदान्ङीप्' ४.१.६० का विषय समझना चाहिये।

***ङीषादेशो वा* अथ वा ङीष आदेशो ङीप्करिष्यते। तत्तर्हि ङीषोऽत्र ग्रहणं कर्तव्यम्? न कर्तव्यम्। प्रकृतमनुवर्तते। क्व प्रकृतम्? 'अन्यतो ङी'षिति। तद्वै प्रथमानिर्दिष्टं, षष्ठीनिर्दिष्टेन चेहार्थः। 'दिक्पूर्वपदादि'त्येषा पञ्चमी 'ङी'षिति प्रथमायाः षष्ठीमिह कल्पयिष्यति-'तस्मादित्युत्तरस्ये'ति। प्रत्ययविधिरयं, न च प्रत्ययविधौ पञ्चम्यः प्रकल्पिका भवन्ति। नायं प्रत्ययविधिः,-विहितश्च प्रत्ययः, प्रकृतश्चानुवर्तते। {दिक्पूर्वपदात्} ।६०।**

ङीषादेशो वेति। अथवा ङीष् के स्थान में ङीप् आदेश करेंगे।

पूर्वपक्षी—**तत्तर्हीति**। यदि ङीष् के स्थान में ङीप् आदेश करेंगे तो सूत्र में उद्देश्यवचन षष्ठ्यन्त 'ङीषः' का पाठ नहीं है, उसका पाठ करना होगा।

खण्डनभाष्य—**न कर्तव्यमिति**। 'दिक्पूर्वपदान्ङीप्' सूत्र में 'ङीषः' षष्ठ्यन्त पाठ करने की आवश्यकता नहीं है। 'अन्यतो ङीष्' ४.१.४० सूत्र में आचार्य ने ङीष् प्रथमान्त पढा है, वहाँ से उसका अनुवर्तन करेंगे। 'तस्मादित्युत्तरस्य' १.१.६७ परिभाषा के बल से प्रथमा को षष्ठी की प्रकल्पना होने से उद्देश्यवचन का लाभ हो जायेगा।

पूर्वपक्षी—**प्रत्ययविधिरिति**। ङीष् प्रत्ययविधि है। इसमें पञ्चमी अपने से उत्तर में षष्ठी की प्रकल्पना नहीं कराती है।

उत्तरपक्षी—**नाऽयमिति**। यह प्रत्ययविधि नहीं है। इससे पूर्व 'अन्यतो ङीष्' ४.१.४० में प्रत्यय विहित है, उसका अनुवर्तन किया जा रहा है, अपूर्व प्रत्यय का विधान नहीं। {दिक्पूर्व-}।

जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् ४.१.६३

जातेरित्युच्यते, का जातिर्नाम?

आकृतिग्रहणा जातिर्लिङ्गानां च न सर्वभाक्।
सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या गोत्रं च चरणैः सह।।

अपर आह—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रादुर्भावविनाशाभ्यां सत्त्वस्य युगपद्गुणैः।
असर्वलिङ्गां बह्वर्थां तां जातिं कवयो विदुः।।

गोत्रं च चरणानि च।

सूत्रार्थ—'जो स्त्र्यर्थ में नियत न हो ऐसा जो यकारोपधभिन्न प्रातिपदिक, उससे पर में स्त्र्यर्थ में ङीष् हो'।

पूर्वपक्षी—**जातेरित्युच्यत इति**। गृह्यतेऽनेनेति ग्रहणम्=व्यञ्जक जाति होती है। 'सामान्ये नपुंसकम्' वा.५०४३ से ग्रहणपद नपुंसक है। आकृतिः ग्रहणं यस्याः सा आकृतिग्रहणा जातिः। उपसर्जन होने से ग्रहणपदोत्तर टिल्लक्षण ङीप् नहीं हुआ। **आकृतिग्रहणा**=अवयवसन्निवेश विशेषव्यङ्ग्या जाति है। जैसे-गोत्व जाति। परन्तु इस लक्षण के द्वारा ब्राह्मण आदि के अवयवों के सदृश होने से ब्रह्मणत्व आदि का संग्रह सम्भव नहीं है, अतः ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व आदि लक्ष्यों का संग्रह करने के लिए द्वितीय लक्षण देते हैं-**लिङ्गानामिति**। 'लिङ्गानां च न सर्वभाक्। सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या' यह द्वितीय जातिलक्षण है। असर्वलिङ्ग होते हुए एक व्यक्ति में सकृद् उपदेश करने पर इतर व्यक्ति में भी जिससे ग्रहण हो जाये उसे जाति कहते हैं। जैसे-वृषली। वृषलशब्द क्लीबरूप में नहीं होने से असर्वलिङ्ग है। एवम् एक वृषल में उपदेश करने पर उसके अपत्य, सहोदर आदि में वृषलत्व स्वतः गृहीत हो जाता है। 'अयं ब्राह्मणः' ऐसा कहने से उसके पुत्र, पौत्र आदि में ब्राह्मणत्व का ग्रहण सुगम नहीं है, तरन्तु उसके पिता, माता आदि में ब्राह्मणत्व सुगम है, अतः ब्राह्मणत्व को भी द्वितीय लक्षण से जाति कहेंगे। महर्षि शङ्ख ने शङ्खस्मृति में दो प्रकार के सङ्कर का वर्णन किया है। १-अनुलोम सङ्कर। २-प्रतिलोम सङ्कर। उच्च कुल के पिता से निम्न कुल की माता में उत्पन्न बालक माता की जाति का होता है, अतः ब्राह्मण पिता द्वारा वैश्या अथ वा शूद्रा में उत्पन्न बालक माता की जाति का होने से क्रमशः वैश्य और शूद्र होगा। इसे अनुलोम सङ्कर कहते हैं। यहाँ माता की जाति होती है। परन्तु निम्न कुल के पिता से उच्च कुल की माता में उत्पन्न बालक माता की जाति का न हो कर पिता की जाति का होता है। उसे प्रतिलोम सङ्कर कहते हैं। जैसे-वृषल द्वारा ब्राह्मणी में उत्पन्न बालक वृषल होगा, ब्राह्मण नहीं।

उपर्युक्त दो लक्षणों के होने पर भी अनुगतसंस्थानव्यग्यत्व का अभाव होने तथा सर्वलिङ्ग होने से औपगवी, कठी आदि का असंग्रह है, अतः उसके संग्रहार्थ जाति का तृतीय लक्षण देते हैं-**गोत्रं च चरणैः सहेति**। यहाँ चरणशब्द से शाखाध्यायी वाच्य है। गोत्रपद अपत्य अर्थ को कहता है, अतः अपत्यप्रत्ययान्त शाखाध्येतृवाची शब्द भी जाति है। गोत्र का उदाहरण जैसे-उपगोरपत्यं स्त्री

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

औपगवी। यहाँ 'तस्याऽपत्यम्' ४.१.९२ से अण्, अणन्तलक्षण ङीप् का बाध कर परत्वात् ङीष् हुआ है। चरण का जैसे-कठेन प्रोक्तमधीयानेति कठी, कलापेन प्रोक्तमधीयानेति कलापी।

अन्य आचार्य जाति का लक्षण इस प्रकार देते हैं—**प्रादुर्भावेति**। **सत्त्वस्य**=द्रव्य का प्रादुर्भाव के द्वारा जो आविर्भाव, और विनाश के द्वारा यावद्द्रव्यभावी तिरोभाव प्राप्त है, उन सभी द्रव्यों में रहने वाली जाति का **गुणैः**=अप्रधान व्यक्ति के साथ **युगपत्**=एक साथ ग्रहण होता है। जैसे-सर्वघट व्यक्ति में रहने वाली घटत्व जाति। सभी घट आदि द्रव्यों में रहने वाली घटत्व आदि जाति मात्र क्लीब में ही प्रयुक्त है। उनकी सर्वलिङ्गता नहीं होती है। उस घटत्व आदि जाति को विद्वान् लोग **बह्वर्थाम्**=सर्वव्यक्तिव्यापिनी कहते हैं। **गोत्रं चेति**। गोत्रप्रत्ययान्त औपगव और अध्येता भी जाति है। यहाँ चरणशब्द अध्ययवचन है, अतः व्यवहारवशाद् अध्ययन अर्थ को कहेगा।

कः पुनरेतयोर्जातिलक्षणयोर्विशेषः? यथा पूर्वं जातिलक्षणं तथा 'कुमारीभार्य' इति भवितव्यम्। यथोत्तरं तथा 'कुमारभार्य' इति भवितव्यम्।

पूर्वपक्षी—**कः पुनरेतयोरिति**। जाति का लक्षण बताने के लिए आप ने दो आचार्यों का पृथक्-पृथक् मत दे दिया। इस में क्या भेद है?

उत्तरपक्षी दोनों में भेद बताता है—**यथा पूर्वमिति**। प्रथम जातिलक्षण में जाति को यावद्द्रव्यभावी न होना बताया गया है। कौमार यावद्द्रव्यभावी नहीं है। जातिलक्षण से उसका ग्रहण होने से 'कुमारी भार्या यस्य स कुमारीभार्यः' में 'जातेश्च' ६.३.४१ से पुंवद्भाव का प्रतिषेध हो जायेगा। परन्तु उत्तरलक्षण में अयावद्द्रव्यभावी होने से कौमारत्व जाति नहीं है, अतः 'कुमारी भार्या यस्य स कुमारभार्यः' में पुंवद्भावप्रतिषेध नहीं हो सकेगा, अतः 'कुमारभार्यः' यह रूप होगा। यह दोनों लक्षणों में भेद है।

अथाऽस्त्रीविषयादिति कथमिदं विज्ञायते-'समानायाम् आकृतौ यदस्त्रीविषयमि'ति, आहो स्वित् क्वचिद्यद् अस्त्रीविषयमिति? किं चातः? यदि विज्ञायते 'समानायामाकृतौ यदस्त्रीविषयमि'ति,-द्रोणी, कुटी, पात्रीति न सिध्यति। अथ विज्ञायते-क्वचिद्यदस्त्रीविषयमिति-माला बलाका। अत्रापि प्राप्नोति। अस्तु क्वचिद्यदस्त्रीविषयमिति। कथं माला बलाकेति। अजादिषु पाठः करिष्यते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्वपक्षी—**अथास्त्रीविषयादिति**। सूत्र में 'अस्त्रीविषयात्' कहा गया है। उसका दो तरह से अर्थ किया जा सकता है।

१-'अस्त्री विषयोऽस्मिन्नर्थे प्रवृत्तिनिमित्ते' ऐसा विग्रह करके अन्य पदार्थ प्रवृत्तिनिमित्त मानेंगे, 'समानायामाकृतौ अस्त्रीविषयात्' ऐसा प्रथमपक्ष बनेगा।

२-यदि उक्त विग्रह में अन्य पदार्थ प्रातिपदिक मानेंगे तब 'यत्र क्वचिदस्त्री-विषयात्' ऐसा दूसरा पक्ष होगा।

यहाँ दोनों ही पक्षों में दोष दिखाता है—**यदि विज्ञायत इति**। यदि प्रथमपक्ष मानेंगे तो द्रोणी, कुटी, पात्री में जातिलक्षण ङीष् नहीं हो सकेगा। द्रोणशब्द परिमाणविशेष में नित्य पुल्लिङ्ग है तथा परिमाण से भिन्न अर्थ में स्त्रीलिङ्ग है। कुटशब्द गृह अर्थ में स्त्रीलिङ्ग है तथा गृहभिन्न घट अर्थ में पुल्लिङ्ग है। एवम् पात्रशब्द 'अर्धर्चाः पुंसि च' २.४.३१ गण में पठित होने से भोजनसामान्य में उभयलिङ्ग है, तथा भोजनविशेष में स्त्रीलिङ्ग है, अतः स्त्रीविषय होने से द्रोणी, कुटी, पात्री में ङीष् की अव्याप्ति होगी, अतः प्रथमपक्ष में दोष है। यदि द्वितीयपक्ष 'यत्र क्वचिदस्त्रीविषयात्' ऐसा मानेंगे तो माला, बलाका में भी ङीष् प्राप्त होगा। जैसे 'मलनं मालः' भाव में घञ् करने पर पुल्लिङ्ग है। क्षेत्रविशेष में नपुंसक है, तथा स्रक् अर्थ में स्त्रीलिङ्ग है। एवम् आङ्-उपसर्गपूर्वक कै शब्दे धा.पा.९१६ धातु से 'आकायतीति आको, बलस्य आकः बलाकः' इस व्युत्पत्ति में यौगिक बलाकशब्द पुल्लिङ्ग में है तथा पक्षिविशेष में रूढशब्द स्त्रीलिङ्ग भी है। इस तरह क्वचिद् अस्त्रीविषय माल और बलाक शब्द से भी ङीष् की आपत्ति होगी।

उत्तरपक्षी द्वितीय पक्ष में दोष हटाता है-**अस्तु तर्हीति**। 'अजाद्यतष्टाप्' ४.१.४ सूत्रान्तर्गत अजादिगण में माला, बलाका का पाठ कर देंगे, इससे टाप् से जातिलक्षण ङीष् का बाध हो जायेगा, अतः 'क्वचिदस्त्री-विषयात्' मानने में दोष नहीं है। द्वितीयपक्ष से ही क्वचिदस्त्रीविषय होने से द्रोणी, कुटी, पात्री में ङीष् सिद्ध हो जायेगा।

अयोपधादिति किमर्थम्? इभ्या, क्षत्रिया। अत्यल्पमिदमुच्यते-'ऽयोपधादि'ति, 'अकोपधादि'त्यपि च वक्तव्यम्, इहापि यथा स्याच्-चटका, मूषिकेति। यद्यकोपधादित्युच्यते काकी, कोकी, पिकी, शुकी, उलूकीति न सिध्यति। अस्तु तर्ह्ययोपधादित्येव। कथं चटका मूषिकेति? अजादिषु पाठः कर्त्तव्यः।

प्रश्नभाष्य—**अयोपधादिति**। अयोपधग्रहण का क्या प्रयोजन है?

उत्तरभाष्य—**इभ्येति**। इभ्य, क्षत्रिय ये योपध हैं तथा क्वचिद् अस्त्रीविषय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जातिवाची भी है, इनसे ङीष् प्राप्त होगा; उसका निषेध करने के लिए अयोपध दिया गया है। अविद्यमानो योपधो यस्मिन्नसावयोपधः।

अन्य आचार्य—**अत्यल्पमिदिमिति**। 'अयोपधात्' यह अत्यन्त न्यून पढते हैं। आचार्य को कोपधप्रतिषेध भी पढना चाहिये। इससे चटक, मूषक कोपध से ङीष् का निषेध हो सकेगा। अन्यथा चटकी, मूषकी ऐसा अनिष्ट रूप होगा।

आक्षेपक आचार्य—**यद्यकोपधादिति**। यदि अकोपधप्रतिषेध करते हैं तो काक, कोक, पिक, शुक, उलूक ये कोपध हैं, इनसे 'अकोपधात्' प्रतिषेध होने से जातिलक्षण ङीष् नहीं हो सकेगा। जिससे इष्ट रूप असिद्ध रहेगा, तथा अनिष्ट रूप कोका आदि की आपत्ति होगी।

सिद्धान्ती—**अस्तु तर्हीति**। आप अयोपध इतना ही प्रतिषेधवचन रहने दीजिये। चटका, मूषिका को हम अजादिग ४.१.४ में पाठ कर देंगे। इससे टाप् से ङीष् का बाध हो जायेगा।

* योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानाम् अप्रतिषेधः * **'योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानां प्रतिषेधो न भवती'ति वक्तव्यम्**। हय-**हयी**। हयं। गवय-**गवयी**। गवय। मुकय-**मुकयी**। मुकय। मनुष्य-**मनुषी**। मनुष्य। मत्स्य-**मत्सी**। मत्स्य।{जातेरस्त्री}।

'अयोपधात्' की अतिव्याप्ति दूर करने के लिए वार्तिककार प्रातिपदिकों का परिगणन करते हैं-**योपधप्रतिषेध इति**। योपधप्रतिषेध में हय, गवय, मुकय, मनुष्य, मत्स्य का प्रतिषेध नहीं कहना चाहिये। अर्थात् इनसे पर में जातिलक्षण ङीष् हो कर हयी, गवयी, मुकयी, मनुषी, मत्स्यी रूप बनेगा। {**जातेरस्त्री**-}।

पाककर्णपर्णपुष्पफलमूलवालोत्तरपदाच्च ४.१.६४

* सदच्काण्डप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात्प्रतिषेधः * **सदच्काण्डप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात्प्रतिषेधो वक्तव्यः। सत्पुष्पा, प्राक्पुष्पा, प्रत्यक्पुष्पा, काण्डपुष्पा, प्रान्तपुष्पा, शतपुष्पा, एकपुष्पा** * सम्भस्राजिनशणपिण्डेभ्यः फलात्प्रतिषेधः * **सम्भस्राजिनशणपिण्डेभ्यः फलात्प्रतिषेधो वक्तव्यः**। सम्-**सम्फला**। भस्रा-**भस्राफला**। अजिन-**अजिनफला**। शण-**शणफला**। पिण्ड-**पिण्डफला**।

सूत्रार्थ—'पाक आदि उत्तरपद जातिवाची स्त्रीविषय से ङीष् हो'। जैसे-ओदनपाकी, शङ्कुकर्णी, शालपर्णी, शङ्खपुष्पी, दासीफली, दर्भमूली, गोवाली। ये सभी पद ओषधिविशेष में रूढ हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सिद्धान्त वार्तिक—**सदच्काणेति**। सत्, अञ्चू गतिपूजनयोः धा.पा.१८८ धातु, काण्ड, प्रान्त, शत,और एक पूर्वपद से अव्यवहितपरत्वविशिष्ट पुष्पपद के स्त्रीत्व अर्थ में शक्त होने पर ङीष्प्रतिषेध कहना चाहिये। जैसे-सत्पुष्पा, प्राक्पुष्पा, काण्डपुष्पा, प्रान्तपुष्पा, शतपुष्पा, एकपुष्पा। **सम्भस्राजिनेति**। सम्, भस्रा, अजिन, शण, पिण्ड पूर्वपद रहते उत्तरपद फल से ङीष्प्रतिषेध कहना चाहिये। जैसे-सम्फला, भस्राफला, अजिनफला, शणफला, पिण्डफला। यहाँ सर्वत्र ङीष् का प्रतिषेध होने पर अदन्तलक्षण टाप् है।

*** श्वेताच्च * 'श्वेताच्चे'ति वक्तव्यम्। श्वेतफला * त्रेश्च * त्रेश्च प्रतिषेधो वक्तव्यः। त्रिफला * मूलान्नञः * मूलान्नञः प्रतिषेधो वक्तव्यः। अमूला। {पाककर्णपर्ण-}।**

श्वेताच्चेति। श्वेत पूर्वपद से अव्यवहितोत्तर फल पद से भी ङीष्निषेध कहना चाहिये। जैसे-श्वेतफला। **त्रेश्चेति**। त्रि शब्द पूर्वपद से अव्यवहित उत्तर फल शब्द से भी ङीष् का निषेध कहना चाहिये। जैसे-त्रिफला। **मूलान्नञ इति**। नञ् शब्द से उत्तर में मूल शब्द से ङीष्निषेध कहना चाहिये। जैसे-अविद्यमानं मूलं यस्याः सा अमूला। यहाँ भी सर्वत्र ङीष् का प्रतिषेध होने पर अदन्तलक्षण टाप् है।

इतो मनुष्यजातेः ४.१.६५

जातेरिति वर्तमाने पुनर्जातिग्रहणं किमर्थम्? अयोपधादित्येवं तद्, योपधादपि यथा स्याद्-औदमेयी * इतो मनुष्यजातेरिञ उपसंख्यानम् * इतो मनुष्यजातेरिञ उपसंख्यानं कर्तव्यम्। सौतङ्गमी, मौनिचिती।

सूत्रार्थ—'मनुष्यजाति अर्थ वाच्य होने पर इदन्त से ङीष् हो'। जैसे-दक्षस्याऽपत्यं स्त्री दाक्षी। यहाँ 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ् हो कर इञन्त से ङीष् है।

पूर्वपक्षी—**जातेरिति**। 'जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्' ४.१.६३ से 'जातेः' पञ्चम्यन्त पद की अनुवृत्ति हो रही थी, पुनः जातिग्रहण क्यों किया गया है?

उत्तरपक्षी-**अयोपधादिति**। 'जातेरस्त्रीविषयाद् अयोपधात्' ४.१.६३ सूत्र में 'जातेः' का 'अयोपधात्' से अन्वय है, अतः वह 'जातेः' पद 'अयोपधात्' के ही साथ अनुवृत्त होगा। उससे 'उदमेयस्यापत्यं स्त्री औदमेयी' में योपध होने से ङीष् नहीं हो सकता था। योपध औदमेय से भी ङीष् हो, इसके लिए 'जातेः' पद पढा गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इञ उपसंख्यानमिति। 'इतो मनुष्यजातेः' सूत्र के स्थान पर आचार्य को 'इञो मनुष्यजातेः' ऐसा सूत्र पढना चाहिये था। इससे 'सुतङ्गमेन निर्वृत्तेति सौतङ्गमी, मुनिचितेन निर्वृत्तेति मौनिचिती' यहाँ 'तेन निर्वृत्ता' अर्थ में 'वुञ्छण्कठ-जिल.....सुतङ्गमप्रगदिन्वराहकुमुदादिभ्यः' ४.२.८० अन्तर्गत सुतङ्गमादि से इञ् है। तदन्त से भी ङीष् होता है। {इतो-}।

ऊङुतः ४.१.६६

किमर्थो ङकारः? विशेषणार्थः। क्व विशेषणार्थे नार्थः? 'नोङ्धात्वो'रिति। 'नोधात्वो'रितीयत्युच्यमाने- यवाग्वा यवाग्वै इत्यत्रापि प्रसज्येत।

सूत्रार्थ—'उकारान्त अयोपध मनुष्यजातिवाची स्त्र्यर्थ में शक्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में ऊङ् हो'। जैसे-कुरोः=कुरुक्षेत्रस्य राजा कुरुस्तस्यापत्यं स्त्री कुरू।

पूर्वपक्षी—**किमर्थो ङकार इति**। 'ऊङुतः' सूत्र में विधेय ऊङ् को ङिद्विशिष्ट पढा गया है। 'उत ऊ' ऐसा ही सूत्र रखते, उससे भी 'कुरूः' इत्यादि की लक्ष्यसिद्धि हो जाती, ङिद्ग्रहण क्यों किया गया है?

उत्तरपक्षी—**विशेषणार्थ इति**। यहाँ ङकार व्यावर्तक है।

प्रश्नभाष्य—**क्वेति**। ङकार विशेषण का प्रयोजन किस शास्त्र में है?

उत्तरभाष्य—**नोङ्धात्वोरिति**। ऊङ् और धातुस्थानिक यण् से पर में शस् आदि को 'नोङ्धात्वोः' ६.१.१६५ से उदात्तनिषेध है। ङित्करण से 'ब्रह्मबन्धूः, ब्रह्मबन्ध्वा' में निषेध होगा। यदि 'नोङ्धात्वोः' ६.१.१७५ के स्थान पर 'नो धात्वोः' ऐसा ङकार-अनुबन्धविनिर्मुक्त का पाठ करेंगे तो 'ब्रह्मबन्ध्वा' आदि में उदात्तनिषेध होने पर भी 'यवाग्वा, यवाग्वै' में निषेध की अतिव्याप्ति होगी। इस तरह की अतिव्याप्ति न हो, इसके लिए ङिद्विशिष्ट ऊङ् का विधान किया गया है।

अथ दीर्घोच्चारणं किमर्थम्? न 'उङुत' इत्येवोच्येत? का रूपसिद्धिः? ब्रह्मबन्धूः। धीवबन्धूः। सवर्णदीर्घत्वेन सिद्धम्। न सिध्यति। 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्ये'ति ह्रस्वत्वं प्रसज्येत। इह च ब्रह्मबन्धूछत्रम्, ब्रह्मबन्धूच्छत्रम्। 'षत्वतुकोरसिद्ध' इत्येकादेशस्यासिद्धत्वान्नित्यस्तुक् प्रसज्येत। इह च-ब्रह्मबन्धूः, धीवबन्धूरिति। 'नद्यृतश्चे'ति कप्प्रसज्येत।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्वपक्षी—**अथ दीर्घोच्चारणमिति**। 'ऊङ्' ऐसा दीर्घविधान क्यों है?, विधेय कोटि में ह्रस्वघटित उङ् का ही विधान कीजिये। 'ब्रह्मबन्धु+उ' इस दशा में सवर्णदीर्घ-एकादेश के द्वारा ब्रह्मबन्धूः रूपसिद्धि हो जायेगी। जब ह्रस्वघटित उङ्विधान से रूपसिद्धि हो रही है तब ऊङ् ऐसा दीर्घघटित विधान क्यों किया गया है?

अन्य आचार्य—**न सिध्यतीति**। 'ब्रह्म बन्धुर्यस्याः सा ब्रह्मबन्धूः' इस प्रयोग में समासार्थ विशेष्य है तथा बन्धु पद विशेषण है, अतः अनुपसर्जन होने से 'अन्तादिवच्च' ६.१.८५ के द्वारा एकादेश के अन्तवद्भाव होने से उपसर्जनान्त प्रातिपदिक स्त्रीप्रत्ययान्त होता है; अतः 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' १.२.४९ से ब्रह्मबन्धूः में ह्रस्वादेश प्राप्त होगा। एवं षत्व और तुक् की कर्तव्यता में एकादेशशास्त्र के असिद्ध होने से ब्रह्मबन्धूछत्रम्, ब्रह्मबन्धूच्छत्रम् में ह्रस्व को 'छे च' ६.१.७३ से नित्य तुक् प्राप्त होगा। एवं 'ब्रह्म बन्धुर्यस्याः सा ब्रह्मबन्धूः, धीवा बन्धुर्यस्याः सा धीवबन्धूः' में 'अन्तादिवच्च' ६.१.८५ से अन्तवद्भाव के द्वारा एकादेशविशिष्ट में प्रातिपदिकत्व लाने पर ब्रह्मबन्धूः, धीवबन्धूः यह नद्यन्त बहुव्रीहि हो जा रहा है, अतः नद्यन्त से समासान्त प्रत्यय कप् की आपत्ति होगी। इस तरह ह्रस्व उङ्विधान करने में इतने दोष हैं। दीर्घोच्चारण कर उङ्विधान करने पर दीर्घोच्चारणसामर्थ्य से ह्रस्व और कप् नहीं होता है।

नैष दोषः-'यत्तावदुच्यते ब्रह्मबन्धूः धीवबन्धूरिति गोस्त्रियोरुपसर्जनस्येति ह्रस्वत्वं प्रसज्येते'ति। उभयत आश्रयणे नाऽन्तादिवत्। यदप्युच्यते-'इह च ब्रह्मबन्धूछत्रम्, ब्रह्मबन्धूच्छत्रं, षत्वतुकोरसिद्ध इत्येकादेशस्यासिद्धत्वान् नित्यस्तुक् प्रसज्येते'ति। पदान्तपदाद्योरेकादेशोऽसिद्धो न चैष पदान्तपदाद्योरेकादेशः। यदप्युच्यते-'ब्रह्मबन्धूः, धीवबन्धूरिति-नद्यृतश्चेति कप्रसज्येते'ति। नद्यन्तानां यो बहुव्रीहि'रित्येवं तद्, न चैष नद्यन्तानां बहुव्रीहिः। शेषलक्षणस्तर्हि कप्राप्नोति, तस्माद्दीर्घोच्चारणं कर्तव्यम्।

खण्डन भाष्य—**नैष दोष इति**। वस्तुतः पूर्व में दिया गया दोष नहीं रहेगा। ब्रह्मबन्धूः, धीवबन्धूः, में 'गोस्त्रियारुपसर्जनस्य' १.२.४८ से ह्रस्व की आपत्ति प्राप्त है, 'उभयत आश्रयणे नान्तादिवत्' के द्वारा अन्तादिवद्भाव का प्रतिषेध होने से ह्रस्व की आपत्ति नहीं रहेगी। एवं षत्व और तुक् की कर्तव्यता में 'षत्वतुकोरसिद्धः' ६.१.८६ के द्वारा एकादेश के असिद्ध होने से ब्रह्मबन्धूछत्रम्, ब्रह्मबन्धूच्छत्रम् में नित्य तुक् की आपत्ति दी थी, वह नहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रहेगी। पूर्वस्थानिक पदान्त और परस्थानिक पदादि के स्थान में जायमान एकादेश षत्व और तुक् की कर्तव्यता में असिद्ध होता है। ब्रह्मबन्धूः यह पदान्त और पदादि के स्थान में एकादेश नहीं है, अतः तुक् की कर्तव्यता में असिद्ध नहीं हो सकेगा। एवं ब्रह्मबन्धूः, धीवबन्धूः में आप ने 'नद्यृतश्च' ५.४.१५३ से कप् की आपत्ति दी थी, वह भी नहीं रहेगी। नदीसंज्ञकान्त पदों के समास होने पर ही समासान्त कप् प्रत्यय होता है। ब्रह्मबन्धूः, धीवबन्धूः यह नद्यन्त पदों का समास नहीं है, अतः कप् की आपत्ति नहीं रहेगी।

इतर आचार्य—**शेषलक्षण इति**। यदि नदीसंज्ञकान्त पदों का समास नहीं होने से ब्रह्मबन्धूः, धीवबन्धूः में समासान्त कप् की प्राप्ति नहीं है तो 'शेषाद् विभाषा' ५.४.१५४ से शेष-लक्षण समासान्त कप् प्रत्यय प्राप्त होगा, जो दोषावह है, अतः दीर्घोच्चारण कर ऊङ् का विधान करने से उपर्युक्त दोष नहीं आते हैं, अतः दीर्घोच्चारण ही करना चाहिये। इससे दीर्घोच्चारण में उकारद्वय का निर्देश होगा। द्वितीय उकार परत्वाद् बाधक होने से शेषलक्षण कप् का बाधक होगा।

*** ऊङ्प्रकरणे प्राणिजातेश्चाऽरज्ज्वादीनाम् * ऊङ्प्रकरणेऽप्राणिजातेश्चारज्ज्वादीनामि'ति वक्तव्यम्। अलाबूः। कर्कन्धूः। अप्राणिजातेरिति किमर्थम्? कृकवाकुः। अरज्ज्वादीनामिति किमर्थम्? रज्जुः। हनुः।।६६।।**

वार्तिककार—**ऊङ्प्रकरण इति**। ऊङ्प्रकरण में प्राणिभिन्न जातिवाची प्रातिपदिक से ऊङ् कहना चाहिये। जैसे-अलाबूः, कर्कन्धूः। यहाँ ऊङ् कहने से अलाब्वा, कर्कन्ध्वा इत्यादि में 'नोङ्धात्वोः' ६.१.१७५ से उदात्तनिषेध होता है। 'अप्राणिजातेः' ऐसा प्रतिषेध करने से प्राणिजाति 'कृकवाकुः' में उङ् नहीं हुआ। ऊङ्प्रकरण में रज्जु आदि से ऊङ्निषेध कहना चाहिये। रज्जुः, हनुः के अप्राणिजाति होने से ऊङ् प्राप्त है, उसका निषेध किया गया। जैसे-रज्जुः, हनुः। यहाँ प्रकृतिमात्र स्त्र्यर्थ में शक्त है। {ऊङुतः}।

संहितशफलक्षणवामादेश्च ४.१.७०.

*** सहितसहाभ्यां च * 'सहितसहाभ्यां चे'ति वक्तव्यम्। सहितोरूः। सहोरूः।।** संहितशफ।।७०।।

'ऊङुतः' ४.१.६६ सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'संहित, शफ, लक्षण और वाम आदिपद से पर में उदन्त स्त्र्यर्थक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रातिपदिक से स्वार्थ में ऊङ् हो'। जैसे-संहितौ=संश्लिष्टौ उरू यस्याः सा संहितोरूः। शफौ=खुराविव संश्लिष्टावूरू यस्याः सा शफोरूः। यहाँ 'लक्षणमस्ति यस्य स लक्षणः' में 'अर्शआदिभ्योऽच्' ५.२.१२७ से मत्वर्थीय अच्प्रत्ययान्त लक्षण शब्द है, अतः लक्षणौ=लक्षणयुक्तावूरू यस्याः सा लक्षणोरूः ऐसा रूप है। वामौ=मनोहरावूरू यस्याः सा वामोरूः।

सिद्धान्त वार्तिक—**सहितसहाभ्यामिति**। सहित और सह पूर्वपद से उत्तरपद स्त्र्यर्थक उदन्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में ऊङ् कहना चाहिये। 'हितेन सहेति सहितः, सहितावूरू यस्याः सा सहितोरूः। सहेते रतिश्रममिति सहौ, सहावूरू यस्याः सा सहोरूः'। {**संहितशफलक्षण-**}।

कद्रुकमण्डल्वोश्छन्दसि ४.१.७१.

अत्यल्पमिदमुच्यते कद्रुकमण्डल्वोरिति * कद्रुकमण्डलुगुग्गुलुमधुजतुपतयालूनामिति वक्तव्यम् * **कद्रूः। कमण्डलूः। गुग्गुलूः। मधूः। जतूः। पीला नलद्यौ मधुश्च्युन्मधुत्वा मधूः क्रक्षो जतूः सुषीकास्ते पापानि लक्ष्मीः पतयालूः।**

'कद्रुकमण्डल्वोः' यह पञ्चम्यर्थ में षष्ठी है। अतः सूत्रार्थ हुआ 'स्त्र्यर्थक कद्रु और कमण्डलु प्रातिपदिक से श्रुतिविषय में स्वार्थ में ऊङ् हो'। जैसे-कद्रूः, कमण्डलूः। लोक में 'कद्रुः, कमण्डलुः' स्त्र्यर्थ में यही रूप होंगे।

सिद्धान्ती आचार्य—**अत्यल्पमिदमिति**। कद्रु और कमण्डलु शब्द से छन्दः में ऊङ्विधान अत्यल्प है। यहाँ कद्रु, कमण्डलु, गुग्गुलु, मधु, जतु, पतयालु प्रातिपदिक से भी छन्दः में ऊङ् कहना चाहिये। इससे 'गुग्गुलूः, मधूः, जतूः, पतयालूः' ये भी रूप श्रुति में होंगे। श्रुति में इसका प्रयोगविषय उद्धृत करते हैं-**पीला नलद्याविति**।। **कद्रुकम-**।।

यङश्चाप् ४.१.७२.

* षाच्च यञश्चाप् * **षाच्च यञश्चाब्वक्तव्यः। शार्कराक्ष्या। पौतिमाष्या। तत्राऽयमप्यर्थः- गौकक्ष्यशब्दः क्रौड्यादिषु पठ्यते स न पठितव्यो भवति। यदि न पठ्यते-'गौकक्षीपुत्र' इति सम्प्रसारणं न प्राप्नोति। इष्टमेवैतत्संगृहीतं 'गौकक्ष्यापुत्र' इत्येव भवितव्यम्। एवं हि सौनागाः पठन्ति- * ष्यङः सम्प्रसारणे गौकक्ष्यायाः प्रतिषेधः * इति।। यङश्चाप्।**

Nepal Rashtriya Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यङ्प्रत्यय का ग्रहण होने से तदन्त अर्थ उपस्थित होगा।

सूत्रार्थ—'स्त्र्यर्थक यङन्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में चाप् प्रत्यय हो'। यहाँ यङ् से ञ्यङ्, ष्यङ् का सामान्य ग्रहण है, अतः 'अम्बष्ठस्यापत्यं स्त्री आम्बष्ठ्या' में 'वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्' ४.१.१७१ के द्वारा ञ्यङन्त से चाप् है। करीषं= गवादिपशुपुरीषं तस्य गन्ध इव गन्धो यस्य स करीषगन्धिः', 'उपमानाच्च' ५.४. १३७ से गन्ध शब्द को इत्त्व है। 'करीषगन्धेर्गोत्रापत्यं स्त्री' इस अर्थ में अण् प्रत्यय हुआ है, उसको 'अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे' ४.१.७५ से ष्यङ् आदेश हो कर कारीषगन्ध्य यङन्त है। उभयत्र चाप् प्रत्यय हो कर आम्बष्ठ्या, कारीषगन्ध्या की सिद्धि है।

सिद्धान्त वार्तिक—**षाच्चेति**। ष् वर्ण से पर में यञ् हो तो तदन्त से चाप् कहना चाहिये। जैसे-शर्करेवाक्षिणी यस्याऽसौ शर्कराक्षः, तस्य गोत्रापत्यं स्त्री शार्कराक्ष्या, पूतिर्माषो यस्याः सा पूतिमाषः, तस्य गोत्रापत्यं स्त्री पौतिमाष्या'। उभयत्र 'गर्गादिभ्यो यञ्' ४.१.१०५ से यञ् प्रत्यय है। अकारलोप होने से ष् से पर में यञ् है, तदन्त से चाप् हुआ है।

'षाच्च यञश्चाप्' वार्तिक करने के पक्ष में इतर लाघव भी देते हैं—**तत्रायमर्थ इति**। 'क्रौड्यादिभ्यश्च' ४.१.८० गणपाठ में चाप्सिद्धि के लिए आचार्य ने 'गौकक्ष्य'शब्द पढा है, उसे नहीं पढना पडेगा। यहाँ भी उक्त वार्तिक से चाप् की सिद्धि हो जायेगी। 'क्रौड्यादिभ्यः' यह तादर्थ्य में चतुर्थी है, अतः क्रौड्यादिसिद्धि के लिए प्रत्यय को ष्यङादेश हो यह आवश्यक है।

इतर आचार्य—**यदि नेति**। यदि गौकक्ष्याशब्द का क्रौड्यादिगण में पाठ नहीं करेंगे तो 'गौकक्षीपुत्रः' में ष्यङ् को 'ष्यङः सम्प्रसारणे पुत्रपत्योस्तत्पुरुषे' ६.१. १३ से होने वाला सम्प्रसारण नहीं हो सकेगा, जिससे 'गौकक्षीपुत्रः' की असिद्धि होगी।

खण्डन भाष्य—**इष्टमेवैतदिति**। उक्त वार्तिक पढ कर गौकक्ष्या का संग्रह करना ही उचित है। पुत्र शब्द पर रहते ष्यङन्त गौकक्ष्या का सम्प्रसारण इष्ट नहीं है, अतः 'गौकक्ष्यापुत्रः' यही रूप होगा।

इसकी पुष्टि में इतर आचार्य का प्रमाण उद्धृत करते हैं-**एवं हि सौनागा इति**। सौनाग वार्तिककार ष्यङन्त को सम्प्रसारण की कर्तव्यता में 'गौकक्ष्यापुत्र' का निषेध करते हैं।। **यङश्चाप्**।।

आवट्याच्च ४.१.७५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

*** अन उपधालोपिन ऊधसो ङीष्पूर्वविप्रतिषिद्धम् * 'अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्यामि'त्येतस्मादूधसो ङीष्भवति पूर्वविप्रतिषेधेन। 'अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्यामि'त्यस्यावकाशः -बहुराज्ञी, बहुतक्ष्णी। उधसो ङीष्भवतीत्यस्यावकाशः-विभाषा ङीष्, यदा न ङीष्सोऽवकाशः। ङीष्प्रसंगे उभयं प्राप्नोति उधसो ङीष्भवति पूर्वविप्रतिषेधेन।**

सूत्रार्थ—'स्त्र्यर्थक आवट्यशब्द से स्वार्थ में चाप् हो'। 'अवटस्य गोत्रापत्यं स्त्री आवट्या' 'गर्गादिभ्यो यञ्' ४.१.१०५ से यञ्, तदन्त से चाप् है।

वार्तिककार—**अन उपधालोपिन इति**। 'कुण्ड इव उधो यस्याः सा कुण्डोध्नी' यहाँ 'ऊधसोऽनङ्' ५.४.१३१ से ऊधस् शब्द को अनङादेश है। ऊधस्सम्बन्धी उपधालोपी अन् से पर में ऊधस् लक्षण 'बहुव्रीहेरूधसो ङीष्' ४.१.२५ से ङीष् प्राप्त है, तथा 'अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम्' ४.१.२८ से ङीप् प्राप्त है। परत्वात् ङीप् से ङीष् का बाध हो जायेगा।

बाधविषय स्पष्ट करते हैं—**अन उपधेति**। 'बहवो राजानो यस्यां नगर्यां सा बहुराज्ञी, बहवस्तक्षाणो यस्यां नगर्यां सा बहुतक्ष्णी' में 'अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम्' ४.१.२८ चरितार्थ है तथा कुण्डोध्नी में जहाँ ऊधस् को अनङादेश है वहाँ उपधालोपी अनङादेश होने से इसी सूत्र से ङीष् के अभावपक्ष में ङीप् चरितार्थ है। 'बहुव्रीहेरूधसो ङीष्' ४.१.२५ के विषय में जहाँ ङीष् प्राप्त है वहाँ ङीप् भी प्राप्त होगा। अन्यत्रान्यत्र लब्धावकाश होने से ङीष् और ङीप् का समान बल है, अतः पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा ऊधस् से ङीष् ही होगा, ङीप् नहीं।

स तर्हि पूर्वविप्रतिषेधो वक्तव्यः? न वक्तव्यः। 'अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्यामि'त्यत्र ऊधसो ङीष्भवतीत्येतद् अनुवर्तिष्यते * आवट्याद्यञः ष्फश्चापः *** आवट्याद्यञः ष्फश्चापो भवति पूर्वप्रितिषेधेन। आवट्याद्यञश्चापोऽवकाशः, उदीचाम्-आवट्या। ष्फस्यावकाशोऽन्यानि यञन्तानि-गर्ग्यायणी। वात्स्यायनी। आवट्यशब्दात् प्राचामुभयं प्राप्नोति-आवट्यायनी। ष्फो भवति पूर्वविप्रतिषेधेन।**

पूर्वपक्षी—**स तर्हीति**। तो क्या यह पूर्वविप्रतिषेध कहना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्य इति**। यह पूर्वविप्रतिषेध नहीं कहना चाहिये। 'बहुव्रीहेरूधसो ङीष्' ४.१.२५ सूत्र से 'ऊधसो ङीष्' की अनुवृत्ति 'अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम्' ४.१.२८ सूत्र में करेंगे। इससे ऊधस् से ङीष् सिद्ध हो जायेगा। **आवट्याद्यञ इति**। यञन्त से चाप् और ष्फ दोनों प्राप्त होने पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा ष्फ ही कहना चाहिये। आवट्या में चाप् चरितार्थ है तथा वात्स्यायनी में 'प्राचां ष्फ तद्धितः' ४.१.१७ चरितार्थ है। आवट्या में 'आवट्याच्च' ४.१.७५ तथा 'प्राचां ष्फ तद्धितः' ४.१.१७ दोनों की प्राप्ति हो रही है। पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा ष्फ से चाप् का बाध हो जायेगा।

आवट्यग्रहणेन नार्थः। 'यञः ष्फश्चाप' इत्येव। इदमपि सिद्धं भवति-शार्कराक्ष्यायणी। पौतिमाष्यायणी। यञ्ग्रहणेनाऽपि नार्थः। 'ष्फश्चाप' इत्येव। गौकक्ष्यशब्दः क्रौड्यादिषु पठ्यते, इदमपि सिद्धं भवति-गौकक्ष्यायणी। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। एवं वक्ष्यामि-'प्राचां ष्फ तद्धितः सर्वत्र'। क्व सर्वत्र? यत्र ष्फश्चान्यश्च प्राप्नोति, ष्फ एव तत्र भवतीति। ततो लोहितादिकतन्तेभ्यः सर्वत्र। क्व सर्वत्र? प्राचां चोदीचां च।। आवट्याच्च।।७५।।

एकदेशी—**आवट्यग्रहणेनेति**। आवट्यग्रहण न करके 'यञः ष्फश्चापः' इतना सूत्र रखिये। इससे यञन्त से चाप् प्राप्त होने पर ष्फ प्राप्त होगा तथा आवट्य की सिद्धि के साथ-साथ शार्कराक्ष्यायणी, पौतिमाष्यायणी की भी सिद्धि हो जायेगी।

अन्य आचार्य—**यञ्ग्रहणेनापीति**। 'यञः'ग्रहण भी न कीजिये। मात्र 'ष्फश्चापः' इतना ही सूत्र रखिये। इससे 'क्रौड्यादिभ्यश्च' ४.१.८० गणपाठ में गौकक्ष्यशब्द ष्यङन्त पढा गया है, उससे भी ष्फ प्रत्यय हो कर गौकक्ष्यायणी सिद्ध हो जायेगा।

इतर आचार्य—**तत्तर्हीति**। तो क्या 'ष्फश्चापः' यह अतिरिक्त सूत्र मानना चाहिये?

उत्तरपक्षी—**न वक्तव्यमिति**। इसकी आवश्यकता नहीं है। 'प्राचां ष्फ तद्धितः सर्वत्र' ऐसा सूत्र मानेंगे। 'जहाँ ष्फ और अन्य प्रत्यय प्राप्त होगा वहाँ ष्फ ही हो, अन्य नहीं' ऐसा सर्वत्रग्रहण से नियम करेंगे। इसके बाद 'लोहितादिकतन्तेभ्यः सर्वत्र' ऐसा सूत्र रखेंगे। यहाँ सर्वत्र पद से प्राचीन, नवीन दोनों मतों में प्रत्यय होगा।। **आवट्याच्च**।।

अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे ४.१.७८

इह कस्मान्न भवति-दाक्षी, प्लाक्षीति। आतिशायिकेनाऽयं तम शब्देन निर्देशः क्रियते स च त्रिप्रभृतिषु वर्त्तते, त्रिप्रभृतीनाम् अभावात्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तीन अथवा उससे अधिक अच्समूह को उत्तम कहते हैं। 'उत्तमस्य समीपमिति उपोत्तमम्' सामीप्य अर्थ में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि-' २.१.६ से अव्ययीभावसमास है। गुरु उपोत्तमम्=उत्तमसमीपवर्ति ययोस्तयोर्गुरूपोत्तमयोः। अधिकृत 'प्रातिपदिकात्' पञ्चम्यन्त का षष्ठीद्विवचनान्त से विपरिणाम होगा, अतः-'उपोत्तमगुरुवर्णकयोः प्रातिपदिकयोः' ऐसा अर्थ होगा। प्रत्ययग्रहणपरिभाषा से 'अणिञोः' से 'अणिञन्तयोः' का लाभ होगा। 'गोत्रे' यह पञ्चम्यन्त पद 'अणिञोः' में अन्वित है। 'ऋषेरविहितौ अनार्षौ' यह भी 'अणिञोः' का विशेषण है। 'स्त्रियाम्' ४.१.३ का अधिकार आता है। अतः सूत्रार्थ-'गोत्र अर्थ में जो अण् और इञ् विहित है तदन्त स्त्र्यर्थ में शक्त गुरूपोत्तम प्रातिपदिक को स्वार्थ में ष्यङ् आदेश हो'। निर्दिश्यमानपरिभाषा से ष्यङ् आदेश का स्थानी अण् और इञ् ही होंगे। ष्, ङ् की इत्संज्ञा होगी। जैसे-कुमूदगन्ध इव गन्धो यस्यासौ कुमुदगन्धिः। यहाँ 'उपमानाच्च' ५.४.१३७ से गन्धशब्द को इत्त्व हो कर कुमुदगन्धिः शब्द है। तस्य कुमुदगन्धेरपत्यं स्त्रीति कौमुदगन्ध्या, यहाँ 'तस्यापत्यम्' ४.१.९२ से अण्, 'यस्येति च' ६.४.१४८ से इकारलोप, णित्त्वाद् आदि अच् को वृद्धि हो कर कौमुदगन्ध्य शब्द है। 'संयोगे गुरु' १.४.११ से 'ग'घटक अ उपोत्तम गुरु है, अतः यहाँ अण् को ष्यङ् आदेश हो कर कौमुदगन्ध्या रूप हुआ। इञन्त जैसे-वराहस्यापत्यं स्त्री वाराह्या। यहाँ 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ्, 'यस्येति च' ६.४.१४८ से अकारलोप, 'रा'घटक आ के उपोत्तम गुरु होने से अन्त इञ् को ष्यङ् आदेश है।

पूर्वपक्षी—**इह कस्मान्नेति**। 'दक्षस्यापत्यं दाक्षिः, प्लक्षस्यापत्यं प्लाक्षिः' में इञ् को ष्यङ् आदेश क्यों नहीं होता है?

उत्तरपक्षी—**आतिशायिकेनेति**। 'उत्तमम्' में तमप् प्रत्यय अतिशय=प्रकर्ष अर्थ में है। बहुतों में से एक का पृथक् निर्धारण में तमप् का प्रयोग होता है। दाक्षी, प्लाक्षी में दो ही अच् हैं, अतः तमप् प्रत्यय के निर्धारण का विषय नहीं होने से इञ् को ष्यङ् आदेश नहीं होगा।

यद्येवम्—

* प्रकर्षे चेत्तमं कृत्वा दाक्ष्या नोपोत्तमं गुरु।
आम्विधिः केन ते न स्यात्प्रकर्षे यद्ययं तमः।। *

'प्रकर्षे चेत्तमं कृत्वा दाक्ष्या नोपोत्तमं गुरु' इत्युच्यते, आम्विधिः केन तव न स्यात्?, 'अव्ययघादि'ति प्राप्नोति। 'प्रकर्षे यद्ययं तमः'। यद्ययं तमःशब्दः प्रकर्षे वर्तते? * उद्गतस्य प्रकर्षोऽयं गतशब्दोऽत्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लुप्यते * उद्गतस्याऽयं प्रकर्षः, गतशब्दस्याऽत्र लोपो भवति * नाऽव्ययार्थप्रकर्षोऽस्ति धात्वर्थोऽत्र प्रकृष्यते * नाऽयमव्ययार्थस्य प्रकर्षः। कस्य तर्हि? धात्वर्थस्य * उद्गतोऽपेक्षते किं चित्रयाणां द्वौ किलोद्गतौ * **अनुद्गतमपेक्ष्याऽत्र उद्गत इत्येतद्भवति। 'त्रयाणां द्वौ किलोद्गतौ'। त्रयाणां किल द्वावुद्गतौ भवतः** * चतुष्प्रभृतिषु कर्तव्यो वाराह्यायां न सिध्यति * **चतुष्प्रभृतिषु ष्यङ् कर्तव्यः। 'वाराह्यायां न सिध्यति'। वाराह्यायां न प्राप्नोति। किं कारणम्? चतुष्प्रभृतीनामभावात्।**

आक्षेपक आचार्य—**यद्येवमिति**। यदि उत्तमघटक तमप् प्रत्यय प्रकर्ष अर्थ में विहित मान कर दाक्षी, प्लाक्षी को उपोत्तम गुरु नहीं मानेंगे तो ष्यङ् आदेश न हो, परन्तु 'किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे' ५.४.११ से होने वाला आम् प्रत्यय उपोत्तम शब्द से पर में क्यों नहीं होता है?

उत्तरपक्षी—**उद्गतस्येति**। 'प्रकृष्टम् उद्गतमिति उत्तमम्' ऐसा उद्गत शब्द के साथ समास है तथा गत पद का लोप हो कर उत्तमशब्द निष्पन्न है। उद्गतशब्द ससाधनक्रियावाची है। यहाँ क्रियाप्रकर्षद्वारक द्रव्यप्रकर्ष कहा जा रहा है, अतः अद्रव्यप्रकर्ष होने से उत्तमशब्द से पर में आम् प्रत्यय नहीं होता है।

इसी को स्पष्ट करते हैं—**नाऽव्ययार्थप्रकर्षोऽस्तीति**। उक्त विग्रह में अव्ययार्थ का प्रकर्ष न हो कर तमप् प्रत्यय से धात्वर्थ का प्रकर्ष वाच्य है, अतः आम् नहीं होता है। वाराह्या में ष्यङ् की अप्राप्ति दिखाने के लिए कहते हैं-**उद्गतोऽपेक्षत इति**। जहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यह तीन वर्ण हैं, वहाँ यदि आद्य अनुद्गत है, शेष क्षत्रिय और वैश्य में किसी एक का जहाँ प्रकर्ष बताना है वहाँ 'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ' ५.३.५७ से तरप् प्राप्त होगा, एवं तमप् भी प्राप्त होगा। तरप् से तमप् का बाध हो जायेगा। इस तरह तमप् का बाध होने से उत्तम शब्द नहीं है, अतः वाराह्या में ष्यङ् आदेश प्राप्त नहीं हो सकेगा।

चतुष्प्रभृतिष्विति—परन्तु जहाँ चतुष्प्रभृति वर्ण हैं वहाँ एक के अनुद्गत होने पर भी तीन शेष रहेंगे। वहाँ एक का उत्कर्ष बताने के लिए तमप् प्रत्यय होगा। वहाँ पर वाराह्या में तो ष्यङ् सिद्ध हो जायेगा, परन्तु चतुष्प्रभृति के अभाव में वाराह्या में ष्यङ् आदेश नहीं हो सकेगा।

* भिद्यतेऽस्य स्वरस्तेन विधिश्चामो न लक्ष्यते * **भिद्यते खल्वस्य स्वरस्तेनातिशायिकेन तमशब्देनोत्तमस्य। 'विधिश्चामो न लक्ष्यते'। विधिचामो न क्व चिदपि लक्ष्यते** * शब्दान्तरमिदं विद्याद् दृष्टमभ्यन्तरं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्रिषु * एवन्तर्हि अन्योऽयमातिशायिकेन समानार्थस्तमःशब्दस्त्रिप्रभृतिषु वर्तते।

उत्तम शब्द का व्युत्पत्तिपक्ष में अन्य दोष देते हैं—**भिद्यतेऽस्येति**। तमप् पित् प्रत्यय है, अतः 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' ३.१.४ के द्वारा उत्तम शब्द के अनुदात्त होने से उत्तमशब्द को आद्युदात्त प्राप्त हो रहा है, जब कि प्रकृत में अन्तोदात्त उत्तम शब्द है। 'उञ्छादीनाञ्च' ६.१.१६० गणपाठ में 'उत्तमशश्वत्तमौ सर्वत्र' ऐसा पाठ है, इससे उक्त शब्द को अन्तोदात्त का विधान है, इसकी अपेक्षा करके यहाँ 'भिद्यतेऽस्य स्वरस्तेन' यह भाष्य कहा गया है। उत्तम शब्द का व्युत्पत्तिपक्ष में अन्य दोष देते हैं—

विधिश्चाम इति। क्रियाप्रकर्ष वाच्य होने पर तमप् प्रत्यय का अनभिधान होने से उत्तम से आम् नहीं होता है। अव्युत्पन्न उत्तम शब्द स्वभाववश त्रिप्रभृति के अन्त्य को कहता है, इस अभिप्राय से कहते हैं-**शब्दान्तरमिदमिति**। यदि उत्तम शब्द में तमप् प्रत्यय होता तो क्रियाप्रकर्ष की विवक्षा में आम् प्रत्यय हो सकता था, पतन्तु उत्तम शब्द से आम् प्रत्यय नहीं देखा जाता है, अतः यह उत्तम शब्द तमप् प्रत्ययान्त नहीं है, अपि तु तमप् के अर्थ में यह अन्य तम शब्द है, जो **त्रिषु**=तीन, एवम् उपलक्षणविधया चतुष्प्रभृति का भी वाचक है; अतः त्रिप्रभृति अर्थों में जो **अभ्यन्तरम्**=अन्तर्भूत है उसमें देखा जाता है। **आतिशायिक**=अतिशय अर्थ में तमप् प्रत्ययान्त चतुष्प्रभृति का अन्त्य कहता है। परन्तु अव्युत्पन्न उत्तम शब्द त्रिप्रभृति का ही अन्त्यत्वमात्र में शक्त है, अतः दोनों का सदृशार्थत्व है। तमशब्दान्त अव्युत्पन्न प्रातिपदिक उत्तम शब्द तमप् प्रत्ययान्त उत्तम शब्द से भिन्न है।

किम्पुनरयमणिञोरादेश आहो स्विदणिञ्भ्याम्परः? कश्चात्र विशेषः? * ष्यङ्यनादेशे यलोपवचनम् * ष्यङि अनादेशे यलोपो वक्तव्यः। औदमेघ्यायाश्छात्रा औदमेघाः * द्विरण्विधिः * द्विश्चाण्विधेयः। औदमेघ्यायाश्छात्रा औदमेघाः। औदमेघ्यानां सङ्घ औदमेघः। इञ इत्यण्न प्राप्नोति।

पूर्वपक्षी—**किम्पुनरयमिति**। प्रत्ययविधि में सर्वत्र पञ्चमी देखी जाती है। जैसे-'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.४.। परन्तु कहीं पर षष्ठी भी दृष्ट है। जैसे-'गापोष्टक्' ३.२.८ और 'व्रीहिशाल्योर्ढक्' ५.२.२., अतः 'अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे' ४.१.७८ में सन्देह होता है-'अणिञोः' स्थानषष्ठी है, अथवा 'गापोष्टक्' ३.२.८ इत्यादि की तरह पञ्चम्यर्थ में षष्ठी है? यदि स्थानषष्ठी है

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तो 'अण्, इञ् को ष्यङ् आदेश हो' ऐसा अर्थ होगा। यदि पञ्चम्यर्थ में षष्ठी मानेंगे तो 'अणन्त, इञन्त से पर में ष्यङ् विहित हो' ऐसा अर्थ सम्भव है। यहाँ क्या मानना चाहिये? यहाँ दोनों ही पक्ष दोषग्रस्त हैं।

इसे पूर्वपक्षी स्पष्ट करता है—**ष्यङ्यनादेश इति**। अनादेश न मान कर यदि अणन्त, इञन्त से पर में ष्यङ् का विधान करेंगे तो 'आपत्यस्य च तद्धिते-ऽनाति' ६.४.१५१ से तद्धित पर रहते हल् से पर में आपत्य यकार को होने वाला लोप ष्यङ् को प्राप्त नहीं हो सकेगा, उसका अलग से लोप कहना होगा। जैसे-'उदमेघस्य गोत्रापत्यं स्त्री' इस विग्रह में 'अत इञ्' ४.१.९५ से गोत्रापत्यार्थक इञ् प्रत्यय, इञ् को ष्यङ् आदेश हो कर औदमेघ्या रूप है। पुनः 'औदमेघ्यायाश्छात्रा औदमेघाः' यहाँ पर 'इञश्च' ४.२.११२ से विहित अण् प्रत्यय पर रहते यलोप अप्राप्त होगा, उसका विधान करना पडेगा। परन्तु आदेश-पक्ष में स्थानिवद्भाव के द्वारा ष्यङ् का आपत्यत्व हो जायेगा, जिससे यलोप हो जा रहा है।

पूर्वपक्षी आचार्य अनादेशपक्ष में दूसरा दोष देते हैं—**द्विरण्विधिरिति**। अनादेशपक्ष में दो अण् विधेय होगा। जहाँ इञ् से पर में ष्यङ् होगा वहाँ इञन्त नहीं होने से 'औदमेघ्यायाश्छात्राः' इस अर्थ में औदमेघः रूप नहीं हो सकेगा, अतः यहाँ 'इञश्च' ४.२.१२ से अण् असिद्ध रहने से 'ष्यङश्च' अतिरिक्त सूत्र पढना पडेगा। इससे 'इञ् से पर में विहित ष्यङ् से अण् हो' ऐसा अर्थ होगा। परन्तु आदेशपक्ष में स्थानिवद्भाव के द्वारा 'इञश्च' ४.२.११२ से ही अण् सिद्ध हो जायेगा।

अस्तु तर्हि आदेशः * आदेशेऽन्लोपवचनम् * यद्यादेशोऽनो लोपो वक्तव्यः। औडुलोम्या शारलोम्येति। 'ये चाऽभावकर्मणो'रिति प्रकृति-भावः प्रसज्येत * न वा ष्यङो लोपनिमित्तत्वात् * न वैष दोषः। किं कारणम्? 'ष्यङो लोपनिमित्तत्वात्'। लोपनिमित्तः ष्यङ्। न चाऽकृते लोपे ष्यङ् प्राप्नोति। किं कारणम्? 'गुरूपोत्तमयो'रित्युच्यते, न चाऽकृते लोपे गुरूपोत्तमता भवति।

अन्य आचार्य—**अस्तु तर्हीति**। यदि अनादेशपक्ष में दोष है तो जिसमें दोष नहीं है वह आदेशपक्ष ही मान लीजिये।

पूर्वपक्षी आदेशपक्ष में भी दोष देता है—**आदेशेऽन्लोपश्चेति**। आदेश पक्ष में अन् का लोप कहना होगा। उडुलोम्नो गोत्रापत्यं स्त्री औडुलोम्या, शरलोम्नो गोत्रापत्यं स्त्री शारलोम्या। 'बाह्वादिभ्यश्च' ४.१.९६ गणपाठ में लोमन् शब्द

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पठित है। मात्र लोमन् शब्द का अपत्य के साथ योग नहीं होने से लोमन् शब्दान्त से अपत्य अर्थ में इञ् प्रत्यय है। यहाँ पर यदि इञ् के स्थान में ष्यङ् आदेश करेंगे तो इस पक्ष में 'ये चाऽभावकर्मणोः' ६.४.१६८ से यादि तद्धित पर रहते अन् को प्रकृतिभाव होने से 'नस्तद्धिते' ६.४.१४४ सूत्र से प्राप्त इष्ट टिलोप नहीं हो सकेगा। परन्तु इञन्त से ष्यङ् प्रत्यय का विधान पक्ष में इञ् का मध्य में व्यवधान होने से यादितद्धिताव्यवहितपूर्वत्वविशिष्ट अन् नहीं मिलेगा, जिससे प्रत्ययपक्ष में दोष नहीं है। यदि ष्यङ् प्रत्यय पर रहते 'यस्येति च' ६.४.१४८ से इञ् का लोप कहा जाये तो इस पक्ष में भी स्थानिवद्भाव होने से व्यवधान ही रहेगा।

अनादेशपक्ष में उक्त दोष का वारण करते हैं—**न वेति**। अनादेशपक्ष में औडुलोम्या, शारलोम्या में प्रकृतिभाव होने से टिलोप का आपत्तिरूपदोष नहीं रहेगा। प्रकृतसूत्र में ष्यङ्विधान लोपनिमित्तक ही है। सूत्र में 'अणिञोः गुरूपोत्तमयोः' कहा गया है। इञ् का लोप नहीं होने पर गुरूपोत्तम प्राप्त नहीं होगा, अतः अनादेशपक्ष में भी ष्यङ्विधान लोपनिमित्तक ही होगा।

अथ वा पुनरस्तु परः। ननु चोक्तं-'ष्यङ्यनादेशे यलोपवचनं द्विरण्विधि'रिति। नैष दोषः। यत्तावदुच्यते 'यलोपवचन'मिति,-अदोष एषः। किं कारणम्? *पुंवद्भावद्यजादौ तद्धिते* यजादौ तद्धिते पुंवद्भावो भविष्यति 'भस्याऽढे तद्धिते' पुंवद्भवतीति। अयं तर्हि दोषो 'द्विरण्विधि'रिति।

उसी दोष को इतर प्रकार से भी हटाते हैं—**अथ वा पुनरिति**। अणन्त, इञन्त से पर में ही ष्यङ्विधान मानिये। इस पक्ष में यलोपवचन अतिरिक्त कहना होगा, तथा 'औदमेघ्यायाश्छात्रा औदमेघाः' में ष्यङन्त से अण्विधान के लिए 'इञश्च' ४.२.११२ के अनन्तर 'ष्यङश्च' यह अतिरिक्त वचन पढना पडेगा, ऐसा आप ने दोष दिया था, वह भी दोष नहीं रहेगा।

दोषाभाव सिद्ध करने के लिए उत्तरपक्षी आचार्य वचन का अवतरण करते हैं-**पुंवद्भावादिति**। 'भस्याऽढे तद्धिते' (वा.6.3.55 पर) से यजादि तद्धित पर रहते पुंवद्भाव हो जायेगा। इससे स्त्र्यर्थक प्रत्यय की निवृत्ति हो जायेगी।

पूर्वपक्षी—**अयं तर्हीति**। अनादेशपक्ष में द्वितीय दोष द्विः अण्विधि दिया था, वह अब तक बना हुआ है।

नैष दोषः *सिद्धश्च प्रत्ययविधौ* स च सिद्धः प्रत्ययविधौ। उभयमिदमुक्तमादेशः, पर इति च, किमत्र न्याय्यम्? आदेश इत्ये-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तन्न्याय्यम्। कुत एतद्? एवं चैव हि कृत्वाऽऽचार्येण सूत्रं पठितं, षष्ठ्या च निर्देशः कृतः। अत एष पक्षो निर्दोषः। ननु च परस्मिन्नपि सति ये दोषास्ते परिहृताः। पुंवद्भावेन यलोपः परिहृतः, स च पुंवद्भावोऽढे भवति, तत्र ते औदमेघेयो न सिध्यति।

उत्तरपक्षी आचार्य उसका भी वारण करते हैं—**नैष दोष इति**। प्रत्ययविधि की कर्तव्यता में पुंवद्भाव होने से स्त्र्यर्थक प्रत्ययों की निवृत्ति हो जायेगी, अतः इञन्त से ही तद्धितोत्पत्ति होने से ष्यङन्त से पृथक् विधान करने की आवश्यकता नहीं होगी। यद्यपि लिङ्गविशिष्टपरिभाषा के द्वारा इञन्त प्रातिपदिक से विहित अण् ष्यङन्त से भी सिद्ध है, तथापि पुंवद्भाव ही न्याय्य पक्ष था, अतः उसे ही कहा गया है।

अन्य आचार्य—**उभयमिदमिति**। ष्यङ् के विषय में आप ने आदेश और पर दोनों ही पक्षों को कह दिया। यहाँ कौन स्म पक्ष उचित है?

उत्तरपक्षी—**आदेश इति**। इन दोनों में आदेशपक्ष ही उचित है। इस पक्ष में आचार्य का 'अणिञोः' यह षष्ठ्यन्तनिर्देश ही प्रमाण है। आदेशपक्ष निर्दोष भी है।

अन्य आचार्य—**ननु चेति**। इञन्त, अणन्त से पर में ष्यङ्विधानपक्ष में भी आप ने सम्पूर्ण दोषों का मार्जन कर दिया है। पुंवद्भाव के द्वारा यलोप का परिहार किया गया। फिर पुंवद्भाव ढ प्रत्यय से भिन्न तद्धित पर रहते ही होता है, अतः जहाँ ष्यङन्त से 'स्त्रिभ्यो ढक्' ४.१.१२० से ढक् विहित होगा वहाँ 'अढे' निषेध होने से 'औदमेघेयः' की सिद्धि नहीं हो सकेगी। जबकि आदेशपक्ष में 'औदमेघेयः' भी सिद्ध हो जा रहा है, निर्दुष्ट होने से आदेशपक्ष ही मानना चाहिये।

***अनुबन्धौ त्वया कार्यौ* यस्यादेशोऽनुबन्धौ तेन कर्तव्यौ। एकः सामान्यग्रहणार्थोऽपरः सामान्यग्रहणाऽविघातार्थः। क्व सामान्यग्रहणेनाऽर्थः? यङश्चाबिति। अथ सामान्यग्रहणाविघातार्थेन क्वाऽर्थः? अत्रैव। किं प्रयोजनम्? *चाबर्थम्* चाब्यथा स्यात्। तव कथं चाप्? *टाब्विधिर्मम* टापा मम सिद्धम्। ननु च ममापि टापा सिद्धं स्यात्? न सिध्यति, अण इति चेञ इति चेतिईकारः प्राप्नोति। नैष दोषः, नैवं विज्ञायते-अणन्ताद् अकारान्ताद् इञन्तादिकारान्तादिति। कथं तर्हि? अण्योऽकार, इञ्य इकार इति।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ष्यङ् को प्रत्यय मानने वाले आचार्य आदेशवादी के पक्ष में दोष देते हैं—**अनुबन्धौ त्वयेति**। जो आचार्य अण् और इञ् के स्थान में ष्यङ् आदेश कर रहे हैं, उनको दो अनुबन्धविशिष्ट ष्यङादेश करना होगा। एक सामान्यग्रहणार्थ तथा दूसरा सामान्यग्रहण का अविघातार्थ।

आदेशवादी—**क्व सामान्येति**। सामान्यग्रहण का प्रयोजन किस शास्त्र में है?

प्रत्ययवादी—**यङश्चाबिति**। 'यङश्चाप्' ४.१.७४ सूत्र में अनुबन्धसामान्य का प्रयोजन है। वहाँ यङ्ग्रहण से ष्यङ् का ग्रहण होगा तथा स्त्र्यर्थक यङन्त से चाप् प्रत्यय होगा।

आदेशवादी—**अथेति**। सामान्यग्रहणाविघातार्थ का **क्व**=किस सूत्र में प्रयोजन है?

प्रत्ययवादी—**अत्रैवेति**। 'अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे' ४.१.७८ सूत्र में सामान्यग्रहणाविघातार्थ का प्रयोजन है।

आदेशवादी—**किं प्रयोजनमिति**। इस सूत्र में सामान्यग्रहणाविघातार्थ का क्या प्रयोजन है?

प्रत्ययवादी—**चाबर्थमिति**। यहाँ ष्यङन्त से चाप् हो सके यही प्रयोजन है।

आदेशवादी—**तव कथमिति**। ष्यङ् को प्रत्यय मानने वाले के पक्ष में चाप् प्रत्यय कैसे होगा?

प्रत्ययविधिवादी आचार्य—**टाब्विधिरिति**। मेरे मत में चाप् न हो कर टाप् प्रत्यय होगा।

आदेशवादी आचार्य—**ननु चेति**। अण्, इञ् के स्थान में ष्यङादेश होने पर मैं भी अदन्तलक्षण टाप् कर लूँगा।

प्रत्ययवादी आचार्य—**न सिध्यतीति**। आदेशवादी के मत में अण्, इञ् के स्थान पर ष्यङादेश होने पर अदन्तलक्षण टाप् सिद्ध नहीं हो सकेगा। यहाँ अदन्तलक्षण टाप् प्राप्त होगा तथा अण्लक्षण ङीप्, एवम् 'इतो मनुष्यजातेः' ४.१.६५ से इञ्लक्षण ङीप् प्राप्त होगा। पर एवम् अपवाद होने से ङीप् और ङीष् के द्वारा टाप् का बाध हो जायेगा।

आदेशवादी स्वमत में दोष का निवारण करता है—**नैष दोष इति**। मेरे मत में ष्यङन्त से ईकारप्राप्तिरूप दोष नहीं है। जहाँ अणन्त से ङीप् और इञन्त से ङीष् होता है वहाँ 'अणन्त अकारान्त से ङीप् हो, तथा इञन्त इकारान्त से ङीष् हो' ऐसा अर्थ नहीं करेंगे; अपि तु 'अण्रूप जो अकारान्त उससे ङीप् हो, इञ्रूप् जो इकारान्त उससे ङीष् हो' ऐसा अर्थ करेंगे। प्रकृत में अण्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और इञ् को ष्यङादेश हो गया है, अतः अण्रूप् अकारान्त, इञ्रूप् इकारान्त नहीं होने से ईकार की प्राप्ति नहीं होगी, अतः मेरे मत में भी दोष नहीं है।

*** स्वरार्थस्तर्हि * स्वरार्थस्तर्हि त्वया चाब्वक्तव्यः। कथन्तर्हि स्वरः? *** एकादेशात् प्रत्यययोः स्वरः पिदपितोर्मम *** एकादेशात् प्रत्यययोः स्वरः पिदपितोर्मम सिद्धः-उदात्तानुदात्तयोरेकादेश उदात्त इति *** स्थानिवत्त्वाद् इञादेशे स्वरस्ते टापि दुष्यति *** स्थानिवत्त्वादिञादेशे स्वरस्ते टापि दुष्यति-ञ्नित्यादिरुदात्त इति। चापं विनाऽन्तोदात्तत्वं न। ञ्नितीत्याद्युदात्तत्वं मा भूच्चितोऽन्त उदात्तो भवतीत्यन्तोदात्तत्वं यथा स्यादिति। तवापि तर्हि ष्यङोक्तत्वात्स्त्रीत्वस्य टाब्न प्राप्नोति। नैष दोषः *** उक्तेऽपि हि भवन्त्येते *** उक्तेऽपि तु स्त्रीत्वे भवन्त्येते टाबादय इति सिध्यति। उक्तमेतत्-स्वार्थिकाष्टाबादय इति।**

प्रत्ययवादी आचार्य आदेशवादी से कहते हैं—**स्वरार्थस्तर्हीति**। यदि इञ् के स्थान में ष्यङादेश, तथा तदन्त से टाप् करोगे तो तुम्हारे मत में वाराह्या आद्युदात्त होगा, जबकि वाराह्या अन्तोदात्त है, अतः अन्तोदात्तार्थ आप को चाप् प्रत्यय का विधान करना पडेगा।

आदेशवादी—**कथन्तर्हीति**। वाराह्या में टाप् करने पर अन्तोदात्त क्यों नहीं होता है?

प्रत्ययवादी—**एकादेशादिति**। आदेशपक्ष में अदन्त ष्यङन्त से टाप् करने पर 'वाराह्य+टाप्' इस स्थिति में सवर्णदीर्घ-एकादेश होगा। प्रत्ययस्वर से ष्यङ् उदात्त है, तथा 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' ३.१.४ से पित् होने से टाप् अनुदात्त है। उदात्त और अनुदात्त के स्थान पर एकादेश करने पर 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' ८.२.५ से उदात्त होने से टाप् प्रत्ययपक्ष में भी वाराह्या अन्तोदात्त ही होगा, उसके लिए मुझे चाप् करने की आवश्यकता नहीं है।

आदेशवादी के पक्ष में प्रत्ययवादी दोष देता है—**स्थानिवत्त्वादिति**। प्रत्ययवादी के पक्ष में वाराह्या में स्वर सिद्ध हो जाने पर भी आदेशवादी के पक्ष में स्वर सिद्ध नहीं हो पायेगा। ष्यङादेश में इञ् ञित्त्व है, इञ् के स्थान में ष्यङादेश हुआ है, अतः स्थानिवद्भाव के द्वारा आदेश ष्यङ् में ञित्त्वातिदेश करेंगे। इससे 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' ६.१.१९७ से वाराह्या आद्युदात्त होगा। 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' ६.१.१५८ से शेषनिघात के द्वारा अनुदात्त होगा, अतः आदेशपक्ष में अन्तोदात्त सिद्ध नहीं होने से दोष है, अतः आदेशवादी को अदन्त ष्यङन्त से चाप् प्रत्यय कहना होगा। इससे चित् होने से 'चितः' ६.१.१६३ के द्वारा वाराह्या

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शब्द अन्तोदात्त होता है। ञित्वात् 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' ६.१.१९७ से आद्युदात्त न हो, तथा चित्वात् 'चितः' ६.१.१६३ से अन्तोदात्त न हो, इसके लिए आदेशवादी को अदन्त ष्यङन्त से चाप् प्रत्यय करना चाहिये।

आदेशवादी आचार्य प्रत्ययवादी के पक्ष में दोष देते हैं—**तवापीति**। स्त्र्यर्थ में ही प्रत्ययवादी ने अणन्त और इञन्त से ष्यङ् का विधान किया है। यहाँ ष्यङ् प्रत्यय के द्वारा स्त्रीत्व उक्त है, अतः 'उक्तार्थानामप्रयोगः' न्याय से ष्यङ् से टाप् प्रत्यय की प्रवृत्ति नहीं हो सकेगी। आदेशपक्ष में टाप् का अप्राप्तिरूप दोष नहीं होता है।

प्रत्ययवादी स्वमत में दोष का निवारण करता है—**नैष इति**। मेरे मत में ष्यङन्त से टाप् की अप्राप्ति नहीं रहेगी। टाप् आदि प्रत्यय उक्त अर्थ में ही होते हैं। इसके विषय में 'स्त्रियाम्' ४.१.३ सूत्र पर मैं बता आया हूँ। टाप् आदि प्रत्यय स्वार्थ में होते हैं।

*** सानुबन्धस्यादेशो मम ञिन्न भविष्यति * ममापि तर्हि सानुबन्धकस्यादेशे इत्कार्यं नेति। तेन ञिन्न भविष्यति *** अस्थानिवत्त्वे दोषस्ते वृद्धिरत्र न सिध्यति *** अस्थानिवत्त्वे दोषो, वृद्धिस्ते न प्राप्नोति-औडुलोम्या, शारलोम्येति *** न वाऽर्द्धजरतीयत्वं स्वरो मे न भविष्यति *** न चेदानीमर्द्धजरतीयं लभ्यं-वृद्धिर्मम भविष्यति स्वरो नेति। तद्यथाऽर्द्धं जरत्याः कामयतेऽर्द्धं नेति।**

अब आदेशवादी भी स्वमत में दोष का निवारण करता है—**सानुबन्धकस्येति**। मेरे मत में भी ञकार की इत्संज्ञा किये विना इञ् के स्थान में य आदेश करेंगे। इससे आदेश में नित्स्वर का अभाव होने से प्रत्यय स्वर के द्वारा आदेश य उदात्त होगा। वाराह्या में टाप् करने पर पित् होने से टाप् अनुदात्त होगा। उदात्त और अनुदात्त के स्थान में एकादेश करने पर 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' ८.२.५ से वाराह्या अन्तोदात्त होगा। अतः मेरे मत में भी वाराह्या के अन्तोदात्त होने से कोई दोष नहीं है।

अब प्रत्ययवादी आदेशवादी के पक्ष में दोष देता है—**अस्थानिवत्त्व इति**। यदि इञ् के स्थान में ष्यङादेश करेंगे तथा स्थानिवद्भाव का अभाव कहेंगे तो ष्यङ् में ञित् धर्म नहीं होने से आदिवृद्धि नहीं होगी। इससे इष्ट रूप 'औडुलोम्या, शारलोम्या' की सिद्धि नहीं हो पायेगी। इस पर आदेशवादी आचार्य का कहना है कि मात्र ञित्व मान कर हम 'तद्धितेष्वचामादेः' ७.२.११७ से आदिवृद्धि करेंगे, स्वर नहीं करेंगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसके इस अभिप्राय का प्रत्ययवादी आचार्य खण्डन करते हैं—**न वेति**। किसी स्त्री का आधा अङ्ग वृद्ध मान कर भग्नदन्ता के मुख की कामना न करके इतर अङ्ग को तरुण मान कर उसकी कामना की जाये तो इसे अर्द्धजरतीय कहते हैं। अर्द्धजरतीयन्याय से इञ् को ञित्त्व मान कर वृद्धि करेंगे तथा स्वर नहीं करेंगे, यह आदेशवादी का पक्ष उचित नहीं है।

*** त्वयाऽप्यत्र विशेषार्थं कर्त्तव्यं स्याद्विशेषणम् * त्वयाऽप्यत्र विशेषेणार्थोऽनुबन्धः कर्तव्यः। क्व विशेषेणाऽर्थेनार्थः? 'ष्यङः सम्प्रसारणमि'ति *** अक्रियैव विशेषोऽत्र सानुबन्धो विशेषवान् *** अक्रियैव मम विशेषः सानुबन्धस्तु विशेषवान् *** पाश्यायां ते कथं न स्यात् *** पाश्यापतिः, पाश्यापुत्र इत्यत्र तव कस्मान्न भवति *** एको मे स्याद् विशेषणम् *** एको मम विशेषणार्थः *** त्वया पुनर्द्वौ कर्त्तव्यौ *** त्वया पुनर्द्वौ कर्त्तव्यौ।**

प्रत्ययवादी को भी ष्यङ् में अनुबन्ध करना चाहिये, इस आशय के भाष्य का अवतरण आदेशवादी करता है-**त्वयाप्यत्रेति**। प्रकृत सूत्र में प्रत्ययवादी को भी अनुबन्धविशिष्ट ष्यङ् का ग्रहण करना चाहिये। इससे आचार्य ने 'ष्यङः सम्प्रसारणं पुत्रपत्योस्तत्पुरुषे' ६.१.१३ में अनुबन्धविशिष्ट ष्यङ् पढा है। वहाँ ष्यङ्ग्रहण से अनुबन्धविशिष्ट प्रकृत ष्यङ् का भी ग्रहण हो सके इसके लिए विशेषणार्थ अनुबन्ध करना चाहिये।

प्रत्ययवादी आचार्य—**अक्रियैवेति**। प्रकृत सूत्र में हम ष्यङ् को अनुबन्धविनिर्मुक्त य मात्र का विधान करेंगे। 'ष्यङः सम्प्रसारणं पुत्रपत्योस्तत्पुरुषे' ६.१.१३ सूत्र में भी ष्यङ् के स्थान पर 'यस्य सम्प्रसारणम्-' ऐसा सूत्र पढ देंगे। इससे 'आम्बष्ठ्यापुत्रः' में 'य' के सानुबन्धक होने से सम्प्रसारण की आपत्ति नहीं होगी।

इस पर आदेशवादी आक्षेप करता है—**पाश्यायामिति**। यदि 'ष्यङः सम्प्रसारणम्-' ६.१.१३ सूत्र के स्थान पर 'यस्य सम्प्रसारणम्' सूत्र पढेंगे तो 'पाशानां समूहः पाश्या, तस्याः पतिः पाश्यापतिः, एवं पाश्यापुत्रः' यहाँ उभयत्र 'पाशादिभ्यो यः' ४.२.४६ सूत्र से य प्रत्यय है। 'यस्य सम्प्रसारणम्' ६.१.१३ ऐसा सूत्र रखने से पतिशब्द व पुत्रशब्द पर रहते पाश्याशब्द को सम्प्रसारण प्राप्त होगा।

प्रत्ययवादी स्वमत में दोष का निवारण करते है—**एको ममेति**। प्रकृत सूत्र में ष्यङ् में ष् और ङ् यह दो अनुबन्ध हैं। हम मात्र एक ही अनुबन्ध रखेंगे। इस तरह एक अनुबन्ध करने से प्रत्ययवादी के पक्ष में लाघव है। जब

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कि इसकी अपेक्षा आदेशवादी को दो अनुबन्ध मानना पड रहा है जो गौरव है। आदेशवादी के मत में प्रत्ययवादी गौरव दिखाता है-**त्वया पुनरिति**। आदेशवादी को दो अनुबन्ध मानने से गौरव है।

अथैकस्मिन्नपि सति कः करिष्यते। किं चाऽऽतः? * अन्यस्मिन् सूत्रभेदत्वात् * यद्येताभ्यामन्यः क्रियते सूत्रभेदः कृतो भवति * षिति लिङ्गं प्रसज्यते * अथ षित्क्रियते षित इति ईकारः प्राप्नोति * ङिति चेक्रीयिते दोषः * अथ ङित्क्रियते चेक्रीयिते दोषो भवति-लोलूयापुत्रः, लोलूयापतिरिति * व्यवधानान्न दुष्यति * अकारेण व्यवहितत्वान्न दोषो भवति * योऽनन्तरो न धातुः * धातोरिति वर्तते यश्चाऽत्राऽनन्तरो नासौ धातुः * यो धातुः सोऽनन्तरः * यश्च धातुर्नासावनन्तरः * न चेदुभयतः साम्यमुभयत्र प्रसज्यते * न चेदुभयतः साम्यं भवति, उभयत्र प्राप्नोति।

आदेशवादी आचार्य—**अथैकस्मिन्नपीति**। यदि दो अनुबन्धों के स्थान पर प्रत्ययवादी आचार्य एक ही अनुबन्ध करना चाहते हैं तो कौन सा रखेंगे, तथा कौन सा छोडेंगे?, अथवा दोनों को हटा कर कोई तीसरा अनुबन्ध रखेंगे? किसी भी एक का ग्रहण या परित्याग में दोष है, इसे स्पष्ट करते हैं-**अन्यस्मिन्निति**। यदि ष्, ङ् को हटा कर उसके स्थान में कोई तीसरा अनुबन्ध करेंगे तो सूत्रभेद होने से दोष होगा। यदि ङ् को हटा कर मात्र य पित् पढेंगे तो 'षिद्गौरादिभ्यश्च' ४.१.४१ से ङीष् की आपत्ति होगी।

ङितीति—यदि षित् न पढ कर मात्र ङित् यङ् ऐसा पढेंगे तो 'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्' ३.१.२२ से विहित यङ् का भी ग्रहण होने से यङ् प्रत्यय को भी सम्प्रसारण होने लगेगा। इससे 'चेक्रीयितम्' में दोष होगा। एवं 'लोलूयापुत्रः, लोलूयापतिः' में भी यङ् को सम्प्रसारण प्राप्त होगा।

अब प्रत्ययवादी स्वमत में प्राप्त दोषों का निवारण करता है—**व्यवधानान्नेति**। 'लोलूय' में यङन्त से 'अप्रत्ययात्' ३.३.१०२ के द्वारा अकार प्रत्यय विहित है। 'ष्यङः सम्प्रसारणं पुत्रपत्योस्तत्पुरुषे' ६.१.१३ में 'पुत्रपत्योः' यह सप्तमीनिर्देश है, अतः पुत्र और पतिशब्द से अव्यवहितपूर्वत्वविशिष्ट यङ् चाहिये। जबकि प्रकृत में यङन्त से अ प्रत्यय हुआ है। 'लोलूय' में यङन्त से 'अ प्रत्ययात्' 3.3.102 के द्वारा अ प्रत्यय होने पर 'अतो लोपः' ६.४.४८ से यङ् का अकार लुप्त है। पुनः टाप् प्रत्यय करने पर एकादेश के द्वारा लोलूया रूप होता है; अतः यहाँ मध्य में अकार का व्यवधान होने से पुत्र और पतिशब्द

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से अव्यवहितपूर्वत्वविशिष्ट यङ् अप्राप्त है, अतः लोलूयापूत्रः, लोलूयापतिः में यङ् को सम्प्रसारण नहीं होता है।

प्रत्ययवादी आचार्य ने 'ष्यङः सम्प्रसारणम्' ६.१.१३ सूत्र के स्थान पर 'यङः सम्प्रसारणम्' सूत्र किया है, इस पक्ष में आदेशवादी आचार्य दोष देते हैं-**योऽनन्तर इति**। आप 'यङः सम्प्रसारणम्' ऐसा सूत्र कर रहे हैं। पूर्व सूत्र से इस सूत्र में 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' ६.१.८ से 'धातोः' पद की अनुवृत्ति होगी। धातु से यङ् को विशेषित करेंगे। यहाँ पुत्र अथ वा पतिशब्द के अनन्तर यङन्त धातु सम्भव नहीं है, अतः सामर्थ्यात् जैसे-वाराहीपुत्रः में सम्प्रसारण होता है वैसे व्यवहित होने पर सामर्थ्यात् लोलूयापुत्रः, लोलूयापतिः में भी यङन्त धातु को सम्प्रसारण हो जायेगा। **न चेदिति**-जब एक को धर्मद्वय असम्भव होगा तब अन्यतर रूप का आश्रयण ग्रहण कर दोनों का साम्य लेकर कार्य की प्राप्ति होगी।

यदि पुनर्यङा धातुर्विशेष्यते? * यङा विशेष्यते यदीह धातुर्यङ् धातुना वा यदि तुल्यमेतत् *** यद्येव यङा धातुर्विशेष्यतेऽथापि धातुना यङ्, तुल्यमेतद् भवति *** उभौ प्रधानं यदि नात्र दोषः *** अथोभौ प्रधानं भवतो नात्र दोषो भवति *** तथा प्रसार्येत तु वाक्पतिस्ते *** तथा सति वाक्पतिः वाक्पुत्र इत्यत्र सम्प्रसारणं प्राप्नोति।**

प्रत्ययवादी आचार्य—**यदि पुनरिति**। इससे पूर्व में आदेशवादी ने धातु से यङ् को विशेषित कर दोष दिखाया है। इस पर प्रत्ययवादी आचार्य प्रश्न करते हैं कि यदि यङ् से धातु को विशेषित किया जाये तो दोष होगा या नहीं?

आदेशवादी आचार्य इसका उत्तर देते हैं—**यङा विशेष्येतेति**। 'जुसि च' ७.२.८३ सूत्र में 'अङ्गस्य' ६.४.१ का अधिकार आता है। वहाँ यदि अङ्ग से इक् को विशेषित किया जाये तो दोनों ही परिस्थितियों में विशेष होता है। परन्तु प्रकृत में यङ् से धातु को विशेषित करें, अथ वा धातु से यङ् को विशेषित करें दोनों ही परिस्थितियों में दोष और गुण तुल्य हैं।

प्रत्ययवादी आचार्य—**अथोभौ प्रधानमिति**। यदि धातु और यङ् दोनों विशेष्य होंगे तो दोष नहीं होगा। यङ् और धातु का परस्पर विशेष्यविशेषणभाव नहीं है, अतः 'पुत्र और पतिशब्द से अव्यवहितपूर्वत्वविशिष्ट यङ् और धातु को सम्प्रसारण हो' ऐसा समुच्चयरूप से कार्य विहित है। इससे वाराहीपुत्रः में सम्प्रसारण हो जायेगा; परन्तु धातु का व्यवधान होने से लोलूयापतिः इत्यादि में सम्प्रसारण नहीं हो सकेगा। फलतः सामर्थ्यात् धातुग्रहण की अनुवृत्ति उत्तरार्थ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ही माननी चाहिये।

इस पक्ष में आदेशवादी आचार्य दोष देते हैं—**तथा प्रसार्येतेति**। यदि यङ् और धातु का परस्पर विशेष्यविशेषणभाव नहीं मानेंगे तो समुच्चयरूप से दोनों को पुत्र और पतिशब्द पर रहते सम्प्रसारण प्राप्त होगा। इस तरह वाक्पतिः, वाक्पुत्रः में वच् परिभाषणे धा.पा.१०६३ धातु को पति और पुत्रशब्द पर रहते सम्प्रसारण की आपत्ति होगी।

एवं तर्हि- * धातुप्रकरणस्येह न स्थानमिति निश्चयः *** 'धातुप्रकरणस्येह स्थानं नास्ती'ति कृत्वैष निश्चयः क्रियते। अवश्यमात्त्वार्थं धातुग्रहणं कर्तव्यमिह मा भूद्-गोभ्यां, गोभिः। नौभ्यां, नौभिरिति *** आत्त्वार्थं यदि कर्त्तव्यं तत्रैवैतत्करिष्यते *** आत्त्वार्थं यदि धातुग्रहणं कर्त्तव्यं तत्रैवैतत्करिष्यते *** उपदेशे यदेजन्तं तस्य चेदात्त्वमिष्यते। उद्देशो रूढिशब्दानां तेन गोर्न भविष्यति *** एवन्तर्हि उपदेशे आत्त्वमित्युच्यते, उद्देशश्च प्रातिपदिकानां नोपदेशः।**

प्राप्त दोष का परिहार के लिए प्रत्ययवादी आचार्य कहते हैं—**एवन्तर्हीति**। 'ष्यङः सम्प्रसारणं पुत्रपत्योस्तत्पुरुषे' ६.१.१३ सूत्र में 'धातोः' की अनुवृत्ति नहीं करेंगे। इससे वाक्पुत्रः, वाक्पतिः में सम्प्रसारण की आपत्ति हट जायेगी। 'धातोः' का अनुवर्तन करने के पक्ष में आदेशवादी आचार्य दोष देते हैं-**अवश्यमिति**। 'ष्यङः सम्प्रसारणम्-'६.१.१३ सूत्र में पूर्व सूत्र से 'धातोः' की अनुवृत्ति अवश्य करनी चाहिये। इससे उत्तर सूत्र 'आदेश उपदेशेऽशिति' ६.१.४५ में भी 'धातोः' की अनुवृत्ति हो जायेगी। यदि 'आदेच उपदेशेऽशिति' ६.१.४५ सूत्र में 'धातोः' की अनुवृत्ति नहीं करेंगे तो धातुघटक एच् से भिन्न प्रातिपदिक एच् को भी आत्त्व होने लगेगा। इससे 'गोभ्याम्, गोभिः, नौभ्याम्, नौभिः' में भी एच् को आत्त्व की आपत्ति होगी। 'धातोः' पद की अनुवृत्ति करने से यह आपत्ति नहीं रहती है।

प्रत्ययवादी आचार्य—**आत्त्वार्थं यदीति**। यदि 'आदेच उपदेशेऽशिति' ६.१.४५ के लिए 'धातोः' पद की अनुवृत्ति आवश्यक है तो उसी सूत्र पर 'धातोः' पद का पाठ कर दीजिये। इससे 'ष्यङः सम्प्रसारणम्-'६.१.१३ सूत्र में इसकी अनुवृत्ति का प्रश्न ही नहीं उठता है।

उपदेशे चेदजन्तत्वमिति—उपदिश्यते येन स उपदेशः=शास्त्रम्, करणघञन्त है; अतः शास्त्र में पठित एजन्त को आत्त्वविधान है। प्रातिपदिक शास्त्र में प्रतिपद पठित नहीं हैं, परन्तु प्रकृतिप्रत्ययविभागकल्पना के द्वारा प्रातिपदिकों का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

साधुत्वविधान किया गया है। यदि 'नौद्व्यचष्ठन्' ४.४.७ 'गोद्व्यचोऽसंख्यापरिमाणाश्वादेर्यत्' ५.१.३९ इत्यादि में जो प्रातिपदिक पठित हैं उनको आत्त्व प्राप्त मानेंगे तो 'गोतो णित्' ७.१.९० में णित्त्वातिदेशज्ञापन से आत्त्व का अभाव ज्ञापित हो जायेगा। गोशब्द को आत्त्व कर लेने पर णित्त्व का कोई प्रयोजन नहीं है। इस तरह प्रत्ययपक्ष भी निर्दोष है। प्रत्ययपक्ष में 'औदमेघेयः' में भी अपत्यप्रत्ययान्त से विहित होने से य का लोप सिद्ध हो जायेगा। 'आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति' ६.४.१५१ सूत्र में 'आपत्यस्य' पद का तन्त्र के द्वारा दो अर्थ होता है। १-'अपत्ये भवस्य, २-अपत्यार्थकप्रत्ययोद्देशेन विहितस्य च'।

आदेशवादी आचार्य—**एवं तर्हीति**। आत्त्व उपदेश में कहा जाता है। प्रातिपदिक उपदेश नहीं होते हैं, अतः प्रातिपदिक को आत्त्व नहीं होगा।। **अणिञोरनार्षयोः-**।

गोत्रावयवात् ४.१.७९

किमर्थमिदमुच्यते? * गोत्रावयवादगोत्रार्थम् * 'गोत्रावयवा'दित्युच्यते। अगोत्राऽर्थोऽयमारम्भः * गोत्रावयवादगोत्रार्थमिति चेत्तदनिष्टम् * गोत्रावयवाद् अगोत्रार्थ'मिति चेत्तदनिष्टं प्राप्नोति। इहापि प्राप्नोति- आहिच्छत्री, कान्यकुब्जीति। एवन्तर्हि गोत्रादेव गोत्रावयवात् * गोत्रादिति चेद्वचनानर्थक्यम् * गोत्रादिति चेद्वचनमनर्थकं भवति? सिद्धं गोत्रे पूर्वेणैव।

अवपूर्वक यु मिश्रणेऽमिश्रणे च धा.पा.१०३३ धातु से पचादि गण मान कर आश्रय अर्थ में अच् प्रत्यय है। उपसर्गबल से यु धातु प्रख्याति अर्थ को कहेगा। पूर्व सूत्र 'अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे' ४.१.७८ से 'अणिञोः ष्यङ्' की अनुवृत्ति है। 'स्त्रियाम्' का अधिकार है।

सूत्रार्थ—'गोत्र अर्थ में प्रख्यात प्रातिपदिक से पर में अण् और इञ् को ष्यङ् आदेश हो'। यह सूत्र अगुरूपोत्तमार्थ है। जैसे-पुणिकस्यापत्यं स्त्री पौणिक्या। यहाँ 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ्, इञ् को ष्यङादेश, चाप् है। इसी तरह 'भुणिकस्यापत्यं स्त्री भौणिक्या' में 'मनुष्यनामत्वे तन्नामिकाभ्यः' से अण्, अण् को ष्यङादेश, चाप् है।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। सूत्र में अवयवशब्द का अनेकार्थक प्रयोग होने से सन्देह होता है, अतः पूर्वपक्ष करते हैं-'गोत्रावयवात्' सूत्र का आरम्भ क्यों किया है? पृथग्भाववाची अवयवशब्द को मान कर उत्तरपक्ष देते हैं-**अगो-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्रार्थमिति। गोत्र से पृथग्भूत गोत्रावयवं गोत्र नहीं होता है। 'गोत्रावयवात्' यह सप्तम्यर्थ में पञ्चमी है, अतः 'अगोत्र में अण् और इञ् के स्थान पर ष्यङादेश हो' यह सूत्रार्थ होता है।

आक्षेपक आचार्य—**तदनिष्टमिति**। यदि 'गोत्रावयवात्' सूत्र को अगोत्रार्थ आरम्भ मानेंगे तो 'अहिच्छत्रस्यापत्यं स्त्री आहिच्छत्री' में 'तस्यापत्यम्' ४.१.९२ से अण्, अण्णन्तलक्षण ङीप्; एवं 'कान्यकुब्जस्यापत्यं स्त्री कान्यकुब्जी' में 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ्, 'इतो मनुष्यजातेः' ४.१.६५ से ङीष् है। यहाँ अगोत्रार्थक अण् और इञ् को ष्यङादेश की आपत्ति होगी। पूर्व सूत्र में गोत्र पद का ग्रहण किया गया है। यहाँ भी यदि गोत्र पद से गोत्र अर्थ लेंगे तो पूर्व सूत्र में गोत्रग्रहण व्यर्थ हो जायेगा, अतः प्रकृत सूत्र में गोत्रग्रहण को अगोत्रार्थक कहा गया है।

अब इतर आचार्य अवयवशब्द को एकदेश अर्थ का वाचक मान कर कहते हैं-**एवन्तर्हीति**। जैसे काष्ठ का अवयव भी काष्ठ ही होता है, उसी तरह गोत्र का अवयव को भी गोत्र ही माना जायेगा।

अन्य आचार्य गोत्र का अवयव को भी गोत्र मानने में दोष देते हैं-**गोत्रादितीति**। यदि गोत्र का अवयव भी गोत्रग्रहण से गृहीत होगा तो पौत्रप्रभृति अपत्य समुदाय को भी गोत्रत्वेन ग्रहण होने से पूर्व सूत्र 'अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे' ४.१.७८ से ही ष्यङ् हो जायेगा, अतः इसी के लिए किया गया 'गोत्रावयवात्' सूत्र का आरम्भ व्यर्थ है।

इदन्तर्हि प्रयोजनं-'गुरूपोत्तमयो'रित्युच्यते, अगुरूपोत्तमार्थोऽयमारम्भः * अगुरूपोत्तमार्थमिति चेत्सर्वेषाम् अवयवत्वात् सर्वप्रसङ्गः * अगुरूपोत्तमार्थमिति चेत्सर्वेषामवयवत्वात्सर्वत्र प्राप्नोति। अष्टाशीतिसहस्राण्यूर्ध्वरेतसामृषीणां बभूवुस्तत्राऽगस्त्याष्टमैर्ऋषिभिः प्रजनोऽभ्युपगतः। तत्र भवतां यदपत्यं तानि गोत्राणि, अतोऽन्ये गोत्रावयवास्तत उत्पत्तिः प्राप्नोति, तच्चानिष्टं, तस्मान्नार्थोऽनेन योगेन। कथं येभ्यो गुरूपोत्तमेभ्य इष्यते?

प्रयोजनवादी आचार्य सूत्र का प्रयोजन बताते हैं—**इदन्तर्हीति**। पूर्व सूत्र गुरूपोत्तमार्थ है। उत्तर सूत्र 'गोत्रावयवात्' अगुरूपोत्तमार्थ किया गया है। अब अगुरूपोत्तमार्थ पक्ष में भी दोष देते हैं-**अगुरूपोत्तमार्थमितीति**। यदि प्रकृत सूत्र को अगुरूपोत्तमार्थ मानेंगे तब भी सभी के अवयव होने से, सर्वत्र ष्यङ् की प्रवृत्ति होगी। जैसे-साधारण भार्गव गोत्र के अवान्तरगोत्र च्यवन आदि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं। पूर्व सूत्र में 'अनार्षयोः' इस प्रतिषेधवाक्य से भार्गवगोत्र का अवान्तर च्यवन आदि से पर में ष्यङ् का प्रतिषेध है, अतः अनृषिशब्द गुरूपोत्तम से ही ष्यङ् होगा, अगुरूपोत्तम से नहीं। उर्ध्वरेता ऋषियों के अठ्ठसी हजार अवान्तर गोत्र हुए थे। यहाँ उर्ध्वरेता ऋषियों का प्रजनन अवान्तर गोत्र माना गया है। **तत्र भवताम्**=अगस्त्याष्टम का जो अपत्य है वह गोत्र है; इससे भिन्न गोत्रावयव है; उससे भी पर में अण् और इञ् के स्थान पर ष्यङादेश प्राप्त होगा जो इष्ट नहीं है, अतः 'गोत्रावयववात्' सूत्र के आरम्भ का कोई प्रयोजन नहीं है।

पूर्वपक्षी—**कथं येभ्य इति**। यदि 'गोत्रावयवात्' सूत्र का आरम्भ नहीं करेंगे तो पूर्व सूत्र गुरूपोत्तमार्थलक्षण ष्यङादेश ही करते है, अगुरूपोत्तमार्थलक्षण ष्यङादेश नहीं; फिर जहाँ पुणिक, मुखर आदि अगुरूपोत्तमलक्षण ष्यङादेश करना है, वह कैसे होगा?

***** सिद्धन्तु रौढ्यादिषूपसंख्यानात् *** सिद्धमेतत्। कथम्? 'रौढ्यादिषूपसंख्यानात्'। रौढ्यादिषूपसंख्यानं कर्तव्यम्। के पुना रौढ्यादयः? ये क्रौड्यादयः। भारद्वाजीयाः पठन्ति- *** सिद्धन्तु कुलाख्याभ्यो लोके गोत्राभिमताभ्यः *** इति। सिद्धमेतत्। कथम्? कुलाख्या लोके गोत्राऽभिमता 'गोत्रावयवा' इत्युच्यन्ते। अथ वा गोत्रावयवः को भवितुमर्हति यो गोत्रादवयुतः। कश्च गोत्रादवयुतः? योनन्तरो-दैवदत्त्या याज्ञदत्त्येति।** गोत्रावयवात्।

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये
चतुर्थाऽध्यायस्य प्रथमे पादे द्वितीयमाह्निकम्

सूत्र के अभावपक्ष में अगुरूपोत्तमलक्षण ष्यङादेश की सिद्धि बताते हैं—**सिद्धन्त्विति**। पुणिक, मुखर आदि अगुरूपोत्तमलक्षण ष्यङादेश के लिए पुणिक, मुखर आदि को हम रौढ्यादिगण में पाठ करेंगे।

पूर्वपक्षी—**के पुनरिति**। रौढ्यादि कौन से हैं?

उत्तरपक्षी—**ये क्रौड्यादयश्चेति**। आचार्य पाणिनि ने 'क्रौड्यादिभ्यश्च' ४.१.८० सूत्र पढ कर क्रौड्यादिगण पढा है। इसी को पूर्वाचार्य रौढ्यादिगण पढते हैं, अतः रौढ्यादिगण से ष्यङ् सिद्ध हो जायेगा। इस तरह इस भाष्य के द्वारा 'गोत्रावयवात्' सूत्र का प्रत्याख्यान कर दिया गया।

अब भारद्वाजीयोक्त सूत्रप्रयोजन बताते हैं—**भारद्वाजीया इति**। भारद्वाज

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के शिष्य-'सिद्धन्तु कुलाख्याभ्यो लोके गोत्राभिमताभ्यः' ऐसा वचन पढते हैं। लोक में कुल पद से वाच्या गोत्राभिमता कहा जाता है। इस व्याख्यान में अवयवपद को अप्रधानवचन माना गया है। प्रवराध्याय में जिनका पाठ है उनका मुख्य गोत्रत्व है। परन्तु जो आदि पुरुष श्रुतिशीलसम्पन्न अपत्यसन्तानप्रसिद्धि के कारण हैं, उनका अप्रधान गोत्रत्व होगा। उनसे पर में विहित अण् और इञ् को ष्यङ्विधानार्थ 'गोत्रावयवात्' सूत्र का आरम्भ किया गया है। जैसे-'पुणिकस्यापत्यं गोत्रं स्त्री पौणिक्या, भुणिकस्यापत्यं गोत्रं स्त्री भौणिक्या, मुखरस्यापत्यं गोत्रं स्त्री मौखर्या'। अथ वा गोत्रावयव वही हो सकता है जो गोत्र से प्रसिद्ध हो।

पूर्वपक्षी—**कश्चेति**। गोत्रावयव के रूप में किसकी प्रसिद्धि है?

उत्तरपक्षी—**योऽनन्तर इति**। गोत्र के अनन्तर पौत्रप्रभृति युवापत्य गोत्रावयव होते हैं। जैसे-देवदत्तस्यापत्यंगोत्रं स्त्री दैवदत्त्या, यज्ञदत्तस्यापत्यं गोत्रं स्त्री याज्ञदत्त्या। **गोत्रावयवात्**।

श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य
चतुर्थ अध्याय प्रथम पाद द्वितीय आह्निक पर
डॉ. हरिनारायण तिवारी द्वारा रचित
'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

❀ प्रथमे पादे तृतीयमाह्निकम् ❀

समर्थानां प्रथमाद्वा ४.१.८३

समर्थवचनं किमर्थम्? समर्थादुत्पत्तिर्यथा स्याद्उपगोरपत्यमिति। असमर्थान्मा भूदिति-'कम्बल उपगोरपत्यं देवदत्तस्ये'ति।

विधेयपद नहीं होने से यह स्वतन्त्र विधि नहीं है। स्वरितत्वप्रतिज्ञा होने से 'समर्थानां प्रथमाद्वा' इन तीन पदों का अधिकार 'प्राग्दिशो विभक्तिः' ५.३.१ पर्यन्त चलेगा। यहाँ अर्थवाचकत्वरूप सामर्थ्य गृहीत है। वह कृतसन्धिकार्य में ही सम्भव है, अतः कृतसन्धिकार्य प्रातिपदिक से तद्धितोत्पत्ति समझनी चाहिये।

प्रश्नभाष्य—**समर्थवचनमिति**। 'तस्यापत्यम्' ४.१.९२ में श्रूयमाण सम्बन्धी की अपेक्षा ज्ञायमान होने पर ही तद्धित प्रत्यय की प्राप्ति होगी, असामर्थ्य होने पर नहीं। इस तरह समर्थ से ही तद्धितोत्पत्ति हो रही थी, इसकी अतिव्याप्ति असमर्थ में नहीं थी, फिर समर्थवचन क्यों किया गया है?

उत्तरपक्षी—**समर्थादिति**। समर्थ से तद्धितोत्पत्ति हो, जैसे-उपगोरपत्यं पुमान् औपगवः। असमर्थ से तद्धितोत्पत्ति न हो, जैसे-'कम्बल उपगोरपत्यं देवदत्तस्य'; इस वाक्य में 'उपगोः कम्बलः, देवदत्तस्यापत्यम्' ऐसा सामर्थ्य है। 'उपगोः' के साथ 'अपत्यम्' का अन्वय नहीं होने से सामर्थ्य नहीं है, अतः उपगुपद से अपत्य अर्थ में अण् नहीं होता है।

*** समर्थवचनमनर्थकं, न ह्यसमर्थेनाऽर्थाऽभिधानात् * समर्थवचनमनर्थकम्। किं कारणम्? 'न ह्यसमर्थेनाऽर्थाभिधानम्'। अस्ति, न ह्यसमर्थादुत्पद्यमानेन प्रत्ययेनाऽर्थाऽभिधानं स्यात्। अनभिधानात्तत उत्पत्तिर्न भविष्यति।**

आक्षेप भाष्य—**समर्थवचनमिति**। असमर्थ के द्वारा अर्थाभिधान सम्भव नहीं है। यह शास्त्र प्रयुक्त शब्दों का अन्वख्यान करता है। 'कम्बल उपगोरपत्यं देवदत्तस्य' इस वाक्य से जिस अर्थ की प्रतीति होती है 'कम्बल औपगवो देवदत्तस्य' में प्रत्ययान्त के द्वारा उस अर्थ की प्रतीति नहीं होती है, अतः असमर्थ से प्रत्यय की उत्पत्ति स्वतः निवृत्त हो जायेगी, उसके लिए समर्थ-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ग्रहण नहीं करना चाहिये। जहाँ प्रत्ययोत्पत्ति के अनन्तर प्रत्ययान्तघटित वाक्य विग्रहदशा के अर्थ को कहने में समर्थ होगा, वहाँ असमर्थ से प्रत्ययोत्पत्ति स्वतः नहीं होगी।

अथ प्रथमवचनं किमर्थम्? प्रथमवचनं प्रकृतिविशेषणार्थम्। प्रथमात् प्रत्ययोत्पत्तिर्यथा स्याद् अप्रथमान्मा भूद्-उपगोरपत्यमित्य-पत्यशब्दात् * प्रथमवचनमनर्थकं, न ह्यप्रथमेनाऽर्थाभिधानम् * **'प्रथवचन-मनर्थकम्'। किं कारणम्? 'न ह्यप्रथमेनाऽर्थाभिधानम्'। अस्ति, न ह्यप्रथमाद् उत्पद्यमानेन प्रत्ययेनार्थस्याभिधानं स्यात्, अनभिधानात्तत उत्पत्तिर्न भविष्यति।**

प्रश्नभाष्य—**अथ प्रथमवचनमिति**। 'समर्थानां प्रथमाद्वा' सूत्र में 'प्रथमात्' पद का ग्रहण क्यों किया है? सन्देह में हेतु यह है कि यदि 'उपगोरपत्यम्' ऐसा विग्रह करेंगे तब क्रमशः प्रथम 'उपगोः' है, उसी से प्रत्यय की उत्पत्ति प्राप्त होगी। परन्तु 'अपत्यमुपगोः' ऐसा भी प्रयोग लोक में देखा जाता है। द्वितीय वाक्य में क्रमानुसार पहले अपत्य पद ही है, अतः अपत्यपद से भी प्रत्यय प्राप्त होगा, अतः सन्देह है कि क्रमानुसार जो प्रथम हो उससे प्रत्यय कर लिया जाये, क्या इसी अर्थ में प्रथमपद का ग्रहण है?

उत्तरपक्षी—**प्रकृतिविशेषणार्थमिति**। प्रथमशब्द प्रकृति में विशेषण है। अथ च प्रयुक्त शब्दों का अन्वाख्यान व्याकरणशास्त्र से होता है। 'औपगवः' कहने से अपत्य अर्थ की प्रतीति होती है, अपत्यवान् अर्थ की नहीं; अतः प्रत्यय की प्रकृति विग्रहदशा में प्रथम 'उपगोः' ही होगी। उसी से प्रत्यय करना चाहिये, क्रमशः द्वितीय अपत्यपद से नहीं। अथ च 'अपत्यमुपगोः' इस तरह का वाक्यप्रयोग किया जा सकता है, परन्तु जब प्रत्ययोत्पत्ति करनी हो तो 'उपगोर-पत्यम्' ऐसा ही विग्रह करना चाहिये, इस क्रम को नियन्त्रित करने के लिए प्रथमवचन है।

खण्डनभाष्य—**प्रथमवचनमिति**। सूत्र में प्रथम पद का ग्रहण व्यर्थ है। द्वितीय से प्रत्ययोत्पत्ति करने पर अर्थाभिधान सम्भव नहीं है, अतः अनभिधान होने से द्वितीय से प्रत्ययोत्पत्ति नहीं हो सकेगी, अपि तु प्रथम प्रातिपदिक से ही प्रत्ययोत्पत्ति होगी। इस तरह प्रथम वचन व्यर्थ है।

अथ 'वा'वचनं किमर्थम्? वाक्यमपि यथा स्याद्उपगोरपत्य-मिति * वावचने चोक्तम् * **वावचने चोक्तम्। किमुक्तम्? तत्र तावदुक्तं-** * वावचनानर्थक्यं च, तत्र नित्यत्वात्सनः * **इति। इहापि**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वावचनमनर्थकम्। किं कारणम्? 'तत्र नित्यत्वात् प्रत्ययस्य'। इह द्वौ पक्षौ वृत्तिपक्षश्चावृत्तिपक्षश्च। स्वभावतश्चैतद् भवति-वाक्यं च वृत्तिश्च। तत्र स्वाभाविके वृत्तिविषये नित्ये प्रत्यये प्राप्ते वावचनेन किमन्यच्छक्यम् अभिसम्बन्द्धुमन्यदतः संज्ञायाः। न च संज्ञाया भावाभावाविष्येते। तस्मान्नाऽर्थो वावचनेन।

प्रश्नभाष्य—**अथ वा वचनमिति**। सूत्र में 'वा' पद का ग्रहण क्यों किया गया है?

उत्तरपक्षी—**वाक्यमपीति**। प्रत्ययोत्पत्ति विकल्प से हो तथा प्रत्ययोत्पत्ति के अभावपक्ष में 'उपगोरपत्यम्' इस वाक्य की भी साधुता रहे, इसके लिए वावचन किया गया है।

एकदेशिभाष्य—**वावचन इतिं**। वावचन के विषय में 'धातोः कर्मणः समान-कर्तृकादिच्छायां वा' ३.१.७ सूत्र पर मैं बता आया हूँ। वहाँ वृत्तिपक्ष में सन् के नित्य होने से वा वचन को व्यर्थ कहा गया है। स्वभावतः वृत्ति और वाक्य दोनों होते हैं। जब 'कर्त्तुमिच्छति' में वृत्ति मानेंगे तब नित्य ही सन् हो कर 'चिकीर्षति' रूप बनेगा। जब वृत्ति न मान कर वाक्य मानेंगे तब नित्य ही सन् का अभाव रहेगा। इस तरह दोनों रूप सिद्ध होने से वहाँ वा ग्रहण को व्यर्थ कहा गया है। वैसे प्रकृत में भी जब 'उपगोरपत्यम्' में वृत्ति मानेंगे तब अण् नित्य हो कर 'औपगवः' होगा। परन्तु जब वृत्ति नहीं मानेंगे तब वाक्य ही रहेगा। इस तरह वा ग्रहण के अभाव में भी लक्ष्य सिद्ध हो जा रहा है। इस तरह वृत्तिपक्ष में नित्य तद्धितोत्पत्ति प्राप्त होने पर प्रत्यय, तद्धित आदि संज्ञा के अतिरिक्त वा ग्रहण का कोई अन्य प्रयोजन नहीं है। संज्ञा का भाव और अभाव दोनों इष्ट नहीं है, अतः 'वा'वचन व्यर्थ है।

अथैतत्समर्थग्रहणं नैव कर्तव्यम्? कर्तव्यं च। किम्प्रयोजनम्? समर्थादुत्पत्तिर्यथा स्यादसमर्थान्मा भूदिति। किं पुनः समर्थम्? अर्था-भिधाने यत्समर्थम्। किम्पुनस्तत्? कृतवर्णानुपूर्वीकं पदं,-सौत्थितिः, वैक्षमाणिरिति। अथ तद्वावचनं नैव कर्त्तव्यम्। कर्त्तव्यं च। किं प्रयोजनम्? नित्याः शब्दाः। नित्येषु शब्देषु वाक्यस्य साधुत्वम् अनेनान्वाख्यायते।। समर्थानां प्रथमाद्वा।।८२।।

प्रश्नभाष्य—**अथैतदिति**। यदि समर्थग्रहण के अभाव में भी कहीं अतिव्याप्ति नहीं है तब समर्थग्रहण नहीं करना चाहिये?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समर्थनभाष्य—**कर्त्तव्यं चेति**। समर्थग्रहण करना चाहिये।

प्रश्नभाष्य—**किमिति**। समर्थग्रहण का क्या प्रयोजन है?

सिद्धान्ती—**समर्थादिति**। समर्थ से तद्धितोत्पत्ति हो, असमर्थ से न हो एतदर्थ समर्थग्रहण करना चाहिये।

प्रश्नभाष्य—**किम्पुनरिति**। समर्थ क्या है?

उत्तरभाष्य—**अर्थाभिधान इति**। अर्थाभिधान के प्रति समर्थ है। अर्थात् जो अर्थ का कथन कर सके उसे समर्थ कहते हैं।

प्रश्नभाष्य—**किम्पुनरिति**। अर्थाभिधान में समर्थ क्या है?

सिद्धान्ती—**कृतवर्णेति**। कृतवर्णानुपूर्वीक पद अर्थाभिधान में समर्थ होता है। जैसे-'सूत्थितस्यापत्यं पुमान् सौत्थितिः, वीक्षमाणस्यापत्यं पुमान् वैक्षमाणिः'। यदि विभाग करके प्रत्ययोत्पत्ति करेंगे तो उत्थित पद से भी अपत्यार्थक इञ् प्रत्यय होने से आदि अच् को वृद्धि, आवादेश हो कर 'सावुत्थितिः' यह अनिष्ट प्रसङ्ग होगा। एवं 'वि+ईक्षमाण' में ईक्षमाण से भी प्रत्यय करने पर 'वार्णादाङ्गं बलीयः' परिभाषा के द्वारा आदि अच् को वृद्धि, आवादेश हो कर 'वायीक्षमाणी' ऐसा अनिष्ट रूप होगा। परन्तु जब कृतसन्धिकार्यत्वरूप सामर्थ्य लेते हैं तब दीर्घ एकादेश के अनन्तर प्रत्ययोत्पत्ति होने पर आदि अच् को वृद्धि हो कर सौत्थितिः, वैक्षमाणिः इष्ट रूप बनता है।

प्रश्नभाष्य—**अथ वेति**। वा वचन नहीं करना चाहिये था?

समर्थनभाष्य—**कर्त्तव्यमिति**। वा वचन करना चाहिये।

प्रश्नभाष्य—**किमिति**। वा वचन का क्या प्रयोजन है?

उत्तरभाष्य—**नित्याः शब्दा इति**। शब्द नित्य हैं। वा ग्रहण के द्वारा नित्य शब्दों से वाक्य का साधुत्व कराया जा रहा है। वृत्ति और वाक्य में अवान्तर अर्थभेद है। जैसे-वृत्ति में 'औपगवः' इस पद से 'जन्य अपत्यार्थ' की उपस्थिति होगी। परन्तु 'उपगोरपत्यम्' इस वाक्य में अपत्यशब्द से अपत्य अर्थ की उपस्थिति होने से वाक्य और वृत्ति में अर्थभेद है। फिर भी 'औपगवमानय' ऐसा कहने से तथा 'उपगोरपत्यमानय' ऐसा कहने पर प्रधान व्यक्ति के अभिन्न होने पर एक ही व्यक्ति का आनयन होता है, अतः वाक्य और वृत्ति का अभेद होने से वृत्ति से वाक्य का बाध हो जायेगा। वृत्ति से वाक्य का बाध न हो, इसके लिए सूत्र में 'वा' पद का ग्रहण किया गया है।।

समर्थानां-।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राग्दीव्यतोऽण् ४.१.८३

अयुक्तोऽयं निर्देशः। न हि तत्र कश्चिद् दीव्यच्छब्दः पठ्यते। कस्तर्हि? दीव्यतिशब्दः। कथन्तर्हि निर्देशः कर्त्तव्यः? 'प्राग्दीव्यते'-रिति। स तर्हि तथा निर्देशः कर्त्तव्यः? न कर्त्तव्यः। दीव्यतिशब्दे च दीव्यच्छब्दोऽस्ति तस्मादेषा पञ्चमी। किम्पुनः कारणं विकृतनिर्देशः क्रियते?

'तेन दीव्यति खनति जयति जितम्' ४.४.२ से पूर्व तक अण् का अधिकार है।

आक्षेपक आचार्य—**अयुक्तोऽयमिति**। दीव्यत् शब्द किसी सूत्र में पठित नहीं है, अतः 'दीव्यतः' यह पञ्चम्यन्त निर्देश नहीं करना चाहिये। अपि तु 'दीव्यति'शब्द पठित है, अतः 'प्रग्दीव्यतेरण्' ऐसा सूत्र निर्देश करना चाहिये।

अन्य आचार्य—**स तर्हि तथेति**। तो क्या 'प्राग्दीव्यतेरण्' ऐसा निर्देश करना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न कर्त्तव्य इति**। 'प्राग्दीव्यतेः' ऐसा निर्देश नहीं करना चाहिये। 'तेन दीव्यति खनति-' ४.४.२ सूत्र में 'दीव्यति' निर्देश है। उसका एकदेश 'दीव्यत्' का अनुकरण करके 'दीव्यतः' ऐसा पञ्चम्यन्त निर्देश है।

प्रश्नभाष्य—**किं पुनरिति**। क्या कारण है कि विकृत निर्देश करते हैं?

एतज्ज्ञापयत्याचार्यो भवत्येषा परिभाषा-'एकदेशविकृतमनन्यवद् भवती'ति। किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम्? एकदेशविकृतेषूपसंख्यानं चोदितं तन्न कर्त्तव्यं भवति। अथ वा प्राक्शब्दोऽयं दिक्छब्दः, दिक्शब्दैश्च योगे पञ्चमी भवति, तत्राऽप्रथमासमानाधिकरणे इति कृत्वा शता भविष्यति।

ज्ञापनवादी आचार्य—**एतज्ज्ञापयतीति**। विकृतनिर्देश से आचार्य 'एकदेशविकृत-मनन्यवत्' परिभाषा का ज्ञापन करते हैं।

प्रश्नभाष्य—**किमेतस्येति**। इस परिभाषा का ज्ञापन होने का क्या फल है?

उत्तरभाष्य—**एकदेशविकृतेष्विति**। 'ऐदेशविकृतेषूपसंख्यानम्' यह वार्तिक पढा गया है, वह नहीं पढना पडता है। 'दीव्यतेरण्' ऐसा निर्देश होने में दोष देते हैं-**अथ वेति**। सूत्र में प्राक् शब्द दिग्वाची है। 'अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तर-पदाजाहियुक्ते' २.३.२९ से दिक्शब्द के योग में पञ्चमीविभक्ति होती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'दीव्यतेः' ऐसा कहने से अप्रथमासमानाधिकरण में दिवु धा.पा.११०७ धातु से 'लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे' ३.२.१२४ के द्वारा शतृ प्रत्यय प्राप्त है, जिससे 'दीव्यतः' यह शत्रन्त निर्देश है।

अथ प्राग्वचनं किमर्थम्? * प्राग्वचनं सकृद् विधानार्थम् *** प्राग्वचनं क्रियते 'सकृद्विधानार्थम्'। सकृद्विहितः प्रत्ययो विहितो यथा स्याद्योगे-योगे तस्य ग्रहणं मा कार्षमिति। नैतदस्ति प्रयोजनम्-अधिकारादप्येतत्सिद्धम्। अधिकारः प्रतियोगं तस्याऽनिर्देशार्थ इति योगे-योगे उपतिष्ठते।**

पूर्वपक्षी—**अथ प्रागिति**। यहाँ एकादेश के द्वारा 'प्राग्दीव्यतः' यह समुदाय आक्षिप्त है। अधिकार के लिए मात्र 'अण्' इतना ही सूत्र रखिये, प्राग्वचन क्यों करते है?

उत्तरपक्षी—**सकृद्विधानार्थमिति**। 'तेन दीव्यति खनति जयति जितम्' ४.४.२ सूत्र से पूर्व जितने अर्थ हैं उन सभी अर्थों में सकृत् अण्विधान के लिए प्राक् पद है, अन्यथा सर्वत्र अण् का निर्देश होने से गौरव होता।

अन्य आचार्य—**नैतदस्तीति**। प्राग्ग्रहण का यह प्रयोजन नहीं है। अधिकार-मात्र से ही यह प्रयोजन सिद्ध हो जायेगा। प्रतियोग में अण् का उच्चारण न करना पडे इसी लिए अधिकार किया गया है। अधिकार से प्रति सूत्र में अण् पद उपस्थित हो जायेगा।

* अधिकारात्सिद्धमिति चेदपवादविषयेऽण्प्रसंगः *** अधिकारात्सिद्ध-मिति चेदपवादविषयेऽण् प्राप्नोति। अत इञ्। अण् चेति-अणपि प्राप्नोति *** तस्मात्प्राग्वचनम् *** तस्मात्प्राग्वचनं कर्त्तव्यम्।**

इतर आचार्य—**अधिकारादिति**। यदि अधिकारमात्र से प्रति सूत्र में अण् पद की उपस्थिति होगी तो अपवादविषय में भी अण् प्राप्त होगा। जैसे-'तस्यापत्यम्' ४.१.९२ सामान्यशास्त्र है, तथा 'अत इञ्' ४.१.९५ विशेष शास्त्र है। विशेषशास्त्र से सामान्यशास्त्र का बाध होता है, अतः अदन्त प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में इञ् होता है, अण् नहीं। अधिकार होने से सर्वत्र अण् को उपस्थित मानेंगे तो 'दशरथस्यापत्यं पुमान् दाशरथिः' में इञ् और अण् के एक विषय होने से विकल्प से प्राप्ति होगी, अतः उक्त विग्रह में 'दाशरथः' ऐसा अनिष्ट रूप की आपत्ति होगी। अपवादविषय में अण् की विकल्प से प्राप्ति न हो, इसके लिए-**'तस्मात्प्राग्वचनम्'**=प्राग्वचन कहना चाहिये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ क्रियमाणेऽपि प्राग्वचने कथमिदं विज्ञायते-प्रादीव्यतो याः प्रकृतय इति, आहो स्वित् प्राग्दीव्यतो येऽर्था इति? किं चाऽऽतः? यदि विज्ञायते-'प्राग्दीव्यतो याः प्रकृतय' इति, स एव दोषः-'अपवाद-विषयेऽण् प्रसङ्ग' इति। अथ विज्ञायते-'प्राग्दीव्यतो येऽर्था' इति। न दोषो भवति, समानेऽर्थे प्रकृतिविशेषादुत्पद्यमान इञ्-अणं बाधते। यथा न दोषस्तथाऽस्तु।

पूर्वपक्षी—**अथ क्रियमाणेऽपीति**। प्राग्वचन करने पर दो तरह का अर्थ सम्भव है। १-दीव्यत्पदघटित सूत्र से पूर्व में जो प्रकृति, अथ वा २-दीव्यत्पदघटित सूत्र से पूर्व में जो अर्थ। यदि 'दीव्यत्पदघटित सूत्र से पूर्व में जो प्रकृति उससे पर में अण् प्रत्यय हो' ऐसा अर्थ करेंगे तो इस अर्थ में वही दोष होगा जो अभी-अभी बता आये हैं। अर्थात् समानविषय होने से इञ् के विषय में अण् की प्राप्ति होगी। यदि द्वितीय पक्ष 'दीव्यत्पदघटित सूत्र से पूर्व में जो अर्थ, उसके गम्य होने पर अण् प्रत्यय हो ' तो इस में दोष नहीं है। एक ही अर्थ में अण् और इञ् यह दो प्रत्यय प्राप्त होंगे। समान अर्थ में प्रकृति-विशेष से उत्पन्न होने वाला इञ् प्रत्यय अपवाद होने से अण् प्रत्यय का बाध कर लेगा।

उत्तरपक्षी—**यथा न दोष इति**। जिस पक्ष में दोष नहीं है वही पक्ष मानिये। अर्थात् 'दीव्यत्पदघटित सूत्र से पूर्व में जो अर्थ, उसके गम्य अथवा वाच्य होने पर अण् हो' यह अर्थ रखिये। इससे तक्रकौण्डिन्यन्याय के द्वारा सम्भव होने पर भी इञ् से अण् का बाध हो जायेगा।

'प्राग्दीव्यतो येऽर्था' इति विज्ञायते। कुत एतत्? तथा ह्ययं प्राधान्येनाऽर्थं प्रतिनिर्दिशति। इतरथा हि बह्व्यस्तत्र प्रकृतयः पठ्यन्ते, ततो यां कांचिदेवाऽवधित्वेनोपाददीत।

इतर आचार्य—**प्राग्दीव्यतो येऽर्था इति**। आपने 'प्राग्दीव्यतो येऽर्थाः' ऐसा अर्थ कैसे कर दिया था?

पूर्वपक्षी अपना पक्ष स्पष्ट करता है—**तथेति**। 'तेन दीव्यति खनति जयति जितम्' ४.४.२ यह अवधि है तथा यहाँ अर्थनिर्देश किया गया है। अवधि यज्जातीय होता है, अवधिमान् को भी तज्जातीय ही होना चाहिये, यह नियम है। 'तेन दीव्यति-' ४.४.२ में अवधि से अर्थनिर्देश है, अतः अवधिमान् से भी अर्थनिर्देश ही लिया जायेगा, यही मान कर 'प्राग्दीव्यतो येऽर्थाः' ऐसा कहा है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ वा पुनरस्तु 'प्राग्दीव्यतो याः प्रकृतय' इति। ननु चोक्तम्-'अपवादविषयेऽण्प्रसंग' इति *न वा क्व चिद्वावचनात्'* न वैष दोषः। किं कारणम्? 'क्व चिद्वावचनात्'। यदयं क्वचिद्वावचनं करोति-'पीलाया वा' 'उदश्वितोऽन्यतरस्यामि'ति,-एतज् ज्ञापयत्याचार्यो-'नापवादविषयेऽण् भवती'ति।

अथ वा प्रथमपक्ष 'प्राग्दीव्यतो याः प्रकृतयः' को भी मान लीजिये। इसमें समान विषय होने से अपवाद के विषय में अण् की आपत्ति दी थी, वह नहीं रहेगी, इसे बताते हैं-**न वेति**। 'पीलाया वा' ४.१.११८ और 'उदस्वितोऽन्यतरस्याम्' ४.२.१६ सूत्र में आचार्य 'वा'वचन करते हैं। 'वा'पद का अनुवर्तन होने से यह व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा-'अपवादविषय में अण् नहीं होता है', अतः इञ् के विषय में अण् नहीं होने से 'दशरथस्यापत्यं पुमान् दाशरथिः' यही रूप होता है, 'दाशरथः' नहीं। अथ च 'द्व्यचः' ४.१.१२१ से ढक् और अण् दोनों सिद्ध हो जाता, 'पीलाया अपत्यं पुमान् पैलेयः, पैलः' दोनों रूप सिद्ध हो जाता, 'पीलाया वा' ४.१.११८ इस सूत्र का आरम्भ भी नहीं करना चाहिये था। अथ च 'उदश्वितोऽन्यतरस्याम्' ४.२.१६ सूत्र मात्र ढग्विधान के लिए ही करते, 'प्राग्दीव्यतोऽण्' ४.१.८३ से ही अण् सिद्ध हो जाता, पुनः अण्सिद्धि के लिए किया गया 'अन्यतरस्याम्'ग्रहण व्यर्थ पड कर उक्त अर्थ का ज्ञापक होगा।

यद्येतज्ज्ञाप्यते-नार्थः प्राग्वचनेन। अधिकारात्सिद्धम्। ननु चोक्तम्-'अधिकारात्सिद्धमिति चेदपवादविषयेऽण् प्रसङ्ग' इति। नैष दोषः। परिहृतमेतद्-'न वा क्वचिद् वावचनादि'ति।

इतर आचार्य—**यद्येतदिति**। यदि 'पीलाया वा' ४.१.११८ और 'उदश्वितोन्यतरस्याम्' ४.२.१६ सूत्रघटक 'वा' और 'अन्यतरस्याम्'ग्रहण से 'नापवादविषयेऽण् भवति' अर्थ का ज्ञापन करेंगे तो 'प्राग्दीव्यतोऽण्' ४.१.८३ सूत्र में प्राग्ग्रहण का कोई प्रयोजन नहीं है।

उत्तरपक्षी—**अधिकारादिति**। 'नापवादविषयेऽण् भवति' यह सूत्राधिकार से सिद्ध हो जायेगा। पूर्व में उक्त ज्ञापन के लिए 'अधिकारात्सिद्धम्' ऐसा हेतु दिया था। उसमें पूर्वपक्षी ने दोष दिखाया था-'अधिकारात्सिद्धमिति चेदपवादविषयेऽण् प्रसङ्गः'।

इस दोष का मार्जन कर रहे हैं—**नैष दोष इति**। उक्त दोष का मार्जन 'न वा क्वचिद्वावचनात्' कह कर आचार्य ने अभी-अभी किया है, अतः अप-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वादविषय में अण् की प्रवृत्ति नहीं होगी।

किम्पुनः कारणमियानवधिर्गृह्यते, न 'प्राक्ठक' इत्येवोच्येत? एतज्ज्ञापयत्यर्थेष्वयम्भवतीति। किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम्? प्रकृति-विशेषादुत्पद्यमान इञ्-अणं बाधते।। प्राग्दीव्यतोऽण्।

पूर्वपक्षी—**किम्पुनरिति**। क्या कारण है कि आचार्य ने 'तेन दीव्यति खनति जयति जितम्' ४.४.२ को ही अवधि बनाया है?, इससे पूर्व सूत्र 'प्राग्वहतेष्ठक्' ४.४.१ है। उसके ठक् को अवधि बना कर 'प्राक्ठकोऽण्' ऐसा सूत्रपाठ क्यों नहीं किया है? यपि 'प्राक्ठकोऽण्' ऐसा सूत्र पढने पर अनेक ठक् का ग्रहण होने से सन्देह होता, फिर भी 'व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्न हि सन्देहादलक्षणम्' परिभाषा से व्याख्यान के द्वारा 'प्राग्वहतेष्ठक्' ४.४.१ का ठक् अवधित्वेन निश्चय किया जा सकता था। **एतज्ज्ञापयतीति**। 'प्राक्ठकोऽण्' ऐसा सूत्र न पढ कर आचार्य ने 'प्राग्दीव्यतोऽण्' ऐसा 'दीव्यतः' अर्थनिर्देशपुरःसर पढा, उससे वह ज्ञापन करते हैं कि इस प्रकरण में अर्थनिर्देश है, अतः अर्थों में अण् प्रत्यय होता है। इस ज्ञापन का प्रयोजन यह है कि 'प्रकृतिविशेष से उत्पन्न होता हुआ इञ् प्रत्यय अण् को बाध लेगा'।। **प्राग्दीव्यतोऽण्**।।

दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः ४.१.८५

***** ण्यप्रकरणे वाङ्मतिपितृमतां छन्दस्युपसंख्यानम् *** ण्यप्रकरणे वाङ्म-तिपितृमतां छन्दस्युपसंख्यानं कर्त्तव्यम्।** वाक्-**वाच्यः**। वाक्। मति-**मात्यः**। मति। पितृमत्-**पैतृमत्यः**। पितृमत् ***** पृथिव्या ञाऽञौ *** पृथिव्या ञाऽञौ वक्तव्यौ। पार्थिवा। पार्थिवी।**

यह अण् का अपवाद है।

सूत्रार्थ—'दिति, अदिति और आदित्य पद से पर में तथा पति उत्तरपद से पर में प्राग्दीव्यतीय अर्थो में ण्य प्रत्यय हो'। जैसे-दितेरपत्यं पुमान् दैत्यः, अदितेरपत्यं पुमानादित्यः, आदित्यस्येदं हविरादित्यं हविः, प्रजापतेरपत्यं पुमान् प्राजापत्यः।

सिद्धान्त वार्तिक—**ण्यप्रकरण इति**। ण्यप्रकरण में वाक्, मति और पितृमत् शब्द से भी वेद में प्राग्दीव्यतीय अर्थो में ण्य कहना चाहिये। जैसे-वाचोऽयं वाच्यः। मतेरपत्यं पुमान् मात्यः। पितृमतोऽयं पैतृमत्यः। **पृथिव्या इति**। पृथिवी पद से पर में प्राग्दीव्यतीय अर्थो में ञ और अञ् प्रत्ययं कहना चाहिये। जैसे-पृथिव्या इयं पार्थिवा। अञ् होने पर 'टिड्ढाणञ्-'४.१.१५ से अञ्लक्षण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ङीप् हो कर पार्थिवी।

*** देवस्य यञञौ * देवस्य यञञौ वक्तव्यौ। दैव्यम्, दैवम् * बहिष्टिलोपो यञ्च * बहिष्टिलोपो यञ्च वक्तव्यः। बहिर्भवो बाह्यः * ईकक्च * बहिष ईकक्च वक्तव्यः। बाहीकः * ईकञ्छन्दसि * ईकञ्छन्दसि वक्तव्यः। बाहीकमस्तु भद्रं वः * स्थाम्नोऽकारः * स्थाम्नोऽकारो वक्तव्यः। अश्वथामः * लोम्नोऽपत्येषु बहुषु * लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारो वक्तव्यः। उडुलोमाः, शरलोमाः। बहुष्विति किमर्थम्? औडुलोमिः। शारलोमिः।**

देवस्येति। यहाँ पञ्चम्यर्थ में षष्ठी है। प्राग्दीव्यती अर्थों में देव पद से पर में यञ् और अञ् कहना चाहिये। जैसे-देवस्येदं दैवम्, अञ् होने पर दैवम्। **बहिष्टिलोप इति**। प्राग्दीव्यतीय अर्थों में बहिष् प्रातिपदिक से यञ् प्रत्यय तथा टिलोप कहना चाहिये। जैसे-बहिर्भवो बाह्यः। **ईकञिति**। पूर्व वार्तिक से बहिः और टिलोप की अनुवृत्ति है। बहिष् प्रातिपदिक से वेद में ईकञ् प्रत्यय तथा टिलोप कहना चाहिये। जैसे-बाहीकमस्तु भद्रं वः। यद्यपि ईकक् और ईकञ् होने पर रूपभेद नहीं है, तथापि स्वरभेद स्पष्ट है। कित् होने पर 'कितः' ६.१.१६५ से अन्तोदात्त है। ञित् होने पर 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' ६.१.१९७ से आद्युदात्त है।

स्थाम्न इति। स्थामन् पद से अ प्रत्यय तथा टिलोप कहना चाहिये। अश्व इव **स्थामा**=स्थितिर्यस्य सोऽश्वथामा, तस्यापत्यं पुमान् अश्वथामः। **लोम्न इति**। लोमन् शब्द से अपत्य अर्थ में बहुवचन में अ प्रत्यय और टिलोप कहना चाहिये। 'बाह्वादिभ्यश्च' ४.२.९६ गणपाठ में लोमन् शब्द का पाठ होने से इञ् प्राप्त था, अतः अ प्रत्यय का विधान किया गया है। **उडूनि**=नक्षत्राणीव लोमानि यस्याऽसौ उडुलोमा, उडुलोम्नोऽपत्यं पुमान्' इस अर्थ में बहुवचन में 'औडुलोमाः', एकवचन में 'औडुलोमिः' द्विवचन में 'औडुलोमी' रूप समझना चाहिये। इसी तरह 'शर इव लोम यस्य स शरलोमा, तस्यापत्यं पुमान्' इस अर्थ में बहुवचन में 'शरलोमाः' रूप है।

*** सर्वत्र गोरजादिप्रसङ्गे यत् * सर्वत्र गोरजादिप्रसङ्गे यद्वक्तव्यः। गवि भवं गव्यम्। गोरिदं गव्यम्। गोः स्वं गव्यम्। गौर्देवताऽस्य स्थालीपाकस्य गव्यः स्थालीपाकः * ण्यादयोऽर्थविशेषलक्षणादणपवादात् पूर्वविप्रतिषिद्धं दितिवनस्पतिभ्याम् अपत्यसमूहयोः * ण्यादयोऽर्थविशेषलक्षणाद् अणपवादाद् भवन्ति पूर्वविप्रतिषेधेन। ण्यादीनामवकाशः-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दितिर्देवताऽस्य दैत्यः। अदितिर्देवताऽस्य आदित्यः। अर्थविशेष-लक्षणस्याऽणपवादस्याऽवकाशः-दुलेरपत्यं दौलेयः। बालेयः। इहोभयं प्राप्नोतिदितेरपत्यं दैत्यः, अदितेरादित्यः।

सर्वत्रेति। अजादि प्रत्ययों की प्राप्ति में गोपद से लोक और वेद में यत् प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे-गोरिदं गव्यम्, गोः स्वं गव्यम्, गौर्देवतास्य स्थालीपाकस्येति गव्यः स्थालीपाकः। यहाँ 'सास्य देवता' ४.२.२४ से अण् प्राप्त था, पूर्व में 'तस्येदम्' ४.३.१२० से अण् प्राप्त था, उसको बाध कर यत्प्रत्यय हुआ है। यहाँ सर्वत्र गव्यम् में 'वान्तो यि प्रत्यये' ६.१.७९ से वान्तादेश है।

ण्यादयोर्थविशेषेति। अर्थविशेषो लक्षणं=निमित्तं यस्य सोऽर्थविशेषलक्षण-स्तस्मात्। येन नाप्राप्तिन्याय से ण्य आदि प्रत्यय अण् के अपवाद होते हैं। ढक् आदि प्रत्ययों के साथ ण्य आदि प्रत्ययों की सम्प्रधारणा में पर होने से ढक् आदि के द्वारा ण्य आदि का बाध हो रहा था, अतः पूर्व ण्य आदि से पर ढक् आदि का बाध करने के लिए वार्तिक का आरम्भ है। 'दितिर्देवताऽस्य स दैत्यः, अदितिर्देवताऽस्य स आदित्यः' में 'दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः' ४.१.८५ से विहित ण्य चरितार्थ है। 'दुलेरपत्यं दौलेयः, बलेरपत्यं बालेयः' में 'इतश्चानिञः'. ४.१.१२१ से विहित अण् का अपवाद अर्थविशेषलक्षण अपत्यार्थक ढक् का अवकाश है। 'दितेरपत्यं दैत्यः, अदितेरपत्यमादित्यः' में ण्य और ढक् दोनों की प्राप्ति है।

अपरस्याऽर्थविशेषलक्षणस्याणपवादस्याऽवकाशः-अचित्तहस्ति-धेनोष्ठक्, आपूपिकम्। शाष्कुलिकम्। ण्यादीनामवकाशः-बार्हस्पत्यम्। प्रजापत्यम्। इहोभयं प्राप्नोति-वनस्पतीनां समूहो वानस्पत्यम्। ण्यादयो भवन्ति पूर्वविप्रतिषेधेन। स तर्हि पूर्वविप्रतिषेधो वक्तव्यः? न वक्तव्यः। इष्टवाची परशब्दः, विप्रषेधे परंयदिष्टं तद्भवतीति-'दितिवनस्पतीभ्यामपत्यसमूहयो'रिति।। दित्यदित्यादित्य-।।

एवम् अर्थविशेषलक्षण अण् का अपवाद 'अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्' ४.२.४७ से विहित ठक् प्रत्यय 'अपूपानां समूह आपूपिकं, शष्कुलीनां समूहः शाष्कुलिकम्' में अवकाश है, तथा 'बृहस्पतिर्देवताऽस्येति बार्हस्पत्यं हविः, प्रजापतिर्दवताऽस्येति प्राजापत्यं हविः' में ण्य चरितार्थ है। 'वनस्पतीनां समूहो वानस्पत्यम्' में ण्य और ठक् दोनों प्राप्त हैं, पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा ण्य प्रत्यय होता है।

पूर्वपक्षी—**स तर्हीति**। तो क्या '-पूर्वविप्रतिषिद्धं दितिवनरूपतिभ्यामपत्यसमूहयोः' यह वचन पढना चाहिये?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्य इति**। यह पूर्वविप्रतिषेध नहीं कहना चाहिये। 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' १.४.२ सूत्र में पर शब्द इष्टवाची है, अतः तुल्यबल-विरोध होने पर जो इष्ट है वह होगा' यह सूत्रार्थ है। यहाँ अपत्य और समूह अर्थ में दिति और वनस्पतिशब्द से पूर्वविप्रतिषेध इष्ट है, अतः पूर्वविप्रतिषेध ही होगा। इसके लिए अतिरिक्त वचन पढने की आवश्यकता नहीं है। **दित्य-दित्यादित्य-** ।।

उत्सादिभ्योऽञ् ४.१.८६

***अञ्प्रकरणे ग्रीष्मादच्छन्दसि* अञ्प्रकरणे ग्रीष्मादच्छन्दसीति वक्तव्यम्। ग्रैष्मम्। अच्छन्दसीति किमर्थम्? त्रिष्टुब्ग्रैष्मी। यद्यच्छन्दसीत्युच्यते, ग्रैष्मावेतौ मासौ,-अत्र न प्राप्नोति। अच्छन्दसीत्युच्यते, नेदं छन्दः समीक्षितं-काठकं कालापकं पैप्पलादकमिति। किन्तर्हि? प्रत्ययार्थविशेषणमेतद् -'न चेच्छन्दः प्रत्ययार्थो भवती'ति।** उत्सादिभ्योऽञ् ।।८६।।

यह अण्, इञ् का अपवाद सूत्र है।

सूत्रार्थ—'प्राग्दीव्यतीय अर्थों में उत्स आदि से अञ् प्रत्यय हो'। गणपाठ में आचार्य ने 'ग्रीष्मादच्छन्दसि' कहा है, उसकी व्याख्या करते हैं-**अञ्प्रकरण इति**। ग्रीष्मशब्द से प्राग्दीव्यतीय अर्थों में अञ् कहना चाहिये। यहाँ छन्दः पद से वृत्त-गोत्र आदि विशेष अर्थ वाच्य है। वृत्त अर्थ गम्य होने पर अञ् प्रत्यय का निषेध होने से अण् होगा। ग्रीष्मस्यापत्यं गोत्रं ग्रैष्मम्। 'अच्छन्दसि' इस निषेध से 'ग्रीष्मो देवताऽस्या इति ग्रैष्मी' में 'साऽस्य देवता' ४.२.२४ से अण्, अण्लक्षण ङीप् है। यदि 'ग्रीष्मे भवा' ऐसा विशेषार्थविवक्षा करेंगे तब 'सन्धिवेला-द्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्' ४.३.१६ से अण् प्रत्यय होगा।

पूर्वपक्षी—**यद्यच्छन्दसीत्युच्यत इति**। आचार्य अच्छन्दसि' ऐसा निषेध पढ रहे हैं, अतः 'ग्रीष्मावेतौ मासौ' में ग्रीष्म पद से छन्दः में अञ् प्राप्त नहीं हो सकेगा।

उत्तरपक्षी—**अच्छन्दसीत्युच्यत इति**। 'अच्छन्दसि' इस निषेधवचन में छन्दः पद से काठक, कालापक, मौदक, पैप्पलाद आदि छन्दः वाच्य नहीं हैं। अपि तु 'अच्छन्दसि' प्रत्ययार्थ में विशेषण है। यदि प्रत्यय के द्वारा छन्दः अर्थ वाच्य न हो तो ग्रीष्म पद से अञ्विधान है।। **उत्सादिभ्योऽञ्** ।।

स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् ४.१.८७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किमर्थं नञ्स्नञावुच्येते, न नञेवोच्येत? का रूपसिद्धिः? पौंस्नम्। पुंसिति सकारान्तः, नञ्शब्दश्च प्रत्ययः। न सिध्यति-'संयोगान्तस्य लोप' इति लोपः प्राप्नोति। एवन्तर्हि नैवाऽर्थो नञा, नापि स्नञा। अञ् प्रकृतः सोऽनुवर्तिष्यते, नकारश्चागमो वक्तव्यः।

'भवनात्' यह मर्यादा में पञ्चमी है, अतः सूत्रार्थ होगा-'धान्यानां भवने क्षेत्रे' ५.२.१ सूत्र से पूर्व तक के अर्थों में स्त्री और पुंस् प्रातिपदिक से क्रमशः नञ् और स्नञ् प्रत्यय हो'। जैसे'-स्त्रिया अपत्यम्, स्त्रीषु भवः, स्त्रीणां समूहः' इत्यादि विग्रहों में 'स्त्रैणः', एवं 'पुंसोऽपत्यम्, पुंसि भवः, पुंसां समूहः' इत्यादि विग्रहों में 'पौंस्नः' रूप होगा। 'स्त्री पुंवच्च' १.२.६६ इस ज्ञापन से वत्यर्थ में स्नञ् नहीं होगा, अतः 'स्त्रिया तुल्यं स्त्रीवत्, पुंसां तुल्यं पुंवत्' यही रूप समझना चाहिये।

पूर्वपक्षी—**किमर्थमिति**। नञ् और स्नञ् यह दो प्रत्ययों का विधान क्यों करते है?, मात्र दोनों के स्थान पर नञ् प्रत्यय का ही विधान कीजिये। पुंस् शब्द सान्त है, उससे नञ् प्रत्यय लायेंगे, ञित्वात् आदि अच् को वृद्धि तथा प्रकृतिघटक स् का प्रत्यय न से योग हो कर पौंस्न रूप हो जायेगा?

खण्डनभाष्य—**न सिध्यतीति**। यदि स्नञ् के स्थान पर नञ् प्रत्यय करेंगे तो प्रकृति पुम्स् का संयोगान्तलोप होने से सकार का अदर्शन हो जायेगा, अतः 'पौंस्नः' यह इष्ट रूप नहीं बन सकेगा।

अन्य आचार्य—**एवन्तर्हीति**। यदि ऐसा है तो नञ्, स्नञ् इन दोनों का विधान न करके मात्र अञ् प्रत्यय का ही विधान कीजिये, अर्थात् 'स्त्रीपुंसाभ्यामञ् भवनात्' ऐसा सूत्र पढिये। नञ्, स्नञ् इन दो प्रत्ययों का विधान करने की आवश्यकता नहीं है। अथावा सूत्र में अञ् पद पढने की भी आवश्यकता नहीं होगी। 'उत्सादिभ्योऽञ्' ४.१.८६ सूत्र में अञ् पढा गया है, उसी का अनुवर्तन कर लेंगे तथा नकार का आगम करेंगे। इससे स्त्रैणः, पौंस्नः यह इष्ट रूप सिद्ध हो जायेगा।

अथ नकारागमे सति किं पूर्वान्तः करिष्यते, आहोस्वित् परादिः? किं चातः? यदि पूर्वान्तः-स्त्रैणाः। -बहुषु लोपः प्राप्नोति। स्त्रैणानां सङ्घः-'सङ्घाङ्कलक्षणेष्वञ्यञि-ञामण्णि'त्यण् प्राप्नोति। अथ परादिः-पौंस्नम्। स एव दोषः-संयोगान्तलोपः प्राप्नोति। अस्तु पूर्वान्तः। कथं स्त्रैणाः, स्त्रैणानां सङ्घ इति? उभयत्र लौकिकस्य गोत्रस्य ग्रहणं, न चैतल्लौकिकं गोत्रम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इतर आचार्य—**अथ नकारागम इति**। नकारागम को किद्विशिष्ट पढ कर **पूर्वान्तः**=प्रकृति का अवयव मानेंगे, अथ वा टित् पढ कर **परादिः**=प्रत्यय का आद्यवयव मानेंगे?

अन्य प्राश्निक—**किं चात इति**। आप के पूर्वपक्ष में क्या हेतु है?

इतर आचार्य—**यदि पूर्वान्त इति**। चाहे नकारागम को पूर्वान्त मानें अथवा परादि मानें दोनों ही पक्षों में दोष है। यदि प्रकृति का अन्तावयव नकारागम को बनायेंगे तो 'स्त्रैणाः' इस बहुवचनान्तस्थल में 'यञञोश्च' २.४.६४ से लोप प्राप्त होगा, यह प्रथम दोष होगा। अथ च 'स्त्रैणानां सङ्घः' इस अर्थ में 'सङ्घाङ्कलक्षणेष्वन्यञिञामण्' ४.३.१२७ से होने वाला अण् प्रत्यय प्राप्त नहीं हो सकेगा। यदि नकारान्त को टित् पढ कर **परादिः**=प्रत्यय का आद्यवयव मानेंगे तब भी वही दोष होगा जो अभी-अभी बता आया हूँ, अर्थात् 'पौंस्नः' में संयोगान्तलोप प्राप्त होगा। इस तरह नकारागम को पूर्वान्त अथवा परादि चाहे जो भी मानें दोनों ही पक्षों में दोष है।

उत्तरपक्षी आचार्य दोनों ही पक्षों में दोष हटाते हैं—**अस्त्विति**। आप नकारागम को **पूर्वान्त**=कित् मान कर प्रकृति का अन्तावयव मानिये। इस पक्ष में आप ने 'स्त्रैणाः' इस बहुवचनान्त में अञ्लोप तथा 'स्त्रैणानां सङ्घः' इस विग्रह में सङ्घ अर्थ में अण् की अप्राप्ति दिखायी थी, यह दोनों ही दोष नहीं रहेगा। इसका हेतु यह है कि 'यस्कादिभ्यो गोत्रे' २.४.६३ से 'गोत्रे' सप्तम्यन्त पद की अनुवृत्ति 'यञञोश्च' २.४.६४ सूत्र में आती है, एवं 'गोत्रचरणाद् वुञ्' ४.३.१२६ सूत्र से गोत्र पद की अनुवृत्ति 'सङ्घाङ्कलक्षणेष्वन्य- ञिञामण्' ४.३.१२७ सूत्र में आती है, अतः ये दोनों ही सूत्र गोत्र में प्रवृत्त होते हैं तथा यहाँ लौकिक गोत्र का उभयत्र ग्रहण है, लौकिक गोत्र नहीं होता है। ऋषिप्रजनन ही लोक में गोत्र पद से वाच्य है। स्त्री ऋषि भी नहीं है तथा पुम्पद वाच्य भी नहीं है, अपि तु सामान्य है।

ईकारस्तर्हि प्राप्नोति। इष्टमेवैतत्संगृहीतं, स्त्रैणी पौंस्नीत्येव भवितव्यम्। एवं हि सौनागाः पठन्ति- * नञ्स्नञीकक्ख्युँस्तरुणतलुनानामुपसंख्यानम् * इति। टिलोपस्तर्हि प्राप्नोति। नुग्वचनान्न भविष्यति। भवेदिह नुग्वचनान्न स्यात्स्त्रैणमिति, इह तु खलु पौंस्नमिति,- नुग्वचनादेव प्राप्नोति। तस्मान्नञ्स्नञौ वक्तव्यौ।

पूर्वपक्षी—**ईकारस्तर्हीति**। यदि दोनों दोष निवृत्त होंगे तब **ईकार**=अञ्लक्षण ङीप् प्राप्त होगा?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरपक्षी—**इष्टमेवैतदिति**। यहाँ अजन्त से ङीप् इष्ट है। स्त्रैणी, पौंस्नी यह ङीप्घटित रूप ही होगा। इस विषय में सौनाग आचार्य-नञ्, स्नञ्, ईकक्, ख्युन् इन चार प्रत्ययों से तथा तरुण और तलुन प्रातिपदिक से ङीप्विधान करते हैं।

पूर्वपक्षी—**टिलोपस्तर्हीति**। प्रकृतिभाग को नुगागम करने पर 'स्त्रीन्+अञ्, पुंस्न्+अञ्' इस स्थिति में 'नस्तद्धिते' ६.४.११४ से टिलोप प्राप्त होगा?

ज्ञापनवादी आचार्य—**नुग्वचनादिति**। यदि टिलोप करेंगे तो नुग्वचन का कोई प्रयोजन नहीं होगा, अतः टिलोपपक्ष में नुग्वचन व्यर्थ पड कर उक्त स्थिति में टिलोप का अभाव ज्ञापन करेगा।

अन्य आचार्य—**भवेदिहेति**। 'स्त्री+अञ्' इस स्थिति में 'यस्येति च' ६.४.१४८ से ईकारलोप प्राप्त था, नुग्विधानसामर्थ्य से यहाँ टिलोप का वारण कर लेंगे, परन्तु 'पौंस्नः' में नुग्विधान होने पर ही नान्त होगा जिससे 'नस्तद्धिते' ६.४.१४४ की प्रवृत्ति होगी, अतः 'पौंस्नः' में दोष होगा। इस लिए सर्वविध अदोष के लिए नञ्, स्नञ् का ही विधान करना चाहिये।

अथेमौ नञ्स्नञौ प्राग्भवनाद्, आहोस्वित्प्राग्वतेः? कश्चाऽत्र विशेषः? * नञ्स्नञौ भवनादिति चेद्वत्यर्थे प्रतिषेधः * नञ्स्नञौ भवनादिति चेद् वत्यर्थे प्रतिषेधो वक्तव्यः,- स्त्रीवत्पुंवदिति। किम्पुनः कारणं न सिध्यति? इमौ नञ्स्नञौ प्राग्भवनादित्युच्येते, तौ विशेषविहितौ सामान्यविहितं वतिं बाधेयाताम्। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। 'वतेः प्रागि'ति वक्ष्यामि।

पूर्वपक्षी—**अथेमाविति**। स्त्री, पुम्स् शब्द से नञ् और स्नञ् का अधिकार 'धान्यानां भवने क्षेत्रे' ५.२.१ सूत्र से पूर्व तक है, अथ वा 'तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः' ५.१.११५ से पूर्व तक के अर्थों में है? इन दोनों में चाहे आप जो भी पक्ष मानें, दोनों में दोष है।

क्रमशः दोष स्पष्ट करते हैं—**नञ्स्नञाविति**। यदि 'धान्यानां भवने क्षेत्रे' ५.२.१ सूत्र से पूर्व तक के अर्थों में नञ्, स्नञ् का अधिकार समझेंगे तो वत्यर्थ 'स्त्रिया तुल्यं स्त्रीवत्, पुंसा तुल्यं पुंवत्' में भी क्रमशः नञ्, स्नञ् प्राप्त होगा, जिसका प्रतिषेध कहना होगा।

प्रश्नभाष्य—**किम्पुनरिति**। क्या कारण है कि उक्त विग्रह में स्त्रीवत्, पुंवत् की सिद्धि नहीं हो पा रही है?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्वपक्षी—**इमौ नञ्स्नञाविति**। 'धान्यानां भवने क्षेत्रे' ५.२.१ से पूर्व तक के अर्थों में स्त्री से नञ् और पुम्स् से स्नञ् कहा जा रहा है।

उत्तरपक्षी—**तौ विशेषेति**। प्रकृतिविशेष से विहित होने से नञ्, स्नञ् विशेष विहित हैं तथा प्रकृतिविशेष का ग्रहण नहीं होने से वति सामान्य विहित है। विशेष से सामान्य का बाध होता है, अतः तक्रकौण्डिन्यन्याय से नञ्, स्नञ् के द्वारा वति का बाध हो जायेगा।

पूर्वपक्षी—**तत्तर्हीति**। तो क्या यहाँ नञ्, स्नञ् से वति का बाध कहना होगा?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्य इति**। बाध कहने की आवश्यकता नहीं है। हम वतिघटित 'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः' ५.१.११५ से पूर्व तक के ही अर्थों में नञ्, स्नञ् का अधिकार कहेंगे।

*** वतेः प्रागिति चेद् भाव उपसंख्यानम् * वतेः प्रागिति चेद् भाव उपसंख्यानं कर्त्तव्यं, स्त्रीभावः स्त्रैणं, पुंभावः पौंस्नमिति। सूत्रं च भिद्यते। यथान्यासमेवास्तु। ननु चोक्तं-'नञ्स्नञौ भवनादिति चेद्वत्यर्थे प्रतिषेध' इति। नैष दोषः-आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति न वत्यर्थे नञ्स्नञौ भवत इति,-यदयं 'स्त्रियाः पुंवदि'ति निर्देशं करोति। एवमति स्त्रीवदिति न सिध्यति। योगाऽपेक्षं ज्ञापकम्।।** स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्।।८७।।

परन्तु इस पक्ष में भी दोष है जो पूर्वपक्षी आचार्य द्वारा उपस्थापित किया जा रहा है-**वतेः प्रागिति**। यदि वति से पूर्व तक के ही अर्थों में नञ्, स्नञ् का अधिकार मानेंगे तो 'स्त्रिया भावः स्त्रैणं, पुंसो भावः पौंस्नम्' में 'तस्य भावस्त्वतलौ' ५.१.११९ के अर्थ में नञ्, स्नञ् नहीं हो सकेंगे, अतः उस अर्थ में नञ्, स्नञ् का विधान करने के लिए पृथक् सूत्र करना पडेगा।

अन्य आचार्य—**सूत्रं चेति**। पृथक् सूत्र करने से भाव अर्थ में नञ्, स्नञ् प्रत्यय करके 'स्त्रैणं, पौंस्नम्' की सिद्धि हो जायेगी, परन्तु इससे सूत्रभेद होगा, जो गौरव होने से दोषावह है।

यथान्यासवादी—**यथान्यासमिति**। यदि सूत्रभेद नहीं चाहते हैं तो जैसा सूत्र है वैसा ही रहने दीजिये। सूत्र के यथान्यासपक्ष में आप ने 'नञ्स्नञौ भवनादिति चेद्वत्यर्थे प्रतिषेधः' ऐसा कह कर वत्यर्थ में नञ्, स्नञ् की प्राप्ति दिखा कर प्रतिषेधवचन पढा था, वह भी दोष नहीं रहेगा। यहाँ वत्यर्थ में स्त्रीशब्द से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नञ् और पुम्स्शब्द से स्नञ् की प्राप्ति नहीं होगी। इस वात का ज्ञापन आचार्य 'स्त्रियाः पुंवत्' ६.३.३४ सूत्र में वतिघटितप्रयोग करके स्वयं करते हैं, उससे दोष हट जायेगा।

पूर्वपक्षी—**एवमपीति**। उक्त निर्देश से पुम्स् प्रातिपदिक से स्नञ् का ही बाध होगा, 'स्त्रिया तुल्यम्' इस अर्थ में स्त्रीशब्द से नञ् की आपत्ति होगी।

उत्तरपक्षी—**योगापेक्षमिति**। 'स्त्रियाः पुंवत्' ६.३.३४ इस वतिघटित प्रयोग से योगापेक्ष ज्ञापन करेंगे। अर्थात् **योगः**='स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्' ४.१.८७ सूत्र ही वत्यर्थ में प्रवृत्त नहीं होता है। परन्तु भाव अर्थ में 'तस्य भावस्त्वतलौ' ५.१.११९ सूत्र से विहित त्व और तल् प्रत्यय स्त्री और पुम्स् शब्द से होंगे ही। 'आ च त्वात्' ५.१.१२० सूत्र में त्व और तल् का समावेश किया जायेगा। इससे स्त्रीत्वम्, स्त्रीता, पुंस्त्वम्, पुंस्ता यह भी रूप होगा।। **स्त्रीपुंसाभ्यां-**।।

द्विगोर्लुगनपत्ये ४.१.८८

इह कस्मान्न भवति-त्रैविद्यः, पाञ्चनदः, षाट्कुल इति? इह तावत्त्रैविद्य इति। नैवं विज्ञायते तिस्रो विद्या अधीते त्रैविद्य इति। कथन्तर्हि? त्र्यवयवा विद्या त्रिविद्या, त्रिविद्यामधीते त्रैविद्य इति। इहापि पाञ्चनद इति नैवं विज्ञायते-पञ्चसु नदीषु भवः-पाञ्चनद इति। कथन्तर्हि? पञ्चानां नदीनां समाहारः पञ्चनदं, पञ्चनदे भवः पाञ्चनद इति। इहापि षाट्कुल इति। नैवं विज्ञायते-षट्सु कुलेषु भवः-षाट्कुल इति। किं तर्हि? षण्णां कुलं षट्कुलं, षट्कुले भवः-षाट्कुल इति। 'अजादिग्रहणं च कर्तव्यम्'। इह मा भूत्,-पञ्चगर्गरूप्यं, पञ्चगर्गमयम्।

सूत्रार्थ—'द्विगुनिमित्त जो अजादि अनपत्यार्थ प्राग्दीव्यतीय तद्धित उसका लुक् हो'।

पूर्वपक्षी—**इह कस्मान्नेति**। त्रैविद्यः, पाञ्चनदः, षाट्कुलः में द्विगु से पर में भव अर्थ में अण् प्रत्यय है, उसका लुक् क्यों नहीं होता है?

यहाँ द्विगु से पर में तद्धित नहीं है इसे उत्तरपक्षी आचार्य विग्रहप्रदर्शनपूर्वक स्पष्ट करते हैं-**इह तावदिति**। 'तिस्रो विद्या अधीत इति त्रैविद्यः' इस तरह का द्विगु करके 'तदधीते तद्वेद' ४.२.५९ सूत्र से 'अधीते' अर्थ में अण् नहीं है। अपि तु 'त्र्यवयवा विद्यास्त्रिविद्याः' यहाँ 'शाकपार्थिवादीनां सिद्धयं उत्तरपदलो-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MiDF

पस्योपसंख्यानम्' वार्तिक से उत्तरपद का लोप करके मध्यमपदलोपी तत्पुरुषसमास है, जिससे 'त्रिविद्यामधीते' इस अर्थ में अण् हो कर 'त्रैविद्यः' ऐसा रूप है। एवं 'पञ्चसु नदीषु भवः' इस अर्थ में द्विगु करके द्विगु से भव अर्थ में 'तत्र भवः' ४.३.५३ से अण् नहीं है; अपि तु 'पञ्चानां नदीनां समाहारः पञ्चनदं, तत्र भवः पाञ्चनदः' ऐसा समाहार द्वन्द्व से अण् प्रत्यय है। एवं 'षाट्कुलः' में भी 'षट्त्सु कपालेषु भवः' ऐसा द्विगु से भव अर्थ में अण् नहीं है, अपि तु 'षण्णां कुलं षट्कुलम्' ऐसा षष्ठीतत्पुरुष हो कर उससे पर में 'षट्कुले भवः' अर्थ में षाट्कुलः' ऐसा अण्णन्तप्रयोग है, अतः 'त्रैविद्यः, पाञ्चनदः, षाट्कुलः में द्विगु से तद्धित अजादि विहित नहीं है, अपि तु तत्पुरुष और द्वन्द्व समास से अजादि विहित है, अतः 'द्विगोर्लुगनपत्ये' ४.१.८८ से अण् का लुक् नहीं होता है।

सिद्धान्ती आचार्य—**आदिग्रहणं चेति**। 'द्विगोर्लुगनपत्ये' सूत्र में अजादि तद्धित का लुक् कहना चाहिये। इससे 'पञ्चगर्गस्य भूतपूर्वगृहमिति पञ्चगर्गरूप्यम्' में 'षष्ठ्या रूप्य च' ५.३.५४ से विहित अजादिभिन्न रूप्य प्रत्यय, और 'इदमेषामतिशयेन पञ्चगर्गमिति पञ्चगर्गमयम्' में 'अतिशायने तमबिष्ठनौ' ५.३.५५ से विहित तमप् प्रत्यय का लुक् नहीं होता है।

*** द्विगोर्लुकि तन्निमित्तग्रहणम् * द्विगोर्लुकि तन्निमित्तग्रहणं कर्तव्यम्। द्विगुनिमित्तं यस्तद्धितस्तस्य लुग्भवतीति वक्तव्यम्, इह मा भूत्- पञ्चकपालस्येदं खण्डं पाञ्चकपालमिति *** अर्थविशेषाऽसम्प्रत्ययेऽतन्निमित्ताद् अपि *** 'अर्थविशेषाऽसम्प्रत्ययेऽतन्निमित्तादपी'ति वक्तव्यम्। किं प्रयोजनम्? पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पञ्चकपालः। पञ्चकपाल्यां संस्कृत इत्यपि विगृह्य पञ्चकपाल इत्येव यथा स्यात्।**

सिद्धान्ती आचार्य—**द्विगोर्लुकीति**। द्विगु से पर में प्रत्यय का ग्रहण करने में तन्निमित्त का ग्रहण करना चाहिये। अर्थात् द्विगु को निमित्त मान कर किया गया तद्धित का लुक् हो। इससे 'पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः' इस अर्थ में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' २.१.५१ से समास है, तथा द्विगु को निमित्त मान कर 'संस्कृतं भक्षाः' ४.२.१६ से विहित अण् प्रत्यय का 'द्विगोर्लुगनपत्ये' ४.१.८८ से लुक् हो जाता है। पुनः 'पञ्चकपालस्येदं खण्डम्' इस अर्थ में 'तस्येदम्' ४.३.१२० से अण् विहित है, यह द्विगु को निमित्त मान कर नहीं हुआ है, अतः इसका लुक् नहीं होगा।

अर्थविशेषेति। जहाँ तद्धितोत्पत्ति के लिए द्विगु किया जाये वहाँ द्विगु को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निमित्त मान कर जायमान तद्धित का लुक् होने पर जिस अर्थ की प्रतीति हो रही है, वही अर्थ यदि अतद्धितहेतुक से भी प्रतीत हो तो वहाँ तद्धित का लुक् कहना चाहिये। जैसे-'पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः' इस अर्थ में तद्धित का निमित्त द्विगु से जायमान 'संस्कृतं भक्षाः' ४.२.१६ के द्वारा विहित अण् का लुक् होने पर जिस अर्थ की प्रतीति हो रही है, उसी अर्थ की प्रतीति 'पञ्चकपाल्यां संस्कृतः' इस विग्रह में अतद्धितनिमित्त से भी हो रही है, अतः यहाँ भी 'पञ्चकपालः' यही रूप होगा, यहीं भी तद्धितलुक् होगा।

अथ क्रियमाणेऽपि तन्निमित्तग्रहणे कथमिदं विज्ञायतेतस्य निमित्तं तन्निमित्तं, तन्निमित्तादिति, आहो स्वित् स निमित्तमस्य सोऽयं तन्निमित्तः, तन्निमित्तादिति? किञ्चातः? यदि विज्ञायते-'तस्य निमित्तं तन्निमित्तं, तन्निमित्तादि'ति,-क्रियमाणेऽपि तन्निमित्त-ग्रहणेऽत्र प्राप्नोति-पञ्चकपालस्येदं खण्डं-पाञ्चकपालमिति। अथ विज्ञायते-'स निमित्तमस्य सोऽयं तन्निमित्तः, तन्निमित्तादि'ति; न दोषो भवति। यथा न दोषस्तथाऽस्तु। 'स निमित्तमस्य सोऽयं तन्निमित्तः, तन्निमित्तादि'ति विज्ञायते। कुत एतत्?

प्रश्नभाष्य—**अथेति**। तन्निमित्तपद का ग्रहण करने पर उससे दो प्रकार का अर्थबोध सम्भव है। १-**तस्य**=तद्धितस्य निमित्तं तन्निमित्तं, तस्मात्, एवं २-**स**='तद्धितोऽर्थद्वारेण निमित्तमस्य सोऽयं तन्निमित्तस्तस्मात्'। यदि यहाँ प्रथमपक्ष यानि षष्ठी तत्पुरुषपक्ष माना जाये तो तन्निमित्तग्रहण करने पर भी 'पञ्चकपाल-स्येदं खण्डं पाञ्चकपालम्' में अण्लुक् प्राप्त होगा। यहाँ तद्धित का निमित्त पञ्चकपाल है, अतः उससे पर में विहित अण् का लुक् होगा। यदि 'स तद्धितो-ऽर्थद्वारेण निमित्तमस्य' ऐसा बहुव्रीहि मानते हैं तथा 'पञ्चकपालस्येदं खण्डं पाञ्चकपालम्' में अर्थ को द्वार बना कर तद्धित निमित्त नहीं है, अतः अण् लुक् प्राप्त नहीं होने से इस पक्ष में कोई दोष नहीं है।

उत्तरपक्षी—**यथा न दोष इति**। जिस पक्ष में कोई दोष नहीं है वह द्वितीय पक्ष 'स=तद्धितोऽर्थद्वारेण निमित्तमस्य सोऽयं तन्निमित्तस्तस्मात्' ही मान लीजिये।

यदयमाह—'अर्थविशेषाऽसम्प्रत्यये ऽतन्निमित्तादपी'ति। तत्तर्हि निमित्तग्रहणं कर्त्तव्यम्? न कर्त्तव्यम्। द्विगोरिति नैषा पञ्चमी। का तर्हि? सम्बन्धे षष्ठी-द्विगोस्तद्धितस्य लुग्भवतीति। किञ्च द्विगोस्तद्धितः? निमित्तम्। यस्मिन् द्विगुरित्येतद् भवति। कस्मिँश्चैतद्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भवति? प्रत्यये। इदन्तर्हि वक्तव्यम्- 'अर्थविशेषाऽसम्प्रत्ययेऽतन्निमित्तादपी'ति।

द्वितीय पक्ष कैसे निर्दुष्ट?, इसे स्पष्ट करते हैं—**यदयमिति**। जहाँ तद्धितोत्पत्ति के लिए द्विगु किया जाये वहाँ द्विगु को निमित्त मान कर जायमान तद्धित का लुक् होने पर जिस अर्थ की प्रतीति हो रही है, वही अर्थ यदि अतद्धितहेतुक से भी प्रतीत हो तो वहाँ तद्धित का लुक् कहना चाहिये।

पूर्वपक्षी आचार्य—**तत्तर्हीति**। 'द्विगोर्लुकि तन्निमित्तग्रहणम्' वार्तिक में निमित्त पद पढा है, क्या उसे पढना चाहिये?

उत्तरपक्षी आचार्य—**न कर्तव्यमिति**। उस निमित्तग्रहण को करने की आवश्यकता नहीं है। यदि वह निमित्त पद पढा नहीं जायेगा तो पद के अभाव में निमित्त अर्थ का लाभ कैसे होगा?, इसे स्पष्ट करते हैं-**द्विगोरितीति**। 'द्विगोर्लुगनपत्ये' ४.१.८८ सूत्र में द्विगोः' यह पञ्चम्यन्त पद नहीं है, अपि तु षष्ठ्यन्त पद है। यहाँ सम्बन्ध में षष्ठी है, अतः 'द्विगुसम्बन्धी तद्धित का लुक् हो' ऐसा कहने से अन्तरङ्गत्वात् निमित्तनिमित्तिभावलक्षण सम्बन्ध लिया जायेगा, पौर्वापर्यलक्षण सम्बन्ध नहीं, अर्थात् 'इस के पर रहते द्विगु समास हो'।

पूर्वपक्षी—**कस्मिँश्चैतदिति**। किसके पर रहते द्विगु हो?

उत्तरपक्षी—**प्रत्यय इति**। 'प्रत्यय के पर रहते द्विगु हो' ऐसा कहने से प्रत्यय का निमित्त द्विगु होगा, अतः 'द्विगोः' इस सम्बन्धषष्ठी से निमित्त अर्थ की उपलब्धि हो जा रही है, उसके लिए निमित्त पद का ग्रहण व्यर्थ है।

पूर्वपक्षी—**इदन्तर्हीति**। तो क्या 'अर्थविशेषाऽसम्प्रत्यये तन्निमित्तादपि' यह वचन पढा जाना चाहिये?

एतच्च न वक्तव्यं-इहास्माभिस्त्रैशब्द्यं साध्यं-पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः। पञ्चकपाल्यां संस्कृतः। पञ्चकपालः, दशकपाल इति। तत्र द्वयोः शब्दयोः समानार्थयोरेकेन विग्रहोऽपरस्माद् उत्पत्तिर्भविष्यत्यव्यविकन्यायेन। तद्यथा 'अवेर्मांस'मिति विगृह्य-'अविकशब्दादुत्पत्तिर्भवति- 'आविक'मिति। एवं-'पञ्चसु कपालेषु संस्कृत' इति विगृह्य 'पञ्चकपाल' इति भविष्यति। 'पञ्चकपाल्यां संस्कृत' इति विगृह्य वाक्यमेव भविष्यति। तत्त्रैशब्द्यं चेह साध्यं, तच्चैवं सति सिद्धम्भवति।। द्विगोर्लुगपत्ये।।

खण्डनभाष्य—**एतच्च नेति**। यह वचन नहीं कहना चाहिये। यहाँ हम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लोगों का साध्य त्रैशब्द्य है-'त्रयाणां शब्दानां समाहारस्त्रिशब्दं, त्रिशब्दस्य भावस्त्रैशब्द्यम्' यहाँ 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' ५.१.१२४ से ष्यञ् प्रत्यय है। 'पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः' प्रथम है, तथा 'पञ्चानां कपालानां समाहारः पञ्चकपाली' ऐसा समाहारद्वन्द्व करके 'पञ्चकपाल्यां संस्कृतः' द्वितीय वाक्य है। प्रथम एवं द्वितीय यह दोनों ही वाक्य समानार्थक हैं। जब दो वाक्य एक ही अर्थ में होते हैं तब अव्यविकन्याय से एक वाक्य से विग्रह दिखाते हैं तथा दूसरे से प्रत्ययोत्पत्ति करते हैं। यहाँ भाष्यकार ने अव्यविकन्याय से समाधान किया है। अवि और अविक यह दोनों पद समानार्थक होने से पशुविशेष=भेंड के वाचक होने से समानार्थक हैं, अतः जैसे 'अवेर्मांसम्' ऐसा अविपद के साथ **विगृह्य**=विग्रह करके (यहाँ 'परावरयोगे च' ३.४.२० से क्त्वा प्रत्यय है) अवि पद का समानार्थक अविक पद से विकार अर्थ में 'तस्य विकारः' ४.३.१३४ से अण् प्रत्यय होता है, अवि पद से नहीं। वैसे ही 'पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः' ऐसा विग्रह कर के 'पञ्चकपाली' पद से अण् हो कर उसका लुक् होगा तथा 'पञ्चकपालः' यही रूप रहेगा। पञ्चकपाल पद के पुंस्त्व में शक्त होने से 'द्विगोः' ४.१.२१ से विहित ङीप् की स्वतः निवृत्ति हो जायेगी। एवं 'पञ्चकपाल्यां संस्कृतः' ऐसा विग्रह करके 'पञ्चकपाली' पद से अण् प्रत्यय नहीं होगा, अतः यह वाक्य ही रहेगा। इस तरह हम लोगों द्वारा जो त्रैशब्द्य यहाँ पर साध्य था, वह इस तरह सिद्ध हो गया। अनभिधानात् पञ्चकपाली शब्द से 'पञ्चकपाल्यां संस्कृतः' इस विग्रह में तद्धितोत्पत्ति नहीं है। मूल में 'अव्यविकन्यायेन' ऐसा लिखा है। कहीं पर 'अविरविकन्यायेन' ऐसा भी लिखा है तथा वह उचित भी है। यदि 'अविः' इस विभक्त्यन्त का 'अवि' इतना अनुकरण कर लेंगे तो 'अव्यविक' भी साधु हो जायेगा। अनुकार्य और अनुकार्य और अनुकरण में भेदविवक्षा मान कर अनुकरण की प्रातिपदिकसंज्ञा, सुबुत्पत्ति होने के पक्ष में द्वन्द्वसमासनिमित्तक प्रातिपदिक का अवयव सुप् का लुक् हो कर अव्यविक भी होगा।{ **द्विगोर्लुगनपत्ये**}।

गोत्रे लुगचि ४.१.८९

*** गोत्रेऽलुगचीति चेदितरेतराश्रयत्वादप्रसिद्धिः * गोत्रेऽलुगची'ति चेदितरेतराश्रयत्वादप्रसिद्धिः। केतरेतराश्रयता? अलुङ्निमित्तोऽजादिरजादिनिमित्तश्चाऽलुक्तदेतदितरेतराश्रयं भवति। इतरेतराश्रयाणि च न प्रकल्पन्ते * विप्रतिषेधात्तु लुकश्छविधानात् * विप्रतिषेधात्तु लुकश्छो भविष्यति। लुकोऽवकाशः,-गर्गाः। वत्साः। बिदाः। उर्वाः। छस्या-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वकाशः- शालीयो मालीयः। गार्गीयो वात्सीयः। इहोभयं प्राप्नोति- गर्गाणां छात्रा गार्गीयाः। वात्सीयाः। छो भवति विप्रतिषेधेन।

सूत्रार्थ—'अजादि प्राग्दीव्यतीय विवक्षित होने पर गोत्र प्रत्यय का अलुक् हो'। 'यस्कादिभ्यो गोत्रे' २.४.६३ के प्रकरण में प्राप्त लुक् का विषयविशेष में यह अपवादसूत्र है। उत्तरसूत्र 'यूनि लुक्' ४.१.६० में कृत्रिम युवा का ग्रहण है, अतः यहाँ गोत्रशब्द से पारिभाषिक शास्त्रीय गोत्र ही लेना चाहिये।

गोत्रेऽलुगचीति चेदिति। 'गोत्रेऽलुगचि' इस सूत्रन्यास में इतरेतराश्रय दोष है।

इतरेतराश्रय क्या है? इसे स्पष्ट करते हैं—**अलुङ्निमित्त इति**। 'अचि' इस सप्तम्यन्त पद को निमित्तसप्तमी मान कर पूर्वपक्षी आचार्य अन्योऽन्याश्रय दे रहे हैं। यदि आकृतिपक्ष मान कर विषयसप्तमी का आश्रयण किया जाये तो यह दोष नहीं होगा। अथ च 'गोत्रे लुगचि' ऐसा सूत्रन्यासपक्ष में अन्योऽन्याश्रय दिया जा रहा है, परन्तु 'गोत्रे लुक्' ऐसा सूत्र पढ कर 'हलि न' ऐसा निषेध-वचन पढा जाये तब भी अन्योऽन्याश्रय नहीं होगा। यहाँ अन्योऽन्याश्रय इस प्रकार है-'गर्गाणां छात्राः' इस विग्रह में अलुङ्निमित्तक प्राग्दीव्यतीय अर्थ की विवक्षा में 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ से छ प्रत्यय है, यहाँ छ प्रत्यय का निमित्त अलुक् हो रहा है, अलुक् के अभावपक्ष में छ प्रत्यय भी नहीं हो सकता है। एवं छ प्रत्यय हो जाने पर छ को ईयादेश के अनन्तर अलुक् होगा, अतः अलुक् अच् के निमित्त का आश्रयण कर रहा है, अतः अन्योऽन्याश्रय हुआ। इतरेतराश्रय कार्य नहीं होते हैं। इस इतरेतराश्रय का वारण करते हैं-**विप्रतिषेधात्त्विति**। विप्रतिषेध के द्वारा लुक् को बाध कर छ प्रत्यय होगा।

विप्रतिषेध को स्पष्ट कर रहे हैं—**लुकोऽवकाश इति**। 'गर्गस्य गोत्रापत्यं, वत्सस्य गोत्रापत्यम्, बिदस्य गोत्रापत्यम्, उर्वस्य गोत्रापत्यम्' इस विग्रह में सर्वत्र 'गर्गादिभ्यो यञ्' ४.१.१०५ से यञ् प्रत्यय है तथा बहुवचन में 'यञञोश्च' २.४.६४ से लुक् है, अतः 'गर्गाः, वत्साः, बिदाः, उर्वाः' में लुक् चरितार्थ है। एवं 'गार्ग्यस्याऽयं छात्रः' इस एकवचनान्तप्रकृति से छ प्रत्यय हो कर 'गार्गीयः, शालीयः, मालीयः, वात्सीयः' में 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ चरितार्थ है। 'गर्गाणां छात्राः, वत्सानां छात्राः' इस विग्रह में लुक् और छ दोनों की एककालावच्छेदेन प्रवृत्ति हो रही है। दोनों का समान बल होने से विप्रतिषेध के द्वारा पर होने से 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ होगा-गार्गीयाः, वात्सीयाः'।

नैष युक्तो विप्रतिषेधः—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भूम्नीति च लुक् प्राप्तो बाह्ये चाऽर्थे विधीयतेऽजादिः ।
बहिरङ्गमन्तरङ्गाद् विप्रतिषेधादयुक्तं स्यात् ।।

भूम्नि प्राप्तस्य लुको यदजादौ तद्धिते लुकं शास्ति ।
एतद् ब्रवीति कुर्वन्समानकालावलुग्लुक्च ।।

यदयं भूम्नि प्राप्तस्य लुकोऽजादौ तद्धिते लुकं शास्ति तज्ज्ञापयत्याचार्यः-'समानकालावेतावलुग्लुका'विति ।

इतर आचार्य—**नैष युक्त इति**। यह विप्रतिषेध उचित नहीं है। **भूम्नीति चेति**। **भूम्नि**=प्रत्ययार्थ बहुवचनमात्र की अपेक्षा करने से लुक् पूर्वकालप्राप्तिक अन्तरङ्ग है, उसकी अपेक्षा बाह्य प्राग्दीव्यतीय अर्थ की अपेक्षा करने से अजादि प्रत्यय बहिरङ्ग है। अन्तरङ्ग की कर्तव्यता में बहिरङ्ग के असिद्ध होने से अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग का तुल्य काल नहीं होता है, अतः लुक् और छ का परस्पर समान बल नहीं होने से विप्रतिषेध अयुक्त है।

भूम्नि प्राप्तस्य लुक इति। बहुवचन में यदि छ प्रत्यय की उत्पत्ति से पूर्व लुक् कर लेंगे तो जैसे मृत्यु के पश्चात् मृत का पुनरुज्जीवन सम्भव नहीं है वैसे जात लुक् का वारण भी नहीं हो सकेगा। ऐसी परिस्थिति में अलुग्विधान व्यर्थ होगा। वह इस स्थिति में अलुग्विधान व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा-'पहले लुक् प्राप्त होगा', अतः सापेक्ष और अन्तरङ्ग होने से अलुक् के द्वारा लुक् का विप्रतिषेध उपपन्न होता है।

यदि वा लुकः प्रसङ्गे भवत्यलुक्छस्तथा प्रसिद्धोऽस्य **यदि वा लुकः प्रसङ्गे लुग्भवति तथाऽस्य च्छः प्रसिद्धो भवति। 'पूर्वं ह्यपवादा अभिनिविशन्ते पश्चादुत्सर्गाः'।**

इस विषय पर अन्य पक्ष भी बता रहे हैं—**यदि वेति**। यदि **वा**=अथ वा लुक् की अवश्यप्राप्ति होने पर अलुक् कहा गया, लुक् और अलुक् दोनों एकत्र सम्भव नहीं है, अतः माठरपरिवेषणन्याय के द्वारा अलुक् से लुक् का बाध होगा। लुक् सामान्यशास्त्र है तथा अलुक् विशेषशास्त्र है, अतः लुक् का अलुक् अपवाद हुआ, अपवाद के विषय को छोड कर उत्सर्गशास्त्र की प्रवृत्ति होती है। अजादिनिमित्तक अलुक् है। बलवान् होने से अलुक् का निमित्त अजादि प्रत्यय हो जायेगा। **पूर्वं ह्यपवादा इति**। पहले अपवादशास्त्र की प्रवृत्ति होती है तथा उसके बाद उत्सर्गशास्त्र की प्रवृत्ति होती है।

लुग्वाऽलुकः प्रसङ्गं प्रतीक्षते छेऽलुगऽस्य तथा ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लुग्वा पुनरलुकः प्रसङ्गं यदि प्रतीक्षते तथाऽस्य च्छेऽलुक् सिद्धो भवति। 'प्रकल्प्य वाऽपवादविषयं तत उत्सर्गोऽभिनिविशत' इति।

इसी विषय को दूसरे पक्ष में कहते हैं—**लुग्वाऽलुक इति**। अथ वा लुक् का अपवाद अलुक् है, अतः अलुक् की प्राप्ति की प्रतीक्षा लुक् करेगा। तब छ प्रत्यय पर में रहते अलुक् सिद्ध हो जायेगा। इस विषय को स्पष्ट करते हैं-**प्रकल्प्येति**। अपवाद के विषय को छोड कर उत्सर्गशास्त्र की प्रवृत्ति होती है। यदि उत्सर्गशास्त्र की प्रवृत्ति अपवाद के विषय में भी होगी तो अपवाद निर्विषय हो जायेगा। यहाँ भाष्यकार ने 'पूर्वं ह्यपवादा अभिनिविशन्ते पश्चादुत्सर्गाः' तथा 'प्रकल्प्य वाऽपवादविषयं तत उत्सर्गोऽभिनिविशते' यह दो न्याय कहा है। प्रथमन्याय लक्षणैकचक्षुष्क विषय है, तथा द्वितीयन्याय लक्ष्यैकचक्षुष्कविषय है। प्रथमन्याय से लक्षणैकचक्षुष्क अपवादशास्त्रकृत लक्ष्यसंस्कारज्ञान के अनन्तर उत्सर्गशास्त्र के द्वारा स्वलक्ष्यसंस्कार का ज्ञान करता है। परन्तु द्वितीयन्याय से लक्ष्यैकचक्षुष्क को अपवाद-विषय का परिहार के साथ ही उत्सर्गशास्त्र की स्वलक्ष्यसंस्कारकता का ज्ञान होता है। अर्थात् उत्सर्गशास्त्र का विषयज्ञान से पूर्व अपवादशास्त्र का विषयज्ञान लक्ष्यै-कचक्षुष्क को होता है। इस तरह लुक् के द्वारा अलुग्विषय की पर्यालोचना से पूर्व ही छ प्रत्यय का ज्ञान हो जायेगा। इस तरह भाष्य में तीन तरह का समाधान करके भाष्यकार ने 'अचि' को विषयसप्तमी होने का ध्वनन किया है। 'अन्योऽन्याश्रय विषयसप्तमी में ही होता है, परसप्तमी में नहीं' यह मैं अभी-अभी अन्योऽन्याश्रयप्रकरण का आरम्भ करते समय कह आया हूँ।

*** गोत्रस्य बहुषु लोपिनो बहुवचनान्तस्य प्रवृत्तौ द्व्येकयोरलुक् * गोत्रस्य बहुषु लोपिनो बहुवचनान्तस्य प्रवृत्तौ द्व्येकयोरलुग्वक्तव्यः। बिदानामपत्यं माणवको बैदः। बैदौ। किमर्थमिदं-नाऽचीत्येवा-ऽलुक्सिद्धः? 'अची'त्युच्यते, न चाऽत्राऽजादिं पश्यामः। प्रत्यय-लक्षणेन।**

गोत्रस्य बहुष्विति। गोत्र अर्थ में विहित प्रत्यय का **बहुषु लोपिनः**='यञञोश्च' २.४.६४ के द्वारा बहुत्व अर्थ में विधीयमान लोप को, **बहुवचनान्तस्य**=यदि अर्थान्तर युवा अर्थ में जब संक्रान्त हो, गोत्रप्रत्ययान्त से जब युवा अर्थ में प्रत्यय किया जाये तब उसके लोप की कर्त्तव्यता में एकवचन और द्विवचन का लोप कहना चाहिये। अर्थात् दो युवा अर्थ में अथ वा एक युवा अर्थ में यदि प्रत्यय उत्पन्न हो तो उसका अलुक् कहना चाहिये। जैसे-बिदस्य गोत्रापत्या-नीति बैदाः' में। यहाँ 'अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्' सूत्र के द्वारा बिदशब्द से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अञ् प्रत्यय, 'यञञोश्च' २.४.६४ से अञ् का लुक् है। पुनः अञ्लुगन्त बिदशब्द से 'बिदानां युवाऽपत्यं माणवको बैदः, बिदानां युवाऽपत्ये माणवकौ बैदौ' यहाँ 'अत इञ्' ४.१.९५ से युवाऽपत्य अर्थ में इञ् प्रत्यय है तथा 'ण्यक्षत्रियार्षञितो लुगणिञोः' २.४.५८ से इञ् का लुक् है। यहाँ बिद प्रातिपदिक से बहुत्व अर्थ में अञ् उपन्न है, उसका लुक् प्राप्त होने पर 'गोत्रस्य बहुषु लोपिनो बहुवचनान्तस्य प्रवृत्तौ द्व्येकयोरलुग्वक्तव्यः' वार्तिक से निषेध किया है।

पूर्वपक्षी—**किमर्थमिदमिति**। 'गोत्रे लुगचि' ४.१.८९ सूत्र में 'अचि' पढा गया है। 'बिद+अञ्+इञ्' इस स्थिति में अजादि पर रहते ही अलुक् प्राप्त है, पृथक् अलुग्विधान क्यों किया गया है?

अन्य आचार्य—**अचीत्युच्यत इति**। अजादि पर रहते अलुक् कहा जा रहा है। 'बैदः, बैदौ' में 'ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः' २.४.५८ से इञ् लुक् है, अतः हम अजादि नहीं देख रहे हैं, फिर अञ् प्रत्यय का अलुक् कैसे होगा?

इतर आचार्य—**प्रत्ययलक्षणेनेति**। प्रत्यय का लुक् होने पर 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' १.१.६२ से अजादि पर में हो जायेगा।

'वर्णाश्रये नास्ति प्रत्ययलक्षणम्' * एकवचनद्विवचनान्तस्य प्रवृत्तौ बहुषु लोपो यूनि *** एकवचनद्वि- वचनान्तस्य प्रवृत्तौ बहुषु लोपो यूनि वक्तव्यः। बैदस्याऽपत्यं बहवो माणवका-बिदाः। बैदयोर्वा बिदाः। 'अञ्यो बहुषु यञ्यो बहुषु' इत्युच्यमानो लुङ्न प्राप्नोति। मा भूदेवम्-'अञ्यो बहुषु यञ्यो बहुष्वि'ति, अञन्तं यद् बहुषु यञन्तं यद् बहुष्वि'त्येवं भविष्यति। नैवं शक्यम्-इह हि दोषः स्यात्- 'काश्यपप्रतिकृतयः काश्यपा' इति।**

उत्तरपक्षी आचार्य—**वर्णाश्रय इति**। वर्ण को आश्रय मान कर होने वाले कार्य की कर्त्तव्यता में प्रत्ययलक्षण नहीं होता है, अतः अच् पर में नहीं होने से अप्राप्त अलुक् का विधान किया गया है। **एकवचनद्विवचनेति**। एकवचनान्त और द्विवचनान्त का **'बहुषु प्रवृत्तौ'**=बहुवचन में संक्रान्त होने पर युवा अर्थ में विहित प्रत्यय का लुक् कहना चाहिये। जैसे एकवचनान्त 'बैदस्याऽपत्यं बहवो माणवका इति बिदाः,' में 'अत इञ्' ४.१.९५ से युवाऽपत्य अर्थ में विहित इञ् का लुक् हो गया। एवं द्विवचनान्त से- 'बैदयोरपत्यं बहवो माणवका इति बिदाः' यहाँ पर भी युवाऽपत्य अर्थ में विहित इञ् का लुक् है। यहाँ पर 'यञञोश्च' २.४.६४ से लुक् प्राप्त नहीं था। 'यञ् जो बहुत्व अर्थ में हो, अञ् जो बहुत्व अर्थ में हो' ऐसा कहने से यहाँ 'बैदस्य, बैदयोः' यञ् और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अञ् क्रमशः एकत्व और द्वित्व अर्थ में है।

अन्य आचार्य—**मा भूदेवमिति**। 'अञ् जो बहुत्व अर्थ में हो, यञ् जो बहुत्व अर्थ में हो' ऐसा कहने से 'बैदस्य, बिदयोर्वाऽपत्यं बहवो माणवकाः' में लुक् प्राप्त नहीं है, 'यञन्त जो बहुवचन में हो, अञन्त जो बहुवचन में हो' ऐसा कहने से इञ् प्रत्यय का लुक् होने पर 'अञन्त बहुसंख्यक युवा अर्थ में शक्त है', अतः 'यञञोश्च' २.४.६४ से ही लुक् हो जायेगा, इसके लिए पृथक् वचन करने की आवश्यकता नहीं है।

'अञन्तं यद् बहुषु, यञन्तं यद् बहुषु' की अतिव्याप्ति दिखाते हैं—**नैवं शक्यमिति**। इस तरह का अर्थ मानने में 'काश्यपप्रतिकृतयः काश्यपाः' में दोष होगा। 'कश्यपस्याऽपत्यं काश्यपाः' में 'अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्' ४.१.१०४ बिदादिगणपठित होने से कश्यपशब्द से अञ् प्रत्यय है। इसके अनन्तर जब एक-एक काश्यप की बहुत सी प्रवृतियाँ विवक्षित होंगी तब 'इवे प्रतिकृतौ' ५.३.९६ से कन् प्रत्यय तथा 'देवपथादिभ्यश्च' ५.३.१०० से कन् प्रत्यय का लुप् होगा। चूँकि वचन अभिधेयगत है, अतः 'हरीतक्यादीनां लिङ्गमेव प्रकृतिवत्' (म.भा.४.३.१६७) इस भाष्यवचन से युक्तवद्भाव के द्वारा लिङ्ग ही होगा। 'अञन्त बहुवचन को लुक् हो' ऐसा कहने से 'काश्यपप्रतिकृतयः काश्यपाः' में अञ् के लुक् की अतिव्याप्ति होगी। अथ वा यदि एकशेष किया जाये तब भी अञन्त के प्रकृतिबहुत्व में शक्त होने पर 'काश्यपाः' में लुक् का अतिप्रसङ्ग होगा।

नैष दोषः। यत्तावदुच्यते-'गोत्रस्य बहुषु लोपिनो बहुवचनान्तस्य प्रवृत्तौ द्व्येकयोरलुग्वक्तव्य' इति। न वक्तव्यः। 'अची'त्येवाऽलुक्सिद्धः। 'अची'त्युच्यते, न चात्राजादिं पश्यामः। प्रत्ययलक्षणेन। ननु चोक्तं-'वर्णाश्रये नास्ति प्रत्ययलक्षणमि'ति। यदि वा कानिचिद् वर्णाश्रयाण्यपि प्रत्ययलक्षणेन भवन्ति तथा चेदमपि भविष्यति। अथ वा विशेषेणाऽलुकमुक्त्वा 'हलि ने'ति वक्ष्यामि। यद्यविशेषेणाऽलुकमुक्त्वा 'हलि ने'त्युच्यते,-बिदानामपत्यं बहवो माणवका बिदाः,-अत्राऽप्यलुक्प्राप्नोति।

उत्तरपक्षी आचार्य पूर्वोक्त दोषों का उद्धार करता है—**नैष दोष इति**। यह कोई दोष नहीं है। आप ने 'गोत्रस्य बहुषु लोपिनो बहुवचनान्तस्य प्रवृत्तौ द्व्येकयोरलुग्वक्तव्यः' कहा था, इसकी आवश्यकता नहीं है। 'बैदः, बैदौ' में 'गोत्रेऽलुगचि' ४.१.८९ में 'अचि' कहा है, तन्निमित्तक ही अलुक् हो जायेगा। यहाँ आप ने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहा था 'लुक् के द्वारा अजादि का अदर्शन है'। प्रत्ययलक्षणपरिभाषा के द्वारा अजादिपरकत्व सम्भव हो जायेगा। पुनश्च प्रत्ययलक्षण को वर्णाश्रय में अभाव बताया था, यह भी दोष नहीं रहेगा। यदि प्रत्ययलक्षण के द्वारा वर्ण को आश्रय मान कर होने वाले कुछ कार्य होते हैं तो यह भी हो जायेगा। जैसे-तृह हिंसायाम् धा.पा.१४५६ धातु से लुङ्लकार तिप् पर रहते 'अतृणेट्' में हलादि पित् सार्वधातुक पर रहते 'तृणह इम्' ७.३.९२ से विधीयमान इमागम सार्वधातुक प्रत्यय के लुप्त होने पर भी होता है वैसे-'बैदः, बैदौ' में भी अच् के लुप्त होने पर भी प्रत्ययलक्षण के द्वारा अलुक् हो जायेगा।

'बैदः, बैदौ' में अलुक्सिद्धि के लिए अन्य पक्ष देते हैं—**अथ वेति**। अथ वा 'गोत्रेऽलुगचि' ४.१.८९ सूत्र पढ कर सामान्यरूप से हम अलुक् का विधान करेंगे। इसके बाद 'हलि न' ऐसा निषेधवचन पढेंगे। इससे एकत्व, द्वित्व में भी 'बैदः, बैदौ' में अलुक् सिद्ध हो जायेगा। 'हलि न' इस निषेधवचन से 'गर्गेभ्य आगतं गर्गरूप्यम्, गर्गमयम्' में हलादि पर रहते अलुक् नहीं है।

आक्षेपक आचार्य सामान्यरूप से अलुग्विधान की अतिव्याप्ति देते हैं-**यद्यविशेषेणेति**। सामान्यरूप से अलुग्विधान कर 'हलि न' ऐसा निषेधवचन पढने से 'बिदानामपत्यं बहवो माणवका इति बिदाः' में भी प्राग्दीव्यतीय अर्थ के विवक्षित होने से अलुक् प्राप्त होगा।

अस्तु। पुनरस्य युवबहुत्वे वर्तमानस्य लुग्भविष्यति। पुनरलुक्कस्मान्न भवति? समर्थानां प्रथमस्य गोत्रप्रत्ययान्तस्याऽलुगुच्यते, न चैतत्समर्थानां प्रथमं गोत्रप्रत्ययान्तम्। किन्तर्हि? द्वितीयमर्थमुपसङ्क्रान्तम्। अवश्यं चैतदेवं विज्ञेयम्-अत्रिभरद्वाजिका, वशिष्ठकश्यपिका, भृग्वङ्गिरसिका, कुत्सकुशिकिके'त्येवमर्थम् * गर्गभार्गविकाग्रहणं वा नियमार्थम् * अथ वा गर्गभार्गविकाग्रहणं कर्त्तव्यं तन्नियमार्थं भविष्यति-'एतस्यैव गोप्रत्ययान्तस्य द्वितीयमर्थम् उपसङ्क्रान्तस्याऽलुग्भवति, नाऽन्यस्ये'ति।

उत्तरपक्षी आचार्य—**अस्त्विति**। 'बिदाः' में युवबहुत्व में वर्तमान का लुक् हो जायेगा। लुग्विधि में युवप्रत्ययमात्र गृहीत है, अतः युवबहुत्व में भी लुक् हो जायेगा।

पूर्वपक्षी—**पुनरलुक्कस्मान्नेति**। यहाँ अलुक् क्यों नहीं होता है? समर्थों का प्रथम गोत्रप्रत्ययान्त का अलुक् कहा जा रहा है। 'बिदानामपत्यं बहवो माणवकाः' यह समर्थों का प्रथम गोत्रप्रत्ययान्त नहीं है, अतः उक्त विग्रह में 'बिदाः' में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अलुक् नहीं होता है। 'समर्थानां प्रथमाद्वा' ४.१.८२ सूत्र से 'प्रथमात्' पद का अनुवर्तन हो कर अर्थवशात् 'प्रथमस्य' ऐसा हो गया है। प्रथमार्थ में शक्त होने से इसका प्राथम्य है, प्रथम उत्पन्न होने से नहीं, अतः जिस अर्थ में प्रत्यय उत्पन्न है, उस अर्थ में विद्यमान का ही अलुक् होगा। परन्तु यदि गोत्रप्रत्यय द्वितीयार्थ में शक्त होगा तब अलुक् नहीं हो सकेगा। 'बिदानामपत्यं बहवो माणवका बिदाः' यहाँ पर द्वितीय अर्थ में शक्त है, अर्थात् प्रथम प्रत्यय उत्पन्न हो जाने के बाद यञन्त से पुनः युवापत्यार्थक प्रत्यय उत्पन्न होने से 'बिदाः' शब्द द्वितीय अर्थ में सङ्क्रान्त है, अतः यहाँ लुक् हो जायेगा।

समर्थो के प्रथम गोत्रप्रत्ययान्त का अवश्य अलुक् कहना चाहिये। इससे 'अत्रिभरद्वाजिका, वशिष्ठकश्यपिका, भृग्वङ्गिरसिका, कुत्सकुशिकिका' की भी सिद्धि होती है। 'अत्रेरपत्यानि बहूनि' इस अर्थ में अत्रिपद से 'इतश्चानिञः' ४.१.१२२ से ढक्, ढगन्त अत्रेयपद से 'आत्रेयस्य युवापत्यानि बहूनि' इस अर्थ में 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ्, 'ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः' २.४.५८ से इञ् का लुक्, 'अत्रिभृगुकुत्सवशिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च' २.४.६५ सूत्र से ढक् का लुक् होगा। भरद्वाजशब्द से 'अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्' ४.१.१०४ सूत्र के द्वारा अञ्, अञन्त से युवापत्य अर्थ में 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ्, 'ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि-'२.४.५८ से इञ् का लुक्, युवबहुत्व अर्थ में अञ् का भी 'यञञोश्च' २.४.६४ से लुक् हो जायेगा। इससे 'अत्रिभरद्वाजानां मैथुनिका' इस अर्थ में प्राग्दीव्यतीय अर्थविवक्षा में प्रथम को कहा गया अलुक् नहीं हुआ।

वशिष्ठकश्यपिकेति। 'वशिष्ठस्यापत्यानि बहूनि' इस विग्रह में 'ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च' ४.१.११४ से अण्, अण्णन्त से युवापत्य अर्थ में 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ्, 'यञञोश्च' २.४.६४ से इञ् का लुक्, 'अत्रिभृगुकुत्सवशिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च' २.४.६५ से अण् का लुक्, 'अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्' ४.१.१०४ से बिदादिगण मान कर वशिष्ठशब्द से अञ्, अञन्त से युवापत्य अर्थ में 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ्, 'यञञोश्च' २.४.६४ से इञ् का लुक्, 'वशिष्ठकश्यपानां मैथुनिका वशिष्ठकश्यपिका' यहाँ पर 'द्वन्द्वाद् वुन् वैरमैथुनिकयोः' ४.३.१२५ से वुन् प्रत्यय है। प्रथम को अलुक् कहने पर प्राग्दीव्यतीयविवक्षा में यहाँ द्वितीय का अलुक् नहीं है। इसी तरह भृगुपद से 'भृगोरपत्यानि बहूनि' इस अर्थ में 'ऋष्यन्धक- वृष्णिकुरुभ्यश्च' ४.१.११४ से अण्, अण्णन्त से युवापत्य अर्थ में इञ्, 'यञञोश्च' २.४.६४ से इञ् का लुक्, 'अत्रिभृगुकुत्स-'२.४.६५ से अण् का भी लुक्, इसी तरह अङ्गिरस् से भी प्रत्यय समझें। यहाँ भी प्रथम का अलुक् कहने से द्वितीय का अलुक् नहीं हुआ। इसी तरह कुत्सशब्द

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से 'अपत्यानि बहूनि' अर्थ में 'ऋष्यन्धक-'४.१.११४ से अण्, अणन्त से युवापत्य अर्थ में प्राप्त अण् का बाध कर द्व्यज्लक्षण फिन् होगा, इञ् नहीं, अतः यहाँ युवविवक्षा नहीं की जा रही है। कुशिकशब्द से 'अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्' ४.१.१०४ से बिदादिगण मान कर अञ्, अञन्त से युवापत्य अर्थ में इञ्, इञ् का 'यञञोश्च' २.४.६४ से लुक्, 'अत्रिभृगु-'२.४.६५ से अण् का भी लुक् है, 'भृग्वङ्गिरसां मैथुनिका' इस अर्थ में 'द्वन्द्वाद् वुन् वैरमैथुनिकयोः' ४.३.१२५ से वुन् है।

प्रथमगोत्रप्रत्यय का अलुक् कहने से द्वितीय का अलुक् नहीं होता है। इसी विषय को इतर पक्ष में कहते हैं-**गर्गभार्गविकेति**। 'न गोपवनादिभ्यः' २.४.६७ गणपाठ में गर्गभार्गविका पद का ग्रहण करेंगे। गर्गभार्गविका में गोत्रप्रत्यय का लुग्निषेध होगा। यह लुग्निषेध नियमार्थक होगा-'द्वितीय गोत्रप्रत्ययान्त का अलुक् हो तो गर्गभार्गविका में ही हो, अन्यत्र नहीं'। इससे 'बिदानामपत्यं बहवो माणवका बिदाः' में युवलक्षण अर्थ में अलुक् नहीं होगा।

यदप्युच्यते-'एकवचनद्विवचनान्तस्य च प्रवृत्तौ बहुषु लोपो यूनि वक्तव्यः। अञ्यो बहुषु यञ्यो बहुष्वित्युच्यमानो लुङ्न प्राप्नोतीति, मा भूदेवमञ्यो बहुषु यञ्यो बहुष्विति, अञन्तं यद् बहुषु यञन्तं यद् बहुष्वित्येवं भविष्यति। ननु चोक्तं-'नैवं शक्यमिह हि दोषः स्यात्-काश्यपप्रतिकृतयः काश्यपा' इति। नैष दोषो-लौकिकस्य तत्र गोत्रस्य ग्रहणं, न चैतल्लौकिकं गोत्रम्।

एवम् आप ने 'एकवचनद्विवचनान्तस्य च प्रवृत्तौ बहुषु लोपो यूनि वक्तव्यः। अञ्यो बहुषु यञ्यो बहुष्वित्युच्यमानो लुङ् न प्राप्नोति' ऐसा कहा था, यह भी नहीं कहिये। 'अञ्यो बहुषु यञ्यो बहुषु' के स्थान पर हम 'अञन्तं यद् बहुषु, यञन्तं यद् बहुषु' ऐसा कहेंगे, इससे लक्ष्य सिद्ध हो जायेगा। इस पक्ष में आप ने 'काश्यपप्रतिकृतयः काश्यपाः' में दोष दिखाया था, वहाँ यह दोष नहीं रहेगा। वहाँ लौकिकगोत्र का ग्रहण है, जब कि यहाँ लौकिकगोत्र न हो कर शास्त्रीयगोत्र है।

यद्यञन्तं यद् बहुषु यञन्तं यद् बहुष्वित्येवमुच्यते,- बिदानामयमपत्यं माणवको बैदो, बैदावत्रापि प्राप्नोति। अलुगत्र लुकं बाधिष्यते, अलुकि च कृते पुनर्लुको निमित्तं नास्तीति कृत्वा पुनर्लुग्न भविष्यति *उक्तं वा* उक्तं वा। किमुक्तम्? 'आपत्यं वा गोत्रम्'। परमप्रकृतेश्चापत्यः। आपत्याज्जीवद्वंश्यात्स्वार्थे द्वितीयो युवसंज्ञः। स चाऽस्त्रियामेकोगोत्रग्रहणाऽनर्थक्यं च बहुवचनलोपिषु च सिद्ध'-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मिति। तत्र 'बिदानामपत्यं माणवक' इति विगृह्य बिदशब्दाद् द्व्येकयोरुत्पत्तिर्भविष्यति-बैदः, बैदौ। 'बैदस्यापत्यं बहवो माणवका' इति विगृह्य बिदशब्दाद् बहुषूत्पत्तिर्भविष्यति-'बिदा' इति,-अविरविकन्यायेन।। गोत्रेऽलुगचि।।८९।।

एवं 'यञन्तं यद् बहुषु, अञन्तं यद् बहुषु' इस पक्ष में 'बिदानामपत्यं माणवको बैदः, बैदौ' में भी लुक् की आपत्ति दिखायी थी, वह दोष भी यहाँ नहीं रहेगा। यहाँ लुक् भी प्राप्त है तथा अलुक् भी प्राप्त है। अलुक् से लुक् का बाध हो जायेगा। अलुक् होने पर पुनः लुक् का निमित्त बहुत्व नहीं है, अतः लुक् नहीं हो सकेगा। **उक्तं वेति**। अथ वा इसके विषय में अभी-अभी कह आया हूँ-'अपत्यं वा गोत्रस्येति'। **अपत्यस्येदमापत्यम्**-पौत्रप्रभृति गोत्रसंज्ञक होता है, अतः **परमप्रकृतेः**=गर्ग आदि से ही अपत्यार्थक प्रत्यय करना चाहिये, अनन्तर अगोत्र और अयुव से नहीं। **अपत्यादिति**। जीवद्वंश्य अपत्य से अर्थात् गर्ग आदि पौत्रप्रभृति से 'जीवति तु वंश्ये युवा' ४.१.१६३ से चतुर्थ आदि में जीवद्वंश्य होने पर जब प्रत्यय करेंगे तब 'यञिञोश्च' ४.१.१०१ इत्यादि के द्वारा द्वितीय प्रत्यय फक् आदि हो कर 'गार्ग्यायणः' इत्यादि रूप होंगे। **स च**= वह द्वितीय युवसंज्ञक स्त्री अर्थ में विहित नहीं है, अतः 'गार्गी' यही रूप होगा। अथ च 'परमप्रकृतेश्चापत्यः' ऐसा कहने से परमप्रकृति गर्ग आदि ही होगा, गार्ग्य आदि नहीं, अतः गोत्र अर्थ में एक ही प्रत्यय हो, अन्य नहीं, इसके लिए द्वितीय प्रत्यय के अप्राप्ति होने पर द्वितीय का निषेधक 'एको गोत्रे' ४.१.९३ सूत्र व्यर्थ है।

अथ च युवबहुत्व होने पर द्वितीय प्रत्यय का लुक् भी युवबहुत्व में ही होगा, अतः 'बिदानामपत्यं बहवो माणवका इति बिदाः', यहीं पर बहुत्व में ही अपत्य प्रत्यय का लुक् होगा, एकवचन, द्विवचन में 'बैदः, बैदौ' में नहीं। 'बिदानामपत्यं माणवकः' ऐसा विग्रह करके बिदशब्द से एकत्व, द्वित्व में तद्धित अण् प्रत्यय का अलुक् हो कर 'बैदः, बैदौ' यही रूप होगा। परन्तु 'बैदस्यापत्यं बहवो माणवकाः' ऐसा विग्रह करके बहुत्व अर्थ में द्वितीय युवापत्यार्थक प्रत्यय के उत्पन्न होने पर उसका लुक् हो कर 'बिदाः' यही बहुवचनान्त रूप होगा। यहाँ 'बैदस्याऽपत्यं बहवो माणवकाः' ऐसा विग्रह करके भी अविरविकन्याय से बिदशब्द से ही प्रत्यय होगा, अनभिधानात् बैदशब्द से नहीं। {**गोत्रेऽलुगचि**}।

यूनि लुक् ४.१.९०

*** यूनि लुगचीति चेत्प्रत्ययस्याऽयथेष्टप्रसङ्गः * 'यूनि लुगची'ति चेत्प्रत्य-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यस्याऽथेष्टं प्राप्नोति। अनिष्टे प्रत्ययेऽवस्थिते लुक्। अनिष्टस्य प्रत्ययस्य श्रवणं प्रसज्येत * सिद्धन्त्वविशेषेण लुग्वचनं हलि नेति प्रतिषेधः * सिद्धमेतत्। कथम्? अविशेषेण लुकमुक्त्वा 'हलि ने'ति वक्ष्यामि। सिध्यति। सूत्रं तर्हि भिद्यते। यथान्यासमेवास्तु। ननु चोक्तं-'यूनि लुगचीति चेत्प्रत्ययस्याऽयथेष्टप्रसङ्ग' इति। नैष दोषः। 'अची'ति नैषा परसप्तमी। का तर्हि? विषयसप्तमी-'अजादौ विषय' इति। तत्राऽचि विषये लुकि कृते यो यतः प्रत्ययः प्राप्नोति स ततो भविष्यति।

सूत्रार्थ—'अजादि प्राग्दीव्यतीय प्रत्यय विवक्षित होने पर युवार्थक प्रत्यय का लुक् हो'। जैसे-'ग्लुचुकस्य गोत्रापत्यं पुमान् ग्लुचुकायनिः', 'प्राचामवृद्धात्फिन् बहुलम्' ४.१.१६० से फिन्, फ् को आयन् आदेश, 'ग्लुचुकायनेर्युवापत्यं पुमान्' इस विग्रह में युवापत्यार्थक प्रत्यय 'तस्यापत्यम्' ४.१.९२ से अण् हो कर ग्लौचुकायनः, 'ग्लौचुकायनस्य च्छात्रः' इस विग्रह में 'तस्येदम्' ४.३.१२० की विवक्षा होने पर युवापत्यार्थक अण् प्रत्यय का लुक् हो जाता है।

यूनि लुगचीति। यदि 'यूनि लुक्' सूत्र के स्थान पर 'यूनि लुगचि' ऐसा न्यास किया जाये तो अनिष्ट प्रत्यय पर रहते लुक् प्राप्त होगा, तथा अनिष्ट प्रत्यय का श्रवण होगा।

उत्तरपक्षी—**सिद्धं त्विति**। पूर्व सूत्र से 'अचि' का अनुवर्तन नहीं करेंगे। हम सामान्यरूप से युवार्थक प्रत्यय का लुक् कहेंगे। इससे अच् और हल् पर रहते उभयत्र लुक् प्राप्त होगा। बाद में निषेधवचन पढेंगे-'हलि न'। इससे हलादि प्रत्यय पर रहते युवार्थक प्रत्यय का लुक् नहीं हागा।

पूर्वपक्षी—**सिध्यतीति**। इस तरह का न्यास करने में लक्ष्य तो सिद्ध हा जायेगा, परन्तु सूत्रभेद होगा।

उत्तरपक्षी—**यथान्यासमिति**। यदि आप सूत्रभेद नहीं चाहते हैं तो सूत्र को यथान्यास ही रहने दीजिये। यथान्यासपक्ष में 'गोत्रेऽलुगचि' ४.१.८९ से 'अचि' का अनुवर्तन करके 'यूनि लुगचि' पक्ष में अनिष्ट प्रत्ययों की प्राप्ति दिखायी थी, वह दोष 'अचि' को निमित्तसप्तमी मानने के पक्ष में रहेगा। 'अचि' यह निमित्तसप्तमी नहीं है, अपि तु विषयसप्तमी है, अतः दोष नहीं रहेगा। विषयसप्तमी होने पर अजादिप्रत्यय के विषय में लुक् होने के अनन्तर जिस प्रातिपदिक से जो प्रत्यय प्राप्त है, वह होगा। इससे 'अचि' को निमित्त-सप्तमी मानने के पक्ष में अनिष्ट प्रत्यय के श्रवण की आपत्ति निरस्त हो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गयी। जैसे-'फाण्टाहृतस्यापत्यं पुमान् फाण्टाहृतिः, तस्यापत्यं युवा' इस अर्थ में 'फाण्टाहृतिमिताभ्यां च' ४.१.१५० से युवापत्यार्थ में ण प्रत्यय-फाण्टाहृतः, 'फाण्टाहृतस्यच्छात्राः' इस विग्रह में 'इञश्च' ४.२.११२ से अण् इष्ट है, णान्त होने से अण् की प्राप्ति नहीं हो सकेगी, यही अनिष्ट प्रसङ्ग है। इससे वृद्धलक्षण 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ से छ प्रत्यय प्राप्त होगा तथा छ प्रत्यय पर रहते ण का लुक् होगा, अतः छ के श्रवण की आपत्ति होगी।

कानि पुनरस्य योगस्य प्रयोजनानि? * प्रयोजनं सौवीरगोत्रेभ्यो णठक्छाः *** प्रयोजनं सौवीरगोत्रेभ्यो णठक्छाः।** ण-**फाण्टाहृतेरपत्यं माणवकः-फाण्टाहृतः। फाण्टाहृतस्य यूनश्छात्राः-फाण्टाहृताः।** ण। ठक्-**भागवित्तेरपत्यं माणवको भागवित्तिकः। भागवित्तिकस्य यूनश्छात्रा भागवित्ताः।** ठक्। छ-**तैकायनेरपत्यं माणवकस्तैकायनीयः। तैकायनीयस्य यूनश्छात्रास्तैकायनीयाः।** छ।

प्रश्नभाष्य—**कानि पुनरिति**। 'यूनि लुक्' सूत्र का क्या प्रयोजन है?

उत्तरभाष्य—**प्रयोजनमिति**। 'सौवीरगोत्र से पर में ण, ठक् और छ प्रत्यय हो' यही प्रयोजन है। जैसे-**ण**-फाण्टाहृतस्यापत्यं युवा फाण्टाहृतिः में 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ्, 'फाण्टाहृतेरपत्यं माणवकः' इस अर्थ में 'फाण्टाहृतिमिमताभ्यां च' ४.१.१५० से ण प्रत्यय हो कर 'फाण्टाहृतः' 'फाण्टाहृतस्य यूनश्छात्राः' इस अर्थ में 'तस्येदम्' से अण् हो कर 'फाण्टाहृताः' में णलुक् हो, यह सूत्र का प्रयोजन है। **ठक्**-'भागवित्तस्यापत्यं भागवित्तिः' में 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ्, पुनः इञन्त भागवित्ति से 'भागवित्तेरपत्यं युवा' इस अर्थ में 'वृद्धाठ्ठक् सौवीरेषु बहुलम्' ४.१.१४८ से ठक् प्रत्यय हो कर भागवित्तिकः, पुनः ठगन्त भागवित्तिक पद से 'तस्य यूनश्छात्राः' इस अर्थ में 'इञश्च' ४.२.११२ से अण् प्रत्यय की विवक्षा में ठक् प्रत्यय का लुक् होता है-भागवित्ताः। एवं **छ**-'तिकस्यापत्यं पुमान् तैकायनिः, में 'तिकादिभ्यः फिञ्' ४.१.१५४ फिञ्, 'तैकायनेरपत्यं माणवकः' इस अर्थ में 'फेश्छ च' ४.१.१४९ से युवापत्यार्थक छ प्रत्यय हो कर तैकायनीः, 'तैकायनीयस्य यूनश्छात्राः' इस अर्थ में 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ से वृद्धलक्षण छ की विवक्षा में युवापत्यार्थक छ प्रत्यय का लुक् है।

***** इञ्यौ सर्वत्र *** इञ्यौ सर्वत्र प्रयोजनम्। औपगवेर्यूनश्छात्रा औपगवीयाः। वृद्धवदतिदेशे सति इञो गोत्र इत्यण्प्राप्नोति। नैष दोषः। प्रत्याख्यायतेऽसावतिदेशः। कथम्पुनर्यानि प्रयोजनानि? तानि ज्ञापकेन सिद्धानि *** यत्खच्छान्तात्तर्हि इञ् प्रयोजनम् *** यत्खच्छान्तात्तर्हि**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इञ् प्रयोजनम्। यत्-श्वशुरस्यापत्यं श्वशुर्यः। श्वशुर्यस्यापत्यं श्वाशुरिः। श्वाशुरेर्यूनश्छात्राः श्वाशुराः। यत्। ख-कुलस्यापत्यं कुलीनः, कुलीनस्यापत्यं कौलीनिः, कौलीनेर्यूनश्छात्राः कौलीनाः। ख। छ-स्वसुरपत्यं स्वस्रीयः, स्वस्रीयस्यापत्यं स्वास्रीयिः, स्वास्रीयेर्यूनश्छात्राः स्वास्रीयाः।

सूत्रारम्भ का अन्यत्र भी प्रयोजन देते हैं—**इञ्ण्याविति**। इञ् और ण्य का सर्वत्र सौवीरगोत्र एवम् असौवीर गोत्र में प्रयोजन है। जैसे-'उपगोरपत्यं पुमान् औपगवः' में 'तस्यापत्यम्' ४.१.९२ से अण्, 'औपगवस्य युवापत्यं पुमानौपगविः, औपगवेर्यूनश्छात्राः' इस अर्थ में वृद्धलक्षण छ प्रत्यय होता है तथा युवार्थक इञ् प्रत्यय का लुक् होता है-औपगवीयाः।

अब यहाँ शङ्का होती है-क्या सूत्र का प्रयोजन इञ् का लुक् है?, यदि हाँ, तो इञ् लुक् होने पर भी वृद्धलक्षण छ सिद्ध होगा, इस आशय से कहते हैं-**वृद्धवदिति**। वृद्धशब्द पूर्वाचार्यों द्वारा गोत्र अर्थ में प्रयुक्त है। यहाँ युवार्थक प्रत्यय का **वृद्धवद्**=गोत्रवत् अतिदेश करने से इञ् लुक् नहीं होने पर अण् प्रत्यय होने लगेगा।

उत्तरपक्षी—**नैष दोष इति**। यहाँ वृद्धवद् अतिदेश होने से इञ् लुक् नहीं होने पर भी अण् प्रत्यय की जो प्राप्ति दिखायी थी वह नहीं रहेगी। इस अतिदेश का हम खण्डन कर देंगे, अतः प्राप्ति नहीं होगी।

पूर्वपक्षी—**कथं पुनरिति**। यदि अतिदेश का खण्डन कर देंगे तो अतिदेश के द्वारा सिद्ध होने वाले जो प्रयोजन हैं वे कैसे सिद्ध होंगे? जैसे-'गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः', यहाँ 'गर्गादिभ्यो यञ्' ४.१.१०५ से यञ् है। 'गार्ग्यस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः' यहाँ 'यञिञोश्च' ४.१.१०१ से यञन्त से फक् है। पुनः 'गार्ग्यायणानां समूहः' इस अर्थ में गोत्रलक्षण वुञ् इष्ट है, वह अतिदेश के खण्डन से प्राप्त नहीं हो रहा है?

उत्तरपक्षी—**तानि ज्ञापकेनेति**। यहाँ ज्ञापक के द्वार गोत्रलक्षण वुञ् सिद्ध हो जायेगा। आगे आचार्य 'राजन्याद् वुञ् मनुष्याच्च' (अत्रैव भाष्ये) ऐसा वार्तिक कहेंगे। वहाँ इञ् का लुक् किये विना ही 'औपगवीयाः' में 'वृद्धलक्षण छ प्रत्यय सिद्ध है, इससे 'अपत्याधिकार से अन्यत्र लैकिक गोत्र का ग्रहण होगा' यह ज्ञापन होता है। 'इञश्च' ४.२.११२ में शास्त्रीय गोत्र का ग्रहण होने से इस ज्ञापन से 'इञश्च' ४.२.११२ प्राप्त नहीं होगा।

अब इञ् का अन्य उदाहरण दिखाते हैं—**यत्खच्छान्तादिति**। यत्प्रत्ययान्त,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

खप्रत्ययान्त और छ प्रत्ययान्त से इञ्लुक् होना प्रयोजन है। जैसे यत्-'श्वशुरस्यापत्यं श्वशुर्यः' में 'राजश्वशुराद्यत्' ४.४.१३७ से यत्, 'श्वशुर्यस्यापत्यं युवा श्वाशुरिः' में अदन्तलक्षण इञ् है, एवम् 'आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति' ६.४.१५१ से यलोप है। उणादि को अव्युत्पन्न प्रातिपदिक कहा गया है, अतः 'न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्' 7.३.३ की प्रवृत्ति नहीं हुई, अतः वृद्धिनिषेध और ऐजागम भी नहीं हुआ। 'श्वाशुरेर्यूनश्छात्राः' इस अर्थ में 'तस्येदम्' ४.३.१२० से अण् की विवक्षा में इञ् का लुक् है। ख-कुलस्यापत्यं पुमान् कुलीनः' में 'कुलात्खः' ४.१.१३९ से खप्रत्यय, 'कुलीनस्य युवापत्यं कौलीनिः' में 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ्, पुनः 'कौलीनेर्यूनश्छात्राः' इस विग्रह में 'तस्येदम्' ४.३.१२० से अण् की विवक्षा में इञ् का लोप है। छ-स्वसुरपत्यं स्वस्रीयः, 'स्वसुश्छः' ४.१.१४३ से छ प्रत्यय, 'स्वस्रीयस्य युवापत्यं स्वास्रीयिः' 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ्, 'स्वास्रीयेर्यूनश्छात्राः स्वास्रीयाः' में 'तस्येदम्' ४.३.१२० से अण् प्रत्यय, यहाँ छ से पर में इञ् का लुक् प्रकृत सूत्र से है।

एतान्यपि हि न सन्ति प्रयोजनानि। अत्रापि यूनि-श्वशुर्यः कुलीनः स्वस्रीय इत्येव भवितव्यम्। उक्तमेतद्- 'अणिञोर्लुक्यब्राह्मणगोत्रमात्राद्युवप्रत्ययस्योपसंख्यान'मिति। 'अब्राह्मणगोत्रमात्रा'दित्युच्यते, न चैतदब्राह्मणगोत्रमात्रम्। 'अब्राह्मणगोत्रमात्रा'दिति नायं पर्युदासो-यदन्यद् ब्राह्मणगोत्र- मात्रादिति। किन्तर्हि? प्रसज्यप्रतिषेधोऽयं-ब्राह्मणगोत्रमात्रान्नेति। अवश्यं चैतदेवं विज्ञेयं-मायूरिः, कापोतिः, कापिञ्जलिरित्येवमर्थम्। एवन्तर्हि- *अण्ण्यौ सर्वत्र प्रयोजनम्* अण्ण्यौ सर्वत्र प्रयोजनम्। अण्- ग्लुचुकायनेरपत्यं माणवको ग्लौचुकायनः, ग्लौचुकायनस्य यूनश्छात्रा ग्लौचुकायनाः *ण्यश्च कापिञ्जलाद्यर्थम्* ण्यश्च कापिञ्जलाद्यर्थम्। कापिञ्जलादेरपत्यं माणवकः कापिञ्जलाद्यः, कापिञ्जलाद्यस्य यूनश्छात्राः कापिञ्जलादाः।

अन्य आचार्य—**एतान्यपीति**। 'यूनि लुक्' सूत्र का यह भी प्रयोजन नहीं है। यहाँ युवापत्यार्थक प्रत्यय होने पर भी 'श्वशुर्यः, कुलीनः, स्वस्रीयः' यही रूप होगा। इस वात को कहा भी गया है-**अणिञोर्लुकीति**। यहाँ युवप्रत्यय का अन्य लक्षण से लुक् है, अतः ये भी प्रयोजन नहीं बन सकते हैं। इस विषय में अण् और इञ् का लुक् की विषयता में अब्राह्मणगोत्रमात्र से युवप्रत्यय का लुक् कहा गया है। 'अब्राह्मणगोत्रमात्रात्' पद में नञर्थ पर्युदास नहीं है, अपि तु निषेधार्थक प्रसज्यप्रतिषेध है, अतः 'ब्राह्मणगोत्रमात्रभिन्न ब्राह्मणगोत्रमात्रसदृश'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऐसा अर्थबोध न करके 'ब्राह्मणगोत्रमात्र से लुङ्निषेध हो' यह अर्थ करना चाहिये। प्रसज्यप्रतिषेध मानने में युवप्रत्ययमात्र का लुग्विधान करके ब्राह्मणगोत्र से पर में लुङ्निषेध करेंगे।

'अब्राह्मणगोत्रमात्रात्' में प्रसज्यार्थ नञ् मानने का फल देते हैं-**मायूरिरिति**। **'मयूरस्य**=पक्षिविशेषस्य गोत्रम्' एवं **'कपोतस्य**= पक्षिविशेषस्य गोत्रम्, कपिञ्जलस्य गोत्रम्' इस अर्थ में सर्वत्र 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ्, पुनः इञन्त मायूरिः, कापोतिः, कापिञ्जलिः से 'यञिञोश्च' ४.१.१०१ के द्वारा युवापत्य अर्थ में फक्प्रत्यय हो कर उसका लुक् होता है।

प्रश्नभाष्य—**एवमिति**। यदि 'अब्राह्मणगोत्रमात्रात्' में नञ् को प्रसज्यार्थक मानेंगे तो सर्वत्र अण् और ण्य प्रत्यय का भी लुक् प्राप्त होगा। जैसे अण्-'ग्लुचुकस्य गोत्रापत्यम्' में 'प्राचामवृद्धात्फिन्बहुलम्' ४.१.१६० से फिन्, फिनन्त ग्लुचुकायनि से युवापत्य अर्थ में 'तस्यापत्यम्' ४.१.९२ से अण्-ग्लौचुकायनः। पुनः अण्णन्त से 'ग्लौचुकायनस्य यूनश्छात्राः' इस अर्थ में युवापत्यार्थक अण् प्रत्यय का लुक् होने पर ही अण् होगा, अन्यथा 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ से वृद्धलक्षण छ प्रत्यय की प्रवृत्ति होने लगेगी। ण्यलुक् का प्रयोजन कापिञ्जलादि है। 'कापिञ्जलादस्यापत्यं कापिञ्जलादिः' इस इञन्त से युवापत्यार्थक 'कुर्वादिभ्यो ण्यः' ४.१.१५१ से ण्य प्रत्यय, इस ण्य प्रत्यय के लुक् होने पर ही 'इञश्च' ४.२.११२ से अण् प्रत्यय होगा, अन्यथा वृद्धलक्षण छ प्रत्यय होने लगेगा।

*** प्राग्दीव्यतोऽधिकारे यूनो वृद्धवदतिदेशः * प्राग्दीव्यतोऽधिकारे यूनो वृद्धवदतिदेशः कर्त्तव्यः। 'युवा वृद्धवद् भवती'ति वक्तव्यम्। किम्प्रयोजनम्? गार्ग्यायणानां समूहो गार्ग्यायणकम्। गार्ग्यायणानां किञ्चिद् गार्ग्यायणकम्। गार्ग्यायणो भक्तिरस्य गार्ग्यायणकः- गोत्राश्रयो वुञ् यथा स्यात्। यदि वृद्धवद् अतिदेशः क्रियते-औपगवेर्यूनश्छात्रा औपगवीया इतीञो गोत्र इत्यण्प्राप्नोति।**

मध्यम एकदेशी आचार्य—**प्राग्दीव्यतोऽधीकार इति**। 'प्राग्दीव्यतोऽण्' ४.१.८३ के अधिकार में जो अर्थ कहे गये हैं, उन अर्थों के विवक्षित होने पर युवार्थक प्रत्यय को **वृद्धवत्**=गोत्रवत् अतिदेश कहना चाहिये। इस अतिदेश का प्रयोजन देते हैं-**गार्ग्यायणानामिति**। 'गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः' में 'गर्गादिभ्यो यञ्' ४.१.१०५ से यञ्, यञन्त गार्ग्यशब्द से 'यञिञोश्च' ४.१.१०१ के द्वारा युवापत्य अर्थ में फक्, फगन्त से समूह अर्थ में 'गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजाद् वुञ्' ४.२.३९ के द्वारा वुञ् प्रत्यय हो कर गार्ग्यायणकः, इदमर्थ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में 'गार्ग्यायणानां किं चिद्' ऐसा विग्रह कर के 'गोत्रचरणाद् वुञ्' ४.३.१२६ से वुञ् हो कर गार्ग्यायणकम्, एवं 'गार्ग्यायणी भक्तिरस्य' इस विग्रह में 'सास्य भक्तिः' ४.३.९५ इस अर्थ में 'गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यो बहुलं वुञ्' ४.३.९९ से वुञ् प्रत्यय हो सके इस के लिए प्राग्दीव्यतीय अर्थ की विवक्षा में युवार्थक प्रत्यय को **वृद्धवत्**=गोत्रवत् अतिदेश कहना चाहिये। वृद्धवद् अतिदेश की अतिव्याप्ति दे रहे हैं-**यदि वृद्धवदतिदेश इति**। यदि वृद्धवद् अतिदेश करेंगे तो 'उपगोरपत्यं पुमानौपगवस्तस्य युवापत्यमौपगविस्तस्य यूनश्छात्रा औपगवीयाः' में इञन्त से गोत्र अर्थ में 'इञश्च' ४.२.११२ से अण् प्राप्त होगा।

यदि पुनर्युवा वृद्धवदित्यनेनानुत्पत्तिरतिदिश्येत। कथं पुनर्युवा वृद्धवदित्यनेनानुत्पत्तिः शक्याऽतिदेष्टुम्? वतिनिर्देशोऽयम्। कामचारश्च वतिनिर्देशे वाक्यशेषं समर्थयितुम्। तद्यथा-'उशीनरवन्मद्रेषु यवाः'। 'सन्ति'। 'न सन्ती'ति। मातृवदस्याः कलाः। 'सन्ति'। 'न सन्ती'ति। एवमिहापि-'युवा वृद्धवद्' 'भवति', 'वृद्धवद्' 'न भवती'-ति,-एवं वाक्यशेषं समर्थयिष्यामहे। यथा गोत्रे युवप्रत्ययो न भवत्येवं प्राग्दीव्यतीयोऽधीकारे यून्यपि न भवतीति।

इस दोष का परिहार के लिए कहते हैं-**यदि पुनरिति**। यदि युववृद्धवत् पद से प्रत्यय की अनुत्पत्ति का अतिदेश करेंगे तो वृद्धवत् अतिदेश करने पर भी अण् प्रत्यय नहीं हो सकेगा। अर्थात् जैसे गोत्र अर्थ में युवार्थक प्रत्यय उत्पन्न नहीं होता है, वैसे युवा अर्थ गम्य होने पर भी प्राग्दीव्यतीयविवक्षा में युवार्थक प्रत्यय के उत्पन्न नहीं होने से इञ् प्रत्यय के अभाव में 'इञश्च' ४.२.११२ से अण् नहीं हो सकेगा।

अन्य आचार्य—**कथम्पुनरिति**। 'युवा वृद्धवत् हो' ऐसा कहने से प्रत्यय की अनुत्पत्ति का अतिदेश कैसे कर सकते हैं?

उत्तरपक्षी आचार्य—**वतिनिर्देशोऽयमिति**। 'वृद्धवत्' में वतिनिर्देश है। 'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः' ५.१.११५ से विहित वति प्रत्यय के द्वारा भाव और अभाव उभयविध अर्थों का ग्रहण होता होगा। जैसे 'उशीनरवन्मद्रेषु यवाः' ऐसा कहने से भाव और अभाव दोनों तरह का अर्थबोध होता है-'यदि उशीनरदेश में यव है तो मद्रदेश में भी यव है, यदि उशीनरदेश में यव नहीं है तो मद्रदेश में भी यव नहीं है'। वैसे 'युवा वृद्धवत्' कहने से 'यदि युवा वृद्ध की तरह है तो वृद्ध की तरह होगा, यदि युवा वुद्ध की तरह नहीं है तो वृद्ध की तरह नहीं होगा' ऐसा अर्थ गम्य होगा। वति के द्वारा अभाव अर्थ गम्य होने की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्थिति में प्रत्यय की अनुत्पत्ति गम्य होगी। अर्थात् जैसे गोत्र अर्थ में युवार्थक प्रत्यय नहीं होता है वैसे प्राग्दीव्यतीय अधिकरण में युवा अर्थ वाच्य होने पर भी युवार्थक प्रत्यय न हो, यह अर्थ गम्य होगा।

तद्वक्तव्यम्? यद्यप्येतदुच्यते,-अथ वैतर्हि यूनि लुगित्येतन्न क्रियते। कथन्तर्हि 'फक्फिञोरन्यतरस्यामि'ति? फक्फिञ्वर्ती युवा वा वृद्धवद् भवती'ति वक्ष्यामि। यदा तर्हि न वृद्धवत्तदा-गार्ग्यायणानां समूहो गार्ग्यायणकं, गार्ग्यायणानां किञ्चिद् गार्ग्यायणकं, गार्ग्यायणो भक्तिरस्य गार्ग्यायणकः- गोत्राश्रयो वुञ् न प्राप्नोति। यदि पुनर्युवा वृद्धवदित्यनेनाऽर्थोऽतिदिश्येत,-प्राग्दीव्यतोऽधीकारे यूनो वृद्धवदर्थो भवतीति। तद्वक्तव्यम्? यद्यप्येतदुच्यते अथ वैतर्हि यूनि लुगित्येतन्न करिष्यते। कथं 'फक्फिञोरन्यतरस्या'मिति? 'फक्फिञ्वर्त्ती युवार्थो वा वृद्धवद् भवतीति वक्ष्यामि। यदा तर्हि न वृद्धवत्तदा गार्ग्यायणानां समूहो गार्ग्यायणकं, गार्ग्यायणानां किञ्चिद् गार्ग्यायणकं, गार्ग्यायणो भक्तिरस्य गार्ग्यायणकः,-गोत्राश्रयो वुञ्न प्राप्नोति।

इतर आचार्य—**तदिति**। क्या यह वृद्धवद् अतिदेश कहना चाहिये? यहाँ 'युवा वृद्धवत्' ऐसा कहने से गौरव हो रहा है, अतः प्रश्न है। अन्य आचार्य गौरव का परिहार करते हैं-**अथ वैतर्हीति**। 'युवा वृद्धंवत्' यह अतिदेश करेंगे तथा 'यूनि लुक्' सूत्र नहीं करेंगे, इससे गौरवदोष नहीं रहेगा।

आक्षेपक आचार्य—**कथन्तर्हीति**। यदि 'यूनि लुक्' ४.१.९० सूत्र नहीं करेंगे तो विधेय कार्य का निर्देश नहीं होने से 'फक्फिञोरन्यतरस्याम्' ४.१.९१ सूत्र भी नहीं करना पडेगा। इससे 'गार्ग्यस्य च्छात्राः' इस अर्थ में 'गार्गीयाः, गार्ग्यायणीयाः' यह इष्ट दो रूप सिद्ध नहीं हो पायेगा। 'यूनि लुक्' सूत्र के रहने पर उससे विधेयवचन लुक् की अनुवृत्ति 'फक्फिञोरन्यतरस्याम्' ४.१.९१ सूत्र में होने पर फक् और फिञ् का लुक् विकल्प से हो कर उभय रूप सिद्ध होता है।

उत्तरपक्षी—**फक्फिञ्वर्त्तीति**। 'गार्गीयाः, गार्ग्यायणीयाः' उभयरूपसिद्धि के लिए 'फक्वर्त्ती और फिञ्वर्त्ती युवा विकल्प से वृद्धवत् हो' ऐसा वैकल्पिक गोत्रवत् अतिदेश करेंगे। फक्फिञ्वर्त्ती='वर्त्तनं वर्त्तः, भाव में घञ् प्रत्यय, फक्फिञोर्वर्त्तः फक्फिञ्वर्त्तः, स विद्यते यस्मिन् यूनि स फक्फिञ्वर्त्ती वा वृद्धवत् स्यात्'। इससे अतिदेशपक्ष में फक् और फिञ् की उत्पत्ति होगी तथा अतिदेश के अभावपक्ष में फक् और फिञ् की अनुत्पत्ति होगी, अतः दो रूप सिद्ध हो जायेंगे। इस 'युवा वा वृद्धवत्' अतिदेश की अतिव्याप्ति दे रहे हैं-**यदा तर्हीति**। जब वृद्धवत्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अतिदेश नहीं होगा तब 'गार्ग्यायणानां समूहः' इस अर्थ में वृद्धवत् अतिदेश से फक् की अनुत्पत्ति होगी तब 'गार्गकम्' रूप होगा। तरन्तु जिस पक्ष में वृद्धवत् अतिदेश नहीं होगा उस पक्ष में फक् का श्रवण होगा, उस पक्ष में गोत्रलक्षण वुञ् प्राप्त नहीं होगा।

अब अर्थातिदेश बताने के लिए कहते हैं—**यदि पुनरिति**। यदि 'युवा वृद्धवत् हो' इससे 'प्राग्दीव्यतीय अधिकार में युवा को वृद्धवदर्थ हो' ऐसा अर्थातिदेश करेंगे तब युवार्थ में गोत्रलक्षण वुञ् प्राप्त होगा, युवप्रत्यय की अनुत्पत्ति होने से उसका लुक् के लिए 'यूनि लुक्' सूत्र नहीं करना होगा।

अन्य आचार्य—**तद्वक्तव्यमिति**। क्या 'युवा वृद्धवत् हो' यह अर्थातिदेश करना चाहिये?' 'युवा वृद्धवत्' से अर्थातिदेश करने में भी गौरव है। इस गौरव का वारण करने के लिए कहा गया था कि हम 'यूनि लुक्' सूत्र हटा देंगे। मात्र वृद्धवत् अतिदेश करेंगे। इससे 'यूनि लुक्' सूत्र नहीं करना पडेगा।

इस पक्ष पर आपत्ति उठायी गयी थी-'विधेय कार्य का निर्देश नहीं होने से 'फक्फिञोरन्यतरस्याम्' ४.१.९१ सूत्र व्यर्थ हो जायेगा' उसका सार्थ्यक्य बता रहे हैं-**फक्फिञ्वर्त्तीति**। फक्फिञ्वर्त्ती युवार्थ को वृद्धवत् विकल्प कहेंगे। इससे जब युवप्रत्ययार्थ वृद्धवत् अतिदिष्ट नहीं होगा तब 'गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः, 'गर्गादिभ्यो यञ्' ४.१.१०५, 'गार्ग्यस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः, 'यञिञोश्च' ४.१.१०१ से फक्, फगन्त गार्ग्यायण शब्द से समूह अर्थ में 'गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्य-राजपुत्रवत्समनुष्याजाद् वुञ्' ४.२.३९ सूत्र से वुञ्, इदमर्थ में 'गोत्रचरणाद् वुञ्' ४.३.१२६ से वुञ्, 'साऽस्य भक्तिः' ४.३.९५ इस अर्थ में 'गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यो बहुलम्' ४.३.९९ से वुञ्, ये सभी गोत्राश्रय वुञ् प्राप्त नहीं होंगे, जिससे 'गार्ग्यायणानां समूहः' इत्यादि अर्थ में 'गार्ग्यायणकम्' इत्यादि असिद्ध ही रहेंगे।

एवन्तर्हि- * राजन्याद् वुञ्मनुष्याच्च ज्ञापकं लौकिकं परम् * यदयं वुञ्विधौ राजन्यमनुष्ययोर्ग्रहणं करोति तज्ज्ञापयत्याचार्यो 'लौकिकं परं गोत्रग्रहण'मिति। युवां च लोके 'गोत्र'मित्युपचर्य्यते-किङ्गोत्रोऽसि माणवक!; गार्ग्यायणः। किङ्गोत्रोऽसि माणवक!; वात्स्यायनः। यद्येतज्ज्ञाप्यते-औपगवेर्यूनश्छात्रा औपगवीयाः,-गोत्राश्रय इञो गोत्र इत्यण् प्राप्नोति। सामूहिकेषु ज्ञापकम्।

अब 'गार्ग्यायणानां समूहः' इस अर्थ में 'गार्ग्यायणकम्' की सिद्धि के लिए पक्ष का अवतरण करते हैं-**एवन्तर्हीति**। 'गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्र-'४.२.३९ सूत्र में राजन्य और मनुष्य शब्द का ग्रहण है। 'अपत्यं पौत्रप्रभृतिगोत्रम्' ४.१.१६२ से अपत्य-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पौत्रप्रभृति की गोत्रसंज्ञा होती है। 'गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ्' ४.१.९८ से गोत्र पद का अनुवर्तन कर 'गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्र-'४.२.३९ सूत्र में शास्त्रीयगोत्र का वाचक राजन्य और मनुष्यशब्द लिया जायेगा। इस तरह गोत्रग्रहण से ही राजन्य और मनुष्यशब्द से वुञ् सिद्ध था, इसके लिए किया गया राजन्य और मनुष्य पद व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा-'इस सूत्र में गोत्रग्रहण से लौकिक गोत्र लिया जायेगा'। लौकिकप्रयोग मे जातिविशेष का वाचक होने से राजन्य और मनुष्यशब्द लौकिक गोत्रवाचक नहीं है, अतः उन का ग्रहण किया गया है। इस तरह अपत्याधिकार से उत्तर लोक में युवमात्र को गोत्र कहा जायेगा, जैसे 'किं गोत्रोऽसि माणवक!'?, ऐसा प्रश्न किया जाता है। इस प्रश्न के उत्तर में 'गार्ग्यायणोऽहं श्रीमन्!' ऐसा उत्तर देता है। अथ च 'किं गोत्रोऽसि माणवक'!? ऐसा पूछे जाने पर 'वात्स्यायनोऽहम्' ऐसा उत्तर देता है। यहाँ उत्तर में युवार्थकप्रत्ययान्त 'गार्ग्यायणः, वात्स्यायनः' का प्रयोग है, अतः लोक में युवा ही गोत्र होता है।

प्रश्नभाष्य—**यद्येतदिति**। यदि राजन्य और मनुष्यग्रहण से आप 'युवा च लोके गोत्रम्' पक्ष का ज्ञापन करेंगे तो 'उपगोरपत्यं पुमानौपगवः', 'तस्यापत्यम्' ४.१.९२ से अण्, अण्णन्त से युवापत्य अर्थ में 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ्, इञन्त औपगवि शब्द से 'यूनश्छात्राः' इस अर्थ में 'इञश्च' ४.२.११२ से गोत्राश्रय अण् प्रत्यय की आपत्ति होगी। इस आपत्ति का वारण करते हैं-**सामूहिकेष्विति**। 'गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्र-'४.२.३९ सूत्र में प्रवराध्याय में परिगणित पुत्र पौत्र आदि सम्पूर्ण अपत्यमात्र लौकिक गोत्र का ही ग्रहण होता है, पारिभाषिक का नहीं। अपत्याधिकार से अन्यत्र लौकिक ही गोत्र लिया जाता है, पारिभाषिक नहीं। उक्त सूत्र में लौकिक गोत्र से समूह अर्थ में वुञ्विधान करते हैं, उसे आचार्य ज्ञापन करेंगे तो जहाँ शास्त्रीयगोत्र का ग्रहण है वहाँ 'औपगवेर्यूनश्छात्रा औपगवीयाः' इत्यादि में इञन्त से 'इञश्च' ४.२.११२ से अण् प्रत्यय नहीं हो सकेगा।

यदि सामूहिकेषु ज्ञापकं-गार्ग्यायणानां समूहो गार्ग्यायणकं, गार्ग्यायणानां किञ्चिद् गार्ग्यायणकं, गार्ग्यायणो भक्तिरस्य गार्ग्यायणकः-गोत्राश्रयो वुञ्न प्राप्नोति। एवन्तर्हि-वुञ्विधौ ज्ञापकम्। यदि वुञ्विधौ ज्ञापकं शालङ्केर्यूनश्छात्राः शालङ्काः। इञो गोत्र इत्यण्न प्राप्नोति। अस्तु तर्ह्यविशेषेण। कथमौपगवेर्यूनश्छात्रा औपगवीयाः? गोत्रेणेञं विशेषयिष्यामः-'गोत्रे य इञ्विहित' इति।

पूर्वपक्षी—**यदि सामूहिकेष्विति**। यदि सामूहिक अर्थ में ज्ञापन करेंगे तो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इदमर्थ ओर 'साऽस्य भक्तिः' ४.३.९५ अर्थ में गोत्राश्रय वुञ् प्राप्त नहीं हो सकेगा?

इदमर्थ और 'साऽस्य भक्तिः' ४.३.९५ अर्थ में वुञ्विधान के लिए उत्तरपक्षी कहता है-**एवन्तर्हीति**। सामूहिक अर्थ में ज्ञापन न करके हम वुञ्विधि में ज्ञापन करेंगे। इससे इदमर्थ और 'साऽस्य भक्तिः' अर्थ में भी वुञ् सिद्ध हो जायेगा।

पूर्वपक्षी—**यदि वुञ्विधाविति**। यदि वुञ्विधि में 'लौकिकं परं गोत्रग्रहणम्' इस ज्ञापन को मानेंगे तो 'शालङ्काः' में 'इञश्च' ४.२.११२ से गोत्राश्रय अण् प्राप्त नहीं हो सकेगा। जैसे-शालङ्केरपत्यं शालङ्किः' में आकृतिगण मान कर 'बाह्वादिभ्यश्च' २.४.५९ से इञ्, 'पैलादिभ्यश्च' २.४.५९ गण में शालङ्किशब्द का पाठ होने से शालङ्किशब्द को निपातन से शलङ्क आदेश होगा, एवं निपातन से ही गोत्र अर्थ में 'नडादिभ्यः फक्' ४.१.९९ के द्वारा विहित फक् से इञ् का बाध नहीं होता है। इञन्त शालङ्किशब्द से युवापत्य अर्थ में फक्, 'पैलादिभ्यश्च' २.४.५९ से फक् का लुक् करने पर इञन्त शालङ्किशब्द युवा अर्थ में है, अतः 'इञश्च' ४.२.११२ के द्वारा गोत्राश्रय अण् प्राप्त नहीं होने से अव्याप्ति है।

उत्तरपक्षी—**अस्तु तर्हीति**। यह मात्र वुञ्विधि में ज्ञापक न हो कर सामान्य रूप से ज्ञापक होगा, ऐसा मानने से 'शालङ्काः' में इञन्त शालङ्किशब्द से भी गोत्राश्रय अण् सिद्ध हो जायेगा। तरन्तु सर्वत्र इञन्त से गोत्राश्रय अण् ही सिद्ध होना चाहिये। फिर 'औपगवेर्यूनश्छात्राः' इस विग्रह में इञन्त यूवार्थक औपगवि से अण् ही होना चाहिये, जब कि यहाँ वृद्धलक्षण छ इष्ट है, वह कैसे सिद्ध होगा?

उत्तरपक्षी—**गोत्रेण इञमिति**। इसके लिए हम गोत्र से इञ् को विशेषित करेंगे-'गोत्र अर्थ में विहित इञ् से अण् हो'। 'कण्वादिभ्यो गोत्रे' ४.२.१११ सूत्र में शास्त्रीय गोत्र का ही ग्रहण है। उसी का 'इञश्च' में अनुवर्तन होने से 'शालङ्काः' में अण्प्रत्यय हो जायेगा, परन्तु 'औपगवीयाः' में नहीं।। **यूनि लुक्**।।

तस्यापत्यम् ४.१.९२

*** तस्येदमित्यपत्येऽपि * 'तस्येदमि'त्यपत्येऽपि अण्सिद्धः। तस्येदं-विशेषा ह्येतेऽपत्यं, समूहो, विकारो, निवास इति। किमर्थं तर्हीद-मुच्यते? *** बाधनार्थं कृतं भवेत् *** ये तस्य बाधकास्तद्बाधनार्थम्। कथं पुनरशैषिकः शैषिकं बाधते? *** उत्सर्गः शेष एवाऽसौ *** योऽप्युप-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सर्गः सोऽपि शेष एव। अथैतस्मिन् बाधकबाधनार्थे सति किं प्रयोजनम्?

सूत्रार्थ—'समर्थ षष्ठ्यन्त से अपत्य अर्थ में उक्त एवं वक्ष्यमाण प्रत्यय विकल्प से हों'। जैसे-'उपगोरपत्यमौपगवः'। यहाँ आदिवृद्धि से अन्त्यवृद्धि का बाध होता है। एवं 'पुष्करसदः अपत्यं पौष्करसादिः' में 'अनुशतकादीनां च' ७.३.२० से उभयपदवृद्धि प्राप्त है, तथा 'अत उपधायाः' ७.२.११६ से उपधा अत् को भी वृद्धि प्राप्त है, परन्तु आदिवृद्धि के द्वारा अन्त्यवृद्धि एवम् उपधावृद्धि का बाध होता है।

तस्येदमित्यपत्येऽपि बाधनार्थं कृतं भवेत्।
उत्सर्गः शेष एवासौ वृद्धान्यस्य प्रयोजनम्।।

इस श्लोकवार्तिक का भाष्यकार खण्डशः व्याख्यान करते हैं—**तस्येदमिति**। तस्येदम्' ४.३.१२० सूत्र से इदमर्थ में प्रत्यय विहित है, इदमर्थ में ही अपत्य अर्थ का भी अन्तर्भाव होने से अण् सिद्ध था, अतः अपत्य अर्थ में अण् विधान के लिए किया गया 'तस्यापत्यम्' सूत्र का आरम्भ व्यर्थ है, इसका आरम्भ क्यों किया गया है? यहाँ इदन्त्वेन अपत्य, विकार, निवास, समूह का भी बोध होगा। इस श्लोकवार्तिक का प्रथम चरण आक्षेप में है।

द्वितीय चरण से इस का समाधान करते हैं—**बाधनार्थमिति**। 'ये तस्य बाधकाः'- यहाँ जाति में 'बाधकाः' यह बहुवचनान्तप्रयोग है। 'तस्येदम्' ४.३.१२० सूत्र से विधीयमान अण् प्रत्यय का बाधक 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ से विहित छ प्रत्यय है, उस वृद्धलक्षण छ प्रत्यय का बाध करने के लिए 'तस्यापत्यम्' ४.१.९२ से अण्विधान किया गया है।

पूर्वपक्षी—**कथम्पुनरिति**। समान अर्थ में प्राप्ति होने पर ही बाध्यबाधकभाव होता है। 'शेषे' ४.२.९२ के अधिकार में विहित होने से छ प्रत्यय शेष अर्थ में है। जब कि 'तस्यापत्यम्' से अपत्य अर्थ में अण्विधान है। इस तरह इन दोनों का समान विषय नहीं है, फिर उन दोनों का बाध्यबाधकभाव परस्पर कैसे है?

उत्तरपक्षी—**उत्सर्गः शेष इति**। 'उत्सृज्यते=अदन्तबाह्वादिभ्यो वियुज्यन्त इत्युत्सर्गः' कर्म में घञ् प्रत्यय है। अदन्त बाह्वादिभिन्न प्रकृति से सम्बद्ध होने से यह अपत्यार्थ भी शेष ही होता है। आक्षेपक आचार्य ने सूत्र का योगविभाग न करके 'तस्यापत्यमत इञ्' ऐसा एक ही सूत्र माना था। इस पक्ष में प्रकृतिविशेषसम्बद्ध अपत्यार्थ का ही ग्रहण किया है, अतः उनके मत में प्रकृति-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सामान्यसम्बद्ध अपत्यार्थ होगा, जिससे वृद्धसंज्ञक से अपत्य अर्थ में छ प्रत्यय ही होगा। परन्तु यदि उक्त योग का 'तस्यापत्यम्' 'अत इञ्' ऐसा पृथक्-पृथक् योगविभाग मानेंगे तो अण्-आदिविधि में अपत्यार्थ के चरितार्थ होने से अपत्यार्थ शेष नहीं होगा, अतः इस पक्ष में यहाँ छ की प्राप्ति नहीं होने से छ से अण् का बाध होगा, उसी बाध को यहाँ बताया जा रहा है। यह अप्राप्त बाध है।

*** वृद्धान्यस्य प्रयोजनम् * वृद्धानि प्रयोजयन्ति-भानोरपत्यं भानवः। श्यामगोरपत्यं श्यामगव इति। कथं पुनरिच्छताऽप्यपवादः प्राप्नुवन्छक्यो बाधितुम्? 'तस्य'ग्रहणसामर्थ्यात्'। किमिदं भवान् अध्यारुह्य 'तस्य'ग्रहणस्यैव प्रयोजनमाह, न पुनः सर्वस्यैव योगस्य? अवश्यमुत्तरार्थमर्थनिर्देशः कर्त्तव्यः। समर्थविभक्तिरपि तर्हि अवश्य- मुत्तरार्थं प्रतिनिर्देष्टव्या। एवं तर्हि 'योगविभागकरणसामर्थ्यात्'। इतरथा हि तस्यापत्यमत इञ् भवतीत्येव ब्रूयात्।**

अब यहाँ प्रश्न उठता है कि 'उपगोरपत्यमौपगवः' में उपगु पद के अवृद्ध होने से छ की प्राप्ति नहीं है, फिर योगविभाग क्यों किया गया है?

इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं—**वृद्धान्यस्येति**। 'भानोरपत्यं भानवः, श्यामा गौर्यस्याऽसौ श्यामगुस्तस्य श्यामगोरपत्यं श्यामगवः' में वृद्धलक्षण छ प्राप्त है, अथ च किसी व्यक्ति का नाम उपगु रखने पर उपगुशब्द से जहाँ संज्ञा गम्य है वहाँ उपगुशब्द से अपत्य अर्थ में वृद्धलक्षण छ प्राप्त होगा, उसका बाध करने के लिए 'तस्यापत्यम्' यह पृथक् सूत्र किया गया है। यदि 'तस्यापत्यम्' से विहित अण् अपत्यत्वेन ज्ञात है तथा 'तस्येदम्' से विहित अण् इदन्त्वेन ज्ञात है, इस तरह शाब्दबोध में वैलक्षण्य होने से 'तस्येदमित्यपत्येऽपि' इस आक्षेप को ही अनुपपन्न कहा जाये तो यह पक्ष एतद्वार्तिकभाष्यप्रमाण से गिर जाता है, अतः 'तस्येदम्' ४.३.१२० से अपत्य अर्थ में भी अण् सिद्ध होता है।

पूर्वपक्षी—**कथम्पुनरिति**। 'तस्यापत्यम्' के द्वारा प्रकृतिसामान्य से विहित होने से अण् सामान्य है, तथा 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ के द्वारा प्रकृतिविशेष से अपत्यार्थक छ प्रत्यय विहित होने से विशेष है। विशेष से सामान्य का बाध होता है, अतः छ प्रत्यय से अण् का बाध होना चाहिये, सामान्य अण् प्रत्यय से विशेष छ प्रत्यय का बाध कैसे होगा?

उत्तरपक्षी आचार्य—**'तस्य'ग्रहणेति**। 'तस्य'ग्रहणसामर्थ्य से यहाँ 'तस्यापत्यम्' का एकदेश 'तस्य' का निर्देश किया गया है, अतः एकदेश से सम्पूर्ण सूत्र को लक्ष्य किया जा रहा है। 'तस्यापत्यमतइञ्' सूत्र का योगविभाग किया गया है,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तत्सामर्थ्य से अण् से छ का बाध होगा। पृथक् सूत्र होने से अपत्यार्थ शेष नहीं होगा, अतः शेष अर्थ में छ प्रत्यय की प्रसक्ति नहीं होगी।

दूसरे आचार्य उत्तरपक्षी के अभिप्राय को न समझते हुये पूर्वपक्ष करते हैं—**किमिदं भवानिति**। क्या कारण है कि आप **अध्यारुह्य**=योगैकदेश 'तस्य' पद में ही तात्पर्य करके 'तस्य'ग्रहण का प्रयोजन बता रहे हैं, सम्पूर्ण सूत्र का प्रयोजन क्यों नहीं बता रहे हैं? उत्तर सूत्र 'अत इञ्' ४.१.९५ में 'अपत्यम्' इस अर्थ का निर्देश हो सके, इस के लिए 'तस्यापत्यम्' सूत्र में अर्थनिर्देश भी आवश्यक है। एवं समर्थविभक्ति भी उत्तर सूत्र में लब्ध हो सके इसके लिए 'तस्य' यह समर्थविभक्त्यन्त का भी निर्देश पूर्वसूत्र में करना चाहिये।

सिद्धान्ती आचार्य—**एवन्तर्हीति**। 'तस्यापत्यमतइञ्' इस संहितापाठ का 'तस्यापत्यम्' ऐसा योगविभाग करते हैं, उस योगविभाग से ही अण् से छ प्रत्यय का बाध हो जायेगा।

पुल्लिङ्गेनाऽयं निर्देशः क्रियते एकवचनान्तेन च। तेन पुल्लिङ्गादेवोत्पत्तिः स्यादेकवचनान्ताच्च। स्त्रीनपुंसकलिङ्गाद् द्विवचनबहुवचनान्ताच्चेदं न स्यात् * तद्धितार्थनिर्देशे लिङ्गवचनमप्रमाणं, तस्याऽविवक्षितत्वात् *** तद्धितार्थनिर्देशे लिङ्गवचनमप्रमाणम्। किं कारणम्? तस्याऽविवक्षितत्वात्। नात्र निर्देशस्तन्त्रम्। कथम्पुनस्तेनैव च नाम निर्देशः क्रियते, तच्चान्त्रं स्यात्। तत्कारी च भवाँस्तद्द्वेषी च!।**

पूर्वपक्षी आचार्य—**पुल्लिङ्गेनायमिति**। 'तस्यापत्यम्' सूत्र में 'तस्य' यह पुल्लिङ्ग और एकवचन में निर्देश है, अतः पुल्लिङ्ग और एकवचन से 'दक्षस्यापत्यं दाक्षिः, उपगोरपत्यमौपगवः' हीं होगा। जहाँ स्त्रीलिङ्ग है वहाँ अपत्यार्थक प्रत्ययोत्पत्ति नहीं हो सकेगी। जैसे-'सुमातुरपत्यं पुमान् सौमात्रः' एवं नपुंसक से भी अप्राप्त होगा, जैसे-'क्षत्रस्यापत्यं पुमान् क्षात्रिः'। एवं पुल्लिङ्गद्विवचन और बहुवचन 'उपगवोरपत्यं पुमान्, उपगूनामपत्यं पुमानौपगवः' की अप्राप्ति रहेगी। यद्यपि 'तद्'शब्द का पुल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में 'तस्य' रूप होता है, तथापि पुल्लिङ्ग और नपुंसक का एक साथ निर्देश सम्भव नहीं होने से 'पुल्लिङ्गेनायं निर्देशः' ऐसा भाष्य कहा गया है।

उत्तरपक्षी आचार्य—**तद्धितार्थनिर्देश इति**। तद्धितार्थनिर्देश में लिङ्ग और वचन अविवक्षित होने से अप्रमाण होता है। यहाँ पुल्लिङ्गनिर्देश को लेकर यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रतयय पुल्लिङ्ग और एकवचन से ही होगा, अपि तु लिङ्ग और वचन के अविवक्षित होने से द्विवचन, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक लिङ्ग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से भी अपत्य अर्थ में भी प्रत्यय की उत्पत्ति होगी। यद्यपि लिङ्ग अरैर संख्या इस शास्त्र में सर्वत्र व्यधायक होने से अविवक्षित है तथापि तद्धितप्रकरण होने से 'तद्धितार्थनिर्देशे लिङ्गवचनमप्रमाणम्' ऐसा कहा गया है, अतः 'तस्य' यह पुल्लिङ्ग और एकवचननिर्देश से कार्य का विधि और निषेध नहीं किया जा सकता है। इस विषय की व्याख्या 'भावे' ३.३.१८ सूत्र पर भी की गयी है। इस शास्त्र में कहीं-कहीं पर संख्या विवक्षित है, जैसे-'सुप्सुपा'। परन्तु लिङ्ग सर्वत्र अविवक्षित ही रहेगा।

पूर्वपक्षी—**कथम्पुनरिति**। यदि तद्धितार्थनिर्देश में लिङ्ग और संख्या अविवक्षित है तो क्या कारण है कि पुल्लिङ्ग और एकवचन में ही निर्देश करते हैं, कहीं पर आचार्य को नपुंसक और द्विवचन में निर्देश करके 'तयोरपत्यम्' इस तरह का अथवा नपुंसक और बहुवचन में निर्देश करके 'तेषामपत्यम्' अथवा एक-वचन और स्त्रीलिङ्ग में निर्देश करके 'तस्या अपत्यम्' इस तरह का भी सूत्र पढना चाहिये था। परन्तु आचार्य सर्वत्र पुल्लिङ्ग और एकवचन का ही निर्देश क्यों करते हैं? स्त्रीलिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग, द्विवचन और बहुवचन में भी निर्देश करते, उसकी भी अविवक्षा कर दी जाती जैसे पुल्लिङ्ग और एकवचन की अविवक्षा की जा रही है। क्या कारण है कि आचार्य का सर्वत्र **तत्कारी**='तत्कर्तुं शीलं यस्य स तत्कारी' पुल्लिङ्ग और एकवचन करने का स्वभाव बन गया है तथा तदितर में **तद्वेषी**='तद्वेष्टुं शीलं यस्य स तद्वेषी'-सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' ३. २.७८ से ताच्छील्य में णिनि है। आचार्य द्वेषस्वभाव वाले हैं?

*** नान्तरीयकत्वात् * नान्तरीयकत्वादत्र पुल्लिङ्गेन निर्देशः क्रियते एकवचनान्तेन च। अवश्यं कया चिद् विभक्त्या केन चिच्च वचनेन निर्देशः कर्त्तव्यः। तद्यथा कश्चिदन्नार्थी शालिकपालं सतुषं सपलाल-माहरति नान्तरीयकत्वात्। स यावदादेयं तावदादाय तुषपलाला-न्युत्सृजति। तथा कश्चिन्मांसार्थी मत्स्यान् सशकलान् सकण्टका-नाहरति, नान्तरीयकत्वात्। स यावदादेयं तावदादाय शकलकण्टकान् उत्सृजति। एवमिहापि नान्तरीयकत्वात् पुल्लिङ्गेन निर्देशः क्रियते, एकवचनान्तेन च। न ह्यत्र निर्देशस्तन्त्रम्।**

सिद्धान्ती आचार्य—**नान्तरीयकत्वादिति**। किसी लिङ्ग और किसी वचन में निर्देश करना चाहिये। एकवचन और पुल्लिङ्ग निर्देश करने में कोई व्यवधान नही है। यदि 'तस्यापत्यम्' सूत्र के स्थान पर 'तस्या अपत्यम्' अथवा 'तासामपत्यम्' ऐसा स्त्रीलिङ्गघटित, व बहुवचनान्तघटित प्रयोग होता तब भी आप प्रश्न कर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सकते थे कि स्त्रीलिङ्गनिर्देश ही क्यों है? यदि नपुंसक में निर्देश होता तब भी प्रश्न कर सकते थे, अतः शङ्का सर्वत्र हो सकती है, तथा किसी का निर्देश भी किया जा सकता है। सर्वत्र मेरा एक ही उत्तर होगा-'नान्तरीयकत्वात्', व्यवधान नहीं होने से दोष नहीं है। सर्वत्र लिङ्ग और संख्या अविवक्षित होगी, अतः 'तस्य' इस निर्देश में भी लिङ्ग और संख्या अविवक्षित है। जैसे कोई अन्नार्थी धान का बोझा लाता है। उसमें **पलाल**=पुआर भी होता है तथा **तुषा**=भूषा भी होता है। परन्तु वह पहले पुआर से सतुष धान्य को अलग करता है तथा बाद में चावल से भी भूषा को अलग कर चावलमात्र का ही ग्रहण करता है। वहाँ धान्यार्थी को जिस तरह भूषा और पुआर में प्रयोजन नहीं होता है वैसे 'तस्य' इस निर्देश में भी एकवचन और लिङ्ग से प्रयोजन नहीं होगा। एवं जैसे कोई मांसग्रहण करने वाला मत्स्य का आहरण करता है। मत्स्य के पेट में **शकल**=विष्टा एवं शरीर में काँटा होता है, विष्टा और काँटा सहित मत्स्य का आहरण करके बाद में विष्टा और काँटा का परित्याग कर मांसमात्र का ग्रहण करता है, वैसे कोई व्यवधायक नहीं होने से यहाँ भी पुल्लिङ्ग और एकवचन का निर्देश किया गया है, अतः 'तस्य' इस निर्देश में पुल्लिङ्ग और वचन **'न तन्त्रम्'**=विवक्षित नहीं है।

*** सर्वनामनिर्द्देशे विशेषाऽसम्प्रत्ययः सामान्यनिर्देशात् * सर्वनामनिर्देशे विशेषस्याऽसम्प्रत्ययः। किं कारणम्? सामान्यनिर्देशात्। सर्वनाम्नाऽयं निर्द्देशः क्रियते। सर्वनाम च सामान्यवाचि। तेन सामान्यवाचिन एवोत्पत्तिः स्याद् विशेषवाचिनो न स्यात् * सामान्यचोदनास्तु विशेषेषु * सामान्यचोदनास्तु विशेषेष्वतिष्ठन्ते तद्यथा-'गौरनुबध्योऽजोऽग्नीषोमीय' इत्याकृतौ चोदितायां द्रव्ये आरम्भणालम्भनप्रोक्षणविशसनादीनि क्रियन्ते। विषम उपन्यासः। अस्ति कारणं येनैतदेवं भवति। किं कारणम्? असम्भवात्। आकृतावारम्भणादीनां सम्भवो नास्तीति कृत्वा आकृतिसहचरिते द्रव्ये आरम्भणालम्भविशसनादीनि क्रियन्ते। इदमप्येवञ्जातीयकमेव, असम्भवात्सामान्यवाचिन उत्पत्तौ विशेषवाचिन उत्पत्तिर्भवति।**

पूर्वपक्षी—**सर्वनामनिर्देश इति**। 'तस्यापत्यम्' सूत्र में सर्वनाम तद् शब्द का 'तस्य' यह सामान्य निर्देश है। सामान्य का निर्देश होने से विशेष का ग्रहण नहीं होगा, अतः सामान्यवाची सर्वनाम तद् शब्द से ही प्रत्यय होगा, विशेषवाची 'उपगोरपत्यमौपगवः' में उपगु पद से नहीं हो सकेगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDF

उत्तरपक्षी—**सामान्येति**। विशेष से कार्यसिद्ध्यर्थ ही सामान्य का प्रयोग होता है। जैसे-'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' १.१.६६ और 'तस्मादित्युत्तरस्य' १.१.६७ में सामान्यनिर्देश से विशेष का ही ग्रहण होता है, वैसे 'तस्य' इस सामान्यनिर्देश से विशेष का ही ग्रहण होगा, सामान्य 'तद्' शब्द से अपत्यार्थक प्रत्यय विहित नहीं होंगे। जैसे-'गौरनुबध्योऽजोऽग्नीषोमीयः' इस विधि में सामान्य आकृति का निर्देश होने पर भी आरम्भण, आलम्भन, प्रोक्षण, विशनस आदि विशेष द्रव्य में ही किये जाते हैं, सामान्य आकृति में नहीं।

आक्षेपक आचार्य—**विषम इति**। 'गौरनुबध्योऽजोऽग्नीषोमीयः' में **आकृति**=जाति में आरम्भण आदि के असम्भव होने से आरम्भणादि कार्य आकृतिसहचरित द्रव्य में होते हैं, जब कि तद् पद से अण् सम्भव है, अतः उससे विशेष का ग्रहण नहीं हो सकता है।

उत्तरपक्षी—**इदमपीति**। 'तस्य' यह सामान्यनिर्देश भी ऐसा ही है। यहाँ भी सामान्य से प्रत्यय असम्भव है, अतः विशेष से प्रत्यय- विधान किया जाता है।

*** अपत्याऽभिधाने स्त्रीपुल्लिङ्गस्याऽप्रसिद्धिर्नपुंसकलिङ्गत्वात् * अपत्याभिधाने स्त्रीपुल्लिङ्गस्याप्रसिद्धिः। किं कारणम्? नपुंसकलिङ्गत्वात्। अपत्यं नपुसकलिङ्गं तेन नपुंसकलिङ्गस्यैवापत्यस्याऽभिधानं स्यात्स्त्रीलिङ्गस्य न स्यात्। ननु चेदं पुरस्तादेव चोदितं परिहृतं च। उत्पत्तिस्तत्र चोद्यते, इह पुनरुत्पन्नेनाभिधानं चोद्यते।**

पूर्वपक्षी—**अपत्याभिधान इति**। 'तस्यापत्यम्' सूत्र में विधेय अपत्यार्थ 'अपत्यम्' इस नपुंसकलिङ्ग से वाच्य है, अतः जहाँ नपुंसकलिङ्ग का बोध हो रहा होगा वहीं पर अपत्यार्थक प्रत्यय हो सकेंगे, परन्तु जहाँ पर स्त्रीलिङ्ग और पुल्लिङ्ग का बोध हो रहा होगा, वहाँ पर अपत्यार्थक प्रत्यय नहीं हो सकेंगे।

उत्तरपक्षी—**ननु चेदमिति**। मैं इस विषय को अभी-अभी बता आया हूँ- 'तद्धितार्थनिर्देशे लिङ्गवचनमप्रमाणं, तस्याऽविवक्षितत्वात्' वही सामान्य प्रकृतस्थल में भी होगा।

पूर्वपक्षी—**उत्पत्तिस्तत्रेति**। उस समाधान में प्रत्ययोत्पत्ति बतायी गयी है, जब प्रकृत में उत्पन्न प्रत्यय के द्वारा अर्थ कहा जा रहा है, अतः विषयभेद होने से पूर्व समाधान का यह विषय नहीं हो सकता है।

*** सिद्धं तु प्रजनस्य विवक्षितत्वात् * सिद्धमेतत्। कथम्? प्रजनस्य विवक्षितत्वात्। प्रजनोऽत्र विवक्षितः, स च सर्वलिङ्गः। किं पुनः**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कारणं समानायां प्रवृत्तावपत्यं नपुंसकलिङ्गं, प्रजनः सर्वलिङ्गः? * एकार्थे शब्दाऽन्यत्वाद् दृष्टं लिङ्गाऽन्यत्वम् *** एकार्थत्वेऽपि शब्दान्यत्वाल्लिङ्गान्यत्वं दृश्यते। तद्यथा-पुष्यः, तारका, नक्षत्रम्। गेहं, कुटी, मठ इति *** अवयवान्यत्वाच्च *** अवयवान्यत्वाच्च लिङ्गान्यत्वं दृश्यते। तद्यथा-कुटी कुटीरः। शमी शमीरः। शुण्डा शुण्डारः। अवयवान्यत्वात् किल लिङ्गान्यत्वं स्यात्किम्पुनर्यत्र शब्दान्यत्वमपि?** तस्यापत्यम्।

सिद्धान्ती आचार्य—**सिद्धं त्विति**। 'तस्यापत्यम्' सूत्र में अपत्य पद से **प्रजन**=पैदा होना अर्थ विवक्षित है, अतः पैदा हुआ नपुंसक, पुमान्, स्त्री कोई भी हो सकता है, एवं सर्वत्र सभी अर्थों में आप प्रत्यय कर सकते हैं, इसमें कोई दोष नहीं है।

प्रश्नभाष्य—**किम्पुनरिति**। क्या कारण है कि नपुंसक लिङ्ग में शक्त अपत्य-शब्द प्रजन अर्थ में होने से सर्वलिङ्ग हो जायेगा?

उत्तरभाष्य—**एकार्थे शब्दान्यत्वादिति**। समान अर्थ होने पर भी शब्दभेद होने से लिङ्गभेद स्वतः हो जाता है। जैसे-पुष्यः, तारका, नक्षत्रम् ये तीनों पर्याय शब्द हैं। फिर भी शब्दभेद होने से क्रमशः पुल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग, नपुंसकलिङ्गभेद स्वतः हो गया। एवं गेहम्, कुटी, मठः ये सभी समान अर्थ में शक्त हैं, फिर भी शब्दभेद होने से अर्थ के अभिन्न होने पर भी क्रमशः नपुंसक, स्त्री, पुमान् लिङ्ग होते हैं। वैसे अपत्य, पुत्र, पुत्री ये सभी समान अर्थ प्रजन में शक्त होते हुए भी शब्दभेद से भिन्न लिङ्ग वाले हैं।

इसी तरह—**अवयवान्यत्वाच्चेति**। अवयवभेद से भी लिङ्गभेद देखा जाता है, जैसे-कुटी, कुटीरः। 'र' मात्र का भेद होने से कुटीशब्द स्त्री और कुटीरशब्द पुमान् है। एवं शमी-शमीरः, शुण्डा-शुण्डारः समान अर्थ में होते हुए भी 'र'-भिन्न स्त्री और 'र'-सहित पुल्लिङ्ग है। इस तरह जहाँ अवयवभेद से लिङ्गभेद स्पष्ट है, वहाँ शब्दभेद होने से भला लिङ्गभेद कैसे नहीं होगा? **तस्यापत्यम्**।।

एको गोत्रे ४.१.६३

किमर्थमिदमुच्यते? * उत्पादयितारं प्रत्यपत्ययोगात्तस्य च विवक्षितत्वादेकवचनं गोत्रे *** उत्पादयितोत्पादयिताऽपत्येन युज्यते। 'तस्य च विवक्षितत्वात्'। उत्पादयितुः स चाऽभिसम्बन्धो विवक्षितः। उत्पादयितारं प्रत्यपत्ययोगात् तस्य चाभिसम्बन्धस्य विवक्षितत्वाद्**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्पादयितुरुत्पादयितु- रपत्याभिधानेऽनेकः प्रत्ययः प्राप्नोति, इष्यते चैक एव स्यादिति-तच्चाऽन्तरेण यत्नं न सिध्यतीत्येकवचनं गोत्रे। एवमर्थमिदमुच्यते। कथं पुनर्ज्ञायते उत्पादयितोत्पादयिताऽपत्येन युज्यत इति? एवं हि दृश्यते लोके। पितामहस्योत्संगे दारकमासीनं कश्चित् कञ्चित्पृच्छति-'कस्यायं दारक' इति? स आह-'देवदत्तस्य यज्ञदत्तस्य वे'ति। उत्पादयितारं व्यपदिशति नात्मानम्।

अपत्याधिकार और प्रत्ययाधिकार से अपत्यप्रत्यय अर्थ लब्ध है। संख्या विशेष का ग्रहण से तदितर संख्या की स्वतः व्यावृत्ति हो जाती है, अतः 'एकः' से 'एक' ऐसा अर्थ करना चाहिये। सूत्रार्थ-'गोत्र में एक ही अपत्य प्रत्यय हो'। जैसे-'उपगोर्गोत्रापत्यमौपगवः', 'तस्यापत्यम्' ४.१.९२ से अण्। गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः, 'गर्गादिभ्यो यञ्' ४.१.१०५ से यञ्। नडस्य गोत्रापत्यं नाडायनः, 'नडादिभ्यः फक्' ४.१.९९ से फक्। एक शब्द अन्य, प्रधान, असहाय, संख्या, प्रथम, और समान अर्थ का वाचक है। इनका उदाहरण क्रमशः-'एके मन्यन्ते' 'एकः पदार्थो धनुष्मताम्' 'आद्यन्तवदेकस्मिन्' १.१.२१ 'द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने' १.४.२२ 'एकेऽल्पप्राणाः' तेनैकदिक्' है। परन्तु 'एको गोत्रे' सूत्र में अन्य अर्थ सम्भव नहीं होने से संख्यावाची अथ वा प्रथमवाची ही लिया जायेगा। यहाँ 'एक' यह पद प्रथम अर्थ का वाचक है, यह इसी भाष्य के अन्त में ज्योत्स्ना में स्पष्ट होगा।

पूर्वपक्षी—**किमर्थमिदमिति**। 'एको गोत्रे' सूत्र का आरम्भ क्यों करते हैं? 'एको गोत्रे' और 'यून्यस्त्रियाम्' ४.१.९४ इन दोनों सूत्रों के रहने पर भी सम्पूर्ण इष्टसिद्धि नहीं हो पा रही है। 'एको गोत्रे' सूत्र में पौत्रप्रभृति अपत्य की विवक्षा होने पर मूलप्रकृति गर्ग आदि से ही प्रत्यय होंगे, अनन्तर अपत्यवाची गार्गिप्रभृति अथ वा गोत्रप्रत्ययान्त गार्ग्यप्रभृति से नहीं। युवापत्य अर्थ की विवक्षा में गोत्रप्रत्ययान्त से ही प्रत्यय होंगे, मूलप्रकृत्यन्तर युवा से नहीं। '-अस्त्रियाम्' ४.१.९४ इस निषेधवचन से स्त्री में युवकार्य नहीं होते हैं, अपि तु गोत्रकार्य ही होते हैं। ये सभी इन दोनों सूत्रों से सिद्ध नहीं हो पा रहे हैं।

'एको गोत्रे' सूत्र का प्रयोजन बताने के लिए वार्तिकमुखेन भाष्य का अवतरण करते हैं-**उत्पादयितारमिति**। यहाँ वार्तिककार ने लक्षण-अर्थ में 'प्रति' इस शब्द का प्रयोग किया है। उत्पादयितृसामान्यविवक्षा के द्वारा वार्तिक में उत्पादयितृशब्द को द्वित्व नहीं किया है, परन्तु भाष्यकार ने भेदविवक्षा से वीप्सा मान कर द्विर्वचन किया है। 'उत्पादयितारम्'पद से 'उत्पादयिता' कर्मत्वेन विवक्षित नहीं है, अपि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तु लक्षण अर्थ में 'लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः' १.४.९० से कर्मप्रवचनीयसंज्ञा हो कर कर्मप्रवचनीय के योग में द्वितीया विभक्ति है। अन्यथा 'उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी' नियम से कर्म में कृद्योगलक्षणा षष्ठी होती। भाष्य में प्रति शब्द से वीप्सा गम्य है, अतः 'नित्यवीप्सयोः' ८.१.२ से उत्पादयितृ पद को द्वित्व है। 'अपत्ययोगात्=अपत्यस्य च योगात्' ऐसा कर्तृषष्ठी-समास है। यदि लोक में सत्तावान् अर्थ भी विवक्षित होता है तो वह शब्द-संस्कार का निमित्त नहीं होता है। जैसे-'मातुः स्मरति' में कर्मत्वरूप अर्थ होते हुए भी उसकी अविवक्षा होने पर कर्म में द्वितीया नहीं होती है। लोक में अपत्य के साथ उत्पादयिता का ही योग प्रसिद्ध है। जितने अपत्य होंगे उतना ही प्रत्यय प्राप्त होगा। इस तरह अनेक अपत्य के होने पर एक मूलप्रकृति से अनेक अपत्यार्थक प्रत्यय प्राप्त होने पर एक प्रत्यय का विधान के लिए सूत्र का आरम्भ किया गया है। विना सूत्र पढे यह अर्थ सम्भव नहीं था, अतः 'एको गोत्रे' सूत्र पढा गया है। 'गोत्रे' पद में जाति की अपेक्षा से एकवचन है। इससे गोत्रसमुदाय में प्रत्ययसुदाय निवृत्त हो जाता है, यही इस सूत्र का प्रयोजन है।

प्रश्नभाष्य—**कथं पुनरिति**। कैसे माना जाये कि अपत्य के साथ उत्पादयिता का ही योग है? सूत्रकार ने 'अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्' १.४.१६२ ऐसा सामानाधिकरण्यरूप से निर्देश किया है, अतः प्रत्येक अपत्य पिता, पितामह, प्रपितामहप्रभृति सभी का सम्बन्धी है, फिर आप अपत्य का उत्पादयिता के ही साथ सम्बन्ध कैसे कह रहे हैं?

उत्तरपक्षी—**एवं हि दृश्यत इति**। शब्दार्थसम्बन्ध में लोकव्यवहार भी प्रमाण है। लोक में ऐसा देखा जाता है कि पितामह के पास बैठे हुये बालक के सम्बन्ध में पितामह से ही कोई प्रश्न करता है-'यह किसका पुत्र है'? जिससे पूछा जाता है वह पितामह प्रश्न के उत्तर में उस पुत्र के पिता का ही नाम लेकर कहता है-'यह देवदत्त का पुत्र है, अथवा यज्ञदत्त का पुत्र है'। प्रश्न के उत्तर में उत्तरयिता=पितामह पुत्र के **उत्पादयिता**=जनक का ही नामनिर्देश करता है, अपना नहीं। इस तरह प्रष्टा का उत्पादयितृविषय ही प्रश्न है, तथा उत्तरयिता का भी उत्पादयितृविषय ही उत्तर है। लोक में इस तरह का प्रश्न और उत्तर से स्पष्ट है कि अपत्य का उत्पादयिता के ही साथ योग है, अन्य के साथ के नहीं। 'अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्' १.४.१६२ यह अपत्यहेतुत्वरूप गौणसम्बन्ध को लेकर सामानाधिकरण्य है।

अस्ति प्रयोजनमेतत्? किं तर्हीति? * तत्र प्रत्ययान्ताद् गोत्रे प्रति-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

षेधो, गोत्रे नियतत्वात् * तत्र प्रत्ययान्ताद् गोत्रे प्रतिषेधो वक्तव्यः,-औपगवस्यापत्यमिति। किं कारणम्? 'गोत्रे नियतत्वात्'। गोत्रे ह्ययं नियमः क्रियते। तेन यश्चासौ यथाजातीयकश्च गोत्रे प्रत्ययः प्राप्नोति स एकः स्यात्। कश्च प्राप्नोति? यः प्रत्ययान्तात् * परमप्रकृतेश्चोत्पत्तिः * परमप्रकृतेश्चोत्पत्तिर्वक्तव्या। अयोगाद्धि न प्राप्नोति। एतयोश्चैष परिहारः। पठिष्यति ह्याचार्यः-'यूनि चान्तर्हितेऽप्राप्ति'-रिति तस्य च-'यथा तत्प्रत्ययान्तम्'। यथा तदेव विकारावयवप्रत्ययान्तं द्वितीयं च तृतीयं च विकारं संक्रामति एवमिहापि तदेवाऽपत्यप्रत्ययान्तं द्वितीयं च तृतीयं चापत्यं संक्रमिष्यति। भवेत्सिद्धम्-औपगवस्यापत्यमौपगवः, यत्र स एवानन्तर इष्यते स एव गोत्रे, इदं तु खलु न सिध्यति-गर्गस्यापत्यं गार्ग्य इति। अत्र ह्यन्योऽनन्तर इष्यते, अन्यो गोत्रे।

आक्षेपक आचार्य—**अस्ति प्रयोजनमिति**। आप ने अभी-अभी सूत्र का जो प्रयोजन 'अनेक अपत्यों के साथ उत्पादयिता का योग होने पर अनेक प्रत्ययों की प्राप्ति में एकप्रत्ययविधानार्थ बताया था, क्या वह प्रयोजन है?

अन्य आचार्य—**किं तर्हीति**। यह प्रयोजन मानने में आप को क्या आपत्ति है? इस पर आक्षेपक आचार्य दो आपत्तियाँ प्रस्तुत करते हैं-**तत्र प्रत्ययान्तादिति**। 'एको गोत्रे' सूत्र का उक्त प्रयोजन मानने में प्रथम दोष यह होगा कि प्रत्ययान्त से भी गोत्र अर्थ में प्रत्यय प्राप्त होगा, उसका प्रतिषेध कहना होगा। 'एको गोत्रे' सूत्र में जो नियम किया गया है वह गोत्र में ही नियत है। नियम सजातीय की अपेक्षा से होता है। 'गोत्रे एक एव प्रत्ययः' ऐसा नियम करने से गोत्र में ही अनेक प्रत्ययव्यक्ति का ही निषेध होगा। परन्तु 'अपत्यप्रत्ययान्त से अपत्यार्थ में पुनः प्रत्यय न हो' इस तरह का निषेध उक्त नियम से नहीं हो सकेगा, अतः अपत्यप्रत्ययान्त औपगव से पुनः अपत्यार्थ में ही प्रत्यय प्राप्त होगा। एवं 'गोत्रे एक एव प्रत्ययः' इस नियम के पक्ष में दूसरा दोष देते हैं-**परमप्रकृतेरिति**। 'गार्ग्यस्य गोत्रापत्यम्' इस अर्थ में प्रत्ययान्त से भी गोत्रार्थक प्रत्यय प्राप्त होगा जिसका प्रतिषेध के लिए आप को परमप्रकृति गर्ग आदि से गोत्रार्थ में यञ् प्रत्यय कहना होगा।

आगे कहे जाने वाले दोष के साथ निरुक्त दो दोषों का परिहार करते हैं-**एतयोश्चेति**। यहाँ वक्ष्यमाण की अपेक्षा से 'च'शब्द समुच्चयार्थक है। पूर्वोक्त दो दोषों तथा आगे कहे जाने वाले दोषों का यह परिहार है। इसी सूत्र के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भाष्य में आगे आचार्य 'यूनि चान्तर्हितेऽप्राप्तिः' ऐसा वचन कहेंगे। **'अन्तर्हिते**=चतुर्थ आदि के द्वारा व्यवहित होने से पञ्चमादि में युवार्थक प्रत्यय अप्राप्त होगा' ऐसा दोष उठाया गया है। यह दोष सभी अपत्ययुक्त में प्राप्त होगा। इस दोष का वारण करने के लिए भी वहाँ नियम का सहारा लिया गया है। वहाँ नियम से गोत्रप्रत्ययान्त मान कर जैसे गोत्र से ही युवा अर्थ में प्रत्यय उत्पन्न है वैसे यहाँ भी उत्पन्न हो जायेगा। एवं विकारार्थक मयट् प्रत्यय का बाध करने के लिए आचार्य ने 'ञितश्च तत्प्रत्ययात्' ४.३.१५५ सूत्र का आरम्भ किया है। इस सूत्र का प्रत्याख्यान किया गया है। वह इस तरह कि 'कपोतस्य विकारः कापोतः' 'तस्य विकारः' ४.३.१३४ से अण्, एवं 'कपोतस्यावयवः कापोतः' 'तस्येदम्' ४.३.१२० से अण्। 'कपोतस्यावयवस्यावयवः, कपोतस्य विकारस्य विकारः' इस अर्थ में भी अण् प्रत्यय हो कर 'कापोतः' यही रूप होता है, क्यों कि अभेदव्यवहार से कपोत का अवयव भी कपोत का ही अवयव है, एवं कपोत का विकार भी कपोत का ही विकार है, अतः अभेदोपचार से कापोत अवयव वाच्य होने पर 'कापोतः' यही रूप होगा, अतः मयड्बाधनार्थ किया गया 'ञितश्च तत्प्रत्ययात्' ४.३.१५५ सूत्र व्यर्थ है। वैसे प्रकृत में भी उपगु एवम् औपगव का, एवम् औपगव और औपगवापत्य का अभेदोपचार मान कर पौत्रप्रभृति सभी के सभी औपगवशब्द से ही कहे जायेंगे, एवं गार्ग्यायणापत्य द्वितीय, तृतीय आदि भी सभी के सभी अभेदव्यवहार के द्वार गार्ग्यायणशब्द से ही कहे जायेंगे, अतः कोई दोष नहीं रहा। इससे प्रत्ययान्त से गोत्रार्थ में प्रत्यय का प्रतिषेध नहीं कहना पडेगा एवं परमप्रकृति से उत्पत्ति भी नहीं कहनी पडेगी, एवं नियमपक्ष में 'यूनि चान्तर्हितेऽप्राप्तिः' इस दोष का परिहार भी हो जायेगा।

अन्य आचार्य इस की अव्याप्ति दिखा रहे हैं—**भवेत्सिद्धमिति**। जहाँ यही अपत्यरूप अर्थ अनन्तर में इष्ट है तथा वही गोत्र में इष्ट है, वहाँ 'औपगवस्य गोत्रापत्यमौपगवः' ऐसा रूप हो सकता है, परन्तु जहाँ अनन्तर में अन्य प्रत्यय इष्ट है तथा गोत्रार्थ में अन्य प्रत्यय इष्ट है वहाँ अभेदव्यवहार के द्वारा एक ही प्रत्यय होगा, प्रत्ययभेद नहीं होने से दोष होगा। जैसे-'गर्गस्यापत्यं गार्गिः' 'अत इञ्' ४.१.९५ से अपत्यार्थ में इञ् प्रत्यय करेंगे। अभेदोपचार से गार्गि में गर्गत्वारोप करेंगे। इस तरह गर्गशब्दवाच्य गार्गिशब्द भी होगा। तथा 'गार्गेरपत्यं पुमान्' इस विग्रह में भी गार्गिशब्द से पुनः इञ् प्रत्यय हो कर 'गार्गिः' यही रूप होने लगेगा, जब कि उक्त विग्रह में 'गार्ग्यः' रूप इष्ट है। यद्यपि 'गर्गादिभ्यो यञ्' ४.१.१०५ इस वचनसामर्थ्य से 'गार्ग्यः' भी रूप होगा, तथापि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'गार्गिः' भी रूप होगा; अतः अपत्यप्रकरण में अभेदोपचार से दोष आगया। इस लिए अपत्यप्रकरण में भेदव्यवहारपक्ष ही मानना चाहिये। भेदपक्ष मानने में प्रत्ययान्त से प्रतिषेध और परमप्रकृति से उत्पत्ति कहनी चाहिये, जिससे पूर्वोक्त दोष न हो सके।

*** स्त्रियां चाऽनियमः * स्त्रियां च युवत्यां नियमो न प्राप्नोति- औपगवी माणविका। नियमाद्धि स्त्री पर्युदस्यते 'एको गोत्रे' 'गोत्राद्यून्यस्त्रिया'मिति। कतरस्मिन्पक्षेऽयं दोषः? 'उत्पादयितर्यपत्ययुक्ते'। उत्पादयितरि तावदपत्ययुक्ते न दोषः। उत्पादयितरि ह्यपत्ययुक्ते न सर्वत उत्पत्त्या भवितव्यम्। तत्र नियमो नोपपद्यते। असति नियमे नैष दोषः। सर्वेषु तर्ह्यपत्ययुक्तेष्वयं दोषः। सर्वेषु तर्ह्यपत्ययुक्तेषु सर्वत उत्पत्त्या भवितव्यम्। तत्र नियम उपपन्नो भवति। सति च नियम एष दोषः। उत्पादयितरि चापत्ययुक्ते स्त्रिया युवत्या अभिधानं न प्राप्नोति। किं कारणम्? गोत्रसंज्ञां युवसंज्ञा बाधते। गोत्राद्यूनि चाऽस्त्रियां प्रत्ययो विधीयते।**

नियम का अन्यत्र अव्याप्ति देते हैं—**स्त्रियां चेति**। यहाँ वार्तिक में 'च' शब्द दोषसमुच्चयार्थ है। पूर्व के दो दोष अभी ज्यों के त्यों बने हुए हैं। तीसरा दोष यह होगा कि पूर्वोक्त नियम स्त्री और युवति में प्राप्त नहीं हो रहा है, अतः 'औपगवस्यापत्यं स्त्री औपगवी माणविका' में औपगवीशब्द से अभेदोपचारात् औपगव का ग्रहण होगा। फिर इञन्त से 'इतो मनुष्यजातेः' ४.१.६५ से होने वाला ङीष् अप्राप्त होगा, अतः 'औपगवी माणविका' की असिद्धि होने से अव्याप्ति होगी। वार्तिक में 'स्त्रियां च' ऐसा सामान्य कथन है, परन्तु उसी का भाष्य में 'स्त्रियां युवत्याम्' ऐसा विशेष कथन है। 'एको गोत्रे' इस नियम से अनन्तरापत्य स्त्री के एक होने से उसमें अनियम का प्रसङ्ग नहीं है, अतः सामर्थ्यवशात् पौत्रप्रभृति का अपत्य स्त्री गृहीत होगी। 'गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्' ४.१.९४ में 'अस्त्रियाम्' निषेधवचन है। 'अनन्तरस्य विधिर्भवति प्रतिषेधो वा' इस न्याय से 'गोत्राद्यूनि' का ही 'अस्त्रियाम्' से निषेध होगा, 'एको गोत्रे' का नहीं। 'वृद्धं युवा' इस वचन के एकसंज्ञाधिकार में पठित होने से युवसंज्ञा से गोत्रसंज्ञा का बाध हो जायेगा। 'जीवति तु वंश्ये युवा' ४.१.१६३ सूत्र में 'तु'शब्द अवधार- णार्थक है, अतः 'वंश्ये जीवति सति युवैव संज्ञा स्याद्, न गोत्रसंज्ञा' ऐसा नियम होने से पौत्रप्रभृति का अपत्य स्त्री की गोत्रसंज्ञा नहीं होगी, अतः 'एको गोत्रे' यह नियम नहीं है। एवम् 'अस्त्रियाम्'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस निषेध से गोत्र से युवा अर्थ में भी प्रत्यय होने का नियमन नहीं किया जा सकता है, अतः स्त्रीत्वविवक्षा में अनेक प्रतययों का प्रसङ्ग होगा। एवम् 'औपगवस्यापत्यं स्त्री' इस विग्रह में 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ् प्रत्यय हो कर इञ् लक्षण 'इतो मनुष्यजातेः' ४.१.६५ से ङीष् होता है; अभेदोपचार में वह सिद्ध नहीं हो सकेगा। औपगवग्रहण से औपगवि का भी ग्रहण होगा, जिससे अणन्तलक्षण ङीप् की भी प्रवृत्ति होगी, अतः ङीष्विधान पृथक् कहना पडेगा। यदि ङीप् अथ वा ङीष् दोनों में कोई रूपभेद नहीं होना कहा जाये तो यह भी ठीक नहीं है, वह इस लिए कि रूपभेद नहीं होने पर भी स्वरभेद स्पष्ट है। चूँकि 'गोत्रं च चरणैः सह' यहाँ पर शास्त्रीयगोत्र का ही ग्रहण है और स्त्रीलिङ्ग में गोत्रसंज्ञा नहीं होती है, अतः अभेदपक्ष में अदन्तलक्षण इञ् का भी अण्ग्रहण से गृहीत होने से औपगवी में 'इतो मनुष्यजातेः' ४.१.६५ से ङीष् की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। एवं च अन्य दोष यह होगा कि वचनसामर्थ्य से 'गर्गादिभ्यो यञ्' ४.१.१०५ गोत्र अर्थ में चरितार्थ होता हुआ स्त्रीत्व अर्थ में पौत्री अर्थ वाच्य होने पर ही होगा। इस तरह पौत्री में 'गर्गादिभ्यो यञ्' ४.१.१०५ सावकाश है। एवम् इसका अन्यत्र भी पौत्रप्रभृति अपत्यभूता अजीवद्वंश्या गोत्रभूता स्त्री में अवकाशत्व होगा। युवसंज्ञा से गोत्रसंज्ञा का बाध होने से जीवद्वंश्या स्त्री में यञ् आदि सावकाश नहीं हो सकेंगे। परन्तु सिद्धान्ततः स्त्रीलिङ्ग में युवसंज्ञा का निषेध होने से गोत्र अर्थ में यञादि ही होंगे, यह शास्त्र का तात्पर्य है। फिर अपत्यसामान्यलक्षण 'अत इञ्' ४.१.९५ से विहित इञ् आदि को नहीं रोका जा सकेगा। 'पितुरेवापत्यम्' इस पक्ष में उपगु का तृतीय वाच्य होने पर अण्णन्त औपगवशब्द से अदन्त- लक्षण इञ् होगा। ज्येष्ठ पिता आदि के जीवित रहने पर चतुर्थ अपत्य वाच्य होने पर इञन्त औपगवि से 'यञिञोश्च' ४.१.१०१ के द्वारा फक् होगा। इस तरह फक् और इञ् की परम्परा में मूलपुरुष से गोत्र वाच्य होने पर निन्यानबे प्रत्ययों की परम्परा अथवा हजारवाँ गोत्र वाच्य होने पर ९९९ प्रत्ययों की परम्परा प्राप्त होगी। एवं पितामह आदि का भी मुख्यपक्ष में तृतीय गोत्र वाच्य होने पर उपगुशब्द से अण् होने पर अण्णन्त औपगवशब्द से इञ् भी प्राप्त होगा, एवं चतुर्थ गोत्र वाच्य होने पर इञन्त से फक् प्राप्त होगा।

इस तरह इस परम्परा में सौंवा गोत्र वाच्य होने पर ९८ अनिष्ट प्रत्ययों की आपत्ति हो रही है। इस दोष का वारण करने के लिए आचार्य ने 'एको गोत्रे' ४.१.९३ तथा 'गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्' ४.१.९४ सूत्र पढा है। ये दोनों ही नियमसूत्र हैं। इन दोनों नियमसूत्रों से पुल्लिङ्ग में ही व्यावर्तन हो रहा है,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्त्रीलिङ्ग में नहीं। वह इस तरह कि-'वृद्धं युवा' ४.१.९३ इस वचन से तथा एकसंज्ञाधिकार में युवसंज्ञा से गोत्रसंज्ञा का बाध होने अथ वा 'जीवति तु वंश्ये युवा' ४.१.१६३ में 'तु'शब्द के द्वारा नियम से भी गोत्रसंज्ञा का बाध होने से पौत्रप्रभृति अपत्यस्त्री की गोत्रसंज्ञा नहीं है, अतः 'एको गोत्रे' यह नियम स्त्रीलिङ्ग में प्रवृत्त नहीं हो पा रहा है। एवं 'गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्' ४.१.९३ सूत्र में 'अस्त्रियाम्' इस निषेधवचन से युवापत्यस्त्री अर्थ में भी नियम नहीं है, अतः स्त्रीत्वविवक्षा में अनेक प्रत्ययों की प्राप्ति होने से दोष है। 'नियमाद्धि स्त्री पर्युदस्यते' इस वाक्य में 'नियमाद्' यह सामान्यापेक्ष एकवचन है, अतः इसका अर्थ 'नियमद्वयात्' ऐसा समझना चाहिये।

इतर आचार्य के दोषदान पर अन्य आचार्य प्रश्न करते हैं—**कतरस्मिन्पक्ष इति**। यह दोष किस पक्ष में है? जिस आचार्य का 'पितुरेवापत्यम्' यह पक्ष है, उस पक्ष का उपस्थापन कर इसी पक्ष में दोष आ रहा है। 'पितुरेवापत्यम्' यह पक्ष मानने वाले का पक्ष गिर जा रहा है। परन्तु जो आचार्य पौत्रप्रभृति को अपत्य मान रहे हैं, उनके मत में प्रत्ययपरम्पराप्राप्तिरूप दोष अवश्य रहेगा, अतः दोष दो पक्ष १-'पितुरेवापत्यम्', और २-'अपत्यं पौत्रप्रभृति' मानने पर किस पक्ष में आ रहा है? प्रथमपक्ष में दोष नहीं आता है।

द्वितीयपक्ष में दोष है, अतः यह मान कर अपना पक्ष स्पष्ट कराने के लिए प्रश्न करते हैं-**कतरस्मिन्निति**।

उत्तरभाष्य—**उत्पादयितरीति**। अपत्ययुक्त उत्पादयिता में यह दोष है।

अन्य आचार्य 'पितुरेवापत्यम्' इस लोकसिद्धान्त का आदर कर दोष का खण्डन करते हैं-**न दोष इति**। अपत्ययुक्त उत्पादयिता में यह दोष नहीं है। अपत्य के साथ पिता का ही योग होता है, पितामह का नहीं। जैसा कि लोक में पितामह के समीप बैठे अपत्य के बारे में कोई पूछता है-'यह किसका अपत्य है'?, तो पितामह अपना नाम नहीं बता कर उसके पिता का ही नाम बताता है। एवं पिता के पास बैठे अपत्य के बारे में पितामह की जिज्ञासा के बारे में कोई पूछता है कि यह 'किसका अपत्य है' तो पिता अपना नाम नहीं बता कर पितामह का नाम बताता है। इस तरह जब उत्पादयिता के साथ ही अपत्य का योग है, अन्य के साथ के नहीं, एवम् उत्पादयिता से अपत्य की विवक्षा होने पर एक प्रकृति से एक ही प्रत्यय प्राप्त हो रहा है, अनेक नहीं, तब दोनों सूत्र नियमार्थक न हो कर विध्यर्थक ही माने जायेंगे। फिर जब दोनों सूत्र विध्यर्थक होंगे, तब नियम का अभाव होने से 'स्त्रियां

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चानियमः' स्त्रीलिङ्ग में नियम प्राप्त नहीं हो रहा है' यह आप ने क्या कह दिया? जब नियमपक्ष नहीं बन रहा है तब विधिपक्ष मानने पर भी प्रत्ययमाला-रूपदोष और गोत्रलक्षण प्रत्यय का अप्रसङ्गरूप दोष बना ही रहेगा।

अब भाष्यकार आगे कहे जाने वाले न्याय से अपत्य के साथ सभी उत्पन्न का योग कर अपत्ययुक्त की प्रकृति पिता आदि से अनेक प्रत्ययों का प्राप्तिरूप दोष दिखा रहे हैं-**सर्वेषु तर्हीति**। अपत्य का पौत्रप्रभृति सभी के साथ योग है, अतः उसकी एक मूलप्रकृति से अनेक प्रत्यय का प्राप्तिरूप दोष प्राप्त होने पर 'एको गोत्रे' ४.१.९३ और 'गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्' ४.१.९४ का नियामकत्व बन जाता है। इन दोनों सूत्रों का पुल्लिङ्ग में ही नियम होता है, स्त्रीलिङ्ग में नहीं, अतः स्त्रीलिङ्ग में एक प्रकृति से अनेक प्रत्ययों का प्राप्तिरूप दोष का तादवस्थ्य है। 'उत्पादयितरि चापत्ययुक्ते' इस पङ्क्ति में 'च'शब्द 'मात्र अन्य पक्ष' अर्थ में नहीं है, अपि तु अपत्ययुक्त उत्पादयिता अर्थ मानने पर भी पूर्वोक्त दोनों सूत्रों से युवतिस्त्री में गोत्रविषय यञ् आदि प्रत्ययों के द्वारा स्त्रीरूप अर्थ का कथन नहीं हो पा रहा है, यही यहाँ पर अनियम विवक्षित है। अर्थात् 'एको गोत्रे' सूत्र नियमपूर्वक गोत्रप्रत्यय के द्वारा युवतिस्त्री अर्थ को नहीं बता पा रहा है, यह अर्थ यहाँ विवक्षित है। 'एको गोत्रे' और 'गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्' ४.१.९४ इन दोनों सूत्रों का विधिपक्ष मानने पर भी युवसंज्ञा से गोत्रसंज्ञा का बाध होने पर यञ् आदि प्रत्ययों के द्वारा युवतिस्त्रीरूप अर्थ का कथन नहीं हो पा रहा है। इस तरह जहाँ गार्ग्यप्रकृति से फक् का विधान है वहाँ गार्ग्य-प्रकृतिक फक् के द्वारा भी युवतिस्त्री का अभिधान प्राप्त नहीं है। इस तरह गोत्रप्रत्ययान्त से स्त्रीभिन्न युवा अर्थ में ही सर्वत्र प्रत्यय का विधान होने से कहीं पर भी गोत्रप्रत्ययान्त से युवतिस्त्रीरूप अर्थ में प्रत्यय प्राप्त नहीं होने से गार्ग्यायणी आदि इष्ट रूपों की असिद्धि तादवस्थ्य है। इस बात को भाष्यकार कहते हैं-'गोत्राद्यूनि चास्त्रियां प्रत्ययो विधीयत इति'। अर्थात् 'नियमपूर्वक गोत्रप्रत्यय-प्रकृतिक युवसंज्ञक प्रत्यय के द्वारा युवतिस्त्रीरूप अर्थ नहीं आ पा रहा है'।

***यूनि चान्तर्हितेऽप्राप्तिः* यूनि चान्तर्हिते नियमस्याऽप्राप्तिः-गार्ग्यायणस्याऽपत्यमिति। कतरस्मिन् पक्षेऽयं दोषः? सर्वेष्वपत्य-युक्तेषु। सर्वेषु अपत्ययुक्तेषु तावन्न दोषः। सर्वेषु ह्यपत्ययुक्तेषु सर्वत उत्पत्त्या भवितव्यम्। तत्र नियम उपपन्नो भवति। सति नियमे नैष दोषः। उत्पादयितरि तर्ह्यपत्ययुक्तेऽयं दोषः।**

यहाँ वार्तिककार अन्य दोष भी उपस्थापित करते हैं—**यूनि चेति**। चतुर्थ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आदि के द्वारा व्यवहृत पञ्चम आदि के **अन्तर्हिते**= व्यहित होने पर पूर्वोक्त दोनों सूत्रों से नियम की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। जैसे-'गार्ग्यायणस्यापत्यम्' में प्रत्यय अप्राप्त रहेगा।

पूर्वपक्षी—**कतरस्मिन्निति**। जिसने दोषोद्भावन किया है, उसका यह पक्ष नहीं है, अपि तु पक्षप्रविभाग होने से भाष्यकार स्वयं विवरण कर रहे हैं-**कतरस्मिन्निति**। उपर्युक्त दोष किस पक्ष में आ रहा है?

अन्य आचार्य—**सर्वेष्विति**। अपत्ययुक्त सभी पिता आदि में प्रत्ययनियम का अप्राप्तिरूप दोष रहेगा।

इतर आचार्य—**तावन्नेति**। अपत्ययुक्त पिता आदि में प्रत्यय का प्राप्तिरूप दोष नहीं है। अपत्ययुक्त होने पर सर्वत्र मूलप्रकृति के अनन्तर अपत्यप्रत्ययान्त और युवप्रत्ययान्त से प्रत्ययमाला प्राप्त हो रही है। वहाँ एक हो या सभी हों, यह नियम नहीं है, अतः उन स्थलों पर दोनों शास्त्र नियामक होते हैं। इस तरह चतुर्थ आदि के द्वारा पञ्चम के व्यवहित होने पर भी नियम उपपन्न हो जा रहा है। नियम के उपपन्न हो जाने पर यह दोष नहीं रहता है।

उत्पादयितरि ह्यपत्ययुक्ते परमप्रकृतेरनन्तराद् गोत्राच्चाऽयोगान्न प्राप्नोति। यूनश्च न प्राप्नोति। किं कारणम्? गोत्रादिति नियमात्।

दोषवादी आचार्य—**उत्पादयितरीति**। अपत्यमात्र के साथ मूलप्रकृति पिता आदि का योग होने पर यदि उपर्युक्त नियम बन भी जाये तो 'पितुरेवापत्यम्' इस सिद्धान्त के अनुसार अपत्य का पिता के ही साथ योग होने पर प्रत्ययमाला प्राप्त नहीं होगी, इस पक्ष में चतुर्थ आदि के द्वारा पञ्चम आदि के व्यवहित होने पर अनियम होगा। तीन के द्वारा पञ्चम का अपत्यापत्यवत्सम्बन्ध नहीं होने से अपत्ययुक्त **उत्पादयिता**=पिता आदि पक्ष मानने पर भी परमप्रकृति से प्रत्यय की प्राप्ति नहीं होगी। एवं **युवसंज्ञक**=प्रत्ययान्त चतुर्थ से भी युवा अर्थ में प्रत्यय प्राप्त नहीं है। वह इस लिए कि 'गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्' ४.१.९४ सूत्र में गोत्रप्रत्ययान्त से ही प्रत्यय विहित है। चतुर्थ की युवसंज्ञा होती है, युवसंज्ञा से गोत्रसंज्ञा का बाध होता है, अतः चतुर्थ की युवसंज्ञा होने से गोत्रप्रत्ययान्त से प्राप्त होने वाला युवसंज्ञक प्रत्यय युवप्रत्ययान्त से प्राप्त नहीं है। अब यहाँ प्रश्न हो सकता है कि अपत्ययुक्त उत्पादयितृपक्ष में नियम के द्वारा कोई व्यावर्त्य नहीं होने से 'गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्' ४.१.९४ विध्यर्थक होगा। यहाँ व्यवधानशून्ययुवा अर्थ में गोत्रप्रत्ययान्त से प्रत्यय सिद्ध ही है। व्यवहितयुवा अर्थ में गोत्रप्रत्ययान्त के साथ युवार्थक का सम्बन्ध नहीं होने से अप्राप्त प्रत्यय का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विधान है। फिर 'यूनि चान्तर्हितेऽप्राप्तिः प्रत्ययस्य' ऐसा क्यों कहा गया है?

इसका उत्तरपक्ष इस प्रकार है—अपत्ययुक्त उत्पादयितृपक्ष में गोत्रसमुदाय में प्रत्ययमाला की प्राप्ति होने पर जैसे 'एको गोत्रे' सूत्र नियमार्थक है, वैसे अपत्ययुक्त उत्पादयितृपक्ष में युवसमुदाय अथवा युवसामान्य अर्थ गम्य होने पर युवशब्द से गम्यमान गोत्रप्रत्ययान्त और अगोत्रप्रत्ययान्त, उभयत्र स्थलों में प्रत्यय प्राप्त होने पर-'युवा अर्थ वाच्य होने पर गोत्रप्रत्ययान्त से ही प्रत्यय हो, अगोत्रप्रत्ययान्त से नहीं' ऐसा नियम के लिये 'गोत्राद्यून्यस्याम्' ४.१.९४ सूत्र है। इस तरह नियम कर देने पर उक्त सूत्र का विधित्व नहीं रह जाता हैं, अतः ठीक ही कहा है-'यूनि चान्तर्हितेऽप्राप्तिः प्रत्ययस्ये'ति।

सन्तु तर्हि सर्वेऽपत्ययुक्ता इति। कथम्पुनर्ज्ञायते- सर्वेष्वपत्ययुक्ता इति? एव हि याज्ञिकाः पठन्ति- 'दशपुरुषानूकं यस्य गृहे शूद्रा न विद्येरन् स सोमं पिबेदि'ति। यदि च सर्वेऽपत्ययुक्ता भवन्ति तत एतदुपपन्नं भवति। कथं यदुक्तं-'पितामहस्योत्सङ्गे दारकमासीनं कश्चित्कञ्चित् पृच्छति कस्याऽयमिति, स आह-देवदत्तस्य यज्ञदत्तस्य वेति,-उत्पादयितारं व्यपदिशति नात्मान'मिति। उत्पत्तिस्तस्य विवक्षिता-'सर्वेषां नेदमपत्यं, देवदत्त- स्त्वस्योत्पादयिते'ति।

उत्तरभाष्य—**सन्तु तर्हीति**। आप सभी को अपत्ययुक्त मान लीजिये। सभी को अपत्ययुक्त मानने पर अनन्तरोक्त दोष इस लिये नहीं होगा कि व्यवहित युक्त अर्थ वाच्य होने पर भी वचनप्रामाण्य से गोत्रप्रत्ययान्त से ही गोत्रप्रत्यय होगा। इससे आप द्वारा प्रदत्त 'यूनि चान्तर्हितेऽप्राप्तिः प्रत्ययस्य' दोष निरस्त हो गया। सभी अपत्ययुक्त हैं, इसमें प्रमाण के रूप में यज्ञप्रतिपादक मन्त्र उद्धृत करते हैं-**एवं हि याज्ञिका इति**। यहाँ 'याज्ञिकाः' का यज्ञप्रतिपादका मन्त्राः कल्पसूत्रकारा वा' ऐसा अर्थ है।

यज्ञप्रतिपादक मन्त्र अथ वा कल्पसूत्रकार कहते हैं-**यस्य गृहे**=जिसके कुल में दश पीढी तक शूद्र नहीं होते हैं वह **सोमम्**=अमृतपान करता है। इसका भाव इस प्रकार है-अनुपूर्वक कै शब्दे धा.पा.९१६ धातु से **अनूकानम्**=यहाँ अनूकः=भाव अर्थ में 'घञर्थे क विधानम्'वा.२२०४ से 'क' प्रत्यय विहित है। 'अन्येषामपि दृश्यते' ६.३.१३७ से अनु-घटक उ को दीर्घ हो कर अनूक पद शब्द अर्थ में है। 'दशपुरुषा अस्मिन्ननूके' ऐसा बहुव्रीहि है। एवं 'दशपुरुषोऽनूकोऽस्मिन्' ऐसा पुनः बहुव्राहि है। इससे 'दश पीढी तक का कथन' ऐसा अर्थ आता है-अर्थात् दश पुरुषों=पीढिओं में जिसके कुल में 'शूद्रावेदी पतत्यधः' मनुस्मृ.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३.१६ शूद्रा के साथ सहवास करने वाला ब्राह्मणादि द्विज नरकगामी न हो, वह परलोक में सोमपान करता है। एक के पतित होने पर सभी पतित होते हैं, यह 'दशपुरुषानूक' इस यज्ञप्रतिपादक मन्त्र का वाच्यार्थ है। इससे अर्थतः यह आया कि एक के ही सभी के प्रति अपातहेतुता होने से अपत्य कहा गया है।

अब यहाँ प्रश्न उठ सकता है कि **अपत्य**=पुत्र की उत्पत्ति में मात्र **एकैकस्य**= पिता का ही सम्बन्ध होता है, फिर उस पुत्र के साथ अन्य का सम्बन्ध कैसे कहा जा सकता है? लोक में क्रियागर्भ ही सर्वत्र मान्य है, अन्य नहीं। तो इसका उत्तर यह होगा कि पौत्र आदि की उत्पत्ति में पुत्रोत्पादन ही व्यापार है, पुत्रोत्पत्ति के विना पौत्रोत्पत्ति असम्भव है। इस पक्ष में 'अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्' ४.१.१६२ यह मुख्य सामानाधिकरण्य उपपन्न हो जाता है। एवम् अपत्यापत्य का अपत्यत्वोपचार होने से पूर्वपक्ष में गौण सामानाधिकरण्य है। इस तरह सभी अपत्य हो गये। सभी के अपत्ययुक्त होने पर ही पूर्वोक्त याज्ञिकवचन उपपन्न होता है।

इससे पूर्व में जो पक्ष उठाया गया था उसका समाधान करते हैं-**कथं यदुक्तमिति**। पितामह के समीप में बैठे बालक के सम्बन्ध में कोई पितामह से पूछता है-'यह किसका अपत्य है'?, तो वह पितामह उत्तर में उसके उत्पादयिता का नाम देवदत्त अथ वा यज्ञदत्त ही बताता है, पितामह स्वयम् अपना नाम नहीं बताता है-'ममायमि'ति; तो इस पक्ष का उत्तर यह समझना चाहिये- 'कस्याऽयम्' इस प्रश्न से उत्पत्ति विवक्षित है। अर्थात् यह किसके द्वारा उत्पन्न किया गया है?, इस प्रश्न के उत्तर में सामान्यशब्द को भी कहीं विशेष अर्थ में देखे जाने से उत्पादयिता का नाम बताया जा रहा है-देवदत्त इसका उत्पादयिता है।

अथ सर्वेष्वपत्ययुक्तेषु किमनेन क्रियते 'एको गोत्र' इति? * सर्वेषामपत्ययोगात् प्रत्ययान्ताद् गोत्रे प्रतिषेधार्थमेको गोत्रे *** सर्वेषामप्यपत्ययोगात्प्रत्ययान्ताद् गोत्रे प्रतिषेधार्थमेको गोत्र इत्युच्यते। अस्ति प्रयोजनमेतत्? किं तर्हि? न तु ज्ञायते क एको भवतीति? यो वा परमप्रकृतेर्यो वाऽनन्तरादिति *** नियमानुपपत्तिश्च *** नियमश्च नोपपद्यते। किं कारणम्?**

पूर्वपक्षी—**अथ सर्वेष्विति**। यदि सभी अपत्ययुक्त हैं तो 'एको गोत्रे' सूत्र क्या करता है?

उत्तरपक्षी—**सर्वेषामिति**। जब गर्ग के पौत्रप्रभृति सभी के सभी अर्थात् गर्ग,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गार्गि और गार्ग्य सभी के अपत्य होंगे तब गार्गि और गार्ग्य शब्द से प्रत्यय न हो, अपि तु गर्गशब्द से ही प्रत्यय हो, इस प्रयोजन के लिए 'एको गोत्रे' सूत्र है।

अन्य आचार्य—**न तु ज्ञायत इति**। 'एको गोत्रे' सूत्र में एक पद का सामान्यग्रहण है, उससे विशेष का निश्चय नहीं हो सकेगा, अतः अप्रतिपादक होने से सन्देहलक्षण अप्रामाण्य प्राप्त हो रहा है। परन्तु 'अपत्ययुक्त उत्पादयिता में क्रम से सम्बन्धविवक्षा होने पर गोत्रसमुदाय में प्रत्ययमाला प्राप्त होने पर एक ही प्रत्यय हो' यह कहने पर जो परमप्रकृति से प्राप्त है, अथ वा **अनन्तराद्**=व्यवधानशून्य से प्राप्त है, वही होता है।

इस पक्ष में 'एक'पद से अज्ञानलक्षण दोष नहीं है। परन्तु इस पक्ष में इतर आचार्य दोष दे रहे हैं-**नियमानुपपत्तिश्चेति**। यदि अपत्ययुक्त उत्पादयिता के साथ क्रम से सम्बन्ध करेंगे तो एक से एक ही प्रत्यय प्राप्त होगा, प्रत्ययमाला नहीं। इस तरह कोई व्यावर्त्य नहीं होने से 'एको गोत्रे' का नियम-पक्ष नहीं बन सकता है।

*** न ह्येकस्मिन्नपत्येऽनेकप्रत्ययप्राप्तिः * न ह्येकस्मिन्नपत्येऽनेकप्रत्ययः प्राप्नोति। किं तर्हि? * अपत्याऽन्तरे शब्दान्तरात्प्रत्ययान्तरप्राप्तिः * अपत्यान्तरेऽपत्यान्तरे शब्दान्तराच्छब्दान्तरात्प्रत्ययान्तरं प्रत्ययान्तरं प्राप्नोति। फगन्तादिञ्, इञन्तात्फगिति फगिञोर्दाशतयी प्रत्ययमाला प्राप्नोति।**

इसी को स्पष्ट करते हैं—**न ह्येकस्मिन्निति**। एक अपत्य होने पर अनेक प्रत्यय प्राप्त नहीं होगा। एक प्रत्यय से एक अपत्य अर्थ को कह दिया गया, पुनः उसी अर्थ को कहने के लिए दूसरे प्रत्यय की प्राप्ति नहीं है, अतः उसका निवारण व्यर्थ है। एक अपत्य होने पर अनेक प्रत्यय प्राप्त नहीं है, अपि तु-**अपत्यान्तर इति**-वार्तिक में सामान्यापेक्ष एकवचन है, परन्तु भाष्यकार साकल्यप्रतिपादन के लिए भेद और वीप्सा मान कर इस वार्तिक की व्याख्या करते हैं-**अपत्यान्तरेऽपत्यान्तर इति**। अन्य-अन्य अपत्य में अन्य-अन्य शब्द से अन्य-अन्य प्रत्यय प्राप्त होगा।

दोषवादी आचार्य—**फगन्तादिति**। अन्य-अन्य अपत्य होने पर अन्य-अन्य प्रकृति से अन्य-अन्य प्रत्यय प्राप्त होंगे। जैसे-फगन्त गार्ग्यायण से अपत्य अर्थ में 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ्, इञन्त गार्गिशब्द से 'यञिञोश्च' ४.१.१०१ से फक्। इस तरह फक् और इञ् दाशतयी प्रत्यय प्राप्त होगा। 'दश अवयवा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यस्य सङ्घातस्य स दशतयः सङ्घस्तत्र भवा **दाशतयी**'=अनेक प्रत्यय की प्राप्ति होगी। यहाँ दाशतयी पद अनेक प्रत्ययप्रतिपादनपरक है, इससे दश अर्थ विवक्षित नहीं है।

कतरस्मिन्पक्षेऽयं दोषः? सर्वेष्वपत्ययुक्तेषु। सर्वेष्वपत्ययुक्तेषु तावन्न दोषः। सर्वेष्वपत्ययुक्तेषु सर्वत उत्पत्त्या भवितव्यम्। तत्र नियम उपपन्नो भवति। सति नियमे नैष दोषः। 'उत्पादयितरि तर्ह्यपत्ययुक्ते'। उत्पादयितरि तर्ह्यपत्ययुक्तेऽयं दोषः। उत्पादयितरि ह्यपत्ययुक्ते न सर्वत उत्पत्त्या भवितव्यम्। तत्र नियमो नोपपद्यते। असति नियमे एष दोषः। उत्पादयितरि चापत्ययुक्ते न दोषः।

अन्य आचार्य—**कतरस्मिन्निति**। यह दोष किस पक्ष में है?, 'पितुरेवापत्यम्' पक्ष में अथ वा 'सर्वेष्वपत्ययुक्तेषु' पक्ष में?

दोषवादी—**सर्वेष्विति**। पौत्रप्रभृति को भी अपत्य मानने के पक्ष में यह दोष है।

उत्तरपक्षी—**तावन्न दोष इति**। पौत्रप्रभृति को भी अपत्य मानने के पक्ष में एकप्रकृति से प्रत्ययमाला प्राप्त होने पर 'एको गोत्रे' नियामक होगा-'गोत्र अर्थ में मूलप्रकृति से एक ही प्रत्यय हो'। इससे अन्य का व्यावर्तन हो जायेगा, जिससे दोष नहीं है। इसमें अपत्यान्तर के होने से शब्दान्तर से अनेक प्रत्यय की प्राप्ति होगी-फगन्त से इञ् और इञन्त से फक्। 'पितुरेवापत्यम्' इस पक्ष में सभी से प्रत्यय प्राप्त नहीं होने पर उक्त नियम नहीं हो सकेगा। नियम नहीं होने पर दाशतयी प्रत्यय प्राप्त है।

उत्तरपक्षी इस दोष का 'पितुरेवापत्यम्'पक्ष में हटाता है—**उत्पादयितरि चेति**। अपत्ययुक्त उत्पादयितृपक्ष में यह दोष नहीं है।

कथम्?

अपत्यं समुदायश्चेन्नियमोऽत्र समीक्षितः।
तस्मिन्सुबहवः प्राप्ता नियमोऽस्य भविष्यति।।

अपत्यमित्यनेन सर्वमुपग्वादिपितृकमपत्यं समीक्षितम्। तस्मिन् सुबहवः प्रत्ययाः प्राप्ताः। नियमोऽस्य भविष्यति-एको गोत्र इति। यदप्युच्यते-'स्त्रियां चाऽनियम' इति,-एवं वक्ष्यामि-'गोत्राद्यूनि प्रत्ययो भवति, स्त्रियां ने'ति। एवमपि स्त्रिया युवत्या अभिधानं न प्राप्नोति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ दोषाभाव स्पष्ट करते हैं-**अपत्यमिति**। एक अपत्यपक्ष में अनेक प्रत्ययों की प्राप्ति नहीं है। यदि 'अपत्यं पौत्रप्रभृतिगोत्रम्' ४.१.१६२ के अनुसार **अपत्यम्**= उपगु आदि पिता हैं जिसके ऐसा जो पौत्रप्रभृति समुदाय, उसको अपत्य मानेंगे तो एक प्रकृति से प्रत्ययमाला प्राप्त होने पर 'एको गोत्रे' नियम के द्वारा एक प्रत्यय की प्राप्ति तथा अन्य का निषेध हो जायेगा। **तस्मिन्**= समुदायपक्ष में **सुबहवः**=अनेक प्रत्यय प्राप्त होने पर नियम होगा। इसके द्वारा अन्य का निषेध हो जायेगा।

इससे पूर्व में आक्षेपक ने 'स्त्रियां चानियमः' कहा था, उसका निवारण कर रहे हैं-**यदप्युच्यत इति**। पौत्रप्रभृति को अपत्य मानने के पक्ष में मूल-प्रकृति से अनेक प्रत्यय प्राप्त होने पर 'एको गोत्रे' से स्त्रीभिन्न में ही नियम होगा, स्त्रीलिङ्ग में नहीं, अतः गोत्रापत्य स्त्री वाच्य होने पर मूलप्रकृति से **सुबहवः**=अनेक प्रत्ययों की प्राप्ति का दोष रहेगा ही।

इस पक्ष में आचार्य ने 'गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्' ४.१.९४ सूत्र में 'अस्त्रियाम्' निषेध किया है; इस दोष का मार्जन के लिए सूत्र का न्यास बदलते हैं-**एवं वक्ष्यामीति**। 'गोत्राद्यूनि' एक सूत्र रखेंगे। इसका अर्थ होगा-'युवा अर्थ गम्य होने पर गोत्र प्रत्ययान्त से एक ही प्रत्यय हो'। इसके बाद दूसरा सूत्र होगा-'स्त्रियां न'। इसमें पूर्व सूत्र 'गोत्राद्यूनि' का अनुवर्तन होगा। लिङ्गसामर्थ्यात् 'यूनि' का 'युवत्याम्' ऐसा विपरिणाम करेंगे। अर्थ होगा-'युवतिस्त्री वाच्य होने पर गोत्रप्रत्य-यान्त से एक प्रत्यय का निषेध हो'।

आक्षेपक आचार्य—**एवमपीति**। 'स्त्रियां न' यह योगविभाग करने पर भी यद्यपि 'गोत्रप्रत्ययान्त से युवापत्य अर्थ वाच्य होने पर प्रत्यय हो' इस नियम का निषेध नहीं होता है, तथापि युवप्रत्यय का ही निषेध प्राप्त होता है, युवसंज्ञा का नहीं। इस युवसंज्ञा से गोत्रलक्षण प्रत्यय प्राप्त नहीं हो रहे हैं, अपि तु अपत्यसामान्यलक्षण प्रत्यय ही प्राप्त होंगे। इस तरह 'गार्ग्यस्यापत्यं स्त्री' इस अर्थ में गार्ग्य शब्द से यञ् प्रत्यय प्राप्त नहीं होगा। यञ् प्रत्यय नहीं होने पर 'यञश्च' ४.१.१६ और 'प्राचां ष्फ तद्धितः' ४.१.१७ के द्वारा विहित ङीप् और ष्फ नहीं होने से इष्ट रूप गार्गी और गार्ग्यायणी सिद्ध नहीं हो सकेगा।

एवं तर्ह्येवं वक्ष्यामि-'गोत्राद्यूनि प्रत्ययो भवति, ततः स्त्रियां लुक्'। एवमप्यौपगवी माणविका। अनुपसर्जनादिति ईकारो न प्राप्नोति। मा भूदेवम्-'अण्योऽनुपसर्जनमि'ति। 'अणन्तादनुप-सर्जनादि'त्येवं भविष्यति। नैवं शक्यम्-इह हि दोषः स्यात्-काश-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कृत्स्निना प्रोक्ता मीमांसा काशकृत्स्नी, काशकृत्स्नीमधीते काशकृत्स्ना ब्राह्मणीति। अण्णन्तादितीकारः प्रसज्येत।

उत्तरपक्षी इस दोष को हटाता है—**एवन्तर्हीति**। यदि योगविभाग करने पर भी यह दोष तदवस्थ है तो मैं अन्य प्रकार का योगविभाग करूँगा। प्रथमयोग होगा-'गोत्राद्यूनि', एवं द्वितीययोग होगा-'स्त्रियां लुक्'। इस तरह का न्यास करने से युवति-स्त्री अर्थ वाच्य होने पर गोत्र प्रत्ययान्त से पर में विहित प्रत्ययसमुदाय का लुक् हो जायेगा। इससे स्त्रीपक्ष में भी अनेक प्रत्ययों के श्रवण की आपत्ति नहीं होगी। एवं 'स्त्रियां लुक्' इस पक्ष में गार्ग्यशब्द से पर में विहित फक् का लुक् होने पर भी 'यञश्च' ४.१.१६ के द्वारा यञन्त लक्षण ङीप् होने से 'गार्गी' एवं 'प्राचां ष्फ तद्धितः' ४.१.१७ से ङीप् और फक् होने से गार्ग्यायणी यह दो रूप सिद्ध हो जायेंगे।

दोषवादी आचार्य 'स्त्रियां लुक्'पक्ष में भी दोष देते हैं—**एवमपीति**। 'स्त्रियां लुक्' यह न्यास करने पर भी 'औपगवस्यापत्यं स्त्री औपगवी' में अण्लक्षण ङीप् नहीं हो सकेगा। वह इस तरह कि 'औपगवस्यापत्यं स्त्री औपगवी' में 'अत इञ्' ४.१.९५ से विहित अदन्तलक्षण इञ् का लुक् है। 'अनुपसर्जनात्' ४.१.१४ के अधिकार में अण्लक्षण ङीप् विहित है। अर्थ के द्वारा इञ् के प्रति अण् उपसर्जन है, अतः अण्लक्षण ङीप् के अप्राप्त होने से 'स्यित्रां लुक्'पक्ष में भी दोष है।

अन्य आचार्य—**मा भूदेवमिति**। 'औपगवस्यापत्यं स्त्री' इस पक्ष में इञ् के प्रति अण् के उपसर्जन होने पर यद्यपि ङीप् अप्राप्त है, तथापि 'अण् जो अनुपसर्जन उससे पर में ङीप् हो' इस पक्ष में ङीप् हो जाने से औपगवी सिद्ध हो जायेगा। इञ् के लुक् होने पर इञ् की अण्णन्तप्रकृति ही इञर्थ को भी कह रही है, अतः अण्णन्त के अनुपसर्जन होने से ङीप् हो जायेगा।

'अण्योऽनुपसर्जनम्' इस पक्ष में दोषवादी आचार्य दोष दे रहे हैं—**नैवं शक्यमिति**। 'अण्णन्तादनुपसर्जनात्' इस पक्ष में औपगवी के सिद्ध होने पर भी 'काशकृत्स्ना ब्राह्मणी' इस प्रयोग में 'काशकृत्स्ना' में ङीप् की आपत्ति होगी। वह इस तरह कि 'काशकृत्स्नस्यापत्यं पुमान् काशकृत्स्निः, तेन प्रोक्ता मीमांसा काशकृत्स्नी' 'इञश्च' ४.२.११२ सूत्र के द्वारा 'तेन प्रोक्तम्' अर्थ में अण् प्रत्यय और अणन्त से ङीप्-काशकृत्स्नी, 'काशकृत्स्नीमधीत इति काशकृत्स्ना ब्राह्मणी' यहाँ पर 'तदधीते तद्वेद' ४.२.५९ से अध्येत्री अर्थ में अण्णन्त ङीबन्त काशकृत्स्नी से अण् प्रत्यय, 'प्रोक्ताल्लुक्' ४.२.६४ से अण् का लुक्, एवं 'लुक् तद्धि-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तलुकि' १.२.४६ से स्त्रीप्रत्यय ङीप् का लुक् होने पर अण्णन्त काशकृत्स्नपद ही अध्येत्री अर्थ में संक्रान्त है, तथा अनुपसर्जन भी है, अतः अध्येत्री अर्थ में संक्रान्त अनुप- सर्जन अण्णन्त काशकृत्स्नशब्द से 'काशकृत्स्ना ब्राह्मणी' में ङीप् की प्राप्ति होने लगेगी।

नैष दोषः-अध्येत्र्यामभिधेयायामण ईकारेण भवितव्यम्। यश्चात्राध्येत्र्यामभिधेयायामण्, लुप्तः सः। यश्च श्रूयते- उत्पन्नस्तस्मादीकार इति कृत्वा पुनर्न भविष्यति। इह तर्हि-औपगवी माणविका भार्याऽस्य औपगवीभार्यः; जातिलक्षणः पुंवद्भावप्रतिषेधो न प्राप्नोति। मा भूदेवं- 'वृद्धिनिमित्तस्ये'त्येवं भविष्यति। यस्तर्हि न वृद्धिनिमित्तः- ग्लुचुकायनी माणविका भार्याऽस्य ग्लुचुकायनीभार्यः। तस्मात्स्त्रिया युवत्या युवसंज्ञैव पर्युदसितव्या। तस्यां च पर्युदस्तायां गोत्रप्रत्ययान्तमेतद्यूनि वर्तते। इहोत्पादयितर्यपत्ययुक्ते प्रत्ययान्तात्प्रतिषेधो वक्तव्यः। परमप्रकृतेश्चोत्पत्तिर्वक्तव्या। सर्वेष्वपत्ययुक्तेषु प्रत्ययान्तात्प्रतिषेधो वक्तव्यः।

उत्तरपक्षी आचार्य—**नैष दोष इति**। अध्येत्री अर्थ वाच्य होने पर विहित अण्णन्त से ङीप् प्रत्यय होना चाहिये। परन्तु 'काशकृत्स्नीम् अधीते' अर्थ में जो अण् विहित है उसका 'प्रोक्ताल्लुक्' ४.२.६४ से लुक् हो चुका है। 'काशकृत्स्निना प्रोक्तां मीमांसामधीते' इस अर्थ में 'तदधीते तद्वेद' ४.२.५६ से तो अण् विहित है, उससे ङीप् हो कर 'काशकृत्स्नी' ऐसा ईकारघटितरूप हो चुका है, अतः उस अण् का सामर्थ्य सकृल्लक्षणन्याय से क्षीण है, इस लिए पुनः तल्लक्षण ईकार नहीं हो सकेगा। पहले टाप् अनुपपन्न था, अतः अपवाद की अप्रवृत्ति में उत्सर्ग का वारण सम्भव नहीं था, इस तरह इस लक्ष्य में अचरितार्थ होने से उत्पन्न हो गया।

'स्त्रियां लुक्'पक्ष में अन्य दोष देते हैं—**इह तर्हीति**। 'औपगवी भार्याऽस्य स औपगवीभार्यः' यहाँ पर युवसंज्ञा से गोत्रसंज्ञा का बाध होने के पक्ष में जोतिरूप नहीं होने से 'औपगवीभार्यः' में 'जातेश्च' ६.३.४१ के द्वारा होने वाला पुंवद्भावप्रतिषेध प्राप्त नहीं हो रहा है। परन्तु जब 'गोत्रं च चरणैः सह' म.भा.४.१.६३ में गोत्रपद से अपत्यमात्र का ग्रहण करेंगे तब 'औपगवीभार्यः' में 'जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्' ४.१.६३ से होने वाला जातिलक्षण ङीष् और पुंवद्भावप्रतिषेध सिद्ध हो जा रहा है।

अन्य आचार्य—**मा भूदेवमिति**। गोत्रपद से अपत्यमात्र का ग्रहण न होने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर 'औपगवीभार्यः' में 'जातेश्च' ६.३.४१ पुंवद्भावप्रतिषेध न हो, इससे कोई हानि नहीं है। 'औपगवीभार्य' में 'वृद्धिनिमित्तस्य च तद्धितस्यारक्तविकारे' ६.३.३९ से पुंवद्भावप्रतिषेध हो जायेगा।

इतर आचार्य—**यस्तर्हि नेति**। 'औपगवीभार्यः' में वृद्धिशब्द से विहित वृद्धि का निमित्त तद्धित अण्प्रत्ययान्त से स्त्री विहित नहीं है, अतः यहाँ 'वृद्धि-निमित्तस्य-'६.३.३९ के द्वारा पुंवद्भावप्रतिषेध होने पर भी 'ग्लुचुकस्यापत्यं स्त्रीति ग्लुचुकायनी' में 'प्राचामवृद्धात् फिन्बहुलम्' ४.१.१६० से फिन्प्रत्यय, फिन्नन्त से अण्, अण् का लुक् होने पर जातित्व नहीं होने से 'इतो मनुष्यजातेः' ४.१.६५ से होने वाला ङीष् प्राप्त नहीं है। यदि सर्वत्र अक्तिन्नर्थ से ङीष् किया जाये तब भी पुंवद्भावप्रतिषेध प्राप्त नहीं है, एवं लुक् अधिक विधेय है।

* तस्मात्प्रतिषेधः * **तस्मात्प्रतिषेधो वक्तव्यः** * संज्ञाकारिभ्यो वा प्रत्ययोत्पत्तिः * **अथ वा संज्ञाकारिभ्यः प्रत्ययोत्पत्तिर्वक्तव्या। यदि संज्ञाकारिभ्यः प्रत्ययोत्पत्तिरुच्यते,-कथं गार्ग्यायणो वात्स्यायन इति?** * गोत्राद्यूनीति च * **'गोत्राद्यूनी'त्येतद् वक्तव्यम्** * तच्च जात्यादि-निवृत्त्यर्थम् * **तच्चावश्यं संज्ञाकारिग्रहणं कर्तव्यम्। किं प्रयोजनम्? जात्यादिनिवृत्त्यर्थम्। जात्यादिभ्य उत्पत्तिर्मा भूदिति। जातिर्न वर्त्तते। संख्या न वर्त्तते। सर्वनाम न वर्त्तते।** जातिर्न वर्त्तते-**काकस्या-पत्यं, कुररस्यापत्यमिति**। संख्या न वर्त्तते-**नवानामपत्यं, दशानाम-पत्यमिति**। सर्वनाम न वर्त्तते-**सर्वेषामपत्यं, विश्वेषामपत्यमिति**।

इन सभी दोषों का परिहार करने के लिए कहते हैं—**तस्मादिति**। 'गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्' ४.१.९४ सूत्र में 'अस्त्रियाम्' यह पर्युदास ही उचित है, 'स्त्रियां लुक्' नहीं। 'गोत्राद्यूनि' प्रथमन्यास तथा 'अस्त्रियाम्' द्वितीयन्यास होने के पक्ष में पूर्वन्यास से 'युनि'पद उत्तरन्यास 'अस्त्रियाम्' में अनुवर्तन होगा। 'अस्त्रियाम्' यह परिभाषा होगी, अतः जहाँ युवशब्द होगा वहाँ 'अस्त्रियाम्' पद उपस्थित होगा तथा 'युवसंज्ञायामस्त्रियाम्' ऐसा अर्थ होगा। इस तरह के अर्थ से स्त्रीलिङ्ग में युवसंज्ञा का वारण होने से गोत्रसंज्ञा ही प्रवृत्त होगी। युवसंज्ञा का अभाव होने पर भी युवत्व के द्वारा पौत्रप्रभृति अपत्य का ही ग्रहण होगा, अतः पूर्वन्यास से उत्तरन्यास में 'यूनि' पद का अनुवर्तन किया गया है। अब तक 'एको गोत्रे' और 'गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्' ४.१.९४ इन दोनों सूत्रों का 'पितुरेवापत्यम्' और 'पौत्रप्रभृति अपत्य' इन दोनों पक्षों में कुछ दोष दिखाया गया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इन दोनों पक्षों में प्राप्त दोष का परिहार करते हैं—**इहोत्पादयितरीति**। 'पितुरेवापत्यम्'पक्ष में यदि अपत्य का उत्पादयिता के साथ योग मानेंगे, तब एकप्रकृति से मात्र एक ही प्रत्यय प्राप्त होने पर 'एको गोत्रे' और 'गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्' ४.१.९४ का विधित्व होगा, इस पक्ष में प्रत्ययान्त से प्रत्यय का प्रतिषेध कहना होगा, एवं परमप्रकृति से प्रत्यय की उत्पत्ति कहनी होगी। यदि पौत्रप्रभृति अपत्यमात्र की गोत्रसंज्ञा करेंगे तो एक प्रकृति से प्रत्ययमाला प्राप्त होने पर उक्त सूत्रद्वय नियामक होगा। इस पक्ष में भी प्रत्ययान्त से प्रतिषेध कहना होगा। अब यहाँ शङ्का होती है कि उक्त दोनों सूत्रों का नियमपक्ष मानने पर एक से एक ही प्रत्यय प्राप्त है, प्रत्ययान्त से प्राप्ति नहीं है, फिर 'प्रत्ययान्तात्प्रतिषेधो वक्तव्यः' यह भाष्यकार क्यों कह रहे हैं?, तो इसका उत्तरपक्ष यह समझना चाहिये-नियमपक्ष में 'एक से एक ही प्रत्यय हो' यह अर्थ होने पर यह ज्ञात नहीं हो पा रहा है कि एक प्रत्यय कौन सा हो?, अतः अनभिधान होने से प्रत्ययान्त से ही प्रत्यय की प्राप्ति होने पर उक्त निषेध किया गया है। **तस्मादिति**-मात्र अपत्य से ही प्रतिषेध नहीं कहना चाहिये, अपि तु अपत्यप्रत्ययान्त से अपत्य अर्थ में प्रत्यय का प्रतिषेध कहना चाहिये। **संज्ञाकारिभ्य इति**-कुलव्यहार का कारण आदिपुरुष को संज्ञाकारी कहते हैं। जैसे शाण्डिल्यकुल का व्यवहार हेतु महर्षिशण्डिल एवं गार्ग्यकुल का व्यवहारहेतु गर्ग हैं, इन्हीं संज्ञाकारी शण्डिल और गर्ग से पर में प्रत्ययोत्पत्ति कहनी चाहिये।

इतर आचार्य—**यदि संज्ञाकारिभ्य इति**। यदि कुलव्यवहार का कारण आदिपुरुष से ही प्रत्यय कहेंगे तो 'गार्ग्यायणः, वात्स्यायनः' इत्यादि में अव्याप्ति होगी। यहाँ कुलव्यवहार का हेतु गर्ग और वत्स से प्रत्यय नहीं है, अपि तु गार्ग्य और वात्स्य इस प्रत्ययान्त से ही प्रत्यय हुआ है जो संज्ञाकारी से प्रत्ययोत्पत्ति कहने पर सम्भव नहीं हो सकेगा।

उत्तरपक्षी आचार्य इस अव्याप्ति का वारण करते हैं—**गोत्रादिति**। 'गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्' ४.१.९४ में गोत्रप्रत्ययान्त से युवप्रत्ययान्त अर्थ में प्रत्यय कहा गया है, अतः 'गार्ग्यायणः, वात्स्यायनः' में यञन्त से प्रत्यय सिद्ध होने पर 'संज्ञाकारिभ्यो वा प्रत्ययोत्पत्तिः' पक्ष में दोष नहीं है। 'संज्ञाकारिभ्यो वा प्रत्ययोत्पत्तिः' पक्ष का पोषण करते हैं-**तच्च जात्यादीति**। जाति आदि वाचकशब्दों से प्रत्ययोत्पत्तिवारण के लिए 'संज्ञाकारिभ्यो वा प्रत्ययोत्पत्तिः' पक्ष अवश्य स्वीकार करना चाहिये। जाति, संज्ञा और सर्वनाम से प्रत्यय नहीं होते हैं।

यहाँ मूल में '**न वर्त्तते**'पद से प्रत्यय की अनुत्पत्ति अर्थ लभ्य है। वह इस तरह कि 'परार्थाभिधान' को वृत्ति कहते हैं। प्रत्ययोत्पत्ति होने पर प्रकृति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रत्ययार्थ में विशेषण होगी, संज्ञाकारिग्रहण से वहाँ पर जाति आदि ग्रहण की निवृत्ति हो जायेगी। 'जाति प्रत्यय का उत्पादक नहीं होती है' यह कहने से 'काकस्यापत्यं, कुररस्यापत्यम्' में काक और कुरर पद से प्रत्यय की उत्पत्ति नहीं होती है। सर्वनामसंज्ञक से प्रत्ययों की उत्पत्ति नहीं होती है। जैसे-'सर्वेषामपत्यं, विश्वेषामपत्यम्' में सर्व और विश्व पद से अपत्य अर्थ में प्रत्यय नहीं होता है। 'संख्या से प्रत्ययोत्पत्ति नहीं होती है' ऐसा कहने से 'नवानामपत्यं, दशानामपत्यम्' ऐसा कहने से नव और दश पद से प्रत्ययोत्पत्ति नहीं होती है।

यत्तावदुच्यते-'जातिर्न वर्तते-'काकस्यापत्यं, कुररस्याऽपत्यमि'ति। येनैव हेतुना एकः काकस्तेनैव हेतुना द्वितीयश्च तृतीयश्च काको भविष्यति। यदप्युच्यते-'संख्या न वर्तते नवानामपत्यं दशानामपत्यमि'ति। संख्येयमपेक्ष्य संख्या प्रवर्त्तते। तत्सापेक्षम्। 'सापेक्षं चाऽसमर्थं भवती'त्यसमर्थ्यान्न भविष्यति। यदप्युच्यते-'सर्वनाम न वर्त्तते-'सर्वेषामपत्यं, विश्वेषामपत्यमि'ति। निर्द्देश्यमपेक्ष्य निर्द्देशः प्रवर्तते, तत्सापेक्षम्। सापेक्षमसमर्थं भवतीति,- असामर्थ्यान्न भविष्यति।

कोई-कोई आचार्य 'काकस्यापत्यम्' इत्यादि में काक को जाति नहीं मानते हैं, उसका खण्डन करते हैं-**यत्तावदिति**। जिस **हेतु**=काकत्वविशिष्ट होने से एक काक है उसी हेतु से द्वितीय और तृतीय काक भी है, अतः काक और कुरर के जाति होने से वह प्रत्यय का उत्पादक नहीं हो सकता है। अपत्यविशेष का बोध होने पर उसमें प्रकृत्यर्थ विशेषण रहेगा। वह प्रकृत्यर्थविशेषण जातिसम्बन्ध से ही ज्ञात होगा, अन्य से नहीं, 'काकस्यापत्यं, कुररस्यापत्यम्' में अपत्य-अपत्यवान्-भावसम्बन्ध की विवक्षा नहीं हो सकती है। 'न पतन्ति पितरो नरके येन तदपत्यम्' गया आदि तीर्थों में पिण्डदान के द्वारा पितरों को नरकपात से अवरोध ही अपत्यत्व है, वह जातिवाचक से सम्भव नहीं है, अतः अपत्यापत्यवद्भावसम्बन्धविवक्षा का सर्वथा अभाव होने से जातिवाचकशब्दों से अपत्यार्थक प्रत्यय नहीं होते हैं, यह भाष्य का स्वारस्य है।

संख्यावचन से प्रत्ययोत्पत्ति का खण्डन करते हैं-**यदप्युच्यत इति**। संख्या गुण है। द्रव्य का परित्याग कर स्वतन्त्ररूप से कहीं पर भी नहीं रह सकती है, अतः **संख्येय**=ब्राह्मण आदि द्रव्यवाचक अवश्य अपेक्षित होगा। संख्येय की अपेक्षा से प्रवृत्त होने से संख्या सापेक्ष है। वृत्ति समर्थ से होती है, असमर्थ से नहीं; अतः सापेक्ष्य संख्या से प्रत्ययोत्पत्ति नहीं हो सकेगी। एवं सर्वनाम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से भी प्रत्यय इस लिए नहीं हो सकेंगे कि सर्वनाम भी निर्द्देश्य बौद्धपदार्थ की अपेक्षा करके ही प्रवृत्त होता है, अतः सापेक्ष होने से असामर्थ्यात् सर्वनाम से भी प्रत्ययोत्पत्ति नहीं हो सकेगी।

यत्तावदुच्यते-'येनैव हेतुना एकः काकस्तेनैव हेतुना द्वितीयश्च तृतीयश्च काको भविष्यती'ति। नैतद्विवदामहेकाको न काक इति। किं तर्हि? येनैव हेतुना एतद्वाक्यं भवति-काकस्यापत्यं, कुररस्यापत्यमि'ति, तेनैव हेतुना वृत्तिरपि प्राप्नोति। यदप्युच्यते-'संख्येयमपेक्ष्य संख्या प्रवर्त्तते, तत्सापेक्षं, सापेक्षं चाऽसमर्थं भवती'ति। भवति वै कस्य चिदर्थात्प्रकरणाद्वाऽपेक्ष्यं निर्ज्ञातम्। यदा निर्ज्ञातं तदा वृत्तिः प्राप्नोति।

इससे पूर्व 'येनैव हेतुना एकः काकः' इतदि कहा था, उसका विवरण करते हैं-**नैतद्विवदामह इति**। हम आप से यह झगडा नहीं कर रहें है कि काक काक नहीं है, अथवा जिस हेतु से एक को काक कहते हैं दूसरे और तीसरे काक को भी काक कहने में वही हेतु है, अपि तु **'येनैव हेतुना'**=जिस हेतु से 'काकस्यापत्यं, कुररस्यापत्यम्' यह वाक्य होता है, उसी हेतु से **वृत्ति**= अर्थबोधकता भी हो जायेगी। जब जाति से विशेष अर्थ का बोध न हो कर उपव्यञ्जनमात्र होगा, अभिव्यक्ति नहीं, तब विशेषबोध के लिए पितृसम्बन्ध ही दिया जाता है; वहाँ वाक्य की तरह वृत्ति का भी प्रसंग उपस्थित होगा।

यदप्युत्यते-'सर्वेषामपत्यं विश्वेषामपत्यमिति निर्द्देश्यम् अपेक्ष्य निर्द्देशः प्रवर्त्तते, तत्सापेक्षं, सापेक्षं चाऽसमर्थं भवती'ति। भवति वै कस्य चिदर्थात्प्रकरणाद्वाऽपेक्ष्यं निर्ज्ञातम्। यदा निर्ज्ञातं तदा वृत्तिः प्राप्नोति। एवं तर्हिअनभिधानाज्जात्यादिभ्य उत्पत्तिर्न भविष्यति। एतच्चाऽवश्यमनभिधानमाश्रयितव्यम्। क्रियमाणेऽपि हि संज्ञाकारिग्रहणे यत्र जात्यादिभ्य उत्पद्यमानेन प्रत्ययेनार्थस्याऽभिधानं भवति, भवति तत्रोत्पत्तिः।

इससे पूर्व संख्या को संख्येय के प्रति सापेक्ष कहा था, एवम् उससे पर में प्रत्यय की अनुत्पत्ति बतायी थी, उस प्रत्ययानुत्पत्ति का निरास करते हैं-**यदप्युच्यत इति**। कहीं पर अर्थवशात् अथ वा प्रकरणवशात् संख्येय निर्ज्ञात होता है। वहाँ पर संख्याशब्द ही विशिष्ट संख्येयवाची होता है, अतः सापेक्ष नहीं होने से उससे **वृत्ति**=प्रत्ययोत्पत्ति प्राप्त होगी। एवं निर्द्देश्य की अपेक्षा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर सर्वनामसंज्ञक शब्दों की प्रवृत्ति होने से सर्वनाम को सापेक्ष कह कर उससे पर में प्रत्ययोत्पत्ति का अभाव बताया था। यदि सर्वनाम सापेक्ष होगा तब प्रत्ययोत्पत्ति नहीं होगी। परन्तु यदि अर्थवशात् अथवा प्रकरणवशात् सर्वनामपदव्यपदेश्य ज्ञात होगा तब सर्वनामसंज्ञकशब्दों से भी प्रत्ययोत्पत्ति प्राप्त होगी। इस तरह सापेक्ष नहीं होने पर जातिवचन, संख्यावचन और सर्वनामसंज्ञक से प्रत्ययोत्पत्ति प्राप्त हो गयी।

इस दोष का वारण करते हैं—**एवन्तर्हीति**। **एवन्तर्हि**=अपेक्ष्य के ज्ञात होने पर जाति, संख्या और सर्वनाम से प्रत्ययोत्पत्ति प्राप्त होने पर उसका वारण अनभिधान के द्वारा होगा। जाति, संख्या और सर्वनाम से प्रत्ययोत्पत्ति का विधान नहीं है। परन्तु जहाँ पर जाति, संख्या और सर्वनाम से प्रत्ययाभिधान विहित है वहाँ प्रत्ययोत्पत्ति होती है।

तद्यथा—

कुतश्चरति मायूरिः केन कापिञ्जलिः कृशः।
आहेयेन च दष्टस्य पाञ्चिः सुतसमो मतः'।।

तादायनिर्यादायनिः कैमायनिरिति। तदेतदनन्यार्थं संज्ञाकारिग्रहणं वा कर्त्तव्यं, प्रत्ययान्ताद्वा प्रतिषेधो वक्तव्यः? उभयं न कर्त्तव्यम्। गोत्रग्रहणं न करिष्यते। 'एको गोत्रे प्रत्ययो भवती'त्येव। यदि चेदानीं प्रत्ययान्तादपि प्रत्ययः स्यान्नैकोऽपत्ये प्रत्ययः कृतः स्यात्। यदि गोत्रग्रहणं न क्रियते-कथं गार्ग्यायणो वात्स्यायन इति? वक्तव्य-मेवैतद्- 'गोत्राद्यून्यस्त्रियामि'ति। अथाऽपि गोत्रग्रहणं क्रियते एवमपि न दोषः।

इसी को उदाहरणों से स्पष्ट करते हैं—**तद्यथेति**। 'मयूरस्यापत्यं मायूरिः, कपिञ्जलस्यापत्यं कापिञ्जलिः' में जातिवचन मयूर और कपिञ्जल से विहित होने के कारण आकृतिगण मान कर 'बाह्वादिभ्यश्च' ४.१.१२२ से ढक् प्रत्यय है। ये प्रत्यय जातिवचन से पर में विहित हैं। इसी तरह संख्यावचन से पर में-'पञ्चानामपत्यं पाञ्चिः' में 'बाह्वादिभ्यश्च' ४.१.९६ से इञ् प्रत्यय विहित है। सर्वनाम से पर में 'तस्यापत्यं पुमाँस्तादायनिः, यस्यापत्यं पुमान् यादायनिः, कस्यापत्यं पुमान् कैमायनिः' में 'उदीचां वृद्धादगोत्रात्' ४.१.१५७ से फिञ् प्रत्यय विहित है।

पूर्वपक्षी—**तदेतदिति**। क्या जात्यादि से प्रत्यय की निवृत्ति एवं कुलव्यपदेशहेतु आदिपुरुष से प्रत्ययोत्पत्ति के लिए संज्ञाकारिग्रहण करना चाहिये?, अथ वा 'मूल-प्रकृति से ही प्रत्यय हो, प्रत्ययान्त से नहीं' इसके लिए प्रत्ययान्त से प्रतिषेध

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहना चाहिये?

उत्तरपक्षी—**उभयमिति**। संज्ञाकारिग्रहण भी नहीं करना चाहिये तथा प्रत्ययान्त से प्रतिषेध भी नहीं कहना चाहिये। दोनों का ग्रहण नहीं करने पर भी उक्तार्थलाभ स्पष्ट करते हैं-**गोत्रग्रहणमिति**। 'एको गोत्रे' सूत्र के स्थान पर 'एकः' इतना ही सूत्र रखेंगे। पूर्वसूत्र 'तस्यापत्यम्' ४.१.९२ से 'अपत्यम्' की अनुवृत्ति करेंगे। 'अपत्येऽर्थे एक एव प्रत्ययो भवति' ऐसा अर्थ होगा। अर्थात् 'अपत्य अर्थ वाच्य होने पर अपत्यसमुदाय की विवक्षा में प्रातिपदिक से एक ही प्रत्यय हो'। इसे स्पष्ट करते हैं-**यदि चेदानीमिति**। यदि प्रत्ययान्त से भी प्रत्ययोत्पत्ति होती तो अपत्य अर्थ में एक प्रत्यय का विधान सार्थक नहीं होता, अतः सामर्थ्यात् प्रत्ययान्त से प्रत्ययोत्पत्ति नहीं हो सकेगी। परन्तु यदि सूत्रन्यास वैसे ही रखते हैं जैसा किया गया है तो गोत्रग्रहण करने पर जो अनुपपत्ति है उसे स्पष्ट किया जा चुका है।

अब यदि 'गार्ग्यायणः, वात्स्यायनः' की सिद्धि के लिए 'गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्' ४.१.९४ को विध्यर्थक माना जाये, इस तरह 'उपगोर्युवापत्यम्' इस अर्थ में 'औपगवः' की आपत्ति दुर्निवार होगी। इस विषय को और अधिक स्पष्ट करते हैं-**यदि गोत्रग्रहणमिति**। गोत्रग्रहण नहीं करने पर अपत्य अर्थ में एक प्रत्यय का विधान होने से 'गार्ग्यायणः, वात्स्यायनः' में प्रत्ययान्त से प्रत्ययोत्पत्ति नहीं हो सकेगी। यहाँ तदन्त से प्रत्ययोत्पत्ति कर इष्टसिद्धि के लिए 'गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्' ४.१.९४ नियामक मानना पडेगा, इससे 'गार्ग्यायणः, वात्स्यायनः' का असिद्धिरूप दोष नहीं हो सकेगा। यदि 'पितुरेवापत्यम्'पक्ष को मान लिया जाये तो 'एको गोत्रे' के साहचर्य से 'गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्' ४.१.९४ का नियामकत्व होगा। यहाँ युवपद युवसमुदायपरक है। यदि 'सर्वेऽपत्येन युज्यन्ते' पक्ष माना जाये तो दोनों सूत्रों का नियामकत्व स्पष्ट ही है। यही पक्ष सूत्र और भाष्यसम्मत है, यह बताया जा चुका है। 'एको गोत्रे' सूत्र में गोत्रपद से युवापत्य अर्थ का ग्रहण नहीं है, तदर्थ गोत्रपद का ग्रहण है।

नैकग्रहणेन प्रत्ययोऽभिसम्बध्यते-'एको गोत्रे प्रत्ययो भवती'ति। किं तर्हि? प्रकृतिरभिसम्बध्यते-'एका प्रकृतिर्गोत्रे प्रत्ययमुत्पादयती'ति। यदि चेदानीं प्रत्ययान्तादपि प्रत्ययः स्यान्नैका प्रकृतिर्गोत्रे प्रत्यय-मुत्पादयेत्। अथ वा अस्थानेऽयं यत्नः क्रियते, न हीदं लोकाद् भिद्यते। लोके हि संख्यां प्रवर्त्तमानामुपाचरन्ति 'एक' इति वा 'प्रथम' इति वा। यावद् ब्रूयात्प्रथमो गोत्रे प्रत्ययमुत्पाद- यतीति,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तावदेको गोत्रे इति।। एको गोत्रे।।

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये
चतुर्थाऽध्यायस्य प्रथमे पादे तृतीयमाह्निकम्

●

सिद्धान्ती—**नैकग्रहणेनेति**। सूत्र में एक पद प्रत्यय में विशेषण नहीं है, अपि तु प्रकृति में विशेषण है। इस तरह सूत्रार्थ होगा-'गोत्र अर्थ वाच्य होने पर प्रकृति एक ही प्रत्यय उत्पन्न करती है'। इस तरह 'एका प्रकृतिर्गोत्रे प्रत्ययमुत्पादयति' ऐसा कहने से परमप्रकृति ही एकपद से विवक्षित है, प्रत्ययान्तप्रकृति नहीं। यदि प्रत्ययान्त भी प्रत्यय की प्रकृति होता तो एक पद व्यर्थ हो जाता।

इस विषय को पक्षान्तर में स्पष्ट करते हैं-**अथ वेति**। अथ वा एकपद को प्रकृति का विशेषण मानना ही अप्रासङ्गिक लगता है। लोक में शब्द जिस अर्थ में व्यवहृत होता है, शास्त्र में भी उसी अर्थ में व्यवहृत है। इससे लोक में एक पद का जो अर्थ गृहीत है, उसी का 'एको गोत्रे' सूत्रघटक एकपद से भी ग्रहण करेंगे। लोक में प्रथमशब्द का समानार्थक एकशब्द गृहीत है, अतः यहाँ भी एकपद को प्रथमार्थक मानेंगे। शास्त्र में भी एकपद प्रथमार्थ में देखा जाता है। जैसे-'एकेऽल्पप्राणाः'। यहाँ इस वाक्य से 'प्रथमेऽल्पप्राणाः' ऐसा अर्थ ज्ञात होता है। 'लोक में संख्या अर्थ में एक पद का **उपाचरन्ति**=व्यवहार करते हैं' इस अर्थ में भाष्यकार ने 'लोके हि संख्यां प्रवर्तमानामुपाचरन्ति 'एक' इति वा 'प्रथम' इति वा' ऐसा कहा है। परन्तु इस पङ्क्ति में 'एक' पद अनियत एकत्व का वाचक है। लोक में 'एकमानय' ऐसा कहने से 'अनियत एकत्व' का बोध होता है, अतः इस भाष्य से एक पद का प्रथमवाची होना सिद्ध नहीं होता है। कहीं पर विवक्षा, प्रकरणवश अथ वा लक्षणा के द्वारा एक पद का प्रथमपरकत्व मान भी लिया जाये, तो इससे एक पद का सार्वत्रिक प्रथमार्थपरकत्व सिद्ध नहीं होता है। प्रकृत सूत्र में लक्ष्यानुरोध से एक पद को प्रथमार्थपरकत्व मानेंगे। 'पितुरेवापत्यम्' इस पक्ष में और एक पद का संख्यावाचित्वपक्ष में गुरुभूत अनेक क्लिष्टकल्पना की अपेक्षा 'सर्वेषामपत्यम्'पक्ष और एक पद का प्रथमार्थपरकत्व मानना ही उचित है।। **एको गोत्रे**।।

श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य
चतुर्थ अध्याय प्रथम पाद तृतीय आह्निक पर
डॉ. हरिनारायण तिवारी द्वारा रचित
'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

❀ प्रथमे पादे चतुर्थमाह्निकम् ❀

अत इञ् ४.१.९५

*** इञो वृद्धाऽवृद्धाभ्यां फिञ्फिनौ विप्रतिषेधेन * इञो वृद्धाऽवृद्धाभ्यां फिञ्फिनौ भवतो विप्रतिषेधेन। इञोऽवकाशः-दाक्षिः प्लाक्षिः। फिञोऽवकाशः-तादायनिः यादायनिः। इहोभयं प्राप्नोति-तापसायनिः सांमितिकायनिः। फिनोऽवकाशः-त्वचायनिः स्रुचायनिः। इञः स एव। इहोभयं प्राप्नोति-ग्लुचुकायनिः। म्लुचुकायनिः। फिञ्फिनौ भवतो विप्रतिषेधेन। इह कस्मान्न भवति-दाक्षिः प्लाक्षिः? बहुल-वचनात्।**

'प्रातिपदिकात्' ४.१.१ का अधिकार है। 'अतः' विशेषण पद होने से तदन्त अर्थ को कहेगा। 'प्राग्दीव्यतोऽण्' ४.१.८३ का अधिकार है। 'तस्याऽपत्यम्' ४.१.९२ से 'अपत्यम्' का अधिकार है।

सूत्रार्थ—'अदन्त जो प्रातिपदिक तत्प्रकृतिक षष्ठ्यन्त से अपत्य अर्थ में इञ् प्रत्यय हो'। जैसे-'दशरथस्यापत्यं पुमान् दाशरथिः'।

इञो वृद्धाऽवृद्धाभ्यामिति। परविप्रतिषेध के द्वारा वृद्धलक्षण फिञ् से एवम् अवृद्धलक्षण फिन् से इञ् का बाध होता है। विप्रतिषेध दिखाने के लिए तुल्यबल-विरोध दिखाते हैं-**इञोऽवकाश इति**। 'वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा वक्तव्या' वा १.१.७५ से जब वृद्धसंज्ञा का अभाव होगा तब 'दक्षस्यापत्यं दाक्षिः, प्लक्षस्यापत्यं प्लाक्षिः' में 'अत इञ्' चरितार्थ है। 'त्यदादीनि च' १.१.७४ से तद्, यद् की वृद्धसंज्ञा होने पर 'तस्यापत्यं तादायनिः, यस्यापत्यं यादायनिः' में 'उदिचां वृद्धादगोत्रात्' ४.१.१५७ से वृद्धलक्षण फिञ् चरितार्थ है। 'तापसस्यापत्यं, सांमितिकस्यापत्यम्' में अदन्तलक्षण इञ् और वृद्धलक्षण फिञ् दोनों की प्रवृत्ति एककालावच्छेदेन हो रही है। परत्वात् फिञ् से इञ् का बाध हो कर 'तापसायनिः, सांमितिकायनिः' रूप होता है। एवं 'त्वचोऽपत्यं पुमाँस्त्वचायनिः, स्रुचोऽपत्यं पुमान् स्रुचायनिः' में 'प्राचामवृद्धात्फिन्बहुलम्' ४.१.१६० से फिन् चरितार्थ है। 'दाक्षिः, प्लाक्षिः' में 'अत इञ्' चरितार्थ है। 'ग्लुचुकस्यापत्यम्, म्लुचुकस्यापत्यम्' इस अर्थ में अदन्त-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लक्षण इञ् और अवृद्धलक्षण फिन् दोनों की एककालावच्छेदेन प्रवृत्ति हो रही है। समानबल होने से विप्रतिषेध के द्वारा परत्वात् अवृद्धलक्षण फिन् से इञ् का बाध हो कर 'ग्लुचुकायनिः, म्लुचुकायनिः' यही रूप होता है।

पूर्वपक्षी आचार्य—**इह कस्मान्नेति**। 'दक्षस्यापत्यम्, प्लक्षस्यापत्यम्' में अवृद्धलक्षण फिन् क्यों नहीं होता है?

उत्तरपक्षी—**बहुलग्रहणादिति**। 'प्राचामवृद्धात् फिन्बहुलम्' ४.१.१६० सूत्र में बहुलग्रहण किया गया है। उससे कहीं पर अवृद्धलक्षण फिन् होगा, अतः 'त्वचायनिः, स्रुचायनिः, ग्लुचुकायनिः, म्लुचुकायनिः' में फिन् हो गया। बहुलग्रहणात् कहीं पर नहीं होगा, अतः 'दाक्षिः, प्लाक्षिः' में फिन् की अप्राप्ति रही।

*** तद्राजश्च * तद्राजश्चेञो भवति विप्रतिषेधेन। तद्राजस्यावकाशः-ऐक्ष्वाकः। इञः स एव। इहोभयं प्राप्नोति-पाञ्चालः। वैदेहः। वैदर्भः। तद्राजो भवति विप्रतिषेधेन।।** अत इञ्।।

तद्राजश्चेति। 'जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्' ४.१.१६८ 'द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण्' ४.१.१७० 'वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्' ४.१.१७१ 'कुरुनादिभ्यो ण्यः' ४.१.१७२ 'साल्वावयवप्रत्यग्रथकलकूटाश्म- कादिञ्' ४.१.१७३ सूत्रों में विहित अञ्, अण्, ञ्यङ्, ण्य और इञ् प्रत्यय की 'ते तद्राजाः' ४.१.१७४ सूत्र से तद्राजसंज्ञा होती है। तुल्यबलविरोध होने पर परत्वात् तद्राजसंज्ञक प्रत्ययों से 'अत इञ्' का बाध कहना चाहिये।

इनका समानबल स्पष्ट करते हैं—**तद्राजस्येति**। 'इक्ष्वाकोरपत्यमैक्ष्वाकः' में 'जनपदशब्दात्क्षत्रियादञ्' ४.१.168 से अञ् चरितार्थ है। 'ऐक्ष्वाकः' में 'दाण्डिनायनहास्तिनायनाथर्वणिकजैह्माशिनेयवाशिनायनिभ्रौणहत्यधैवत्यसारवैक्ष्वाकमैत्रेयहिरण्मयानि' ६.४.१७४ से उकारलोप निपातित है। एवं 'दाक्षिः, प्लाक्षिः' में 'अत इञ्' ४.१.९५ चरितार्थ है। 'पञ्चालस्यापत्यं, विदेहस्यापत्यम्' में तद्राजसंज्ञक अञ् और 'अत इञ्' ४.१.९५ दोनों की प्राप्ति है। परविप्रतिषेध के द्वारा इञ् का बाध कर तद्राजसंज्ञक प्रत्यय ही होता है।। अत-।।

बाह्वादिभ्यश्च ४.१.९६

* बाह्वादिप्रभृतिषु येषां दर्शनं गोत्रभावे लौकिके ततोऽन्यत्र तेषां प्रतिषेधः *** बाह्वादिप्रभृतिषु येषां दर्शनं गोत्रभावे लौकिके ततोऽन्यत्र तेषां प्रतिषेधो वक्तव्यः। बाहोरपत्यं बाहविः। यो हि बहुर्नाम बाहविस्तस्य भवति। नडस्यापत्यं नाडायनः। यो हि नडो नाम,-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नाडिस्तस्य भवति।

यहाँ 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ्, 'तस्यापत्यम्' ४.१.९२ से 'अपत्यम्' की अनुवृत्ति है, अतः सूत्रार्थ-'अपत्य अर्थ में बाह्वादिगणपठित शब्दों से इञ् प्रत्यय हो'। जैसे-'बाहोरपत्यं पुमान् बाहविः'।

एकदेशी आचार्य—**बाह्वादिप्रभृतिष्विति**। यहाँ वार्तिक में प्रभृतिपद से 'गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ्' ४.१.९८, 'नडादिभ्यः फक्' ४.१.९९, 'हरितादिभ्योऽञ्' ४.१.१००, गृहीत है। बाह्वादिप्रभृति में जिनका पाठ है उन को **लौकिके**=लोक में प्रसिद्ध, **गोत्रभावे**= संज्ञाकारित्व अथ वा आदि पुरुष में ही प्रत्ययविधि कहना चाहिये, **ततोऽन्यत्र**= लोक में प्रसिद्ध संज्ञाकारित्व अथ वा आदिपुरुष से भिन्न अर्थ में यदि वे शब्द शक्त हों तो वहाँ प्रत्ययविधि का प्रतिषेध कहना चाहिये। जैसे-लोकशास्त्रप्रसिद्ध महर्षि बाहु के अर्थ में शक्त बाहुशब्द से अपत्यार्थ में इञ् प्रत्यय हो कर 'बाहविः' रूप होगा। परन्तु लोक में किसी का नाम बाहु रख दिया जाये तो वहाँ बाहु पद से अपत्यार्थ में इञ् की प्राप्ति नहीं होगी, अतः वहाँ 'तस्यापत्यम्' ४.१.९२ से अण् करके 'बाहवः' प्रयोग होगा। इसी तरह 'नडो नाम महर्षिस्तस्यापत्यं पुमान् नाडायनः' में 'नडादिभ्यः फक्' ४.१.९९ से फक् है। परन्तु लोक में किसी का नाम नड हो तो उससे अपत्यार्थ में फक् की अप्राप्ति होने से 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ् प्रत्यय ही होगा। 'गौडमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसम्प्रत्ययः' इस लोकन्याय से ही लोक में बाहुनामक एवं नडनामक व्यक्ति का वाचक बाहु से इञ् और नड से फक् की अप्राप्ति होगी, अतः निषेधवचन व्यर्थ है। इसी आशय से सम्बन्धित निम्न भाष्य भी है, अतः उसे भी एकदेशी मानना चाहिये।

* सम्बन्धिशब्दप्रत्ययानाञ्च तत्सदृशात्प्रतिषेधः * **सम्बन्धिशब्दप्रत्ययानाञ्च तत्सदृशात्प्रतिषेधो वक्तव्यः। श्वशुरस्यापत्यं श्वशुर्यः। यो हि श्वशुरो नाम श्वाशुरिस्तस्य भवति। प्रत्ययग्रहणेन नार्थः,-'सम्बन्धिशब्दानां तत्सदृशात् प्रतिषेध' इत्येव, इदमपि सिद्धं भवति-'मातृपितृभ्यां स्वसा'-मातृष्वसा पितृष्वसा। अन्या हि मातृस्वसेति।।** बाह्वादिभ्यश्च।।९६।।

सम्बन्धिशब्देति—सम्बन्धिशब्द का बोध होने से तत्सदृश में प्रत्ययविधि का प्रतिषेध कहना चाहिये। जैसे-'श्वशुरस्यापत्यं श्वशुर्यः' में 'राजश्वशुराद्यन्' ४.१.१३७ से यन्। परन्तु किसी का नाम श्वशुर हो तो तदर्थक श्वशुरशब्द से यत्प्रतिषेध कहना चाहिये। वहाँ 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ् हो कर 'श्वाशुरिः' रूप होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्य आचार्य—**प्रत्ययग्रहणेनेति**। 'सम्बन्धिशब्दात्प्रत्ययानां च तत्सदृशात्प्रतिषेधः' इस वार्तिक के स्थान पर 'सम्बन्धिशब्दाच्च तत्सदृशात्प्रतिषेधः' यही वार्तिक पढना चाहिये। इससे 'मातृष्वसा, पितृष्वसा' में 'मातृपितृभ्यां स्वसा' ८.३.८४ से मूर्धन्यादेश होता है। परन्तु जो मातृशब्द जननीवाची न हो कर क्रियावाची है वहाँ षत्वघटित रूप न हो कर 'मातृष्वसा' यही रूप होगा। यद्यपि मातृशब्द का क्रिया अर्थ भी नित्य है, परन्तु लोक में प्रसिद्धि नहीं होने से क्रियावाची मातृशब्द से पर में स्वसा के स् को मूर्धन्यादेश नहीं होता है। शास्त्र की प्रवृत्ति प्रसिद्ध में ही होती है, अप्रसिद्ध में नहीं। इसे श्रीभर्तृहरिजी भी कहते हैं-

अभिव्यक्तपदार्था ये प्रसिद्धा लोकविश्रुताः।
शास्त्रार्थस्तेषु कर्तव्यः, शब्देषु न तदुक्तिषु।। (बाह्वादिभ्यश्च)

सुधातुरकङ् च ४.१.९७

*** सुधातृव्यासयोः * 'सुधातृव्यासयोरि'ति वक्तव्यम्। सौधातकिः। वैयासकिः शुकः। अत्यल्पमिदमुच्यते *** सुधातृव्यासवरुडनिषादचण्डालबिम्बानामिति वक्तव्यम् *** सौधातकिः। वैयासकिः शुकः। वारुडकिः। नैषादकिः। चाण्डालकिः। बैम्बकिः। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यं,-प्रकृत्यन्तराण्येवैतानि।।** सुधातुरकङ् च।।९७।।

सूत्रार्थ—'सुधातृशब्द से पर में अपत्यार्थ में इञ् प्रत्यय तथा प्रकृति को अकङ् आदेश हो'। जैसे-सुधातुरपत्यं पुमान् सौधातकिः। 'ङिच्च' १.१.५३ से अन्त्य अल् को अकङ् आदेश होगा।

वार्तिककार—**सुधातृव्यासयोरिति**। सुधातृ और व्यासशब्द को अकङ् आदेश और पर में अपत्यार्थक इञ् प्रत्यय कहना चाहिये। 'व्यासस्यापत्यं वैयासकिः शुकः। यहाँ 'न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्' ७.३.३ से ऐजागम है।

एकदेशी आचार्य—**अत्यल्पमिति**। सुधातृ और व्यासशब्द को इञ्सन्नियोगशिष्ट अकङ्विधान न्यून है। सुधातृ, व्यास, वरुड, निषाद, चण्डाल और बिम्ब पद को भी अकङ् आदेश कहना चाहिये। जैसे-सुधातुरपत्यं पुमान् सौधातकिः। व्यासस्यापत्यं पुमान् वैयासकिः शुकः, वरुडस्यापत्यं वारुडकिः, निषादस्यापत्यं नैषादकिः, चण्डालस्यापत्यं पुमाञ्चाण्डालकिः, बिम्बस्यापत्यं पुमान् बैम्बकिः।

अन्य आचार्य—**तर्हीति**। तो क्या 'सुधातृव्यासवरुडनिषादचण्डालबिम्बानामिति वक्तव्यम्' यह वचन पढना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। उक्त वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। 'वैयासकिः' में इञ् प्रत्यय की प्रकृति व्यास आदि नहीं है, अपि तु स्वार्थिक कन्प्रत्ययान्त व्यासक, वरुडक, निषादक, चण्डालक, बिम्बकशब्द है, अतः यहाँ व्यास आदि को अकङ् आदि आदेश नहीं करना पडेगा। कन्नन्त व्यासकशब्द के ऋषिवाची होने पर भी आकृतिगण मान कर 'बाह्वादिभ्यश्च' ४.१.९६ से इञ् होता है, 'ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च' ४.१.११४ से अण् नहीं।। सुधातुर-।।

गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ् ४.१.९८

किमर्थश्चकारः? स्वरार्थः। 'चितोऽन्त उदात्तो भवती'त्यन्तोदात्तत्वं यथा स्यात्। अथ ञकारः किमर्थ? ञकारो वृद्ध्यर्थः। '-ञ्णिती'ति वृद्धिर्यथा स्यात्। एकेन ककारेणोभयं सिद्धम्। अवश्यमत्र विशेषणार्थोऽन्योऽनुबन्धः कर्त्तव्यः। क्व विशेषणाऽर्थेनाऽर्थः? 'व्रातच्फञोरस्त्रियामि'ति। 'फक' इति ह्युच्यमाने-नाडायनः-अत्रापि प्रसज्येत। अथापि फञ इत्युच्यते। एवमप्याश्वलायनः-अत्रापि प्रसज्येत। तस्माच्चकार एव कर्त्तव्यः, अन्तोदात्तत्वमपि यथा स्यात्। चकारे चेदानीं विशेषणार्थे क्रियमाणेऽवश्यं वृद्ध्यर्थोऽन्योऽनुबन्धः कर्त्तव्यः। स च ञकार एव कर्त्तव्यः सूत्रभेदो मा भूदिति।

सूत्रार्थ—'कुञ्जादि से गोत्र अर्थ में च्फञ् प्रत्यय हो'। यह 'अत इञ्' का अपवाद है। कुञ्जस्य गोत्रापत्यं कुञ्जायनः, 'व्रातच्फञोरस्त्रियाम्' ५.३.११३ के द्वारा च्फञन्त से पर में स्वार्थ में ञ्य प्रत्यय है।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थ इति**। विधेय प्रत्यय को चित् क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**स्वरार्थ इति**। चित् होने से 'चितः' ६.१.१६३ के द्वारा अन्तोदात्त हो सके, इसके लिए विधेय प्रत्यय को चिद्विशिष्ट च्फञ् पढा गया है।

प्रश्नभाष्य—**अथ यकार इति**। विधेय प्रत्यय को ञित् क्यों पढते हैं? प्रश्न में हेतु यह है कि ञित् होने से ञ्नित्यादिर्नित्यम्' ६.१.१९७ से ञित् मान कर आद्युदात्त प्राप्त है तथा 'चितः' ६.१.१६३ के द्वारा अन्तोदात्त भी प्राप्त है। एक को ही एककाल में दो स्वर हो, यह सम्भव नहीं है, अतः प्राश्निक का प्रश्न है-'ञकारग्रहण क्यों किया गया है'?

उत्तरपक्षी—**ञकारो वृद्ध्यर्थ इति**। आद्युदात्त के अतिरिक्त ञित् का प्रयोजन वृद्धि भी है। ञित् मान कर 'तद्धितेष्वचामादेः' ७.२.११७ से आदि अच् को वृद्धि हो सके, इस के लिए ञकारग्रहण किया गया है।

अन्य आचार्य—**एकेनेति**। च्फञ् मे चकार और ञकार दो विशेषण हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसके स्थान पर मात्र क् विशेषण मान कर 'गोत्रे कुञ्जादिभ्यः फक्' ऐसा सूत्र पढना चाहिये। इससे कित् होने से 'किति च' ७.२.११४ से आदि अच् को वृद्धि और 'कितः' ६.१.१६५ के द्वारा अन्त उदात्त भी सिद्ध हो जाता है।

सिद्धान्ती आचार्य—**अवश्यमत्रेति**। 'गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ्' ४.१.९८ सूत्र में विधेय च्फञ् को चकार-ञकारविशिष्ट ही पढना चाहिये, उक्त दोनों को हटा कर मात्र ककारसहित फक् नहीं। चकार-ञकारविशिष्ट पढने का फल 'व्रातच्फञोरस्त्रियाम्' ५.३.११३ में ञ्यविधान है। यदि इस सूत्र में च्फञ् के स्थान पर फक् प्रत्यय पढेंगे, तथा 'व्रातच्फञोरस्त्रियाम्' ५.३.११३ सूत्र के स्थान पर 'व्रातफकोरस्त्रियाम्' ऐसा सूत्र पढेंगे तो इसकी अतिव्याप्ति 'नडादिभ्यः फक्' ४.१.९९ में होगी, अतः चकार-ञकारविशेषणविशिष्ट च्फञ् ही विधान करना चाहिये। यदि उक्त प्रत्यय को चकाररहित फञ् ऐसा पढेंगे तो 'व्रातच्फञोरस्त्रियाम्' ५.३.११३ को 'व्रातफञोरस्त्रियाम्' ऐसा पढना पडेगा। इससे 'कौञ्जायन्यः' की सिद्धि होने पर भी 'अश्वादिभ्यः फञ्' ४.१.११० में इसकी अतिव्याप्ति होने से 'आश्वलायनः' में स्वार्थिक ञ्य की आपत्ति होगी, अतः इससे बँचने के लिए चकारग्रहण करना चाहिये। यहाँ 'चकार एव कर्त्तव्यः' में 'एव' पद समुच्चयार्थक है। इस तरह चकारग्रहण का सार्थक्यसिद्ध होने पर उसका प्रयोजन अन्तोदात्तार्थ भी है। चकारविशेषण करने पर वृद्धि के लिए अन्य अनुबन्ध ञकार भी करना चाहिये। यदि चकारग्रहण करने के बाद वृद्ध्यर्थ ही दूसरा अनुबन्ध ञकार करना है तो वह कार्य ककारग्रहण से भी हो सकता है, अतः च्फञ् स्थान पर यदि च्फक् प्रत्यय पढा जाये तो 'गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फक्' ऐसा सूत्र पढना पडेगा जिससे सूत्रभेद होगा। सूत्रभेद न हो, इसके लिए सूत्र को यथावत् च्फञ्विशिष्ट ही रहने देना चाहिये।

अथ क्रियमाणेऽपि वै चकारेऽन्तोदात्तत्वं न प्राप्नोति। किं कारणम्? परत्वाञ्ञितीत्याद्युदात्तत्वं प्राप्नोति। चित्करणसामर्थ्यादन्तोदात्तत्वं भविष्यति। ञित्करण- सामर्थ्याद् आद्युदात्तत्वं प्राप्नोति। अस्त्यन्यञ्ञित्करणे प्रयोजनम्। किम्? वृद्ध्यर्थो ञकारः। चित्करणेऽपि तर्ह्यन्यत् प्रयोजनमस्ति। किम्? विशेषणार्थश्चकारः। शक्योऽत्र विशेषणार्थोऽन्योऽनुबन्ध आसङ्क्तुम्,-तत्र चकारानुरोधाद् अन्तोदात्तत्वं भवति। वृद्ध्यर्थोऽप्यन्यः शक्योऽनुबन्ध आसक्तुं, तत्र ञकारानुराधाद् आद्युदात्तत्वं प्राप्नोति। एव तर्हि स्वरे योगविभागः करिष्यते। इदमस्ति-'चितः'। चितोऽन्त उदात्तो भवतीति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्य आचार्य—**अथेति**। चकारग्रहण करने पर भी अन्तोदात्तस्वर सिद्ध नहीं हो सकेगा। वह इस तरह कि च्फञ् चित् भी है तथा ञित् भी है। चित् होने से जैसे अन्तोदात्त प्राप्त है वैसे ञित् होने से आद्युदात्त भी प्राप्त है। 'चितः' ६.१.१६३ और 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' ६.१.१९७ ये दोनों सूत्र अन्यत्रान्यत्र लब्धावकाश हैं, अतः समान बल होने से च्फञ् में दोनों की प्रवृत्ति होने पर परविप्रतिषेध के द्वारा आद्युदात्त प्राप्त होगा। यदि ञित्करण का अन्य प्रयोजन वृद्धि कहा जाये तो चित्करण का भी अन्य प्रयोजन विशेषणार्थ है।

इतर आचार्य—**शक्योऽत्रेति**। चकारकरण का मात्रविशेषण प्रयोज़न नहीं हो सकता है। यदि मात्र विशेषणार्थ चकार को देना होता तो आचार्य दूसरा भी धकार आदि अनुबन्ध लगा कर विशेषण कर सकते थे तथा च्फञ् के स्थान पर ध्फञ् आदि विधान कर 'व्रातध्फञोरस्त्रियाम्' ऐसा सूत्र पढ सकते थे। उसकी कहीं अतिव्याप्ति भी नहीं होती। परन्तु आचार्य ने ऐसा न करके जो चकारग्रहण किया उसका प्रयोजन विशेषणार्थ के साथ अन्तोदात्तार्थ भी है।

अन्य आचार्य—**वृद्ध्यर्थोऽप्यन्य इति**। यदि ऐसी वात है तो वृद्ध्यर्थ भी दूसरे अनुबन्ध ण् अथ वा क् का ग्रहण कर 'च्फण्' अथ वा 'च्फक्' ऐसा पढा जा सकता था। इस तरह आदिवृद्धि सिद्ध होने पर भी आचार्य ने जो ञकारग्रहण किया उससे वृद्धि के साथ-साथ आद्युदात्त भी प्रयोजन है।

ञित् से प्राप्त आद्युदात्त का बाध करने के लिए इतर आचार्य भाष्य का अवतरण करते हैं-**एवं तर्हीति**। अन्तोदात्तविधानार्थ तथा आद्युदात्त का बाध करने के लिए हम योगविभाग करेंगे। प्रथम योग होगा-'चितः' ६.१.१६३। इससे चित् अन्तोदात्त होगा।

ततः-'तद्धितस्य'। तद्धितस्य च चितोऽन्त उदात्तो भवतीति। किमर्थमिदम्? परत्वाञ्ञ्नितीत्याद्युदात्तत्वं प्राप्नोति-तद्बाधनार्थम्। ततः-'कितः'। कितश्च तद्धितस्यान्त उदात्तो भवतीति। किं पुनरत्र स्वरार्थेन चकारेणानुबन्धेन, यावता च्फञन्ताञ्ञ्यो विधीयते। तत्र ञ्नितीत्याद्युदात्तत्वेन भवितव्यम्। नैतदस्ति। बहुषु ञ्यस्य लोपे कृतेऽन्तोदात्तत्वं यथा स्यात्-कौञ्जायना इति। इह केचिद् द्व्येकयोः फ्यञं विदधति, बहुषु च फकम्। केचित्-च्फञन्ताञ्ञ्यम्। किमत्र न्याय्यम्? ञ्यवचनमेव न्याय्यम्। द्व्येकयोर्हि फ्यञि सति बहुषु च फकि कौञ्जायनानामपत्यं माणवकः- कौञ्जायन्यः, कौञ्जायन्यौ। केन 'य'शब्दः श्रूयते द्व्येकयोरित्युच्यमानो न प्राप्नोति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दूसरा योग होगा—'तद्धितस्य'। 'तद्धितस्य' में 'चितः' की अनुवृत्ति कर 'तद्धित चित् को अन्तोदात्त हो' ऐसा अर्थ होगा।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिदमिति**। यह योगविभाग क्यों करते हैं?

उत्तरपक्षी—**परत्वादिति**। 'चितः' ६.१.१६३ की अपेक्षा 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' ६.१.१९७ पर है, अतः परत्वात् ञित् होने से आद्युदात्त प्राप्त है, उसका बाध करने के लिए योगविभाग किया गया है। उसके बाद 'कितः' ६.१.१६५ सूत्र रखेंगे। 'कितः' ६.१.१६५ में 'तद्धितस्य' की अनुवृत्ति होगी। अर्थ होगा- 'कित् तद्धित अन्तोदात्त हो'।

पूर्वपक्षी—**किं पुनरत्रेति**। च्फञ् में अन्तोदात्तार्थ चकारग्रहण किया गया है। आप ने चित्स्वर से ञित्स्वर का बाध किया है। जब कि 'व्रातच्फञोरस्त्रियाम्' ५.3.११३ से च्फञ् से पर में विहित स्वार्थिक प्रत्यय ञ्य भी है, तथा वह ञित् है। यदि योगविभाग के द्वारा च्फञ्घटक ञकारग्रहण से प्राप्त आद्युदात्त का बाध कर भी लिया जाये तो ञ्य ञित् है, तन्निमित्तक आद्युदात्त प्राप्त होगा।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। ञ्य प्रत्यय में ञकारग्रहण का यह प्रयोजन नहीं है। बहुवचन में ञ्य शब्द का प्रयोग नहीं होने से 'कौञ्जायनाः' में अन्तोदात्त होगा, वहाँ आद्युदात्त की प्राप्ति नहीं है, अतः ञ्यघटक ञकार को स्वरार्थ नहीं कह सकते हैं। कुछ आचार्य च्फञ् से स्वार्थ में ञ्य प्रत्यय के स्थान पर एकवचन और द्विवचन में फ्यञ् और बहुवचन में फक् प्रत्यय का विधान करते हैं-और कोई आचार्य च्फञन्त से ञ्य प्रत्यय का विधान करते हैं।

पूर्वपक्षी—**किमत्रेति**। यहाँ क्या उचित है? एकवचन, द्विवचन से च्फञन्त से फ्यञ् प्रत्यय और बहुवचन में च्फञ् प्रत्यय तथा तदन्त से स्वार्थिक प्रत्यय का विधान न करके मात्र फक् का ही विधान करते है, ऐसा आप ने कह दिया। तथा च्फञन्त से ञ्य करके बहुवचन में ञ्यलोप कह दिया। यहाँ कौन सा पक्ष उचित है?

उत्तरपक्षी—**ञ्यवचनमिति**। च्फञन्त से ञ्य प्रत्यय का विधान ही उचित है।

पूर्वपक्षी—**द्व्येकयोर्हि फ्यञीति**। द्विवचन, एकवचन में च्फञन्त से फ्यञ् स्वार्थ में कहा है। परन्तु जहाँ 'कौञ्जायन्नानामपत्यं माणवकः' ऐसा बहुवचनान्त विग्रह करेंगे वहाँ 'कौञ्जायन्यः, कौञ्जायन्यौ' ऐसा 'य'घटित रूप एकवचन और द्विवचन में कैसे होगा? द्विवचन और एकवचन में कहने से यहाँ प्रत्यय प्राप्त नहीं है। बहुवचन में य शब्द का प्रयोग नहीं होता है। परन्तु जब ञ्य प्रत्यय करेंगे तब 'गोत्रेऽलुगचि' ४.१.८९ से लुङ्निषेध होने पर य शब्द का श्रवण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होगा। 'कौञ्जायनस्य बहूनि अपत्यानि' इस विग्रह में 'अत इञ्' ४.१.९५ से विहित इञ् प्रत्यय का 'ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः' २.४.५८ से लुक् है। एवं तद्राजसंज्ञक ञ्य प्रत्यय का 'तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्' २.४.६२ से लुक् हो कर 'कौञ्जायनाः' रूप ही रहेगा।

इह कौञ्जायन्यस्यापत्यं बहवो माणवकाः-कौञ्जायनाः। केन 'य'शब्दो न श्रूयते। द्व्येकयोरित्युच्यमानः प्राप्नोति। तदेतत्कथं कृत्वा ञ्यवचनं ज्यायो भवति? यदि तन्नास्ति-'आपत्यं वा गोत्रम्,-परमप्रकृतेश्चापत्यः, आपत्याज् जीवद्वंश्यात्स्वार्थे द्वितीयो युवसंज्ञः, स चाऽस्त्रियाम्, एको गोत्रग्रहणानर्थक्यं च, बहुवचनलोपिषु च सिद्धमि'ति। सति हि तस्मिन् द्व्येकयोरपि फ्यञि सति बहुषु च फकि सति न दोषो भवति,-तत्र कौञ्जायनानामपत्यं माणवक इति विगृह्य कुञ्जशब्दाद् द्व्येकयोरुत्पत्तिर्भविष्यतिकौञ्जायन्यः, कौञ्जायन्यौ। कौञ्जायनस्यापत्यं बहवो माणवका इति विगृह्य कुञ्जशब्दाद् बहुषूत्पत्तिर्भविष्यति- कौञ्जायना इति।। गोत्रे कुञ्जा।।

अथ च जब एकवचन, द्विवचन में य शब्द का श्रवण बता रहे हैं तब जहाँ पर 'कौञ्जायनस्यापत्यं बहवो माणवकाः कौञ्जायनाः' में एकवचन से 'कौञ्जायनस्य' ऐसा विग्रह किया गया है वहाँ 'कौञ्जायनाः' में किस सूत्र से लुक् होने से 'य'शब्द का श्रवण नहीं हो रहा है? द्विवचन, एकवचन में 'य'शब्द का श्रवण बताया था, अतः उक्त विग्रह में 'य'पद का श्रवण होना चाहिये।

अन्य आचार्य—**तदेतदिति**। 'कौञ्जायनस्यापत्यं बहवो माणवकाः कौञ्जायना' में ञ्यश्रवण की आपत्ति दे रहे हैं? यदि **तन्नास्ति**-'कौञ्जायनाः' में युवापत्यार्थ प्रत्यय की प्रकृति कौञ्जायन्य को नहीं मानेंगे, अपि तु **आपत्यम्**=अपत्यस्येदमापत्यम्, 'तस्येदम्' ४.३.१२० से अण्, यदि **आपत्यम्**=पौत्रप्रभृतिगोत्रसंज्ञक मान कर परमप्रकृति कुञ्ज आदि से ही अपत्यार्थक प्रत्यय करेंगे, अनन्तर अगोत्र और अयुव से नहीं, एवं 'जीवति तु वंश्ये युवा' ४.१.१६३ से चतुर्थ आदि में जीवद्वंश्य होने पर जब प्रत्यय करेंगे तब युवसंज्ञक से द्वितीय प्रत्यय फक्, फ्यञ् हो कर स्वार्थिक इञ् का 'यञिञोश्च' २.४.६४ से लुक् हो कर इष्टरूप सिद्ध हो जायेगा। वह द्वितीय युवसंज्ञक स्त्री अर्थ में विहित नहीं है; अतः 'कौञ्जायनस्यापत्यं स्त्री' इस अर्थ में 'कुञ्जायना' यही रूप होगा, वहाँ युवार्थ प्रत्यय स्त्र्यर्थ में प्राप्त नहीं हो सकेगा।

अथ च 'परमप्रकृतेश्चापत्यः' ऐसा कहने से प्रत्यय की परमप्रकृति कुञ्जादि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ही होंगे, अन्य नहीं। इस तरह गोत्र अर्थ में द्वितीय प्रत्यय के अप्राप्त होने से उसका निषेधक 'एको गोत्रे' ४.१.९३ सूत्र व्यर्थ है। ञ्य पक्ष में बहुवचन में यलोप होने पर 'कौञ्जायनानामपत्यं माणवकः' ऐसा विग्रह करके मूलप्रकृति कुञ्ज आदि से 'कौञ्जायनाः' यही रूप रहेगा। यदि द्विवचन और एकवचन में फ्यञ् करेंगे तो फ् को आयन्नादेश हो कर 'कौञ्जायन्यः, कौञ्जायन्यौ' रूप होगा, एवं 'कौञ्जायनस्यापत्यं बहवो माणवकाः' ऐसा विग्रह करके बहुवचन में मूलप्रकृति कुञ्ज आदि से फक् करने पर भी 'कौञ्जायनाः' रूप होगा, इस पक्ष में भी होई दोष नहीं है।। **गोत्रे-**।।

अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ् ४.१.१०४

अनृष्यानन्तर्य इत्युच्यते, तत्रेदं न सिध्यति-कौशिको विश्वामित्र इति। किं कारणम्? 'विश्वामित्रस्तपस्तेपे 'नानृषिः स्या'मिति, तत्र भवानृषिः सम्पन्नः। स पुनस्तपस्तेपे 'नानृषेः पुत्रः स्या'मिति। तत्र भवान् गाधिरपि ऋषिः सम्पन्नः। स पुनस्तपस्तेपे 'नानृषेः पौत्रः स्या'मिति'। तत्र भवान् कुशिकोऽपि ऋषिः सम्पन्नः'। तदेतदृष्यानन्तर्यं भवति। तत्राऽनृष्यानन्तर्य इति प्रतिषेधः प्राप्नोति। नैष दोषः।

'अनृषि' लुप्तपञ्चमीक पद है। 'बिदादिभ्योऽञ्' की दो बार आवृत्ति करेंगे। 'अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्' सम्पूर्ण एकवाक्य होगा। द्वितीय वाक्य 'बिदादिभ्योऽञ्' होगा। द्वितीय वाक्य का अर्थ होगा-'गोत्र अर्थ वाच्य होने पर बिदादि से पर में अञ् प्रत्यय हो'। एवं प्रथम वाक्य का-'परन्तु जो अनृषि (पुत्र आदि) हैं उन बिदादि से पर में अनन्तरापत्य अर्थ गम्य होने पर अञ् प्रत्यय हो' ऐसा अर्थ होगा। बिदादिगण में ऋषि और अनृषि दोनों पठित हैं। 'यहाँ जो अनृषि हैं उनसे अनन्तरापत्य अर्थ में अञ् हो' फलितार्थ है। सूत्र में अनन्तरपद से स्वार्थ में यञ् प्रत्यय करके आनन्तर्यशब्द का प्रयोग है। उदाहरण-जैसे 'बिदस्य गोत्रापत्यं बैदः'। बिद ऋषि हैं, अतः बिदशब्द से पर में गोत्र अर्थ में अञ् प्रत्यय है। यहाँ 'ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च' ४.१.११४ से अण्, 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ् प्राप्त था, जिसका अञ् के द्वारा बाध किया गया है। अनृषि-वाचक बिदशब्द से अनन्तरापत्य अर्थ वाच्य होने पर 'बिदस्यानन्तरापत्यम्' इस अर्थ में अनृषिवाचक बिद शब्द से बाह्वादि को आकृतिगण मान कर 'बाह्वादिभ्यश्च' ४.७.९६ से इञ् हो कर 'बैदिः' रूप होगा।

पूर्वपक्षी आचार्य—**अनृष्यानन्तर्य इति**। आचार्य 'अनृष्यानन्तर्य' ऐसा कह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रहे हैं। उससे **'ऋषीणामानन्तर्ये**=अव्यवधाने न भवति' ऐसा अर्थ है। इससे 'कुशिकस्यानन्तरापत्यं कौशिको विश्वामित्रः' में ऋष्यानन्तर्य होने से 'अनृष्यानन्तर्य' इस निषेधवचन की प्रवृत्ति होगी। जिससे कृशिकशब्द से अनन्तरापत्य अर्थ में अञ् प्राप्त नहीं होगा।

'कौशिकः' में ऋष्यानन्तर्य स्पष्ट करते हैं—**विश्वामित्रस्तप इति**। मैं अनृषि न रहूँ इसके लिए विश्वामित्र ने तपस्या की और स्वयम् ऋषि हो गये। परन्तु स्वयम् ऋषि होने पर भी अनृषि के पुत्र थे, अतः अपने पिता गाधि में ऋषित्वसम्पादन के लिए विश्वामित्र ने पुनः तपस्या की। तपःप्रभाव से उनके पिता गाधि में भी ऋषित्व आ गया। इससे विश्वामित्र ऋषिपुत्र हो गये। इससे ऋषिपुत्र होने पर भी विश्वामित्र अनृषि कौशिक के पौत्र थे। उनकी इच्छा हुई कि मैं ऋषि का पौत्र होऊँ। इसके लिए उन्होंने तपस्या की। उनके तपःप्रभाव से पितामह कुशिक में भी ऋषित्व आ गया। इससे विश्वामित्र कुशिक ऋषि के पौत्र हो गये। इस तरह ऋष्यानन्तर्य होने से कुशिकशब्द से अनन्तरापत्य अर्थ में अञ् प्राप्त होने पर अनृष्यानन्तर्य निषेध हो जायेगा, अतः 'कौशिको विश्वामित्रः' की असिद्धि हो रही है। इस भाष्य से सिद्ध हुआ कि अनृषि का पुत्र भी ऋषि होता है, एवं स्वयम् ऋषि हो कर अपने तपःप्रभाव से अपने अनृषि पिता, पितामह में ऋषित्वसम्पादन कर सकता है। 'अनृष्यानन्तर्ये' का दो अर्थ सम्भव है। १-'**अनृष्यानन्तर्ये**=अव्यवधाने न भवति'। २-'अनन्तरमेवान्तर्यम्, स्वार्थ में यञ्, आनन्तर्येण अनन्तरापत्ये प्रत्ययो न भवति'। यहाँ दोनों ही अर्थों में 'भवति' क्रिया के साथ नञ् का अन्वय हो रहा है, तथा नञ् पद का ऋषिपद के साथ समास है, अतः इसे असमर्थ समास माना जायेगा। सम्भावित इन दोनों प्रकार के अर्थों में प्रथमपक्ष को लेकर पूर्वपक्ष है, अतः पूर्वपक्षी आचार्य-'तदेतदृष्यानन्तर्यं भवति। तत्रानृष्यानन्तर्य इति प्रतिषेधः प्राप्नोति' ऐसा कहते हैं। यहाँ प्रथमपक्ष को मानने में दोष हो रहा है।

नैवं विज्ञायते-'ऋष्यानन्तर्ये न भवती'ति। कथं तर्हि? ऋषावनन्तरे नेति। यद्येवम्- * अनृष्यानन्तर्यवचनम् अनर्थकं, संज्ञागोत्राधिकारात् *** अनृष्यानन्तर्यवचनम् अनर्थकम्। किं कारणम्? 'संज्ञागोत्राधिकारात्'। संज्ञागोत्र इति वर्त्तते, तत्र कः प्रसङ्गो यदनन्तरे स्यात्, नैव प्राप्नोति, नार्थः प्रतिषेधेन। एवं तर्हि सिद्धे सति यदनृष्यानन्तर्य इति प्रतिषेधं शास्ति तज्ज्ञापयत्याचार्यो 'बिदादिषु येऽनृषयः पठ्यन्ते तेषामनन्तरेऽपि वृत्तिर्भवती'ति। किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम्? नानान्द्रः,**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पौत्रः, दौहित्रः इत्येतत्सिद्धं भवति।। अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्।।

इस दोष का उद्धार करने के लिए प्रथमपक्ष का तिरस्कार कर द्वितीयपक्ष का आश्रयण कर उत्तरपक्षी आचार्य कहते हैं-**नैवं विज्ञायत इति**। यहाँ 'अनृष्यानन्तर्ये' पद से 'अनृष्यानन्तर्ये न भवति' ऐसा अर्थ इष्ट नहीं है। अपि तु 'ऋषौ अनन्तरे न भवति' ऐसा अर्थ इष्ट है। यहाँ 'ऋषौ' यह अवधि की अधिकरणत्वविवक्षा में सप्तमी है।

आक्षेपक आचार्य—**यद्येवमिति**। यदि 'अनृष्यानन्तर्ये' पद से 'ऋषावनन्तरे न भवति' ऐसा अर्थ लेंगे तो इसके लिए अनृष्यानन्तर्यग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है। 'गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ्' ४.१.९८ से 'गोत्रे' पद की अनुवृत्ति हो रही है। वहाँ संज्ञा के द्वारा पौत्रप्रभृतिगोत्र का ही ग्रहण है, अतः प्रकृत सूत्र में भी संज्ञा के द्वारा पौत्रप्रभृति गोत्र का ही अनुवर्तन होगा, अपत्यमात्रार्थक का नहीं। इससे अपत्यप्रभृतिगोत्र में ही प्रत्यय की प्राप्ति होगी। अनन्तरापत्य में प्रत्यय प्राप्त नहीं है, अतः उसका प्रतिषेध भी व्यर्थ है।

सिद्धान्ती आचार्य—**एवं तर्हीति**। संज्ञागोत्र का अनुवर्तन के द्वारा लक्ष्य सिद्ध होने पर आचार्य ने 'अनृष्यानन्तर्ये' यह निषेधवचन पढा है, वह व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा-'बिदादि में जो अनृषि पढे गये हैं, वे अनन्तरापत्य अर्थ में ही शक्त हैं'। यहाँ 'अपि'शब्द 'एव' अर्थ में शक्त है। यहाँ ऋषिवाचकशब्द से गोत्र में ही अञ् प्रत्यय हो, परन्तु अनृषि से अनन्तरापत्य में ही अञ् प्रत्यय हो, यह विषयविभाग है। यदि इस ज्ञापक के द्वारा अनृषि से अपत्यमात्र में प्रत्यय की प्राप्ति कही जाये तो यह उचित नहीं है। वह इस तरह कि 'ऋषिभ्योऽनन्तरे न भवति' इस निषेध के द्वारा 'अनृषिभ्योऽनन्तरे भवति' इस विशेषविषय का अनुमान करेंगे। वह तक्रकौण्डिन्यन्याय से गोत्र में अञ् का बाधक होगा। यहाँ इस भाष्य से 'अनृषि से अनन्तर और गोत्र अर्थ में प्रत्यय हो' यही आता है। इस ज्ञापन से 'ननान्दुरपत्यं नानान्द्रः, पुत्रस्यानन्तरापत्यं पौत्रः, दुहितुरनन्तरापत्यं दौहित्रः' में अनृषि ननान्दृ आदि से अनन्तरापत्य अर्थ में अञ् सिद्ध होता है।। **अनृष्यानन्तर्ये-**।।

वतण्डाच्च ४.१.१०८

किमर्थमिदमुच्यते, न 'गर्गादिभ्यो य'ञित्येव सिद्धम्? लुक्स्त्रया-मिति वक्ष्यामीति। यदि पुनस्तत्रैवोच्येत? नैवं शक्यम्, आङ्गिरसग्रहणं हि विच्छिद्येत।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ पूर्व सूत्र 'कपिबोधादाङ्गिरसे' ४.१.१०७ से 'आङ्गिरसे' की और 'गर्गादिभ्यो यञ्' ४.१.१०५ से 'यञ्' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'आङ्गिरस अर्थ गम्य होने पर वतण्ड शब्द से गोत्रार्थक यञ् प्रत्यय हो'। वतण्डस्य गोत्रापत्यं वातण्ड्यः। 'शिवादिभ्योऽण्' ४.१.११२ गण में भी वतण्डशब्द पठित है, अतः अङ्गिरस अर्थ गम्य होने पर वतण्डशब्द से अपत्यार्थ में अण् हो कर 'वातण्डः' रूप भी होगा।

पूर्वपक्षी—**किमर्थमिति**। गोत्रापत्य अर्थ में वतण्डशब्द से यञ्विधान के लिए 'वतण्डाच्च' सूत्र का आरम्भ क्यों करते है? गर्गादिगण में वतण्डशब्द का पाठ कर दीजिये, उसी से गोत्रापत्य अर्थ में यञ् सिद्ध हो जायेगा?

उत्तरपक्षी—**लुक्स्त्रियामिति**। आचार्य आगे 'लुक्स्त्रियाम्' ४.१.१०६ सूत्र पढने वाले हैं। उसमें वतण्डशब्द की अनुवृत्ति हो सके, इसके लिए पृथक् 'वतण्डाच्च' सूत्र पढा गया है।

पूर्वपक्षी—**यदि पुनरिति**। यदि 'वतण्डाच्च' सूत्र का इतना ही प्रयोजन है तो पृथक् सूत्र न पढ कर 'लुक्स्त्रियाम्' ४.१.१०६ के देश में ही इसे पढ कर 'वतण्डाल्लुक्स्त्रियाम्' ऐसा सूत्र क्यों नहीं मानते हैं? इससे पृथक् एक सूत्र नहीं करने से लाघव होगा।

उत्तरपक्षी—**नैवं शक्यमिति**। यदि 'लुक्स्त्रियाम्' ४.१.१०६ के देश में 'वतण्डाच्च' को पढ कर एक सूत्र मान लेंगे तो 'कपिबोधादाङ्गिरसे' ४.१.१०७ से अनुवृत्त आङ्गिरस पद का वतण्ड के साथ योग नहीं हो पायेगा। वतण्डपद के साथ आङ्गिरस पद का योग हो, इसके लिए पृथक् सूत्र किया जाना आवश्यक है।।वत-।।

शिवादिभ्योऽण् ४.१.११२

किमर्थं शिवादिभ्योऽण्विधीयते, न 'यथाविहितमि'त्येवोच्येत? 'शिवादिभ्यो यथाविहितमि'तीयत्युच्यमानेइञ्प्रसज्येत। इञतो यथाविहितः। पुनर्ववचनमिदानीं किमर्थं स्यात्? ये तस्य बाधकास्तद्बाधनार्थम्। स वै नास्ति यस्तं बाधेत। तत्रारम्भसामर्थ्याद्यो विहितो न च प्राप्नोति स भविष्यति। कश्चासौ? अण्णेव।

इसमें 'गोत्रे' की निवृत्ति हो गयी।

सूत्रार्थ—'शिवादिगणपठित प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में अण् प्रत्यय हो'। जैसे-'शिवस्यापत्यं शैवः, गङ्गाया अपत्यं गाङ्गः' इत्यादि।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। इस सूत्र से अण्विधान क्यों करते हैं? 'शिवादिभ्यः' इतना मात्र ही सूत्र रखिये। इससे 'शिवादिगण से यथाविहित प्रत्यय हों' यह अर्थ होगा।

उत्तरभाष्य—**शिवादिभ्य इति**। 'शिवादिभ्यः' इतना मात्र सूत्र रखने से शिवादि से यथाविहित प्रत्यय का विधान होगा। यथाविहित प्रत्यय शिवादि से 'अत इञ्' ४.१.९५ होगा। उसी की प्रसक्ति होने लगेगी। जब कि यहाँ अण् इष्ट है, अतः अण् हो, इञ् न हो, इसके लिए अण्विधान किया गया है।

प्रश्नभाष्य—**पुनर्वचनमिति**। यदि शिवादि से भी अदन्तलक्षण इञ् होगा तो 'शिवादिभ्यः' यह पृथक् सूत्र व्यर्थ पडेगा, अतः व्यर्थ पड कर अण् का बाधक इञ् का बाध करेगा।

उत्तरभाष्य—**स वै नास्तीति**। यदि 'शिवादिभ्यः' इतनामात्र सूत्र रखेंगे तो यहाँ कोई विधेय नहीं है जो इञ् का बाध कर सके। जो अदन्तलक्षण इञ् विहित है वह 'शिवादिभ्यः' इस सूत्रारम्भसामर्थ्य से शिवादि से प्राप्त नहीं हो सकेगा, अपि तु अण् ही होगा। इस तरह सूत्र में अण्पद के अभाव में भी जब अण्विधान सिद्ध हो रहा है तब सूत्र में अण्पद का पाठ क्यों किया गया है?

उत्तरार्थं तर्हि-अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्य इति। अत्र यथाविहितमितीयत्युच्यमाने ढक्प्रसज्येत। ढगतो यथाविहितः। पुनर्वचनमिदानीं किमर्थं स्यात्? ये तस्य बाधकास्तद्बाधनार्थम्। स वै नास्ति यस्तं बाधेत। तत्रारम्भसामर्थ्याद्यो विहितो न च प्राप्नोति स भविष्यति। कः पुनरसौ? अण्णेव। उत्तरार्थमेव तर्हि,-ऋष्यन्धक-वृष्णिकुरुभ्यश्चेति। अत्र 'यथाविहितमि'तीयत्युच्यमाने इञ् प्रसज्येत। इञतो यथाविहितः। पुनर्वचनमिदानीं किमर्थं स्यात्? ये तस्य बाध-कास्तद् बाधनार्थम्। स वै नाऽस्ति यस्तं बाधेत। तत्रारम्भसामर्थ्याद्यो विहितो न च प्राप्नोति स भविष्यति। कश्चासौ? अणेव। उत्तरार्थ-मेव तर्हि-मातुरुत्संख्यासम्भद्रपूर्वायाः, कन्यायाः कनीन चेति। अत्र यथाविहितमि'तीयत्युच्यमाने ढक्प्रसज्येत, ढगतो यथाविहितः।

उत्तरपक्षी—**उत्तरार्थमिति**। उत्तरसूत्र 'अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः' ४.१.११३ में अण्पद की अनुवृत्ति हो सके, इसके लिए 'शिवादि- भ्योऽण्' में अण्पद पढा गया है। यदि 'अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः' ४.१.११३ में यथाविहित प्रत्यय का विधान करेंगे तो 'यामुनः, नार्मदः, चैन्तितः' में सर्वत्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'स्त्रिभ्यो ढक्' ४.१.१२० से विहित ढक् प्रत्यय होने लगेगा जो इष्ट नहीं है। यहाँ अण् हो, इसके लिए पूर्वसूत्र 'शिवादिभ्योऽण्' से अण् पद की अनुवृत्ति आवश्यक है। तदर्थ यहाँ अण्पद का पाठ किया गया है।

प्रश्नभाष्य—**पुनर्वचनमिति**। यदि 'यामुनः, नार्मदः, चैन्तितः' में भी यथा-विहित ढक् ही होना था तो 'अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः' ४.१.११३ सूत्र का आरम्भ व्यर्थ होगा। वह व्यर्थ न हो, इसके लिए अण् का बाधक ढक् का बाध करने के लिए सूत्रारम्भ होगा।

अन्य आचार्य—**स वै नास्तीति**। यहाँ अण् पठित नहीं है जो ढक् का बाध कर सके।

उत्तरपक्षी—**तत्रारम्भेति**। सूत्रारम्भसामर्थ्य से विहित ढक् की प्रवृत्ति 'यामुनः, नार्मदः, चैन्तितः' में नहीं होगी।

पूर्वपक्षी—**कः पुनरिति**। यदि सूत्रारम्भसामर्थ्य से 'यामुनः' इत्यादि में ढक् का बाध होगा तो कौन प्रत्यय होगा?

उत्तरपक्षी—**अणेवेति**। अण् का अपवाद ढक् है। ढक् का बाध होने पर सामान्य अण् प्रत्यय ही होगा। इस तरह उत्तरसूत्र में अनुवृत्त्यर्थ भी यहाँ अण् का पाठ सिद्ध नहीं हो सकेगा।

अन्य आचार्य—**उत्तरार्थमेव हीति**। उत्तरसूत्र 'ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च' ४.१.११४ में अण्पद की अनुवृत्ति न करके यथाविहित प्रत्यय का विधान करेंगे तो :अत इञ्' ४.१.९५ की प्रवृत्ति होने लगेगी। ऋष्यन्धकवृष्णि कुरु से इञ् ही विहित है, इसी की प्राप्ति होने लगेगी।

पुनर्वचनमिदानीं किमर्थम् स्यात्? मातुरुकारं वक्ष्यामि, कन्यायाः कनीनभावमिति। यद्येतावत्प्रयोजनं स्यात्तत्रैवायं ब्रूयात् स्त्रीभ्यो ढक्, मातुरुकारः, कन्यायाश्च कनीनभाव इति। इदं तर्हि प्रयोजनम्-अयमृष्टिषेणशब्दः शिवादिषु पठ्यते। तत्र यथाविहितमितीत्युच्यमाने इञ् प्रसज्येत। तं परत्वात्सेनान्ताण्ण्यो बाधेत। तत्रारम्भसामर्थ्यादिञ् प्रसज्येत। पुनरण्ग्रहणादण्णेव भवति।। शिवादिभ्योऽण्।।

प्रश्नभाष्य—**पुनर्वचनमिति**। यदि 'ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च' ४.१.११४ से भी यथाविहित इञ् प्रत्यय ही होगा तो 'ऋष्यन्धक-' सूत्र का आरम्भ व्यर्थ पडेगा, अतः सूत्रारम्भ सामर्थ्य से अपत्य अर्थ में सामान्य विहित अण् का बाधक इञ् का बाध हो जायेगा, अतः अण् ही होगा, इञ् नहीं। इसके लिए

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भी अण्पद का पाठ नहीं करना चाहिये।

अन्य आचार्य—**स वै नास्तीति**। यहाँ अण् पठित नहीं है जिससे इञ् का बाध किया जा सके।

पूर्वपक्षी—**तत्रारम्भेति**। आरम्भसामर्थ्य से सामान्यविहित अण् से विशेषविहित इञ् का बाध हो जायेगा, अतः उत्तरसूत्र में भी अण्पद का लाभ हो जोने से उसमें अनुवृत्त्यर्थ भी अण्पद का पाठ व्यर्थ है।

उत्तरपक्षी—**उत्तरार्थमेव तर्हीति**। उत्तरसूत्र 'मातुरुत्संख्यासम्भद्रपूर्वायाः' ४.१.११५ और 'कन्यायाः कनीन च' ४.१.११६ में अण्पद की अनुवृत्ति हो सके, इसके लिए यहाँ अण्पद का पाठ किया गया है। यदि यहाँ अण्पद की अनुवृत्ति न करके यथाविहित प्रत्यय का विधान करेंगे तो 'द्वैमातुरः, षाण्मातुरः, सांमातुरः, भाद्रमातुरः, कानीनो व्यासः' में सामान्यविहित 'स्त्रीभ्यो ढक्' ४.१.१२० की प्रवृत्ति होगी। यहाँ स्त्रीप्रत्ययान्त से ढक् प्रत्यय ही विहित है।

अन्य आचार्य—**पुनर्वचनमिति**। यदि 'द्वैमातुरः' इत्यादि में यथाविहित ढक् की ही प्रवृत्ति मानेंगे तो 'मातुरुत्संख्यासम्भद्रपूर्वायाः' ४.१.११५ और 'कन्यायाः कनीन च' ४.१.११६ सूत्र का आरम्भ व्यर्थ पडेगा, अतः यह व्यर्थ पड कर सामान्यविहित अपत्यार्थक अण् से विशेषविहित अपत्यार्थक ढक् प्रत्यय का बाध करेगा, जिससे 'द्वैमातुरः' आदि में अण् प्रत्यय ही होगा, ढक् नहीं। इस तरह 'मातुरुत्संख्यासम्भद्रपूर्वायाः' ४.१.११५ और 'कन्यायाः कनीन च' ४.१.११६ में अण्पद का लाभ हो जाने से उसमें अनुवृत्त्यर्थ भी इस अण् का प्रयोजन नहीं हो सकता है। यद्यपि अस्त्रीप्रत्ययान्त मातृशब्द से ढक् प्राप्त नहीं है तथापि 'स्त्रीभ्यः' ऐसा अर्थ मान कर पूर्वपक्षी ने ढक् कहा है। अथ च आचार्य मातृशब्द को उकार और कन्याशब्द को कनीन आदेश भी कहेंगे।

इतर आचार्य—**यद्येतावदिति**। यदि अण्ग्रहण का इतना ही प्रयोजन था तो सूत्रकार 'मातुरुत्संख्या-' ४.१.११५ और 'कन्यायाः-'४.१.११६ सूत्र पर ही अण्विधान करते। इससे 'स्त्र्यर्थक से अपत्य अर्थ में ढक् हो, मातृशब्द को उत् हो और पर में अपत्यार्थक अण् हो, एवं कन्याशब्द से पर में अपत्यार्थक अण् हो और कन्याशब्द को कनीन आदेश हो' ऐसा अर्थ लब्ध हो जाता। उसके लिए अण्पद को 'शिवादिभ्योऽण्' सूत्र में क्यों पढा गया है?

प्रयोजनवादी आचार्य—**इदं तर्हीति**। शिवादिगण में ऋष्टिषेणशब्द पठित है। यदि 'शिवादिभ्यः' मात्र इतना ही सूत्र रखेंगे, अण्ग्रहण नहीं करेंगे तो 'यथाविहित प्रत्यय हो' ऐसा अर्थ करना होगा। इससे 'ऋष्टिषेणस्यापत्यम्' इस अर्थ में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'अत इञ्' ४.१.९५ से प्राप्त इञ् का 'सेनान्तलक्षणकीरिभ्यश्च' ४.१.१५२ से सेनान्तलक्षण ण्य प्रत्यय के द्वारा बाध होने लगेगा। पुनः शिवादिगण में ऋष्टिषेण का पाठ व्यर्थ न हो, इसके लिए सूत्रारम्भसामर्थ्य से इञ् की प्राप्ति होने से 'आर्ष्टिषेणिः' ऐसा अनिष्ट प्रयोग होने लगेगा। जब कि वहाँ अणन्त 'आर्ष्टिषेणः' प्रयोग इष्ट है, अतः अण्ग्रहण किया गया है। अण्ग्रहण से अण् हो कर आर्ष्टिषेणः' प्रयोग ही होता है।। शिवा-।।

ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च ४.१.११३

* ऋषिस्त्र्यणोर्ढग्द्रकौ विप्रतिषेधेन * **ऋष्यणः स्त्र्यणश्च ढग्द्रकौ भवतो विप्रतिषेधेन। ऋष्यणोऽवकाशः-वाशिष्ठः। वैश्वामित्रः। ढकोऽवकाशः-दुलि-दौलेयः।** बलि-**बालेयः। इहोभयं प्राप्नोति-अत्रि-आत्रेयः। स्त्र्यणोऽवकाशः-मकन्दिका-माकन्दिकः। द्रकोऽवकाशः-काणिकेरः। गाणिकेरः। इहोभयं प्राप्नोति-पौणिकेरः। मौद्गलिकेरः। ढग्द्रकौ भवतो विप्रतिषेधेन।**

'शिवादिभ्योऽण्' ४.१.११२ से अण्पद की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'ऋषि, अन्धक, वृष्णि और कुरु से अपत्यार्थक अण् हो'। यह इञ् का अपवाद है। यहाँ ऋषिपद से मन्त्रद्रष्टा विवक्षित हैं। 'प्रलीनान्वेदाँस्तपोबलादर्षन्ति=प्राप्नुवन्ति ये ते ऋषयः। तैत्तिरीयश्रुति में इसे 'अजान्ह वै पृश्नीस्तपस्यमानान्ब्रह्म स्वयम्भ्वभ्यानषत्, त ऋषयोऽभवन्, तदृषीणामृषित्वम्' तै.आ.प्रपा.२ अनु.९ ऐसा कहा है। वेदभाष्यकार वहाँ इस तरह भाष्य करते हैं-'अजाः=नित्याः, पृश्नयः=शुद्धाः शुक्ला इति यावत्। ताँस्तपस्यमानाँस्तपश्चरतः, स्वयम्भु=अनादि, ब्रह्म=वेदोऽभ्यभानषत्=ऋषी गतौ धा.पा.१२८८ आभिमुख्येन प्राप्नोत्। ते वेदस्यामर्षणाद्-ऋषिशब्दवाच्या अभवन्'। इस वेदप्रमाण से यहाँ ऋषिशब्दवाच्य मन्त्रद्रष्टा महर्षि अपेक्षित हैं। अन्धक, वृष्णि और कुरुशब्द से अन्धकादि वंश्य विवक्षित हैं। जैसे-ऋषि–'वशिष्ठस्यापत्यं वाशिष्ठः, विश्वामित्रस्यापत्यं वैश्वामित्रः। अन्धक–श्वफल्कस्यापत्यं श्वाफल्कः। वृष्णि–वसुदेवस्यापत्यं वासुदेवः, अनिरुद्धस्यापत्यमानिरुद्धः। कुरु–नकुलस्यापत्यं नाकुलः, सहदेवस्यापत्यं साहदेवः'। शूर वृष्णिवंशी है। परन्तु 'बाह्वादिभ्यश्च' ४.१.९६ में शूरशब्द का पाठ है, अतः 'शौरिः' में इञ् होगा।

एकदेशी आचार्य—**ऋषिस्त्र्यणोरिति**। परविप्रतिषेध के द्वारा ढक् और द्रक् से ऋषिलक्षण अण् और स्त्रीलक्षण अण् का बाध होता है। परविप्रतिषेध स्पष्ट करने के लिए तुल्यबलविरोध दिखाते हैं-**ऋष्यणोऽवकाश इति**। 'विश्वामित्रस्यापत्यं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैश्वामित्रिः, वशिष्ठस्यापत्यं वाशिष्ठिः' में 'ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च' ४.१.११३ चरितार्थ है। 'दुलेरपत्यं दौलेयः, बलेरपत्यं बालेयः' में 'द्व्यचः' ४.१.१२१ चरितार्थ है। दुलि और बलि अनृषि हैं, अतः यहाँ ऋषिलक्षण अण् की अप्राप्ति होने से द्व्यज्लक्षण ढक् चरितार्थ है। 'अत्रेरपत्यमात्रेयः' में ऋषिलक्षण अण् तथा द्व्यज्लक्षण ढक् दोनों की प्राप्ति हो रही है। परत्वाद् द्व्यज्लक्षण ढक् से ऋषिलक्षण अण् का बाध हो जायेगा। 'मकन्दिकाया अपत्यं पुमान् माकन्दिकः' में 'अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः' ४.१.११३ से मानुषीलक्षण स्त्र्यण् चरितार्थ है। 'काणैव काणिका, स्वार्थे कन्, काणिकाया अपत्यं पुमान् काणिकेरः, गणिकाया अपत्यं पुमान् गाणिकेरः' में 'क्षुद्राभ्यो वा' ४.१.१३१ से विहित ढ्रक् चरितार्थ है। 'पुणिका-क्षुद्रा, तस्या अपत्यं पुमान् पौणिकेरः, मुद्गलिकाया अपत्यं पुमान् मौद्गलिकेरः' में मानुषीलक्षण स्त्र्यण् और क्षुद्रालक्षण ढ्रक् उभय की प्राप्ति है। परविप्रतिषेध के द्वारा ढ्रक् से अण् का बाध हो जायेगा।

*** द्व्यचो ढको ढ्रग्ढञौ * द्व्यचो ढग्भतीत्येतस्माड् ढ्रग्ढञौ भवतो विप्रतिषेधेन। 'द्व्यचो ढग्भवती'त्यस्यावकाशः-दात्तेयः, गौप्तेयः। ढ्रकः स एव। इहोभयं प्राप्नोति-नटी-नाटेरः। दासी-दासेरः। ढञो-ऽवकाशः-कामण्डलेयः। हैरण्यवाहेयः। भाद्रवाहेयः। ढकः स एव। इहोभयं प्राप्नोति-जम्बू-जाम्बेयः। ढ्रग्ढञौ भवतो विप्रतिषेधेन।**

द्व्यचो ढक इति। द्व्यज्लक्षण ढक् को परविप्रतिषेध के द्वारा ढ्रक् और ढक् बाधक होते हैं। 'दत्ताया अपत्यं पुमान् दात्तेयः, गुप्ताया अपत्यं पुमान् गौतेयः' में 'द्व्यचः' ४.१.१२१ चरितार्थ है। 'काणिकेरः, गाणिकेरः' में 'क्षुद्राभ्यो वा' ४.१.१३१ चरितार्थ है। 'नाट्या अपत्यं पुमान् नाटेरः, दास्या अपत्यं पुमान् दासेरः' में ढ्क् और ढ्रक् उभय की प्रवृत्ति है। परविप्रतिषेध के द्वारा ढ्रक् से ढक् का बाध हो जाता है। 'कमण्डलोरपत्यं पुमान् कामण्डलेयः, हिरण्यवाहाया अपत्यं पुमान् हैरण्यवाहेयः, भद्रवाहाया अपत्यं पुमान् भाद्रवाहेयः' में 'चतुष्पाद्भ्यो ढञ्' ४.१.१३५ चरितार्थ है। एवं 'दात्तेयः, गौप्तेयः' में ढक् चरितार्थ है। 'जम्ब्वा अपत्यं पुमाञ्जाम्बवेयः' में द्व्यज्लक्षण ढक् और चतुष्पाद्लक्षण ढञ् उभय की प्राप्ति है। परविप्रतिषेध के द्वारा ढञ् से ढक् का बाध हो जाता है। 'जाम्बवेयः' में 'ढे लोपोऽकद्र्वा' ६.४.१४७ से ऊकार का लोप है। पूर्वसूत्र 'स्त्रीभ्यो ढक्' ४.१.१२० से ढक् की अनुवृत्ति 'द्व्यचः' ४.१.१२१ सूत्र में आती है। यहाँ स्त्री शब्द से अर्थग्रहण करना चाहिये। इसमें **'इहोभयं प्राप्नोति'**=जम्बू-जाम्बवेयः' यह भाष्य ही प्रमाण है। इस तरह अर्थग्रहण करने पर अस्त्रीप्रत्ययान्त जम्बूशब्द से भी द्व्यज्लक्षण ढक् की प्राप्ति होती है। इससे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'जम्बूशब्दस्यास्त्रीप्रत्ययान्तत्वाद् ढक्प्राप्तिश्चिन्त्या' यह आचार्यकैयट का कथन गिर जाता है। अथ वा 'तस्या जम्ब्वोः फलरसो नदीभूय प्रवर्तते' इस प्रयोग से ह्रस्वान्त भी जम्बुपद है। यह वृक्ष, शृगाल उभयवाची है। इसी भाष्यप्रमाण से ह्रस्वान्त जम्बुपद से 'ऊङुतः' ४.१.६६ के द्वारा स्त्रीप्रत्यय ऊङ् करके स्त्री-प्रत्ययान्त जम्बू पद से द्व्यज्लक्षण ढक् की प्राप्ति हो जायेगी। इस भाष्यप्रमाण से ऊङन्त दीर्घान्त जम्बू पद भी वृक्ष और शृगाल उभयवचन होगा।

*** न वा ऋष्यणः पुनर्वचनमन्यनिवृत्त्यर्थम् * न वैष युक्तो विप्रतिषेधो योऽयमृष्यणो ढकश्च। किं कारणम्? ऋष्यणः पुनर्वचनमन्यनिवृत्त्यर्थं, सिद्धोऽत्राण् उत्सर्गेणैव। तस्य पुनर्वचने एतत्प्रयोजनं-येऽन्ये तदपवादाः प्राप्नुवन्ति तद्बाधनार्थम्। स यथैव तदपवादमिञं बाधते एवं ढकमपि बाधेत।**

उत्तरभाष्य—**न वेति**। उपर्युक्त वार्तिकद्वय द्वारा किया गया विप्रतिषेध उचित नहीं है। क्रमशः इसे स्पष्ट करते हैं-**ऋष्यण इति**। अण् और ढक् का विप्रतिषेध उचित नहीं है। 'वाशिष्ठः, वैश्वामित्रः' में 'तस्यापत्यम्' ४.१.९२ से उत्सर्गलक्षण अण् सिद्ध था, उसके सिद्ध होने पर पुनः जो 'ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च' ४.१.११४ से ऋषिलक्षण अण् का आरम्भ किया वह व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा-'जो अन्य अपवाद प्राप्त हैं, उनका बाध करने के लिए ऋष्यण् का आरम्भ किया गया है'। वह ऋषिलक्षण अण् आरम्भसामर्थ्य से जैसे 'अत इञ्' ४.१.९५ का बाध करेगा वैसे ढक् का भी बाध करेगा।

*** तस्मादृषिभ्योऽण्विधाने ऽत्र्यादिप्रतिषेधः * तस्मादृषिभ्योऽण्विधाने-ऽत्र्यादिभ्यः प्रतिषेधो वक्तव्यः। न वक्तव्यः। 'मध्येऽपवादाः पूर्वान्विधीन्बाधन्त' इत्येवम् अयमृष्यण् इञं तदपवादं बाधिष्यते, ढकं न बाधिष्यते।**

अन्य आचार्य—**तस्मादिति**। यदि अण् और ढक् का विप्रतिषेध उचित नहीं है तो ऋषिलक्षण अण् की कर्तव्यता में अत्रि आदि शब्दों से पर में जहाँ ढक् इष्ट है वहाँ भी अण् की प्राप्ति होगी, उसका प्रतिषेध कहना होगा।

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्य इति**। यह प्रतिषेध कहने की आवश्यकता नहीं है। 'मध्य में पढा गया अपवाद पूर्वविधि का ही बाध करता है, उत्तरविधि का नहीं' इस न्याय से अण् से इञ् का बाध होगा, ढक् का नहीं। अत इञ्' ४.१.९५ :ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च' ४.१.११४ और 'द्व्यचः' ४.१.१२१ यह क्रम है। यहाँ ऋषिलक्षण अण् से पूर्व में 'अत इञ्' ४.१.९५ है, अतः ऋषिलक्षण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अण् से पूर्वविधि निर्ज्ञातस्वरूप इञ् का ही बाध होगा, पर अपवाद अनिर्ज्ञात-स्वरूप ढक् का नहीं, अतः 'आत्रेयः' में अत्रिपद से पर में अण्निषेध कहने की आवश्यकता नहीं है।

अथ चाऽप्ययुक्तो विप्रतिषेधो योऽयं ढको द्रग्ढञोश्च। किं कारणम्? *ढकः पुनर्वचनमन्यनिवृत्त्यर्थम् * ढकः पुनर्वचनमन्यनिवृत्त्यर्थम्। सिद्धोऽत्र ढक् 'स्त्रिभ्यो ढगि'त्येव, तस्य पुनर्वचन एतत्प्रयोजनं-येऽन्ये तदपवादाः प्राप्नुवन्ति तद्बाधनार्थम्। स यथैव तदपवादं तन्नामिकाऽणं बाधते एवं द्रग्ढञावपि बाधेत।

ढक् और द्रक्, ढञ् का विप्रतिषेध भी नहीं कहना चाहिये। वह इस तरह कि 'स्त्रीभ्यो ढक्' ४.१.१२० से ही 'दात्तेयः, गौप्तेयः' आदि में सर्वत्र ढक् सिद्ध था, पुनः 'द्व्यचः' ४.१.१२१ सूत्र का आरम्भ इस प्रयोजन के लिए है कि-'जो अन्य अपवाद प्राप्त हैं, उनका बाध हो'। वह द्व्यज्लक्षण ढक् जैसे 'अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः' ४.१.११३ का बाध करेगा, वैसे 'क्षुद्राभ्यो वा' ४.१.१३१ और 'चतुष्पाद्भ्यो ढक्' ४.१.१३५ का भी बाध करेगा।

***तस्मात् तन्नामिकाऽण्यऽद्व्यचः * तस्मात् तन्नामिकाऽणि 'अद्व्यच' इति वक्तव्यम्। न वक्तव्यम्। 'मध्येऽपवादाः पूर्वान्विधीन्बाधन्त' इत्येवमयं ढक् तन्नामिकाऽणं तदपवादं बाधिष्यते, द्रग्ढञौ न बाधिष्यते।**

अन्य आचार्य—**तस्मादिति**। 'अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः' ४.१.११३ से तन्नामिका अण् की कर्तव्यता में 'अद्व्यचः' ऐसा निषेधवचन कहना चाहिये। इससे द्व्यच् से तन्नामिकालक्षण अण् न हो सकेगा।

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। तन्नामिकालक्षण अण् की कर्त्तव्यता में 'अद्व्यचः' इस प्रतिषेधवचन को पढने की आवश्यकता नहीं है। 'मध्य में पढा गया अपवाद पूर्वविधि का बाध करता, उत्तरविधि का नहीं' इस नियम से ढक् से अण् का बाध हो जायेगा। 'अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः' ४.१.११३, 'स्त्रीभ्यो ढक्' ४.१.१२०, 'द्व्यचः' ४.१.१२१, 'क्षुद्राभ्यो वा' ४.१.१३१, 'चतुष्पाद्भ्यो ढञ्' ४.१.१३५ यह सूत्रक्रम है। इसमें मध्य में पढा गया अपवाद ढक् है। उससे निर्ज्ञातस्वरूप पूर्व तन्नामिकालक्षण अण् का ही बाध होगा, अनिर्ज्ञातस्वरूप परविधि द्रक् और ढञ् का नहीं।

***ऋष्यन्धकवृष्णिकुर्वणः सेनान्ताण्यः * ऋष्यन्धकवृष्णिकुर्वणः सेना-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न्ताण्ण्यो भवति विप्रतिषेधेन। ऋष्यणोऽवकाशः-वाशिष्ठः। वैश्वामित्रः। ण्यस्यावकाशः- पारिषेण्यः। वारिषेण्यः। जातसेनो नाम ऋषिस्तस्मादुभयं प्राप्नोति, ण्यो भवति विप्रतिषेधेन-जातसेन्यः। अन्धकाऽणोऽवकाशः-श्वाफल्कः। श्वैत्रकः। रान्धसः। ण्यस्य स एव। उग्रसेनो नामाऽन्धकस्तस्मादुभयं प्राप्नोति, ण्यो भवति विप्रतिषेधेन-औग्रसेन्यः। वृष्यणोऽवकाशः-वासुदेवकः। बालदेवकः। ण्यस्य स एव। विष्वकसेनो नाम वृष्णिस्तस्माद् उभयं प्राप्नोति, ण्यो भवति विप्रतिषेधेन-वैष्वकसेन्यः। कुर्वणोऽवकाशो-नाकुलः। साहदेवः। ण्यस्य स एव। भीमसेनो नाम कुरुस्तस्मादुभयं प्राप्नोति, ण्यो भवति विप्रतिषेधेनभैमसेन्यः * सेनान्ताण्ण्यो भवति विप्रतिषेधेन जातोग्रविष्वग्भीमेभ्य इति वक्तव्यम् * ऋष्यन्धक।

सिद्धान्त वार्तिक—**ऋष्यन्धकवृष्णीति**। परविप्रतिषेध के द्वारा 'सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च' ४.१.१५२ से 'ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च' ४.१.११४ का बाध होता है। दोनों का तुल्यबल स्पष्ट करते हैं-**ऋष्यणोऽवकाश इति**। 'वाशिष्ठः, वैश्वामित्रः' में ऋषिलक्षण अण् चरितार्थ है। 'पारिषेण्यः, वारिषेण्यः' में सेनान्तलक्षण ण्य चरितार्थ है। जातसेन नामक ऋषि हैं, अतः उससे अपत्यार्थक ऋषिलक्षण अण् तथा सेनान्तलक्षण ण्य भी प्राप्त है। परविप्रतिषेध के द्वारा सेनान्तलक्षण ण्य से ऋषिलक्षण अण् का बाध हो कर ण्यान्त 'जातसेन्यः' रूप होता है। 'श्वफल्कस्यापत्यं पुमान् श्वाफल्कः, श्वित्रकस्यापत्यं पुमान् श्वैत्रकः, रन्धसस्यापत्यं पुमान् रान्धसः' में अन्धकलक्षण अण् चरितार्थ है। 'पारिषेण्यः, वारिषेण्यः' में सेनान्तलक्षण ण्य चरितार्थ है। उग्रसेन अन्धकवंशीय हैं, उनसे अपत्यार्थ में अन्धकलक्षण अण् और सेनान्तलक्षण ण्य उभय की प्राप्ति है। परविप्रतिषेध के द्वारा सेनान्तलक्षण ण्य से अन्धकलक्षण अण् का बाध हो जाता है। 'वसुदेवस्यापत्यं वासुदेवः, बलदेवस्यापत्यं बालदेवः' में वृष्णिलक्षण अण् चरितार्थ है। 'पारिषेण्यः, वारिषेण्यः' में सेनान्तलक्षण ण्य चरितार्थ है। विष्वकसेन वृष्णिवंशी हैं। उनसे अपत्यार्थक वृष्णिलक्षण अण् और सेनान्तलक्षण ण्य उभय की प्राप्ति है। परविप्रतिषेध के द्वारा ण्य हो कर 'वैष्कसेन्यः' रूप होता है। 'नकुलस्यापत्यं नाकुलः, सहदेवस्यापत्यं साहदेवः' में कुरुलक्षण अण् चरितार्थ है। 'पारिषेण्यः, वारिषेण्यः' में सेनान्तलक्षण ण्य चरितार्थ है। भिमसेन कुरुवंशी हैं। उनसे अपत्यार्थक कुरुलक्षण अण् और सेनान्तक्षण ण्य उभय की प्राप्ति है। परविप्रतिषेध के द्वारा ण्य से अण् का बाध होता है-'भैमसेन्यः'। यहाँ सर्वत्र परविप्रतिषेध के द्वारा जात, उग्र, विष्वक्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और भीमपद से उत्तर में सेनान्तलक्षण ण्य कहना चाहिये।। ऋष्यन्धकवृष्णि-।।

मातुरुत्संख्यासम्भद्रपूर्वायाः ४.१.११५

किमर्थं स्त्रीलिङ्गेन निर्देशः क्रियते, न संख्यासम्भद्रपूर्वस्ये- त्येवोच्येत? स्त्रीलिङ्गो यो मातृशब्दस्तस्माद् यथा स्यादिह मा भूत्- सम्मि-मीते सम्माता, सम्मातुरपत्यं साम्मात्र इति।। मातुरुत्संख्या-सम्भद्र।।

सूत्रार्थ—'संख्यापूर्व, सम्पूर्व और भद्रपूर्व मातृशब्द से पर में अपत्यार्थक अण् प्रत्यय हो तथा मातृशब्द को उत् आदेश हो'। 'अलोऽन्त्यस्य' १.१.५२ से अन्त्य अल् को उत् आदेश होगा। जैसे-'द्वैमातुरः, षाण्मातुरः, सांमातुरः, भाद्रमातुरः'। वस्तुतः यहाँ उत्सर्गसूत्र 'तस्यापत्यम्' ४.१.९२ से ही अपत्यार्थक अण् सिद्ध है, अतः उत् आदेशविधानार्थ ही सूत्र का आरम्भ मानना चाहिये।

प्रश्नभाष्य—किमर्थमिति। 'मातुरुत्संख्यासम्भद्रपूर्वस्य' ऐसा पुल्लिङ्गनिर्देश न करके 'मातुरुत्संख्यासम्भद्रपूर्वायाः' ऐसा स्त्रीलिङ्गनिर्देश क्यों करते हैं? आचार्य इसे पुल्लिङ्गनिर्देश भी कर सकते थे।

उत्तरभाष्य—स्त्रीलिङ्गो य इति। 'जो नित्यस्त्रीलिङ्ग मातृशब्द है, उसी को उत् आदेश हो' यह बताने के लिए स्त्रीलिङ्गनिर्देश है। इससे 'संमिमीत इति संमाता, संमातुरपत्यं सांमात्रः' में जहाँ माङ् माने शब्दे च धा.पा.१०८८ धातु से आश्रय अर्थ में तृच्प्रत्यय है, वहाँ अनियत लिङ्ग में वृत्त संमातृशब्द को उत् आदेश नहीं होगा।। मातुरुत्संख्या-।।

कन्यायाः कनीन च ४.१.११६

इदं विप्रतिषिद्धम्। को विप्रतिषेधः? अपत्यमिति वर्त्तते। यदि च कन्या-नाऽपत्यम्, अथाऽपत्यं न कन्या। कन्या चाऽपत्यं चेति विप्रतिषिद्धम्। नैतद्विप्रतिषिद्धम्। कथम्? कन्याशब्दोऽयं पुंसाऽभि-सम्बन्धपूर्वके सम्प्रयोगे निवर्त्तते। या चेदानीं प्रागभिसम्बन्धात्पुंसा सह सम्प्रयोगं गच्छति तस्यां कन्याशब्दो वर्त्तत एव। कन्यायाः कन्योक्तायाः कन्याभिमतायाः सुदर्शनाया यदपत्यं स कानीन इति।। कन्यायाः कनीन च।।

सूत्रार्थ—'कन्याशब्द से पर में अपत्यार्थक अण् प्रत्यय हो तथा कन्याशब्द को कनीन आदेश हो'। अनेकाल् होने से सम्पूर्ण के स्थान पर आदेश होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'कन्याया अपत्यं कानीनो व्यासः'।

खण्डनभाष्य—**इदमिति**। आचार्य कन्याशब्द से पर में अपत्यार्थक अण् प्रत्यय कह रहे हैं, यह विरुद्ध है।

अन्य आचार्य—**को विप्रतिषेध इति**। यहाँ क्या विरोध है?

खण्डनवादी आचार्य विरोध स्पष्ट करते हैं—**अपत्यमितीति**। इस सूत्र में 'तस्यापत्यम्' ४.१.९५ से 'अपत्यम्' की अनुवृत्ति होती है। अक्षतयोनि कन्या होती है। यदि कन्या है तो उसका अपत्य के साथ योग नहीं हो सकेगा। अथ वा यदि अपत्य के साथ योग है तो उसमें कन्यात्व नहीं रहेगा। कन्या और अपत्य ये दोनों परस्पर विरुद्ध हैं।

उत्तरपक्षी—**नैतदिति**। कन्या और अपत्य ये परस्पर विरुद्ध नहीं है।

खण्डनवादी आचार्य का प्रश्न भाष्य-**कथमिति**। वह कैसे?

उत्तरपक्षी—**कन्याशब्दोऽयमिति**। **अभिसम्बन्धपूर्वके**=शास्त्रोक्त विवाह अभिसम्बन्ध है, तत्पूर्वक पुरुषसंयोग होने पर ही कन्याशब्द निवृत्त होता है। परन्तु शास्त्रोक्तविवाहसंस्कार के विना ही जो पुरुष से सम्बन्ध करती है, उसका कन्यात्व निवृत्त नहीं होता है। विवाहसंस्कार के अभाव में पुरुष से सम्बन्ध करने पर भी **कन्योक्तायाः**=कन्या कही जाने वाली, **कन्याभिमतायाः**= शास्त्रप्रमाण से कन्या ही होगी, ऐसी **सुदर्शनायाः**=प्रत्यक्ष होने से प्रकटदर्शन वाली कन्या का अपत्य कानीन कहलाता है। यहाँ शास्त्रप्रमाण से दूसरा कन्यात्व यह भी है कि ऋषिदेवतामाहात्म्यवशात् पुरुषसंयोग होने पर भी जो अक्षतयोनि है उसे कन्या कहेंगे। जैसे-कुन्ती। मन्त्राहूत दिनकर द्वारा अपने में कर्ण को उत्पन्न करने पर भी देवप्रसादवशाद् अक्षतयोनि होने पर कुन्ती कन्या है तथा कर्ण कानीनशब्दवाच्य है।। **कन्यायाः**-।।

स्त्रीभ्यो ढक् ४.१.१२०

इदं सर्वेष्वेव स्त्रीग्रहणेषु विचार्यते-स्त्रीग्रहणे स्त्रीशब्दग्रहणं स्यात्स्त्रीप्रत्ययग्रहणं वा, स्त्र्यर्थग्रहणं वेति? किं चातः? यदि स्त्रीशब्द-ग्रहणमर्थग्रहणं वा,-इडविड्-ऐडविडः। पृथु-पार्थः। उशिक्-औशिजः। दरद्-दारदः। अत्रापि प्राप्नोति। अथ प्रत्ययग्रहणं-लैखाभ्रेयो वैमात्रेय इति न सिध्यति। अस्तु प्रत्ययग्रहणम्। कथं लैखाभ्रेयो वैमात्रेय इति?

सूत्रार्थ—'स्त्रीप्रत्ययान्त से पर में अपत्यार्थक ढक् प्रत्यय हो'। जैसे-विनताया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपत्यं पुमान् वैनतेयः।

'स्त्रीभ्यः' इस बहुवचननिर्द्देश से यहाँ स्वरूपग्रहण निरस्त है। फिर भी यहाँ तीन पक्ष सम्भव है।

इसे पूर्वपक्षी आचार्य उठाते हैं—**इदं सर्वेष्वेवेति**। जिन सूत्रों में स्त्रीग्रहण है वहाँ सर्वत्र विचार किया जा रहा है कि वहाँ स्त्रीग्रहण से **स्त्रीशब्दग्रहणम्**= स्त्रीलिङ्ग का ग्रहण होगा, अथवा स्त्रीप्रत्यय का ग्रहण होगा, अथ वा स्त्र्यर्थ का ग्रहण कर अर्थ में कार्य के असम्भव होने से अर्थ का वाचक शब्द का ग्रहण होगा? 'स्त्रीभ्यः' में स्वरितत्वप्रतिज्ञा है, अतः उत्तरसूत्रों में जहाँ इसका अनुवर्तन होगा वहाँ भी इन तीन पक्षों की सम्भावना होगी। यदि स्त्रीलिङ्गशब्दों का ग्रहण करने में, अथ वा अर्थ का ग्रहण में अर्थ में कार्य असम्भव होने से अर्थ का वाचक शब्द का ग्रहण करेंगे तो इडबिड्, पृथु, उशिक्, दरद् आदि शब्द स्त्रीलिङ्ग में हैं, ये स्त्री-अर्थ के वाचक हैं, अतः इनसे भी पर में अपत्यार्थक ढक् प्रत्यय की आपत्ति होगी, जब कि यहाँ अण् इष्ट है। प्रत्यय का ग्रहण करने पर इडबिड् आदि के स्त्रीप्रत्ययान्त नहीं होने से ढक् की आपत्ति नहीं है। परन्तु प्रत्ययग्रहणपक्ष में लेखाभ्रा और विमातृ शब्द से पर में अपत्यार्थक इष्ट ढक् सिद्ध नहीं हो सकेगा, अतः 'लैखाभ्रेयः, वैमात्रेयः' की असिद्धि होने से अव्याप्ति होगी।

शुभ्रादिषु पाठः करिष्यते * वडवाया वृषे वाच्ये * वडवाया वृषे वाच्ये ढग्वक्तव्यः-वडवाया वृषोवाडवेयः *अण् क्रुञ्चाकोकिलात्स्मृतः * अण् क्रुञ्चाकोकिलात्स्मृतः-क्रौञ्चः, कौकिल इति * आरक्पुंसि ततोऽन्यत्र * ततोऽन्यत्र पुंसि आरग् वक्तव्यः। मूषिकाया अपत्यं पुमान् मौषिकारः। मृग्या अपत्यं पुमान् मार्गारः * गोधाया द्रग्विधौ स्मृतः * गोधाया द्रग्विधौ स्मृतः। गोधायाः अपत्यं पुमान् गौधेरः।

उत्तरपक्षी—**शुभ्रादिष्विति**। प्रत्ययग्रहणपक्ष में इडबिड् आदि में अतिव्याप्ति दूर होने पर भी 'लैखाभ्रेयः' इत्यादि में अव्याप्ति हो रही है। इस अव्याप्ति का वारण करने के लिए हम 'शुभ्रादिभ्यश्च' ४.१.१२३ गणपाठ में लेखाभ्र और विमातृशब्द का पाठ कर देंगे। इससे प्रत्ययग्रहणपक्ष निर्दुष्ट हो गया।

'वडवाया वृषे वाच्ये, अण्क्रुञ्चाकोकिलात्स्मृतः।
आरक्पुंसि ततोऽन्यत्र, गोधाया द्रग्विधौ स्मृतः'।।

इस श्लोकवार्तिक का भाष्यकार खण्डशः व्याख्या करते हैं—**वृष**=बीजाश्व अर्थ गम्य होने पर वडवाशब्द से ढक् कहना चाहिये। जैसे-'वडवाया वृषो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाडवेयः'। 'क्रुञ्चा च कोकिला चेत्यनयोः समाहारः क्रुञ्चाकोकिलं, तस्मात्'। क्रुञ्चा और कोकिला पद से अपत्य अर्थ में अण् कहना चाहिये। 'क्रुञ्चाया अपत्यं क्रौञ्चः, कोकिलाया अपत्यं कौकिलः'। यहाँ ढक् का अपवाद अण् प्रत्यय है। **ततोऽन्यत्र**=क्रुञ्चा, कोकिला से अन्यत्र, पुंसि-'अपत्यं पुमान्' अर्थ में आरक् प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे-'मूषिकाया अपत्यं मौषिकारः, मृग्या अपत्यं मार्गारः'। 'अपत्यं पुमान्' इस अर्थ में गोधाशब्द से ढ्रक् प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे-'गौधेरः'।। **स्त्रीभ्यो-**।।

चटकाया ऐरक् ४.१.१२८

* चटकायाः पुल्लिङ्गनिर्देशः * **चटकायाः पुल्लिङ्गेन निर्देशः कर्त्तव्यः। इहापि यथा स्याच्-चटकस्यापत्यं चाटकैरः। यदि पुल्लिङ्गेन निर्देशः क्रियते चटकाया अपत्यं चाटकैर इति न सिध्यति। 'प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्याऽपि ग्रहणं भवती'त्येवं भविष्यति** * स्त्रियामपत्ये लुग्वक्तव्यः * **स्त्रियामपत्ये लुग्वक्तव्यः। चटकाया अपत्यं स्त्री चटका।** चटकाया ऐरक्।

सूत्रार्थ—'अपत्यार्थ में चटकाशब्द से ऐरक् प्रत्यय हो'। जैसे-'चाटकैरः'।

एकदेशी आचार्य—**चटकाया इति**। 'चटकाया ऐरक्' यह स्त्रीलिङ्गनिर्देश है, अतः 'चटकाया अपत्यं चाटकैरः' में ही प्रत्यय हो सकेगा। 'चटकस्यापत्यम्' ऐसा विग्रह करने पर प्रत्यय प्राप्त नहीं हो सकेगा, जब कि यहाँ भी प्रत्यय इष्ट है, अतः यहाँ भी प्रत्यय हो सके इसके लिए 'चटकस्यैरक्' ऐसा पुल्लिङ्गनिर्देश करना चाहिये। अन्यथा पुल्लिङ्ग से प्रत्यय की अप्राप्ति होगी। पुल्लिङ्गनिर्देश होने पर प्रातिपदिकग्रहणपरिभाषा से लिङ्गबोधक टाप्रत्ययविशिष्ट चटका का भी ग्रहण होगा, अतः उससे भी अपत्यार्थ में ऐरक् हो जायेगा। सूत्र में लिङ्ग और वचन की अविवक्षा है, अतः स्त्रीलिङ्ग की अविवक्षा करने पर पुल्लिङ्ग से भी प्रत्यय हो जायेगा। इस विषय का विचार 'तस्यापत्यम्' ४.१.९२ सूत्र पर कह आया हूँ, अतः इस भाष्य को एकदेशी समझना चाहिये।

सिद्धान्ती आचार्य—**स्त्रियामपत्यमिति**। 'अपत्यं स्त्री' ऐसा अर्थ गम्य होने पर अपत्यार्थक प्रत्यय का लुक् कहना चाहिये। जैसे-'चटकाया अपत्यं स्त्री चटका'। यहाँ 'अपत्यं स्त्री' अर्थ में विहित ऐरक् का लुक् है।। **चटकाया ऐरक्।**

आरगुदीचाम् ४.१.१३०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

*** आरग्वचनमनर्थकं रका सिद्धत्वात् * आरग्वचनमनर्थकम्। किं कारणम्। रका सिद्धत्वात्। गोधा आकारान्ता, रक्च प्रत्ययः। एवं तर्हि सिद्धे सति यदारकं शास्ति तज्ज्ञापयत्यार्चोऽ'न्येभ्योऽप्यं भवती'ति। किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम्? मौण्डारो जाडारः पाडार इत्येतत्सिद्धम्भवतीति।**

यहाँ पूर्व सूत्र 'गोधाया ढ्रक्' ४.१.१२९ से 'गोधायाः' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'प्राचीनों के मत में गोधाशब्द से अपत्य अर्थ में आरक् प्रत्यय हो'। 'उदीचाम्' ऐसा कहने से नवीनों के मत में आरक् का नित्य अभाव है, अतः यह नित्यविधि है। 'गोधाया अपत्यं पुमान् गौधारः'।

पूर्वपक्षी—**आरग्वचनमिति**। गोधा आकारान्तशब्द है। उससे रक् प्रत्यय करने पर भी 'गौधारः' सिद्ध हो जाता है, अतः आरग्वचन व्यर्थ है।

ज्ञापनवादी आचार्य—**एवं तर्हीति**। रक्प्रत्ययविधान से भी 'गौधारः' सिद्ध हो जाने पर आचार्य ने जो आरक्प्रत्यय का विधान किया वह व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा-'गोधाशब्द से अन्यत्र भी अपत्यार्थ में आरक्प्रत्यय होता है'। इससे 'मुण्डस्यापत्यं मौण्डारः, जडस्यापत्यं जाडारः, पाण्डस्यापत्यं पाण्डारः' में भी आरग्घटितरूप हुआ। अन्यथा रक् मात्र हा विधान करने पर 'मौण्डरः, जाडरः, पाण्डरः' ऐसा अनिष्ट रूप होता। { **आरगुदी-**}।

क्षुद्राभ्यो वा ४.१.१३१

क्षुद्राभ्य इत्युच्यते, का क्षुद्रा नाम? अनियतपुंस्का अङ्गहीना वा।

यहाँ पूर्वसूत्र 'गोधाया ढ्रक्' ४.१.१२९ से ढ्रक्' की अनुवृत्ति होती है।

सूत्रार्थ—'क्षुद्रा पद से अपत्यार्थ में ढ्रक् प्रत्यय हो'।

पूर्वपक्षी—**क्षुद्राभ्य इति**। 'क्षुद्राभ्यः' ऐसा कहा जा रहा है, क्षुद्रा क्या है?

उत्तरपक्षी—**अनियतपुंस्केति**। यहाँ 'वा'शब्द 'च'अर्थ में है। अनियतपुंस्का और अङ्गहीना को क्षुद्रा कहते हैं, उससे पर में अपत्यार्थ में ढ्रक् प्रत्यय का विकल्प कहना चाहिये। ढ्रक् के अभाव में ढक् प्रत्यय होगा। जैसे-'काण्या अपत्यं पुमान् काणेरः-काणेयः, दास्या अपत्यं पुमान् दासेरः-दासेयः'।। **क्षुद्राभ्यो वा**।।

पितृष्वसुश्छण् ४.१.१३२
ढकि लोपः ४.१.१३३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

केन विहिते पितृष्वसुर्ढकि लोप उच्यते? एतदेव ज्ञापयति-'भवति पितृष्वसुर्ढगि'ति-यदयं ढकि लोपं शास्ति।। ढकि लोपः।।

सूत्रार्थ—'पितृष्वसृशब्द से अपत्यार्थ में छण् प्रत्यय हो'। यह अण् का अपवाद है। जैसे-'पितृष्वसुरपत्यं पैतृष्वस्रीयः'। ४.१.१३२।।

उत्तरसूत्र में 'पितृष्वसुः' ४.१.१३२ की अनुवृत्ति होती है।

सूत्रार्थ—'ढक् प्रत्यय पर रहते पितृष्वसृपद का लोप हो'। षष्ठीनिर्देश होने से अन्त्य अल् के स्थान में लोप होगा। जैसे-'पैतृष्वसेयः'। ४.१.१३३।।

प्रश्नभाष्य—**केन विहित इति**। ढक्प्रत्यय पर रहते पितृष्वसृपद का लोप कहा जा रहा है। यहाँ ढक् किसी सूत्र से विहित नहीं है, फिर किससे ढक् प्रत्यय होगा जिसके पर रहते लोप कह रहे हैं?

ज्ञापनवादी आचार्य—**एतदेवेति**। आचार्य ने 'ढकि लोपः' ऐसा ढक्प्रत्यय-निमित्तक लोप का विधान किया है, वही व्यर्थ पड कर ज्ञापन करता है कि पितृष्वसृपद से ढक् होता है।। **ढकि-**।।

मातृष्वसुश्च ४.१.१३४

मातृष्वसुश्च ढकि लोप इत्युच्यते, तत्रेदं न सिध्यति मातृष्वस्रीय इति। नैष दोषः। एवं वक्ष्यामि-पितृष्वसुश्छण्। ढकि लोपः। ततो मातृष्वसुश्च। पितृष्वसुर्यदुक्तं तन्मातृष्वसुर्भवतीति। किं पुनस्तद्? छण् ढकिलोपश्च।

यहाँ पूर्वसूत्र से 'छण्' ४.१.१३२ और 'ढकि लोपः' ४.१.१३३ सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति है। अर्थ पूर्ववत् होगा। छण्प्रत्यय होने पर 'मातृष्वस्रीयः' एवं ढक्प्रत्यय होने पर 'मातृष्वसेयः' होगा।

'ढकि लोपः' ४.१.१३३ सूत्र के अनन्तर 'मातृष्वसुश्च' सूत्र पठित है, अतः ढक्प्रत्यय और तन्निमित्तकलोप होने पर 'मातृष्वसेयः' रूप होगा। 'मातृष्वस्रीयः' नहीं हो सकेगा, ऐसा मान कर पूर्वपक्षी आचार्य कहते हैं-**मातृष्वसुश्चेति**।

सिद्धान्ती आचार्य इसका समाधान करते हैं—**नैष दोष इति**। 'पितृष्वसुश्छण्, ढकि लोपः' ऐसा सूत्र पढने के बाद 'मातृष्वसुश्च' ऐसा सूत्र को मानेंगे। इससे पितृष्वसृशब्द से जो भी प्राप्त है वह मातृष्वसृशब्द से भी प्राप्त होगा। अर्थात् पितृष्वसृशब्द से छण् प्रत्यय और ढक्प्रत्ययनिमित्तक अन्त्यलोप प्राप्त है वह मातृष्वसृशब्द से भी प्राप्त होगा। इससे 'मातृष्वस्रीयः, मातृष्वसेयः' की सिद्धि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हो जायेगी।। **मातृष्व-**।।

राजश्वशुराद्यत् ४.१.१३७

* राज्ञोऽपत्ये जातिग्रहणम् * **राज्ञोऽपत्ये जातिग्रहणं कर्त्तव्यम्। राजन्यो नाम जातिः। क्व मा भूत्? राजन इति।।** राजश्वशुराद्यत्।।

सूत्रार्थ—'श्वशुरशब्द से अपत्यार्थ में यत्प्रत्यय हो'। श्वशुर्यः।

अपत्यार्थ में राजन् शब्द से जातिग्रहण करना चाहिये। 'राजत्वजातिविशिष्ट अपत्य अर्थ वाच्य होने पर ही राजन् शब्द से यत्प्रत्यय हो' जैसे-'राज्ञोऽपत्यं राजन्यः'। जातिग्रहण का फल बताते हैं-**राजान इति**। जातिग्रहण से शुद्रा आदि में उत्पन्न अपत्य अर्थ में 'राजानः' यह अण्णन्त रूप ही होगा।। **राजश्वशुराद्यत्**।।

व्यन्सपत्ने ४.१.१४५

* व्यन्वचनमनर्थकं प्रत्ययार्थाऽभावात् * **व्यन्वचनमनर्थकम्। किं कारणम्? 'प्रत्ययार्थाऽभावात्'। किमिदं प्रत्ययार्थाऽभावादिति? अपत्याऽर्थाऽभावात्। अपत्यमिति वर्त्तेऽनपत्ये चाऽपि सपत्ने 'भ्रातृव्य'शब्दो वर्त्तते,-'पाप्मना भ्रातृव्येण'। अस्तु तावद्यदपत्यं सपत्नश्च तत्र-भ्रातृव्य इति। कथं पाप्मना भ्रातृव्येण? उपमानात् सिद्धं, भ्रातृव्य इव भ्रातृव्यः।।**

'भ्रातुर्व्यच्च' ४.१.१४४ से 'भ्रातुः' पञ्चम्यन्त पद की अनुवृत्ति होती है।

सूत्रार्थ—'प्रत्यय के द्वारा सपत्ने=शत्रु अर्थ गम्य होने पर भ्रातृशब्द से अपत्यार्थ में व्यन् प्रत्यय हो'। 'भ्रातुरपत्यं पुमान् भ्रातृव्यः'।

पूर्वपक्षी—**व्यन्वचनमिति**। अनपत्य सपत्न अर्थ में भी भ्रातृव्यशब्द है। जैसे-पाप्मना भ्रातृव्येण। जब कि भ्रातृव्यशब्द सभी सपत्न अर्थ में इष्ट है। सभी सपत्न भ्रातृव्य नहीं होते हैं, अतः 'भ्रातुरपत्यम्' में प्रत्यय का अर्थ अपत्य नहीं हो सकता है?

सिद्धान्ती आचार्य—**अस्तु तावदिति**। मात्र अपत्य पद की अनुवृत्ति होगी तथा यहाँ सपत्नशब्द पढा गया है, अतः यहाँ व्यन्प्रत्यय से अपत्य और शत्रु उभय अर्थ वाच्य होगा।

अन्य आचार्य—**कथं पाप्मनेति**। यदि प्रत्यय से अपत्य और सपत्न उभय अर्थ वाच्य होंगे तो 'पाप्मना भ्रातृव्येण' में पाप्मा अपत्य सम्भव नहीं है?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरपक्षी—**उपमानादिति**। यहाँ 'भ्रातृव्य इव भ्रातृव्यः' ऐसा अपत्यसदृश अपत्य अर्थ मान लेने से 'पाप्मना भ्रातृव्येण' में प्रत्यय से अपत्य और सपत्न उभय अर्थों की प्रतीति हो जायेगी। यदि यहाँ प्रकृतिप्रत्ययसमुदाय से सपत्न अर्थ गम्य माना जाये जो व्याकरणशास्त्र का चरम सिद्धान्त है, तो यह पक्ष सम्भव है जैसा कि शब्दकौस्तुभकार श्रीदीक्षितजी ने इस भाष्य पर माना है; परन्तु यहाँ प्रक्रियापक्ष को मान कर भाष्यकार ने प्रत्ययार्थ सपत्न माना है।। **व्यन् सपत्ने**।।

गोत्रस्त्रियाः कुत्सने ण च ४.१.१४७

किमर्थो णकारः? वृद्ध्यर्थः, 'ञ्णिती'ति वृद्धिर्यथा स्यात्। गार्गो जाल्मः * गोत्रस्त्रियाः प्रत्ययस्य णित्करणानर्थक्यं वृद्धत्वात्प्रातिपदिकस्य * गोत्रस्त्रियाः प्रत्ययस्य णित्करणमनर्थकम्? किं कारणम्? 'वृद्धत्वात्प्रातिपदिकस्य'। वृद्धमेवेदं प्रातिपदिकम्। लुगर्थं तर्हि णकारः कर्त्तव्यः। यल्लुगन्तमवृद्धन्तत्र वृद्धिर्यथा स्याद्-वातण्डो जाल्मः।

'च'पद के द्वारा 'रेवत्यादिभ्यष्ठक्' ४.१.१४६ से 'ठक्' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'गोत्र जो स्त्री तद्वाचकशब्द से कुत्सा अर्थ गम्य होने पर ण और ढक् प्रत्यय हो'। सामर्थ्यवशाद् युवापत्य में ही कुत्सा गम्य होगी। जैसे-'गार्ग्या अपत्यं गार्गः-गार्गिको वा जाल्मः'।

पूर्वपक्षी—**किमर्थ इति**। 'गोत्रस्त्रियाः कुत्सने ण च' सूत्र में विधेय ण प्रत्यय में अ ही अवशिष्ट है। उसे णित् करने का क्या प्रयोजन है?

उत्तरपक्षी—**वृद्ध्यर्थ इति**। 'तद्धितेष्वचामादेः' ७.२.११७ में पूर्व सूत्र 'अचो ञ्णिति' ७.१.११५ की अनुवृत्ति होती है। णित्तद्धितनिमित्तक आदि अच् को वृद्धि हो सके, इसके लिए णकारग्रहण किया गया है। जैसे-'गार्ग्या अपत्यं गार्गो जाल्मः'। णित्करण का अन्य कोई प्रयोजन न देख कर पूर्वपक्ष किया था।

उत्तरपक्ष से असन्तुष्ट हो कर उसका खण्डन करते हैं—**गोत्रस्त्रियाः प्रत्ययस्येति**। गोत्रस्त्रीप्रातिपदिक से ही ण प्रत्यय का विधान है। गोत्रस्त्रीप्रातिपदिक सर्वत्र वृद्धसंज्ञक ही मिलेगा। वहाँ आदि अच् वृद्धि ही होगा, अतः उसको पुनः वृद्धिविधान से कोई अतिरिक्त फल नहीं होने से णित्करण व्यर्थ है।

उत्तरपक्षी आचार्य णित्करण का अन्य प्रयोजन देते हैं—**लुगर्थं तर्हीति**। जहाँ गोत्रप्रत्यय का लुक् है वहाँ वृद्धसंज्ञक से प्रत्यय विहित होंगे। वहाँ आदि अच् को वृद्धिविधानार्थ णित्करण है। जैसे-'वतण्डस्यापत्यं गोत्रं स्त्री वतण्डी' में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'वतण्डाच्च' ४.१.१०८ से यञ्, 'लुक्स्त्रियाम्' ४.१.१०९ से यञ्लुक्, 'शार्ङ्गरवादिभ्यश्च' ४.१.७३ से ङीन्। 'वतण्ड्या अपत्यं स्त्री वातण्डः', यहाँ अवृद्धसंज्ञक वतण्डीशब्द से ण विहित है। इसके आदि अच् को वृद्धिविधानार्थ णित्करण है।

*** लुगर्थमिति चेन्न, लुक्प्रतिषेधात् * लुगर्थमिति चेत्तन्न, किं कारणम्? 'लुक्प्रतिषेधात्'। प्रतिषिध्यते तत्र लुक्-गोत्रेऽलुगचीति। व्यवहितत्वाद् अप्रतिषेधः। ईकारेण व्यवहितत्वात्प्रतिषेधो न प्राप्नोति * व्यवहितत्वादप्रतिषेध इति चेन्न, पुंवद्भावात् * 'व्यवहितत्वादप्रतिषेध' इति चेत्, तन्न। किं कारणम्? 'पुंवद्भावात्'। पुंवद्भावोऽत्र भवति-भस्याऽढे तद्धिते पुंवद्भवतीति।**

पूर्वपक्षी—**लुगर्थमितीति**। अजादिप्रत्यय की विवक्षा होने पर 'गोत्रेऽलुगचि' ४.१.८९ के द्वारा गोत्रप्रत्यय का अलुक् है, अतः 'वातण्डः' में भी वृद्धसंज्ञक से ही प्रत्ययविधान होगा, अवृद्धसंज्ञक से नहीं।

उत्तरपक्षी आचार्य—**व्यवहितत्वादिति**। 'गोत्रेऽलुगचि' ४.१.८९ सूत्र में 'अचि' यह सप्तमीनिर्देश है, अतः अजादिप्रत्ययाव्यवहित पूर्वत्वविशिष्ट गोत्रप्रत्यय का लुक् होना चाहिये। जब कि प्रकृत में 'वतण्ड+यञ्+ङीन्+ण' ऐसी स्थिति है। मध्य में ङीन् से व्यवहित होने के कारण अजादिप्रत्यय ण से अव्यवहित-पूर्वत्वविशिष्ट यञ् नहीं है, अतः 'गोत्रेऽलुगचि' ४.१.८९ उसका अलुक् सम्भव नहीं है।

पूर्वपक्षी—**व्यवहितत्वादिति**। 'भस्याऽढे तद्धिते' वा.३९२८ के द्वारा पुंवद्भाव होने से मध्य में पतित ङीन् का अपहार हो गया है, अतः अव्यवहित होने से अलुक् हो जायेगा। यहाँ पूर्वपक्षी 'अचि' को निमित्तसप्तमी मान कर दोष दे रहे हैं, तथा उत्तरपक्षी आचार्य दोषोद्धार कर रहे हैं। परन्तु यदि 'अचि' को विषयसप्तमी मान लिया जाये तो दोष नहीं होगा।

*** फिनर्थं तु * फिनर्थं तु णकारः कर्त्तव्यः। यत्फिनन्तमवृद्धं तत्र वृद्धिर्यथा स्याद्-ग्लौचुकायनो जाल्म इति * पुंवद्भावप्रतिषेधार्थं च * पुंवद्भावप्रतिषेधार्थं च णकारः कर्त्तव्यः। गार्गा भार्या अस्य गार्गाभार्यः। 'वृद्धिनिमित्तस्ये'ति पुंवद्भावप्रतिषेधो यथा स्यादिति।**

उत्तरपक्षी—**फिनर्थं त्विति**। 'ग्लुचुकस्यापत्यं गोत्रं स्त्री ग्लुचुकायनी', 'प्राचामवृद्धात्फिन्बहुलम्' ४.१.१६० से जहाँ फिन्नन्त गोत्रस्त्रीपुंवद्भाव होने पर अवृद्धसंज्ञक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ग्लुचुकायनी से अपत्यकुत्सा में प्रत्यय विहित होगा वहाँ 'ग्लौचुकायनो जाल्मः' में आदि अच् को वृद्धिविधानार्थ णित्करण है।

णग्रहण का अन्य प्रयोजन देते हैं—**पुंवद्भावप्रतिषेधार्थमिति**। 'गार्गा भार्या यस्य स गार्गाभार्यः' में 'वृद्धिनिमित्तस्य च तद्धितस्यारक्तविकारे' ६.३.३९ से वृद्धिनिमित्तक तद्धितान्ता स्त्री का पुंवद्भावनिषेध हो सके इसके लिए णग्रहण किया गया है।

*** गोत्राद्यून्यस्त्रियामिति वचनादप्रयोजनम् * 'गोत्राद्यून्यस्त्रियामिति वचनादप्रयोजनमेतद् भवति। नास्ति गार्गा इति * अवंश्यत्वाद्वा स्त्रियाः प्रयोजनम् * अवंश्यत्वाद्वा स्त्रियाः प्रयोजनमेतद् भवति। न च स्त्री वंश्या। अस्ति गार्गा स्त्री। अपर आह-द्वावेव वंशौ। मातृवंशः पितृवंशश्च। यावता मातृवंशोऽप्यस्ति नास्ति गार्गा।। गोत्रस्त्रियाः।।**

णग्रहण का द्वितीय प्रयोजन 'पुंवद्भावप्रतिषेधार्थं च' दिया था, उसका खण्डन करते हैं-**गोत्राद्यूनीति**। 'गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्' ४.१.९४ इस नियमसूत्र में 'अस्त्रियाम्' यह निषेधवचन है, अतः स्त्री की युवसंज्ञा नहीं होने से स्त्र्यर्थ में गोत्रत्याद् एक ही प्रत्यय होगा। अतः 'गार्ग्या अपत्यं स्त्री' इस अर्थ में 'अस्त्रियाम्'निषेधवचन होने से प्रत्यय नहीं है। 'एको गोत्रे' ४.१.९३ इस नियम से गोत्रप्रत्ययान्त से अपर गोत्रप्रत्यय के उत्पन्न नहीं होने से 'गार्गा' यह रूप नहीं है।

अन्य आचार्य—**अवंश्यत्वाद्वेति**। 'गार्ग्या अपत्यं स्त्री' यहाँ पर जो गार्गी का अपत्य स्त्री है, उसकी युवसंज्ञा और गोत्रसंज्ञा नहीं है। गार्गी का अपत्य गर्ग का अपत्य भी नहीं कहा जायेगा। पौत्रप्रभृति अपत्य की गोत्रसंज्ञा का विधान है। गोत्रभूत स्त्री का अपत्य स्त्री मूलपुरुष के अपतन का हेतु नहीं बन सकती है, अतः उसे मूलपुरुष का वंश्य नहीं कहा जायेगा; अतः अनपत्य होने से उसकी गोत्रसंज्ञा नहीं होगी, एवं युवसंज्ञा भी नहीं होगी; अतः 'एको गोत्रे' ४.१.९३ सूत्र का व्यावर्त्त्य नहीं होने से ण प्रत्यय हो जायेगा। 'गार्ग्या अपत्यं स्त्री' इसी अर्थ में गार्गीपद से ण प्रत्यय हो कर 'गार्गा' रूप होगा। इस वात को स्पष्ट करते हैं-**अस्ति गार्गा इति**। पिता, पितामह आदि का ही वंश होता है, माता, मातामह आदि का नहीं, अतः पुंवद्भाव प्रतिषेध के लिए णकारग्रहण करना चाहिये।

इतर आचार्य—**अपर आहेति**। 'द्वावेव' यहाँ एव शब्द अप्यर्थ है। वंश दो प्रकार का होता है-१-मातृवंश, २-पितृवंश। इस तरह गार्गी का अपत्यस्त्री

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मातृवंश से गर्गकुला होगी। गर्ग की अपेक्षा से गार्गी का अपत्यस्त्री की गोत्रसंज्ञा होने से 'एको गोत्रे' ४.१.९३ इस नियम के द्वारा गोत्रप्रत्ययान्त गार्गी से पुनः गोत्रप्रत्यय नहीं हो सकेगा, अतः 'गार्गा' रूप नहीं होगा। 'अपत्यं पौत्रप्रभृतिगोत्रम्' ४.१.१६२ सूत्र में पौत्रप्रभृतिग्रहण से उपलक्षणविधया व्यवहित अपत्य का ग्रहण होगा, जिससे 'पौत्रप्रभृति' में पुंस्त्व की विवक्षा मान कर पौत्रप्रभृति अपत्यस्त्री की गोत्रसंज्ञा का निषेध नहीं कह सकते हैं। मातृवंश भी है, अतः उसकी भी गोत्रसंज्ञा होने से गोत्रप्रत्ययान्त गार्गी से पुनः गोत्रप्रत्यय ण नहीं हो सकेगा; अतः 'गार्ग्या अपत्यं स्त्री' इस अर्थ में पुनः ण प्रत्यय नहीं होने से 'गार्गा' रूप नहीं हो सकेगा; अतः णकारग्रहण को फित्रर्थ ही मानना चाहिये। 'फाण्टाहृति-मिमताभ्यां णफिञौ' ४.१.१५० इस सूत्रप्रमाण से यह भाष्य एकदेशी है।। **गोत्र-स्त्रियाः**।।

वृद्धाट्ठक्सौवीरेषु बहुलम् ४.१.१४८

'गोत्रस्त्रियाः' 'वृद्धाट्ठक्' 'फेश्छ च' 'फाण्टाहृति'-इमे चत्वारो योगाः। तेषां त्रयः कुत्सने। त्रयः सौवीरगोत्रे। आद्यो योगः कुत्सन एव। अन्त्यः सौवीरगोत्र एव।। वृद्धाट्ठक्।।

पूर्वसूत्र 'गोत्रस्त्रियाः कुत्सने ण च' ४.१.१४७ से यहाँ 'कुत्सने' की अनुवृत्ति है। सुवीरदेशोद्भव सौवीर।

सूत्रार्थ—'वृद्धसंज्ञक सौवीरगोत्र से युवापत्यार्थ में कुत्सा अर्थ गम्य होने पर बाहुलकात् ठक् हो'। जैसे-'भागवित्तेर्युवापत्यं भागवित्तिकः'। ठक् के अभावपक्ष में 'यञञोश्च' ४.१.१०१ से फक् प्रत्यय हो कर 'भागवित्तायनः'।

सिद्धान्ती आचार्य—**गोत्रस्त्रिया इति**। 'गोत्रस्त्रियाः कुत्सने ण च' ४.१.१४७, 'वृद्धाट्ठक् सौवीरेषु बहुलम्' ४.१.१४८, 'फेश्छ च' ४.१.१४९ और 'फाण्टाहृतिमिमताभ्यां णफिञौ' ४.१.१५० ये चार सूत्र हैं। इसमें क्रमशः एक से तीन तक सूत्रों की प्रवृत्ति कुत्सन अर्थ में है। क्रमशः द्वितीय से चतुर्थ की प्रवृत्ति सौवीर अर्थ में है। इनमें प्रथमसूत्र कुत्सन अर्थ में ही प्रवृत्त होगा, एवम् **अन्त्यः**=चतुर्थ सौवीरगोत्र अर्थ में ही प्रवृत्त होगा।। **वृद्धाट्ठक्**।।

फाण्टाहृतिमिमताभ्यां णफिञौ ४.१.१५०

किमर्थो णकारः? वृद्ध्यर्थः। 'ञ्णिती'ति वृद्धिर्यथा स्यात्। फाण्टाहृतः * फाण्टाहृतेः प्रत्ययस्य णित्करणानर्थक्यं, वृद्धत्वात्प्रातिपदिकस्य * फाण्टाहृतेः प्रत्ययस्य णित्करणमनर्थकम्। किं कारणम्? 'वृद्धत्वात्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रातिपदिकस्य'। वृद्धमेवैतत्प्रातिपदिकम्।

पूर्वसूत्र से 'सौवीरेषु' की अनुवृत्ति होती है।

सूत्रार्थ—'सौवीरगोत्र फाण्टाहृति से ण और मिमत से फिञ् प्रत्यय हो'। यहाँ यथासंख्यसम्बन्ध इष्ट है; अतः फाण्टाहृतिशब्द से फिञ्प्रत्यय ही होगा। अल्प अच् वाला मिमतशब्द का पूर्वनिपात नहीं होने से वृत्तिकार यहाँ यथासंख्य का अभाव मानते हैं; परन्तु भाष्यप्रमाण से उनका मत गिर जाता है। पूर्वनिपातव्यवस्था लोक में अवश्यंकरणीय होती है। सभी विधि वेद में विकल्पित हैं। सूत्र छन्दोवत् होते हैं, अतः 'अल्पाच्तरम्' २.२.३४ की विकल्प से व्यवस्था होने से बह्व्च फाण्टाहृतिशब्द का ही पूर्वनिपात है। इससे यथासंख्य के अभाव का ज्ञापन नहीं किया जा सकता है। 'फाण्टाहृतस्यापत्यं फाण्टाहृतिस्तस्य फाण्टाहृतेरपत्यं युवा फाण्टाहृतः, मिमतस्यापत्यं मैमतायनिः'।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थ इति**। सूत्र में णकारग्रहण क्यों किया गया है? पूर्वपक्ष में हेतु यह है कि वृद्ध्यर्थ णित्करण किया जाता है। यहाँ फाण्टाहृतिशब्द से ही यथासंख्यानुरोध से ण विहित है, मिमत से नहीं। फाण्टाहृति वृद्धसंज्ञक है। इसके आदि अच् को वृद्धि नहीं करने पर भी कोई फलभेद नहीं है; पुनः णकारग्रहण क्यों है? णित् के वृद्ध्यर्थ होने से प्रकृत में उसका कोई प्रयोजन नहीं है, अतः पूर्वपक्षी आचार्य स्वयम् उसका खण्डन करते हैं-**फाण्टाहृतेरिति**। फाण्टाहृति वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिक है, उसको वृद्धि करने से कोई फलभेद नहीं होगा।

***पुंवद्भावप्रतिषेधार्थं तु* पुंवद्भावस्य प्रतिषेधार्थो णकारः कर्त्तव्यः- फाण्टाहृता भार्या अस्य फाण्टाहृताभार्यः। वृद्धिनिमित्तस्येति पुंवद्भावप्रतिषेधो यथा स्यादिति *उक्तं वा* उक्तं वा। किमुक्तम्? '-गोत्राद् युन्यस्त्रियामिति वचनादप्रयोजनम्'। 'अवंश्यत्वाद्वा स्त्रियाः प्रयोजनम्'-'इति।। फाण्टाहृति।।**

उत्तरपक्षी आचार्य णकारग्रहण का प्रयोजन देते हैं—**पुंवद्भावेति**। 'फाण्टाहृता भार्या अस्य स फाण्टाहृताभार्यः' में 'वृद्धिनिमित्तस्य च तद्धितस्याऽरक्तविकारे' ६.३.३९ के द्वारा पुंवद्भाव का प्रतिषेध हो सके, इसके लिए णकारग्रहण किया गया है।

अन्य आचार्य इसका खण्डन करते हैं—**उक्तं वेति**। 'गोत्राद्युन्यस्त्रियाम्' ४.१.९४ सूत्र में आचार्य ने 'अस्त्रियाम्' यह निषेधवचन पढा है। इससे 'युवापत्यस्त्री'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस अर्थ में युवापत्यस्त्री का वाचक ण प्रत्यय का विधान नहीं हो सकेगा; अतः 'वृद्धिनिमित्तस्य-'६.३.३६ से पुंवद्भावनिषेध भी णकारग्रहण का प्रयोजन नहीं हो सकता है। एवं स्त्रीवंश नहीं होता है; अतः ण प्रत्यय का विधान किया गया है। इसकी व्याख्या अभी-अभी 'गोत्रस्त्रियाः कुत्सने ण च' ४.१.१४७ पर कर आया हूँ; वहीं से गतार्थ करना चाहिये।। **फाण्टाहृति-**।।

कुर्वादिभ्यो ण्यः ४.१.१५१

***वामरथस्य कण्वादिवत्स्वरवर्जम् * वामरथस्य कण्वादिवद्भावो वक्तव्यः। किमविशेषेण? नेत्याह-'स्वरवर्जम्'। स्वरं वर्जयित्वा। किं प्रयोजनम्? वामरथस्यच्छात्रा वामरथाः। 'कण्वादिभ्यो गोत्र' इत्यण् यथा स्यात्। यदि 'कण्वादिवदि'त्युच्यते प्रत्ययाश्रयमनतिदिष्टं भवति। तत्र को दोषः? वामरथाः,-बहुषु लोपो न प्राप्नोति।**

'कुरु आदिः=आद्यवयवो येषान्तेभ्यः' यहाँ तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि है।

सूत्रार्थ—'अपत्य अर्थ में कुर्वादि से ण्य प्रत्यय हो'। जैसे-'कुरोरपत्यं कौरव्या ब्राह्मणाः'। यहाँ 'वान्तो यि प्रत्यये' ६.१.७९ से वान्तादेश है।

वार्तिककार—**वामरथस्येति**। वामरथ को कण्वादिवद् अतिदेश कहना चाहिये। 'वामरथस्य कण्वादिवद्' ऐसा अतिदेश करके भाष्यकार ने 'वामरथस्य च्छात्राः' ऐसा उदाहरण दिया है; अतः प्रकरणवशात् ण्यप्रत्ययान्त वामरथ्य को ही कण्वादिवत् समझना चाहिये। मात्र कण्वादि को कोई कार्य विहित नहीं है, अतः यञन्त कण्वादि को जो कार्य कहे गया हैं, उन्हीं का अतिदेश करना चाहिये।

पूर्वपक्षी—किमविशेषेणेति। क्या कण्वादि को विहित सम्पूर्ण कार्य का अतिदेश किया जा रहा है?

वार्तिककार—**स्वरवर्जमिति**। कण्वादि को विहित स्वर को छोड कर शेष का अतिदेश 'वामरथ्यस्य कण्यादिवत्' से होगा। इससे 'वामरथ्यस्यच्छात्रा वामरथाः' में 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ की प्राप्ति होने पर उसको बाध कर 'कण्वादिभ्यो गोत्रे' ४.२.१११ से अण् प्रत्यय, एवम् 'आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति' ६.४.१५१ से यलोप है।

पूर्वपक्षी—**यदि कण्वादिवदिति**। 'वामरथस्य कण्वादिवत्' ऐसा कहने से प्रकृतिवत् अतिदेश प्राप्त हो रहा है। इससे प्रकृति को जो कार्य विहित है, उन्हीं का अतिदेश होगा, प्रत्ययसम्बन्धी कार्य का अतिदेश नहीं होने से 'वामरथ्य-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्यच्छात्रा वामरथाः' इस बहुवचनान्तस्थल में 'आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति' ६. ४.१५१ से प्रत्ययाश्रययलोप नहीं हो सकेगा, यह प्रथम दोष है।

वामरथानां संघः-वामरथः,-सङ्घाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण्.. अण्णि'-त्यण्न प्राप्नोति। यदि पुनर्य'ञ्वदित्युच्यते एवमपि प्रकृत्याश्रित-मनतिदिष्टं भवति। तत्र को दोषः? वामरथ्यस्यच्छात्रा वामरथाः,-'कण्वादिभ्यो गोत्र' इत्यण्न प्राप्नोति। अस्तु तर्हि 'कण्वादिवदि'त्येव। कथं वामरथाः, वामरथानां सङ्घ इति च? यदयं 'स्वरवर्जमि'त्याह तज्ज्ञापयत्याचार्यः-'प्रत्ययाश्रयमप्यतिदिष्टं भवती'ति।

अथ च 'वामरथानां सङ्घो वामरथः' यहाँ पर 'सङ्घाङ्कलक्षणे- ष्वञ्यञिञामण्' ४.३.१२७ से अण् प्राप्त नहीं हो सकेगा, यह द्वितीय दोष है। यदि 'प्रत्य-यातिदेश 'यञ्वत्' ऐसा किया जाये तो इस पक्ष में उपर्युक्त दोनों दोष नहीं होंगे। परन्तु 'यञ्वत्' अतिदेश कहने से प्रत्ययाश्रयकार्य ही होंगे, तथा प्रकृत्याश्रयकार्य की अप्राप्ति रहेगी। प्रत्ययाश्रयकार्य का अतिदेश करने पर 'वामरथस्यच्छात्रा वामरथाः' में 'कण्वादिभ्यो गोत्रे' ४.२.१११ की अप्रवृत्ति होने से अण् की अप्राप्ति होन से अव्याप्ति होगी।

प्रकृतिवत् अतिदेशपक्ष में उत्तरपक्षी आचार्य दोषवारण करते हैं-**अस्तु तर्हीति**। आप 'कण्वादिवत्' ऐसा अतिदेशपक्ष ही रहने दीजिये। इस पक्ष में आप ने 'प्रत्ययाश्रमनतिदिष्टं भवति' ऐसा कह कर 'वामरथाः' में यलोप की अप्राप्ति तथा 'वामरथानां सङ्घः' में अण् की अप्राप्ति दिखा कर अव्याप्ति बतायी थी, वह नहीं रहेगी। इसका वारण वार्तिककार के 'स्वरवर्जम्' पद के ज्ञापन द्वारा हो जायेगा। वार्तिककार 'स्वरवर्जम्' कह रहे हैं। यहाँ स्वर प्रत्ययाश्रय ही प्राप्त है। प्राप्ति होने पर ही निषेधविधान होता है। 'कण्वादिवत्' ऐसा कहने से प्रत्ययाश्रयकार्य की भी प्राप्ति हो रही है। इससे प्रत्ययाश्रय स्वर के प्राप्त होने पर आचार्य ने 'स्वरवर्जम्' ऐसा निषेधवचन पढा है।। कुर्वादि- ।।

उदीचामिञ् ४.१.१५३

*** उदीचामिञ्विधौ तक्ष्णोऽण्वचनम् * उदीचामिञ्विधौ तक्ष्णोऽण्वक्तव्यः। ताक्ष्णः। यदि पुनरयं तक्षन्शब्दः शिवादिषु पठ्येत?**

यहाँ पूर्वसूत्र 'सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च' ४.१.१५२ की अनुवृत्ति होती है।

सूत्रार्थ—'सेनान्तलक्षणकारि से पर में नव्यमत में अपत्यार्थक इञ् विकल्प हो'। जैसे-'हरिषेणस्यापत्यं हारिषेणिः, लक्षणमस्ति अस्य स लक्षणः, 'अर्शआदिभ्योऽच्'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

५.२.१२७ से मत्वर्थीय अजन्त, लक्षणस्यापत्यं पुमान् लाक्षणिः, तन्तुवायस्यापत्यं तान्तुवायिः'। कारिः=शिल्पी, कुम्भस्य कारिः कुम्भकारिस्तस्यापत्यं कौम्भकारिः। नापित-शब्द से परत्वाद् 'नापितस्यापत्यं नापितायनिः' में 'तिकादिभ्यः फिञ्' ४.१.१५४ से फिञ् प्रत्यय ही करना चाहिये।

पूर्वपक्षी—**उदीचामिञ्विधाविति**। 'उदीचाम्' विधि में तक्षन् पद से अपत्यार्थक अण् कहना चाहिये। इससे अण् के द्वारा 'उदीचामिञ्' का बाध हो सकेगा-तक्ष्णो-ऽपत्यं ताक्ष्णः। यहाँ 'षपूर्वहन्धृतराज्ञामणि' ६.४.१३५ से अल्लोप है।

अन्य आचार्य—**यदि पुनरिति**। 'शिवादिभ्योऽण्' ४.१.११२ सूत्र में तक्षन्शब्द का पाठ है, उसी से अण् प्राप्त हो कर उससे 'उदीचामिञ्' का बाध हो जायेगा।

*** शिवादिरिति चेण्ण्यविधिः * शिवादिरिति चेण्ण्यो विधेयः-ताक्षण्य इति * सिद्धं तूदीचां वा ण्यवचनात् * सिद्धमेतत्। कथम्? 'उदीचां वा ण्यवचनात्'। 'उदीचां वा ण्यो भवती'ति वक्तव्यम्। ण्येन मुक्ते यो यतः प्राप्नोति स ततो भविष्यति।।** उदीचामिञ्।।

एकदेशी आचार्य—**शिवादिरितीति**। यदि 'शिवादिभ्योऽण्' ४.१.११२ सूत्र में तक्षन्शब्द पढा गया है तो तक्षन्शब्द से अपत्य अर्थ में ण्यप्रत्यय का विधान कहना पडेगा-'तक्ष्णोऽपत्यं ताक्षण्यः'।

सिद्धान्ती—**सिद्धं तूदीचामिति**। तक्षन्शब्द से अपत्यार्थ में पृथक् ण्यप्रत्यय-विधि नहीं कहना पडेगा। 'उदीचामिञ्' ४.१.१५३ सूत्र से 'उदीचाम्' पद का अपकर्षण पूर्वसूत्र 'सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च' ४.१.१५२ में करेंगे। इससे पूर्वसूत्र से वैकल्पिक ण्यविधि होने से 'ताक्षण्यः' सिद्ध हो जायेगा। एवं ण्य के अभावपक्ष में जो प्राप्त है वह होगा, अर्थात् 'शिवादिभ्योऽण्' ४.१.११२ भी हो जायेगा। यदि सेनान्तलक्षण जातसेन, उग्रसेन, विष्वक्सेन से पर में जहाँ ण्य प्रत्यय नहीं है वहाँ 'ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च' ४.१.११४ से ऋष्यादिलक्षण अण् भी प्राप्त होगा, जो इष्ट नहीं है। परन्तु यथान्यासपक्ष में ण्य और इञ् होता है तो 'बाह्वादिभ्यश्च' ४.१.९६ को आकृतिगण मान कर ण्य के अभावपक्ष में इञ् प्रत्यय का विधान हो जायेगा।। **उदीचामिञ्।।**

कौसल्यकार्मार्याभ्याञ्च ४.१.१५५

किमिदं कौसल्यकार्मार्ययोर्विकृतयोर्ग्रहणं क्रियते? एवं विकृताभ्यां यथा स्यात्। अत्यल्पमिदमुच्यते-'कौसल्य-कार्मार्याभ्याञ्चे'ति * फिञ्प्र-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करणे दगुकोसलकर्मारच्छागवृषाणां युट् च * **फिञ्प्रकरणे दगुकोसलकर्मारच्छागवृषाणां युट् चेति वक्तव्यम्।** दगु-**दागव्यानिः।** दगु। कोसल-**कौसल्यायनिः।** कोसल। कर्मार-**कार्मार्यायणिः।** कर्मार। छाग-**छाग्यायनिः।** छाग। वृष-**वार्ष्यायणिः।**

'तिकादिभ्यः फिञ्' ४.१.१५४ से फिञ् की अनुवृत्ति है। यहाँ परमप्रकृति कोसल और कार्मारशब्द से ही प्रत्यय इष्ट है। यह अदन्तलक्षण इञ् का अपवाद है।

सूत्रार्थ—'कोसल और कार्मार पद से अपत्यार्थ में फिञ् प्रत्यय हो'। जैसे-'कोसलस्यापत्यं कौसल्यायनिः, कर्मारस्यापत्यं कार्मार्य्यायणिः'।

पूर्वपक्षी आचार्य—**किमिदमिति**। 'कोसलस्यापत्यम्' इस अर्थ में 'वृद्धेत्कोसलाजादञ्ञ्यङ्' ४.१.१७१ से ञ्यङन्त कौसल्य और 'कर्मारस्यापत्यम्' इस अर्थ में 'सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च' ४.१.१५२ से ण्य प्रत्ययान्त 'कार्मार्य' का विकृतनिर्देश क्यों करते हैं?, जब कि यहाँ पर परमप्रकृति कोसल और कर्मार शब्द से ही अपत्यार्थक फिञ् प्रत्यय इष्ट होने से कौसल्य और कार्मार्य यह विकृतनिर्देश इष्ट नहीं है; अतः पूर्वपक्षी आचार्य का प्रश्न है कि कौसल्य और कार्मार्य ऐसा विकृतनिर्देश क्यों करते हैं?

उत्तरपक्षी आचार्य—**एवं विकृताभ्यामिति**। अपत्यार्थक प्रत्यय होने पर प्रकृतिभाग कोसल और कर्मारशब्द को प्रत्ययसन्नियोग से कौसल्य और कार्मार्यादेशविधान हो सके, इसके लिए विकृतिनिर्देश है।

वार्तिककार—**अत्यल्पमिति**। कौसल्य और कार्मार्य से फिञ् अत्यन्त अल्प कहा है। दगु, कोसल, कर्मार, छाग और वृष पद से पर में अपत्यार्थ में फिञ् तथा प्रत्यय को युडागम कहना चाहिये। टित् होने से आद्यवयव होगा। दगोरपत्यं दागव्यायनिः, 'ओर्गुणः' ६.४.१४६ से गुण, 'वान्तो यि प्रत्यये' ६.१.७८ से वान्तादेश है। कोसलस्यापत्यं कौसल्यायनिः। कर्मारस्यापत्यं कार्मार्यायणिः। छागस्यापत्यं छाग्यायनिः। वृषस्यापत्यं वार्ष्यायणिः।

यदि युट् क्रियते युटि कृतेऽनादित्वादादेशो न प्राप्नोति। इदमिह संप्रधार्यम्-आदेशः क्रियतां, युडिति,-किमत्र कर्त्तव्यम्? परत्वादादेशः। नित्यो युट्,-कृतेऽप्यादेशे प्राप्नोत्यकृतेऽपि प्राप्नोति। युडप्यनित्यः,-अन्यस्य कृते आदेशे प्राप्नोत्यन्यस्याऽकृते। 'शब्दान्तरस्य प्राप्नुवन्विधि-रनित्यो भवति'। अन्तरङ्गस्तर्हि युट्। काऽन्तरङ्गता?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्पत्तिसन्नियोगेन युडुच्यते, उत्पन्ने प्रत्यये प्रकृतिप्रत्यया- वाश्रित्या- ऽङ्गस्यादेश उच्यते। आदेशोऽप्यन्तरङ्गः। कथम्? वक्ष्यत्येतद्-आय- न्नादिषूपदेशिवद्वचनं स्वरसिद्ध्यर्थमि'ति। अनवकाशस्तर्हि युट्।

पूर्वपक्षी—**यदि युडिति**। यदि फिञ् को युडागम करेंगे तो यदागमपरिभाषा से युडागमविशिष्ट आगमी फिञ् का ग्रहण होगा, इससे प्रत्यय का आदि य होगा, फ् नहीं; अतः फ् को आयनादेश नहीं हो सकेगा।

अन्य आचार्य—**इदमिहेति**। यहाँ विचार करना चाहिये-'पहले युडागम हो, अथवा फ् को आयन आदेश हो', क्या होना चाहिये?

इतर आचार्य—**परत्वादादेश इति**। युडागम की अपेक्षा से 'आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्' ७.१.२ पर है; अतः 'कौसल्यकार्मार्याभ्याञ्च' ४.१. १५५ को परत्वाद् आयन्नादेश से बाध हो जायेगा, जिससे पहले आदेश होगा, तथा बाद में आगम।

अन्य आचार्य—**नित्यो युडिति**। आयन्नादेश करने पर भी युडागम प्राप्त है, तथा न करने पर भी प्राप्त है; अतः कृताकृतसम्बन्धिनित्यविधि होने से आदेश की अपेक्षा आगम नित्य है। नित्य से पर का बाध होता है। इसकी परिभाषा है-'पूर्वपरनित्यान्तरङ्गापवादानामुत्तरोत्तरं बलीयः'; अतः पहले युडागम होने से फ् पर आदित्व नहीं रहेगा।

इतर आचार्य—**युडप्यनित्य इति**। आदेश करने पर 'आयनिञ्' को युट् प्राप्त है तथा आदेश नहीं होने पर 'फिञ्' को युडागम प्राप्त है, अतः शब्दान्तर को प्राप्त युडागम भी अनित्य है, अतः उससे पर आदेशशास्त्र का बाध नहीं किया जा सकता है-'शब्दान्तरस्य प्राप्नुवन् विधिरनित्यो भवति'।

अन्य आचार्य—**अन्तरङ्गस्तर्हीति**। युडागम अन्तरङ्ग है, उससे पर आदेशशास्त्र का बाध हो जायेगा।

इतर आचार्य—**काऽन्तरङ्गेति**। यहाँ अन्तरङ्गबहिरङ्गभाव क्या है?

अन्य आचार्य अन्तरङ्ग स्पष्ट करते हैं—**उत्पत्तिसन्नियोगेनेति**। फिञ्प्रत्यय और उसको युडागम सन्नियोगशिष्ट होने से सकृत् प्रवृत्त होंगे, जब कि 'अङ्गस्य' ६.४.१ का अधिकार करके प्रत्यय उत्पन्न होने पर प्रकृतिप्रत्यय का आश्रयण कर अङ्गसंज्ञानिमित्तक प्रत्यय का आद्यवयव 'फ, ढ, ख, छ, घ' को आयन् आदि आदेश कहे जा रहे हैं, अतः अन्तरङ्ग हैं।

अन्य आचार्य आयन् को भी अन्तरङ्ग सिद्ध करते हैं—**आदेशोऽपीति**।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्' ७.१.२ सूत्र पर आचार्य आयन् आदि की कर्तव्यता में उपदेशिवद्भाव का ग्रहण करेंगे। इससे दगु आदि से पर में 'आयनिञ्' प्रत्यय का ही विधान होगा। इसका प्रयोजन स्वरसिद्धि है, अतः आयन्नादि की कर्त्तव्यता में उपदेशिवद्भाव करने से आदेश भी अन्तरङ्ग है।

इतर आचार्य—**अनवकाश इति**। युडागम अनवकाश है तथा 'तैकायनिः' आदि में ओदश चरितार्थ है। निरवकाशविधि अपवाद होता है, अतः अपवादत्वाद् युडागम से आदेश का बाध हो जायेगा।

एवन्तर्हि पूर्वान्तः करिष्यते। यदि पूर्वान्तः करिष्यते-दागव्यायनिः-ओर्गुणो न प्राप्नोति। अस्तु तर्हि परादिरेव। ननु चोक्तं,-'युटि कृतेऽनादित्वादादेशो न प्राप्नोती'ति। नैष दोषः * सिद्धन्त्वादिष्टस्य युड्वचनात् * सिद्धमेतत्। कथम्? 'आदिष्टस्य युड्वचनात्'। युट् चादिष्टस्येति वक्तव्यम्। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यं, चेन सन्नियोगः करिष्यते, 'युट् च'। किं-च? यच्चान्यत्प्राप्नोति। किं चान्यत्प्राप्नोति? आदेश इति।। कौसल्यकार्मार्याभ्याञ्च।।

अन्य आचार्य—**एवन्तर्हीति**। य् को **पूर्वान्त**=प्रकृति का अन्तावयव करेंगे। अर्थात् प्रत्यय को युडागम नहीं करके प्रकृतिभाग को युक् का आगम करेंगे। वह कित् होने से प्रकृति का अन्तावयव होगा। इससे फ् पर प्रत्ययादित्व बना रहेगा तथा उसके स्थान में आयन्नादेश होने में कोई बाधा नहीं है।

इतर आचार्य पूर्वान्तपक्ष में दोष देते हैं—**यदि पूर्वान्त इति**। यदि प्रकृति को युडागम करेंगे तो प्रत्यय को निमित्त मान कर प्रकृति का अन्तावयव उत् को 'ओर्गुणः' ६.४.१४६ से होने वाला गुण आदेश नहीं हो सकेगा।

अन्य आचार्य—**अस्तु तर्हीति**। आप युट् को प्रत्यय का आदि ही रखिये। प्रत्ययादित्वपक्ष में फ् के अनादि होने से आयन्नादेश न होना आप ने दोष दिया था, वह नहीं रहेगा। इस तरह कि आदिष्ट 'आयनिञ्' को युडागमविधान कहेंगे।

इतर आचार्य—**तत्तर्हीति**। तो क्या आदिष्ट को युडागम कहना होगा?

अन्य आचार्य—**न वक्तव्यमिति**। ऐसा अतिरिक्तवचन पढने की आवश्यकता नहीं है। 'फिञ्प्रकरणे दगुकोसलकर्मारच्छागलवृषाणां युट् च' वार्तिक में वार्तिककार ने 'च'पद का ग्रहण किया है, उससे युडागम तथा जो अन्य-आदेश प्राप्त है, उन सभी का संग्रह हो जायेगा।। **कौसल्यकार्मार्य-**।।

वाकिनादीनां कुक्च ४.१.१५८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यदि पुनरयं कुट् परादिः क्रियते * कुटि प्रत्ययादेरादेशानुपपत्तिरनादित्वात् * कुटि सति प्रत्ययादेरादेशो नोपपद्यते किं कारणम्? 'अनादित्वात्'। कुटि कृतेऽनादित्वादादेशो न प्राप्नोति। एवं तर्हि पूर्वान्तः करिष्यते * पूर्वान्ते नलोपवचनम् * यदि पूर्वान्तः क्रियते-नलोपो वक्तव्यः। चार्मिकायणिः। वार्मिकायणिः। 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्ये'ति नलोपो न प्राप्नोति। परादौ तु पुनः सति 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्ये'ति नलोपः सिध्यति। अस्तु तर्हि परादिरेव। ननु चोक्तं-'कुटि कृतेऽनादित्वादादेशो न प्राप्नोती'ति।

'उदीचां वृद्धादगोत्रात्' ४.१.१५७ से 'उदीचाम्'पद की अनुवृत्ति है। 'वाकिन आदिर्येषान्तेषां वाकिनादीनाम्' यहाँ तद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि है।

सूत्रार्थ—'वाकिन आदि से अपत्यार्थ गम्य होने पर विकल्प से फिञ् प्रत्यय और प्रकृति को कुक् का आगम हो'। जैसे-'वाकिनस्यापत्यं वाकिनकायनिः'। पक्ष में 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ् हो कर 'वाकिनिः' रूप होगा।

पूर्वपक्षी—**यदि पुनरयमिति**। यदि 'वाकिनादीनां कुक् च' सूत्र के स्थान पर 'वाकिनादीनां कुट् च' ऐसा सूत्र पढेंगे तो टित् होने से प्रत्यय का आद्यवयव 'क्' होगा। 'फ्' पर प्रत्ययादित्व नहीं होने से उसको आयन्नादेश प्राप्त नहीं हो सकेगा, अतः **पूर्वान्त**= कुग्विधान कर प्रकृति का अन्तावयव किया गया है। इससे 'फ्' पर प्रत्ययादित्व रहता है एवम् उसको आयन्नादेश हो जाता है।

अन्य आचार्य पूर्वान्तपक्ष में दोष देते हैं—**पूर्वान्ते नलोपेति**। वाकिनादिगण में चर्मिन्, वर्मिन् आदि नान्तप्रकृतिकपद पढे गये हैं। 'क' को परादि करने पर तन्निमित्तक प्रातिपदिकसंज्ञा नान्त वर्मिन्, चर्मिन् पर रहती है तथा 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' ८.२.७ से प्रातिपदिकान्त 'न' का लोप होता है। परन्तु यदि 'क्' को पूर्वान्त करेंगे तो प्रातिपदिकान्तत्व कान्त 'चर्मिन्क्, वर्मिन्क्' पर रहेगा। इससे 'न' के प्रातिपदिकान्त नहीं होने से उसका लोप नहीं हो सकेगा।

* सिद्धं त्वादिष्टस्य कुड्वचनात् * सिद्धमेतत्। कथम्? आदिष्टस्य कुड्वचनात्। 'कुट् चादिष्टस्ये'ति वक्तव्यम्। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। चेन संन्नियोगः करिष्यते-कुट् च। किं 'च'। यच्चाऽन्यत् प्राप्नोति। किञ्चाऽन्यत्प्राप्नोति? आदेशः। सिध्यति, सूत्रं तर्हि भिद्यते। यथान्यासमेवास्तु। ननु चोक्तं-'पूर्वान्ते नलोप-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वचनमि'ति। नैष दोषः,-क्रियते एतन्न्यास एव-'चर्मिवर्मिणोर्नलोपश्चे'ति।

इतर आचार्य इस दोष का वारण करते हैं:—**सिद्धमिति**। फिञ् को कुट् का आगम न कह कर आदिष्ट 'आयनिञ्' को कुटागम विधान करेंगे। इससे पृथग् नलोप कहने की आवश्यकता नहीं होगी।

अन्य आचार्य—**तत्तर्हीति**। तो क्या 'आदिष्ट 'आयनिञ्' को कुट् हो' ऐसा अतिरिक्त वचन कहना होगा?

इतर आचार्य—**न वक्तव्यमिति**। इसके लिए पृथग्वचन कहने की आवश्यकता नहीं है। 'वाकिनादीनां कुट् च' सूत्र में आचार्य ने 'च' पद का ग्रहण किया है। इससे आदेश और आगम दोनों ही सन्नियोगशिष्ट होंगे। प्रातिपदिकान्तत्व भी नान्त पर रहेगा, अतः नलोप भी सिद्ध हो जायेगा। अथ वा 'वाकिनादीनां कुट् च' सूत्र न पढ कर यथान्यास 'वाकिनादीनां कुक्च' ही रखिये। इस पक्ष में आप ने दोष दिया था कि 'कित् होने से कुक् पूर्वान्त होगा, अतः 'चार्मिकायणिः, वार्मिकायणिः' में प्रातिपदिकान्त नलोप प्राप्त नहीं है' यह भी कोई दोष नहीं रहेगा। पूर्वान्तपक्ष में 'चर्मिन्, वर्मिन्' की नलोपसिद्धि के लिए आचार्य पाणिनि 'चर्मिवर्मिणोर्नलोपश्च' ऐसा गणसूत्र पढा है, उससे नलोप हो कर 'चार्मिकायणिः, वार्मिकायणिः' सिद्ध हो जायेगा।

*** कारिभ्य इञोऽगोत्रात्फिञ्विप्रतिषेधेन * 'कारिभ्य इञ्भवती'त्येतस्मादगोत्रात्फिञ्भवति विप्रतिषेधेन। 'कारिभ्य इञ्भवती'त्यस्यावकाशः-आयस्कारिः, लौहकारिः। फिञोऽवकाशः-तापसायनिः। सांमितिकायनिः। इहोभयं प्राप्नोति-नापितायनिः। फिञ्भवति विप्रतिषेधेन।**

वार्तिककार—**कारिभ्य इति**। 'कारिभ्यः' इस बहुवचननिर्देश से अर्थग्रहण है। अगोत्रप्रत्ययान्त **कारिः**=शिल्पी से परविप्रतिषेध के द्वारा इञ् का बाध कर फिञ् प्रत्यय कहना चाहिये। 'वाकिनादीनां कुक्च' ४.१.१५८ पर पठित होने से 'उदीचां वृद्धादगोत्रात्' ४.१.१५७ की अपेक्षा पर है। 'आयस्कारिः, लौहकारिः' में 'उदीचामिञ्' ४.१.१५३ चरितार्थ है तथा 'तापसायनिः, सांमितिकायनिः' में 'उदीचां वृद्धादगोत्रात्' ४.१.१५७ चरितार्थ है। 'नापितायनिः' में दोनों की प्राप्ति हो रही है। परत्पात् फिञ् से इञ् का बाध हो जायेगा।। **वाकिनादीनां कुक्च**।।

मनोर्जातावञ्यतौ षुक्च ४.१.१६१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपत्ये कुत्सिते मूढे, मनोरौत्सर्गिकः स्मृतः।
नकारस्य च मूर्द्धन्यस्तेन सिध्यति माणवः।।

यदि षुक्पूर्वान्तः क्रियते-मानुषाः,-बहुषु लोपः प्राप्नोति। मानुषाणां सङ्घः,-सङ्घाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञाम् अण्णित्यण् प्राप्नोति?

सूत्रार्थ—'मनुशब्द से अञ् और यत् ये दोनों प्रत्यय हों, एवम् इन प्रत्ययों के पर रहते प्रकृतिप्रत्ययसमुदाय से जाति अर्थ गम्य होने पर प्रकृति को षुगागम हो'। जैसे-'मनोरपत्यं जातिः=समुदायो मनुष्यः, मानुषः'। अपत्याधिकार होने से यहाँ अपत्यार्थ में प्रत्यय होगा। जातिग्रहण प्रकृतिप्रत्यय में विशेषण है। 'जातिः' प्रत्यय का अर्थ नहीं है। अन्यथा 'यञञोश्च' २.४.६४ से लुक् की आपत्ति होगी।

श्लोकवार्तिक—**अपत्य इति**। अपत्य, कुत्सित और मूढ अर्थ गम्य होने पर मनु प्रातिपदिक के न को मूर्धन्यादेश णकार होता है। इससे मनुशब्द से अञ्, नकार को णकार, उकार को गुण, अवादेश हो कर माणवशब्द सिद्ध होता है। श्लोकवार्तिक णत्वविधानार्थ है। 'न दण्डमाणवान्तेवासिषु' ४.३.१३० सूत्र पर माणव शब्द पठित है। इससे माणव शब्द में णत्वनिपातित होने पर भी अपत्य, कुत्सित और मूढ अर्थ का निपातन से लाभ नहीं हो पा रहा है, अतः अर्थविशेषण में णत्वविधानार्थ श्लोकवार्तिक का आरम्भ है। अनधीतविद्यात्व मूढत्व है, एवं वेदादिशास्त्रविहित का अनुष्ठानाभाव तथा निषिद्ध का आचरण कुत्सित है।

पूर्वपक्षी—**यदि षुगिति**। प्रकृतसूत्र से विहित षुक् को कित् होने से प्रकृति का अन्तावयव मानेंगे तो बहुवचन 'मानुषाः' में 'यञिञोश्च' २.४.६४ से अञ् लुक् प्राप्त होगा, यह प्रथम दोष है। अथ च द्वितीय दोष यह होगा कि बहुवचन में अञ्लुक् होने पर 'मानुषाणां सङ्घः' इस अर्थ में अञन्त से होने वाला 'सङ्घाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण्' ४.३.१२७ के द्वारा विहित अण्प्रत्यय की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। यदि प्रत्यय का आद्यवयव 'ष्' को मानने के लिए 'मनोर्जातावञ्यतौ षुट् च' ऐसा सूत्र पढ कर 'ष्' को टित् करेंगे तो इस पक्ष में पूर्वोक्त दोनों दोष नहीं रहेंगे। परन्तु **परादिः**=प्रत्यय का आद्यवयव मानने पर आगमविशिष्ट का ग्रहण कर 'मानुषी' में 'शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्' से होने वाला ङीन् प्रत्यय अप्राप्त रहेगा। इस तरह कित् अथ वा टित् पढ कर 'ष्' आगम करने पर उभयपक्षों में दोष स्पष्ट है।

अस्तु तर्हि परादिः। यदि परादिः क्रियते-मानुषी,- अञन्ता-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दितीकारो न प्राप्नोति। अस्तु तर्हि पूर्वान्त एव। कथं 'मानुषाः', 'मानुषाणां सङ्घ' इति च। उभयत्र लौकिकस्य गोत्रस्य ग्रहणं, न चैतल्लौकिकं गोत्रम्। किन्तर्हि? जातिः। इह तर्हि-मानुष्यकमिति,-'हलस्तद्धितस्ये'ति यलोपः प्राप्नोति। परादवप्येष दोषः। यद्धि हलस्तद्धितस्येति हल्ग्रहणं न तदङ्गविशेषणं शक्यं विज्ञातुम्, इह हि दोषः स्याद्-'वृकाट्टेण्यण्'-वार्केणीति। तस्मादुभाभ्यामेव तद्वक्तव्यं-'प्रकृत्याऽके राजन्यमनुष्ययुवान' इति।। मनोर्जातावञ्यतौ षुक्च।।

'ष्' को प्रकृति का अन्तावयव मानने के पक्ष में उत्तरपक्षी आचार्य प्राप्त दोष का वारण करते हैं-**अस्तु तर्हीति**। आप 'ष्' को प्रकृति का अन्तावयव ही मानिये। इस पक्ष में प्राप्त दोष का वारण के लिए कहते हैं-**उभत्र लौकिकस्येति**। 'यञिञोश्च' २.४.६४ और 'सङ्घाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण्' ४.३.१२७ सूत्र में लौकिक गोत्र का ग्रहण है; जब कि 'मनोर्जातावञ्यतौ षुक्च' ४.१.१६१ सूत्र में लौकिक गोत्र नहीं है, अपि तु जाति वाच्य है; अतः इस अञ् का लुक् नहीं होगा। इस तरह 'मानुषाः' इस बहुवचनान्त की सिद्धि रह जायेगी। एवं 'मानुषाणां सङ्घः' इस अर्थ में अञन्तलक्षण अण् भी प्राप्त हो जायेगा। पूर्वान्त मानने पर 'मानुषी' में अदन्तलक्षण अञ् से होने वाले ङीन् की भी सिद्धि हो जायेगी। इस तरह कोई दोष नहीं है।

पूर्वपक्षी आचार्य—**इह तर्हीति**। षुक् को पूर्वान्त मानने पर प्रत्ययनिरूपित अङ्गत्व षान्त-भाग पर रहेगा। 'हलस्तद्धितस्य' ६.४.१५० सूत्र की अनुवृत्ति 'आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति' ६.४.१५१ सूत्र में होती है। इससे हलन्त अङ्ग 'मानुष्' से पर में आद्-भिन्न प्रत्यय पर रहते 'मानुष्यकम्' में तद्धित-यकार का लोप प्राप्त होगा। यहाँ मूलभाष्य में 'हलस्तद्धितस्येति यलोपः प्राप्नोति' ऐसा कहा है, उसका आशय उत्तरसूत्र में अनुवर्तन करके 'आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति' ६.४.१५१ सूत्र से यलोप समझना चाहिये। अन्यथा 'आतो धातोः' ६.४.१४० से 'आतः' इस षष्ठ्यन्तपद की अनुवृत्ति 'हलस्तद्धितस्य' ६.४.१५० में करके सप्तम्यन्तविपरिणाम के द्वारा आत् पर रहते यलोप विधान होने से 'मानुष्यकम्' में अप्राप्ति होगी।

इतर आचार्य—**परादावप्येष इति**। यदि 'ष्' को **परादिः**=प्रत्यय का आद्यवयव मानेंगे तब भी 'मानुष्यकम्' में 'आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति' ६.४.१५१ से यलोप की आपत्ति होगी। इस तरह पूर्वान्त अथ वा परादि जो भी माना जाये, दोनों ही पक्षों में 'मानुष्यकम्' में यलोपापत्ति है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ उभयपक्षों में प्राप्त दोष को उत्तरपक्षी आचार्य हटाते हैं-**यद्धीति**। 'हलस्तद्धितस्य' ६.४.१५० सूत्र में 'हलः' पञ्चम्यन्त पद अङ्ग का विशेषण नहीं है, अतः 'हलन्त अङ्ग से पर में तद्धित य का लुक् हो' ऐसा अर्थ नहीं होगा। 'हलः' को अङ्ग का विशेषण मानने के पक्ष में उत्तरपक्षी आचार्य दोष दे रहे हैं-**इह हि दोष इति**। यदि 'हलः' को अङ्ग का विशेषण मानेंगे तो 'वार्क्षेणी' में यलोप इष्ट है, वह नहीं हो सकेगा। जैसे-आयुधजीवी संघ का वाचक वृकशब्द से स्वार्थ में 'वृकाट्टेण्यण्' ५.३.११५ से टेण्यण् प्रत्यय है। टिलूलक्षण ङीप् होने पर यहाँ हल्प्रत्ययघटक ण् से पर में तद्धित य का लुक् हो कर 'वार्क्षेणी' रूप बना है। यदि 'हलः' हो अङ्ग का विशेषण मानेंगे तो 'वार्क्षेणी' में यलोप नहीं हो सकेगा; अतः अङ्ग, अनङ्ग उभयसाधारण हल् से पर में तद्धित य का लोप प्राप्त होने पर भी 'मानुष्यकम्' में यलोप की अतिव्याप्ति बनी हुई है। उसका वारण करने के लिए 'प्रकृत्याऽके राजन्यमनुष्ययुवानः' वा.४२१४ से अक पर रहते राजन्य, मनुष्य और युवन् शब्द को प्रकृतिभाव कहना चाहिये। इससे वुञ्स्थानिक अक पर रहते 'मानुष्यकम्' में यलोपवारण हो जायेगा।। **मनो-**।।

अपत्यं पौत्रप्रभृतिगोत्रम् ४.१.१६२

* पौत्रप्रभृतेर्गोत्रसंज्ञायां यस्यापत्यं तस्य पौत्रप्रभृतिसंज्ञाकरणम् * **पौत्रप्रभृतेर्गोत्रसंज्ञायां यस्यापत्यं विवक्ष्यते तस्य पौत्रप्रभृति गोत्रसंज्ञं भवतीति वक्तव्यम्। गर्गोऽपि हि कं चित्प्रति पौत्रः। कुशिकोऽपि; तत्र मा भूदिति। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यं-'समर्थानां प्रथमाद्वे'ति वर्त्तते। समर्थानां प्रथमस्य यदपत्यं पौत्त्रप्रभृतीति विज्ञायते।**

यह संज्ञासूत्र है। 'अपत्यं पौत्रप्रभृति' संज्ञिदल है, एवं 'गोत्रम्' संज्ञादल है। 'न पतन्ति पितरो नरके येन तदपत्यम्'। पितरों के नरक में अपतन का हेतुक अपत्य कहलाता है। इससे अपत्यशब्द आत्मजपर्याय न हो कर पुत्र, पौत्र, सन्ततिपर्याय है।

सूत्रार्थ—'अपत्यत्वरूप से विवक्षित पौत्रप्रभृति की गोत्रसंज्ञा होती है'। लोक में प्रवराऽध्यायप्रसिद्ध अपत्य ही गोत्रत्वेन ज्ञात है, तदतिरिक्त पौत्रप्रभृति की भी गोत्रसंज्ञाविधान करने के लिए सूत्र का संज्ञाकरणत्व है।

वार्तिककार—**पौत्रप्रभृतेरिति**। पौत्रप्रभृति की गोत्रसंज्ञाविधान करने पर जिसका अपत्य विवक्षित है, उसी के पौत्रप्रभृति की गोत्रसंज्ञा कहनी चाहिये। जैसे-देवदत्त का अपत्य विवक्षित है तो मूलपुरुष देवदत्त से उसके पौत्रप्रभृति की ही गोत्रसंज्ञा होगी। इस तरह का नियम का व्यावर्त्य देते हैं-**गर्गोऽपि हीति**। गर्ग का पुत्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देवदत्त और देवदत्त का पुत्र यज्ञदत्त है। गर्गापत्य गार्ग्य से 'गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्' ४.१.९४ के द्वारा युवापत्य अर्थ में प्रत्यय उत्पन्न होगा। परन्तु किसी हरदत्त आदि के प्रति गर्ग और कुशिक भी पौत्र हो सकते हैं, अर्थात् यत्किञ्चित् पितामहत्वनिरूपित पौत्रत्व गर्ग में भी हो सकता है, अतः कुशिक और गर्ग से भी युवापत्य अर्थ में प्रत्यय की प्राप्ति हो सकती है; परन्तु 'यस्यापत्यं विवक्ष्यते तस्य पौत्रप्रभृति गोत्रसंज्ञं भवति' ऐसा कहने से गर्ग का पौत्रत्व विवक्षित होने पर गार्ग्यशब्द से ही युवापत्यार्थक प्रत्यय होगा, गर्ग, कुशिक आदि से नहीं, यह वार्तिककरण का फल है।

अन्य आचार्य—**तत्तर्हि वक्तव्यमिति**। तो क्या 'गर्गोऽपि हि कं चित्प्रति पौत्रः तत्र मा भूदिति' इस व्यावर्त्तन के लिए 'पौत्रप्रभृतेर्गोत्रसंज्ञायां यस्यापत्यं तस्य पौत्रप्रभृतिसंज्ञाकरणम्' यह वचन पढना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। व्यावर्तन के लिए उक्त वचन पढने की आवश्यकता नहीं है। 'समर्थानां प्रथमाद्वा' ४.१.८२ सूत्र की अनुवृत्ति हो रही है। इससे समर्थों में प्रथम=मूल पुरुष का जो अपत्य पौत्रप्रभृति, उसी की गोत्रसंज्ञा होगी, इतर की नहीं। इस तरह विवक्षा के द्वारा किसी के प्रति भी पौत्रत्व की गोत्रसंज्ञा के युवापत्य अर्थ में प्रत्ययप्राप्ति की आपत्ति निरस्त हो गयी, उससे गर्ग और कुशिक से युवापत्य अर्थ में प्रत्यय नहीं होगा, अपि तु गार्ग्यपद से ही युवापत्य अर्थ में फक् हो कर 'गार्ग्यायणः' रूप होगा।

*** जीवद्वंश्यं च कुत्सितम् * 'जीवद्वंश्यं च कुत्सितं गोत्रसंज्ञं भवती'ति वक्तव्यम्। 'गार्ग्यस्त्वमसि जाल्म!' वात्स्यस्त्वमसि जाल्म!' इति। का पुनरिह कुत्सा? पितृतो लोके व्यपदेशवताऽस्वतन्त्रेण भवितव्यम्। य इदानीं पितृमान् स्वतन्त्रो भवति, स उच्यते-'गार्ग्यस्त्वमसि जाल्म!' 'वात्स्यस्त्वमसि जाल्म!'। न त्वं पितृतो व्यपदेशमर्हसीति।**

वार्तिकभाष्य—**जीवद्वंश्यमिति**। उत्पादक पित्रादिपरम्परा को वंश कहते हैं। 'वंशे भवो वंश्यः' 'दिगादिभ्यो यत्' ४.३.५४ से यत् प्रत्यय है। जीवद्वंश्य पिता आदि के रहते 'जीवति तु वंश्ये युवा' ४.१.१६३ से युवसंज्ञा इष्ट है, तरन्तु कुत्सा अर्थ गम्य होने पर जीवद्वंश्य की गोत्रसंज्ञा होगी। जैसे-'गार्ग्यस्त्वमसि जाल्म!' 'वात्स्यस्त्वमसि जाल्म!'। इस वाक्य से यहाँ कुत्सा गम्य हो रही है। वह इस तरह कि पिता, पितामह आदि के रहते पुत्र आदि को **अस्वतन्त्र**=पिता आदि के अधीन रहना चाहिये, परन्तु पिता आदि के जीवित रहते जो पुत्र आदि स्वतन्त्र हो जाता है उसे 'गार्ग्यस्त्वमसि जाल्म!' 'वात्स्यत्वत्मसि जाल्म!'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहते हैं। 'हे जाल्म! त्वं गार्ग्योऽसि' इत्यादि अन्वय करना चाहिये। इससे उसके पिता के प्रति व्यवहारशून्यता का बोध होने से **कुत्सा**=निन्दा गम्य है। {**अपत्यं-**}।

जीवति तु वंश्ये युवा ४.१.१६३

***जीवति तु वंश्ये युवेति पौत्रप्रभृत्यपेक्षं च* 'जीवति तु वंश्ये युवेति पौत्रप्रभृत्यपेक्षं चे'ति वक्तव्यम्। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। 'पौत्रप्रभती'ति वर्त्तते। एवं तर्हि अन्वाचष्टे-पौत्रप्रभृतीति वर्तत इति; किमेतस्याऽन्वाख्याने प्रयोजनम्?**

'जीवति' शत्रन्त सप्तम्यन्त पद है। यह विषयसप्तमी है। उत्पादक पित्रादि-परम्परा को वंश कहते हैं। वंशे भवो वंश्यः, 'दिगादिभ्यो यत्' ४.३.५४ से यत्प्रत्ययान्त वंश्यशब्द है। पूर्व सूत्र 'अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्' ४.१.१६२ से 'पौत्रप्रभृति' की अनुवृत्ति हो कर षष्ठ्यन्तविपरिणाम होगा। 'तस्यापत्यम्' ४.१.९२ से 'अपत्यम्' पद की अनुवृत्ति है। 'तु'शब्द अवधारण अर्थ में है, 'युवा के अनन्तर' ऐसा अर्थ होने से 'पौत्रादेर्यदपत्यं चतुर्थादि' ऐसा अर्थ गम्य होगा।

सूत्रार्थ—'वंश्य=पिता आदि के जीवित रहने पर पौत्रप्रभृति का अपत्य जो चतुर्थादि, उसकी युवसंज्ञा ही हो, गोत्रसंज्ञा नहीं'। एकदेशी वार्तिक-**जीवति त्विति**। **वंश्य**=पितृ आदि के जीवित रहने पर जिसकी युवसंज्ञा अपेक्षित है वह संज्ञिदल सूत्र में निर्दिष्ट नहीं है, अतः अपत्यमात्र की युवसंज्ञा प्राप्त है, उसका वारण करने के लिए 'पौत्रप्रभृति' का ग्रहण करना चाहिये। इससे अपत्यमात्र की युवसंज्ञा न हो कर पौत्रप्रभृति की ही युवसंज्ञा होगी।

अन्य आचार्य—**यत्तर्हीति**। तो क्या जीवद्वंश्य पौत्रप्रभृति की युवसंज्ञा करने के लिए 'पौत्रप्रभृत्यपेक्षं च' का ग्रहण करना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। इसकी आवश्यकता नहीं है। प्रकृत सूत्र में 'अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्' ४.१.६२ से 'पौत्रप्रभृति' की अनुवृत्ति हो जायेगी।

पूर्वपक्षी आचार्य—**एवं तर्हीति**। आप ने पूर्व सूत्र से 'पौत्रप्रभृति' पद की अनुवृत्ति की है; उसका क्या प्रयोजन है?

***तच्च दैवदत्त्यर्थम्* तच्च दैवदत्त्यर्थम्। देवदत्तस्यापत्यं दैवदत्तिरित्यनन्तरं यदपत्यं तत्र युवसंज्ञा मा भूदिति। उच्यमानेऽप्येतस्मिन् देवदत्तस्य तर्हि पौत्रे युवसंज्ञा प्राप्नोति, एतदपि पौत्रप्रभृति भवति। न पौत्रप्रभृतीत्यनेनाऽपत्यमभिसम्बध्यते-'पौत्रप्रभृति यद-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पत्यमि'ति। किन्तर्हि? वंश्योऽभिसम्बध्यते-'पौत्रप्रभृति वंश्ये जीवति यदपत्यमि'ति। एवमपि देवदत्तस्य द्वौ पुत्रौ तयोः कनीयसि युवसंज्ञा प्राप्नोति 'भ्रातरि च ज्यायसी'ति।

उत्तरपक्षी आचार्य—**तच्च दैवदत्तीति**। जहाँ 'देवदत्तस्यापत्यं दैवदत्तिः' में 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ् हो कर देवदत्तापत्य वाच्य है वहाँ दैवदत्ति का अनन्तर अपत्य वाच्य होने पर, अर्थात् देवदत्त का पौत्र वाच्य होने पर देवदत्त के पौत्र की युवसंज्ञा नहीं होगी, अपि तु देवदत्त का प्रपौत्र चतुर्थादि की ही युवसंज्ञा होगी। अनन्तर की युवसंज्ञा होने पर 'ण्यक्षत्रियार्षञितोर्यूनि लुगणिञोः' २.४.५८ से लुक् प्राप्त होगा।

पूर्वपक्षी आचार्य—**उच्यमानेऽपीति**। 'पौत्रप्रभृति' पद की अनुवृत्ति हो रही है। इससे शब्दतः पौत्रप्रभृति की ही युवसंज्ञा लब्ध है; उसकी भी युवसंज्ञा होनी चाहिये?

यहाँ पौत्रप्रभृतिपद को वंश्यपद के साथ अन्वय मान कर उत्तरपक्षी आचार्य पूर्वपक्ष का निवारण करते हैं-**न पौत्रप्रभृतीति**। पौत्रप्रभृतिशब्द यदि अपत्यमात्र में सम्बद्ध होता तो 'दैवदत्तिः' के अनन्तर अपत्य की भी युवसंज्ञा हो सकती थी, परन्तु यहाँ पौत्रप्रभृतिपद से अपत्यमात्र का सम्बन्ध न हो कर वंश्य के साथ सम्बन्ध है-'पौत्रप्रभृति वंश्य के जीवित रहने पर जो अपत्य, उसकी युवसंज्ञा होगी'।

आक्षेपक आचार्य—**एवमपीति**। 'अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्' ४.१.१६१ से पौत्रप्रभृतिपद की अनुवृत्ति उत्तरसूत्र 'जीवति तु वंश्ये युवा' ४.१.१६३ सूत्र में होती है। यहाँ वंश्य पद में 'पौत्रप्रभृति' पद विशेषण है। उत्तरसूत्र 'भ्रातरि च ज्यायसि' ४.१.१६४ में 'वंश्ये' विशेष्यपद की अनुवृत्ति होती है; अतः उसका विशेषणपद पौत्रप्रभृति भी स्वतः निवृत्त हो जायेगा। इससे **ज्यायसि**=ज्येष्ठ भ्राता के जीवित रहने पर अनन्तरापत्य **कनीयसि**=छोटे भ्राता की भी युवसंज्ञा प्राप्त होगी। इससे 'ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः' २.४.५८ से लुक् की अनिष्टापत्ति होगी।

एवं तर्ह्यपत्यमेवाभिसम्बध्यते न तु पौत्रप्रभृति समानाधिकरणमपत्यम्। नैवं विज्ञायते-पौत्रप्रभृति यदपत्यमिति। कथं तर्हि? पौत्रप्रभृतेर्यदपत्यमिति *वृद्धस्य च पूजायाम्* वृद्धस्य च पूजायां युवसंज्ञा वक्तव्या। तत्रभवन्तो गार्ग्यायणाः। तत्रभवन्तो वात्स्यायनाः। का पुनरिह पूजा? युवत्वं लोके ईप्सितं पूजेत्युपचर्यते। तत्रभवन्तश्च

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

युवत्वेनोपचर्यमाणाः पूजिता भवन्ति।

उत्तरपक्षी आचार्य इस दोष का वारण करते हैं—**एवन्तर्हीति**। 'जीवति तु वंश्ये युवा' ४.१.१६३ सूत्र में वंश्य पद के साथ पौत्रप्रभृति पद का अन्वय नहीं करेंगे, अपि तु अपत्यम् पद की ही अनुवृत्ति कर अन्वय करेंगे। इससे पौत्रप्रभृति का समानाधिकरण अपत्यम् नहीं होगा; अतः 'पौत्रप्रभृति यदपत्यं तद्युवसंज्ञं स्यात्' ऐसा अर्थ नहीं होगा; अपि तु अपत्यम् का अन्वय कर उसके साथ पौत्रप्रभृति का वैयधिकरण्येन अन्वय कर 'पौत्रप्रभृतेर्यदपत्यं तद्युवसंज्ञं स्याद्' ऐसा अर्थ करेंगे। इससे **वंश्य**=पित्रादि के जीवित रहने पर चतुर्थादि अपत्य की ही युवसंज्ञा होगी, गोत्रसंज्ञा नहीं।

वार्तिककार आचार्य—**वृद्धस्य चेति**। यह वार्तिक देख कर कोई-कोई सूत्र में भी इसका पाठ करते हैं, परन्तु यह उचित नहीं है। प्रचीनाचार्य गोत्र की युवसंज्ञा करते हैं, यहाँ वही गृहीत है। वार्तिकार्थ-'पूजा गम्य होने पर **वृद्धस्य**=गोत्र की युवसंज्ञा कहनी चाहिये'। जैसे-'तत्रभवन्तो गार्ग्यायणाः, तत्रभवन्तो वात्स्यायनाः'। यहाँ पूजा गम्य होने पर वृद्ध की युवसंज्ञाविधानसामर्थ्य से 'यञिञोश्च' ४.१.१०१ से विहित युवप्रत्यय फक् स्वार्थ में है। लोक में युवत्व इष्ट है। 'तत्रभवन्तः' ऐसा पूज्यवाची प्रयोग है। युवसंज्ञक का अल्पवयस्क होने से पूजा गम्य है। लोक में वृद्ध की भी युवसंज्ञा करने से पूजा गम्य हो रही है।

***आपत्यो वा गोत्रम् * अथ वा-आपत्यो गोत्रसंज्ञो भवतीति वक्तव्यम् *परमप्रकृतेश्चापत्यः * 'परमप्रकृतेश्चाऽऽपत्यो भवती'ति वक्तव्यम् *आपत्याज्जीवद्वंश्यात्स्वार्थे द्वितीयो युवसंज्ञः * 'आपत्याज् जीवद्वंश्यात्स्वार्थे द्वितीयः प्रत्ययो वक्तव्यः, युवसंज्ञो भवती'ति वक्तव्यम् *एको गोत्रग्रहणानर्थक्यं च * एवं च कृत्वा 'एको गोत्र'- ग्रहण-मनर्थकम्भवति।**

सिद्धान्तवार्तिक—**आपत्यो वेति**। आपत्य की विकल्प से गोत्रसंज्ञा कहनी चाहिये। आपत्यस्येदमापत्यम्। यहाँ अपत्य को आपत्यपद से कहा गया है। पौत्रप्रभृति अपत्य की गोत्रसंज्ञाविकल्प हो। **परमप्रकृतेश्चेति**=परमप्रकृति गर्गादि से ही आपत्यप्रत्यय कहना चाहिये, अनन्तर गोत्रप्रत्ययान्त और युवप्रत्ययान्त से नहीं। **आपत्यादिति**=पौत्रप्रभृति गर्गादि से **जीवद्वंश्ये**=पिता आदि के जीवित रहने पर चतुर्थादि अपत्य अर्थ में जब प्रत्यय करेंगे तब 'यञिञोश्च' ४.१.१०१ इत्यादि के द्वारा विहित द्वितीय प्रत्यय फक् आदि स्वार्थ में होंगे तथा वह युवसंज्ञक होंगे। जैसे-गार्ग्यायणः। **एको गोत्रग्रहणेति**='आपत्यो वा गोत्रम्' 'परमप्रकृते-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्चापत्यः' 'आपत्याज् जीवद्वंश्यात्स्वार्थे द्वितीयो युवसंज्ञः' इन तीनों वार्तिकों के स्वीकार कर लेने पर 'एको गोत्रे' ५.१.९३ सूत्र व्यर्थ हो रहा है।

*** बहुवचनलोपिषु च सिद्धम् * बहुवचन-लोपिषु च सिद्धम्भवति। तत्र बिदानामपत्यं माणवक इति विगृह्य बिदशब्दाद् द्व्येकयोरुत्पत्तिर्भविष्यति,-बैदः,बैदौ। बैदस्यापत्यानि बहवो माणवका इति विगृह्य बिदशब्दाद् बहुषूत्पत्तिर्भविष्यति-बिदा इति।। ज़ीवति तु वंश्ये युवा।।**

बहुवचनेति। बहुवचन के लोपस्थल में भी रूप सिद्ध हो जा रहा है। जैसे– 'बिदानामपत्यम्' इस बहुवचनान्त विग्रहस्थल में बहुवचनान्त 'बिदानाम्' से '-बिदादिभ्योऽञ्' ४.१.१०४ के द्वारा अञ्प्रत्यय हो कर बहुवचन आम् का लोप हो कर अञन्त बैद शब्द का एकवचन, द्विवचन में भी 'बैदः, बैदौ' रूप चलेगा। 'एवं बिदस्यापत्यानि बहवो माणवकाः' इस तरह एकवचनान्त 'बिदस्य' से अपत्यार्थक बहुवचनान्त अञ्प्रत्यय होने पर उसका बहुवचनान्त 'बिदाः' रूप रहेगा।। **जीवति तु वंश्ये युवा।।**

वाऽन्यस्मिन्सपिण्डे स्थविरतरे जीवति ४.१.१६५

अन्यग्रहणं किमर्थम्? भ्रातरीति वर्त्तते। सपिण्डमात्रे यथा स्यात्। अथ स्थविरतरग्रहणं किमर्थम्? उभयतो विशिष्टे यथा स्यात्-स्थानतो वयस्तश्च।

'वा' अव्ययपद, 'अन्यस्मिन्, सपिण्डे, स्थविरे' सप्तम्यन्तपद, 'जीवति' तिङन्तपद है। 'जीवति तु वंश्ये युवा' ४.१.१६३ से 'जीवति' शत्रन्त सप्तम्यन्त की, एवम् 'अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्' ४.१.१६१ से 'अपत्यम्' की अनुवृत्ति है। तिङन्त 'जीवति' पद 'अपत्यम्' में विशेषण है। शत्रन्त सप्तम्यन्त 'जीवति' पद 'सपिण्डे' में विशेषण है। **सपिण्ड**=स्वयम्, पिता, पितामह, प्रपितामह, वृद्धप्रपितामह एवं वृद्धप्रपितामह के पिता और पितामह ये सात पीढी सपिण्ड कही जाती है। इसी तरह मातृवंश में भी सात पीढी सपिण्ड है, जो धर्मशास्त्र में प्रसिद्ध है। तरब्निर्देश स्थान और वयः उभय में प्रकर्षप्रतिपादनार्थ है। **स्थविरतर**=अतिवृद्ध।

सूत्रार्थ—'स्थान और वयः के द्वारा उत्कृष्ट भ्रातृभिन्न सपिण्ड **पितृव्य**=चाचा, मातामह और ममेरा भाई के जीवित रहने पर जीवित रहता हुआ पौत्रप्रभृति अपत्य की विकल्प से युवसंज्ञा हो'। जैसे-'गार्ग्यस्यापत्यं गार्ग्यायणः'।

पूर्वपक्षी—**अन्यग्रहणमिति**। 'अन्यस्मिन् सपिण्डे' पद का ग्रहण क्यों किया गया है?, इसमें पूर्वपक्षी का आशय है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरपक्षी—**भ्रातरीतीति**। इससे सन्निहित 'भ्रातरि च ज्यायसि' ४.१.१६४ है, वहाँ से 'भ्रातरि' सप्तम्यन्तपद की अनुवृत्ति होने से स्थविरतर सपिण्ड भ्राता के होने पर जीवद् अपत्य की विकल्प से युवसंज्ञा होने लगेगी, जब कि स्थविरतर सपिण्ड भ्राता के होने पर नित्य युवसंज्ञा इष्ट है, अतः भ्रातृसपिण्ड के रहते युवसंज्ञाविकल्पवारण के लिए 'अन्यस्मिन् सपिण्डे' पद का ग्रहण किया गया है। 'अन्यस्मिन् सपिण्डे' पद का ग्रहण करने से भ्रातृभिन्न सपिण्डमात्र के रहते युवसंज्ञा होती है।

पूर्वपक्षी—**अथेति**। स्थविरतरपद का ग्रहण क्यों किया गया है?

उत्तरपक्षी—**उभयत इति**। 'भ्रातरि च ज्यायसि' ४.१.१६४ से 'ज्यायसि' पद का अनुवर्त्तन होने से वयःप्रकर्ष अर्थ लब्ध था, परन्तु स्थविरतरपद का ग्रहण होने से वयःप्रकर्ष और स्थानप्रकर्ष दोनों अर्थों का लाभ हो रहा है, इस उभयनिमित्तक अर्थलाभ के लिए स्थविरतर पद का ग्रहण है।

अथ जीवतीति वर्त्तमाने पुनर्जीवतिग्रहणं किमर्थम्? जीवतो जीवति यथा स्यान्मृते हि मा भूत्। मृते हि 'गार्ग्यो मृत' इत्येव भवितव्यम्। अथ गोत्रयूनोः समावेशो भवति उताहो न? किं च प्राप्नोति? बाढं प्राप्नोति-न ह्ययमेकसंज्ञाधिकारः। किञ्चाऽऽतः?

पूर्वपक्षी—**अथेति**। 'जीवति तु वंश्ये युवा' ४.१.१६३ सूत्र से 'जीवति' पद की अनुवृत्ति हो रही थी, पुनः इस सूत्र में 'जीवति' पद का ग्रहण क्यों किया गया है?

उत्तरपक्षी—**जीवतो जीवतीति**। प्रकृत सूत्र में 'जीवति' पद तिङन्त है तथा संज्ञी में विशेषण है, जब कि अनुवृत्त 'जीवति' पद शत्रन्त सप्तम्यन्त 'अन्यस्मिन् सपिण्डे स्थविरतरे' में विशेषण है। इससे संज्ञी सपिण्ड के जीवित रहने पर ही युवसंज्ञा होगी। यदि अवंश्य पितृव्य, मातुलादि जीवित भी हैं तथा संज्ञी मृत है तो उसकी युवसंज्ञा नहीं होने से मात्र 'गार्ग्यो मृतः' यही वाक्य होगा, 'गार्ग्यायणो मृतः' नहीं। यहाँ यह पूर्वपक्ष इस लिए था कि **वंश्य**=पिता आदि के जीवित रहने पर संज्ञाधिकार के होने से अन्यत्र कहीं पर संज्ञा है तथा कहीं पर नहीं भी है, अतः पूर्वपक्ष था।

*** गोत्रयूनोः समावेशे को दोषस्तत्कृतं भवेत् * गोत्रयूनोः समावेशे को दोषः? तत्कृतं प्राप्नोति। गोत्राश्रया विधयो यून्यपि प्राप्नुन्ति। यास्कायनयः। लाह्यायनयः। 'यस्कादिभ्यो गोत्र' इति लुक्प्राप्नोति**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

*** यस्कादिषु न दोषोऽस्ति 'न यूनी'त्यनुवर्त्तनात् * यस्कादिषु न दोषः। किं कारणम्? 'न यूनी'त्यनुवर्त्तनात्। 'न यूनी'ति तत्राऽनुवर्त्तते। क्व प्रकृतम्? न तौल्वलिभ्य इति।**

पूर्वपक्षी—**अथेति**। गोत्रसंज्ञा और युवसंज्ञा इन दो संज्ञाओ का समावेश है, या नहीं?

अन्य आचार्य—**किं चेति**। क्या यहाँ इन दोनों संज्ञाओं का समावेश हो सकता है?

पूर्वपक्षी—**बाढं प्राप्नोतीति**। 'आकडारादेका संज्ञा' १.४.१ के अधिकार में नहीं होने से यहाँ एक संज्ञाधिकार नहीं है, अतः सन्देह होता है कि यहाँ पर गोत्रसंज्ञा और युवसंज्ञा इन दोनों संज्ञाओं का समावेश हो सकता है, या नहीं?

अन्य आचार्य—**किं चात इति**। यदि दोनों संज्ञाओं का समावेश हो जाये तो इससे क्या दोष होगा?

पूर्वपक्षी आचार्य दोनों संज्ञाओं का समावेश होने में दोष स्पष्ट करते हैं-**गोत्राश्रया इति**। यदि दोनों संज्ञाओं का समावेश होता है तो गोत्र को आश्रय मान कर होने वाला कार्य युवसंज्ञा में भी प्राप्त होने लगेगा। जैसे-'यस्कस्यापत्यं यास्कः' 'शिवादिभ्योऽण्' ४.१.११२ से अण्, अण्णन्त यास्कशब्द से युवापत्य अर्थ में 'अणो द्व्यचः' ४.१.१५६ के द्वारा फिञ् हो कर आदिवृद्धि, 'यस्येति च' 6.४.१४८ से अल्लोप हो कर एकदेशविकृतन्याय से यास्कशब्द को भी यस्कशब्द मान कर 'यस्कादिभ्यो गोत्रे' २.४.६३ से बहुवचन 'यास्कायनयः, लाह्यायनयः' में अपत्यप्रत्यय फिञ् का लुक् प्राप्त होगा, यह उभयसंज्ञासमावेशपक्ष में दोष है।

उत्तरपक्षी आचार्य इस दोष का वारण करते हैं—**यस्कादिषु नेति**। 'न तौल्वलिभ्यः' २.४.६१ सूत्र पर सिद्धान्ती ने 'न यूनि' ऐसा निषेधवचन पढा है, इससे तौल्वल्यादि से पर में युवप्रत्यय का लुङ्निषेध है। वहीं से 'न यूनि' का अनुवर्त्तन उत्तरसूत्र 'यस्कादिभ्यो गोत्रे' २.४.६३ में करेंगे। इससे यस्कादि से पर में युवप्रत्यय का लुङ्निषेध होने से 'यास्कायनयः, लाह्यायनयः' में फिञ् का लुक् नहीं हो सकेगा।

*** दोषोऽत्रिबिदपञ्चाला न यूनीत्यनुवर्त्तनात् * यदि 'न यूनी'त्यनुवर्त्तेऽत्रयो बिदाः पञ्चाला माणवका इति न सिध्यन्ति। नैष दोषः-सम्बन्धमनुवर्त्तिष्यते। 'न तौल्वलिभ्यः'। 'तद्राजस्य बहुषु**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तेनैवाऽस्त्रियां' लुग्भवति। तौल्वलिभ्यो यूनि न। 'यस्कादिभ्यो गोत्रे' लुग्भवति। न यूनि। तौल्वलिभ्य इति निवृत्तम्। 'यञञोश्च' 'अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाऽङ्गिरोभ्यश्च' लुग्भवति। 'यूनि ने'त्यपि निवृत्तम्।

'न यूनि' का अनुवर्त्तनपक्ष में अन्य आचार्य अव्याप्ति दे रहे हैं—**दोषोऽत्रिबिदपञ्चाला इति**। यदि 'न तौल्वलिभ्यः' २.४.६१ से उत्तरसूत्र में 'न यूनि' का अनुवर्त्तन करेंगे तो 'तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्' ४.२.६२ में भी अनुवर्तन होगा, इससे 'अत्रेर्युवापत्यानि अत्रयः, बिदस्य युवापत्यानि बिदाः, पञ्चालस्य युवापत्यानि पञ्चाला माणवकाः'। यहाँ 'अत्रिशब्द से गोत्र अर्थ में 'इतश्चानिञः' ४.१.१२२ से विहित ढक् का लुक् है। बिदशब्द से पर में '-बिदादिभ्योऽञ्' ४.१.१०४ से विहित अञ् का लुक् है, एवं पञ्चाल शब्द से पर में 'जनपदशब्दात्क्षत्रियादञ्' ४.१.१६८ से विहित अञ् का लुक् है। 'न यूनि' का अनुवर्त्तन होने से यहाँ यह लुक् अप्राप्त रहेगा।

उत्तरपक्षी आचार्य यहाँ इस दोष का वारण करते हैं—**नैष दोष इति**। सम्बन्धमात्र का अनुवर्त्तन करेंगे। इससे 'न यूनि' का सम्बन्ध 'यस्कादिभ्यो गोत्रे' २.४.६३ में ही होगा। उसका सम्बन्ध 'तद्राजस्य बहुषु तेनैवाऽस्त्रियाम्' २.४.६२ में नहीं होने से 'अत्रयो, बिदाः, पञ्चाला माणवकाः' में लुङ्निषेध की आपत्ति नहीं होगी। उत्तरसूत्र 'यस्कादिभ्यो गोत्रे' २.४.६३ में 'न यूनि' की अनुवृत्ति एवं 'तौल्वलिभ्यः' की निवृत्ति होगी। 'यञञोश्च' २.४.६४ एवम् 'अत्रिभृगुकुत्सवशिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च' २.४.६५ में लुङ्मात्र का अनुवर्तन होगा, यहाँ 'यूनि न' की निवृत्ति हो जायेगी।

इह तर्हि-काण्व्यायनस्यच्छात्राः-काण्व्यायनीयाः,-'कण्वादिभ्यो गोत्र' इत्यण्प्राप्नोति * कण्वादिषु न दोषोऽस्ति, न यून्यस्ति ततः परम् * कण्वादिषु दोषो नास्ति। किं कारणम्? 'न यून्यस्ति ततः परम्'। कण्वादिभ्यो यो विहितस्तदन्तात् प्रातिपदिकादित्युच्यते। यश्चात्र कण्वादिभ्यो विहितो न तदन्तं प्रातिपदिकं, यदन्तं च प्रातिपदिकं नाऽसौ कण्वादिभ्यः परः।

अब पूर्वपक्षी आचार्य गोत्र और युवा इन दो संज्ञाओं के समावेश में इतर दोष देते हैं-**इह तर्हीति**। गर्गाद्यन्तर्गत कण्वादि है, अतः 'कण्वस्य गोत्रापत्यं काण्व्यः', 'गर्गादिभ्यो यञ्' ४.१.१०५ से यञ्, यञन्त काण्व्य शब्द से युवापत्य अर्थ में 'यञञोश्च' ४.१.१०१ से फक् हो कर 'काण्व्यायनः' रूप है। अब गोत्रसंज्ञा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और युवसंज्ञा इन दोनों संज्ञाओं का समावेश होने पर 'काण्व्यायनस्यच्छात्राः' इस अर्थ में 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ से छ हो कर 'काण्व्यायनीयाः' रूप होता है। उभयसंज्ञा का समावेश होने से युवसंज्ञक छ प्रत्यय के साथ-साथ 'कण्वादिभ्यो गोत्रे' ४.२.१११ से विहित अण्प्रत्यय की आपत्ति होगी। 'कण्वादिभ्यो गोत्रे' ४.२.१११ के द्वारा कण्वादि से पर में अण् विहित है, जब कि प्रकृत स्थल में भाष्यकार काण्व्यायन से पर में अण् की आपत्ति दे रहे हैं। व्यवहित अव्यवहित उभय साधारण 'पर'शब्द का प्रयोग मान कर इसका समाधान करना चाहिये। व्यवहित में भी 'पर' शब्द की शक्ति मान कर कण्वशब्द से पर में जैसे फक् विहित है, वैसे गोत्रसंज्ञा होने पर अण् की आपत्ति होगी।

उत्तरपक्षी आचार्य विहितविशेषण मान कर इसका समाधान करते हैं-**कण्वादिषु नेति**। उभयसंज्ञासमावेश होने पर भी 'काण्व्यायनीयाः' में शैषिक अण् की आपत्ति नहीं होगी। वह इस तरह कि 'काण्वादि से पर में विहित जो गोत्रार्थक प्रत्यय, तदन्त प्रातिपदिक से शेष अर्थ में अण् प्रत्यय हो' ऐसा सूत्रार्थ करने से उक्त स्थल में अण् की आपत्ति नहीं होगी। कण्वादि से पर में विहित जो प्रत्यय तदन्त प्रतिपदिक से पर में शैषिक कहा जा रहा है। प्रकृत में जो कण्वादि से पर में विहित यञ् है, तदन्त प्रातिपदिक काण्व्य से शैषिक अण् प्राप्त नहीं है। शैषिक अण् की जो प्रकृति फगन्त प्रातिपदिक काण्व्यायन है, वह कण्वादि से पर में नहीं है, अतः उभयसंज्ञासमावेश होने पर भी 'काण्व्यायनीयाः' में शैषिक अण् की आपत्ति नहीं हो सकेगी।

इह तर्ह्यौपगवस्यापत्यमौपगविरिति,-एको गोत्र इत्येतस्मान्नियमात्प्रत्ययो न प्राप्नोति *एको गोत्रे प्रतिपदम् * प्रतिपदमत्र प्रत्यया विधीयन्ते,- 'गोत्राद्यून्यस्त्रियामि'ति। तदन्तात्तर्ह्यनेकः प्रत्ययः प्राप्नोति।

अब पूर्वपक्षी आचार्य उभयसंज्ञासमावेशपक्ष में दूसरा दोष देते हैं-**इह तर्हीति**। 'उपगोरपत्यं पुमानौपगवः, औपगवस्य युवापत्यम्' इस अर्थ में युवापत्यार्थक 'अत इञ्' ४.१.९५ से अदन्तलक्षण इञ् हो कर 'औपगविः' रूप है, वह नहीं हो सकेगा। उभयसंज्ञासमावेश होने पर युवसंज्ञा से गोत्रसंज्ञा का भी ग्रहण होगा, इससे 'एको गोत्रे' ४.१.९३ इस नियमसूत्र से गोत्र अर्थ में एक ही प्रत्यय का विधान होने तथा नियम से द्वितीय का व्यवर्तन होने से 'औपगविः' में द्वितीय इञ् प्रत्यय की अप्राप्ति होगी।

उत्तरपक्षी आचार्य इस दोष का भी वारण करते हैं-**एको गोत्र इति**। गोत्र अर्थ में प्रतिपद से प्रत्ययों का विधान है। 'एको गोत्रे' ४.१.९३ इस नियम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से युवा अर्थ में अप्राप्त प्रत्यय का 'गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्' ४.१.९४ से विधान है। युवापत्य अर्थ वाच्य होने पर गोत्रप्रत्ययान्त से अपत्यप्रत्यय 'गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्' ४.१.९४ के द्वारा विहित है। जैसे-'गार्ग्यस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः', वैसे-'उपगोरपत्यं पुमानौपगवः, औपगवस्यापत्यमौपगविः' में भी गोत्रप्रत्ययान्त औपगव से युवापत्यार्थक इञ् हो जायेगा।

पूर्वपक्षी—**तदन्तात्तर्हीति**। यदि गोत्रप्रत्ययान्त से युवापत्य अर्थ वाच्य होने पर अपत्यार्थक प्रत्यय होता है तो **तदन्तात्**=गोत्रप्रत्ययान्त अण्णन्त औपगवशब्द से युवापत्य अर्थ वाच्य होने पर अनेक अपत्यार्थक प्रत्ययों की प्राप्ति होगी। इस तरह यदि 'एको गोत्रे' ४.१.९३ के नियम हा बाध कर देंगे तो 'औपगवेर्यूनोऽपत्यम्' यहाँ पर भी युवा की गोत्रसंज्ञा होने से 'यञिञोश्च' ४.१.१०१ से फक् प्रत्यय की प्राप्ति हो रही है।

*** गोत्राद्यूनि च तत्स्मरेत् * गोत्राद्यून्यस्त्रियामिति तत्स्मरेत्। किम्? एक इत्येव। गोत्रे तर्ह्यलुगुक्तः स यून्यपि प्राप्नोति। अस्तु। पुनर्यूनि लुगित्येवं लुग्भविष्यति। नैवं शक्यं फक्फिञोर्दोषः स्यात्-शालङ्केर्यूनश्छात्राः शालङ्काः। पैलस्य पैलीयाः। 'फक्फिञोरन्यतरस्या'-मित्यन्यतरस्यां श्रवणं प्रसज्येत। तस्माद्युवसंज्ञायां गोत्रसंज्ञायाः प्रतिषेधो वक्तव्यः।**

समाधान भाष्य—**गोत्राद्यूनि चेति**। 'गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्' ४.१.९४ सूत्र में **तत्स्मरेत्**='एक' पद का अनुवर्तन करना चाहिये, अर्थाद् 'एको गोत्रे' ४.१.९३ सूत्र से 'एक'पद की अनुवृत्ति उत्तरसूत्र 'गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्' ४.१.९४ में करेंगे। इससे गोत्रप्रत्ययान्त से भी युवापत्य अर्थ गम्य होने पर एक ही अपत्यार्थक प्रत्यय होने से इतर प्रत्ययों की अप्राप्ति रहेगी, अतः इञन्त औपगवि से फक् की आपत्ति निरस्त हो गयी। यद्यपि अजादि प्राग्दीव्यतीय प्रत्यय की विवक्षा होने पर 'यूनि लुक्' ४.१.९० से युवप्रत्यय का लुक् हो कर इष्टसिद्धि हो जा रही है, इस पक्ष में गोत्रप्रत्ययान्त से अनेक प्रत्यय उत्पन्न होने पर भी एक का ही श्रवण होगा, अतः दोष नहीं होने से उत्तरपक्षी आचार्य को यह समाधान देना चाहिये था, परन्तु यहाँ पूर्वपक्षी के पूर्वपक्ष का दूसरा भी समाधान है, अतः पूर्वसमाधान न दे कर भगवान् भाष्यकार ने समाधानान्तर का आश्रयण किया है। उभयसंज्ञासमावेशपक्ष में पूर्वपक्षी आचार्य अब अन्य दोष दे रहे हैं-**गोत्रे तर्ह्यलुगिति**। 'गोत्रे लुगचि' ४.१.८९ से गोत्र में अलुक् कहा है, वह युवसंज्ञा में भी प्राप्त होने लगेगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरपक्षी आचार्य—**अस्त्विति**। उभयसंज्ञासमावेशपक्ष में गोत्र में कहा गया अलुक् युव में भी प्राप्त होने दीजिये। युव में अलुक् प्राप्त होगा तथा 'यूनि लुक्' ४.१.९० से लुक् भी प्राप्त होगा। 'गोत्रे लुगचि' ४.१.८९ की अपेक्षा 'यूनि लुक्' ४.१.९० पर है, अतः परत्वाद् 'यूनि लुक्' ४.१.९० से अलुक् का बाध हो जायेगा।

पूर्वपक्षी—**नैवं शक्यमिति**। यहाँ बाध सम्भव नहीं है। बाध की अव्याप्ति 'शालङ्केर्यूनश्छात्राः शालङ्काः' एवं 'पैलस्य यूनश्छात्राः पैलीयाः' में होगी। इससे यहाँ पूर्व में फक् और उत्तर में फिञ् के श्रवण की आपत्ति होगी। वह इस तरह कि-'शलङ्कोरपत्यं गोत्रं शालङ्किः' यहाँ 'बाह्वादिभ्यश्च' ४.१.९६ को आकृतिगण मान कर शलङ्कुशब्द से पर में इञ् है, अथ वा 'पैलादिभ्यश्च' 2.४.59 गणपाठ में शालङ्किशब्द का पाठ है, इससे निपातन के द्वारा इञ्प्रत्यय तथा शलङ्कुशब्द को शलङ्क आदेश होगा। इञन्त शालङ्कि शब्द से 'अपत्यं युवा' इस अर्थ में 'यञिञोश्च' ४.१.१०१ से फक् होगा। उस फक् प्रत्यय का 'पैलादिभ्यश्च' २.४.५९ से लुक् हो जायेगा। पुनः लुगन्त इञन्त शालङ्किशब्द से 'यूनश्छात्राः' इस अर्थ में प्राग्दीव्यतीय अर्थ की विवक्षा में युव की गोत्रसंज्ञा हो जाने पर 'पैलादिभ्यश्च' २.४.५९ से प्राप्त लुक् का 'गोत्रऽलुगचि' ४.१.८९ से प्राप्त अलुक् बाध लेगा। इस अलुग्बाध को भी पर होने से 'यूनि लुक्' ४.१.९० बाध कर लेगा। इस लुक् को भी 'फक्फिञोरन्यतरस्याम्' ४.१.९१ विकल्प करेगा, अतः पक्ष में फक् के श्रवण की आपत्ति होगी। परन्तु जब युव की गोत्रसंज्ञा नहीं है तब 'गोत्रेऽलुगचि' ४.१.८९ की प्रवृत्ति नहीं होने से 'पैलादिभ्यश्च' २.४.५९ से लुक् होगा ही। इस तरह फक्श्रवण की आपत्ति नहीं है। इञन्त शालङ्किशब्द से 'कण्वादिभ्यो गोत्रे' ४.२.१११, 'इञश्च' ४.२.११२ से अण् होने पर 'शालङ्केर्यूनश्छात्राः' इस अर्थ में 'शालङ्काः' यही रूप होता है। 'फक्फिञोरन्यतरस्याम्' ४.१.९१ यह विकल्प अनन्तर 'यूनि लुक्' ४.१.९० का ही बाध करेगा, अव्यवहित और अन्तरङ्ग 'पैलादिभ्यश्च' २.४.५९ से प्राप्त लुक् का नहीं। 'पीलाया अपत्यं गोत्रं पैलः', 'पीलाया वा' ४.१.११८ से अण्, पुनः अण्णन्त पैलशब्द से युवापत्य अर्थ में 'अणो द्व्यचः' ४.१.१५६ के द्वारा फिञ् प्रत्यय, 'पैलादिभ्यश्च' २.४.५९ से फिञ् का लुक्, फिञ्लुगन्त पैलशब्द से 'यूनश्छात्राः' इस अर्थ में 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ से छ प्रत्यय हो कर 'पैलीयाः' रूप है। यहाँ लुक् के विकल्प होने से 'फक्फिञोरन्यतरस्याम्' ४.१.९१ के द्वारा 'शालङ्केर्यूनश्छात्राः शालङ्काः' में फक् तथा 'पैलस्य यूनश्छात्राः पैलीयाः' में फिञ् के श्रवण की आपत्ति होगी। असका वारण करने के लिए युवसंज्ञा की कर्त्तव्यता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में गोत्रसंज्ञा का प्रतिषेध कहना चाहिये। अर्थात् पूर्वसूत्र 'अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्' ४.१.१६१ से 'गोत्रम्' पद की अनुवृत्ति उत्तरसूत्र 'जीवति तु वंश्ये युवा' ४.१.१६३ में नहीं करनी चाहिये। अतः वंश्य पिता आदि के जीवित पौत्र आदि का अपत्य चतुर्थ आदि की युवसंज्ञा ही करनी चाहिये, गोत्रसंज्ञा नहीं। अथ वा पूर्वसूत्र से उत्तरसूत्र में गोत्रपद की अनुवृत्ति होने से गोत्रसंज्ञा और युवसंज्ञा उभय प्राप्त है, उसका निषेध कहना चाहिये।

न वक्तव्य इति *तुर्नियामकः* तुः क्रियते स नियामको भविष्यति, 'जीवति तु वंश्येऽपत्यं युवसंज्ञमेव भवती'ति। यदि तर्हि युवसंज्ञायां गोत्रसंज्ञा न भवति य इष्यन्ते यूनि गोत्राश्रया विधयस्ते न सिध्यन्ति,-गार्ग्यायणानां समूहो गार्ग्यायणकम्। गार्ग्यायणानां किं चिद् गार्ग्यायणकम्। गार्ग्यायणो भक्तिरस्य गार्ग्यायणकः। गोत्राश्रयो वुञ्न प्राप्नोति।

अन्य आचार्य—**न वक्तव्य इति**। यहाँ गोत्रसंज्ञा का निषेध नहीं कहना चाहिये। 'जीवति तु वंश्ये' ४.१.१६३ सूत्र में आचार्य 'तु' पद कह रहे हैं, वह नियम करेगा-'**वंश्य**=पिता आदि के जीवित होने पर अपत्य की युवसंज्ञा ही हो, गोत्रसंज्ञा नहीं'। इस नियम से गोत्रसंज्ञा की अप्राप्ति रहेगी।

अब पूर्वपक्षी आचार्य युवसंज्ञा में गोत्रसंज्ञा का समावेश नहीं होने पर अव्याप्ति दिखा रहे हैं-**यदि तर्हि युवेति**। यदि युवसंज्ञा में गोत्रसंज्ञा का समावेश नहीं करेंगे तो युवसंज्ञा में गोत्रसंज्ञा का आश्रय मान कर होने वाले विधि नहीं हो सकेंगे। जैसे-'गार्ग्यायणानां समूहो गार्ग्यायणकम्' में 'गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजाद्वुञ्' ४.२.३९ से समूह अर्थ में वुञ् प्रत्यय है। एवं 'गार्ग्यायणानां किं चिद् गार्ग्यायणकम्' यहाँ फगन्त से 'गोत्राचरणाद्वुञ्' ४.३.१२६ के द्वारा वुञ् विहित है, एवं 'गार्ग्यायणो भक्तिरस्य गार्ग्यायणकः' में फगन्त से 'साऽस्य भक्तिः' इस अर्थ में 'गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यो बहुलम् वुञ्' ४.३.९९ से वुञ् विहित है। उपर्युक्त सभी विधि गोत्रसंज्ञा को आश्रय मान कर प्रवृत्त हो रहे हैं। यदि युवसंज्ञा में गोत्रसंज्ञा का समावेश नहीं करेंगे तो उपर्युक्त विधि नहीं हो सकेंगे, उभसंज्ञासमावेश नहीं करने के पक्ष में यह दोष है।

एवन्तर्हि—

***राजन्याद्वुञ्मनुष्याच्च ज्ञापकं लौकिकं परम्* यदयं वुञ्विधौ राजन्यमनुष्ययोर्ग्रहणं करोति तज्ज्ञापयत्याचार्यः-'लौकिकं परं गोत्रग्रहणमि'ति। युवा च लोके गोत्रमित्युपचर्यते। किं गोत्रोऽसि माणवक!,**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गार्ग्यायणः। किं गोत्रोऽसि माणवक!, वात्स्यायनः।

उत्तरपक्षी आचार्य इस दोष का वारण करते हैं—**एवन्तर्हीति**।

'गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजाद्वुञ्' ४.२.३९ सूत्र में वुञ्विधि की कर्त्तव्यता में राजन्य और मनुष्य पद का ग्रहण किया है। यहाँ अपत्यमात्र लौकिकगोत्र का ग्रहण है, इससे प्रवराध्याय में परिगणित पुत्र, पौत्र आदि सम्पूर्ण अपत्यमात्र का ग्रहण होगा। अपत्याधिकार से अन्यत्र लौकिक गोत्र ही लिया जायेगा, पारिभाषिक नहीं। लोक में गोत्रपद से युवा का व्यवहार होता है। जैसे-लोक में किसी से पूछा जाता है-'तुम्हारा क्या गोत्र है'? वह उत्तर देता है-'गार्ग्यायणोऽहं, वात्स्यायनोऽहम्'। यहाँ प्रश्न गोत्र का है, परन्तु उत्तर गोत्रप्रत्ययान्त न दे कर युवप्रत्ययान्त दिया जा रहा है, अतः लोकदर्शन से सिद्ध है कि लोक में युवा गोत्रपद से गृहीत है। इस विषय को 'यूनि लुक्' ४.१.९० सूत्र पर भी भाष्यकार ने स्पष्ट किया है। इस तरह उभसंज्ञासमावेश न होने के पक्ष में युवा अर्थ में गोत्राश्रयविधि का न होनारूप अनिष्टापत्ति दी थी, उसका उत्तरपक्षी ने लौकिकगोत्र का ग्रहण कर समाधान कर दिया।

यद्येतज्ज्ञाप्यते-औपगवेर्यूनश्छात्रा औपगवीयाः, इञो गोत्र इत्यण्प्राप्नोति * सामूहिकेषु ज्ञापकम् * सामूहिकेषु ज्ञापकम्। यदि सामूहिकेषु ज्ञापकं गार्ग्यायणानां किं चिद्गार्ग्यायणं, गार्ग्यायणो भक्तिरस्य गार्ग्यायणकः। गोत्राश्रयो वुञ्न प्राप्नोति।

अब पूर्वपक्षी आचार्य इस ज्ञापन में अतिव्याप्ति दोष दे रहे हैं-**यद्येतज्ज्ञाप्यत इति**। यदि उपर्युक्त सूत्र ४.२.३९ में राजन्य और मनुष्यपद का ग्रहण होने से 'लौकिकं परं गोत्रम्' ऐसा ज्ञापन करेंगे तो 'उपगोरपत्यं पुमानौपगवस्तस्य युवापत्यमौपगविः, औपगवेर्यूनश्छात्रा औपगवीयाः', 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ से छ प्रत्ययान्त है। उक्त ज्ञापन के द्वारा युवार्थक इञ् का गोत्रग्रहण से ग्रहण होगा, 'इञश्च' ४.२.११२ के द्वारा इञन्त गोत्रप्रत्ययान्त से अण्प्रत्यय की आपत्ति होगी, जिससे उक्त विग्रह में औपगवीया के स्थान पर 'औपगवः' ऐसी अनिष्टापत्ति होगी।

एकदेशी आचार्य—**सामूहिकेष्विति**। राजन्य और मनुष्यग्रहण से 'लौकिकं परं गोत्रम्' यह ज्ञापन सामुहिक अर्थों में करेंगे, अर्थाद् 'गार्ग्यायणकानां समूहो गार्ग्यायणकम्' यहीं पर युवसंज्ञा से गोत्रसंज्ञा का ग्रहण होगा, अन्यत्र नहीं, इससे 'औपगवेर्यूनश्छात्रा औपगवीयाः' में 'इञश्च' ४.२.११२ से अण् की आपत्ति निरस्त हो गयी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्य आचार्य सामूहिक अर्थों में मात्र उक्त ज्ञापन करने पर अव्याप्ति दे रहे हैं-**यदि सामूहिकेष्विति**। यदि सामूहिक अर्थ में 'लौकिकं परं गोत्रग्रहणम्' यह ज्ञापन करेंगे तो 'गार्ग्यायणानां किं चिद् गार्ग्यायणकं, गार्ग्यायणो भक्तिरस्य गार्ग्यायणकः' में गोत्राश्रय वुञ् सिद्ध नहीं हो सकेगा।

*** वुञ्विधौ ज्ञापकम् * वुञ्विधौ ज्ञापकम्। यदि वुञ्विधौ ज्ञापकं शालङ्केर्यूनश्छात्राः-शालङ्काः। इञो गोत्र इत्यण्न प्राप्नोति। अस्तु तर्ह्यविशेषेण। कथम् औपगवेर्यूनश्छात्रा औपगवीयाः? इञो गोत्र इत्यण् प्राप्नोति। नैष दोषः-गोत्रेणाऽत्रेञं विशेषयिष्यामः-गोत्रे य इञ्विहित इति।**

एकदेशी आचार्य—**वुञ्विधाविति**। वुञ्विधि की कर्त्तव्यता में 'लौकिकं परं गोत्रग्रहणम्' इस ज्ञापन को मानेंगे, इससे 'गार्ग्यायणानां समूहो गार्ग्यायणकम्' में युवसंज्ञा में गोत्रसंज्ञा हो जाने से गोत्राश्रय वुञ्प्रत्यय सिद्ध हो जायेगा, एवं 'गार्ग्यायणानां किं चिद् गार्ग्यायणकं, गार्ग्यायणो भक्तिरस्य गार्ग्यायणकः' में भी युवसंज्ञा में गोत्राश्रय वुञ् सिद्ध हो जाने से अव्याप्ति निरस्त हो गयी; एवम् 'औपगवेर्यूनश्छात्रा औपगवीयाः' में वुञ्विधि नहीं होने से 'इञश्च' ४.२.११२ से अण् की आपत्ति नहीं है।

दोषवादी आचार्य—**यदि वुञ्विधाविति**। यदि उक्त ज्ञापन को वुञ्विधि में ही मानेंगे तो वुञ्विधि में ही युवसंज्ञा में गोत्रसंज्ञाविधि होगा, अन्यत्र नहीं। इससे 'शालङ्केर्यूनश्छात्राः शालङ्काः' में जहाँ इञन्त शालङ्किशब्द युवा अर्थ में है वहाँ 'इञश्च' से गोत्राश्रय अण् सिद्ध नहीं हो सकेगा। 'शालङ्काः'शब्द की व्युत्पत्ति 'यूनि लुक्' ४.१.९० सूत्र पर देखें।

सिद्धान्ती आचार्य—**अस्तु तर्ह्यविशेषेणेति**। 'लौकिकं परं गोत्रग्रहणम्' को सामान्य ज्ञापन ही रखिये।

सामान्यज्ञापनपक्ष में आक्षेपक आचार्य ने 'औपगवीयाः' में दोष दिखाया था, उसका सिद्धान्ती आचार्य वारण कर रहे हैं-**कथमौपगवेरिति**। सामान्यज्ञापनपक्ष में 'औपगवेर्यूनश्छात्रा औपगवीयाः' में 'इञश्च' ४.२.११२ से अण् की आपत्ति होगी, इसका वारण करने के लिए हम गोत्र से इञ् को विशेषित करेंगे। अर्थाद् 'गोत्र अर्थ में विहित जो इञ्, तदन्त से अण् हो' ऐसा अर्थ करने से 'औपगवीयाः' में इञन्तलक्षण अण् की प्राप्ति नहीं होगी। यहाँ इञ् यूवा अर्थ में विहित है, गोत्र अर्थ में नहीं।। **वा न्यस्मिन्सपिण्डे-**।।

जनपदशब्दात्क्षत्रियादञ् ४.१.१६८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

*** क्षत्रियादेकराजात्सङ्घप्रतिषेधार्थम् * क्षत्रियादेकराजादिति वक्तव्यम्। किं प्रयोजनम्? 'संङ्घप्रतिषेधार्थम्'। सङ्घान्मा भूत्-पञ्चालानामपत्यं, विदेहानामपत्यमिति। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। न ह्यन्तरेण बहुषु लुकं पञ्चाला इत्येतद् भवति। यस्तस्मादुत्पद्यते युवप्रत्ययः स स्यात्। युवप्रत्ययश्चेत्तस्य लुक्, तस्मिँश्चाऽलुग्भविष्यति।**

सूत्रार्थ—'जनपद=देश, तद्वाचकशब्द से तथा जनपदभूत जो क्षत्रियवाचकशब्द, उससे पर में अपत्यार्थ गम्य होने पर अञ् हो'। जैसे-'इक्ष्वाकुर्नाम देशो राजा च, तस्य राज्ञोऽपत्यम्' इस विग्रह में अञ्प्रत्यय हो कर 'ऐक्ष्वाकः' रूप है। यहाँ 'ओर्गुणः' ६.४.१४६ का बाध कर 'दाण्डिनायन-' ६.४.१७४ इस निपातन के द्वारा टि का लोप है। यह 'तस्याऽपत्यम्' ४.१.९२ से प्राप्त अण् का अपवाद है। यहाँ स्वर में विशेष होने से अञ् का विधान है।

जैसे एक क्षत्रिय पञ्चाल है वैसे बहुत क्षत्रिय भी पञ्चाल हैं। जनपद और तद्युक्त क्षत्रियवाचक पञ्चालशब्द से अपत्यार्थ में 'यञिञोश्च' ४.१.१०१ से अञ्प्रत्यय होने पर 'तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्' २.४.६२ से अञ्लुक् हो कर बहुवचनान्त 'पञ्चालाः' शब्द भी क्षत्रियवाचक है। उस बहुवचनान्त 'पञ्चालाः' से भी प्रत्यय की प्राप्ति होने पर आचार्य ने मात्र एकवचन से प्रत्ययविधान के लिए सूत्र का आरम्भ किया है-**क्षत्रियादिति**। एकराजवाचक क्षत्रियवचन से ही अपत्यार्थ में अञ्प्रत्ययविधान करना चाहिये। एकवचन से अपत्यार्थ में प्रत्ययविधान करने से द्विवचन, बहुवचन से अपत्यार्थक अञ्प्रत्यय का निषेध हो जायेगा। इससे 'पञ्चालानामपत्यं, विदेहानामपत्यम्' इत्यादि बहुवचनान्तविग्रह से अपत्यार्थक अञ्प्रत्यय नहीं हो सकेगा। वार्तिक में 'एकश्चासौ राजा च एकराजस्तस्मात्', 'राजाहस्सखिभ्यष्टच्' ५.४.९१ से समासान्त टच् हो कर 'एकराज'पद से पञ्चमी है। इससे एकक्षत्रियवाची से ही प्रत्यय होगा, अनेकसंख्यायुक्त क्षत्रियवाची से नहीं होने से बहुवचन से अप्राप्ति रहेगी।

इस सूत्र पर वार्तिककार ने 'क्षत्रियादेकराजात् संङ्घप्रतिषेधार्थम्' ऐसा वचन पढा है, उस पर आक्षेपक आचार्य प्रश्न करते हैं-**तत्तर्हीति**। तो क्या उक्त वार्तिक पढना चाहिये?, अथ वा उसके पढे विना भी उक्तार्थलाभ हो जायेगा?

उत्तरपक्षी आचार्य—**न वक्तव्यमिति**। उक्त वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं है। बहुवचन में अपत्यार्थक प्रत्यय के लुक् के विना 'पञ्चालाः' यह रूप नहीं हो सकेगा। पञ्चालापत्यों में एकवचन में ही पञ्चालशब्द रूढ है, बहुवचन में उसके रूढ होने में कोई प्रमाण नहीं है, अतः 'पञ्चालानामपत्यं, विदेहानामपत्यम्'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस बहुवचनान्त से प्रत्यय की प्राप्ति नहीं होने से प्रत्ययप्राप्ति नहीं है, अतः स्वभावाद् एकवचन से ही प्रत्यय प्राप्त होगा, उसके लिए अतिरिक्तवचन पढने की आवश्यकता नहीं है।

पूर्वपक्षी आचार्य—**यस्तस्मादिति**। यदि शब्दस्वभावाद् एकवचन से ही गोत्रापत्यार्थक प्रत्यय होगा तो जो युवसंज्ञक प्रत्यय हैं वे बहुवचन से प्राप्त होंगे?

उत्तरपक्षी—**युवप्रत्ययश्चेदिति**। यदि बहुवचनान्त से युवप्रत्यय होंगे तो उसका भी 'ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः' २.४.५८ से लुक् होगा तथा गोत्र अर्थ में जो प्रत्यय हो रहे हैं उनका 'गोत्रेऽलुगचि' ४.१.८९ से अलुक् हो जायेगा। यहाँ पर भाष्यकार ने गोत्र अर्थ में विहित प्रत्यय का अलुग्विधान कर दिया, इससे सर्वथा 'पाञ्चालः' यही रूप होना चाहिये, फिर वार्तिकारम्भ का क्या फल हो सकता है?, तो इस पर वार्तिककार का अभिप्राय इस प्रकार समझना चाहिये-यदि वार्तिक का आरम्भ नहीं किया जायेगा तो जनपद अर्थ में शब्दस्वभाववश नित्य बहुवचनान्त पञ्चाल शब्द के होने से तथा जनपदवाची नित्यबहुवचनान्त पञ्चालशब्द का समानशक्ति वाला क्षत्रियवाची पञ्चालशब्द के भी नित्य बहुवचनान्त होने से बहुवचन से ही प्रत्यय होगा, एकवचन से नहीं, अतः एकवचन से प्रत्ययविधानार्थ वार्तिकारम्भ है। परन्तु भाष्यकार के मत में जनपदसमानशब्दत्व प्रातिपदिक गृहीत है, सुबन्त नहीं, अतः वार्तिक के अभावपक्ष में भी एकवचन से जब प्रत्यय की प्राप्ति हो जा रही है, तब उसी के लिए अतिरिक्त वचन पढना व्यर्थ है।

इदं तर्हि-क्षौद्रकाणामपत्यं, मालवानामपत्यमिति। अत्रापि क्षौद्रक्यो मालव्य इति। नैतत्तेषां दासे वा भवति कर्मकरे वा। किं तर्हि? तेषामेव कस्मिँश्चत्। यावता तेषामेव कस्मिँश्चिद्यस्तस्मादुत्पद्यते युवप्रत्ययः स स्यात्। युवप्रत्ययश्चेत्तस्य लुक्तस्मिँश्चाऽलुग्भविष्यति।

वार्तिक मानने के पक्ष में दूसरा प्रयोजन देते हैं-**इदं तर्हीति**। क्षौद्रक और मालव राजा के भृत्य क्षत्रिय भी क्षौद्रक और मालव कहे जाते हैं। 'क्षौद्रकाणामपत्यं, मालवानामपत्यम्' में क्षौद्रक और मालव शब्दस्वभावाद् बहुवचन में भी शक्त है। उससे अपत्यापत्यवत् सम्बन्ध नहीं होने से गोत्राश्रय और युवाश्रय कार्य प्राप्त नहीं हैं, अतः अनिष्यमाण भी 'वृद्धेत्कोसलादाञ्ञ्यङ्' ४.१.६९ से तद्राजसंज्ञक ञ्यङ् प्राप्त होगा।

उत्तरपक्षी—**अत्रापीति**। यहाँ ञ्यङ् अनिष्यमाण नहीं है, अपि तु इष्ट है। 'क्षौद्रक्यः, मालव्यः' यही रूप होगा।

अन्य आचार्य—**नैतत्तेषामिति**। क्षौद्रक और मालवशब्द प्रधानशक्ति से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्षौद्रक और मालव में शक्त है तथा गौणशक्ति से भृत्य अथ वा कर्मचारी अर्थ में शक्त है, अतः दास अथ वा कर्मचारी में प्रधानवृत्ति नहीं होने पर उससे युवापत्य अर्थ में ञ्यङ् नहीं होगा, अपि तु क्षौद्रक और मालव का ही युवापत्य अर्थ वाच्य होने पर युवापत्यार्थक ञ्यङ् प्रत्यय होगा। युवप्रत्यय का 'तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्' २.४.६२ से लुक् है, एवं गोत्राश्रय प्रत्यय अञ् का 'गोत्रऽलुगचि' ४.१.८९ से निषेध होने के कारण अलुक् होगा।

अथ क्षत्रियग्रहणं किमर्थम्? इह मा भूद्-विदेहो नाम ब्राह्मणस्तस्याऽपत्यं वैदेहिः *क्षत्रियग्रहणानर्थक्ये चोक्तम् * क्षत्रियग्रहणानर्थक्ये चोक्तम्। किमुक्तम्? एकं तावदुक्तं-'बाह्वादिप्रकृतिषु येषां दर्शनं गोत्रभावे लौकिके ततोऽन्यत्र तेषां प्रतिषेध' इति।

पूर्वपक्षी—**अथेति**। 'क्षत्रियादेकराजात् संङ्घप्रतिषेधार्थम्' के स्थान पर 'एकराजात् सङ्घप्रतिषेधार्थम्' पढा जाये, तब भी पूर्वोक्त सभी लक्ष्य सिद्ध हो जा रहे हैं, पुनः आचार्य ने जो क्षत्रियपद का ग्रहण किया है, उसका क्या प्रयोजन है?

उत्तरपक्षी—**इह मा भूदिति**। यदि क्षत्रियपद का ग्रहण नहीं करते तो जो कोई भी राजा एकवचन में गृहीत होता तथा उससे अपत्य अर्थ वाच्य होने पर अञ्प्रत्यय की आपत्ति होती। जैसे-'विदेहनामक ब्राह्मण राजा का अपत्य' इस अर्थ में अञ् न हो , इसके लिए क्षत्रियपद का ग्रहण है।

सिद्धान्ती आचार्य क्षत्रियग्रहण का वैयर्थ्यप्रतिपादन करते हैं—**क्षत्रियग्रहणेति**। यहाँ क्षत्रियग्रहण व्यर्थ है। इस विषय में मैं 'बाह्वादिभ्यश्च' ४.१.९६ सूत्र पर कह आया हूँ-' बाह्वादिप्रकृति में जिनका पाठ है उनको **लौकिके**=लोक में प्रसिद्ध, **गोत्रभावे**=संज्ञाकारित्व अथ वा आदिपुरुषत्व में ही प्रत्ययविधि कहना चाहिये; **ततोऽन्यत्र**=लोक में प्रसिद्ध संज्ञाकारित्व अथ वा आदिपुरुषत्व से भिन्न अर्थ में यदि वे शब्द शक्त हों तो वहाँ प्रत्ययविधि का प्रतिषेध कहना चाहिये'। इससे लोकप्रसिद्ध विदेहनामक राजा से ही अपत्य अर्थ में अञ् होगा। उससे भिन्न ब्राह्मण अर्थ में शक्त विदेहपद से अञ् का निषेध भी कहा जायेगा। इस तरह ब्राह्मण अर्थ में शक्त विदेह पद से इञ् हो कर 'वैदेहिः' रूप होगा।

अपरमुक्तम्-'अनभिधानादि'ति *क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदशब्दात्तस्य राजन्यपत्यवत् * 'क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदशब्दात्तस्य राजन्यपत्यवत् प्रत्ययो भवती'ति वक्तव्यम्। पञ्चालानां राजा पाञ्चालः *पूरोरण् * पूरोरण्वक्तव्यः-पौरवः *पाण्डोर्ड्यण् * पाण्डोर्ड्यण्वक्तव्यः-पाण्ड्यः।। जनपदशब्दात्क्षत्रियादञ्।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ च ब्राह्मण अर्थ का वाचक विदेह पद से अपत्यार्थ में अञ्प्रतिषेध का दूसरा भी हेतु बताया जा चुका है-'अनभिधानात्'। लोक में शब्द अपने अर्थ में शक्त होता है, उसी प्रधान अर्थ में ही प्रत्ययविधान करना चाहिये, अन्यत्र गौण अर्थ में नहीं। इसे श्रीभर्तृहरिजी ने भी बताया है—

अभिव्यक्तपदार्था ये प्रसिद्धा लोकविश्रुताः।
शास्त्रार्थस्तेषु कर्त्तव्यश्शब्देषु न तदुक्तिषु।।

अतिदेश वार्तिक—**क्षत्रियसमानशब्दादिति**। क्षत्रिय अर्थ में शक्त शब्द का समानशब्द यदि जनपद अर्थ में हो तो तादृशजनपद अर्थ का वाचक क्षत्रियसमान-षष्ठ्यन्तशब्द से 'राजा'अर्थ में अपत्यवत् प्रत्यय कहना चाहिये। इससे अपत्य अर्थ में जैसे प्रत्यय होता है वैसे अतिदेश होने से 'तस्य राजा' इस अर्थ में भी प्रत्यय होगा। जैसे-पञ्चाल क्षत्रिय भी हैं तथा तत्समान जनपदवाची भी पञ्चालशब्द है। 'पञ्चालानां राजा' इस अर्थ में अतिदेशवशाद् अञ्प्रत्यय हो कर 'पाञ्चालः' रूप होगा। **पुरोरणिति**। पुरु पद से अपत्य अर्थ में अण् कहना चाहिये-'पुरोरपत्यं पौरवः'। यहाँ प्राग्दीव्यतीय अण् सिद्ध होने पर भी तद्राजसंज्ञार्थ 'पुरोरण्' वार्तिक का आरम्भ है। यहाँ पुरुशब्द जनपदवाची नहीं है, अन्यथा 'द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण्' ४.१.१७० से ही अण् सिद्ध होने से वचन व्यर्थ होता। **पाण्डोर्ड्यण्**=पाण्डुशब्द से अपत्य अर्थ में ड्यण् प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे-'पाण्डोरपत्यं पुमान् पाण्यः'। यहाँ डित्त्वसामर्थ्य से टिलोप है। 'बाह्वादिप्रभृतिषु येषां दर्शनं लौकिके गोत्रभावे' ४.१.९६ इस वचन के अनुसार युधिष्ठिरादि पिता पाण्डु का ग्रहण नहीं होने से तद्वाची से अण् हो कर 'पाण्डवः' यही रूप होगा।। **जनपद-**।।

द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण् ४.१.१७०

*** अणोऽञ्ड्ण्येञो विप्रतिषेधेन * अणो ञ्यङ्-ण्य-इञित्येते विधयो भवन्ति विप्रतिषेधेन। अणोऽवकाशः-आङ्गो, वाङ्गः। ञ्यङोऽवकाशः-आम्बष्ठ्यः, सौवीर्यः। इहोभयं प्राप्नोति-दार्व्यः। ण्यस्यावकाशः-निचक-नैचक्यः। अणः स एव। इहोभयम् प्राप्नोति-नीप- नैप्यः। इञोऽवकाशः-आजमीढिः, आजक्रन्दिः। अणः स एव। इहोभयं प्राप्नोति-बुध-बौधिः। ञ्यङ्ण्येञो भवन्ति विप्रतिषेधेन।**

यह सूत्र 'जनपदशब्दात्क्षत्रियादञ्' ४.१.१६८ से विहित अञ् का अपवाद है।

सूत्रार्थ—'द्व्यच्, मगध, कलिङ्ग और सूरमसशब्द से अपत्यार्थ में अण्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रत्यय हो'। जैसे-द्व्यच्-आङ्गः, वाङ्गः, सौघ्नः। द्व्यच्। मागधः। सौरमसः। यहाँ भी 'राजनि' इस अर्थ में अपत्यवत् प्रत्यय समझना चाहिये।

सिद्धान्त वार्तिक—**अणोऽञ्यङ्ण्येन इति**। पर विप्रतिषेध के द्वारा 'वृद्धेत्कोसलादाञ्ञ्यङ्' ४.१.१७१, 'कुरुनादिभ्यो ण्यः' ४.१.१७२ और 'साल्वावयवप्रत्यग्रकलकूटाश्मकादिञ्' ४.१.१७३ से 'द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण्' ४.१.१७० का बाध होता है। 'आङ्गः, वाङ्गः' में अण् चरितार्थ है तथा 'आम्बष्ठ्यः, सौवीर्यः' में ञ्यङ् चरितार्थ है। अन्यत्रान्यत्र लब्धावकाश अण् और ञ्यङ् का एककालावच्छेदेन 'दार्व्यस्यापत्यं दार्व्यः' में प्राप्ति हो रही है। परविप्रतिषेध के द्वारा ञ्यङ् से अण् का बाध हो जायेगा। 'निचकस्यापत्यं नैचक्यः' में ण्य चरितार्थ है तथा 'आङ्गः, वाङ्गः' में अण् चरितार्थ है। 'नीपस्यापत्यं नैप्यः' में ण्य और अण् दोनों की सह प्रवृत्ति हो रही है। परविप्रतिषेध से ण्य के द्वारा अण् का बाध होता हो गया। 'अजमीढस्यापत्यम् आजमीढिः, अजक्रन्दस्यापत्यम् आजक्रन्दिः' में इञ् चरितार्थ है तथा 'आङ्गः, वाङ्गः' में अण् चरितार्थ है। अन्यत्रान्यत्र लब्धावकाश अण् और इञ् का 'बुधस्यापत्यं बौधिः' में सह प्राप्ति है। परविप्रतिषेध के द्वारा ञ्यङ्, ण्य और इञ् से अण् का बाध होता है।

*** ञ्यङः कुरुनादिभ्यो ण्यः * ञ्यङः कुरुनादिभ्यो ण्यो भवति विप्रतिषेधन। ञ्यङोऽवकाशः-आवन्त्यः, कौन्त्यः। ण्यस्य स एव। निषधो नाम जनपदस्तस्मादुभयं प्राप्नोति ण्यो भवति विप्रतिषेधेन-नैषध्यः।।** द्व्यञ्मगध-।।

सिद्धान्त वार्तिक—**ञ्यङः कुरुनादिभ्य इति**। परविप्रतिषेध के द्वारा 'कुरुनादिभ्यो ण्यः' ४.१.१७२ से 'वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्' ४.१.१७० का बाध होता है। इसे उदाहरणों से स्पष्ट करते हैं- **ञ्यङोऽवकाश इति**। 'अवन्तेरपत्यं पुमानावन्त्यः, कुन्तेरपत्यं पुमान् कौन्त्यः' में ञ्यङ् चरितार्थ है तथा 'निचकस्यापत्यं नैचक्यः' में ण्य चरितार्थ है। निषध नाम का जनपद है, उससे 'तस्य राजनि' इस अर्थ में षष्ठ्यन्त निषध पद से ञ्यङ् और ण्य दोनों ही प्राप्त हैं। परविप्रतिषेध के द्वारा ण्य से ञ्यङ् का बाध होता है-'नैषध्यः।। **द्व्यञ्मगध-।।**

कम्बोज्जाल्लुक् ४.१.१७५

*** कम्बोजादिभ्यो लुग्वचनं चोलाद्यर्थम् * कम्बोजादिभ्यो लुग्वक्तव्यः। किं प्रयोजनम्? 'चोलाद्यर्थम्'। चोलः शकः केरलो यवनः।।** कम्बोज्जाल्लुक्।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ 'ते तद्राजाः' ४.१.७४ से अनुवृत्त प्रथमाबहुवचनान्त 'तद्राजाः' पद का षष्ठी-एकवचनान्त विपरिणाम होता है।

सूत्रार्थ—'कम्बोजपद से पर में तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का लुक् हो'। जैसे-कम्बोज-नामक जनपद, 'तस्य कम्बोजस्य राजा कम्बोजः' यहाँ 'जनपदशब्दात्क्षत्रियादञ्' ४.१.१६८ से विहित अञ् का प्रकृत सूत्र से लुक् हो गया।

सिद्धान्त वार्तिक—**कम्बोजादिभ्य इति**। 'कम्बोजाल्लुक्' सूत्र के स्थान पर 'कम्बोजादिभ्यो लुक्' ऐसा गणपाठ करना चाहिये। इसका प्रयोजन-'चोलनाम जनपदस्तस्य राजा चोलः, शकनाम जनपदस्तस्य राजा शकः' में द्व्यन्लक्षण अञ् का लुक् एवं 'केरलो, यवनः' में अण् का लुक् है।। **कम्बोज्जाल्लुक्**।।

अतश्च ४.१.१७७

इह कस्मान्न भवति-आम्बष्ठ्या सौवीर्येति। 'अत' इत्युच्यते, नैषोऽकारः। तदन्तविधिना प्राप्नोति। अत उत्तरं पठति- *अत इति तदन्ताऽग्रहणमवन्त्यादिभ्यो लुग्वचनात्* अत इति तदन्तस्याऽग्रहणम्। किं कारणम्? 'अवन्त्यादिभ्यो लुग्वचनात्'। यदयम् अवन्त्यादिभ्यो लुकं शास्ति तज्ज्ञापयत्याचार्यो-'नात्र तदन्तविधिर्भवती'ति।

अनुवृत्त 'तद्राजाः' ४.१.१७४ का षष्ठी-एकवचन में विपरिणाम है। 'तद्राजस्य' का 'अतः' विशेषण है। 'स्त्रियाम्' ४.१.१७६ का अनुवर्त्तन है।

सूत्रार्थ—'स्त्रीत्व गम्य होने पर तद्राजसंज्ञक अकार का लुक् हो'। जैसे-'सूरसेनस्यापत्यं स्त्री सूरसेनी' यहाँ 'जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्' ४.१.१६८ से विहित अञ् का 'अतश्च' ४.१.१७७ से लुक्, प्रत्ययलक्षण के द्वारा अपत्यप्रत्ययान्त मान कर 'जातेरस्त्रीविषयाद् अयोपधात्' ४.१.६३ से जातिलक्षण ङीष् है। इसी तरह 'मद्रस्यापत्यं स्त्री मद्री' में भी समझें। ङीष्विधि में अङ्गकार्य का अभाव होने से यहाँ 'न लुमताङ्गस्य' १.१.६३ की प्रवृत्ति नहीं हो रही है।

यहाँ तदन्त मान कर पूर्वपक्षी आचार्य प्रश्न करते हैं—**इह कस्मान्नेति**। 'आम्बष्ठस्यापत्यं स्त्री आम्बष्ठ्या, सौवीरस्यापत्यं स्त्री सौवीर्या' में 'वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्' ४.१.१७१ से ञ्यङ् एवं टाप् है। यहाँ स्त्रीत्व गम्य है। तद्राज का अकारलुक् क्यों नहीं होता है?

अन्य आचार्य—**'अत' इत्युच्यत इति**। आचार्य 'अतश्च' सूत्र के द्वारा अत् का लुक् कह रहे हैं, ञ्यङ् प्रत्यय अकार नहीं है, अतः उसका लुक् नहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होता है।

पूर्वपक्षी आचार्य 'अत्' को 'तद्राजसंज्ञक' का विशेषण मान कर कहते हैं- **तदन्तविधिर्नेति**। 'अतः' यह पद 'तद्राजस्य' में विशेषण है; अतः येन विधिस्तदन्तस्य' १.१.७२ के द्वारा अदन्त तद्राजसंज्ञक एवम् अकाररूप तद्राजसंज्ञक का भी लुक् होने से 'आम्बष्ठ्या, सौवीर्या' में ञ्यङ् का लुक् प्राप्त है।

सिद्धान्ती आचार्य—**अत उत्तरमिति**। 'स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च' ४.१.१७४ सूत्र में आचार्य ने अवन्ति और कुरु पद से पर में तद्राजसंज्ञक का लुग्विधान किया है। यदि 'अतश्च' सूत्र में तदन्त अर्थ का ग्रहण किया जाता तो 'अवन्तेः कुरोर्वाऽपत्यं स्त्री राज्ञी वा' इस अर्थ में 'वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्' ४.१.१७१ से विहित ञ्यङ् का 'अवन्ती कुरुः' में लुक् हो जाता, पुनः अवन्ति और कुरु पद का ग्रहण व्यर्थ पड कर ज्ञापन करता है-'अतश्च' सूत्र में तदन्तार्थ का ग्रहण नहीं होता है'। इससे 'आम्बष्ठ्या, सौवीर्या' में तदन्त अदन्त य प्रत्यय का लुक् नहीं होता है।

*** पर्श्वादिभ्यो लुग्वक्तव्यः * पर्शूः। रक्षाः। असुरी *** यौधेयादिप्रतिषेधो ज्ञापकः पर्श्वादिलुकः *** यदयं 'न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्य' इति प्रतिषेधं शास्ति तज्ज्ञापयत्याचार्यो 'भवति पर्श्वादिभ्यो लुगि'ति।।** अतश्च।।

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये
चतुर्थाऽध्यायस्य प्रथमे पादे चतुर्थमाह्निकम्

●

एकदेशी वार्तिक—**पर्श्वादिभ्यो लुगिति**। पर्श्वादि से पर में अत् का लुक् कहना चाहिये। 'पर्शोरपत्यं स्त्री पर्शूः' में 'द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण्' ४.१.१७० से विहित अण् का 'अतश्च' से लुक् है। यहाँ 'पर्श्वादियौधेयादिभ्यामणञौ' ५.३.११७ से स्वार्थ में विहित अण् भिन्नप्रकरणस्थ है, उसका 'अतश्च' से लुक् प्राप्त नहीं है, अतः उसका लुग्विधानार्थ 'पर्श्वादिभ्यो लुक्' वार्तिक का विधान है। अण्लुक् होने पर 'ऊङुतः' ४.१.६६ से स्त्रीत्व में ऊङ्प्रत्यय है। **रक्षाः**=रक्षसः=क्षत्रियविशेषस्यापत्यं स्त्री रक्षाः' में पूर्ववद् अण्द्वय का लुक् होने पर स्त्रीत्ववाच्य में सुलोप, उपधादीर्घ, स् को रुत्व, विसर्ग हो कर 'रक्षाः' ऐसा रूप है। **असुरी**='असुरस्यापत्यं स्त्री असुरी' में 'जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्' ४.१.१६८ से विहित अञ् का लुक्, उसके बाद स्वार्थ में विहित अण् का 'पर्श्वादिभ्यो लुक्' से लुक् है, उसके बाद जातिलक्षण ङीष् हो कर 'असुरी' रूप है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उक्त वार्तिक का सिद्धान्ती आचार्य खण्डन करते हैं—**यौपधेयादिप्रतिषेध इति**। पञ्चमाध्याय में 'ञ्यादयस्तद्राजाः' ५.३.११९ से तद्राजसंज्ञक विहित है। यदि 'अतश्च' ४.१.१७७ सूत्र के द्वारा पञ्चमाध्यायस्थ तद्राजसंज्ञक का लुक् नहीं होता तो आचार्य 'न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः' ४.१.१७८ से अञ्लुक् का निषेध न करते। चूँकि आचार्य अञ्लुक् का निषेध कर रहे हैं, अतः इससे ज्ञापित होता है कि पर्श्वादि से पर में अकारलुक् होता है, अतः इसके लिए पृथग्वचन 'पर्श्वादिभ्यो लुग्वक्तव्यः' व्यर्थ है।। **अतश्च**।।

श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य
चतुर्थ अध्याय प्रथम पाद चतुर्थ आह्निक पर
डॉ. हरिनारायण तिवारी द्वारा रचित
'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

प्रथमपाद भी पूर्ण हुआ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

❀ द्वितीये पादे प्रथममाह्निकम् ❀

तेन रक्तं रागात् ४.२.१

'रागादि'ति किमर्थम्? देवदत्तेन रक्तं वस्त्रम् * रक्तादीनामर्थाभिधाने प्रत्ययविधानादुपाध्यानर्थक्यम् * रक्तादीनामर्थाभिधाने प्रत्ययविधानादुपाधिग्रहणम् अनर्थकम्। न ह्यरागादुत्पद्यमानेन प्रत्ययेनाऽर्थस्याऽभिधानं स्यात्। अनभिधानात्तत उत्पत्तिर्न भविष्यति।। तेन रक्तं।।

यहाँ से तद्धितरक्ताद्यर्थप्रकरण का निरूपण करते हैं। 'प्राग्दीव्यतोऽण्' ४.१.८३ से विधेय अण् पद की अनुवृत्ति है। 'रज्यते=वर्णान्तरं प्राप्यतेऽनेन' इस अर्थ में रञ्ज रागे धा.पा.११६७ धातु से करण में घञ्प्रत्यय, 'घञि च भावकरणयोः' ६.४.२७ से नलोप, 'चजोः कु घिण्यतोः' ७.३.५२ से कुत्व एवम् उपधावृद्धि हो कर रागशब्द निष्पन्न है। यहाँ रागपद से रञ्जनसाधन द्रव्य कहा गया है। 'तेन' यह सामान्यनिर्देश है, अतः सूत्रार्थ होगा-'तेन रक्तं=वर्णान्तरं प्राप्तम्' इस अर्थ में रागात्=रञ्जनद्रव्यवाचक तृतीयान्त से अण् प्रत्यय हो'। जैसे-कषायेण रक्तं वस्त्रं काषायम्। मञ्जिष्ठा=रञ्जकद्रव्यविशेषस्तया रक्तं वस्त्रं माञ्जिष्ठम्।

प्रश्नभाष्य—**रागादितीति**। सूत्र में 'रागात्' पद का ग्रहण क्यों किया गया है? 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ का अधिकार होने से 'तेन द्रव्यम्' इस अर्थ में तृतीयान्तप्रातिपदिक से अण् सिद्ध होने से 'काषायं वस्त्रं, माञ्जिष्ठं वस्त्रम्' की सिद्धि हो जायेगी, इस तरह इष्टसिद्धि होने पर भी 'रागात्' पद का ग्रहण क्यों किया गया है? 'रागात्'पद के अभाव में मात्र 'तेन रक्तम्' इतना ही सूत्र रखने पर इसकी अतिव्याप्ति दिखाते हैं-**देवदत्तेनेति**। 'देवदत्तेन रक्तं वस्त्रम्' तृतीयान्त से 'रक्तम्' अर्थ में अनिष्ट प्रत्यय प्राप्त होगा, उसका वारण करने के लिए **'रागात्**=रञ्जकात्' पद दिया गया है।

सिद्धान्ती आचार्य 'रागात्' पद का खण्डन करते हैं—**रक्तादीनामिति**। चूँकि प्रयुक्तशब्दों का साधु और असाधुज्ञान के लिए शास्त्र का आरम्भ है; अतः रक्त आदिशब्दों का जो अर्थ है वही अर्थ यदि लौकिकप्रयोग में प्रत्यय के द्वारा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहा जा रहा है, तब प्रत्यय होगा, अन्यथा नहीं। 'देवदत्तेन रक्तं वस्त्रम्' इस वाक्य से जिस अर्थ का बोध होता है उस अर्थ का ज्ञान 'दैवदत्तं वस्त्रम्' इस वाक्य से नहीं हो रहा है; अपि तु इस वाक्य से स्वस्वामिभाव ही ज्ञात हो रहा है; अत एव अनभिधान होने से 'देवदत्तेन रक्तं वस्त्रम्' में प्रत्यय नहीं होगा। एवम् अनभिधान होने से 'कोपेन रक्तं वस्त्रम्' में वर्ण अर्थ में तथा 'रूपेण कान्तायां रक्तम्' में अभिष्वङ्ग अर्थ में प्रत्यय नहीं होता है।। **तेन रक्तं-**।।

लाक्षारोचनाट्ठक् ४.२.२

* ठञ्प्रकरणे शकलकर्दमाभ्यामुपसंख्यानम् * **ठञ्प्रकरणे शकलकर्दमाभ्यामुपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। शाकलिकं कार्दमिकम्** * नील्या अन् * **नील्या अन्वक्तव्यः। नील्या रक्तं नीलम्** * पीतात्कन् * **पीतात्कन्वक्तव्यः। पीतेन रक्तं वस्त्रं पीतकम्।**

यहाँ अण् का अपवाद ठग्विधान किया जा रहा है। 'लाक्षा च रोचना चेत्यनयोः समाहारो लाक्षारोचनं, तस्माल्लाक्षारोचनात्'।

सूत्रार्थ—'तेन रक्तम्' इस अर्थ में तृतीयान्त लाक्षा और रोचना पद से ठक् प्रत्यय हो'। जैसे-लक्षया रक्त इति लाक्षिकः। रोचनया=गोरोचनया रक्त इति रौचनिकः।

सिद्धान्त वार्तिक—**ठक्प्रकरण इति**। ठक्प्रकरण में शकल और कर्दम पद से भी ठक् कहना चाहिये। शकलं=रागद्रव्यविशेषस्तेन रक्तं शाकलिकम्। कर्दमो=रागद्रव्यविशेषस्तेन रक्तं कार्दमिकम्। **नील्या इति**–'तेन रक्तम्' इस अर्थ में तृतीयान्त नील पद से अन् प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे-नीलेन रक्तं नीलम्। **पीतात्कन्निति**। 'तेन रक्तम्' इस अर्थ में तृतीयान्त पीत पद से कन् प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे-पीतेन रक्तमिति पीतकम्।

* पीतकाद्वा लुक् * **'पीतक'शब्दो वा प्रकृत्यन्तरं तस्माल्लुग्वक्तव्यः** * हरिद्रामहारजनाभ्यामञ् * **हरिद्रामहारजनाभ्यामञ्वक्तव्यः हारिद्रम्। माहारजनम्। 'रागादि'त्युच्यते तत्रेदं न सिध्यति,-हारिद्रौ कुक्कुटस्य पादौ' 'काषायौ गर्दभस्य कर्णा'विति। उपमानात्सिद्धम्। हारिद्राविव हारिद्रौ। काषायाविव काषायौ।।** लाक्षारोचना।।

पीतकाद्वेति। कन्प्रत्यय की अन्य प्रकृति स्वार्थिक कन् प्रत्ययान्त पीतक भी है; उससे विहित कन् का लुक् कहना चाहिये। यहाँ 'वा'पद लुक् के साथ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्वित न हो कर पीतक के साथ अन्वित है। पीतकेन रक्तमिति पीतकं वस्त्रम्। **हरिद्रामहारजनाभ्यामिति**। 'तेन रक्तम्' इस अर्थ में हरिद्रा और महारजना तृतीयान्त से अञ् कहना चाहिये। हरिद्रया रक्तमिति हारिद्रं वस्त्रम्। महारजनया रक्तमिति माहारजनं वस्त्रम्।

आक्षेपभाष्य—**रागादिति**। 'तेन रक्तं रागात्' ४.२.१ में 'रागात्' पद पढा गया है। उसकी अनुवृत्ति 'हरिद्रामहारजनाभ्यामञ्' में होगी। इससे रञ्जनसाधनद्रव्य से ही तृतीयान्त से प्रत्यय होगा। 'हारिद्रौ कुक्कुटस्य पादौ, काषायौ गर्दभस्य कर्णौ' में रञ्जनसाधनद्रव्य हारिद्र, काषाय नहीं है; अपि तु प्रकृति से ही हारिद्र, काषाय है; अतः इसकी सिद्धि नहीं हो पा रही है।

उत्तरभाष्य—**उपमानादिति**। रूपसादृश्यनिमित्त होने से इसकी सिद्धि हो जायेगी। 'हरिद्रा से रक्त हारिद्र की तरह, एवं कषाय से रक्त काषाय की तरह' ऐसा उपमान से उक्त रूप सिद्ध हो जायेगा।। **लाक्षारोजनाट्ठक्**।।

नक्षत्रेण युक्तः कालः ४.२.३

अयुक्तोऽयं निर्द्देशः। योगो हि नाम भवति ययोः सन्निकर्षविप्रकर्षौ स्तः। न च कालनक्षत्रयोः सन्निकर्षविप्रकर्षौ स्तः। नित्ये हि कालनक्षत्रे। कथं तर्हि निर्द्देशः कर्त्तव्यः? * नक्षत्रेण चन्द्रमसो योगात् तद्युक्तात्काले प्रत्ययविधानम् *** 'नक्षत्रेण चन्द्रमसो योगात् तद्युक्तात्काले प्रत्ययविधानं भवती'ति वक्तव्यम्। पुष्येण युक्तः पुष्ययुक्तः, पुष्ययुक्तश्चन्द्रमा अस्मिन्काले पौषमहः। पौषी रात्रिः।**

सूत्रार्थ—'नक्षत्रेण युक्तः कालः' इस अर्थ में प्रथमोच्चरित नक्षत्रवाचकशब्द से प्रग्दीव्यतीय प्रत्यय हो'। यहाँ नक्षत्रशब्द से नक्षत्रयुक्त चन्द्रमा विवक्षित है। जैसे-पुष्येण युक्तं पौषं दिनम्। पौषी रात्रिः। यहाँ पुष्यशब्द से अण्, 'तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोपः' वा.४२०० से यलोप है। 'टिड्ढाणञ्-'४.१.१५ से ङीप् है। सूत्र में नक्षत्र पद देने से 'चन्द्रेण युक्ता रात्रिः' में अण् नहीं हुआ; एवं कालपद देने से 'पुष्येण युक्तश्चन्द्रमाः' में अण् नहीं हुआ।

सूत्रनिर्द्देश नहीं मानने वाले आचार्य—**अयुक्तोऽयमिति**। अप्राप्तिपूर्विकाप्राप्ति का नाम योग है; वह उन्हीं दो वस्तुओं में होता है जिनमें **सन्निकर्ष**=संयोग और **विप्रकर्ष**=वियोग होता है। काल और नक्षत्र इन दोनों के नित्य होने से इन दोनों का **सन्निकर्ष**=संयोग और विप्रकर्ष=वियोग नहीं है। अब यदि यह कहा जाये कि चन्द्रमा के साथ **योग**=संयोग होने से ही लोक में पुष्य आदि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का नक्षत्रव्यवहार देखे जाने से नक्षत्रत्व होता है, चन्द्रमा के वियोग में नहीं; अतः नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर **तद्युक्तात्**=नक्षत्रयुक्त कालवाच्य होने पर प्रत्ययविधान कहना चाहिये। चन्द्र और नक्षत्र के अव्यापक होने से कादाचित्क योग है। परन्तु काल नित्य और विभु है; अतः उसका योग नहीं हो सकता है। जैसे-'पुष्येण युक्तः पुष्ययुक्तः, पुष्ययुक्तश्चन्द्रमा अस्मिन्नहनि इति पौषमहः'। यहाँ पुष्ययुक्तचन्द्रवाची से ही प्रत्ययविधान है।

*** तत्रोत्तरपदलोपः * तत्रैवं सति उत्तरपदलोपो वक्तव्यः, पुष्ययुक्तशब्दाद्धि प्रत्ययो विधीयते *** लिङ्गवचनानुपपत्तिश्च *** लिङ्गवचनयोश्चानुपपत्तिः, चन्द्रमसो यल्लिङ्गं वचनं च तद्युक्तवद्भावेन प्राप्नोति *** कालयोगात्सिद्धम् *** कालयोगात् सिद्धमेतत्। अस्तु 'नक्षेत्रेण युक्तः काल' इत्येव।**

अन्य आचार्य—**तत्रोत्तरपदेति**। तद्युक्त से काल अर्थ वाच्य होने पर प्रत्ययविधान में उत्तरपद का लोप कहना होगा। इसके लिए इन सभी का शाकपार्थिवादिगण में पाठ नहीं होने से या तो इनका गणपाठ में परिगणन करना होगा, अथवा आकृतिगण मान कर ग्रहण करना होगा।

इसी पक्ष में आचार्य अन्य अनुपपत्ति दे रहे हैं—**लिङ्गवचनेति**। तद्युक्त से प्रत्ययविधान करने पर लिङ्ग और वचन की अनुपपत्ति होगी। मघायुक्तशब्द से प्रत्यय करने से प्रत्ययलुक् होने पर नित्यबहुवचनान्त एवं नित्यस्त्रीलिङ्ग मघा पद में स्त्रीत्व और बहुत्व सिद्ध नहीं हो सकेगा; अपि तु चन्द्रमा का जो लिङ्ग और वचन है 'लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने' १.२.५१ से युक्तवद्भाव के द्वारा वही लिङ्ग और वचन प्राप्त होगा।

उत्तरपक्षी आचार्य इस अनुपपत्ति का निवारण करते हैं—**कालयोगादिति**। पुष्य आदि के समीपस्थ=पुष्यादिपदबोध्य होने से चन्द्रमा के साथ काल का ही योग लिया जायेगा; इससे लक्ष्यसिद्धि हो जायेगी। सूत्र का पोषण करते हैं-**अस्त्विति**। 'नक्षत्रेण युक्तः कालः' ही सूत्र रखिये।

ननु चोक्तम्-'अयुक्तोऽयं निर्देशो योगो हि नाम भवति ययोः संन्निकर्षविप्रकर्षौ स्तो, न च कालनक्षत्रयोः संन्निकर्षविप्रकर्षौ स्तो, नित्ये हि कालनक्षत्रे' इति। नैष दोषः-पुष्यसमीपगते चन्द्रमसि 'पुष्य'शब्दो वर्त्तते। तेन तत्संज्ञकेन कालो विशेष्यते * तथा च **सम्प्रत्ययः * एवं च कृत्वा लोके सम्प्रत्ययो भवति। पुष्यसमीपगते**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चन्द्रमसि वक्तारो भवन्ति-'पुष्येणाऽद्य'। 'मघाभिरद्ये'ति।। नक्षत्रेण युक्तः कालः।।

सूत्रपक्ष में आप ने दोष दिया था-'यह निर्देश उचित नहीं है, जिनका संयोग और वियोग होता है, उन्हीं का योग होता है, नित्य होने से काल और नक्षत्र का योग नहीं है'। सूत्रपक्ष में यह दोष नहीं रहेगा। सूत्रन्यासपक्ष में दोषाभाव स्पष्ट करते हैं-**नैष दोष इति**। पुष्य का समीप चन्द्रमा के होने से लोक में मुख्यार्थ के असम्भव होने पर गौण का आश्रयण होने से पुष्यशब्द का व्यवहार होता है। इससे पुष्यसंज्ञक के साथ काल को विशेषित करेंगे। यही अर्थ लोक से भी स्पष्ट है; इसे बताते हैं-**तथा चेति**। पुष्य आदि के समीप चन्द्रमा के होने पर लोक में भी 'अद्य पुष्यः, अद्य मघाः' ऐसा व्यवहार होता है; एवं 'पुष्येणोद्वाहयेद्, मघाभिर्यायात्' इत्यादि प्रयोग उपपन्न होते हैं। इससे मघा आदिशब्द मञ्च आदिशब्दों की तरह अपने लिङ्ग और संख्या का परित्याग न करके ही चन्द्रमा के अर्थ में हैं। जैसे-'मञ्चान् स्त्रियः पश्य' में मञ्चपद अपना लिङ्ग और संख्या का परित्याग न करता हुआ ही स्त्री अर्थ में है; वैसे मघा आदिशब्द भी स्वलिङ्ग और स्ववचन का परित्याग न करता हुआ ही चन्द्रमा अर्थ में होंगे। इससे युक्तवद्भावपक्ष में भी दोष निरस्त हो गया।। **नक्षत्रेण युक्तः कालः**।।

लुबविशेषे ४.२.४

इह कस्मान्न भवति-पौषी रात्रिः, पौषमहरिति? 'अविशेष' इत्युच्यते, विशेषश्चात्र गम्यते। 'रात्रि'रित्युक्तेऽहर्नेति गम्यते, 'अह'-रित्युक्ते रात्रिर्नेति गम्यते। इहापि तर्हि न प्राप्नोति-'अद्य पुष्य' इति। अत्राऽपि हि विशेषो गम्यते-'अद्ये'त्युक्ते न ह्यो न श्वो गम्यते। यद्यप्यत्र विशेषो गम्यते, अविशेषोऽपि गम्यते-'अद्ये'त्युक्ते न ज्ञायते-रात्रौ वा दिवा वेति। यतोऽविशेषस्तदाश्रयो लुब्भविष्यति। इहापि तर्हि-यद्यपि विशेषो गम्यतेऽविशेषोऽपि तु गम्यते, 'रात्रि'-रित्युक्ते न ज्ञायते-कदेति? दिवेत्युक्ते न ज्ञायते-कदेति? यतोऽविशेष-स्तदाश्रयो लुप्प्राप्नोति। एवं तर्हि-'नक्षत्रेण युक्तः काल' इत्यनुवर्तते। नक्षत्रेण युक्तस्य कालस्याऽविशेषे। कः पुनः कालो नत्रेण युज्यते? अहोरात्रः।। लुबविशेषे।।

सूत्रार्थ—'अविशेषे=साठ दण्ड वाला काल का अवान्तरविशेष गम्य नहीं होने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर पूर्व सूत्र 'नक्षत्रेण युक्तः कालः' से विहित प्रत्यय का लुप् हो'। जैसे-'पुष्येण युक्तः काल इत्यद्य पुष्यः'। यहाँ अण् का लुप् है।

पूर्वपक्षी—**इह कस्मान्नेति**। 'पौषी रात्रिः, पौषमहः' में 'नक्षत्रेण युक्तः कालः' ४.२.३ से अण् विहित है, उसका लुप् क्यों नहीं होता है?

उत्तरपक्षी—**अविशेष इति**। अविशेष गम्य होने पर ही पूर्व सूत्र से विहित का लुप् कहा जा रहा है। यहाँ विशेष गम्य अर्थ स्पष्ट करते हैं-**रात्रिरिति**। 'रात्रिः' कहने से 'अहः'=दिवस नही है' यह विशेष गम्य होता है; अतः 'पौषी रात्रिः, पौषमहः' में अण् का लुप् नहीं होता है।

अन्य आचार्य इसकी अतिव्याप्ति दिखाते हैं—**इहापीति**। 'रात्रिः, अहः' में जो विशेष गम्य है वही विशेष 'अद्य पुष्यः' में भी है। यहाँ भी 'अद्य' कहने पर विशेष का ज्ञान हो रहा है-'न ह्यः, न श्वः=विगत और कल नहीं; अपि तु आज ही'।

अन्य आचार्य—**यद्यप्यत्रेति**। 'अद्य पुष्यः' में यद्यपि 'न ह्यः, न श्वः' ऐसा कहने से विशेष गम्य हो रहा है, तथापि यहाँ अविशेष भी गम्य है; इसे स्पष्ट करते हैं-**अद्येत्युक्त इति**। 'अद्य' कहने से रात्रि में पुष्य है अथ वा दिन में है?, यह विशेषज्ञान नहीं हो पा रहा है, अतः यह अविशेषज्ञान है; तदाश्रयलुप् होने से 'अद्य पुष्यः' प्रयोग किया जाता है।

अन्य आचार्य—**इहापीति**। 'पौषी रात्रिः' ऐसा कहने से अविशेष ज्ञात होता है; वह इस तरह कि रात्रि में कब तक अथ वा कब? सम्पूर्ण रात्रि, अथ वा रात्रि के एकदेश में पुष्य है?, ऐसा अविशेष ज्ञात होने से 'पौषी रात्रिः' में भी अण् का लुप् होना चाहिये। एवं दिवा कहने पर भी अविशेष भी ज्ञात है; अतः श्रोता 'पौषमहः' सुनने पर प्रश्न करता है-आज कब तक पुष्य है?; अथ वा कब से है? चूँकि विशेष के साथ-साथ अविशेष भी गम्य है, अतः तदाश्रय लुप् होना वाहिये?

उत्तरपक्षी आचार्य इस अतिव्याप्ति का वारण करते हैं—**एवन्तर्हीति**। पूर्व सूत्र 'नक्षत्रेण युक्तः कालः' ४.२.३ की अनुवृत्ति 'लुबविशेषे' ४.२.४ में होती है। इससे नक्षत्र से युक्त काल का अविशेष गम्य होने पर ही लुप् होगा।

पूर्वपक्षी—**कः पुनरिति**। कौन सा काल नक्षत्र से युक्त होगा?

उत्तरपक्षी—**अहोरात्र इति**। 'अहश्च रात्रिश्चेत्यहोरात्रः' 'अहःसर्वैकदेश-संख्यातपुण्याच्च रात्रेः' ५.४.८७ से समासान्त 'अ' प्रत्यय एवं तन्निमित्तक 'इ' का लोप है। 'नक्षत्र से युक्त काल अहोरात्र है' ऐसा कहने से जब अहोरात्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का अवान्तर रात्रि आदि अवयवविशेष की अविवक्षा होगी तब लुप् होगा। परन्तु विशेषविवक्षा होने पर प्रत्यय का श्रवण होगा। 'पौषः अहोरात्रः' में भी शब्द के द्वारा विशेष का आश्रयण करने से अण् का लुप् नहीं है।। लुब-।।

संज्ञायां श्रवणाश्वत्थाभ्याम् ४.२.५

इह कस्मान्न युक्तवद्भावो भवति-श्रवणा रात्रिः? निपातनादेतत्सिद्धम्। किं निपातनम्? 'विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्त्तिकीचैत्रीभ्य' इति।

'लुबविशेषे' ४.२.४ से ही अण्लुक् सिद्ध होने पर प्रकृत सूत्र का आरम्भ विशेषार्थ है।

सूत्रार्थ—'संज्ञा गम्य होने पर श्रवण और अश्वत्थ पद से पर में नक्षत्र प्रत्यय का लुप् हो'। जैसे-'श्रवणेन युक्ता रात्रिः श्रवणा रात्रिः'=श्रवणनक्षत्र से युक्त चन्द्रमा से युक्त रात्रि। अश्वत्थः=अश्विनी नक्षत्रं, तेन युक्तोऽश्वत्थः' मुहूर्तविशेष, ज्योतिशास्त्र में प्रसिद्ध है।

पूर्वपक्षी—**इह कस्मान्नेति**। अण्लुप् होने पर श्रवणा रात्रि में 'लुपि युक्तवद्व्यक्तिवचने' १.२.५१ से युक्तवद्भाव क्यों नहीं होता है?

उत्तरपक्षी—**निपातनादिति**। निर्देश के द्वारा श्रवणशब्द से पर में विहित प्रत्यय का लुप् होने पर युक्तवद्भाव का अभाव ज्ञापित है।

पूर्वपक्षी—**किं निपातनमिति**। क्या निपातन है?

उत्तरपक्षी—**विभाषेति**। 'विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्त्तिकीचैत्रीभ्यः' ४.२.२३ सूत्र में आचार्य ने श्रवणा पद का निर्देश किया है। उससे युक्तवद्भाव का अभाव ज्ञापित करेंगे। यद्यपि इसी सूत्र में 'फाल्गुनी' इत्यादि निर्देश से 'पूर्णिमा' में लुप् प्राप्त नहीं है तथापि श्रवणानिर्देश से 'पूर्णिमा' में लुप् का निषेध में अनित्यत्वबोध होने से दोष नहीं है। इससे श्रवणा का सामान्यनिर्देश मान कर 'अपौर्णमासी' में भी युक्तवद्भाव का अभाव लब्ध है।। संज्ञायां-।।

दृष्टं साम ४.२.७

***दृष्टं साम कलेर्ढक्* 'दृष्टं सामे'त्यत्र कलेर्ढग्वक्तव्यः। कलिना दृष्टं साम कालेयं साम गीयते। अपर आह- *सर्वत्राग्निकलिभ्यां ढक्* सर्वत्राग्निकलिभ्यां ढग्वक्तव्यः। अग्निना दृष्टं साम-आग्नेयम्। अग्नौ भवमाग्नेयम्। अग्नेरागतमाग्नेयम्। अग्नेः**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वमाग्नेयम्। अग्निर्देवताऽस्याऽऽग्नेयः। कलिना दृष्टं साम कालेयम्। कलौ भवं कालेयम्। कलेरागतं कालेयम्। कले स्वं कालेयम्। कलिर्देवताऽस्य कालेयं चरुः।

'तेन रक्तं रागात्' ४.२.१ से 'तेन' यह तृतीयान्त पद अनुवृत्त है।

सूत्रार्थ—'तेन दृष्टं साम' इस अर्थ में तृतीयान्तसमर्थसुबन्त प्रातिपदिक से अण् आदि प्रत्यय हों'। जैसे-'वशिष्ठेन दृष्टं वाशिष्ठं साम'।

सिद्धान्त वार्तिक—**दृष्टं सामेति**। 'तेन दृष्टं साम' इस अर्थ में कलि पद से ढक् प्रत्यय कहना चाहिये। ज्ञानातिशयसम्पत्ति के द्वारा जिस साम का विशिष्ट कार्यविषयविनियोग कलि ने किया, वह कलि द्वारा दृष्ट साम है-कलिना दृष्टं कालेयं साम। यहाँ 'आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्' ७.१.२ से ढ को एय आदेश है।

इतर आचार्य-**अपर आहेति**। तृतीयान्त अग्नि और कलि पद से **सर्वत्र**= सभी प्राग्दीव्यतीय अर्थों में ढक् प्रत्यय हो। 'आग्नेयम्' पद में जितनी व्युत्पत्ति सम्भव है, उसे दिखाते हैं-अग्निना दृष्टम् आग्नेयं सामेत्यादि। इसी तरह 'कालेयम्' में भी 'कलिना दृष्टं कालेयं सामेत्यादि। ये भी विग्रह मूल में स्पष्ट हैं। यहाँ सर्वत्र 'दृष्टं साम, तत्र भवम्, तत आगतम्, तस्य स्वम्, साऽस्य देवता' इन अर्थों में ढक् प्रत्यय हुआ है।

*** दृष्टे सामनि जाते चाऽप्यण्डिद् द्विर्वा विधीयते * दृष्टे सामनि जाते च अण् डिद् द्विर्वा वक्तव्यः। उशनसा दृष्टं साम औशनसम्। औशनम्। शतभिषजि जातः-शातभिषजः, शातभिषः * तीयादीकक् * तीयादीकग्वक्तव्यः-द्वैतीयीकः,तार्त्तीयीकः * न विद्यायाः * 'विद्याया न भवती'ति वक्तव्यम्। द्वितीया विद्या, तृतीया विद्येत्येव * गोत्रादङ्कवदिष्यते * गोत्रादङ्कवदिष्यते। औपगवकम्। कापटवकम्।**

दृष्टे सामनि जाते चाऽप्यण् डिद् द्विर्वा विधीयते।
तृतीयादीकग्न विद्याया गोत्रादङ्कवदिष्यते।।

दृष्टे सामनीति। 'दृष्टं साम' इस अर्थ में विहित अण् एवं 'तत्र जातः' इस अर्थ में विहित पूर्व अण् का बाध से निवृत्ति होने पर **द्विः**=दुबारा विहित अण् डिद्वत् कहना चाहिये। 'उशनसा दृष्टम् औसनशं साम'। डिद्वत्पक्ष में भसंज्ञा के अभावपक्ष में भी डित्त्वसामर्थ्य से टिलोप होने पर 'औसनशं साम' रूप है। 'शतभिषजा जातः शातभिषजः' यहाँ 'शतभिषजा युक्तः कालः' अर्थ में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विहित अण् का लुक्, उसका 'कालाट्ठञ्' ४.३.११ से विहित ठञ् से बाध हो जायेगा, पुनः 'सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्' ४.३.१६ से अण् विहित है, उसको डिद्वद्भाव कहा गया है। भसंज्ञा नहीं होने पर भी डित्त्वसामर्थ्य से टिलोप हो कर 'शातभिषः' रूप है।

तीयादीकक्। यहाँ 'द्वेस्तीयः' ५.२.५४ और 'त्रेः सम्प्रसारणं च' ५.२.५५ से विहित तीयप्रत्यय का ग्रहण है। प्रत्ययग्रहणपरिभाषा के द्वारा तदन्त अर्थ का लाभ होने से तीयान्त से ईकक् प्रत्यय कहना चाहिये। अर्थनिर्देश नहीं होने से यह स्वार्थ में विहित है-'द्वितीय एव द्वैतीयकः, तृतीय एव तार्तीयीकः'। **न विद्याया इति**। 'तीयादीकक्' से प्राप्त का प्रतिषेध है। विद्या अर्थ में शक्त तीय प्रत्ययान्त से स्वार्थ में ईकक् नहीं कहना चाहिये-'द्वितीया विद्या, तृतीया विद्या' में स्वार्थिक ईकक् नहीं हुआ।

अतिदेश वार्तिक—**गोत्रादङ्कवदिति**। 'दृष्टं साम' इस अर्थ में गोत्रप्रत्ययान्त से अङ्कवद्भाव कहना चाहिये, अर्थाद् जैसे-गोत्रप्रत्ययान्त से 'अङ्क'अर्थ में प्रत्यय होता है वैसे गोत्रप्रत्ययान्त से 'दृष्टं साम' इस अर्थ में भी अङ्कवत् प्रत्यय कहना चाहिये। 'उपगोर्गोत्रापत्यमौपगवस्तेन दृष्टं साम औपगवकम्, कपटोर्गोत्रापत्यं कापटवस्तेन दृष्टं साम कापटवकम्'। यहाँ उभयत्र 'गोत्रचरणाद्वुञ्' ४.३.१२६ से वुञ् है।

उपर जिन वार्तिकों की व्याख्या कर आये हैं उन्हीं का यहाँ श्लोकवार्तिक के रूप में संग्रह है-**दृष्टे सामनीति**। उपर इसका अर्थ किया जा चुका है। पाठक वहीं से अर्थबोध करेंगे। ।दृष्टं-।।

वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ ४.२.९

किमर्थो डकारः? डितीति टिलोपो यथा स्यात्। नैतदस्ति प्रयोजनं,-यस्येति लोपेनाऽप्येतत्सिद्धम्। एवं तर्हि सिद्धे सति यद्ययतौ डितौ करोति तज्ज्ञापयत्याचार्यो भवत एते परिभाषे- 'अननुबन्धकग्रहणे न सानुबन्धकस्य ग्रहणं' 'तदनुबन्धकग्रहणे नाऽतदनुबन्धकस्य ग्रहण'मिति। किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम्? 'अवामदेव्य'मित्येतत्सिद्धं भवति।।

सिद्धे यस्येति लोपेन किमर्थं ययतौ डितौ?
ग्रहणं मा तदर्थे भूद्वामदेव्यस्य नञ्स्वरे।।

सूत्रार्थ—'तेन दृष्टं साम' इस अर्थ में तृतीयान्त वामदेव पद से ड्यत्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और ड्य प्रत्यय हो'। जैसे- वामदेवेन दृष्टं वामदेव्यम्।

पूर्वपक्षी—**किमर्थ इति**। विधेय प्रत्यय को डिद्विशिष्ट क्यों पढते हैं? यदि डित्करण का प्रयोजन टिलोप कहा जाये तो 'यस्येति च' ६.४.१४८ लोप के द्वारा अल्लोप होने से टिलोप सिद्ध हो गया; पुनः डित्करण का क्या प्रयोजन है?

सिद्धान्ती—**एवन्तर्हीति**। अल्लोप के द्वारा टिलोप सिद्ध होने पर आचार्य ने जो 'य' और 'यत्' प्रत्यय को डित् किया वह व्यर्थ पड कर दो परिभाषाओं का ज्ञापन करता है। १-**अननुबन्धकेति**। 'अनुबन्धरहित के ग्रहण होने पर अनुबन्धसहित का ग्रहण नहीं होता है'। एवम् २-**तदनुबन्धकेति**। 'तन्मात्रानुबन्धक के ग्रहण होने पर अतन्मात्रानुबन्धक और अन्य अनुबन्ध है जिसके उसका ग्रहण नहीं होता है'। उक्त परिभाषाद्वयज्ञापन का प्रयोजन है-'अवामदेव्यम्' की सिद्धि। उक्त परिभाषाद्वय का ज्ञापन होने से 'अवामदेव्यम्' में अव्यय पूर्वपदप्रकृतिस्वर से आद्युदात्त है; अन्यथा परिभाषाद्वय के अभाव में 'ययतोश्चातदर्थे' ६.२.१५६ से अन्तोदात्त होता।

इन दोनों परिभाषाओं का संग्राहक वार्तिक पढते हैं-**सिद्धे यस्येति**। इस श्लोकवार्तिक में पूर्वार्ध पूर्वपक्षपरक है। 'यस्येति च' ६.४.१४८ के द्वारा अल्लोपसिद्ध होने पर उसी के लिए 'य' और 'यत्' को टिलोपविधानार्थ डित् क्यों किया गया है? नञाश्रय अन्तोदात्त की कर्त्तव्यता में 'ययतोश्चातदर्थे' ६.२.१५६ से 'य' और 'यत्' प्रत्यय को स्वर करने में 'ड्य' और 'ड्यत्' का ग्रहण न हो, इसके लिए डित्करण करना चाहिये।। **वामदेवाड्-**।।

परिवृतो रथः ४.२.१०

*** परिवृतो रथ इति तदेकान्तग्रहणम् * 'परिवृतो रथ' इत्यत्र तदेकान्तग्रहणं कर्त्तव्यम्। 'येन परिवृतो रथो रथैकान्तश्चेत्स भवती'ति वक्तव्यम्। इह मा भूत्-'पुत्रैः परिवृतो रथः' 'छात्रैः परिवृतो रथ' इति।**

सूत्रार्थ—'परिवृतो रथः' इस अर्थ में तृतीयान्त से प्राग्दीव्यतीय अण् हो'। जैसे-'वस्त्रैः परिवृतो वास्त्रो रथः'। रथग्रहण करने से 'वस्त्रेण परिवृतः कायः' में अण् नहीं हुआ।

एकदेशी भाष्य—**तदेकान्तग्रहणमिति**। 'परिवृतो रथः' सूत्र में **तदेकान्त**= 'तस्य=रथस्य एकान्ताः=अवयवा इव' ग्रहण करना चाहिये। इससे रथ का चर्म, वस्त्र आदि अवयव का वाचक तृतीयान्त से ही प्रत्यय होगा। तदेकान्तग्रहण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करने से संयुक्त चक्र आदि की तरह रथ का चर्म, वस्त्र आदि अवयवत्वबुद्धि होगी। तदेकान्तग्रहण का फल देते हैं-**इह मा भूदिति**। तदेकान्तग्रहण करने से 'पुत्रैः परिवृतो रथश्छात्रैः परिवृतो रथः' में तृतीयान्त पुत्र और छात्र से प्रत्यय नहीं हुआ।

तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। कस्मान्न भवति-'पुत्रैः परिवृतो रथश्छात्रैः परिवृतो रथ' इति? अनभिधानात्।। परिवृतो रथः।।

अन्य आचार्य—**तत्तर्हीति**। तो क्या 'परिवृतो रथः' सूत्र में 'तदेकान्तग्रहण करना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। इस सूत्र में तदेकान्तग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है।

अन्य आचार्य—**कस्मान्नेति**। यदि तदेकान्तग्रहण नहीं करेंगे तो 'पुत्रैः परिवृतो रथश्छात्रैः परिवृतो रथः' में तृतीयान्त पुत्र और छात्र पद से 'परिवृतो रथः' अर्थ में प्रत्यय क्यों नहीं होता है?

उत्तरपक्षी—**अनभिधानादिति**। यहाँ तृतीयान्त पुत्र और छात्र पद से तद्धित करने पर विग्रह के अर्थ को तद्धितवृत्ति नहीं कह पा रही है, अतः अनभिधान होने से यहाँ 'परिवृतो रथः' अर्थ में तद्धित नहीं होता है।। **परिवृतो रथः।।**

पाण्डुकम्बलादिनिः ४.२.११

अयं योगः शक्योऽवक्तुम्। कथं पाण्डुकम्बली, पाण्डुकम्बलिनौ, पाण्डुकम्बलिन इति? इनिनैतन्मत्वर्थीयेन सिद्धम्-पाण्डुकम्बलोऽस्यास्तीति-पाण्डुकम्बलीति।। पाण्डुकम्बलादिनिः।।

'पाण्डुकम्बलात्' पञ्चम्येकवचनान्त, 'इनिः' प्रथमैकवचनान्त होने से यह द्विपद सूत्र है। पूर्वसूत्र 'परिवृतो रथः' अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'परिवृतो रथः' इस अर्थ में तृतीयान्त पाण्डुकम्बल पद से इनि प्रत्यय हो'। 'पाण्डुकम्बलेन परिवृतः पाण्डुकम्बली रथः, पाण्डुकम्बलिनौ रथौ, पाण्डुकम्बलिनो रथाः'। राजास्तरणवर्णकम्बल का वाचक पाण्डुकम्बल पद है।

भाष्यकार प्रकृत सूत्र का खण्डन करते हैं-**अयं योग इति**। 'पाण्डुकम्बलादिनिः' यह सूत्र नहीं पढना चाहिये था। प्रकृत सूत्र के अभाव में 'पाण्डुकम्बली'शब्द की सिद्धि स्पष्ट करते हैं-**इनिनैतदिति**। 'पाण्डुकम्बलोऽस्त्यस्येति पाण्डुकम्बली'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'अत इनिठनौ' ५.२.११५ से मत्वर्थीय इनि प्रत्यय के द्वारा यह रूप सिद्ध हो जायेगा। यदि यहाँ अण् प्रत्यय का बाध करने के लिए प्रकृत सूत्र का आरम्भ माना जायेतो यह उचित नहीं है। यहाँ अनभिधान होने से अण् प्रत्यय नहीं होगा। परन्तु शब्दकौस्तुभकार श्रीदीक्षितजी पूर्वसूत्र से अण् प्राप्त होने पर तद्बाधनार्थ प्रकृत सूत्र का आरम्भ मानते हैं जो सूत्रकारसम्मत होने से साधु लगता है।। **पाण्डुकम्ब-** ।।

कौमाराऽपूर्ववचने ४.२.१३

*** कौमाराऽपूर्ववचन इत्युभयतः स्त्रिया अपूर्वत्वे * कौमाराऽपूर्ववचन इत्युभयतः स्त्रिया अपूर्वत्व इति वक्तव्यम्। अपूर्वपतिं कुमारीं पतिरुपपन्नः कौमारो भर्त्ता। कुमारी अपूर्वपतिः पतिमुपपन्ना-कौमारी भार्या।**

ह्यँ 'तेन' एवं 'परिवृतो रथः' इन दोनों की निवृत्ति हो गयी। 'द्वैपवैयाघ्रादञ्' ४.२.१२ से यहाँ विधेय अञ्पद की अनुवृत्ति है। 'कौमार' पद लुप्तप्रथमाक अविभक्तिक निर्दिष्ट है। अपूर्ववचन भावसाधन है।

सूत्रार्थ—'अपूर्ववचन में कौमार पद निपातित हो'।

सिद्धान्तवार्तिक-**कौमाराऽपूर्ववचन इति**। 'कौमाराऽपूर्ववचने' सूत्र में **उभयतः**= दोनों तरफ से अपूर्वत्व कहना चाहिये। 'उभयस्मिन्निति उभयतः' 'पञ्चम्यास्तसिल्' ५.३.७ से तसिल् प्रत्यय है। अर्थाद् यदि स्त्रीलिङ्ग में 'कौमारी' प्रयोग होगा तो स्त्री के पाणिग्रहण का अपूर्व होने पर उभय में प्रयोग करना चाहिये। निपातनसामर्थ्य से प्राप्त इस अर्थ का वार्तिककार ने प्रकाशन किया है। 'अपूर्व-पतिं कुमारीं पतिरुपपन्न इति कौमारो भर्त्ता। यहाँ 'न पूर्वः पतिर्यस्याः सा अपूर्वपतिस्तां कुमारीम् उपयतवान् पतिः' इस अर्थ में द्वितीयान्त 'कुमारीम्'शब्द से अण् प्रत्यय उपयन्ता अर्थ में है। एवं द्वितीय में-'न विद्यते पूर्वः पतिर्यस्याः सा अपूर्वपतिः कुमारी पतिमुपपन्ना' इस अर्थ में प्रथमान्त कुमारी पद से उपयता होने पर स्वार्थ में अञ् प्रत्यय हो कर 'कौमारी भार्या' रूपसिद्धि है।

कौमाराऽपूर्ववचने, कुमार्या अण्विधीयते।
अपूर्वत्वं यदा तस्याः, कुमार्या भवतीति वा।।

अथ वा कुमार्यां भवः कौमारः। यद्येवं-कौमारीभार्येति न सिध्यति * पुंयोगात्स्त्र्यभिधानम् * पुंयोगात्स्त्र्यभिधानं भविष्यति। कौमारस्य भार्या कौमारीति।। कौमाराऽपूर्ववचने।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसी अर्थ का श्लोकवार्तिककार भी संग्रह करते हैं-**कौमारापूर्वेति**। कौमाराऽपूर्ववचन अर्थ में कुमारी पद से अञ् विहित है। यदि कुमारी का अपूर्वत्व बोध्य हो तब भी प्रत्यय होगा। एवं यदि कुमारी उपयता हो तब भी स्वार्थ में प्रत्यय होगा।

अथ वेति। अथ वा तृतीय अर्थ में भी कौमारशब्द होगा। उसे विग्रह से स्पष्ट करते हैं-'कौमार्या भवः कौमारः' 'तत्र भवः' ४.३.५३ से अण्।

अन्य आचार्य—**यद्येवमिति**। यदि 'कौमार्या भवः कौमारः' में भवार्थक अण् प्रत्यय करेंगे तो भार्या अर्थ में कौमारी सिद्ध नहीं हो सकेगा।

उत्तरपक्षी—**पुंयोगादिति**। 'कौमारस्य भार्या कौमारी' 'पुंयोगादाख्यायाम्' ४.१.४८ से ङीष् हो कर 'कौमारी भार्या' रूप सिद्ध हो जायेगा।। **कौमाराऽपूर्ववचने**।।

साऽस्मिन् पौर्णमासीति ४.२.२१

*** साऽस्मिन् पौर्णमासीति संज्ञाग्रहणम् * साऽस्मिन् पौर्णमासीति संज्ञाग्रहणं कर्त्तव्यम् *** असंज्ञायां हि गरीयानुपसंयोगो मासार्द्धमासयोः संवत्सरपर्वणि *** अक्रियमाणे हि संज्ञाग्रहणे गरीयानुपसंयोगः कर्त्तव्यः स्यात्। 'मासार्द्धमासयो'रिति वक्तव्यं स्याद्,-इह मा भूत्-पौषी पौर्णमास्यस्मिन्पञ्चरात्रे दशरात्रे वेति। संवत्सरपर्वणीति च वक्तव्यं स्याद्-भृतकमासे मा भूदिति। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्-इदित्करणः क्रियते-ततश्चेद्विवक्षा।।**

सूत्रार्थ—'सा पौर्णमासी अस्मिन्' इस अर्थ में प्रथमान्त से प्रत्यय हो'। पुष्येण युक्तेति पौषी, पौषी पौर्णमासी अस्मिन्नि पौषो मासः।

संज्ञाग्रहण सूत्र में अनार्ष है, अतः वार्तिककार वार्तिक पढते हैं-**साऽस्मिन्निति**। 'साऽस्मिन् पौर्णमासीति' इस सूत्र में संज्ञाग्रहण करना चाहिये। संज्ञाग्रहण नहीं करने पर अनेक उपाधियों का निर्देश करना होगा, इसको वार्तिकमुखेन स्पष्ट करते हैं-**असंज्ञायामिति**। संज्ञाग्रहण नहीं करने पर **गरीयान्**=अनेक **उपसंयोगः**= 'उपसंयोज्यत इत्युपसंयोजः'-उपाधि का निर्देश करना होगा।

करणीय उपाधि का निर्देश करते हैं—**मासार्द्धमासयोरिति**। पञ्चरात्र और दशरात्र में पौर्णमासीशब्द का प्रयोग न हो इसके लिए मासार्द्ध और मास में 'साऽस्मिन् पौर्णमासी' ऐसा कहना होगा। एवं संवत्सर के द्वादश पर्व मासान्त होते हैं। भृतकमास में निषेध के लिए संवत्सरपर्व में 'साऽस्मिन् पौर्णमासी' इस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थ में प्रथमान्त से प्रत्यय कहना होगा। भृता एव भृतकाः कर्मकरास्तेषां मासः। कम्पनियों में भृत्यों को कार्य में लगाने के लिए अहोरात्रात्मक तीस दिन का मास मान्य है, उसे भाष्यकार भृतकमास पद से व्यवहार कर रहे हैं। उसके मासान्त में 'साऽस्मिन् पौर्णमासी' इस अर्थ में प्रत्यय न हो, इसके लिए संवत्सरपर्व ऐसा उपाधिग्रहण करना होगा। संज्ञाग्रहण करने पर ये उपाधिग्रहण नहीं करने पडते हैं, जो लाघव है। पौर्णमासीशब्द से 'पूर्णो मासोऽस्यां तिथौ' इस विग्रह में 'प्रज्ञादिभ्यश्च' ५.४.३८ को आकृतिगण मान कर अथ वा निपातन से अण्, एवम् अण्लक्षण ङीप् है। अथ वा 'भीमो भीमसेनः' की तरह ''पूर्णो माः=चन्द्रमा इति पूर्णमास्तस्येयं पौर्णमासी।

अन्य आचार्य—**तर्हीति**। तो क्या वार्तिककार के अनुसार 'साऽस्मिन् पौर्णमासीति' सूत्र के स्थान पर 'साऽस्मिन् पौर्णमासीति संज्ञायाम्' सूत्र पढना चाहिये?

सिद्धान्ति भाष्य—**न वक्तव्यमिति**। सूत्र में 'संज्ञायाम्'ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है। ग्रहण के अभाव में 'संज्ञायाम्' अर्थ का कैसे लाभ हो रहा है?, इसे स्पष्ट करते हैं-**इतिकरण इति**। सूत्र में 'इति' पद का निर्देश है, इससे **ततश्चेद्विवक्षा**=प्रत्ययान्त से संज्ञा अर्थ की विवक्षा हो तो प्रत्ययविधान कर लेना चाहिये। इससे इतिकरण से विवक्षा के द्वारा संज्ञा अर्थ का लाभ हो जाने से उसका ग्रहण व्यर्थ है।। **साऽस्मिन् पौर्णमासीति**।।

कस्येत् ४.२.२५

यस्येति लोपः कस्मान्न भवति? इकारोच्चारणसामर्थ्यात्। अथ यत्कायं हविः, कथं तस्य सम्प्रैषः कर्त्तव्यः? यदि तावत्किमः कादेशः-'कस्मायनुब्रूही'ति भवितव्यम्। अथ न किमः-'कायानुब्रूही'ति भवितव्यम्। 'यद्यपि' किमोऽथाऽपि न किमः-उभयथा 'कस्मायनुब्रूही'ति भवितव्यम्। सर्वस्य हि सर्वनामसंज्ञा क्रियते सर्वश्च प्रजापतिः प्रजापतिश्च कः।

सूत्रार्थ—'कशब्द प्रजापति अर्थ का वाचक है। प्रत्ययसन्नियोग के द्वारा उसको इदादेश हो'। जैसे-कः=प्रजापतिर्देवताऽस्येति कायं हविः। इदादेश होने पर 'यस्येति च' ६.४.१४८ से लोप प्राप्त है, परन्तु 'श्रीर्देवता अस्येति श्रायं हविः' की तरह आदिवृद्धि से 'यस्येति च' लोप का बाध हो जाता है। आयादेश हो कर कायं हविः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्वपक्षी—**यस्येति लोप इति**। 'कायं हविः' में 'यस्येति च' ६.४.१४५ से लोप क्यों नहीं होता है?

उत्तरपक्षी—**इकारोच्चारणेति**। इकारोच्चारणसामर्थ्य से लोप नहीं होता है। अन्यथा यदि लोप करेंगे तो इकारविधान व्यर्थ पड जायेगा। यद्यपि क शब्द को इदादेश करने पर आदिवृद्धि के द्वारा लोप का बाध हो जाता है तथापि अन्य परिहार होने से भाष्यकार ने इसे नहीं कहा है। अथ वा भाष्यकार वृद्धि की अपेक्षा लोप को बलवान् मान रहे हैं; इस लिए 'इकारोच्चारणसामर्थ्यात्' ऐसा कहते हैं। परन्तु यदि 'किम्'शब्द को उद्देश्यवचन 'कस्य' ऐसा मान लिया जाये तो 'अलो न्त्यस्य' १.१.५२ से अन्त्य अल् 'म्' को इदादेश हो कर लोप होने पर भी 'कायम्' पद सिद्ध हो जाता है।

श्रुतिविप्रतिपत्ति के द्वारा प्रश्न करते हैं—**अथेति**। जो कायहवि है उसे किस मन्त्र से अध्वर्यु होता=होम करने वाले के पास भेजेगा? प्रश्न में हेतु यह है कि यदि सर्वनामसंज्ञक किम्शब्द को कादेश करते हैं तो सम्प्रेषण में 'कस्मै+अनुब्रूहि=कस्मायनुब्रूहि' ऐसा वाक्य होगा। यदि किम्शब्द को कादेश न करके प्रजापतिवाचक 'क'शब्द का षष्ठ्यन्त 'कस्य'प्रयोग मानेंगे तो उसका चतुर्थी-एकवचन में 'काय' रूप होने से 'कायानुब्रूहि' ऐसा श्रुतिप्रयोग होगा। इस तरह भेद होने से संशय होना स्वाभाविक है कि 'कायहविः' का सम्प्रैष कैसे होगा?

उत्तरपक्षी आचार्य उभय परिस्थितियों में एकश्रुति मान कर समाधान करते हैं-**यद्यपीति**। यदि सर्वनामसंज्ञक किम्शब्द को कादेश माना जाये, अथ वा प्रजापति का वाचक 'क'शब्द का ग्रहण किया जाये, दोनों का षष्ठी-एकवचन में एक सा ही रूप होगा-'कस्य'। उसको इदादेशविधान मानेंगे। दोनों को उद्देश्य मानने में 'किम्' को कादेश करने पर 'कस्मायनुब्रूहि', और प्रजापतिवाचक 'क'शब्द का ग्रहण करने पर 'कायानुब्रूहि' रूपभेद दिया था, वह भी नहीं रहेगा। उभयत्र एक ही श्रुति होगी-'कस्मायनुब्रूहि'। उभयत्र एक ही श्रुति कैसे होगी?, इसे स्पष्ट करते हैं-**सर्वस्य हीति**। **सर्वस्य**=सर्वार्थवाचक की सर्वनामसंज्ञा की गयी है। 'सर्वश्च प्रजापतिः'-कारण के कार्य में अनुस्यूत होने से कार्य और कारण का अभेद मान कर **सर्वश्च**=सभी प्रजापति हैं और प्रजापतिवाचक भी 'क'शब्द है, अतः 'क' की भी सर्वनामसंज्ञा मान कर 'कस्मायनुब्रूहि' ऐसी एक ही श्रुति होगी।

अपर आह-'यद्येव किमोऽथाऽपि न किमः-उभयथा 'कायानुब्रूही'ति भवितव्यम्। संज्ञोपसर्जनयोर्हि सर्वनामसंज्ञा प्रतिषिध्यते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संज्ञा चैषा तत्र भवतः।। कस्येत्।।

अन्य आचार्य उभयत्र एकश्रुति होने से श्रुतिभेद का निवारण करते हैं-**अपर आहेति**। **यद्येवम्**=यदि किम्शब्द को कादेश मानेंगे तब भी 'संज्ञोपसर्जनीभूतास्तु न सर्वादयः' ऐसा निषेधवचन होने से किम्शब्द के द्वारा संज्ञा=प्रजापति-अर्थ गम्य होने पर सर्वनामसंज्ञा का निषेध हो जायेगा; अतः वहाँ भी 'कायानुब्रूहि' ऐसा एक ही प्रयोग होने से श्रुतिभेद नहीं है।। **कस्येत्**।।

अपोनप्त्रपांनप्तृभ्यां घः ४.२.२७

अथ यदपोनप्त्रियमनपांनप्त्रियं हविः कथं तस्य सम्प्रैषः कर्त्तव्यः? अपोनपाते अनुब्रूहि, अपांनपाते अनुब्रूहि इति। अपोनप्त्रपांनप्तृभावः कस्मान्न भवति? प्रत्ययसन्नियोगेन ऋकारान्तत्वमुच्यते। तेनाऽसति प्रत्यये न भवितव्यम्।। अपोनप्त्रपांनप्तृभ्यां घः।।

सूत्रार्थ—'अपोपात् और अपांनपात् ये दो देवता है। घ प्रत्ययसन्नियोग के द्वारा अपोनपात् को अपोनप्तृ और अपान्नपात् को अपांनप्तृ आदेश निपातन से हो'। ध को इयादेश हो कर 'अपोनप्त्रियं हविः, अपांनप्त्रियं हविः' रूप है।

पूर्वपक्षी—**अथेति**। 'अपोनप्त्रियं हविः, अपांनप्त्रियं हविः' का सम्प्रैष कैसे करना चाहिये? वेद में कहीं तान्त और कहीं ऋकारान्तप्रयोग ही सन्देह में बीज है।

उत्तरपक्षी—**अपोनपात इति**। इसका सम्प्रैष 'अपोनपाते अनुब्रूहि, अपांनपाते अनुब्रूहि' ऐसा कहना चाहिये।

पूर्वपक्षी—**अपोनप्त्रिति**। यहाँ अपोनप्तृभाव और अपांनप्तृभाव क्यों नहीं होता है?

उत्तरपक्षी—**प्रत्ययेति**। प्रत्ययसन्नियोग को ऋकारान्त आदेश कहा गया है, अतः प्रत्यय के अभाव में ऋकारान्तत्व भी नहीं हुआ।। **अपोनप्त्रपां-**।।

छ च ४.२.२८

***** छप्रकरणे पैङ्गाक्षिपुत्रादिभ्य उपसंख्यानम् *** छप्रकरणे पैङ्गाक्षिपुत्रादिभ्य उपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। पैङ्गाक्षिपुत्रीयम्। तार्णबिन्दवीयम्** * शतरुद्राद् घ च *** शतरुद्राद् घप्रत्ययो वक्तव्यः। छश्च वक्तव्यः। शतरुद्रियम्। शतरुद्रीयम्।।** छ च।।

यहाँ पूर्वसूत्र ४.२.२६ से 'अपोनप्त्रपांनप्तृभ्याम्' की अनुवृत्ति होती है। यहाँ भी प्रत्ययसन्नियोग के द्वारा ऋकारान्त आदेश निपातन से है। यथासंख्य-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निवृत्ति के लिए योगविभाग होने से 'घ'और 'छ'प्रत्यय उभय प्रातिपदिक से होंगे-'अपोनप्त्रीयं हविः, अपांनप्त्रीयं हविः'।

सिद्धान्त वार्तिक—**छप्रकरण इति**। छप्रकरण में पैङ्गाक्षीपुत्र आदि से भी प्रत्ययोत्पत्ति कहनी चाहिये। जैसे-पैङ्गाक्षीपुत्रीयं हविः, तार्णबिन्दवीयं हविः'। **शतरुद्रादिति**। यहाँ वार्तिक में 'च'पद से 'छ'प्रत्यय काभी समुच्चय है, अतः शतरुद्र पद से 'छ' और 'घ' उभय प्रत्यय कहना चाहिये। 'घ'प्रत्यय होने पर 'शतरुद्रियम्', एवं 'छ'प्रत्यय होने पर शतरुद्रीयम्' रूप है।। **छ च**।।

कालेभ्यो भववत् ४.२.३४

कथमिदं विज्ञायते-भवे ये प्रत्यया विहितास्ते भवन्ति कालेभ्यः साऽस्य देवतेत्यस्मिन्नर्थ इति, आहो स्वित् कालेभ्यो भवे ये प्रत्यया विहितास्ते भवन्ति साऽस्य देवतेत्यस्मिन्नर्थ इति? कश्चात्र विशेषः? * कालेभ्यो भवे चेत्प्रत्ययमात्रप्रसंगः * यदि विज्ञायते 'भवे ये प्रत्यया विहितास्ते भवन्ति कालेभ्यः साऽस्य देवतेत्यस्मिन्नर्थ' इति,-प्रत्ययमात्रं प्राप्नोति।

सूत्रार्थ—'कालवाची से भी अर्थ में जिस विशेषण से प्रत्यय कहे जायेंगे, वे प्रत्यय 'साऽस्य देवता' इस अर्थ में कालवाची से उसी विशेषण से हों'। मासो देवता अस्येति मासिकं हविः, 'कालाट्ठञ्' ४.३.११ से ठञ्। प्रावृट् देवता अस्येति प्रावृषेण्यं हविः, 'प्रावृष एण्यः' ४.३.६ से एण्य प्रत्यय है।

पूर्वपक्षी—**कथमिति**। 'कालेभ्यो भववत्' सूत्र में 'कालेभ्यः' एक वार ही सुना जा रहा है। उसका सम्बन्ध 'भव' के साथ होगा, अथ वा 'साऽस्य देवता' के साथ? यदि 'भ' के साथ अन्वय करेंगे तो-'भव अर्थ में जो प्रत्यय विहित हैं वे कालवाची प्रातिपदिक से 'साऽस्य देवता' उस अर्थ में विहित हों' ऐसा अर्थ होगा। यदि 'साऽस्य देवता' के अभिसम्बन्धं करेंगे तो अर्थ होगा-'कालवाची प्रातिपदिक से भव अर्थ में जो प्रत्यय विहित हैं वे 'साऽस्य देवता' इस अर्थ में विहित हों'?

अन्य आचार्य—**कश्चात्रेति**। सकृत् श्रुत 'कालेभ्यः' पद का 'भव' के साथ सम्बन्ध माना जाये, अथ वा 'साऽस्य देवता' के साथ सम्बन्ध माना जाये, इसमे क्या वैशिष्ट्य है?

पूर्वपक्षी 'भव' के अभिसम्बन्ध दिखाने में वैशिष्ट्य बताते हैं-**कालेभ्यो भव इति**। यदि 'कालेभ्यः' का 'भव' के साथ अभिसम्बन्ध करेंगे तो भव अर्थ में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जितने प्रत्यय विहित हैं वे सभी कालवाची से 'साऽस्य देवता' इअर्थ में विहित होंगे। इससे प्रत्ययमात्र की प्राप्ति होने से 'दिगादिभ्यो यत्' ४.३.५४ से भव अर्थ में विहित यत्प्रत्यय भी कालवाची से प्राप्त होने से अतिव्याप्ति होगी।

***यः कालेभ्यो भवे तस्य विधाने प्रातिपदिकमात्रात्प्रसंगः * अथ विज्ञायते 'कालेभ्यो भवे ये प्रत्यया विहितास्ते भवन्ति साऽस्य देवतेत्यस्मिन्नर्थ' इति,-प्रातिपदिकमात्रात्प्राप्नुवन्ति *** सिद्धं तूभय-निर्देशात्कालेभ्यो भववत्कालेभ्य इति *** सिद्धमेतत्। कथम्? उभयनिर्द्देशात्। उभयनिर्द्देशः कर्त्तव्यः-'कालेभ्यो भववत्कालेभ्य' इति। स तर्ह्युभय-निर्देशः कर्त्तव्यः? न कर्त्तव्यः। 'भववदि'ति वतिनिर्द्देशोऽयम्। यदि च याभ्यः प्रकृतिभ्यो येन विशेषणेन भवे प्रत्यया विहितास्ताभ्यः प्रकृतिभ्यस्तेन विशेषणेन 'साऽस्य देवते'त्यस्मिन्नर्थे भवन्ति ततोऽमी भववत्कृताः स्युः। अथ हि प्रकृतिमात्राद्वा स्युः प्रत्ययमात्रं वा स्यान्नामी भववत्कृताः स्युः।।** कालेभ्यो भववत्।।

'साऽस्य देवता' के साथ अभिसम्बन्ध करने में अतिव्याप्ति देते हैं-**यः कालेभ्यो भव इति**। यदि कालवाची से भव अर्थ में विहित प्रत्यय को 'सा स्य देवता' अर्थ में कहेंगे तो 'कालाट्ठञ्' ४.३.११ से विहित ठञ् प्रत्यय इन्द्र आदि प्रातिपदिक से भी प्राप्त होने लगेगा। अथ च यदि 'कालेभ्यः' पद की आवृत्ति करके उसे उभयान्वयी माना जाये तो 'सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्' ४. ३.१६ सूत्र में ऋतु आदि से पर में विहित अण् प्रत्यय मुहूर्त आदि से भी प्राप्त होने लगेगा, यह भी समझना चाहिये।

वार्तिककार—**सिद्धं त्विति**। भववत् में अतिप्रत्यय अतिदेश अर्थ में चरितार्थ है, अतः उससे सर्वसादृश्य अर्थ का लाभ नहीं हो सकता है। इस लिए सर्व-सादृश्यार्थ लाभ के लिए उभयनिर्देश करना चाहिये-'कालेभ्यो भववत् कालेभ्यः' ऐसा निर्देश करने से भव अर्थ में विहित प्रत्यय कालवाची से ही होंगे। इससे 'दिगादिभ्यो यत्' ४.३.५४ से भव अर्थ में विहित यत् प्रत्यय का कालवाची से प्राप्ति निषिद्ध होगी,। एवं 'कालाट्ठञ्' ४.३.११ से विहित ठञ्प्रत्यय की इन्द्रादिप्रकृति से प्राप्ति निषिद्ध हो गयी।

अन्य आचार्य—**स तर्हीति**। तो क्या उभयनिर्देश करना चाहिये?

उत्तरभाष्य—**न कर्त्तव्य इति**। उभयनिर्देश नहीं करना चाहिये। उभयनिर्देश के अभाव में भी सर्वसादृश्यार्थ का लाभ बताते हैं-**भववदितीति**। आचार्य 'कालेभ्यो भववत्' के स्थान पर 'कालेभ्यो भवे' ऐसा सूत्र रखते तब भी भव अर्थ में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जो प्रत्यय विहित हैं वे कालवाचि से प्राप्त हो जाते; पुनः आचार्य ने जो वति का निर्देश किया है उससे सर्वसादृश्यार्थ अर्थ का लाभ हो जायेगा।

वतिनिर्देश का फल बताते हैं—**यदि चेति**। जिस प्रकृति से जिस विशेषण के द्वारा भव अर्थ में प्रत्यय विहित है, उसी प्रकृति से उसी विशेषण के द्वारा 'साऽस्य देवता' इस अर्थ में जब प्रत्यय विहित होंगे तब वे 'भववत्' होंगे। इससे 'कालाट्ठञ्' ४.३.११ सूत्र से कालवाची प्रकृति से भवार्थ में प्रत्यय विहित हैं; अतः कालवाची प्रकृति से ही 'साऽस्य देवता' इस अर्थ में भववत् प्रत्यय होने से 'दिगादिभ्यो यत्' ४.३.५४ से भवार्थ में विहित यत् प्रत्यय कालवाची से प्राप्त नहीं होगा। एवं 'कालाट्ठञ्' ४.३.११ से विहित भवार्थ में ठञ् प्रत्यय इन्द्रादिप्रकृति से प्राप्त नहीं होगा।

वार्तिक के द्वारा सर्वसादृश्यार्थलाभ करने का अन्य प्रयोजन देते हैं-**अथ हीति**। यदि भव अर्थ में विहित प्रत्यय 'साऽस्य देवता' इस अर्थ में प्रकृतिमात्र से होंगे, अथ वा भवार्थ में विहित प्रत्यय मात्र 'साऽस्य देवता' अर्थ में प्राप्त होने लगेगा तो वे भववत्कृत नहीं होंगे।। **कालेभ्यो भववत्**।।

महाराजप्रोष्ठपदाट्ठञ् ४.२.३५

*** ठञ्प्रकरणे तदस्मिन्वर्त्तत इति नवयज्ञादिभ्य उपसंख्यानम् * ठञ्प्रकरणे तदस्मिन्वर्त्तत इति नवयज्ञादिभ्य उपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। नवयज्ञो वर्त्ततेऽस्मिन् काले नावयज्ञिकः। पाकयज्ञिकः * पूर्णमासादण् * पूर्णमासादण् वक्तव्यः। पूर्णमासो वर्त्ततेऽस्मिन्काले पौर्णमासी तिथिः।।** महाराजप्रोष्ठ।।

'साऽस्य देवता' का अधिकार है।

सूत्रार्थ—'साऽस्य देवता' इस अर्थ में महाराज और प्रोष्ठपद से ठञ्प्रत्यय हो'। महाराजो देवताऽस्येति माहाराजिकं हविः। प्रोष्ठपदो देवताऽस्येति प्रौष्ठपदिकं हविः।

सिद्धान्तवार्तिक—**ठञ्प्रकरण इति**। ठञ्प्रकरण में नवयज्ञ आदि गणपठितशब्दों से 'तदस्मिन्वर्तते' इस अर्थ में ठञ्प्रत्यय कहना चाहिये। नवयज्ञो स्मिन्वर्तत इति नावयज्ञिकः। पाकयज्ञिकोऽस्मिन्वर्तत इति पाकयज्ञिकः। **पूर्णमासादिति**। पूर्णमासो वर्ततेऽस्मिन्काल इति पौर्णमासी तिथिः।। **महाराजप्रोष्ठ-**।।

पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः ४.२.३६

पितृव्यमातुलेति किं निपात्यते? * पितृमातृभ्यां भ्रातरि व्यड्डुलचौ *

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पितृमातृभ्यां भ्रातरि व्यड्डुलचौ प्रत्ययौ निपात्येते। भ्रातुर्भ्राता भ्रातृव्यः। मातुर्भ्राता मातुलः।

सूत्रार्थ—'पितृव्य, मातुल, मातामह और पितामह शब्द निपातित हैं'।

प्रश्नभाष्य—**पितृव्येति**। पितृव्य और मातृलशब्द में क्या निपातन है?

उत्तरभाष्य—**पितृमातृभ्यामिति**। पितृ और मातृ शब्द से भ्रातृ अर्थ में क्रमशः व्यत् और डुलच्प्रत्यय निपातन से है। पितुर्भ्राता पितृव्यः। मातुर्भ्राता मातुलः। यहाँ डुलच्प्रत्यय के डित् होने से डित्त्वसामर्थ्य से टिलोप है।

मातामहपितामहेति किं निपात्यते? * पितृमातृभ्यां पितरि डामहच् * पितृमातृभ्यां पितरि डामहच् प्रत्ययो निपात्यते। मातुः पिता मातामहः। पितुः पिता पितामहः * मातरि षिच्च * मातृपितृभ्यां मातरि डामहच् षिच्च वक्तव्यः। पितुर्माता पितामही। मातुर्माता मातामही * महो वा छन्दस्यानङोऽवग्रहदर्शनात् * महो वा पुनरेष भविष्यति। 'छन्दस्यानङोऽवग्रहदर्शनात्'। छन्दस्यानङोऽवग्रहो दृश्यते- मातामहः पितामह इति।

प्रश्नभाष्य—**मातामहेति**। मातामह और पितामह में क्या प्रत्यय है?

उत्तरभाष्य—**मातृपितृभ्यामिति**। पिता अर्थ में मातृ और पितृ शब्द डामहच् प्रत्यय है। डित्त्वसामर्थ्य से टिलोप हो कर-'मातुः पिता मातामहः, पितुः पिता पितामहः'।

वार्तिककार—**मातरि षिच्चेति**। मातृ और पितृ शब्द से मातृ अर्थ वाच्य होने पर डामहष् प्रत्यय कहना चाहिये। इससे षित्सामर्थ्य से 'षिद्गौरादिभ्यश्च' ४.१.४१ से ङीष् हो कर-'मातुर्माता मातामही, पितुर्माता पितामही' रूप होता है। **महो वेति**। वेद में 'माता-महः, पिता-महः' ऐसा आनङ् का अवग्रह देखा जाता है; अतः मातृ और पितृशब्द से पिता अर्थ में मात्र 'मह' प्रत्यय ही करना चाहिये। 'मह' प्रत्यय करने पर माता अर्थ में उसी के षित् होने से मातामही, पितामही रूप हो जायेगा।

*** अवेदुग्र्धे सोढदूसमरीसचः * अवेदुग्र्धे सोढदूसमरीसच इत्येते प्रत्यया वक्तव्याः। अविसोढम्। अविदूसम्। अविमरीसम् * तिलान्निष्फलात् पिञ्जपेजौ * तिलान्निष्फलात्पिञ्जपेजौ वक्तव्यौ। तिलपिञ्जः। तिलपेजः * पिञ्जः छन्दसि डिच्च * पिञ्जः छन्दसि, डिच्च वक्तव्यः। तिल्पिञ्जं दण्डानतम्।।** पितृव्यमातुलमातामह।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अवेर्दुग्ध इति। अवि पद से दुग्ध अर्थ में 'सोढ, दूस' और 'मरीसच्' प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे-'अवेर्दुग्धम्=अविसोढम्,अविदूसम्, अविमरीसम्'। सकारोच्चारणसामर्थ्य से अविसोढम् में षत्व नहीं होता है, अन्यथा यदि यहाँ आचार्य को षत्व इष्ट होता तो पत्वविशिष्ट 'षोढ' ऐसा प्रत्ययविधान करते। इसी तरह दूस और मरीस में भी सकार का षत्वाभाव समझना चाहिये। **तिलादिति**-फलस्याभावो निष्फलं, तस्मात्। फलरहित ओषधिविशेष का वाचक तिल पद से पिञ्ज और पेज प्रत्यय कहना चाहिये। तिलो=धान्यविशेषः। तिलपिञ्जः, तिलपेजः=फलरहित। फल लगने के समय जब फल न लगे तब यह शब्दप्रयोग होता है।

अन्य वार्तिककार—**पिञ्ज इति**। फलरहित ओषधिविशेष का वाचक तिल पद को वेद में डित् पिञ्जादेश हो। डित् होने से अन्त्य अल् के स्थान पर-पिञ्जादेश हो करतिलपिञ्जम् रूप है।। **पितृव्यमातुल**।।

भिक्षादिभ्योऽण् ४.२.३८

किमर्थं भिक्षादिषु युवतिशब्दः पठ्यते, न 'तस्य समूह' इत्येव सिद्धम्? न सिध्यति-उदात्तादिलक्षणोऽञ्प्राप्नोति तद्बाधनार्थम्। अत उत्तरं पठति- * भिक्षादिषु युवतिग्रहणानर्थक्यं, पुंवद्भावस्य सिद्धत्वात् *** प्रत्ययविधौ भिक्षादिषु युवतिग्रहणमनर्थकम्। किं कारणम्? 'पुंवद्भावस्य सिद्धत्वात्'। प्रत्ययविधौ पुंवद्भावोऽत्र भविष्यति-'भस्याऽढे तद्धिते पुंवद्भवती'ति *** सिद्धश्च प्रत्ययविधौ *** स च सिद्धः प्रत्ययविधौ *** भिक्षादिभ्योऽण् *****

यहाँ पूर्व सूत्र 'तस्य समूहः' ४.२.३७ की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'भिक्षादिगण पठित प्रातिपदिक से 'तस्य समूहः' इस अर्थ में अण् प्रत्यय हो'। भिक्षां समूहो भैक्षम्। गर्भिणीनां समूहो गार्भिणम्। युवतीनां समूहो यौवनम्।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। आचार्य भिक्षादिगण में युवतिशब्द क्यों पढते हैं? यदि भिक्षादिगण में युवति पद का ग्रहण का फल 'युवतीनां समूहो यौवनम्' है तो क्या यह फल 'तस्य समूहः' ४.२.३७ से सिद्ध नहीं हो जाता है?; 'प्राग्दीव्यतोऽण्' ४.१.८३ से 'अण्' की अनुवृत्ति 'तस्य समूह'' में होने से 'यौवनम्' में अण् सिद्ध हो सकता था?

अन्य आचार्य—**न सिध्यतीति**। 'युवतीनां समूहः' इस अर्थ में 'अनुदात्तादेरञ्'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४.१.४४ से अञ् प्राप्त है, उसका अपवाद अण्विधान करने के लिए भिक्षदिगण में युवतिशब्द का पाठ है।

उत्तरभाष्य—**भिक्षादिष्विति**। प्रत्ययविधि की कर्त्तव्यता में 'भस्य ढे तद्धिते' वा.३९२८ से पुंवद्भाव हो जाने से 'युवन्+अण्=यौवनम्' यही रूप होगा; अतः रूपभेद नहीं होने से भिक्षादिगण में युवतिशब्द का पाठ व्यर्थ है। **सिद्धश्चेति**। प्रत्ययविधि की कर्त्तव्यता में पुंवद्भाव सिद्ध है; अतः पहले पुंवद्भाव होगा तथा बाद में प्रत्यय होगा। पुंवद्भाव होने पर आद्युदात्त के द्वारा अण् सिद्ध हो जायेगा।। **भिक्षादिभ्योऽण्**।।

गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्र-वत्समनुष्याजाद् वुञ् ४.२.३९

*** वृद्धाच्च * वृद्धाच्चेति वक्तव्यम्। वृद्धानां समूहो वार्द्धकम् * अञो वुञ्विप्रतिषिद्धम् * अञो वुञ्भवति विप्रतिषेधेन। अञोऽवकाशः-कपोत-कापोतम्। वुञोऽवकाशः-ग्लुचुकायनि-ग्लौचुकायनकम्। इहोभयं प्राप्नोति-औपगवकम्। कापटवकम्। वुञ्भवति विप्रतिषेधेन।**

सूत्रार्थ—'गोत्र-गोत्रप्रत्ययान्त, उक्षन्, उष्ट्र, उरभ्र, राजन्, राजन्य, राजपुत्र, वत्स, मनुष्य और अज इन प्रातिपदिकों से 'तस्य समूहः' ४.२.३७ अर्थ में वुञ् प्रत्यय हो'। यहाँ प्रवराध्याय में परिगणित लौकिकगोत्र पुत्र, पौत्रप्रभृति अपत्य-मात्र का ग्रहण है, पारिभाषिक का नहीं। यहाँ लौकिकगोत्र ग्रहण में 'स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्' ४.१.८७ सूत्र में भाष्यकार ने स्पष्ट किया है कि-'अपत्याधिकार से अन्यत्र लौकिक गोत्र ही गृहीत हैं, पारिभाषिक नहीं'। ग्लुचुकायनीयानां समूहो ग्लौचुकायनकम्। उक्ष्णां समूह औक्षकम् इत्यादि।

वृद्धाच्चेति। यहाँ वृद्धशब्द से स्वरूप का ग्रहण है, संज्ञा का नहीं। वृद्धशब्द से समूह अर्थ में वुञ्प्रत्यय हो-वृद्धानां समूहो वार्द्धकम्। **अञो वुञिति**-अञ् और वुन् दोनों प्राप्त होने पर पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा अञ् का बाध कर वुञ् प्रत्यय होता है। 'लघावन्ते द्वयोश्च बह्वषो गुरुः'फि.सू.४२ से मध्योदात्त होने से कपोतशब्द अनुदात्तादि है। 'कपोतानां समूहः कापोतम्' में 'अनुदात्तादेरञ्' ४.२.४४ चरितार्थ है; एवं 'ग्लुचुकायनीनां समूहो ग्लौचुकायनकम्' में वुञ्चरितार्थ है। 'औपगवकम्, कापटवकम्' में अञ् एवं वुञ् दोनों प्राप्त है। पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा वुञ् से अञ् का बाध होता है।

स तर्हि पूर्वविप्रतिषेधो वक्तव्यः? न वक्तव्यः- वक्ष्यत्येतत्-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'पूर्वोऽपि वुञ्परमञं बाधते' इति। अथ वा इष्टवाची परशब्दः-'विप्रतिषेधे परं यदिष्टं तद्भवती'ति *ठक्तु विप्रतिषेधात्* ठक्तु भवत्यञो विप्रतिषेधेन। ठकोऽवकाशः-सक्तु-साक्तुकम्। अञः स एव। इहोभयं प्राप्नोति-आपूपिकम्। शाष्कुलिकम्। मौदकिकम्। ठग्भवति विप्रतिषेधेन।। गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्य।।

इतर आचार्य—**स तर्हीति**। तो क्या यह पूर्वविप्रतिषेध कहना चाहिये?

उत्तरपक्षी—**न वक्तव्य इति**। इसकी आवश्यकता नहीं है। आगे आचार्य बतायेंगे-वुञ् पूर्व हो कर पर अञ् का बाध करता है। यदि इस वचन का अनादर किया जाये तो सूत्रमत में भी यहाँ पूर्व से पर का बाध होता है; इसे स्पष्ट करते हैं-**अथ वेति**। 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' १.४.२ सूत्र में पर शब्द इष्टवाची है। 'विप्रतिषेधे सति यदिष्टं तद्भवतु' ऐसा कहने से जहाँ पूर्वविप्रतिषेध इष्ट है वहाँ पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा कार्य होगा; एवं जहाँ परविप्रतिषेध इष्ट है वहाँ परविप्रतिषेध के द्वारा कार्य होगा; इससे सर्वत्र इष्टसिद्धि हो जायेगी; अतः इसी के लिए प्रकृत में 'पूर्वोऽपि वुञ् परमञं बाधते' यह कहने की आवश्यकता नहीं होगी। **ठक् त्विति**। परन्तु परविप्रतिषेध के द्वारा ठक् से वुञ् का बाध होता है। सक्तूनां समूहः साक्तुकम्' में 'अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्' ४.२.४६ चरितार्थ है; एवं अञ् का अवकाश **'स एव=कापोतम्'** है। शष्कुलीशब्द ङीषन्त अन्तोदात्त होने से अनुदात्तादि है। 'अपूपानां समूह आपूपिकम्, शष्कुलीनां समूहः शाष्कुलिकम्, मोदकानां समूहो मौदकिकम्' में अञ् और ठक् दोनों प्राप्त हैं। परविप्रतिषेध के द्वारा ठक् से अञ् का बाध होता है।। **गोत्रोक्षोष्ट्रो-**।।

केदाराद्यञ्च ४.२.४०

***गणिकायाश्च* 'गणिकायाश्चे'ति वक्तव्यम्। गणिकानां समूहो गाणिक्यम्।।** केदाराद्यञ्च।।

सूत्र में 'च' पद का ग्रहण किया गया है; अतः उसके द्वारा पूर्वसूत्र से 'वुञ्' की अनुवृत्ति होगी।

सूत्रार्थ—'केदारशब्द से 'तस्य समूहः' इस अर्थ में यञ् और वुञ् प्रत्यय हो'। केदाराणां समूहः कैदार्यम्, कैदारकम्।

वार्तिककार—**गणिकाया इति**। 'तस्य समूहः' अर्थ में गणिका पद से भी यञ् प्रत्यय कहना चाहिये। गणिकानां समूहो गाणिक्यम्।। **केदाराद्यञ् च**।।

ब्राह्मणमाणवबाडवाद्यन् ४.२.४१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किमर्थं ब्राह्मणादिभ्यो यन्विधीयते, न यञ्प्रकृतस्सोऽनुवर्त्तिष्यते, न ह्यस्ति विशेषो ब्राह्मणादिभ्यो यनो वा यञो वा-तदेव रूपं स एव स्वरः? एवं तर्हि सिद्धे सति तद् ब्राह्मणादिभ्यो यनं शास्ति तज्ज्ञापयत्याचार्योऽन्येभ्योऽप्ययं भवतीति। किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम्? यन्प्रकरणे पृष्ठादुपसंख्यानं चोदयिष्यति तन्न वक्तव्यं भवति * यन्प्रकरणे पृष्ठादुपसंख्यानम् * यन्प्रकरणे पृष्ठादुपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। पृष्ठानां समूहः पृष्ठ्यः षडहः।

यहाँ 'ब्राह्मण, माणव और वाडव पद का समाहार द्वन्द्व हो कर पञ्चमी-एकवचन है।

सूत्रार्थ—'ब्राह्मण, माणव और वाडव पद से 'तस्य समूहः' इस अर्थ में यन् प्रत्यय हो'। ब्राह्मणानां समूहो ब्राह्मण्यम्, माणवानां समूहो माणव्यम्, वाडवानां समूहो वाडव्यम्।

पूर्वपक्षी—**किमर्थमिति**। ब्राह्मण आदि प्रातिपदिक से यन् प्रत्यय का क्यों विधान किया जा रहा है? प्रातिपदिकमात्र का परिगणन कर देते, केदाराद्यञ् च' ४.२.४० से यञ् की अनुवृत्ति हो जाती। ब्राह्मणादि से यञ् अथ वा यन् होने में कोई रूपभेद नहीं है, एवं स्वरभेद भी नहीं है; अतः कोई विशेष नहीं होने से यन् पाठ को व्यर्थ मान कर पूर्वपक्ष है।

ज्ञापनवादी आचार्य—**एवन्तर्हीति**। यञ् अनुवृत्ति के द्वारा इष्टसिद्धि होने पर भी आचार्य ने जो यन् विधान किया वह व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा-'ब्राह्मणादि से अन्य से भी यन् प्रत्यय होता है'। इस ज्ञापन का फल देते हैं-**यन्प्रकरण इति**। वार्तिककार 'यन्प्रकरणे पृष्ठादुपसंख्यानम्' ऐसा वार्तिक पढेंगे; उसे नहीं पढना पडता है, यही फल है। पृष्ठानां समूहः पृष्ठ्यः षडहः। 'पृष्ठैः स्तुवतः' इस श्रुति के आधार पर श्रोत्रियविशेष की संज्ञा पृष्ठ्य भी है। तद्वति तदुपचारवशात् 'पृष्ठः षडहः' कहा है।। **ब्राह्मण-**।।

ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् ४.२.४३

* गजसहायाभ्यां च * 'गजसहायाभ्यां चे'ति वक्तव्यम्। गजता। सहायता * अह्नः खः * अह्नः खो वक्तव्यः। अह्नां समूहोऽहीनः * क्रतौ * क्रताविति वक्तव्यम्। इह मा भूद्-आह्नाय धूतपाप्मानो भाष्कराजितमृत्यवः' * पर्श्वा सण् * पर्श्वा सण्वक्तव्यः। पर्शूनां समूहः पार्श्वम्। यदि सण्क्रियते इत्संज्ञा न प्राप्नोति। एवन्तर्हि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

णस् वक्तव्यः ।। ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् ।।

सूत्रार्थ—'ग्राम, जन और बन्धु पद से 'तस्य तमूहः' अर्थ में तल् प्रत्यय हो'। जैसे-'ग्रामाणां समूहो ग्रामता, जनानां समूहो जनता, बन्धूनां समूहो बन्धुता'।

वार्तिक—**गजसहायाभ्यामिति**। गज और सहाय पद से 'तस्य समूहः' अर्थ में तल् कहना चाहिये-गजानां समूहो गजता। सहायानां समूहो सहायता। अह्नः ख इति। अहन् पद से 'तस्य समूहः' अर्थ में ख प्रत्यय कहना चाहिये-अह्नां समूहोऽहीनः। **क्रताविति**। क्रतु अर्थ गम्य होने पर अहन्शब्द से अञ् प्रत्यय कहना चाहिये। 'आह्नाय धूतपाप्मानो भाष्कराजितमृत्यवः' इत्यादि प्रयोग में अहन्शब्द क्रतु अर्थ में शक्त है। उससे अञ् हो कर आह्नशब्द का चतुर्थ्यन्त आह्नाय रूप है। **पर्श्वा सणिति**। पर्शूशब्द से 'तस्य समूहः' अर्थ में णस् प्रत्यय कहना चाहिये-पर्शूनां समूहः पार्श्वम्।

पूर्वपक्षी—**यदि सणिति**। सण् प्रत्यय करेंगे तो सकार की इत्संज्ञा नहीं हो सकेगी।

उत्तरभाष्य—**एवन्तर्हीति**। यदि सण् कहने से सकार की इत्संज्ञा नहीं होती है तो णस् कर लीजिये। इससे अन्त्य हल् की 'हलन्त्यम्' १.३.३. से इत्संज्ञा हो जायेगी।। **ग्रामजन-**।।

खण्डिकादिभ्यश्च ४.२.४५

खण्डिका। शुक। उलूक। **किमर्थं खण्डिकादिषूलूकशब्दः पठ्यते, नाऽनुदात्तादेरित्येव सिद्धम्? न सिध्यति,- चाषोलूकयोश्छन्दस्याद्युदात्तः प्रयोगो दृश्यते-चाषेण किकीदिविना। यदुलूको वदति। नैतयोश्छन्दसि सामूहिको दृश्यते, यत्र च स दृश्यते तत्रैतावनुदात्तादी।**

सूत्रार्थ—'खण्डिकादिगणपठितशब्दों से 'तस्य समूहः' अर्थ में अञ् प्रत्यय हो'। खण्डिकानां समूहः खाण्डिकम्। शुकानां समूहः शौकम्। उलूकानां समूह औलूकम्।

पूर्वपक्षी—**किमर्थमिति**। 'लघावन्ते द्वयोश्च गुरुः' फि.सू.४२ से उलूकशब्द मध्योदात्त है। 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' ६.१.१५८ से शेषनिघात के द्वारा उलूकशब्द अनुदात्तादि हुआ; अतः यहाँ 'तस्य समूहः' अर्थ में 'अनुदात्तादोरन्' से ही अञ् सिद्ध था; पुनः उसी के लिए खण्डिकादिगण में उलूकशब्द का पाठ क्यों किया गया है?

अन्य आचार्य—**न सिध्यतीति**। श्रुति में 'चाषेण किकीदिविना' एवं 'यदुलूको

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वदति' इत्यादि में चाष और उलूक शब्द आद्युदात्त देखा गया है; अतः अनुदात्तादि नहीं होने से समूह अर्थ में षष्ठ्यन्त उलूक पद से अञ् प्राप्त नहीं है, अतः अञ्विधानार्थ खण्डिकादिगण में पाठ किया गया है।

पूर्वपक्षी—**नैतयोरिति**। चाष और उलूकशब्द का वेद में समूह अर्थ में प्रयोग नहीं है। जहाँ समूह अर्थ में प्रत्ययान्त चाष और उलूकशब्द का प्रयोग देखा जाता है वहाँ ये अनुदात्तादि हैं; अतः 'अनुदात्तादेरञ्' ४.२.४४ से अञ् सिद्ध था, पुनः गणपाठ में उलूकशब्द का परिगणन क्यों है? चष भक्षणे धा.पा.८८६ धातु से 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' ३.१.१३४ से अच् हो कर अजन्त चाष शब्द अन्तोदात्त है। शेषनिघात के द्वारा अनुदात्त होने से अनुदात्तादि चाष से अञ्प्राप्त मान कर भाष्यकार ने निराकरण किया है। पूर्वपक्षी ने मात्र उलूकशब्द के वारे में ही प्रश्न किया है; परन्तु उत्तरपक्षी ने चापशब्द पर भी विचार किया है, अतः खण्डिकादिगण में चापशब्द का पाठ होना सिद्ध होता है।

इदं तर्हि प्रयोजनम्-अयमौलूक्यो गोत्रन्तत्र गोत्राश्रयो वुञ्प्राप्तस्तद्बाधनार्थम्। एतदपि नास्ति प्रयोजनम्,- बहुवचनान्तानां हि सामूहिकः, बहुषु च लुक्, तत्र लुकि कृतेऽनुदात्तादेरित्येव सिद्धम्। न सिध्यति। 'गोत्रे लुगची'त्यलुक्प्राप्नोति * अञ्सिद्धिरनुदात्तादेः कोऽर्थः क्षुद्रकमालवात् * **'अनुदात्तादे'रित्येवाऽञ्सिद्धः, किमर्थं क्षुद्रकमालवशब्दः खण्डिकादिषु पठ्यते? गोत्राश्रयो वुञ्प्राप्तस्तद् बाधनार्थम्।**

प्रयोजनवादी आचार्य औलूक्यग्रहण का प्रयोजन बताते हैं—**इदं तर्हीति**। उलूकस्य गोत्रापत्यम् औलूक्यम्, 'गर्गादिभ्यो यञ्' ४.१.१०५ से गर्गादि यञन्त औलूक्यशब्द है। 'गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्य-' ४.२.३९ से गोत्राश्रय वुञ् प्राप्त था, उसका बाध करने के लिए आचार्य ने खण्डिकादिगण में चाषशब्द का पाठ किया है।

अन्य आचार्य—**एतदपीति**। गणपाठ में उलूकशब्द के पाठ का यह भी प्रयोजन नहीं है; इसे स्पष्ट करते हैं-**बहुवचनान्तानामिति**। बहुतों का समूह होने से बहुवचनान्त ही सामूहिक है। बहुवचन में 'यञिञोश्च' २.४.६४ से यञ् का लुक् होता है। यञ्लुक् होने पर उलूकशब्द अनुदात्तादि ही होगा; अतः 'अनुदात्तादेरञ्' ४.२.४४ के द्वारा यहाँ अञ् सिद्ध है।

इतर आचार्य—**न सिध्यतीति**। अच्प्रत्यय की कर्त्तव्यता में गोत्र अर्थ में विहित प्रत्यय का अलुक् प्राप्त है; अतः गोत्राश्रय वुञ्प्राप्त होने पर तद्बाधनार्थ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गण में उलूक पद का पाठ सार्थक है। इससे यह सम झना चाहिये कि कृत यङ्लुक् उलूकशब्द का अनुकरण कर गण में निर्देश किया गया है।

पूर्वपक्षी—**अञ्सिद्धिरिति**। क्षुद्रक और मालवशब्द से भी 'अनुदात्तादेरञ्' ४.२.४४ से अञ् सिद्ध था, पुनः गणपाठ में इनका परिगणन क्यों किया गया है? 'क्षुद्रकस्यापत्यानि' इस अर्थ में 'जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्' ४.१.१६८ से विहित अञ् का 'तद्राजस्य बहुषु तेनैवाऽस्त्रियाम्' २.४.62 से लुक् है; एवं पद से 'वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्' ४.१.१७१ के द्वारा विहित ञ्यङ् का 'तद्राजस्य बहुषु-' 2.४.६२ से लुक् है। इसके बाद समाहारद्वन्द्व, एवं 'समासस्य' ६.१.२२३ के द्वारा समासान्तोदात्त होने से क्षुद्रक और मालवशब्द अनुदात्तादि है; अतः 'अनुदात्तादेरञ्' ४.२.४४ के द्वारा अञ् सिद्ध था, पुनः खण्डिकादिगध में इनका पाठ क्यों किया गया है?

उत्तरपक्षी—**गोत्राश्रय इति**। इनसे 'गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्र- राजराजन्य-' ४.२.३९ से गोत्राश्रय वुञ् प्राप्त था, उसका बाध करने के लिए गण में पाठ किया गया है।

*** गोत्राद्वुञ् न च तद्गोत्रम् * गोत्राद् वुञ्भवतीत्युच्यते, न च क्षुद्रकमालवशब्दो गोत्रम्। न च गोत्रसमुदायो गोत्रग्रहणेन गृह्यते। तद्यथा-न जनपदसमुदायो जनपदग्रहणेन गृह्यते। काशिकोसलीया इति वुञ्न भवति। तदन्तविधिना प्राप्नोति * तदन्तान्न स सर्वतः * परिगणितेषु कार्येषु स तदन्तविधिः, न चेदं तत्र परिगण्यते * ज्ञापकं स्यात्तदन्तत्वे * एवन्तर्हि ज्ञापत्याचार्यो-'भवतीह तदन्तविधिरि'ति।**

अन्य आचार्य—**गोत्राद्वुञ्नेति**। 'गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्य-'४.२.३९ के द्वारा गोत्रप्रत्ययान्त से वुञ्प्रत्यय कहा जा रहा है। क्षुद्रक और मालवशब्द गोत्रप्रत्ययान्त नहीं है। 'न च'-यहाँ 'च'शब्द 'हि' के अर्थ में है। गोत्रसमुदाय गोत्रपद से गृहीत है। जैसे जनपदसमुदाय के जनपदशब्द से गृहीत नहीं होने के कारण 'कोसलीयाः' में 'अवृद्धादपि बहुवचनविषयात्' ४.२.१२५ से वुञ् नहीं होता है।

अन्य आचार्य—**तदन्तविधिनेति**। यहाँ **तदन्त**=गोत्रप्रत्ययान्त मान कर तदन्तविधि के द्वारा क्षुद्रक और मालवशब्द से वुञ् प्राप्त होगा। यद्यपि क्षुद्रक और मालव लौकिक गोत्र नहीं है, तथापि यहाँ तत्त्वारोप करके कहा जा रहा है।

निषेधभाष्य—**तदन्तान्नेति**। 'येन विधिस्तदन्तस्य' १.१.७२ सूत्र पर तदन्त विधि में उगित् और वर्णग्रहण ही इष्ट है। 'समासप्रत्ययविधौ प्रतिषेधः'वा.५४५ का निषेधक 'उगिद्वर्णग्रहणवर्जम्' वा.५४६ ऐसा परिगणन किया गया है। इसी में तदन्तविधि होगा, सर्वत्र नहीं। '**न चेदम्**'-गोत्रप्रत्ययान्त, **तत्र**='उगिद्वर्णग्रहणवर्जम्'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में परिगणित नहीं है; अतः यहाँ तदन्त से भी वुञ्प्राप्त नहीं है।

अन्य आचार्य—**ज्ञापकमिति**। खण्डिकादिगण में मालव और क्षुद्रकशब्द का पाठ कर आचार्य ज्ञापन करते हैं-'इह-समूहप्रकरण में तदन्तविधि होती ही है'। इस तरह यहाँ तदन्तविधि के द्वारा वुञ्प्राप्त था, जिसका बाध करने के लिए खण्डिकादिगण में क्षुद्रक और मालवशब्द का पाठ किया गया है।

*** तथा चापिशलेर्विधिः * एवं च कृत्वाऽऽपिशलेराचार्यस्य विधिरुपपन्नो भवति-'धेनुरनञि- कमुत्पादयति'। धेनूनां समूहो धैनुकम्। अनञीति किमर्थम्? अधेनूनां समूह-आधेनवम् * सेनायां नियमार्थं वा * अथ वा निमार्थोऽयमारम्भः- क्षुद्रकमालवशब्दात् सेनायामेव। क्व मा भूत्? क्षौद्रकमालवम् अन्यदिति।**

अथा चापिशलेरिति। यदि समूहप्रकरण में तदन्तविधि न माना जाये तो आपिशलि आचार्य द्वारा 'धेनुरनञि कमुत्पादयति' सूत्र में 'अनञि'निषेध व्यर्थ पड जायेगा। समूहप्रकरण में तदन्तविधि मानने पर ही 'अनञि'प्रतिषेध सार्थक होता है-धेनूनां समूहो धैनुकम्। परन्तु यदि नञ्समास कर दिया जाये तो 'अधेनूनां समूहः' इस विग्रह में नञ्युक्त अधेनु पद से क प्रत्यय नहीं होगा; अपि तु 'तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः' ६.२.२ के द्वारा पूर्वपद प्रकृतिस्वर हो कर आद्युदात्त होने से अण् प्रत्यय, अथ वा 'उत्सादिभ्योऽञ्' ४.१.८६ के द्वारा अञ् प्रत्यय हो कर 'आधेनुकम्' रूप है। उत्सादिगण में 'वष्कयासे' शब्द परिगणित है। 'समासप्रत्ययविधौ प्रतिषेधः' वा.५४५ के द्वारा समास में तदन्तविधि का निषेध होने से यहाँ तदन्तविधि है; अतः धेनुशब्द पठित होने पर भी तदन्त से प्रत्यय है। अथ वा 'जङ्गलधेनुवलजान्तस्य विभाषितमुत्तरम्' ७.३.२५ से उत्तरपद की वृद्धि है। **सेनायामिति**-अथ वा नियमार्थ इति। यहाँ 'वा'शब्द समुच्चय अर्थ में है। अथ वा क्षुद्रक, मालवशब्द से सेना अर्थ वाच्य होने पर सेनारूप समूह में ही अञ्प्रत्यय हो कर 'क्षौद्रकः, मालवः' रूप होता है। इससे भिन्न अर्थ में वुञ्प्रत्यय हो कर 'क्षौद्रकम्, मालवकम्' रूप होगा।

*** यथा बाध्येत वाऽञ् वुञा * अथ वा ज्ञापयत्याचार्यः-''पूर्वोऽपि वुञ् परमञं बाधत' इति। ननु चोक्तं-'गोत्राद्वुञ् न च तद् गोत्रमि'ति। तदन्तविधिना प्राप्नोति। ननु चोक्तं-'तदन्तान्न स सर्वतः' इति * ज्ञापकं स्यात्तदन्तत्वे * एवं तर्हि ज्ञापयत्याचार्यो-'भवतीह तदन्तविधिरि'ति। कथं पुनरेतदुभयं शक्यं ज्ञापयितुम्-'भवति**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

च तदन्तविधिः, पूर्वश्च वुञ्परमञं बाधत'-इति? उभयं ज्ञाप्यते।

यथा बाध्येतेति। अथ वा आचार्य ज्ञापन करते हैं-'पूर्व सूत्र 'गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्राजराजन्य-'४.२.३९ के द्वारा विहित अञ् का बाधक होता है'। अत एव आचार्य द्वारा खण्डिकादिगण में क्षुद्रक और मालवशब्द का पाठ किया गया है। इससे पूर्व में वार्तिककार ने 'गोत्राद्वुञ् न च तद् गोत्रम्' ऐसा कहा था; इस आपत्ति का वारण करते हैं-**तदन्तविधिनेति**। यहाँ तदन्तविधि के द्वारा वुञ् प्राप्त हो जायेगा। तदन्तविधि को भी 'उगिद्वर्णग्रहणवर्जम्' ऐसा कहने से क्षुद्रक और मालव से तदन्त की आपत्ति दिखायी थी, उसका वारण कर रहे हैं-**ज्ञापकं स्यादिति**। आचार्य ज्ञापन करते हैं-इह='तस्य समूहः' ४.२.३७ प्रकरण में तदन्तविधि होता है।

अन्य आचार्य—**कथं पुनरिति**। एक ही अञ्प्रत्यय के विधान से दो प्रकार का ज्ञापन कैसे किया गया है? पहला है-'तस्य समूहः'प्रकरण में तदन्तविधि होता है। एवं दूसरा है-'पूर्व वुञ् भी पर अञ् को बाधता है। यहाँ मात्र अञ्विधान से दो प्रकार का ज्ञापकत्व कैसे आया?

उत्तरपक्षी—**उभयमिति**। अन्यथा नुपपत्ति से ज्ञापकत्व होता है; एवम् उभय के विना क्षुद्रक और मालवशब्द से अञ्विधान उपपन्न नहीं हो पा रहा है; अतः अञ्विधान का उभयनिरूपित ज्ञापकत्व है।

*** अञ्प्रकरणे क्षुद्रकमालवात्सेनासंज्ञायाम् * अञ्प्रकरणे क्षुद्रकमालवात्सेनासंज्ञायामिति वक्तव्यम्। क्षौद्रकमालवी सेना चेत्। क्व मा भूत्? क्षौद्रकमालवकमन्यदिति।**

अञ्सिद्धिरनुदात्तादेः कोऽर्थः क्षुद्रकमालवात्।
गोत्राद्वुञ् न च तद्गोत्रं तदन्तान्न स सर्वतः।।

ज्ञापकं स्यात्तदन्तत्वे तथा चाऽऽपिशलेर्विधिः।
सेनायां नियमार्थं वा यथा बाध्येत वाऽञ्वुञा।।

वार्तिककार—**अञ्प्रकरण इति**। गण में 'क्षुद्रकमालवात्' यही अखण्ड पाठ है। वार्तिककार उसका नियमन करते हैं। 'क्षुद्रकमालवात्' इसमें योगविभाग से दो अर्थों में का ज्ञापन करना चाहिये। इसके बाद 'सेनासंज्ञा' अर्थ में नियम करना चाहिये-'सेनासंज्ञा अर्थ गम्य होने पर 'क्षुद्रकमालव' पद से ही अञ् करना चाहिये-क्षौद्रकमालवी सेना। तद्भिन्न अर्थ गम्य होने पर 'क्षौद्रकमालवकम्' ऐसा वुञन्त रूप होगा। सेना अर्थ गम्य होने पर अञ् से वुञ् कर बाध

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है; तद्भिन्न से वुञ्प्रत्यय है।

उपर व्याख्यात वार्तिकों का ही यहाँ श्लोकमुखेन संग्रह है, अतः पुनरुक्ति के भय से पुनः अर्थ नहीं किया गया है।। खण्डि-।।

पाशादिभ्यो यः ४.२.४९

पाश। तृण। धूम। वात।

*** पृथग्वातादर्शनादसमूहः * पृथग्वाताऽदर्शनादयुक्तोऽयं वातशब्दस्य सामूहिके पाठः। न हि पृथग्वाता दृश्यन्ते। न तर्हीदानीमिदं भवति-वात्येति? भवति। शीघ्रत्वे तु। शीघ्रो वातो वात्या। अथ वा पृथग्वाता अपि दृश्यन्ते। तद्यथा-पूर्वो वातः। उत्तरो वातः। सर्वतो वातः। वाता वान्तु दिशो दश।**

सूत्रार्थ—'तस्य समूहः' अर्थ में पाशादिगणपठित शब्दों से य प्रत्यय हो'। पाश्या, तृण्या, धूम्या, वन्या, वात्या।

वातपरमाणु के अनेक होने पर भी वातसंज्ञक अवयवी एक है; अतः अनेकाश्रयरूप समूह की अनुपपत्ति होने से 'वातानां समूहः' इस अर्थ में प्रत्यय अप्राप्त होने से पाशादिगण में वातशब्द का पाठ को अयुक्त मान कर भाष्यकार कहते हैं-**पृथग्वातार्दनादिति**। पृथग्वात नहीं देखा जाता है।

अन्य आचार्य—**न तर्हीदानीमिति**। यदि पृथग्वात नहीं है तो 'वातानां समूहो वात्या' नहीं होना चाहिये?

भाष्यकार इसका अन्य प्रकार से समर्थन करते हैं—**भवतीति**। समूह अर्थ में वातशब्द से यत् नहीं होगा, अपि तु शीघ्र अर्थ में यत्प्रत्यय हो कर वात्या रूप होगा।

इसी पर पक्षान्तर कहते हैं-**अथ वेति**। अथ वा पृथग्वात भी देखा जाता है। जैसे दिशा के एक होने पर भी उपाधिभेद से दश दिशायें होती हैं वैसे अवयवी वात के एक होने पर भी अवयव के भिन्न होने से 'पूर्वेया हवा, उत्तरहिया हवा, चौवायी वयार, बहुत सी हवायें चलती हैं' इत्यादि प्रयोग होने से समूह अर्थ में भी वातशब्द से यत्प्रत्यय हो जायेगा।। **पाशादिभ्यो यः**।।

खलगोरथात् ४.२.५०

इनित्रकट्यचश्च ४.२.५१

*** खलादिभ्य इनिः * खलादिभ्य इनिर्वक्तव्यः। खलिनी। डाकिनी।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुटुम्बिनीति ।। खलगोरथात् ।।

सूत्रार्थ—'खल, गो और रथ पद से समूह अर्थ में यत्प्रत्यय कहना चाहिये'। खलानां समूहः खल्या, गवां समूहो गव्या, रथानां समूहो रथ्या। ४.२.५०.

'खलगोरथात्' की अनुवृत्ति 'इनित्रकट्यचश्च' सूत्र में है। यहाँ 'इनि, त्र' और 'कट्यच्' यह प्रत्ययमात्र का परिगणन है। अन्वय यथासंख्य होगा-'तस्य समूहः' अर्थ में खलशब्द से इनि, गोशब्द से त्र, और रथशब्द से कट्यच् प्रत्यय हो' यह सूत्रार्थ है। खलानां समूहः खलिनी, गवां समूहो गोत्रा, रथानां समूहो रथकट्या। यहाँ लोकानुरोध से स्त्रीत्व है। ४.२.५१.

वार्तिककार—**खलादिभ्य इति**। खलादिगणपठितशब्दों से 'तस्य समूहः' अर्थ में इनि प्रत्यय कहना चाहिये। डाकानां समूहो डाकिनी, कुटुम्बानां समूहः कुटुम्बिनी, यहाँ वार्तिककार का हृदय इस तरह समझना चाहिये-'इनित्रकट्यचश्च' सूत्र में इनिग्रहण नहीं करके 'गोरथ्यात्रकट्यचौ' सूत्र रखना चाहिये, एवं पृथक् 'खलादिभ्य इनि'' सूत्र करना चाहिये।। **खलगोरथात्** ।।

विषयो देशे ४.२.५२

***** विषयाभिधाने जनपदे लुब्बहुवचनविषयात् *** विषयाऽभिधाने जनपदे लुब्बहुवचनविषयाद् क्तव्यः। अङ्गानां विषयोऽङ्गाः। वङ्गाः। सुह्माः। पुण्ड्राः *** गान्धार्यादिभ्यो वा *** गान्धार्यादिभ्यो वेति वक्तव्यम्। गान्धारः, गान्धारयः। वासातः, वासातयः। शैबः, शिबयः।**

'समूहः' पद की यहाँ निवृत्ति है। 'तस्य समूहः' ४.२.३७ से मात्र 'तस्य' पद की यहाँ अनुवृत्ति है। 'तस्य विषयः' इस अर्थ में प्रथमोच्चरित षष्ठ्यन्त से प्रत्यय हो' यह अर्थ लब्ध है। यहाँ विषय पद से अत्यन्त परिशीलित अर्थ में प्रत्यय कहा गया है, वह यदि देश अर्थ में हो। यदि-'शिबीनां विषयो देशः शैबः=अत्यन्त परिचित देश। 'देशे' विशेषण देने से 'देवदत्तस्य विषयोऽनुवाकः' में अत्यन्त परिचित अनुवाक अर्थ है। यहाँ देश का बोध नहीं होने से प्रत्यय नहीं हुआ।

वार्तिक—**विषयाभिधान इति**। विषयाभिधान में बहुवचनान्तशब्द से जनपद अर्थ वाच्य होने पर पर में विहित प्रत्यय का लुप् कहना चाहिये। 'अङ्गानां निवासो जनपदः' इस वाक्य से स्वस्वामिभाव की प्रतीति नहीं होती है। परन्तु 'अङ्गानां विषयः' इस वाक्य से स्वस्वामिभाव की प्रतीति होती है, निवासार्थ की नहीं; अतः 'जनपदे लुप्' ४.२.८१ से चातुरर्थिक का विधीयमान लुप् 'विषयः'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस अर्थ में प्राप्त नहीं है; अतः वार्तिककार ने वचन पढा है। जैसे-'अङ्गानां विषयोऽङ्गाः, वङ्गानां विषयो वङ्गाः' सुह्मानां विषयो सुह्माः' पुण्ड्राणां विषयः पुण्ड्राः'। **गान्धार्यादिभ्यो वेति**। विषयाभिधान में बहुवचनान्त गान्धारि आदिशब्दों से पर में विहित प्रत्यय का जनपद अर्थ वाच्य होने पर विकल्प से लुप् कहना चाहिये। 'गान्धारस्यापत्यं गान्धारिः, गान्धारेपत्यानि इस अर्थ में गान्धारिपद से 'साल्वेयगान्धारिभ्यां च' ४.१.१६९ के द्वारा अञ् विहित है, उसका 'तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्' २.४.६२ के द्वारा लुक् है। पुनः 'गान्धारीणां विषयः' इस अर्थ में षष्ठीबहुवचनान्त गान्धारिशब्द से विहित अण् प्रत्यय का विकल्प से लुप्, एवं 'लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने' १.२.५१ से लिङ्गसंख्यातिदेश हो कर 'गान्धारः', लुप् नहीं होने पर 'गान्धारयः' रूप है। इसी तरह 'वासातः, वसातयः' में भी 'वसातस्यापत्यं वासतिः' एवं शैबः, शिबयः' में भी 'शिबस्यापत्यं शैबिः' इत्यादि में पूर्ववत् प्रत्यय करना चाहिये।

* राजन्यादिभ्यो वा वुञ् * **राजन्यादिभ्यो वा वुञ्वक्तव्यः। राजन्याः, राजन्यकः। दैवयातवाः दैवयातवकः** * बैल्ववनादिभ्यो नित्यम् * **'बैल्ववनादिभ्यो वुञ्नित्य'मिति वक्तव्यम्। बैल्ववनकः। आम्बरीषपुत्रकः। आत्मकामेयकः। तत्तर्हीदं बहु वक्तव्यम्?**

राजन्यादिभ्यो वेति। राजन्यादिगणपठितशब्दों से पर में विकल्प से वुञ् कहना चाहिये। शेष अर्थ पूर्ववत् है। 'राजन्यानां विषयो देशो राजन्यः'; औत्सर्गिक अण् का 'विषयाभिधाने जनपदे लुब्बहुवचनविषयात्' से लुप् है। परन्तु विधानसामर्थ्य से वुञ् का लुप् नहीं होगा। अण् पक्ष में-राजन्यः, दैवयातवाः। वुञ् पक्ष में-राजन्यकम्, दैवयातवकम् रूप है। **बैल्ववनादिभ्य इति**। बैल्ववन आदि गणपठित शब्दों से नित्य वुञ् कहना चाहिये। बैल्ववनानां विषयो देशो बैल्ववनकः। अम्बरीषपुत्राणां विषयो देश देश आम्बरीपपुत्रकः। आत्मकामेयानां विषयो देश आत्मकामेयकः।

पूर्वपक्षी—**तत्तर्हीदमिति**। कहीं पर उभयविवक्षा, कहीं पर विषयविवक्षा, कहीं पर लुब्विवक्षा, कहीं पर विकल्पविधि, कहीं पर वुञ्विकल्प कहा है। क्या यह बहुत सारा वचन कहना चाहिये?

* न वाऽभिधेयस्य निवासविषयत्वाद् निवासविवक्षायां लुब्विषयविवक्षायां प्रत्ययः * **न वा वक्तव्यम्। किं कारणम्? 'अभिधेयस्य निवासविषयत्वात्'। यदभिधेयं स निवासश्च विषयश्च। 'अभिधेयस्य निवासविषयत्वाद् निवासविवक्षायां लुप्, विषयविवक्षायां प्रत्ययः'।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अभिधेयस्य निवासविवक्षायां लुप्, विषयविवक्षायां प्रत्ययो भविष्यति। इदं तर्हि प्रयोजनम्-एतज्ज्ञास्यामि-'इह नित्यो विधिरिह विभाषे'ति। एतदपि नास्ति प्रयोजनं-यावता यदभिधेयं स निवासश्च, विषयश्च। 'अभिधेयस्य निवासविषयत्वाद् निवासविवक्षायां लुब्विषयविवक्षायां प्रत्यय' इत्येव।। विषयो देशे।।

उत्तरपक्षी—**न वेति**। यह बहुवक्तव्य नहीं कहना चाहिये। बहुवक्तव्य नहीं कहने में हेतु देते हैं-**अभिधेयस्येति**। अङ्गादिसम्बन्धी जनपदलक्षण अभिधेय की निवासरूपता और विषयरूपता है। यद्यपि विषय और निवास का परस्पर व्यभिचार है तथापि अङ्ग आदि का जो स्व विषय है, वही उनका निवास भी है। यहाँ एक के ही उभयरूप होने तथा तादृशप्रयोग देखे जाने से अङ्ग आदि में निवासविवक्षा ही करनी चाहिये। गान्धारि आदि राजन्य आदि में पर्याय से उभयविवक्षा एवं बैल्ववन आदि में विषयविवक्षा का ही आश्रयण करना चाहिये। इससे लुब्विधि से कोई प्रयोजन नहीं रह जाता है। वुञ्विकल्प से भी कोई प्रयोजन नहीं है। लुब्विकल्प से भी कोई प्रयोजन नहीं रह जाता है। एवं विकल्प का बाध करने पर नित्यवचन से भी कोई प्रयोजन नहीं रह जाता है।

अन्य आचार्य—**इदं तर्हीति**। इस बहुवक्तव्य का प्रयोजन यह है कि 'अमुक में नित्यविधि और अमुक में विकल्पविधि हो' इसका ज्ञान हो सके इसके लिए बहुवक्तव्य है।

इतर आचार्य—**एतदपि नास्तीति**। बहुवक्तव्य का यह भी प्रयोजन नहीं है। वह इस तरह कि जो अभिधेय है वह निवास भी है और विषय भी है। चूँकि अभिधेय निवास और विषय भी है, अतः 'निवासविवक्षा में लुप् और विषयविवक्षा में प्रत्यय हो' यही समझना चाहिये। इससे बहुवक्तव्य की विवक्षा नहीं होने से उपर्युक्त सभी वार्तिक व्यर्थ हो गये।। **विषयो देशे**।।

सोऽस्यादिरितिच्छन्दसः प्रगाथेषु ४.२.५५

* छन्दसः प्रत्ययविधाने नपुंसकात्स्वार्थ उपसंख्यानम् * **छन्दसः प्रत्ययविधाने नपुंसकात्स्वार्थ उपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। त्रिष्टुबेव त्रैष्टुभम्। अनुष्टुबेवाऽनुष्टुभम्। जगत्येव जागतम्।।** सोऽस्यादिरिति।।

अभ्यस्त ऋग्द्वय के एक पाद की आवृत्ति करने से ऋक्त्रय होता है। इसी को छन्दोगसूत्र और बह्वृच्सूत्र में प्रगाथशब्द से कहा गया है। षष्ठी-एकवचन के स्थान पर 'प्रगाथेषु' ऐसा सप्तमीबहुवचनान्त सौत्रप्रयोग है। 'सोऽस्य प्रगाथस्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आदिः' इस अर्थ में छन्दोविषयवाचक प्रथमान्त से अण् आदि प्रत्यय हों' यह सूत्रार्थ है। यहाँ अक्षर का इयत्ताविशेष गायत्री, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् आदि छन्दः लिए गये हैं। जैसे-'पङ्क्तरादिर्यस्येति पाङ्क्तः प्रगाथः' अण् प्रत्ययान्त है।

वार्तिक—**छन्दसः प्रत्ययविधान इति**। **छन्दसः**=अक्षर= इयत्ताविशेषवाची गायत्री, त्रिष्टुप् आदिशब्द से प्रत्ययविधान की कर्त्तव्यता में **नपुंसकात्**=नपुंसक अर्थ का वाचक प्रातिपदिक से स्वार्थ में अण् आदि प्रत्यय कहना चाहिये। यहाँ स्वार्थिक अण्प्रत्ययान्त त्रिष्टुप् आदि का ही नपुंसकार्थाभिधायित्व लिया गया है; उन्हीं से स्वार्थ में अण्प्रत्यय विहित है। जैसे-त्रिष्टुबेव त्रैष्टुभम्। अनुष्टुबेव आनुष्टुभम्। जगती एव जागतम्।। **सोऽस्यादिरिति-**।।

तदधीते तद्वेद ४.२.५९

किमर्थमिमावुभावर्थौ निर्दिश्येते, न योऽधीते वेत्त्यप्यसौ, यस्तु वेत्त्यधीत्यप्यसौ। नैतयोरावश्यकः समावेशः। भवति कश्चित् संपाठं पठति, न च वेत्ति, कश्चिच्च वेत्ति न च संपाठं पठति।। तदधीते तद्वेद।।

यहाँ सूत्र में 'तद्' पद द्वितीयान्त है।

सूत्रार्थ—'तदधीते तद्वेद' इस अर्थ में द्वितीयान्त से अण् आदि प्रत्यय हों'। जैसे-व्याकरणमधीत इति वैयाकरणः।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। 'अधीते' और 'वेत्ति' उभय अर्थ का निर्देश क्यों किया गया है? जो पढता है वह जानता भी है, जो जानता हे वही पढता भी है। किसी एक का ग्रहण करने से ही उभय अर्थ का ग्रहण हो जायेगा; अतः 'अधीते' और 'वेत्ति' का एकत्र समावेशः-पढा जाना आवश्यक नहीं है।

उत्तरपक्षी—**भवति हीति**। ऐसा भी देखा जाता है कि **कश्चित्**=अर्थावबोध के विना भी कोई पढता है। कोई ऐसा भी होता हे जो जानता है परन्तु **संपाठम्**=अर्थनिरपेक्ष पाठ करता है; अतः 'अधीते' और 'वेत्ति' का वैपरीत्यदर्शन से अन्यतर से उभय का ग्रहण नहीं हो सकता है; अतः 'अधीते' और 'वेत्ति' दोनों अर्थों में प्रत्यय कहा गया है।। **तदधीते तद्वेद**।।

क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक् ४.२.६०

उक्थादीत्युच्यते, कान्युक्थानि? सामानि। यद्येवं सामगमात्रे औक्थिक इति प्राप्नोति। नैष दोषः- तादर्थ्यात्ताच्छब्द्यं भविष्यति-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उक्थार्थमुक्थम्। इह उक्थान्यधीते औक्थिको, यज्ञमधीते याज्ञिकः, य इदानीम् औक्थिक्यं याज्ञिक्यं वाऽधीते कथं तत्र भवितव्यम्? औक्थिको याज्ञिक इत्येव भवितव्यम्। कथम्?

यहाँ पूर्वसूत्र 'तदधीते तद्वेद' ४.२.५९ की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'तदधीते तद्वेद' इन दोनों अर्थों में क्रतु, उक्थादि और सूत्रान्त प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय हो'। यहाँ क्रतुविशेषवाची का ही ग्रहण है, क्रतुशब्द का नहीं। यदि क्रतुशब्दमात्र का ग्रहण होता तो आचार्य क्रतुशब्द का पृथक् पाठ नहीं करके उक्थादिगण में ही पाठ कर देते। यदि क्रतुपद क्रतुविशेष अर्थ में है तो क्रतुविशेष का अक्षरग्रहणात्मकत्व नहीं होने से कैसे अध्ययन होगा?, तो इसका उत्तर इस प्रकार समझना चाहिये-'जैसे अग्निष्टोदि क्रतुविशेष में मुख्य हैं, एवं तत्प्रातिपदिक में गौण हैं; अतः मुख्यार्थक क्रतुविशेषात्मक अग्निष्टोम आदिशब्दों से वेत्ति अर्थ में, एवं लक्षणा के द्वारा अग्निष्टोमादि क्रतु का प्रतिपादक ग्रन्थों में शक्त प्रातिपदिक से अध्येता अर्थ में प्रत्यय होंगे। जैसे-'अग्निष्टोमं वेत्ति=तत्प्रतिपादकग्रन्थमधीत इति वा आग्निष्टोमिकः। वाजपेयं वेत्ति=तत्प्रतिपादक-ग्रथमधीत् इति वा वाजपेयिकम्। उक्थ सामविशेष को कहते हैं। लक्षणा के द्वारा तल्लक्षणपरक ग्रन्थविशेष उक्थ कहलाता है। उक्थमधीते वेत्ति वेति औक्थिकः।

पूर्वपक्षी—**उक्थादीति**। सूत्र में उक्थादि कहा जा रहा है। उक्थ कौन हैं? पूर्वपक्ष में हेतु यह है कि उक्थशब्द साम अर्थ में रूढ है। उससे 'अधीते' अर्थ में प्रत्यय इष्ट है; जिस प्रातिपदिक से 'अधीते' अर्थ में प्रत्यय इष्ट है, वह उक्थपद वाच्य नहीं है; अतः पूर्वपक्ष करते हैं-उक्थ कौन हैं?

उत्तरपक्षी—**सामानीति**। साम उक्थ है।

आक्षेपभाष्य—**यद्येवमिति**। यदि उक्थ पद से साम का ग्रहण करेंगे तो 'सामानि गायन्तीति सामगाः' प्रातिशाख्य का अनध्येता सामग, 'सामगा एव सामगमात्रं, तस्मिन्' साम का गान करने वाला अर्थमात्र में उक्थ से ठक् प्रत्यय प्राप्त हो कर औक्थिक रूप होने लगेगा।

उत्तरपक्षी—**नैष दोष इति**। तादर्थ्यात् **ताच्छब्द्यम्**=लक्षणा के द्वारा प्रातिशाख्य का अनध्येता सामग अर्थ में भी उक्थ पद से ठक् हो कर औक्थिक रूप होगा।

अन्य आचार्य—**इह उक्थानीति**। 'उक्थानि अधीते औक्थिकः, यज्ञमधीते याज्ञिकः' में उक्थ और यज्ञ पद से ठक् है। उक्थशब्द से गौणीवृत्ति के द्वारा सामलक्षण औक्थिक कहा जाता है। ठगन्त औक्थिक और याज्ञिकशब्द से 'औक्थि-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कानां धर्म आम्नायो वा औक्थिक्यम्, याज्ञिकानां धर्म आम्नायो वा याज्ञिक्यम्' में 'छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटाञ्ञ्यः' ४.३.१२९ से ञ्य प्रत्यय है। इससे यदि 'औक्थिक्यं याज्ञिक्यं वाऽधीते' ऐसा विग्रह किया जाये तो कैसा रूप होगा?

उत्तरपक्षी—**औक्थिक इति**। 'औक्थिक्यमधीते, याज्ञिक्यमधीते' इस विग्रह में भी उक्थ और यज्ञ पद से ही ठक् प्रत्यय हो कर 'औक्थिकम्, याज्ञिकम्' यही रूप होगा। यहाँ ञ्यान्त औक्थिक्य और याज्ञिक्य से प्रत्यय नहीं होगा।

पूर्वपक्षी—**कथमिति**। ञ्यान्त से विग्रह और शुद्ध प्रातिपदिक से प्रत्ययोत्पत्ति ऐसा क्यों है?

*** तस्येदं प्रत्ययाल्लुक् * तस्येदं प्रत्ययाल् लुग्वक्तव्यः। तस्येदंप्रत्ययस्य च। स तर्हि वक्तव्यः? न वक्तव्यः। इहास्माभिस्त्रैशब्द्यं साध्यम्-उक्थान्यधीते, औक्थिक्यमधीते, औक्थिक इति। तत्र द्वयोः शब्दयोः समानार्थयोरेकेन विग्रहोऽपरस्मादुत्पत्तिर्भविष्यत्यविरविकन्यायेन। तद्यथा-अवेर्मांसमिति विगृह्याऽविकशब्दादुत्पत्ति- र्भवत्याविक इत्येवमुक्थान्यधीत इति विगृह्य औक्थिक इति भविष्यति। औक्थिक्यमिति विगृह्य वाक्यमेव।**

एकदेशी—**तस्येदमिति**। 'औक्थिकानां धर्मः' इस अर्थ में षष्ठ्यन्त से विहित ञ्य प्रत्यय और 'उक्थमधीते' इस अर्थ में द्वितीयान्त से विहित ठक् प्रत्यय का लुक् हो जाने से शुद्ध प्रातिपदिक उक्थ और यज्ञ ही बचता है, उससे पर में 'औक्थिक्यमधीते, याज्ञिक्यमधीते' इस अर्थ में भी ठक् प्रत्यय कहेंगे। 'तस्येदम्प्रत्ययात्' वार्तिक में षष्ठ्यर्थ में पञ्चमी है। एवं 'तस्येदम्प्रत्ययस्य च' में 'तस्य' पद से अध्येता अर्थ में विहित ठक् प्रत्यय का भी लुक् है, ऐसा समझना चाहिये।

अन्य आचार्य—**स तर्हीति**। तो क्या शुद्ध प्रातिपदिक उक्थ और यज्ञ से प्रत्ययविधान के लिए औक्थिक्य और याज्ञिक्य में ञ्य और ठक् का लुक् के लिए 'तस्येदम्प्रत्ययाल्लुक्' यह वार्तिक पढना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्य इति**। इस वार्तिक की आवश्यकता नहीं है। यहाँ तीन शब्द साध्य हैं-उक्थ, औक्थिक और औक्थिक्य। यज्ञ, याज्ञिक और याज्ञिक्य। गौणीवृत्ति के द्वारा उक्थशब्द औक्थिक अर्थ में तथा यज्ञशब्द याज्ञिक अर्थ में होने से दोनों समानार्थक हैं; अतः अविरविकन्याय से ठगन्त औक्थिक और याज्ञिक के साथ विग्रह करेंगे तथा उक्थ और यज्ञ पद से प्रत्ययोत्पत्ति करेंगे। जैसे-'अवेर्मांसम्' ऐसा विग्रह करके अविक पद से प्रत्ययोत्पत्ति हो कर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'आविकम्' ऐसा रूप होता है। यहाँ अन्य से विग्रह तथा अन्य से प्रत्ययोत्पत्ति है। वैसे ठगन्त औक्थिक और याज्ञिक पद से विग्रह करेंगे तथा उक्थ और यज्ञ पद से प्रत्ययोत्पत्ति करेंगे। परन्तु जब ञ्यान्त औक्थिक्य और याज्ञिक्य पद से विग्रह करेंगे, तब वाक्य ही रहेगा, उससे प्रत्ययोत्पत्ति नहीं होगी। जैसे- 'अविकस्य मांसम्' ऐसा विग्रह करने पर वाक्य ही रहता है, प्रत्ययोत्पत्ति नहीं होती है; अपि तु 'अवेर्मांसम्' ऐसा विग्रह करने पर अविक पद से प्रत्ययोत्पत्ति होती है।

* विद्यालक्षणकल्पसूत्रान्तादकल्पादेरिकक्स्मृतः * **'विद्यालक्षणकल्पसूत्रान्तादकल्पादेरिकक्स्मृतः'**। विद्या-**वायसविद्यिकः**। **सार्पविद्यिकः**। विद्या। लक्षण-**गौलक्षणिकः**। **आश्वलक्षणिकः**। लक्षण। कल्प-**पाराशरकल्पिकः**। **मातृकल्पिकः**। कल्प। सूत्र-**वार्तिकसूत्रिकः**। **सांग्रहसूत्रिकः**। **अकल्पादेरिति किमर्थम्? काल्पसूत्रः** * विद्या चानङ्गक्षत्रधर्मत्रिपूर्वा * **विद्याचानङ्गक्षत्रधर्मत्रिपूर्वेति वक्तव्यम्। आङ्गविद्यः। क्षात्रविद्यः। धार्मविद्यः। त्रैविद्यः।**

वार्तिककार—**विद्यालक्षणोति**। विद्या, लक्षण, कल्प और कल्पादिभिन्न सूत्र हैं अन्तावयव जिस का, ऐसा जो प्रातिपदिक, उससे पर में 'तदधीते तद्वेद' अर्थ में द्वितीयान्तसमर्थसुबन्त प्रातिपदिक से इकक् प्रत्यय कहना चाहिये। विद्यान्त प्रातिपदिक-वायसविद्यामधीते वेत्ति वा वायसविद्यिकः। **लक्षणान्त**=गोलक्षणमधीते वेत्ति वा गौलक्षणिकः। **कल्पान्त**=पराशरकल्पमधीते वेत्ति वा पाराशरकल्पिकः। **सूत्रान्त**=वार्तिकसूत्रे अधीते वेत्ति वा वार्तिकसूत्रिकः। सङ्ग्रहसूत्रमधीते वेत्ति वा साङ्ग्रहसूत्रिकः। 'अकल्पादेः' निषेध होने से कल्पादिसूत्रान्त कल्पसूत्र पद से इकक् नहीं हुआ; अपि तु अण्प्रत्यय हो कर 'काल्पसूत्रः' रूप है। 'अनन्तरस्य विधिर्भवति प्रतिषेधो वा' इस परिभाषा के बल पर 'अकल्पादेः' सूत्रान्त का ही निषेध है; अत एव भाष्यकार ने प्रथम उपस्थित 'काल्पविद्यिकः' प्रयोजन न दे कर 'काल्पसूत्रः' प्रत्युदाहरण दिया है। शब्दकौस्तुभग्रन्थ का भी यही हृदय है। परन्तु प्रदीपग्रन्थ सभी का निषेध मान कर 'काल्पविद्यिकः' का समर्थन करता है। इस पर विद्वानों को विचार करना चाहिये।

इस वार्तिक का निषेधक वार्तिक पढते हैं-**विद्या चेति**। अङ्ग, क्षत्र, धर्म और त्रिपद है पूर्व अवयव जिसका ऐसा जो विद्यान्त प्रातिपदिक उससे पर में 'तदधीते तद्वेद' अर्थ में इकक् प्रत्यय का निषेध कहना चाहिये। 'आङ्गविद्यः, क्षात्रविद्यः, धार्मविद्यः, त्रैविद्यः' में सर्वत्र इकक् का निषेध होने से 'तदधीते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तद्वेद' ४.२.५९ से अण् प्रत्यय है। 'त्रैविद्यः' में 'त्र्यवयवा विद्या त्रिविद्या, तामधीते वेत्ति वा' इस विग्रह में 'शाकपार्थिवादीनां सिद्धय उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम्' वा.१३१० से उत्तरपद अवयव का लोप कहना चाहिये; एवम् अण् प्रत्यय करना चाहिये। यदि यहाँ उक्त व्युत्पत्ति के स्थान पर 'तिस्रो विद्या अधीते वेत्ति वा' ऐसा विग्रह किया जाये तो 'द्विगोर्लुगनपत्ये' ४.१.८८ से अण् प्रत्यय के लुक् की आपत्ति होगी।

* आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च * **आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्चेकग्वक्तव्यः।** आख्यान-**यावक्रीतिकः। प्रैयङ्गविकः। यायातिकः।** आख्यायिका-**वासवदत्तिकः सौमनोत्तरिकः।** आख्यायिका। इतिहासपुराण-**ऐतिहासिकः। पौराणिकः।**

आख्यानाख्यायिकेति। आख्यान, आख्यायिका, इतिहास और पुराण से 'तदधीते तद्वेद' अर्थ में ठक् प्रत्यय कहना चाहिये। यहाँ आख्यान और आख्यायिका से अर्थग्रहण है तथा इतिहास और पुराण से स्वरूपग्रहण है। आख्यान–यावक्रीत का अधिकार कर के किया गया आख्यान भी उपचारवशाद् यावक्रीत शब्द से कहा गया है-'यावक्रीतमधीते वेद वा यावक्रीतिकः' प्रैयङ्गवाधिकार का अध्ययन करने वाला प्रैयङ्गविकः। एवं यायाताधिकारकृत आख्यान का अध्ययन करने वाला यायातिकः। आख्यायिका-'वासवदत्तामधिकृत्य कृता आख्यायिका' इस अर्थ में 'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे' ४.३.८७ के अधिकार में पठित 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ से छ प्रत्यय एवम् इसका 'लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलम्' वा.४.२.८७ से लुप् है। इसके बाद इस वार्तिक से ठक् प्रत्यय हो कर 'वासवदत्तिकः' रूप है। इसी तरह 'सौमनोत्तरिकः' में भी प्रत्यय करना चाहिये। एवम् 'इतिहासमधीते वेत्ति वा ऐतिहासिकः, पुराणमधीते वेद वा पौराणिकः' में ठक् है।

* सर्वसादेर्द्विगोश्च लः * **सर्वसादेर्द्विगोश्च लो वक्तव्यः। सर्ववेदः। सर्वतन्त्रः। सवार्तिकः। ससंग्रहः। पञ्चकल्पः। द्वितन्त्रः। द्विवेदः।**

अनुसूर्लक्ष्यलक्षणे, सर्वसादेर्द्विगोश्च लः।
इकन्पदोत्तरपदाच्छतषष्टेः षिकन्पथः।।

सर्वसादेश्चेति। सर्व, सादि और द्विगु से 'तदधीते तद्वेद' अर्थ में विहित प्रत्यय का लुक् कहना चाहिये। सर्वशब्द का पृथग् निर्देश होने से यहाँ 'स' शब्द अर्थवान् लिया जायेगा। 'द्विगोः' इस पद के द्वारा 'द्विगोर्लुगनपत्ये' ४.३.८७ सूत्र का स्मरण कराया गया है। 'सर्ववेदानधीत इति सर्ववेदः, सर्वतन्त्रमधीत इति सर्वतन्त्रः' यहाँ पर अधीत अर्थ में विहित अण् का लुक् है। '**सवार्तिकः**=

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वृत्तौ साधु वार्तिकम्', यहाँ 'कथादिभ्यष्ठक्' ४.४.१०२ से 'तत्र साधुः' अर्थ में ठक् प्रत्यय है। 'वार्तिकान्तमधीते' इस विग्रह में 'सह' के साथ अव्ययीभाव समास हो कर 'अव्ययीभावे चाऽकाले' ६.३.८१ से सह को 'स'भाव हुआ है। इसके बाद अण् प्रत्यय और उसका लुक् है। इसी तरह 'संग्रहान्तमधीते' ऐसा विग्रह करके 'सह' का अव्ययीभाव, 'सह' को सादेश, अण् और अण्लुक् समझना चाहिये। 'पञ्चकल्पानधीते' में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' २.१.५१ से द्विगु, 'विद्या-लक्षणकल्पसूत्रान्तादकल्पादेरिकक् स्मृतः' वा. से इकक्, इकक् का लुक् हो कर 'पञ्चकल्पः' रूप है। इसी तरह 'द्वितन्त्रः, द्विवेदः' रूप है।

अनुसूर्लक्ष्येति। अनुसूशब्द ग्रन्थविशेष का वाचक है। अनुसू, लक्ष्य और लक्षण पद से 'तदधीते तद्वेद' अर्थ में ठक् प्रत्यय हो'। 'अनुसूमधीते' इस अर्थ में ठक्, 'इसुसुक्तान्तात्कः' ७.३.५१ से ठक् को कादेश, 'केऽणः' ७.४.१३ से अण् को ह्रस्व और णिन्निमित्तक आदिवृद्धि हो कर 'आनुसुकः' रूप है। इसी तरह 'लक्ष्यमधीते लाक्षिकः, लक्षणमधीते लाक्षणिकः' रूप भी है। 'सर्वसादेर्द्विगोश्च लः' का 'सर्वादेः सादेश्च लुग्वक्तव्यः' ऐसा अर्थ समझना चाहिये। **इकन्निति**। पदोत्तरपद से इकन् प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे-'पूर्वपदम् अधीते पूर्वपदिकः। शत एवं षष्टिपूर्वपद रहते हुए पथिन्शब्दान्त से षिकन् प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे-'शतपथमधीते शतपथिकः। षष्टिपथम् अधीते षष्टिपथिकः। षिकन् के षित् होने से 'षिद्गौरादिभ्यश्च' ४.१.४१ से स्त्रीत्वविवक्षा में ङीष् हो कर शतपथिकी, षष्टिपथिकी रूप होगा।। **क्रतूक्थादि-**।।

अनुब्राह्मणादिनिः ४.२.६२

अयं योगः शक्योऽकर्त्तुम्। कथमनुब्राह्मणी। अनुब्राह्मणिनौ। अनुब्राह्मणिन इति? इनिनैतन्मत्वर्थीयेन सिद्धम्-अनुब्राह्मणमस्यास्तीत्यनुब्राह्मणी।। अनुब्राह्मणादिनिः।।

सूत्रार्थ—'तदधीते तद्वेद' अर्थ में अनुब्राह्मण पद से इनि प्रत्यय हो'। ब्राह्मणसदृशग्रन्थ को अनुब्राह्मण कहते हैं। अनुब्राह्मणमधीते वेद वा अनुब्राह्मणी। अनुब्राह्मणिनौ, अनुब्राह्मणिनः।

सिद्धान्ती भाष्य—**अयं योग इति**। यह सूत्र नहीं पढना चाहिये। इस सूत्र के अभावपक्ष में 'अनुब्राह्मणमस्ति अस्मिन्' इस विग्रह में अदन्त प्रातिपदिक अनुब्राह्मण से मत्वर्थीय में 'अत इनिठनौ' ५.२.११५ के द्वारा इनि प्रत्यय हो कर अनुब्राह्मणी शब्द निष्पन्न हो जायेगा। यदि यहाँ पर 'तदधीते तद्वेद' अर्थ में अनुब्राह्मण पद से अण् की प्राप्ति दिखा कर उसका बाध के लिए सूत्र का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आरम्भ मानेंगे तो अनभिधान होने से यह पक्ष उचित नहीं है, ऐसा प्रकृत सूत्र पर श्रीकैयटजी का कहना है। परन्तु शब्दकौस्तुभग्रन्थ प्रकृत सूत्र का आरम्भ अण्बाधनार्थ मानता है। इसके अनुसार यहाँ का भाष्य एकदेशी होगा।। **अनुब्राह्मणादिनिः।।**

वसन्तादिभ्यष्ठक् ४.२.६३

अयुक्तोऽयं निर्देशः। अधीते वेदेति च वर्त्तते, न च वसन्तो नामाऽध्ययनमस्ति!। नैष दोषः-साहचर्यात्ताच्छब्द्यं भविष्यति। वसन्तसहचरितोऽध्ययनं-वसन्तोऽध्ययनमिति।। वसन्तादिभ्यष्ठक्।।

सूत्रार्थ—'वसन्तादिगणपठितशब्दों से 'तदधीते तद्वेद' अर्थ में ठक् प्रत्यय हो'।

पूर्वपक्षी—**अयुक्तोऽयमिति**। प्रकृतसूत्र का निर्द्देश उचित नहीं है। औचित्याभावसाधक हेतु देते हैं-**अधीत इति**। प्रकृत सूत्र में पूर्वसूत्र 'तदधीते तद्वेद' ४.२.५९ की अनुवृत्ति होती है। वसन्त नाम का कोई अध्ययन नहीं है; अतः उससे 'अधीते' और 'वेद' अर्थ में प्रत्यय की प्राप्ति नहीं होने से सूत्र व्यर्थ है।

सिद्धान्ती आचार्य सूत्र का समर्थन करते हैं-**नैष दोष इति**। वसन्तनामक अध्ययनाभाव होने से यहाँ सूत्र का वैयर्थ्यरूप दोष नहीं आयेगा। यहाँ साहचर्यवशात् ताच्छब्द्य लिया जायेगा। यहाँ वसन्त पद से वसन्तसहचरित अध्ययन गृहीत है। जिस ग्रन्थ में वसन्त का वर्णन हो, अथ वा जिसका अध्ययन वसन्त में किया जाये, वह वसन्त अध्ययन कहलायेगा। इस तरह 'वसन्तमधीते वेद वेति वासन्तिकः' रूप है।। **वसन्तादिभ्यष्ठक्।।**

प्रोक्ताल्लुक् ४.२.६४

अयुक्तोऽयं निर्देशः, प्रौक्तादिति भवितव्यम्। सौत्रो निर्द्देशः।। प्रोक्ताल्लुक्।।

सूत्रार्थ—'प्रोक्तार्थक प्रत्यय से पर में अध्येता और वेत्ता अर्थ का वाचक प्रत्यय का लुक् हो'।

पूर्वपक्षी—**अयुक्तोऽयमिति**। आचार्य ने 'प्रोक्ताल्लुक्' पढा है। यहाँ 'प्रोक्ताल्लुक्' ऐसा वृद्धिघटित वाक्य होना चाहिये था। अर्थ ही प्रोक्त होता है। अर्थ के साथ प्रत्यय का पौर्वापर्यसम्भव नहीं होने से उक्त निर्द्देश को अयुक्त कहा गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरपक्षी—**सौत्र इति**। 'प्रोक्तात्' यह सौत्रनिर्द्देश है। अर्थात् सौत्रत्वात् प्रत्यय की अनुत्पत्ति समझनी चाहिये। अथ वा प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि का अभाव समझना चाहिये। यहाँ प्रोक्तशब्द में स्वरितत्वप्रतिज्ञा है; अतः प्रोक्ताधिकारविहित प्रत्यय का ग्रहण है, ऐसा भाष्यकार का हृदय है।। **प्रोक्ताल्लुक्**।।

सूत्राच्च कोपधात् ४.२.६५.

*** संख्याप्रकृतेः * संख्याप्रकृतेरिति वक्तव्यम्। इह मा भूद्-माहावार्त्तिकः। चान्दनगन्धिकः। कालापकः।।** सूत्राच्च कोपधात्।।

सूत्रार्थ—'सूत्रबोधक ककारोपध से अध्येत्रर्थक और वेत्रर्थक प्रत्यय का लुक् हो'। इस सूत्र का आरम्भ अप्रोक्तार्थ है। जैसे-'अष्टावध्यायाः परिमाणमस्येति अष्टकं पाणिनेः सूत्रम्; तदधीयते विदन्ति वेति अष्टकाः। 'तदस्य परिमाणम्' के अधिकार में पठित 'संख्यायाः संज्ञासंघसूत्राध्ययनेषु' ५.१.५८, एवं 'संख्याया अतिशदन्तायाः कन्' ५.१.२२ से सूत्ररूप अर्थ में अष्ट पद से कन् प्रत्यय, सूत्रवाची कोपध अष्टक पद से अध्येता और वेत्ता अर्थ में विहित प्रत्यय का प्रकृत सूत्र से लुक् हो कर 'अष्टकाः' रूप है।

वार्तिककार—**संख्याप्रकृतेरिति**। संख्याप्रकृतिक प्रत्ययान्त से पर में विहित प्रत्यय का ही 'सूत्राच्च कोपधात्' से लुक् कहना चाहिये। इससे 'माहावार्तिकः, चान्दनगन्धिकः, कालापकः=कलापेन प्रोक्तमधीयते कालापास्तेषामाम्नायः कालापकम्' में संख्यापूर्वप्रकृतिक प्रत्यय नहीं होने से लुक् प्राप्त नहीं होता है।। **सूत्राच्च-**।।

छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि ४.२.६६

किमर्थमिदमुच्यते? * अन्यत्राभिधेयस्याऽनित्यत्वाच् छन्दोब्राह्मणानां तद्विषयवचनम् *** अन्यत्राभिधेयम् अनित्यम्भवति। पाणिनीयमिति वा भवति, पाणिनीया इति वा। 'अन्यत्राभिधेयस्याऽनित्यत्वाच्छन्दोब्राह्मणानाम् अप्यनित्यता प्राप्नोति। इष्यते च तद्विषयतैव स्यादिति। तच्चाऽन्तरेण यत्नं न सिध्यतीति च्छन्दोब्राह्मणानां तद्विषयवचनम्। एवमर्थमिदमुच्यते।**

यहाँ 'छन्दः' पद से मन्त्रभाग तथा 'ब्राह्मण' पद से विधिवाक्य विवक्षित है। इन दोनों का इतरेतरयोगद्वन्द्व है। 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' इस मीमांसावाक्य के अनुसार यहाँ 'छन्दोब्राह्मणानि' इस प्रथमाबहुवचनान्त पद से वेद अर्थ वाच्य है। 'प्रोक्ताल्लुक्' ४.२.६४ से मण्डुकप्लुत्या अनुवृत्त 'प्रोक्तात्' पद का प्रथमाबहुवचन के साथ विपरिणाम है। इससे 'प्रोक्तप्रत्ययानि' अर्थ विवक्षित है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'तद्विषयाणि' में 'तद्' पद से अध्येतृवेदितृप्रत्यय विवक्षित है। 'तैर्विषयो विनाभावो येषां तानि तद्विषयाणि' षिञ् बन्धने धा.पा.१४७८ धातु से 'अ'प्रत्यय हो कर 'सय' पद है। **वि**=विशिष्य **सयो**=बन्धो=विषयः=अविनाभावः। 'प्रोक्त प्रत्यय अध्येतृ-वेदितृ-प्रत्यय-संयुक्त ही हो' यह अर्थ विवक्षित है। जैसे-कठेन प्रोक्तमधीयत इति कठाः। यहाँ 'वैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च' ४.३.१०४ से णिनि प्रत्यय, एवम् उसका 'कठचरकाल्लुक्' ४.३.१०७ से लुक् है। लुप्त प्रोक्त प्रत्यय वाला कठशब्द से 'तदधीते तद्वेद' अर्थ में अण् प्रत्यय, उस अण् का प्रोक्ताल्लुक्' ४.२.६४ से लुक् है। इस तरह 'कठेन प्रोक्तमधीयत इति कठाः' ऐसा लुप्त प्रोक्त प्रत्ययान्त कठशब्द का अध्येत्रर्थक अण् के साथ ही प्रयोगार्हता है, उसके अभाव में केवल प्रोक्तप्रत्ययान्त का नहीं।

यहाँ प्रोक्तप्रत्ययान्त प्रत्यय का चार प्रकार देखा जाता है। १-स्वातन्त्र्य, २-उपाध्यन्तरयोग, ३-वाक्य, और ४-अध्येता और वेत्ता अर्थ में प्रत्यय। जैसे-स्वातन्त्र्य-पाणिनिना प्रोक्तं व्याकरणं पाणिनीयम्। उपाध्यन्तरयोग-महत्पाणिनीयम्। वाक्य–पाणिनीयमधीयते। अध्येता और वेत्ता अर्थ में प्रत्यय-पाणिनीयाः। परन्तु छन्दोविषयवाची प्रोक्तप्रत्ययान्त का अध्येतृवेदितृविषयता ही इष्ट है, स्वातन्त्र्यादि नहीं। इस तरह तद्विषयार्थ होने से यह सूत्र नियमार्थ है।

इस सूत्र के निर्देश करने पर भी 'अधीते वेद' का अधिकार होने से अध्येतृवेदि-तृविषय वाक्य की ही निवृत्ति हो रही है, स्वातन्त्र्य और उपाध्यन्तर-योग की नहीं, ऐसा मान कर पूर्वपक्षी आचार्य प्रश्न करते हैं-**किमर्थमिदमिति**। यह सूत्र क्यों पढा जा रहा है?

उत्तरपक्षी-**अन्यत्रेति**। **अन्यत्र**=पाणिनीय इत्यादि में अभिधेय के अनित्य होने से 'पाणिनीयम्' और 'पाणिनीयाः' दोनों रूप होता है। अन्यत्र अभिधेय के **अनित्यत्वात्**=नानाविषय होने से अध्येता और वेत्ता का विशेषण के साथ नित्य प्रयोग नहीं हो सकेगा; अतः अनित्यता होगी; जब कि यह इष्ट है कि तद्विषयता ही हो। वह सूत्रपाठ के अभाव में सिद्ध नहीं हो पा रहा है; अतः छन्दः और ब्राह्मण का तद्विषयवचन कहा गया है। यही प्रयोजन है, जिसके लिए प्रकृतसूत्र का निर्द्देश है।

अस्ति प्रयोजनमेतद्? किं तर्हि? * तत्र यथाधिकारं तद्विषयप्रसङ्गः * तत्र यथाधिकारं तद्विषयता प्राप्नोति। अधीते वेदेति वर्त्तते, तेनाऽध्येतृवेदित्रोरेव तद्विषयता स्याद्येऽन्ये उपचारास्तत्र तद्विषयता न स्यात्। यथेह भवति-पाणिनीयं महत्सुविहितमित्येवमिहापि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्यात्-कष्टं महत्सुविहितमिति।

आक्षेप भाष्य—**अस्तीति**। तो क्या प्रकृत सूत्र का आप ने जो प्रयोजन बताया है, वही है?

इतर आचार्य—**किं तर्हीति**। आप को यह प्रयोजन मानने में क्या आपत्ति है?

आक्षेप भाष्य—**तत्र यथाधिकारमिति**। अधिकारमनतिक्रम्य यथाधिकारम्। 'तदधीते तद्वेद' का अधिकार होने से विवक्षित अध्येता और वेत्ता की तद्विषयता विधीयमान है; इससे तद्विषयवाक्य की ही निवृत्ति होगी, क्रियान्तरविषय में **'येऽन्ये उपचाराः'**=जो अन्य व्यवहार हैं, उसकी निवृत्ति नहीं हो सकेगी; जैसे 'पाणिनीयम् महत्सुविहितम्' में होता है वैसे 'कष्टं महत्सुविहितम्' में भी होने लगेगा।

*** सिद्धं तु प्रोक्ताधिकारे तद्विषयवचनात् * सिद्धमेतत्। कथम्? प्रोक्ताधिकारे एव तद्विषयता वक्तव्या। 'तेन प्रोक्तं' 'छन्दोब्राह्मणान्यध्येतृवेदित्रो'रिति। तत्तर्ह्यध्येतृवेदितृग्रहणं कर्त्तव्यम्? ननु चेहापि क्रियते। परार्थमेतद् भवति-तदधीते तद्वेदेति। एवन्तर्हि यावदिह च्छन्दोब्राह्मणग्रहणं तावत्तत्राध्येतृवेदितृग्रहणम्। ननु च तत्रापि क्रियते। परार्थं तद् भविष्यति,-'पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु' 'शौनकादिभ्यश्छन्दसी'ति। इह वा छन्दोब्राह्मणग्रहणं क्रियते, तत्र वाऽध्येतृवेदितृग्रहणं-को न्वत्र विशेषः?**

इतर आचार्य इस आपत्ति का निवारण करते हैं-**सिद्धं त्विति**। 'तेन प्रोक्तम्' ४.३.१०१ के अधिकार में 'छन्दोब्राह्मणान्यध्येतृवेदित्रोः' ऐसी परिभाषा करेंगे। इससे 'अध्येतृ वेदितृ अर्थ विवक्षित होने पर छन्दोब्राह्मण अर्थ में प्रोक्त प्रत्यय उत्पन्न हो, अन्यत्र नहीं' ऐसा अर्थ आयेगा।

अन्य आचार्य—**ननु चेति**। इस प्रकरण में भी 'तद्विषयाणि' के लिए 'छन्दोब्राह्मणानि' का ग्रहण किया जा रहा है।

इतर आचार्य—**परार्थमिति**। इस प्रकरण में किया गया ''छन्दोब्राह्मणानि' परार्थ-'तदधीते तद्वेद' के लिए है।

अन्य आचार्य—**एवं तर्हीति**। जहाँ छन्दोब्राह्मण का ग्रहण है, वहाँ अध्येतृ वेदितृ का भी ग्रहण होगा।

इतर आचार्य—**ननु चेति**। 'तेन प्रोक्तम्' ४.३.१०१ के प्रकरण में भी आप ने 'छन्दोब्राह्मणान्यध्येतृवेदित्रोः' परिभाषा पढ कर छन्दोब्राह्मण पद का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ग्रहण कर रहे हैं।

अन्य आचार्य—**परार्थमिति**। उस प्रकरण में किया गया छन्दोब्राह्मणग्रहण परार्थ है। अर्थात्- 'छन्दोब्राह्मणान्यध्येतृवेदित्रोः' ऐसी परिभाषा करके 'पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु' ४.३.१०५ इस एक सूत्र के स्थान पर दो सूत्र करेंगे-१-'पुराणप्रोक्ते, २-कल्पे च'। चकार के द्वारा परिभाषा से ब्राह्मण पद का अनुकर्षण करेंगे। इसके बाद 'शौनकादिभ्यश्छन्दसि' ४.३.१०६ के स्थान पर मात्र 'शौनकादिभ्यः' इतना ही सूत्र रखेंगे। परिभाषा से छन्दोग्रहण का अनुवर्त्तन करेंगे। इससे दो सूत्रों में 'छन्दः' और 'ब्राह्मण' पद का ग्रहण नहीं करने से लाघव है।

इतर आचार्य—**इह वेति**। आप इह='तेन प्रोक्तम्' ४.३.१०१ के प्रकरण में छन्दोब्राह्मणग्रहण कर रहे हैं तथा 'तदधीते तद्वेद' ४.२.५९ के अधिकार में अध्येतृ वेदितृ ग्रहण कर रहे हैं; इसमें क्या वैशिष्ट्य है? लक्ष्यानुरोध से इस प्रकरण में भी सामान्यापेक्ष नियम की व्याख्या की जा सकती है।

*** याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रतिषेधः * याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रतिषेधो वक्तव्यः। याज्ञवल्क्यानि ब्राह्मणानि। सौलभानि। किं प्रोक्ताधिकारे तद्विषयता क्रियत इत्यतो याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रतिषेधो वक्तव्यः? नेत्याह-सर्वथा याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रतिषेधो वक्तव्यः।**

अन्य आचार्य—**याज्ञवल्क्यादिभ्य इति**। 'यज्ञवल्कस्यापत्यम्' इस अर्थ में 'गर्गादिभ्यो यञ्' ४.१.१०५ से यञ्प्रत्यय, तदन्त याज्ञवल्क्य से 'याज्ञवल्क्येन प्रोक्तम्' इस अर्थ में 'कण्वादिभ्यो गोत्रे' ४.२.१११ से अण् प्रत्यय हो कर 'याज्ञवल्क्यानि ब्राह्मणानि' रूप है। गर्गाद्यन्तर्गण याज्ञवल्क्यादि गण है। 'सुलभेन प्रोक्तानि' इस अर्थ में सुलभ पद से 'तेन प्रोक्तम्' ४.३.१०१ से अण् प्रत्यय है। यहाँ पर तद्विषयता नहीं है। यहाँ 'याज्ञवल्क्यानि' में 'कण्वादिभ्यो गोत्रे' ४.२.१११ से विहित अण् का तथा 'सौलभानि' में 'तेन प्रोक्तम्' ४.३.१११ से विहित अण् का 'प्रोक्ताल्लुक्' ४.२.६४ से लुक् प्राप्त है; उसका निषेध कहना चाहिये।

'सिद्धं तु प्रोक्ताधिकारे तद्विषयवचनात्' के अनन्तर 'याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रतिषेधः' वचन पढे जाने से प्रतिषेधवचन का तन्निमित्तत्व की आशङ्का कर प्रश्न करते हैं—**किं प्रोक्ताधिकार इति**। क्या 'तेन प्रोक्तम्' ४.३.१०१ के अधिकार में 'तद्विषयता' वचन किया जा रहा है; अथ वा याज्ञवल्क्यादि से प्रतिषेध किया जा रहा है?

अन्य आचार्य—**नेत्याहेति**। प्रोक्ताधिकार में तद्विषयता नहीं कहनी जाहिये; अपि तु सर्वथा याज्ञवल्क्यादि से प्रतिषेध ही कहना चाहिये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

*** इनिर्वा प्राक्ते तद्विषयः * अथ वा 'इनिः प्रोक्ते तद्विषयो भवती'ति वक्तव्यम्। यदि 'इनिः प्राक्ते तद्विषयो भवती'त्युच्यते एवमपि-पैङ्गी कल्पः-अत्रापि प्राप्नोति * काश्यपकौशिकग्रहणञ्च कल्पे नियमार्थम् * काश्यपकौशिकग्रहणञ्च कल्पे नियमार्थं द्रष्टव्यम्। 'काश्यप-कौशिकाभ्यामेवेनिः कल्पे तद्विषयो भवति नान्येभ्य' इति।**

पक्षान्तर से उक्त निषेधवचन नहीं पढने का समर्थन कर रहे हैं-**इनिर्वेति**। अथ वा 'तेन प्रोक्तम्' ४.३.१०१ के अधिकार में इनि प्रत्यय की ही तद्विषयता कहेंगे। यहाँ इनि का ही सामान्यग्रहण होने से 'काश्यपकौशिकाभ्यामृषिभ्यां णिनिः' ४.३.१०३ से विहित णिनि प्रत्यय तथा 'कर्मन्दकृशाश्वादिनिः' ४.३.१११ से विहित इनि का भी ग्रहण होगा। इससे प्रोक्तार्थविषयता इनि की ही होगी। अण् की प्रोक्तार्थ-तद्विषयता नहीं होने से 'प्रोक्ताल्लुक्' ४.२.६४ से उसका लुक् प्राप्त नहीं है; अतः 'याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रतिषेधः' यह निषेधवचन नहीं पढना पडेगा।

'इनिर्वा प्रोक्तेऽर्थे' इस वार्तिक की अतिव्याप्ति दिखाते हैं-**यदीति**। यदि 'प्रोक्त अर्थ में इनि प्रत्यय तद्विषय होता है' ऐसा कहेंगे तो 'पिङ्गेन प्रोक्तः कल्प इति पैङ्गी कल्पः' में 'पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु' ४.३.१०५ से णिनि प्रत्यय है; इसका भी 'प्रोक्ताल्लुक्' ४.२.६४ से लुक् प्राप्त होगा?

उत्तरपक्षी—**काश्यपकौशिकेति**। 'इनिरध्येतृवेदित्रोः' ऐसी परिभाषा करके 'काश्यपकौशिकाभ्यां कल्पः' ऐसा सूत्र करेंगे। यह सूत्र नियमार्थक होगा। नियम का स्वरूप होगा-'प्रोक्तः कल्पः' अर्थ में विहित णिनि का लुक् हो तो काश्यप और कौशिक से पर में विहित का ही हो, अन्य से विहित णिनि का नहीं'। इससे 'पैङ्गी कल्पः' में 'पिङ्ग'शब्द से पर में विहित णिनि का लुक् नहीं हुआ।

एवमपिच्छणादीनां तद्विषयता न प्राप्नोति-तैत्तिरीयाः, वारतन्त-वीयाः। यदि पुनश्छणादयः प्रोक्ते तद्विषया भवन्तीत्युच्येत। एवमपि-पैङ्गी कल्पः-अत्रापि प्राप्नोति। काश्यपकौशिकग्रहणं च कल्पे नियमार्थमित्येव।

एवमपीति। यदि मात्र इनि प्रत्यय की ही तद्विषयता कहेंगे तो 'तित्तिरिव-रतन्तुखण्डिकोखाच्छण्' ४.३.१०२, 'काश्यपकौशिकाभ्यामृषिभ्यां णिनिः' ४.३.१०३, 'कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च' ४.३.१०४ इत्यादि से विहित छण् आदि विषयता की तद्विषयता नहीं हो सकेगी। जैसे-तित्तिरिणा प्रोक्तास्तैत्तिरीयाः, वरतन्तुना प्रोक्ता वारतन्तवीयाः' में 'तित्तिरिवरतन्तु-' ४.३.१०२ से विहित छण् की तद्विषयता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं हो सकेगी। यदि आप छण् आदि प्रत्ययों की प्रोक्त अर्थ में तद्विषयता कहेंगे तो 'पैङ्गी कल्पः' में णिनि की भी तद्विषयता होगी।

अन्य आचार्य 'पैङ्गी कल्पः' में णिनि की तद्विषयता का वारण करते हैं-**काश्यपेति**। 'इनिरध्येतृवेदित्रोः' ऐसी परिभाषा करके 'काश्यपकौशिकाभ्यां कल्पः' ऐसा सूत्र करेंगे। यह नियमार्थक होगा-'प्रोक्तः कल्पः अर्थ में विहित णिनि की तद्विषयता हो तो काश्यप और कौशिक से पर में विहित को ही हो, अन्य को नहीं'। इससे पिङ्गशब्द से विहित णिनि की तद्विषयता नहीं होगी।

एवमप्यौत्सर्गिकाऽणस्तद्विषयता न प्राप्नोति-क्रौडाः काङ्कताः मौदाः पैप्पलादाः। छणादयश्चाऽप्यौत्सर्गिकान् अध्येतृवेदित्रोरेव, येऽन्ये उपचारास्तत्र न बाधेरँस्तित्तिरिणा प्रोक्ताश्श्लोका इति।

अन्य आचार्य—**एवमपीति**। इस तरह करने पर यद्यपि प्रोक्त अर्थ में छण् आदि की, तथा कश्यप, कौशिक से पर में विहित णिनि की तद्विषयता होने पर भी 'क्रोडेन कङ्कतेन मुदेन पिप्पलादेन वा प्रोक्तं छन्दोऽधीयते' में जहाँ 'तेन प्रोक्तम्' ४.३.१०१ से **औत्सर्गिक**=सामान्य अण् विहित है, उसकी तद्विषयता प्राप्त नहीं होने से अव्याप्ति होगी।

यहाँ अन्य दोष का भी उद्भावन करते हैं—**छणादयश्चेति**। अध्येतृ और वेदितृविवक्षा होने पर प्रोक्त अर्थ में होने वाला छण् आदि प्रत्यय अध्येतृ, वेदितृ अर्थ में उत्पन्न होता हुआ औत्सर्गिक प्रत्ययों का ही बाध करेंगे। परन्तु अध्येतृ, वेदितृ से भिन्न स्वयम् अनुत्पन्न होने वाले छण् आदि बाधक नहीं हो सकेंगे। जैसे-'तित्तिरिणा प्रोक्तास्तैत्तिरीयाः' में अध्येतृ, वेदितृ अर्थ से भिन्न में होने वाला छण् प्रत्यय 'तेन प्रोक्तम्' ४.३.१०१ से प्राप्त अण् का बाधक नहीं हो सकेगा। 'तित्तिरिणाः प्रोक्ताश्लोकाः' में छण् का अभाव इस लिए है कि 'तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण्' ४.२.१०२ सूत्र 'प्रोक्तं छन्दः' अर्थ में ही प्रत्ययविधान करता है, तथा छण् प्रत्यय का ही विधान करता है। इस तरह 'तित्तिर्यादिभ्यश्छन्दस्येव प्रत्ययः, स च च्छण्णेव' इस तरह का द्विविध नियम करने से श्लोक अर्थ वाच्य होने पर तित्तिरि पद से छण् प्रत्यय नहीं हुआ। उक्त नियमद्वय के अध्येतृ, वेदितृ अर्थ की विवक्षा होने पर ही प्रवृत्ति होने में भाष्योक्त दोष आ रहा है।

अस्तु तर्ह्यविशेषेण। ननु चोक्तं-'याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रतिषेध' इति। वक्षत्येतद्-'याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रतिषेधस्तुल्यकालत्वाद्' इति। तत्रैव वक्तव्यं 'तद्विषयता च न भवती'ति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरपक्षी आचार्य प्राप्त दोष का निवारण करते हैं-**अस्तु तर्हीति**। 'इनि'रूप विशेष का ग्रहण न करके इसी प्रकरण में 'छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि' सूत्र रखिये; अथ वा 'तेन प्रोक्तम्' ४.३.१०१ के अधिकार में 'छन्दोब्राह्मणान्यध्येतृवेदित्रोः' कहिये; दोनों में कोई दोष नहीं है। इस प्रकरण में भी प्रोक्तग्रहण की अनुवृत्ति होने से प्रोक्तप्रत्ययान्त छन्दोब्राह्मणवाची की विधीयमाना तद्विषयता सम्पूर्ण स्वातन्त्र्य आदि की निवृत्ति में सक्षम है; अतः पूर्व में जो 'यथाधिकारम्' कह कर दोष दिया था वह नहीं रहेगा। सामान्यरूप में तद्विषयताग्रहण करने से प्राप्त दोष का वारण करने के लिए 'याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रतिषेधः' कहा था, वह नहीं कहना पडेगा। 'पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु' ४.३.१०५ सूत्र पर आचार्य 'याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रतिषेधस्तुल्यकालत्वात्' कहेंगे; उसी सूत्र पर तद्विषयता का प्रतिषेध कहना चाहिये। 'तुल्यकालत्वात्' कहने से जहाँ 'शाट्यायनेन पुरातनमुनिना प्रोक्तान् ब्राह्मणभागान् अधीयते', इस अर्थ में 'शाट्यायन'शब्द से प्रोक्तार्थ णिनि प्रत्यय होने पर शाट्यायनिन्शब्द हुआ। णिनिप्रत्ययान्त शाट्यायनिन् से अध्येतृ-अर्थ में विहित अण् का लुक् होने से बहुवचनान्त 'शाट्यायनिनः' रूप है; तुल्यकाल होने से 'शाट्यायनिनः' के पुराणप्रोक्त होने से णिनि प्राप्त है; उसका याज्ञवल्क्यादि से प्रतिषेध कहना चाहिये।

कथं-काश्यपिनः कौशिकिन इति? 'इनिः प्रोक्ते तद्विषयो भवती'त्युच्यमानेऽवश्यमत्र काश्यपकौशिकग्रहणं कल्पे नियमार्थं द्रष्टव्यं,-तदेवेदानीं विध्यर्थं भविष्यति। कथं पाराशरिणो भिक्षवः शैलालिनो नटाः? अत्रापि 'तद्विषयता चे'त्यनुवर्त्तिष्यते।। छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि।।

आक्षेपक आचार्य—**कथमिति**। 'पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु' ४.३.१०५ सूत्र पर तद्विषयता का प्रतिषेध कहने से कल्प अर्थ में तद्विषयता प्राप्त नहीं होगी; अतः प्रश्न है। 'काश्यपेन प्रोक्तमधीयत इति काश्यपिनः, कौशिकेन प्रोक्तमधीयत इति कौशिकिनः' यहाँ काश्यप और कौशिकशब्द से णिनि प्रत्यय, तदन्त से अध्येतृ अर्थ में विहित अण् का 'प्रोक्ताल्लुक्' ४.२.६४ से लुक् है। यहाँ तद्विषयता प्राप्त नहीं होने से अण्लुक् अप्राप्त होगा, फिर 'काश्यपिनः, कौशिकिनः' की सिद्धि कैसे होगी?

उत्तरपक्षी—**इनिः प्रोक्त इति**। प्रोक्तप्रकरण में 'इनिरध्येतृवेदित्रोः' ऐसी परिभाषा करके 'काश्यपकौशिकाभ्यां कल्पे' सूत्र करने पर कल्प अर्थ में काश्यप और कौशिकग्रहण नियमार्थक होगा; इसे इसी सूत्र पर कह आया हूँ। प्रोक्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थ में इनि की तद्विषयता कहने पर नियमार्थक पढा गया काश्यप, कौशिकग्रहण विध्यर्थक होगा।

पूर्वपक्षी—**कथमिति**। यदि कल्पघटित उक्त सूत्र पर तद्विषयता का प्रतिषेध करेंगे तो 'पाराशर्येण प्रोक्तं भिक्षुसूत्रमधीयत इति पाराशरिणो भिक्षवः; शिलालिना प्रोक्तं नटसूत्रमधीयत इति शैलालिनो नटाः' में 'पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः' ४.३.११० से णिनि होने पर णिनिप्रत्ययान्त से अध्येतृ अर्थ में अण् प्रत्यय है, तथा उसका 'प्रोक्ताल्लुक्' ४.२.६४ से लुक् हो कर जसन्त रूप 'पाराशरिणो भिक्षवः, शैलालिनो नटाः' इष्ट है। कल्पसूत्र पर तद्विषयता का प्रतिषेध कहने से यह सिद्ध नहीं हो पा रहा है।

सिद्धान्ती आचार्य—**अत्रापीति**। 'पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः' ४.३.११० सूत्र में तथा 'अपि' पद से 'काश्यपकौशिकाभ्यामृषिभ्यां णिनिः' ४.३.१०३ इत्यादि सूत्रों में तद्विषयता की अनुवृत्ति होगी। वस्तुतः यहाँ अर्थमात्र निर्दिष्ट है। जैसा कि-यदि इस प्रकरण में 'छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि' सूत्र रखेंगे तो व्यवहित होने से प्रोक्तप्रकरण में तद्विषयग्रहण की अनुवृत्ति नहीं हो सकेगी। यदि 'तेन प्रोक्तम्' ४.३.१०१ प्रकरण में 'छन्दोब्राह्मणान्यध्येतृवेदित्रोः' सूत्र पढा जाये तो तद्विषयग्रहण नहीं करना पडेगा; अतः यदि प्रोक्तप्रकरण में यह सूत्र पढते हैं तो सूत्रस्थ 'अध्येतृवेदित्रोः' पद की अनुवृत्ति 'पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः' ४.३.११० इत्यादि सूत्रों में होगी। अथ वा 'याज्ञवल्क्याद्यर्थं तद्विषयता च न' ऐसा भाष्यकार ने कहा है, वही तद्विषयताग्रहण उत्तर के सूत्रों में भी अनुवृत्त होगा।। **छन्दोब्राह्मणानि-**।।

तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ४.२.६७.
तेन निर्वृत्तम् ४.२.६८.
तस्य निवासः ४.२.६९.
अदूरभवश्च ४.२.७०.

सूत्रार्थ—'प्रत्ययान्त के द्वारा प्रकृतिनामक देश गम्य होने पर 'तदस्मिन्नस्ति' इस अर्थ में प्रथमोच्चरित प्रथमान्त से अण् आदि प्रत्यय हों'। प्रसिद्ध देश का ग्रहण के लिए सूत्र में 'इति'शब्द है। यह मतुप् का अपवाद प्रत्यय है। जैसे-उदुम्बराः सन्त्यस्मिन् देशे औदुम्बरो देशः। ४.२.६७.।।

'देशे तन्नाम्नि' का 'तेन निर्वृत्तम्' में अनुवर्त्तन है।

सूत्रार्थ—'देशे तन्नाम्नि' अर्थ गम्य होने पर 'तेन निर्वृत्तम्' अर्थ में तृतीयान्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से अण् आदि प्रत्यय हों'। जैसे-कुशाम्बेन निर्वृत्ता कौशाम्बी नगरी ।४.२.६८.

'तस्य निवासः' में भी 'देशे तन्नाम्नि' का अनुवर्त्तन है। यहाँ स्वत्वास्वत्व-साधारण 'वसति'मात्र निवास इष्ट है।

सूत्रार्थ—'देशे तन्नाम्नि' अर्थ गम्य होने पर 'तस्य निवासः' अर्थ में षष्ठ्यन्त से अण् आदि प्रत्यय हों'। जैसे-शिबीनां निवासः शैबः। ४.२.६९.

'अदूरभवश्च' में 'तस्य' और 'देशे तन्नाम्नि' का अनुवर्त्तन होता है।

सूत्रार्थ—'देशे तन्नाम्नि' अर्थ वाच्य होने पर 'तस्याऽदूरभवः' अर्थ में षष्ठ्यन्त से अण् आदि प्रत्यय हों'। जैसे-विदिशाया अदूरभवं वैदिशं नगरम् ।४.२.७०.

यहाँ पर पठित 'च' पद से पूर्वोक्त तीन अर्थों का सानिध्य है; अतः आगे कहे जाने वाले प्रत्ययों का चातुरर्थिकत्व सिद्ध होता है; अन्यथा सन्निहित होने से उत्तरसूत्रों में 'अदूरभवः' की ही अनुवृत्ति होती। 'चतुर्णां सूत्राणामर्थाश्चतुरर्था-स्तत्र भवाश्चातुरर्थिकाः' 'अध्यात्मादेष्ठञिष्यते' वा.२८६९ से ठञ् प्रत्यय है।

किम्पुनरयमेको योग आहो स्विन्नाना योगाः? किं चाऽऽतः? यद्येको योगः-उत्तरेष्वर्थादेशनेषु 'देशे तन्नाम्नि' 'देशे तन्नाम्नी'-त्यस्याऽनुवृत्तिः कर्त्तव्या, न ह्येकयोगेऽनुवृत्तिर्भवति। कथं ज्ञायते? यदयं 'तदधीते तद्वेदे'ति द्विस्तद्ग्रहणं करोति।

इन चार सूत्रों की एकवाक्यता है, अथ वा भिन्नवाक्यता है?, इस पर पूर्वपक्षी आचार्य विचार करते हैं-**किं पुनरयमिति**। अब यदि यहाँ कहा जाये कि समर्थविभक्तियाँ और प्रत्ययार्थ भिन्न-भिन्न हैं; इन की एकवाक्यता कैसे सम्भव है? तो इसे इस तरह समझना चाहिये-अण्, ण्य, अञ्,नञ् और स्नञ्, यदि पाँच प्रत्यय इन सूत्रों से विहित हैं; तद्विधानापेक्ष एकयोगत्व सम्भव है। जब एकसाथ इन अर्थों में एकग्रहणकवाक्य के द्वारा अण्-आदिप्रत्ययों का विधान होगा; उस दशा में इन चार सूत्रों की एकवाक्यता होने से एकवाक्यतानिबन्धन प्रक्रियावाक्य प्रवृत्त होंगे। परन्तु जब क्रम से विभिन्न अर्थों में प्रत्ययविधान होगा तब नानावाक्यता होगी।

अन्य आचार्य—**किं चाऽत इति**। एकयोग हो, अथवा नानायोग हो, इसमें क्या वैशिष्ट्य है।

पूर्वपक्षी आचार्य एकयोग होने में दोष दिखाते हैं—**यद्येको योग इति**। यदि चारों सूत्रों का एकयोग होगा तो उत्तर के अर्थादेशों 'तेन निर्वृत्तम्' इत्यादि में 'देशे तन्नाम्नि, देशे तन्नाम्नि' की अनुवृत्ति करणीय होगी। एक ही वाक्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में अनुवृत्ति नहीं होने से उत्तर-अर्थादेशों में वह सम्भव नहीं हो सकेगा।

अन्य आचार्य—**कथमिति**। आप को कैसे मालूम है कि एकवाक्य में अनुवृत्ति नहीं होती है?

पूर्वपक्षी—**यदयमिति**। यदि एक ही वाक्य में अनुवृत्ति होती तो 'तदधीते तद्वेद' ४.२.५९ सूत्र के स्थान पर आचार्य 'तदधीते वेद' इतना ही सूत्र पढते; 'तद्' का उत्तरपद में अनुवृत्ति होने से 'तदधीते तद्वेद' अर्थ लब्ध हो जाता; परन्तु आचार्य ने दो 'तद्'घटित वाक्य पढा है, जो द्वितीय 'तद्' पद व्यर्थ हो कर ज्ञापन करता है-'एक वाक्य में अनुवृत्ति नहीं होती है'; अतः 'तदधीते तद्वेद' ४.२.५९ में आचार्य का दो वार 'तद्' पद का पाठ सार्थक होता है। अथ च एकयोग मानने पर 'ओरञ्' ४.२.७१ इत्यादि में सभी अर्थों में अञ् का आदेश हो जायेगा।

अथ नाना योगाः? 'ओर'ञित्येवमाद्यनुक्रमणं-यदेव-सर्वान्त्यमर्थादेशनं तस्यैव विषये स्यात्। यथेच्छसि तथाऽस्तु। अस्तु तावदेको योगः। ननु चोक्तम्- 'उत्तरेष्वर्थादिशनेषु देशे तन्नाम्नि देशे तन्नाम्नीत्यस्यानुवृत्तिः कर्त्तव्या, न ह्येकयोगेऽनुवृत्तिर्भवती'ति एकयोगेऽप्यनुवृत्तिर्भवति। कथं ज्ञायते? यदयं-'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुबि'ति द्विस्तद्ग्रहणं न करोति। कथं 'तदधीते तद्वेदे'ति? प्रमादकृतमाचार्यस्य। शक्यमकर्त्तुम्।

चारों सूत्रों का नानायोग मानने में आपत्ति दे रहे हैं-**अथ नानेति**। यदि नानायोग मानेंगे तो उत्तरसूत्र 'ओरञ्' ४.२.७१ इत्यादि में जहाँ 'तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि' इत्यादि में प्रत्ययादेश करना होगा वहाँ इन चारों अर्थों में जो अन्तिम अर्थ 'अदूरभवश्च' है, उसी की अनुवृत्ति होने से मात्र 'अदूरभवश्च' अर्थ में ही 'ओरञ्' ४.२.७१ इत्यादि की प्रवृत्ति होगी; 'तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि' इत्यादि अर्थों में नहीं। जब कि स्वरितत्वप्रतिज्ञा के बल से वहाँ चारों अर्थों में प्रत्ययादेश इष्ट है।

उत्तरपक्षी—**यथेच्छसीति**। एकयोग अथ वा नानायोग जो भी इच्छा हो मान लीजिये। एकयोग मानने पर पूर्वपक्षी ने उत्तरसूत्रों में 'देशे तन्नाम्नि, देशे तन्नाम्नि' की अनुवृत्ति असम्भव बतायी थी; उसका वारण करते हैं-**एकयोगेऽपीति**। एकवाक्य में भी अनुवृत्ति होती है; अत एव आचार्य ने 'तदस्यास्ति तदस्यास्मिन्निति मतुप्' ऐसा दो 'तद्' पदघटित सूत्र न पढ कर मात्र 'तदस्यास्त्यस्यस्मिन्निति मतुप्' ५.२.९४ ऐसा एक 'तद्'पदघटित सूत्र ही पढा है; उसी का उत्तरांश

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में अनुवर्त्तन हो जाता है।

पूर्वपक्षी ने समानवाक्य में अनुवृत्ति का निषेध करता हुआ प्रमाण के रूप में 'तदधीते तद्वेद' ४.२.५९ सूत्र उद्धृत किया था, उसे स्पष्ट करते हैं-**कथमिति**। शिष्यों के सुखावबोध के लिए आचार्य ने दो तद्पदघटित 'तदधीते तद्वेद' ४.२.५९ सूत्र पढा है; आचार्य यहाँ एक तद्पदघटित सूत्र भी पढ सकते थे, परन्तु ज्ञानलाघव के लिए आचार्य ने दो तद्पदघटित पाठ किया है। इससे लघुशब्देन्दुशेखरग्रन्थ में आचार्यनागेशजी द्वारा उक्त-'नहि वर्णाभिव्यक्तिजनककण्ठ-ताल्वाद्यभिघातजन्यगौरवम् एवादर्त्तव्यम्, अपि तु मनोव्यापारजन्यगौरवमपीति राजाज्ञा-ऽस्ति' सं.प्र. ग्रन्थ भी समर्थित हो जाता है।

अथवा सन्तु पुनर्नाना योगाः। ननु चोक्तम्- 'ओरञित्येवमाद्य-नुक्रमणं यदेव सर्वान्त्यमर्थादेशनं तस्यैव विषये स्यादि'ति। नैष दोषः- * गोयूथवदधिकाराः *** गोयूथवदधिकारा भवन्ति। तद्यथा-गोयूथमेकदण्डप्रघट्टितं सर्वं समं घोषं गच्छन्ति तद्वदधिकाराः।।** अदूरभवश्च।।

अब चारों का नानावाक्यपक्ष में प्राप्त दोष का निवारण करते हैं-**अथ वेति**। इन्हें नानायोग ही मानें। इसमें भी मात्र अन्त्य अर्थ में ही प्रत्ययविधान नहीं होगा, अपि तु सभी अर्थों में प्रत्ययविधान होगा। **गोयूथवदिति**। अधिकार गाय के झूण्ड की तरह होते हैं। जैसे दण्ड से प्रेरित हो कर गायें एक साथ गोष्ठ में प्रविष्ट होती हैं; वैसे चारों सूत्रों में आचार्य द्वारा कृत स्वरि-तत्वप्रतीज्ञा के बल से स्वरितत्वचिन्हरूप दण्ड से प्रेरित हो कर अधिकारगाय भी आनन्तर्यव्यवधाननिरपेक्ष हो कर एक साथ कार्यदेश का अनुसरण करेंगी।। **अदूरभश्च**।।

ओरञ् ४.२.७१

* ओरञ्विधेर्नद्यां मतुब्विप्रतिषिद्धम् *** ओरञ्विधेर्नद्यां मतुब्भवति विप्रतिषेधेन। ओरञोऽवकाशः-** कक्षतु-काक्षतवम्। कृकटेलु-कार्क्क-टेलवम्। **मतुपोऽवकाशः-** उदुम्बरावती। मशकावती। **इहोभयं प्राप्नोति-इक्षुमती। द्रुमती। मतुब्भवति विप्रतिषेधेन।।** ओरञ्।।

यह 'प्राग्दीव्यतोऽण्' ४.१.८३ का अपवाद सूत्र है।

सूत्रार्थ—'तदस्मिन्नस्ति' इत्यादि चार अर्थों में प्रथमोच्चरित तत्तद्विभक्त्यन्त से अञ् हो'। जैसे-कक्षतुरस्मिन्नस्ति, कक्षतुना निर्वृत्तम्, कक्षतोर्निवासः, कक्षतोरदूरभव-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मिति काक्षतवम्। आगे भी इसी तरह चारों अर्थों में समन्वय करना चाहिये।

सिद्धान्त वार्तिक—**ओरञ्विधेरिति**। ओरञ्विधि में नदीदेशवाची उवर्णान्त-प्रातिपदिक से परविप्रतिषेध के द्वारा मतुप् प्रत्यय कहना चाहिये। 'काक्षतवम्, काक्कटेलवम्' में 'ओरञ्' चरितार्थ है तथा 'उदुम्बराणि सन्ति यस्यां सा उदुम्बरावती' 'मतौ बह्वचोऽनजिरादीनाम्' ६.३.११९ से दीर्घ है, 'मशकाः सन्ति यस्यां सा मशकावती' में 'नद्यां मतुप्' ४.२.८५ चरितार्थ है। 'इक्षवोऽस्यां सन्ति, द्रवोऽस्यां सन्ति' इस अर्थ में उवर्णान्त से अञ् भी प्राप्त है तथा मतुप् भी प्राप्त है। परविप्रतिषेध के द्वारा मतुप् से अञ् का बाध होता है।। **ओरञ्**।।

मतोश्च बह्वजङ्गात् ४.२.७२

अङ्गग्रहणं किमर्थम्? यथा बह्वज्ग्रहणमङ्गविशेषणं विज्ञायेत-'बह्वोऽङ्गादि'ति। अथाऽक्रियमाणेऽङ्गग्रहणे बह्वज्ग्रहणं कस्य विशेषणं स्यात्? मत्वन्तविशेषणम्। तत्र को दोषः? इहाऽपि प्रसज्येत-मालावतामयं निवासो मालावतम्। अस्ति चेदानीं कश्चिद् अबह्वज्मत्वन्तो यदर्थो विधिः स्यात्? अस्तीत्याह-श्ववान्। स्ववान्।। मतोश्च बह्वजङ्गात्।।

'मतोः' यह प्रत्यय का ग्रहण होने से तदन्त अर्थ कहेगा। 'बहवोऽचो यस्मिन्नङ्गे तद् बह्वजङ्गं, तस्मात्'।

सूत्रार्थ—'बह्वच्क अङ्ग हैं जिसका ऐसा जो मतुप् प्रत्यय, तदन्त से प्रागुक्त अर्थों में अञ्प्रत्यय हो'। जैसे-सैध्रिकावतम्। सिध्रिकावानस्ति इत्यादि अर्थ है।

'मतोश्च बह्वचः' इतना ही सूत्र रखा जाये। दोनों पञ्चम्यन्त पदों को भिन्नाधिकरण में व्याख्या करेंगे। इससे 'बह्वच् से विहित जो मतुप्, तदन्त से अञ् हो' ऐसा कहने से वही अर्थ आयेगा; पुनः सूत्र में अङ्गग्रहण क्यों किया जा रहा है? ऐसा मान कर पूर्वपक्ष करते हैं-**अङ्गग्रहणमिति**।

उत्तरपक्षी—**यथेति**। 'सम्भवति सामानाधिकरण्ये वैयधिकरण्यस्याऽन्याय्यता' इस न्याय से 'बह्वज्ग्रहण अङ्ग का विशेषण समझा जाये' इस के लिए अङ्गग्रहण है।

पूर्वपक्षी—**अथाक्रियमाण इति**। यदि अङ्गग्रहण नहीं करेंगे तो बह्वज्ग्रहण किसका विशेषण होगा?

उत्तरपक्षी—**मत्वन्तस्येति**। अङ्गग्रहण के अभाव में बह्वज्ग्रहण मत्वन्त का विशेषण होगा। इससे बह्वच् मत्वन्त से अञ् कहने पर 'मालावतामयम्' में भी अञ् होने से 'मालावतम्' ऐसा अनिष्ट रूप होने लगेगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्वपक्षी—**अस्तीति**। तो क्या कोई अबहुच् मतुबन्त भी है? जिसके व्यावर्त्तन के लिए अङ्ग में 'बह्वचः' विशेषण दिया जा रहा है?

उत्तरपक्षी—**अस्तीति**। श्वाः सन्ति अस्येति श्वान्, **स्वं**=धनमस्ति अस्येति स्ववान्' यह अबह्वच् मतुबन्त है; इसकी व्यावृत्ति के लिए 'मतोः' में 'बह्वचः' विशेषण हो सकता था।। **मतोश्च बह्वङ्गात्**।।

नद्यां मतुप् ४.२.८५

किमर्थं नद्यां मतुब्विधीयते, न 'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुबि'त्येव सिद्धम्? * नद्यां मतुब्वचनं मत्वर्थेऽण्विधानात् *** नद्यां मतुब्वचनं क्रियते-मत्वर्थेऽण्विधानात्। अयं मत्वर्थेऽण्विधीयते स विशेषविहितः सामान्यविहितं मतुपं बाधते *** निर्वृत्ताद्यर्थं च *** निर्वृत्ताद्यर्थं च नद्यां मतुब्वचनं क्रियते। निर्वृत्ताद्यर्थेषु मतुब्यथा स्यात्।।** नद्यां मतुप्।।

यहाँ नदी पद से नदीदेश विवक्षित है तथा अर्थ का ग्रहण है, स्वरूप का नहीं।

सूत्रार्थ—'नदीवाची प्रातिपदिक से चातुरर्थिक मतुप् प्रत्यय हो'। इक्षवः सन्ति अस्यामिति इक्षुमती, उगित् होने से ङीप् है।

पूर्वपक्षी—**किमर्थमिति**। उक्त विग्रह में 'तदस्यास्तस्मिन्निति मतुप्' ५.२.६४ से मतुप् हो कर 'इक्षुमती' रूप हो जाता, पुनः इसी के लिए प्रकृत सूत्र क्यों पढा गया है?

उत्तरपक्षी—**नद्यो मतुब्वचनमिति**। मतुबर्थ में 'तदस्मिन्नतीस्ति देशे तन्नाम्नि' ४.२.६७ सूत्र से मतुबर्थ में अण्विशेष विहित है। विशेष अण् के द्वारा सामान्य मतुप् का बाध होने से 'इक्षुमती' में मतुप् अप्राप्त हो रहा था; अतः मतुब्विधानार्थ प्रकृत सूत्र पढा गया है।

उक्त प्रश्न का अन्य उत्तर भी देते हैं—**निर्वृत्ताद्यर्थमिति**। 'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्' ५.२.९४ से विहित मतुप् 'तेन निर्वृत्तम्' इत्यादि अर्थों में नहीं हो सकेगा; अतः 'तेन निर्वृत्तम्' ४.२.६५, 'तस्य निवास' ६९, 'अदूरभश्च' ७०' अर्थों में भी मतुप् हो सके, इसके लिए प्रकृत सूत्र पढा गया है।। **नद्यां-**।।

कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप् ४.२.८७

***** महिषाच्च *** महिषाच्चेति वक्तव्यम्। महिष्मान्।**

सूत्रार्थ—'कुमुद, नड और वेतसशब्द से चातुरर्थिक ड्मतुप् प्रत्यय हो'।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुमुदाः सन्ति अस्मिन् कुमुद्वान्, डित्त्वात् टिलोप, इसी तरह नड्वान्, वेतस्वान् में भी विग्रह करना चाहिये।

वार्तिक—**महिषाच्चेति**। महिष पद से चातुरर्थिक ड्मतुप् प्रत्यय कहना चाहिये'। महिषाः सन्ति अस्मिन्निति महिष्मान्।। कुमुद-।।

नडादीनां कुक्च ४.२.९१

यदि पुनरयं कुट् परादिः क्रियेत? * कुटि प्रत्ययादेरादेशानुपपत्तिरनादित्वात् * कुटि सति 'प्रत्ययादेरादे'रित्यादेशस्यानुपपत्तिः। कुटि कृतेऽनादित्वादादेशो न प्राप्नोति। एवं तर्हि पूर्वान्तः करिष्यते * पूर्वान्ते ह्रस्वत्वम् * यदि पूर्वान्तो ह्रस्वत्वं वक्तव्यं-क्रुञ्चकीयाः। परादौ पुनः सति केऽण इति ह्रस्वत्वं सिद्धं भवति। अस्तु तर्हि परादिः। ननु चोक्तं-'कुटि कृतेऽनादित्वादादेशो न प्राप्नोती'ति।

'उत्करादिभ्यश्छः' ४.२.९० से विधेयवचन 'छः' की यहाँ अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'नडादिगणपठित शब्दों से चातुरर्थिक छ प्रत्यय और प्रकृति को कुकागम हो'। कित् होने से 'आद्यन्तौ टकितौ' १.१.४६ से अन्तावयव होगा। नडाः सन्ति अस्मिन्निति नडकीयम्।

सूत्रकार ने कुक् पूर्वान्त किया है। 'क्रुञ्चकीयाः' में ह्रस्वसिद्धि के लिए 'क्रुञ्चा ह्रस्वत्वं च' ग.सू.८० तथा 'तक्षकीयः' में नलोपसिद्धि के लिए 'तक्षन्नलोपश्च' ग.सू.८१ पढा है।

पूर्वपक्षी आचार्य इन दोनों सूत्रों को अन्यथा कर शङ्का करते हैं-**यदि पुनरयमिति**। 'कादौ अणो ह्रस्वः' इत्यर्थक 'केऽणः' ७.४.१३ से ह्रस्व सिद्ध मान कर यह पूर्वपक्ष है। कुक् पूर्वान्त करने से 'क्रुञ्चकीयाः' में 'केऽणः' ७.४.१३ से ह्रस्व प्राप्त नहीं हो रहा है, तथा 'तक्षकीयम्' में तदान्तत्व कुक् पर होने से अपदान्त 'न्' का लोप प्राप्त नहीं है। यदि प्रकृत सूत्र में 'कुक्' के स्थान पर टित् 'कुट्' ऐसा विधान किया जाये तो टित् होने से कादिप्रत्यय पर रहते अण् को ह्रस्व तथा नान्त पर पदान्तत्व होने से नलोप सिद्ध हो जाता है। परन्तु कुड्विधान करने पर 'छ' प्रत्यय का आद्यवयव 'क्' होगा। 'आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्' ७.१.२ में प्रत्यय का आद्यवयव 'छ' को 'ईय' विधान है। 'क्छ' में आद्यवयव 'छ' नहीं होने से उसको ईयादेश प्राप्त नहीं हो सकेगा।

अन्य आचार्य—**एवन्तर्हीति**। यदि क्छ कहने में प्रत्ययादि नहीं होने से 'छ'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

को ईयादेश प्राप्त नहीं है तो किद्विशिष्ट कुगागमविधान ही कीजिये।

पूर्वपक्षी—**यदि पूर्वान्त इति**। यदि प्रकृति को कुगागम करेंगे तो 'क्रुञ्चकीयः' में अलग से ह्रस्व कहना होगा। परन्तु यदि कुगागम कहते हैं तो 'कादौ अणो ह्रस्वः' स्याद्' इत्यर्थक 'केऽणः' ७.४.१३ से ह्रस्व सिद्ध हो जाता है।

अन्य आचार्य—**अस्तु तर्हीति**। यदि परादि कहने में 'क्रुञ्चकीयम्' में ह्रस्व और 'तक्षकीयम्' में नलोप सिद्ध हो जा रहा है तो परादि ही कर लीजिये।

*** सिद्धं त्वादिष्टस्य कुड्वचनात् * सिद्धमेतत्। कथम्? 'आदिष्टस्य कुड्वचनात्'। 'कुट् चाऽऽदिष्टस्ये'ति वक्तव्यम्। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम् * सन्नियोगात्सिद्धम् * सन्नियोगः करिष्यते। क एष यत्नश्चोद्यते सन्नियोगो नाम? चकारः कर्त्तव्यः-कुट् च। 'किं च'? यच्चाऽन्यत्प्राप्नोति। किं चाऽन्यत्प्राप्नोति? आदेशः।**

परादि कहने में 'प्रत्ययादेरित्यादेशस्यानुपपत्तिः' दोष दिया था, उसका वारण कर रहे हैं-**सिद्धं त्विति**। नडादि से पर में विहित 'छ' को ईय आदेश हो जाने पर आदिष्ट ईय को कुडागम करेंगे।

इतर आचार्य—**तत्तर्हीति**। तो क्या आदिष्ट को कुडागम कहना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। इसकी आवश्यकता नहीं है। आदिष्ट को कुडागम नहीं करने पर भी 'छ' के स्थान में ईयादेश वारण के लिए कहते हैं-**सन्नियोगादिति**। 'कुट् च' ऐसा पाठ करेंगे। चकारकरण से 'छ' को ईयादेश और उसको कुडागम एक साथ होगा। इस तरह ईयादेश की अनुपपत्ति निरस्त हो गयी।

सिध्यति, सूत्रं तर्हि भिद्यते। यथान्यासमेवास्तु। ननु चोक्तं-'पूर्वान्ते ह्रस्वत्व'मिति। निपातनादेतत्सिद्धम्। किं निपातनम्? 'क्रुञ्चा ह्रस्वत्वं चे'ति। तत्तर्हि पूर्वान्ते सति निपातनं कर्त्तव्यम्। परादावप्येष दोषः,-यद्धि तत्केऽण इति ह्रस्वत्वं न तत्कादिमात्रे शक्यं विज्ञातुम्, इहापि प्रसज्येत-नदीकल्पः परीवाहः। कुमारीकाम्यतीति। तस्माद् उभाभ्यामेतद्वक्तव्यं-'क्रुञ्चा ह्रस्वत्वं चे'ति।।

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये
चतुर्थाऽध्यायस्य द्वितीये पादे प्रथममाह्निकम्

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्य आचार्य—**सिध्यतीति**। आचार्य ने 'नडादीनां कुक् च' सूत्र पढा है, परन्तु आप 'कुक् च' के स्थान पर 'कुट् च' पढ रहे हैं; इससे सूत्रभेद होगा।

उत्तरपक्षी आचार्य यथान्यासपक्ष में दोष हटाते हैं—**यथान्यासमिति**। यदि सूत्रभेद हो रहा है तो सूत्र को यथान्यास ही रखीये। आचार्य ने 'क्रुञ्चा ह्रस्वत्वं च' ग.सू.८0 पढा है; उससे निपातन के द्वारा ह्रस्व कर 'क्रुञ्चकीयम्' रूप हो जायेगा।

अब 'कुट् च' कहने वाले के पक्ष में भी दोष दिखाते हैं-**परादाविति**। यदि आगम को कुट् करेंगे तब भी 'क्रुञ्चकीयम्' में ह्रस्वविधान के लिए आप को निपातन करना होगा। वह इस तरह कि 'केऽणः' ७.४.१३ सूत्र में 'क' प्रत्यय का ग्रहण है, वर्ण का नहीं। यदि वर्ण का ग्रहण होता तो 'कादौ परेऽणो ह्रस्वः स्यात्' ऐसा अर्थ हो सकता था; परन्तु इससे 'ईषद् नदी नदीकल्पः, कुमारीमात्मन इच्छतीति कुमारीकाम्यति' में भी ह्रस्व की आपत्ति होगी; अतः इसका वारण करने के लिए 'कप्रत्यये परेऽणो ह्रस्वः स्यात्' ऐसा अर्थ करना होगा। तथा क्रुञ्चा से 'छ' प्रत्यय तथा प्रकृति को ह्रस्व एवं तक्षन् से 'छ' प्रत्यय तथा नलोप कहना चाहिये।। **नडादीनां-**।।

श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य
चतुर्थ अध्याय द्वितीय पाद प्रथम आह्निक पर
डॉ. हरिनारायण तिवारी द्वारा रचित
'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

❀ द्वितीये पादे द्वितीयमाह्निकम् ❀

शेषे ४.२.९२

शेष इत्युच्यते, कः शेषो नाम? अपत्यादिभ्यश्चातुरर्थ-पर्यन्तेभ्यो येऽन्येऽर्थाः स शेषः। किमर्थं पुनः शेषग्रहणं क्रियते? शेषे घादयो यथा स्युः स्वार्थे मा भूवन्निति। नैतदस्ति प्रयोजनम्। इदं तावदयं प्रष्टव्यः-'अण्णादयः स्वार्थे कस्मान्न भवन्ती'ति? अपत्यादिष्वर्थेष्वण्णादयो विधीयन्ते तेन स्वार्थे न भविष्यन्ति। इमेऽपि तर्हि जातादिष्वर्थेषु विधीयन्ते तेन स्वार्थे न भविष्यन्ति।

यहाँ से शैषिकाधिकारप्रकरण प्रारम्भ होता है। 'तस्य विकारः' सूत्र से पूर्व तक शैषिकाधिकार है। यह लक्षण भी है।

सूत्रार्थ—'शेष अर्थों में अण् आदि प्रत्यय हों'।

अपत्यादि से चातुरर्थपर्यन्त प्रत्ययों का प्रतिपादन हो चुका है; अतः 'शेषे' सूत्र के अभाव में भी 'तत्र जातः' ४.३.२५ इत्यादि अर्थों में 'घ' आदि प्रत्यय सिद्ध हो जायेंगे; पुनः प्रकृत सूत्र का आरम्भ क्यों है?, ऐसा मान कर प्रश्न करते हैं-**शेष इत्युच्यत इति**। 'शेषे' ऐसा कहा जा रहा है। 'शेष' क्या है?

इतर आचार्य शिष्यबुद्धिपरिक्षार्थ शेषपदार्थ दिखाते हैं—**अपत्यादिभ्य इति**। अपत्यादि से चातुरर्थपर्यन्त अर्थों में प्रत्यय कहे गये हैं। इससे जो भिन्न अर्थ है, वही शेष है। 'चतुर्ण्णामर्थानां समाहारश्चतुरर्थी, चतुरर्थी एव चातुरर्थम्, प्रज्ञादिभ्यश्च' से अण्, अण्णन्त से 'आध्यात्मादेष्ठञिष्यते' वा.२८६९ से ठञ् हो कर 'चातुरर्थिकः' रूप है। जिस अभिप्राय से पहले प्रश्न किया था, उसी अभिप्राय से पुनः प्रश्न करते हैं-**किमर्थमिति**। उक्त से अन्य शेष अर्थ स्वयम् लब्ध हो जायेगा, शेषग्रहण क्यों करते हैं?

उत्तरपक्षी—**शेषे घादय इति**। 'घ' आदि प्रत्यय शेष अर्थ में हों, स्वार्थ में न हों, इसके लिए प्रकृत सूत्र का आरम्भ है। अर्थ का निर्द्देश नहीं करने पर प्रत्यय '**स्वार्थे**=स्वम्=प्रकृतिः=तस्या=अर्थे'=प्रकृत्यर्थ में होते हैं।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। प्रकृत सूत्रारम्भ का यह प्रयोजन नहीं है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसे स्पष्ट करते हैं-**इदं तावदिति**। यहाँ विचार करना चाहिये कि 'प्राग्दीव्यतोऽण्' ४.१.८३ इत्यादि से विहित अण् आदि प्रत्यय स्वार्थ में क्यों नहीं होते हैं?

उत्तरपक्षी—**अपत्यादिष्विति**। अपत्य आदि अर्थों में अण् आदि प्रत्ययों का विधान है; अतः अण् आदि प्रत्यय स्वार्थ में नहीं होते हैं।

अन्य आचार्य—**इमेऽपीति**। यदि अपत्यादि अर्थों में विहित होने से अण् आदि स्वार्थ में नहीं हैं तो घादि भी 'तत्र जातः' ४.३.२५ इत्यादि अर्थों में विहित हैं; अतः ये भी स्वार्थ में नहीं हो सकेंगे। इससे 'शेषे'सूत्र व्यर्थ है।

कथं पुनरिहोच्यमाना घादयो जातादिष्वर्थेषु शक्या विज्ञातुम्? अनुवर्त्तिष्यन्ते तत्र घादयः। यद्यनुवर्त्तन्ते घादयो या-या परा-परा प्रकृतिस्तस्यास्तस्याः पूर्वे-पूर्वे प्रत्ययाः प्राप्नुवन्ति। एवं तर्हि जातादिष्वर्थेषु घादीनपेक्षिष्यामहे। अयुक्तैवं बहुनोऽपेक्षा। अपेक्षमाणोऽयमनन्तरं योगमपेक्षेत।

पूर्वपक्षी—**कथं पुनरिति**। 'राष्ट्रावारपाराद् घखौ' ४.२.९३ इत्यादि सूत्रों में घादि प्रत्यय हैं, यहाँ अर्थनिर्द्देश नहीं है। जहाँ 'तत्र जातः' ४.३.२५ इत्यादि में अर्थनिर्द्देश है वहाँ प्रत्ययपद उच्चरित नहीं है; अतः यह कैसे जाना जा सकता है कि जातादि अर्थों में ही घादि विहित हैं?

उत्तरपक्षी—**अनुवर्त्तिष्यन्त इति**। घादिविधायक सूत्रों में अर्थनिर्द्देश नहीं है; एवं 'तत्र जातः' ४.३.२५ इत्यादि में जहाँ अर्थनिर्द्देश है, वहाँ प्रत्ययपद का निर्द्देश नहीं है; अतः परस्पर आकाङ्क्षावशाद् एकवाक्यता होने से जातादि अर्थों में ही घादि प्रत्ययों का विधान होने से 'तत्र जातः' ४.३.२५ इत्यादि सूत्रों में घादि का अनुवर्त्तन होगा।

अन्य आचार्य—**यद्यनुवर्त्तन्त इति**। अनुवर्त्तनपक्ष में दोष यह होगा कि पर में जो प्रकृतिनिर्द्देश है, उस प्रकृति से पूर्व-पूर्व में जो-जो प्रत्यय कहे गये हैं वे सभी प्रत्यय उन-उन प्रकृति से प्राप्त होंगे। इस तरह अनन्तरप्रकृति से प्रत्ययों की प्राप्ति होगी।

अव्यवहित प्रकृति से प्रत्ययों की प्राप्ति होने पर उसका वारण करते हैं-**एवन्तर्हीति**। 'तत्र जातः' ४.३.२५ इत्यादि अर्थों में प्रत्यय का निर्द्देश नहीं है; अतः वे घादि प्रत्ययों की अपेक्षा करेंगे। अनन्तर प्रत्यय के द्वारा आकाङ्क्षाविक्षेद सम्भव नहीं होने से बहुत वस्तुओं की अपेक्षा अयुक्त है। अपेक्ष्यमाण अर्थ अनन्तर प्रकृति की अपेक्षा करेगा। इससे 'तत्र जातः' ४.३.२५ में व्यवधानशून्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'विभाषापूर्वाह्णापराह्णाभ्याम्' ४.३.२४ की अपेक्षा होगी। इसके साथ 'तत्र जात' ४.३.२५ की आकाङ्क्षा शान्त होने से 'राष्ट्रावारपाराद् घखौ' ४.३.९३ की अपेक्षा नहीं करेगा; अतः 'तत्र जातः' अर्थ में राष्ट्र आदि प्रकृति से घादि प्रत्यय नहीं हो सकेंगे।

बहुनोऽप्यपेक्षा भवति। तद्या-'कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोग' इति ससामान्यकं सविशेषकं सर्वमपेक्षते। अथ वा पुनरस्त्वनुवृत्तिः। ननु चोक्तं-'या-या परा-परा प्रकृतिस्तस्यास्तस्याः पूर्वे-पूर्वे प्रत्ययाः प्राप्नुवन्ती'ति। नैष दोषः-सम्बन्धम् अनुवर्त्तिष्यते-राष्ट्रावारपाराद् घखौ'। ग्रामाद्यखञौ। 'राष्ट्रावारपाराद् घखौ'। कत्त्र्यादिभ्यो ढकञ्। 'राष्ट्रावारपाराद् घखौ'-ग्रामाद्यखञाविति।

उत्तरपक्षी आचार्य—'अयुक्तैव बहुनोऽपेक्षापक्ष' का खण्डन करते हैं-**बहुनोऽपीति**। एकत्र बहुत वस्तु की भी अपेक्षा होती है। जैसे-'कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोगः' ३.४.४६ सूत्र पर 'कषादिषु' इस वचन से धातुसामान्य बहुत वस्तुओं की अपेक्षा होती है, वैसे प्रकृत सूत्र में भी योगविभागसामर्थ्य से प्रकृतिसमुदाय से प्रत्यय की अपेक्षा होगी। इससे यहाँ सामान्य-विशेषसहित सभी का ग्रहण होने से बहुत वस्तुओं की अपेक्षा है। अथ वा स्वरितत्वप्रतिज्ञा से अनुवृत्तिपक्ष ही मान लीजिये। इस पक्ष में आप ने कहा था कि प्रत्यय के अनन्तर निर्दिष्ट प्रकृति से ही प्रत्यय होने से 'तत्र जातः' ४.३.२५ इत्यादि अर्थों में 'विभाषा पूर्वाह्णापराह्णाभ्याम्' ४.३.२४ से ही प्रत्यय होगा, अन्य से नही; यह भी दोष नहीं रहेगा। यह दोष न हो, इसके लिए हम सम्बन्धों की अनुवृत्ति करेंगे। इससे जहाँ जिस अर्थ का सम्बन्ध होगा वहीं उसका अन्वय भी होगा, अन्यत्र अन्वय नहीं होने से कोई दोष नहीं होगा। जैसे सुदूर यात्रा पर प्रस्थित व्यक्ति मध्य के ग्राम, नगर आदि का परित्याग करता हुआ अपने सम्बन्धित जन आदि से अन्वित होता हैं, मध्य में स्थित सभी का परित्याग कर देता है, वैसे अनुवृत्त होता हुआ पद मध्य का परित्याग कर अपने सम्बन्धित पद से ही अन्वित होगा। इससे कहीं पर भी कोई दोष नहीं होता है।

अत उत्तरं पठति- * शेषवचनं घादीनाम् अपत्यादिष्वप्रसङ्गार्थम् * शेषवचनं क्रियते शेषे घादयो यथा स्युरपत्यादिषु मा भूवन्निति। कथं च प्राप्नुवन्ति? * तस्येदं वचनात्प्रसङ्गः * तस्येदं वचनात्प्रसङ्गः। तस्येदंविशेषा ह्यते-ऽपत्यं, समूहो, निवासो, विकार इति * विप्रतिषेधात्सिद्धम् * अण्णादयः क्रियन्तां घादय इति, किमत्र कर्त्तव्यम्?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अण्णादयो भवन्ति विप्रतिषेधेन।

इस तरह अब तक शेषग्रहण का वैयर्थ्यप्रतिपादन हो जाने पर उसका सार्थकत्व बताने के लिए उत्तर पढते हैं-**अत उत्तरमिति**। 'शेष अर्थ में ही घादि प्रत्यय हों, अपत्यादि अर्थों में न हों' इसके लिए 'शेषे' सूत्र का आरम्भ किया गया है।

पूर्वपक्षी—**कथं चेति**। 'शेषे' सूत्र नहीं पढे जाने पर घादि प्रत्यय अपत्यादि अर्थों में कैसे प्राप्त हो रहे हैं?

उत्तरपक्षी—**तस्येदमिति**। 'तस्येदम्' ४.३.१२० इस विशेषवचन से इदन्त्वेन अपत्यादि अर्थों में भी घादि प्राप्त होंगे। लाघवानुरोध से सभी विशेष 'इदम्' पद से कहे गये हैं। 'तस्येदम्' ४.३.१२० सूत्र में 'इदम्'पदार्थ इदन्त्व का आश्रयभूत व्यक्तिविशेष ही 'तस्यापत्यं, समूहः, निवासः, विकारः' इत्यादि हैं। यद्यपि 'इदम्' यह प्रत्ययविषयत्वेन बोधक है, तथापि इदंरूप से यह सर्वसंग्राहक भी है। प्रत्यय और प्रकृति से तत्तद् रूप से बोध होगा। परन्तु जब शेषग्रहण करते हैं तब 'शेष इस अर्थ में प्रत्यय हो' ऐसा अर्थ होने से अपत्यादि अर्थों में शैषिकाधिकार के प्रत्ययों की प्रवृत्ति नहीं होती है। इदन्त्वेन 'अपत्यं, समूहः, निवासः, विकारः' इन सभी का बोध होने से अण् आदि और घादि सभी एकत्र प्राप्त होंगे। 'तस्यापत्यम्' ४.१.९२, 'तस्य समूहः' ४.२.३७, 'तस्य निवासः' ४.२.६९, 'तस्य विकारः' ४.३.१३७' में अण् आदि के इदन्त्वेन प्राप्त होने से सर्वत्र अण् आदि और घादि प्राप्त हैं, उसका वारण करते हैं-**विप्रतिषेधादिति**। पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा अण् आदि से घादि का बाध होता है।

*** न वा परत्वाद् घादीनाम् * न वैष युक्तो विप्रतिषेधः। किं कारणम्? 'परत्वाद् घादीनाम्'। 'विप्रतिषेधे पर'मित्युच्यते, पूर्वे चाऽण्णादयः, परे घादयः। परेऽण्णादयः करिष्यन्ते। सूत्रविपर्यासश्चैव कृतो भवति * अण्णपवादत्वाच्चाऽण्विषये घादिप्रसङ्गः * अण्णपवादत्वाच्च घादीनामण्विषये घादयः प्राप्नुवन्ति।**

अन्य आचार्य इसका खण्डन करते हैं—**न वा परत्वादिति**। यहाँ विप्रतिषेध उचित नही है। आचार्य विप्रतिषेधे परम्' १.४.२ ऐसा कहते हैं। इससे समान बल होने पर पर से पूर्व का बाध होता है। अण् आदि पूर्व हैं तथा घादि पर हैं। पूर्व अण् आदि से पर घादि का बाध उचित नहीं है।

उत्तरपक्षी—**परेऽण्णादय इति**। हम यहाँ पर अष्टाध्यायी का क्रम बदल देंगे। घादि को पूर्व पढेंगे तथा अण् आदि को पर पढेंगे। इससे पर अण्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आदि से पूर्व घादि का बाध हो जायेगा।

अन्य आचार्य इस पक्ष में दोष उद्धृत करते हैं-**सूत्रविपर्यास इति**। यहाँ अष्टाध्यायी का क्रम बदलने से सूत्रविपर्यास होगा, यह प्रथम दोष है; तथा-**अण्णपवादत्वादिति**-अपत्यादिरूप अण्विषय में भी अण् का बाध कर घादि प्राप्त होंगे। अण् के अवश्य प्राप्त होने पर विधीयमान घादि अपत्य आदि अर्थों में भी अण् का बाध करेंगे, यह द्वितीय दोष होगा; अतः घादि से अण् का बाध न हो, इसके लिए शेषाधिकार करना चाहिये। सूत्रविपर्यासकृत दोष महाभाष्य में मान्य नहीं होने से भाष्यकार ने उसका कोई उत्तर नहीं दिया है।

नैष दोषः। आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति नाऽण्विषये घादयो भवन्ती'ति यदयं 'फेश्छ चे'ति फिञन्ताच्छं शास्ति। नैतदस्ति ज्ञापकं-फिनर्थमेतत् स्यात्। सौवीरगोत्रेष्विति वर्त्तते, न च फिन्नन्तं सौवीरगोत्रमस्ति। गोत्रग्रहणं सामुहिकेषु ज्ञापकं, दैवयातवग्रहणं वैषयिकेषु, भास्त्रायण-ग्रहणं नैवासिकेषु।।

उत्तरपक्षी आचार्य उक्त दोष का खण्डन करते हैं—**नैष दोष इति**। 'फेश्छ च' ४.१.१४९ सूत्र के द्वारा आचार्य ने फिन्नन्त से छ प्रत्यय का विधान कर अपने आचरण से स्पष्ट किया है कि अण् के विषय में घादि नहीं होंगे। 'वृद्धाट्ठक् सौवीरेषु बहुलम्' ४.१.१४८ सूत्र से प्राप्त ठक् का बाध करने के लिए 'फेश्छ च' ४.१.१४९ सूत्र के स्थान पर 'फेर्वा' ऐसा सूत्र पढना चाहिये था। ठक् से मुक्तपक्ष में 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ से छ प्रत्यय हो जाता; छ विधान करने का कोई प्रयोजन नहीं है। वह 'छ'विधान व्यर्थ पड कर ज्ञापन करता है-'घादयोऽपत्यादिषु न भवन्ति'।

अन्य आचार्य—**नैतदस्तीति**। 'फेश्छ च' ४.१.१४९ मात्र फिन्प्रत्ययान्त के लिए ही ज्ञापक है; इससे सामान्य ज्ञापन नहीं हो सकता है।

इतर आचार्य इसका खण्डन करते हैं—**सौवीरगोत्रेष्विति**। 'वृद्धाट्ठक् सौवीर-गोत्रेषु बहुलम्' ४.१.१४८ से 'सौवीरगोत्रेषु' पद की अनुवृत्ति 'फेश्छ च' ४.१.१४९ सूत्र में होती है। फिन्नन्त सौवीरगोत्र नहीं हैं; अतः उक्त ज्ञापक फिन्नर्थ नहीं हो सकता है। 'अपत्यार्थ में ज्ञापक हो' ऐसी आशङ्का कर अन्य ज्ञापक देते हैं-**गोत्रग्रहणमिति**। इदमर्थान्तरभूत समूह अर्थ में 'गोत्रचरणाद्वुञ्' ४.३.१२६ से ही वुञ् सिद्ध था, पुनः 'गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजाद्वुञ्' ४.२.३९ से किया गया वुञ्विधान व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा-'घादयः सामूहिकेषु न भवन्ति' (समूह अर्थ में घादि नहीं होते हैं)। 'वैषयिक अर्थों में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

घादि नही होते हैं' इसका ज्ञापक 'राजन्यादिभ्यो वुञ्' ४.२.५३ सूत्र में राजन्यादिगण पठित 'दैवयातव'ग्रहण है। 'दैवयातूनामपत्यानि दैवयातवाः' ऐसा गोत्रप्रत्ययान्त निर्द्देश है। यदि वुञ् से अण् का बाध नहीं होता तो सूत्र में 'देवयातु' इतना ही रखते; परन्तु आचार्य ने अण्णन्त 'दैवयातव' पाठ किया है, वह व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा-'वैषयिक अर्थो में अण् के विषय में घादि नहीं होते हैं'। 'तस्य निवासः' ४.२.६९ इस विषय में अण् के विषय में घादि नहीं होते हैं। इसमें अरीहणादिगण ४.२.८0 में वुञ्विधानार्थ 'भास्नायण'ग्रहण प्रमाण है।

यद्यपि न्याय के द्वारा अपत्यादि अर्थो में घादि प्रत्ययों का अभाव सिद्ध है, तथादि स्पष्टप्रतिपत्ति के लिए भाष्यकार ने ज्ञापकों का निर्द्देश किया है। जैसे-यदि विशेषशब्द के सन्निधान में सामान्यशब्द पढ दिया जाये तो सामान्यशब्द भी विशेष अर्थ में हो जाता है। जैसे-'वृक्षः' कहने से वृक्षसामान्य का बोध होता है; परन्तु यदि 'शिंशपा वृक्षः' ऐसा कहा जाये तो यहाँ वृक्षपद सामान्य अर्थ में न हो कर शिंशपा के सानिध्य से विशेष अर्थ में हो गया। अथ वा विशेषशब्द के सानिध्य से सामान्यशब्द कहीं पर विशेषान्तर में हो जाता है। जैसे-'सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दधि दीयतां तक्रं कौण्डिन्याय' में ब्राह्मणपद कौण्डिन्यसन्निधि से तदतिरिक्त विशेष में है। यदि अपत्यादिशब्दसन्निधि में पढा जाने वाला 'तस्येदम्' ४.३.१२0 सामान्य अपत्यादि में ही होता तो सामान्यपद का ग्रहण व्यर्थ होता, अतः अपत्यादिविशेषपरिहार के द्वारा विशेषान्तर ही 'तस्येदम्' ४. ३.१२0 से लिया जाता है। यदि 'शेषे' ४.१.९२ सूत्र का प्रत्याख्यान कर देंगे तो 'शेषे' सूत्र को लक्षण मान कर होने वाली शब्दरूप सिद्धि कैसे होगी?,-जैसे-'चक्षुषा गृह्यते चाक्षुषं रूपम्, श्रवणेन श्रूयते श्रावणः शब्दः, चतुर्भिरुह्यते चातुरं शकटम्, अश्वैरुह्यते आश्वो रथः, दृषदि पिष्टा दार्षदाः सक्तवः, उलूखले क्षुण्ण औलूखलो यावकः, चतुर्दश्यां दृश्यते चातुर्दशं रक्षः'। 'संस्कृतं भक्षाः' ४.२.१६ और 'तस्येदम्' ४.३.१२0 से अण् सिद्ध होने से इसके लिए किया गया 'शेषे' सूत्र व्यर्थ है। तरन्तु भाष्यकार 'शेषे' सूत्र को लक्षण मान कर उपर्युक्त की सिद्धि 'तत्र जातः' ४.२.२५ सूत्र पर कहेंगे; तदर्थ 'शेषे' सूत्र पढा गया है।। **शेषे**।।

राष्ट्रावारपाराद् घखौ ४.२.९३

* अवारपाराद् विगृहीतादपि * **'अवारपाराद् विगृहीतादपी'ति वक्तव्यम्। अवारीणः पारीणः अवारपारीणः** * विपरीताच्च * **'विपरीता च्चे'ति वक्तव्यम्। पारावारीणः।।** राष्ट्रावार-।।

'राष्ट्रं चावारपारं चेत्यनयोः समाहारो राष्ट्रावारपारं, तस्मात्'।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूत्रार्थ—'राष्ट्र और अवारपारशब्द से 'जातः, भवः' इत्यादि अर्थों में क्रमशः घ और ख प्रत्यय हो'। 'राष्ट्रे भवो जात इत्यादि राष्ट्रियः'। घ को इय आदेश है। 'अवारपारे भवो वारपारीणः'। ख को ईन आदेश है।

वार्तिक—**अवारपारादिति**। 'अवारं च पारं चेत्यनयोः समाहारो- ऽवारपारम्' ऐसा समस्त वाक्य से 'ख' प्रत्यय है, परन्तु **विगृहीत**=असमस्त से अर्थात् अवार और पार से भी 'ख' कहना चाहिये। जैसे-'अवारे भवोऽवारीणः, पारे भवः पारीणः'। **विपरीताच्चेति**-अवारपार का विपरीत यानि पारावार से भी भव आदि अर्थों में 'ख' प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे-पारावारे भवः पारावारीणः।। **राष्ट्रावारपाराद् घखौ**।।

कत्र्यादिभ्यो ढकञ् ४.२.९५

***ग्रामाच्च* 'ग्रामाच्चे'ति वक्तव्यम्। ग्रामेयकः। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। 'कत्र्यादिभ्यो ढकञि'त्यत्र 'ग्रामादि'त्यनुवर्त्तिष्यते।।** कत्र्यादिभ्यो।।

सूत्रार्थ—'कत्र्यादिगणपठितशब्दों से जातादि अर्थों में ढकञ् हो'। कुत्सितास्त्रयः कत्रयः। तत्र जातादिः कात्रेयकः। नगरे जातो नागरेयकः।

एकदेशी आचार्य—**ग्रामाच्चेति**। ग्रामपद से भी जातादि अर्थों में ढकञ् कहना चाहिये। ग्रामे जातो ग्रामेयकः।

अन्य आचार्य—**तत्तर्हीति**। तो क्या 'ग्रामाच्च' यह वार्तिक पढना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। यह वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं है। उक्त वार्तिक के अभाव में ग्रामशब्द से ढकञ्सिद्धि के लिए कहते हैं-**कत्र्यादिभ्य इति**। 'ग्रामाद्यखञौ' ४.२.९४ से स्वरितत्वप्रतिज्ञाबलात् ग्रामपद की अनुवृत्ति 'कत्र्यादिभ्यो ढकञ्' में होगी। इससे ग्रामपद से भी ढकञ् सिद्ध हो जायेगा।। **कत्र्यादिभ्यो ढकञ्**।।

कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः श्वाऽस्यलङ्कारेषु ४.२.९६

अयं योगः शक्योऽवक्तुम्। कथं कौलेयकः कौक्षेयकः ग्रैवेयकः? 'कुलस्यापत्यं कुक्षिग्रीवात्तु कन्ढञः'। कुलस्यापत्यं कौलेयक इति भविष्यति। कुक्षिग्रीवादपि ढञन्तात्कन् भविष्यति।। कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः।।

'कत्र्यादिभ्यो ढकञ्' ४.२.९५ से विशेषवचन ढकञ् की अनुवृत्ति है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूत्रार्थ—'कुलशब्द से श्वा, कुक्षिशब्द से असि और ग्रीवाशब्द से अलङ्कार अर्थ वाच्य होने पर ढकञ् हो'। जैसे-कुले जातः कौलेयकः श्वा, कुक्षौ=कोशे भवः कौक्षेयकोऽसिः, ग्रीवासु भवो ग्रैवेयकोऽलङ्कारः। इससे भिन्न अर्थ में अण् हो कर 'कौलः, कौक्षः, ग्रैवः' रूप होगा।

भाष्यकार प्रकृत सूत्र का खण्डन करते हैं-**अयं योग इति**। इस सूत्र के अभाव में भी कौलेयकः, कौक्षेयकः, ग्रैवेयकः की सिद्धि बताते हैं-**कुलस्यापत्यमिति**। 'कुलस्यापत्यम्' इस विग्रह में 'अपूर्वपदादन्यतरस्यां यड्ढकञौ' ४.१.१४० में 'कुलात्खः' ४.१.१३९ से 'कुलात्' पद की अनुवृत्ति कर कुल पद से ढकञ् प्रत्यय हो जायेगा। इस ढकञन्त कौलेयकः से शब्दशक्तिस्वभावात् अपत्य अर्थ ही गम्य होगा। एवं कुक्षिशब्द से 'दृतिकुक्षिकलशिवस्त्यस्त्यहेर्ढञ्' ४.३.५६ के द्वारा ढञ् हो कर ढञन्त से स्वार्थ में कन् विधान कर कौक्षेयकः, ग्रीवाशब्द से 'ग्रीवाभ्योऽण्' ४.३.५७ के द्वारा ढञ्, और ढञन्त से स्वार्थ में कन् प्रत्यय करके ग्रैवेयकः रूप हो जायेगा। शब्दशक्तिस्वभाववशात् कौक्षेयकः असि अर्थ में, तथा ग्रैवेयकः अलङ्कार अर्थ में शक्त होगा।। **कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः-**।।

कापिश्याः ष्फक् ४.२.९९

* बाह्ल्युर्दिपर्द्दिभ्यश्च * **बाह्ल्युर्दिपर्द्दिभ्यश्चेति वक्तव्यम्। बाह्लायनी। और्द्दायनी। पार्द्दायनी।।** कापिश्याः ष्फक्।।

सूत्रार्थ—'कापिशीशब्द से जातादि अर्थों में ष्फक् हो'। कापिश्यां जातं कापिशायनं मधु, कापिश्यां जाता कापिशायनी, 'षिद्गौरादिभ्यश्च' ४.१.४१ से ङीष् है।

वार्तिक—**बाह्लीति**। बाह्लि, उर्दि और पर्दि से जातादि अर्थों में ष्फक् कहना चाहिये। 'बाह्लौ, उर्दौ, पर्दौ वा जाता बाह्लायनी, और्द्दायनी, पार्द्दायनी। 'अवृद्धादपि बहुवचनविषयात्' ४.२.१२५ से वुञ् प्राप्त होने पर बाह्लि आदि से ष्फक्विधान है।। **कापि-**।।

रङ्कोरमनुष्येऽण्च ४.२.१००

अमनुष्य इति किमर्थम्? राङ्कवो मनुष्यः * रङ्कोरमनुष्यग्रहणानर्थक्यं मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ्विधानात् * **रङ्कोरमनुष्यग्रहणमनर्थकम्। किं कारणम्? 'मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ्विधानात्'। अयं मनुष्ये मनुष्यस्थे च वुञ्विधीयते स बाधको भविष्यति।**

यहाँ पर पठित 'च' पद के द्वारा 'कापिश्याः ष्फक्' ४.२.९९ से 'ष्फक्' का अनुवर्त्तन है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूत्रार्थ—'मनुष्यभिन्न अर्थ वाच्य होने पर रङ्कु पद से अण्, एवं 'च'करण से ष्फक् प्रत्यय हो'। 'रङ्कुषु भवो राङ्कवो गौः'। 'रङ्कु' यह देशविशेष की संज्ञा है। उससे 'प्राग्दीव्यतोऽण्' ४.१.८३ से अण् प्राप्त है, उसको भी बाध कर 'अवृद्धादपि बहुवचनविषयात्' ४.२.१२५ से वुञ् प्राप्त है, उसे भी बाध कर 'ओर्देशे ठञ्' ४.१.११९ प्राप्त है, उसे भी बाध कर 'कोपधाच्च' ४.३.१३६ से अण् प्राप्त है, उसे भी बाध कर 'कच्छादिभ्यश्च' ४.२.१३३ से अण् प्राप्त है, उसे भी बाध कर यहाँ प्रकृत सूत्र से ष्फक् और अण् का विधान है। 'रङ्कु'शब्द से कोपध होने से भी अण् सिद्ध था, फिर भी कच्छादिगण में रङ्कुशब्द का पाठ मनुष्य और तत्स्थ अर्थ में वुञ् विधानार्थ है।

प्रश्नभाष्य—**अमनुष्य इति**। 'अमनुष्ये' ऐसा निषेधवचन का क्या फल है?

उत्तरपक्षी—**राङ्कव इति**। मनुष्य अर्थ वाच्य होने पर अण् और ष्फक् न हो, इसके लिए निषेध है।

'अमनुष्ये' उस निषेधवाक्य का खण्डन करते हैं—**रङ्कोरिति**। 'मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ्' ४.२.१३४ से मनुष्य अर्थ वाच्य होने पर रङ्कुपद से पर में वुञ् विहित है। विशेष विहित होने से वह अण् और ष्फक् का बाधक होगा।

एवं तर्हि ज्ञापयत्याचार्योऽमनुष्ये मनुष्यस्थे ष्फगणौ भवत इति * अमनुष्ये मनुष्यस्थे ष्फगणोर्ज्ञापकमिति चेन्नाऽनिष्टत्वात् * **अमनुष्ये मनुष्यस्थे ष्फगणोर्ज्ञापकमिति चेत्तन्न। किं कारणम्? 'अनिष्टत्वात्'। न ह्यमनुष्ये मनुष्यस्थे ष्फगणाविष्येते। कस्तर्हि? वुञेवेष्यते** * अग्रहणं च कच्छादिभ्योऽण्वचनात् * **अण्ग्रहणं चानर्थकम्। किं कारणम्? कच्छादिभ्योऽण्वचनात्। कच्छादिपाठादत्राऽण्भविष्यति।। रङ्कोरमनुष्येऽण्च।।**

अन्य आचार्य—**एवन्तर्हीति**। इस तरह सिद्ध होने पर अण् और ष्फक् ग्रहण व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा-'अमनुष्य मनुष्यस्थ='चूडा आदि अर्थों में ष्फक् और अण् होते हैं'।

अन्य आचार्य—**अमनुष्य इति**। अमनुष्य मनुष्यस्थ अर्थ में ष्फक् और अण् इष्ट नहीं है, अपि तु वहाँ वुञ् ही इष्ट है। यदि मनुष्य अर्थ में ष्फक् और अण् वुञ् का बाध नहीं करते तो मनुष्यप्रतिषेध अनर्थक होता।

वार्तिककार—**अण्ग्रहणमिति**। 'रङ्कोरमनुष्येऽण्' च' सूत्र से अण्विधान व्यर्थ है। यहाँ 'कच्छादिभ्यश्च' ४.२.१३३ से अण् सिद्ध हो जायेगा।। **रङ्कोर-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मनुष्येऽण्च ।।

अव्ययात् त्यप् ४.२.१०४

परिगणनं कर्त्तव्यम् * अमेहक्वत्रसित्रेभ्यस्त्यब्विधिर्योऽव्ययात्स्मृतः * **अमेहक्वत्रसित्रेभ्यस्त्यब्विधिर्योऽव्ययात्स्मृतः** । अमा-**अमात्यः** । अमा । इह-**इहत्यः** । इह । क्व-**क्वत्यः** । क्व । तसि-**ततस्त्यः यतस्त्यः** । तसि । त्र-**तत्रत्यः यत्रत्यः** । त्र । **इतरथा ह्यौत्तराहौपरिष्टपारतानां प्रतिषेधो वक्तव्यः स्यात्** । **औत्तराहः** । **औपरिष्टः** । **पारतः** ।

सूत्रार्थ—'अव्यय से जातादि अर्थों में त्यप् हो' ।

सिद्धान्ती आचार्य—**परिगणनमिति** । अव्यय से त्यब्वचन में परिगणन करना चाहिये । **अमेहेति**-'जो अव्यय से पर में त्यब्विधि है, वह अमादि से पर में ही हो' । अमाशब्द सह और सामीप्य अर्थ में शक्त है; '**अमा**=समीपे भवतीति अमात्यः' । **इह**-इहत्यः । **क्व**-क्वत्यः । यहाँ तसि से तसिप्रत्ययान्त विवक्षित है; **अतः**=ततस्=ततस्त्यः,यतस्=यतस्त्यः । '**त्र**' भी प्रत्यय है; अतः तदन्त से त्यप् होगा-तत्रत्यः, यत्रत्यः । **इतरथा हीति** । यदि परिगणन नहीं करेंगे तो औत्तराहः, औपरिष्टः, पारतः में त्यप्रतिषेध कहना होगा । 'आहि च दूरे' ५.३.३७, 'उत्तराच्च' ५.३.३८ से आहिप्रत्ययान्त 'उत्तराहिशब्द भी अव्यय है, उससे जातादि अर्थ में अण् हो कर औत्तराहः, उपरिष्ठाद् भव औपरिष्ठः, परतो भवः पारतः में अण् प्रत्यय है, त्यप् नहीं । यहाँ 'अव्ययानां भमात्रे टिलोपः' वा.४१८७ से टिलोप है । 'विभाषापूर्वाह्णापराह्णाभ्याम्' ४.३.२४ से 'परतः' शब्द सुजन्त है ।

* निशब्दादपि वाच्योऽयं ध्रुवार्थे नियते तथा * * त्यब्नेर्ध्रुवे * **त्यब्नेर्ध्रुवे वक्तव्यः** । **नित्यः** * निसो गते * **निसो गते त्यब्वक्तव्यः** । **निष्ट्यः** * अरण्याण्णः * **अरण्याण्णो वक्तव्यः** । **आरण्याः सुमनसः** * दुरादेत्यः * **दूरादेत्यो वक्तव्यः** । **दूरेत्यः** * उत्तरादाहञ् * **उत्तरादाहञ्वक्तव्यः** । **औत्तराहः** * अव्ययात् त्यप्याविष्टस्योपसंख्यानं छन्दसि * **अव्ययात् त्यप्याविष्टस्य च्छन्दस्युपसंख्यानं कर्त्तव्यम्** । **आविष्ट्यो वर्द्धते चारुरासु** ।

निशब्दादिति—ध्रुवार्थ=नियत अर्थ में 'नि'शब्द से भी त्यप् कहना चाहिये-नित्यो ध्रुवः । **त्यब्नेरिति**-ध्रुव अर्थ वाच्य होने पर 'नि' से त्यप् कहना चाहिये-नित्यो=ध्रुवः । **निसो गते**-गत अर्थ वाच्य होने पर निस् से त्यप् कहना चाहिये-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निर्गतो वर्णाश्रमेभ्य इति निष्ट्यः। **अरण्याण्ण इति**-अरण्यशब्द से ण्य प्रत्यय कहना चाहिये-अण्प्रत्यय होने पर ङीप् होता, अतः णविधान किया जा रहा है, जिससे ङीप् न हो सके-अरण्ये भवा आरण्याः सुमनसः। **दूरादेत्यः**-दूरपद से एत्य प्रत्यय कहना चाहिये-दूरेत्यः। **उत्तरादिति**-उत्तरपद से आहञ्प्रत्यय है-औत्तराहः। **अव्ययात्त्यपीति**-'अव्ययात्त्यप्' प्रकरण में वेद में आविस् से त्यप् कहना चाहिये-'आविष्ट्यो वर्द्धते चारुरासु'।

* अव्ययतीररूप्योत्तरपदोदीच्यग्रामकोपधविधेर्वृद्धाच् छो विप्रतिषेधेन *

अव्ययतीररूप्योत्तरपदोदीच्यग्रामकोपधविधेर्वृद्धाच्छो भवति विप्रतिषेधेन। अव्ययात् त्यब्भवतीत्यस्यावकाशः-अमात्यः। छस्यावकाशः-शालीयो मालीयः। आरादुभयं प्राप्नोति-आरातीयः। तीरोत्तरपदादञ् भवतीत्यस्यावकाशः-करवतीर-कारवतीरी। छस्य स एव। वायसतीरादुभयं प्राप्नोति। वायसतीरीयः। रूप्योत्तरपदाञ्ञो भवतीत्यस्यावकाशः-वणाररूप्य-वाणाररूप्या। छस्य स एव। माणिरूप्यादुभयं प्राप्नोति। तं चापि च्छं परत्वाद्योपधलक्षणो वुञ्बाधते। माणिरूप्यकः।

अव्ययतीरेति—अव्यय, तीर-उत्तरपद, रूप्य-उत्तरपद उदीच्यग्राम और कोपध से प्राप्त प्रत्यय को बाध कर परविप्रतिषेध के द्वारा 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ विधि होता है। 'अमात्यः' में 'अव्ययात्त्यप्' चरितार्थ है, तथा 'शालीयः, मालीयः' में 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ चरितार्थ है। अव्यय और वृद्धसंज्ञक 'आरात्' पद से त्यप् और छ दोनों प्राप्त है। परत्वात् छ से त्यप् का बाध हो जाता है-आराद् भव आरातीयः। परिगणन नहीं करने पर ही आरातीयः में त्यप् प्राप्त है। 'तीररूप्योत्तरपदाञ्ञौ' ४.२.१०६ का 'करवतीरे भवा कारवतीरी' में तीररूप्योत्तरपद अञ् चरितार्थ है तथा 'शालायां भवः शालीयः, मालायां भवो मालीयः' में छ चरितार्थ है। 'वायसतीरे भवः' यहाँ तीरोत्तरपद होने से अञ् तथा वृद्धसंज्ञक होने से छ प्राप्त है, समान बल होने से परविप्रतिषेध के द्वारा छ से अञ् का बाध हो जाता है-वायसतीरीयः। रूप्योत्तरपद 'वणाररूप्ये भवा वाणाररूप्या' में 'तीररूप्योत्तरपदाञ्ञौ'४.२.१०६ से विहित अञ् चरितार्थ है तथा 'शालीयो मालीयः' में 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ चरितार्थ है। 'माणिरूप्ये भवः' अर्थ में रूप्योत्तरपद से अञ्, वृद्धसंज्ञक होने से छ और योपध मान कर 'धन्वयोपधाद्वुञ्' ४.२.१२१ से वुञ् प्राप्त है। परविप्रतिषेध के द्वारा छ से अञ् का बाध तथा परत्वात् छ को भी वुञ् बाधता है-माणिरूप्यकः।

उदीच्यग्रामाच्च बह्वचोऽन्तोदात्तादञ्भवतीत्यस्याऽवकाशः- शिवपुर-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शैवपुरः। छस्य स एव। वाडवकर्षादुभयं प्राप्नोतिवाडवकर्षीयः। कोपधादण्भवतीत्यस्यावकाशः-निलीनक-नैनीलकः। छस्य स एव। औलूकादुभयं प्राप्नोति। औलूकीयः।

'शिवपुरे भवो शैवपुरः' में 'उदीच्यग्राच्च बह्वोऽन्तोदात्तात्' ४.२.१०६ चरितार्थ है तथा 'शालीयो मालीयः' में छ चरितार्थ है। 'वाडवकर्षे भवः' इस अर्थ में वाडवकर्ष से अञ् और छ दोनों प्राप्त हैं। परविप्रतिषेध के द्वारा छ से अञ् का बाध होता है-वाडवकर्षीयः। 'निलीनके भवो नैलीनकः' में 'प्रस्थोत्तरपदपलद्यादि-कोपधादण्' ४.२.११० चरितार्थ है तथा 'शालीयो मालीयः' में छ चरितार्थ है। औलूको नाम ग्रामस्तत्र जातः' इस अर्थ में कोपधलक्षण अण् तथा वृद्धसंज्ञक छ दोनों प्राप्त हैं। परविप्रतिषेध के द्वारा छ से अण् का बाध होता है-औलूकीयः।

*** तेभ्यष्ठञ्ञिठौ * तेभ्यस्त्यबादिभ्यष्ठञ्ञिठौ भवतो विप्रतिषेधेन। अव्ययात् त्यब्भवतीत्यस्यावकाशः-अमात्यः। ठञ्ञिठयोरवकाशः-कारतन्तविकी। कारतन्तविका। आरान्नाम बाहीकग्रामस्तस्मादुभयं प्राप्नोति-आरात्की। आरात्का। तीरोत्तरपदादञ् भवतीत्यस्यावकाशः-करवतीर-कारवतीरी। ठञ्ञिठयोः स एव। कास्तीरं नाम बाहीक-ग्रामस्तस्मादुभयं प्राप्नोति-कास्तीरिकी। कास्तीरिका। रूप्योत्तर-पदाञ्ञो भवतीत्यस्यावकाशः-वणाररूप्य-वाणाररूप्या। ठञ्ञिठयोः स एव। दाशरूप्यं नाम बाहीकग्रामस्तस्मादुभयं प्राप्नोति। तौ चापि ठञ्ञिठौ परत्वाद्योपधलक्षणो वुञ्बाधतेदाशरूप्यकः।**

एकदेशी आचार्य—**तेभ्यष्ठञ्ञिठाविति**। **तेभ्यः**=छ प्रत्यय के द्वारा जिन अव्ययादिलक्षणप्रत्ययों का बाध है उनको बाध कर परविप्रतिषेध के द्वारा 'काश्यादि-भ्यष्ठञ्ञिठौ' ४.२.११६ इत्यादि से विहित ठञ् और ञिठ प्रत्यय होंगे। 'अमात्यः' में 'अव्ययात्त्यप्' चरितार्थ है। ग्रामवाची कारतन्तुपद से 'तत्र भवः' अर्थ में 'बाहीकग्रामेभ्यश्च' ४.२.११७ से ठञ् हो कर कारतन्तविकी, ञिठ हो कर कारतन्त-विका में ठञ् और ञिठ चरितार्थ है। 'आरात्'नामक बाहीक ग्राम है, तथा 'आरात्' अव्यय भी है; अतः त्यप् और ठञ् व ञिठ दोनों प्राप्त है। परवि-प्रतिपेध के द्वारा ठञ्, ञिठ से त्यप् का बाध हो कर आरात्की, आरात्का रूप है। यहाँ 'इग्युसुक्तान्तात्कः' ७.३.५१ से कादेश है। 'करवतीरे भवा कारवतीरी' में 'तीररूप्योत्तरपदादञ्यौ' ४.२.१०६ चरितार्थ है, एवं 'कारतन्तविकी, कारतन्तविका' में ठञ् और ञिठ चरितार्थ है, 'कास्तीर नाम वाला बाहीक ग्राम है, उससे 'तीर-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रूप्योत्तरपदादञ्यौ' ४.२.१०६, और 'बाहीकग्रामेभ्यश्च' ४.२.११७ इन दोनों की प्राप्ति है। परविप्रतिषेध के द्वारा ठञ् तथा ञिठ के द्वारा अञ् का बाध होता है। वणाररूप्ये भवा वाणाररूप्या में रूप्योत्तरपद होने से 'तीररूप्योत्तरपदादञ्यौ' ४.२.१०६ चरितार्थ है, तथा 'कारतन्तविकी, कारतन्तविका' में ठञ् और ञिठ चरितार्थ है। दाशरूप्यनामक बाहीक ग्राम से जातादि अर्थों में अञ् और ठञ्, ञिठ दोनों प्राप्त हैं। एवं यहाँ योपध होने से 'धन्वयोपधाद्वुञ्' ४.२.१२१ से वुञ् भी प्राप्त है। इञ्, ञिठ से अञ् का बाध होता है। फिर अञ् का बाधक ठञ्, ञिठ को परविप्रतिषेध के द्वारा वुञ् बाध लेता है-दाशरूप्यकः।

उदीच्यग्रामाच्च बह्वचोऽन्तोदात्तादञ्भवतीत्यस्याऽवकाशः-शिवपुर-शैवपुरः। ठञ्ञिठयोः स एव। शाकलं नाम बाहीकग्रामस्तस्मादुभयं प्राप्नोति। शाकलिकी शाकलिका। कोपधादण्भवतीत्यस्यावकाशः-निलीनक-नैलीनकः। ठञ्ञिठयोः स एव। सौसुकं नाम बाहीकग्राम-स्तस्मादुभयं प्राप्नोति। तौ चापि ठञ्ञिठौ परत्वात् कोपध-लक्षणश्छो बाधते-सौसुकीयः।

'शिवपुरे जातः शैवपुरः' में 'उदीच्यग्रामाच्च बह्वचोऽन्तोदात्तात्' ४.२.१०६ से अञ् चरितार्थ है तथा कारतन्तविकी, कारतन्तविका में ठञ्, ञिठ चरितार्थ है। 'शकलानि सन्तीति शाकलम्' में 'तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि' ४.२.६७ से अण् चरितार्थ है। शाकलनामक बाहीक ग्राम है, शाकल पद से अञ् और 'बाहीकग्रामेभ्यश्च' ४.२.११७ से ठञ्, ञिठ दोनों प्राप्त है। परविप्रतिषेध के द्वारा ठञ्, ञिठ से अञ् का बाध होता है-शाकलिकी, शाकलिका। 'निलीनके जातो नैलीनकः' में 'प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधादण्' ४.२.११० चरितार्थ है, एवं 'कारतन्तविकी, कारतन्तविका' में ठञ्, ञिठ चरितार्थ है। सौसुकनामक बाहीक ग्राम है। यहाँ कोपध होने से 'प्रस्थोत्तरपद-'४.२.११० से अण् भी प्राप्त है तथा बाहीक ग्राम होने से 'बाहीकग्रामेभ्यश्च' ४.२.११७ से ठञ्, ञिठ प्राप्त है, एवं 'वृद्धादकेकान्तखोपधात्' ४.२.१४१ सूत्र में 'अकेकान्तग्रहणे कोपधग्रहणं कर्त्तव्यम्' ऐसा कहने से सौसुकपद से कोपधलक्षण छ भी प्राप्त है। परविप्रति-षेध के द्वारा ठञ्, ञिठ से अण् का बाध होता है। पुनः छ प्रत्यय ठञ् और ञिठ का भी बाध करता है। छ हो कर-सौसुकीयः रूप है।

*** न वा ठञादीनां छाऽपवादत्वात् तद्विषये चाऽभावादितरेषाम् * न वाऽर्थो विप्रतिषेधेन। किं कारणम्? 'ठञादीनां छाऽपवादत्वात्'। ठञादयश्छापवादाः। 'तद्विषये चाभावादितरेषाम्'। तद्विषये-छविषये**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्यबादीनाम् अभावः * कोपधादणः पुनर्वचनमन्यनिवृत्त्यर्थम् * **अयं चाऽप्ययुक्तो विप्रतिषेधो योऽयं कोपधादणश्छस्य च। किं कारणम्? कोपधादणः पुनर्वचनमन्यनिवृत्त्यर्थम्। सिद्धोऽत्राणुत्सर्गेणैव। तस्य पुनर्वचन एतत्प्रयोजनं-येऽन्ये तदपवादाः प्राप्नुवन्ति तद्बाधनार्थं, स यथैव तदपवादमञं बाधते एवं छमपि बाधेत।**

एकदेशी द्वारा उक्त 'तेभ्यष्ठञ्जिठौ' का सिद्धान्ती आचार्य खण्डन करते हैं-**न वा ठञादीनामिति**। पर होने से छ प्रत्यय के द्वारा 'अव्ययात्त्यप्' ४.२.१०४ इत्यादि अव्ययलक्षण का बाध है। एवं छ के द्वारा बाधित त्यप् आदि प्रत्ययों का **तद्विषये**=छ प्रत्यय के ही विषय में अभाव है, फिर उत्कृष्ट बल वाले ठञ् इत्यादि प्रत्ययों के साथ कोई तुलना नहीं होने से ठञ् आदि के विषय में छ द्वारा बाधित इतर प्रत्ययों का सर्वथा अभाव ही रहेगा। 'औलूकीयः' में 'प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधादण्' ४.२.१०६ से अण् और 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ का समान बल होने पर परस्पर बाध्य-बाधकभाव कहा था, उसका निवारण करते हैं-**कोपधादण इति**। 'औलूकीयः' में अण् और छ का भी विप्रतिषेध उचित नहीं है। 'औलूको नाम ग्रामस्तत्र जातः' इत्यादि अर्थों में **उत्सर्गेणैव**= 'प्राग्दीव्यतोऽण्' ४.१.८३ से ही अण् सिद्ध था। अण् सिद्ध होने पर आचार्य ने जो कोपधलक्षण अण् ४.२.१०६ का विधान किया वह व्यर्थ पड कर जैसे 'उदीच्यग्रामाच्च बह्वचोऽन्तोदात्तात्' ४.२.१०६ से विहित अञ् का बाध करता है वैसे 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ का भी बाध कर लेगा;

* तस्मादन्तोदात्ते कोपधप्रतिषेधः * **तस्मादन्तोदात्ते कोपधादञः प्रतिषेधो वक्तव्यः। न वक्तव्यः। 'मध्येऽपवादाः पूर्वान् विधीन् बाधन्त' इत्येवं कोपधादणञं बाधिष्यते, छं न बाधिष्यते** * छादोर्देशे कालाट्ठञ् * **छादोर्देशे कालाट्ठञित्येतद् भवति विप्रतिषेधेन। छस्यावकाशः-शालीयो मालीयः। ओर्देशे ठञ् भवतीत्यस्याऽवकाशः-निषादकषूर्नाम देशः-नैषादकर्षुकः। इहोभयं प्राप्नोति-दाक्षिकर्षुकः। कालाट् ठञ्भवतीत्यस्याऽवकाशः-आर्द्धमासिकम्। सांवत्सरिकम्। छस्य स एव। मासादुभयं प्राप्नोति-मासिकम्।**

अतः-**तस्मात्**=चूँकि कोपधलक्षण अण् के द्वारा अञ् का बाध हो रहा है, अतः 'उदीच्यग्रामाच्च बह्वचोऽन्तोदात्तात्' ४.२.१०६ सूत्र को कोपधप्रतिषेध के साथ 'उदीच्यग्रामाच्च बह्वचोऽन्तोदात्तादकोपधात्' पढना चाहिये। इससे कोपध से अञ् की प्राप्ति नहीं होगी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भाष्यकार विप्रतिषेध का समर्थन करते हैं—**न वक्तव्य इति**। उक्त 'अकोपधात्' ऐसा प्रतिषेधवचन पढने की आवश्यकता नहीं है। 'मध्य में पढा गया अपवाद अपने से अव्यवहित पूर्वविधि का ही बाध करता है, इतर का नहीं'। 'असति बाधके सर्वं वाक्यं सावधारणं भवति' इस वचन के अनुसार 'पूर्वान् विधीन् बाधन्ते' इस वाक्य का 'पूर्वानेव विधीन् बाधन्ते' ऐसी अवधारणा करनी चाहिये। इससे कोपधलक्षण अण् ४.२.११० अपने से अव्यवहित पूर्व में विहित 'उदीच्यग्रामाच्च बह्वचोऽन्तोदात्तात्' ४.२.१०९ का ही बाध करेगा, 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ से विहित छ का नहीं।

छादोर्देशे कालाट्ठञिति—यहाँ 'छात्+ओर्देशे' ऐसा पदच्छेद है। 'छं प्रबाध्येति च्छात्' ल्यब्लोप में पञ्चमी है। परविप्रतिषेध के द्वारा 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ का बाध कर 'ओर्देशे ठञ्' ४.२.११९ और 'कालाट्ठञ्' ४.३.११ इन दोनों सूत्रों से विहित ठञ्विधान करना चाहिये। 'शालीयो, मालीयः' में 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ चरितार्थ है तथा 'निषादकर्ष्वा भवः' में 'ओर्देशे ठञ्' से ठञ्, 'इसुसुक्तान्तात्कः' ७.३.५१ से कादेश, 'केऽणः' ७.४.१३ से ह्रस्व हो कर-नैषादकर्षुकः' में ठञ् चरितार्थ है। दाक्षिकर्षूनामक बाहीक ग्राम से छ और ठञ् दोनों प्राप्त है। यहाँ तुल्यबल होने से परविप्रतिषेध के द्वारा 'ओर्देशे ठञ्' ४.२.११९ से 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ का बाध हो जाता है। 'अर्द्धमासे भवमार्द्ध- मासिकं, संवत्सरे भवं सांवत्सरिकम्' में 'कालाट्ठञ्' ४.३.११ चरितार्थ है तथा 'शालीयो मालीयः' में छ चरितार्थ है। 'मासे भवम्' इस विग्रह में मास पद से छ और ठञ् दोनों प्राप्त है। समान बल होने से परविप्रतिषेध के द्वारा 'कालाट्ठञ्' ४.३.११ से 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ का बाध होता है।

*** नक्षत्रादण् * नक्षत्रादण् छाद् भवति विप्रतिषेधेन। अणोऽवकाशः-तैषः पौषः। छस्य स एव। स्वातेरुभयं प्राप्नोति-सौवातः * अव्ययाट्ट्युट्युलौ * अव्ययाट्ट्युट्युलौ छाद् भवतो विप्रतिषेधेन। ट्युट्यलोरवकाशः-दोषातनम्। दिवातनम्। छस्य स एव। प्रातःशब्दादुभयं प्राप्नोति-प्रातस्तनम् * शरीरावयवाद् यत् * शरीरावयवाद्यच्छाद् भवति विप्रतिषेधेन। यतोऽवकाशः-दन्त्यम्। ओष्ठ्यम्। छस्य स एव। पादादुभयं प्राप्नोति-पद्यम्।**

नक्षत्रादण्णिति—परविप्रतिषेध के द्वारा 'सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्' ४.३.१६ से 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ का बाध कहना चाहिये। 'तिष्ये भवः तैषः, पुष्ये भवः पौषः' में 'सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्' ४.३.१६ चरितार्थ है तथा 'शालीयो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मालीयः' में 'वृद्धाच्छः' चरितार्थ है। सुपूर्वक अत सातत्यगमने धा.पा.३८ धातु से 'अज्यतिभ्यां च' उणा.सू.७५० से इण् हो कर 'स्वाति-शब्द है। 'स्वातिना युक्तः कालः' अर्थ में 'नक्षत्रेण युक्तः कालः' ४.२.३ से अण् प्राप्त है। यहाँ अण् पद का 'लुबविशेषे' ४.२.४ से लुप् है। 'स्वातौ भवः सौवातः' में 'सन्धिवेला-द्यृतुनक्षेभ्योऽण्' ४.२.१६ से अण् और 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ भी प्राप्त है। परविप्रतिषेध के द्वारा अण् से छ का बाध होता है। 'सौवातः' में 'न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्' ७.३.३ से ऐजागम है। यदि 'स्वातौ जातः' ऐसा विग्रह करेंगे तो 'श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधास्वाति-' ४.३.३४ से जातार्थ अण् का लुक् होने लगेगा; अतः 'सौवातः' में 'स्वातौ भवः' ऐसा ही विग्रह करना चाहिये। अव्यय पद से विहित ट्यु, ट्युल् प्रत्यय के द्वारा परविप्रतिषेध से छ का बाध होता है। **दोषा**=रात्रिस्तत्र जातं दोषातनम्, **दिवा**=दिवसस्तत्र जातं दिवातनम्' यहाँ 'सायंचिरंप्राह्णेप्रगे- ऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च' ४.३.२३ से ट्यु और ट्युल् प्रत्यय विहित है; अनुबन्धलोप, यु को अनादेश और तुडागम हो कर 'दोषातनम्, दिवातनम्' में ट्यु और ट्युल् प्रत्यय चरितार्थ है। 'शालीयः मालीयः' में छ चरितार्थ है। 'प्रातर्जातः' में प्रातःपद से ट्यु और ट्युल् तथा वृद्धसंज्ञक होने से छ भी प्राप्त है। परविप्रतिषेध के द्वारा ट्यु और ट्युल् से छ का बाध हो कर 'प्रातस्तनम्' रूप है। **शरीरावयवादिति**। 'शरीरा-वयवाद्यत्' ५.१.६ सूत्र से परविप्रतिषेध के द्वारा छ का बाध कहना चाहिये। 'दन्तेभ्यो हितं दन्त्यम्, ओष्ठाभ्यां हितम् ओष्ठ्यम्' में 'शरीरावयवाद्यत्' चरितार्थ है; तथा 'शालीयो मालीयः' में छ चरितार्थ है। 'पादाभ्यां हितम्' में पादशब्द से शरीरावयव होने से यत् और वृद्धसंज्ञक होने से छ प्राप्त है। समान बल होने से परविप्रतिषेध के द्वारा यत् से छ का बाध होता है-पद्यम्। यहाँ 'पद्यत्यतदर्थे' ६.३.५३ से यत् प्रत्यय पर रहते पादशब्द को पद् आदेश है।

*** वर्गान्ताच्चाऽशब्दे यत्खौ * वर्गान्ताच्चाऽशब्दे यत्खौ छाद् भवतो विप्रतिषेधेन। यत्खयोरवकाशः-अक्रूरवर्ग्यः। अक्रूरवर्गीणः। छस्य स एव। वासुदेववर्गादुभयं प्राप्नोति-वासुदेववर्ग्यः। वासुदेववर्गीणः।**

वर्गान्ताच्चेति। 'वर्गान्ताच्च' ४.३.६३ और 'अशब्दे यत्खावन्यतरस्याम्' ४.३.६४ के द्वारा परविप्रतिषेध से छ का बाध कहना चाहिये। 'अक्रूरवर्ग्यः' में यत् चरितार्थ है, 'अक्रूरवर्गीणः' में ख चरितार्थ है। वर्गान्त वासुदेववर्ग पद से यत् ख, और छ दोनों प्राप्त है। तुल्यबल होने से परविप्रतिषेध के द्वारा यत् और ख से छ का बाध होता है-वासुदेववर्ग्यः, वासुदेववर्गीणः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

*** बह्वचोऽन्तोदात्ताट्ठञ् * बह्वचोऽन्तोदात्ताट्ठञ् छाद् भवति विप्रतिषेधेन। ठञोऽवकाशः- नतानत-नातानतिकः। छस्य स एव। सामस्तशब्दादुभयं प्राप्नोति-सामस्तिकः * आयस्थानेभ्यष्ठक् * आयस्थानेभ्यष्ठक् छाद् भवति विप्रतिषेधेन। ठकोऽवकाशः- शौक्लिकम्। गौल्मिकम्। छस्य स एव। आपणादुभयं प्राप्नोति-आपणिकम्।**

बह्वच इति। परविप्रतिषेध के द्वारा 'बह्वचोऽन्तोदात्ताट्ठञ्' ४.३.६७ से छ का बाध कहना चाहिये। 'नतानते भवो नातानतिकः' में ठञ् चरितार्थ है। 'नत' आद्युदात्त है, 'अनत' आद्युदात्त है, द्वन्द्व होने पर समासस्वर के द्वारा नतानत अन्तोदात्त है। 'शालीयो मालीयः' में छ चरितार्थ है। 'सामस्ते भवः' अर्थ में सामस्त पद से ठञ् और छ दोनों प्राप्त है। परविप्रतिषेध के द्वारा ठञ् से छ का बाध होता है-सामस्तिकः। **आयस्थानेभ्य इति**। परविप्रतिषेध के द्वारा 'ठगायस्थानेभ्यः' ४.३.७५ से छ का बाध कहना चाहिये। 'शुक्लादागतं शौक्लिकं, गुल्मादागतं गौल्मिकम्' में ठक् चरितार्थ है, तथा 'शालीयो मालीयः' में छ चरितार्थ है। 'आपणादागतम्' में आपण पद से ठक् और छ दोनों प्राप्त है। परविप्रतिषेध के द्वारा ठक् से छ का बाध होता है-आपणिकम्।

*** विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ् * विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ् छाद् भवति विप्रतिषेधेन। वुञोऽवकाशः- औपाध्यायकम्। पैतामहकम्। छस्य स एव। इहोभयं प्राप्नोति-आचार्यकम्। मातुलकम् * ऋतष्ठञ् * ऋतष्ठञ् छाद् भवति विप्रतिषेधेन। ठञोऽवकाशः-हौतृकम्। स्वासृकम्। छस्य स एव। इहोभयं प्राप्नोतिशास्तृकम्। भ्रातृकम्।**

विद्यायोनीति। परविप्रतिषेध के द्वारा 'विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ्' ४.३.७७ से छ का बाध कहना चाहिये। 'उपाध्यायात् पितामहाच्च आगतमिति औपाध्यायिकम्, पैतामहिकम्' में वुञ् चरितार्थ है तथा 'शालीयो मालीयः' छ चरितार्थ है। 'आचार्यादागतम्, मातुलादागतम्' में वुञ् और छ दोनों प्राप्त है। तुल्यबल होने पर परविप्रतिषेध के द्वारा वुञ् से छ का बाध होता है-आचार्यकम्, मातुलकम्'। **ऋतष्ठञिति**। परविप्रतिषेध के द्वारा 'ऋतष्ठञ्' ४.३.७८ से छ का बाध कहना चाहिये। 'होतुरागतं हौतृकं, स्वसुरागतं स्वासृकम्' में 'ऋतष्ठञ्' ४.३.७८ चरितार्थ है। 'शालीयो मालीयः' में छ चरितार्थ है। 'शास्तुरागतं शास्तृकम्, भ्रातुरागतं भ्रातृकम्' में ठञ् और वृद्धलक्षण छ भी प्राप्त है। तुल्यबल होने पर परविप्रतिषेध के द्वारा ठञ् से छ का बाध होता है।

*** रूप्यमयटौ * रूप्यमयटौ छाद् भवतो विप्रतिषेधेन। रूप्यमय-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

टोरवकाशः-देवदत्तरूप्यम्। देवदत्तमयम्। छस्य स एव। वायुदत्तादुभयं प्राप्नोतिवायुदत्तरूप्यम्। वायुदत्तमयम् *अचित्ताट्ठक्* अचित्ताट्ठक् छाद् भवति विप्रतिषेधेन। ठकोऽवकाशः-आपूपिकः। शाष्कुलिकः। मौदकिकः। छस्य स एव। पायसादुभयं प्राप्नोति-पायसिकः।

रूप्यमयटाविति। परविप्रतिषेध के द्वारा रूप्य और मयट् प्रत्यय से छ का बाध कहना चाहिये। 'देवदत्तादागतम्' में 'हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः' ४.३.८१ से रूप्य प्रत्यय हो कर 'देवदत्तरूप्यम्' तथा 'मयट् च' ४.३.८२ से मयट् हो कर 'देवदत्तमयम्' रूप होने से यहाँ रूप्य और मयट् चरितार्थ है। 'शालीयो मालीयः' में छ चरितार्थ है। 'वायुदत्तादागतम्' में वायुदत्त पद से रूप्य, मयट् और छ दोनों प्राप्त है। तुल्यबल होने से परविप्रतिषेध के द्वारा रूप्य और मयट् से छ का बाध होता है-वायुदत्तरूप्यम्, वायुदत्तमयम्। **अचित्ताट्ठगिति**। परविप्रतिषेध के द्वारा 'अचित्ताददेशकालाट्ठक्' ४.३.९६ से छ का बाध कहना चाहिये। 'अपूपा भक्तिरस्येति आपूपिकः, शष्कुली भक्तिरस्येति शाष्कुलिकः, मोदको भक्तिरस्येति मौदकिकः' में 'अचित्ताददेशकालाट् ठक्' ४.३.९६ चरितार्थ है तथा 'शालीयो मालीयः' में छ चरितार्थ है। 'पयसि संस्कृतं पायसम्' अण्प्रत्ययान्त, 'पायसं भक्तिरस्येति पायसिकः' में ठक् और वृद्धलक्षण छ दोनों की प्राप्ति है। तुल्यबल होने से परविप्रतिषेध के द्वारा ठक् से छ का बाध होता है।

***गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यो बहुलं वुञ्* गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यो बहुलं वुञ् छाद् भवति विप्रतिषेधेन। वुञोऽवकाशः-ग्लौचुकायनकः। त्रैगर्तकः। छस्य स एव। इहोभयं प्राप्नोति-गार्गकः। वात्सकः। मालवकः *णिनिरन्तेवासिब्राह्मणेभ्यः* णिनिरन्तेवासिब्राह्मणेभ्य- श्छाद् भवति विप्रतिषेधेन। णिनेरवकाशः-हारिद्रविणः। तौम्बुरविणः। भाल्लविनः। छस्य स एव। इहोभयं प्राप्नोति-आरुणिनः। शाट्यायनिनः।**

गोत्रक्षत्रियेति। परविप्रतिषेध के द्वारा 'गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यो बहुलं वुञ्' ४.३.९९ से 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ का बाध कहना चाहिये। 'ग्लुचुकायनिर्भक्तिरस्य ग्लौचुकायनकः, त्रिगर्तो भक्तिरस्य त्रैगर्तकः' में वुञ् चरितार्थ है, तथा 'शालीयो मालीयः' में छ चरितार्थ है। 'गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः, वत्सस्य गोत्रापत्यं वात्स्यः' में 'गर्गादिभ्यो यञ्' ४.१.१०५ से यञ् प्रत्यय व 'मालवस्यापत्यं मालव्यः' में 'वृद्धेत्कोसलाजादादञ्ञ्यङ्' ४.१.१६८ से ञ्यङ् प्रत्यय है। 'गार्ग्यो भक्तिरस्य गार्गकः,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वात्स्यो भक्तिरस्य वात्सकः, मालव्यो भक्तिरस्य मालवकः' में वुञ् और वृद्धलक्षण छ दोनों प्राप्त है। वुञ् से छ का बाध होता है 'गार्गकः' इत्यादि में 'आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति' ६.४.१५१ से यलोप है। **णिनिरन्तेवासीति**। परविप्रतिषेध के द्वारा 'कलापिवैशम्पायनान्ते- वासिभ्यश्च' ४.३.१०४ इत्यादि से 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ का बाध होता है। 'हरिद्रुणा प्रोक्तमधीयते इति हारिद्रविणः, तुम्बुरुणा प्रोक्तमधीयते इति तौम्बुरविणः' में 'कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च' ४.३.१०४ से णिनि है। 'भल्लुना प्रोक्तमधीयते भाल्लविनः' में 'पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु' ४.३.१०५ से णिनि है। इन स्थलों में णिनि चरितार्थ है। 'शालीयो मालीयः' में छ चरितार्थ है। 'आरुणेन प्रोक्तमधीयते आरुणिनः, शाट्यायनेन प्रोक्तमधीयते इति शाट्यायनिनः' में णिनि और वृद्धलक्षण छ दोनों प्राप्त हैं। तुल्यबल होने से परविप्रतिषेध के द्वारा णिनि से छ का बाध होता है।

*** पत्रपूर्वादञ् * पत्रपूर्वादञ् छाद् भवति विप्रतिषेधेन। अञोऽवकाशः-उष्ट्र-औष्ट्रम्। उष्ट्ररथ-औष्ट्ररथम्। छस्य स एव। इहोभयं प्राप्नोति-वामी-वामम्। वामीरथम् * द्वन्द्वाद्वुन् वैरमैथुनिकयोः * द्वन्द्वाद्वुन् वैरमैथुनिकयोश्छाद् भवति विप्रतिषेधेन। वुनोऽवकाशः-अहिनकुलिका। छस्य स एव। इहोभयं प्राप्नोति-काकोलूकिका। श्वावराहिका।**

पत्रपूर्वादिति। परविप्रतिषेध के द्वारा 'पत्रपूर्वादञ्' ४.३.१२२ इत्यादि से छ का बाध कहना चाहिये। 'उष्ट्रस्येदं वहनीयम् औष्ट्रम्' में 'पत्राध्वर्युपरिषदश्च' ४.३.१२३ से अञ्, 'उष्ट्ररथस्येदम् औष्ट्रम्' में 'पत्रपूर्वादञ्' ४.३.१२२ से अञ् चरितार्थ है। 'शालीयो मालीयः' में छ चरितार्थ है। वामी=वडवा, तस्या इदं वहनीयमिति वामम्' में वृद्धलक्षण छ और 'पत्राध्वर्युपरिषदश्च' ४.३.१२३ से अञ् भी प्राप्त है। 'वामीरथस्येदं वामीरथम्' में 'पत्रपूर्वादञ्' ४.३.१२२ से अञ् तथा वृद्धलक्षण छ भी प्राप्त है। तुल्यबल होने से परविप्रतिषेध के द्वारा अञ् से छ का बाध होता है। **द्वन्द्वाद्वुनिति**। 'द्वन्द्वाद्वुन् वैरमैथुनिकयोः' ४.३.१२४ के द्वारा परविप्रतिषेध से छ का बाध होता है। 'अहिनकुलस्य वैरमहिनकुलिका' में वुन् चरितार्थ है; 'शालीयो मालीयः' में छ चरितार्थ है। 'काकश्चोलूकश्चेत्यनयोः समाहारः काकोलूकम्' यहाँ 'येषां च विरोधः शाश्वतिकः' २.४.९ से एकवद्भाव है। 'काकोलूकस्य वैरं काकोलूकिका' में वुन् और वृद्धलक्षण छ दोनों प्राप्त है। तुल्यबल होने से परविप्रतिषेध के द्वारा वुन् से छ का बाध होता है। एवं 'श्वा च वाराहश्चेत्यनयोः समाहारः श्वावाराहम्' में भी पूर्ववद् एकवद्भाव तथा 'शुनो दन्तदंष्ट्राकर्णकुन्दवराहपुच्छपदेषु दीर्घो वाच्यः'वा.५०४९ से श्वपद को दीर्घ है। इसके बाद वुन् और छ दोनों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राप्त होने पर वुन् से छ का बाध हो कर वुन्नन्त रूप श्वावाराहिका है।

*** गोत्रचरणाद् वुञ् * गोत्रचरणाद्वुञ्छाद् भवति विप्रतिषेधेन। वुञोऽवकाशः-ग्लौचुकायनकम्। काठकम्। कालापकम्। छस्य स एव। इहोभयं प्राप्नोति-गार्गकम्। वात्सकम्। मौदकम्। पैप्पलादकम् * कण्वादीञोऽण्विधेः * 'काण्वादिभ्योऽण्भवति' 'इञोऽण्भवती'त्येतस्माद्वुञ्भवति विप्रतिषेधेन। 'काण्वादिभ्योऽण्भवति' 'इञोऽण्भवती'त्यस्यावकाशः-काण्वा दण्डमाणवाः। दाक्षा दण्डमाणवाः। वुञः स एव। इहोभयं प्राप्नोति- काण्वकम्। दाक्षकम्।**

गोत्रचरणादिति। 'गोत्रचरणाद्वुञ्' ४.३.१२६ से परविप्रतिषेध के द्वारा छ का बाध कहना चाहिये। गोत्रप्रत्ययान्त 'ग्लुचुकायनस्येदं ग्लौचुकायनकम्' एवं चरण–'कठेन प्रोक्तमधीयते इति कठास्तेषां धर्म आम्नायो वेति काठकम्' में 'गोत्रचरणाद्वुञ्' ४.३.१२६ चरितार्थ है तथा 'शालीयो मालीयः' में छ प्रत्यय चरितार्थ है। 'गार्ग्यस्येदं गार्गकं, वात्स्येदं वात्सकम्' में गोत्रप्रत्ययान्त यञन्त से वुञ् और वृद्धसंज्ञक होने से छ, दोनों प्राप्त होने पर वुञ् से छ का बाध है। 'मौदानां धर्म आम्नायो वा मौदकम्, पैप्पलादानां धर्म आम्नायो वा पैप्पलादकम्' में वुञ् और छ दोनों प्राप्त होने पर वुञ् से छ का बाध होता है। **काण्वादीञ इति**। गर्गादि ४.१.१०५ के अन्तर्गण कण्वादि है। 'कण्वस्य गोत्रापत्यं काण्व्यस्तस्य दण्डमाणवाः=दण्डप्रधाना माणवा दण्डमाणवाः' इस अर्थ में यञन्त काण्व्यपद से 'न दण्डमाणवान्तवासिषु' ४.३.१३० से अण् है। 'काण्वा दण्डमाणवाः' में कण्वादि से अण् चरितार्थ है; एवं 'दक्षस्यापत्यं दाक्षिः' 'अत इञ्' ४.१.९५ से अपत्य अर्थ में इञ्, 'दाक्षेरिमे दण्डमाणवाः' इस अर्थ में इञन्त दाक्षि पद से 'न दण्डमाणवान्तेवासिषु' ४.३.१३० से अण् प्रत्यय चरितार्थ है। 'ग्लौचुकायनकं, काठकं, कालापकम्' में 'गोत्रचरणाद्वुञ्' ४.३.१२६ चरितार्थ है। 'काण्डा दण्डमाणवाः' में 'न दण्डमाणवान्तेवासिषु' ४.३.१३० से निषेध होने के कारण वुञ् नहीं है। 'पुरस्तादपवादा अनन्तरान् विधीन् बाधन्ते, नोत्तरान्' इस न्याय के द्वारा 'न दण्डमाणवान्तेवासिषु' ४.३.१३० से पूर्वविधि 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ का बाध होगा; पर विधि 'गोत्रचरणाद्वुञ्' का नहीं; अतः 'न दण्डमाणवान्तेषु'4.3.30 निषेध उचित है। 'काण्व्यस्येदं, दाक्षेरिदम्' इस विग्रह में यञन्त षष्ठ्यन्त काण्व्य और इञन्त दाक्षि से 'तस्येदम्' अर्थ में अण् भी प्राप्त है तथा वुञ् भी प्राप्त है। समान बल होने से परविप्रतिषेध के द्वारा वुञ् से अण् का बाध होता है-काण्वकं, काठकम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

***ठञ्ञिठाभ्यामोर्द्देशे ठञ्* ठञ्ञिठाभ्याम् ओर्द्देशे ठञित्येतद् भवति विपेतिषेधेन। ठञ्ञिठयोरवकाशः-कारतन्तविकी। कारतन्तविका। 'ओर्द्देशे ठञ्भवती'त्यस्यावकाशः-निषादकर्षूः- नैषादकर्षुकः। इहोभयं प्राप्नोतिनापितवास्तुकः। ठञ् भवति विप्रतिषेधेन।**

अन्य आचार्य—**ठञ्ञिठाभ्यामिति**। परविप्रतिषेध के द्वारा 'ओर्देशे ठञ्' ४.२.११९ से 'काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ' ४.२.११६ और 'बाहीकग्रामेभ्यश्च' ४.२.११७ का बाध कहना चाहिये। **करतन्तुः**=बाहीकग्रामस्तत्र जाता' इत्यादि अर्थों में ठञन्त कारतन्तविकी, ञिठान्त कारतन्तविका में ठञ् और ञिठ चरितार्थ है। **'निषादकर्षूः**=कश्चिद् बाहीकग्रामस्तत्र जातः' इत्यादि अर्थों में उवार्णान्त बाहीकग्राम निषादकर्षू से ठञ्विधान कर 'ओर्देशे ठञ्' ४.२.११९ चरितार्थ है। **नापितवस्तूः**= ग्रामविशेष, उससे 'तत्र जातः' इत्यादि अर्थों में 'बाहीकग्रामेभ्यश्च' ४.२.११७ और 'ओर्देशे ठञ्' ४.२.११९ दोनों प्राप्त है। समान बल होने से परविप्रतिषेध के द्वारा 'ओर्देशे ठञ्' से 'बाहीकग्रामेभ्यश्च' का बाध होता है। इतर आचार्य 'ठञ्ञिठाभ्यामोर्देशे ठञ्' वार्तिक का खण्डन करते हैं-

***न वा ठञोऽनवकाशत्वाद्* न वाऽर्थो विप्रतिषेधेन। किं कारणम्? 'ठञोऽनवकाशत्वात्'। अनवकाशष्ठञ् ठञ्ञिठौ बाधिष्यते।**

न वा ठञ इति। 'ओर्देशे ठञ्' ४.२.११९ अनवकाशत्वेन बलवान् हो कर 'बाहीकग्रामेभ्यश्च' ४.२.११७ का बाध कर लेगा; अतः इनका विप्रतिषेध उचित नहीं है।

ननु चेदानीमेवाकाशः प्रक्लृप्तः-यद् वृद्धमनुवर्णान्तं बाहीकग्रामः स ठञ्ञिठयोरवकाशः। यदवृद्धमुवर्णान्तं न च बाहीकग्रामाः स ठञोऽवकाशः। यद् वृद्धमुवर्णान्तं बाहीकग्रामश्च-तस्मादुभयं प्राप्नोति। एवं तर्हि नाऽयमस्य विप्रतिषेधस्योपालम्भः। कस्य तर्हि? 'छादोर्द्देशे कालाट्ठञि'त्येतस्य।

अन्य आचार्य—**ननु चेदानीमेवेति**। अभी-अभी **अनुवर्णान्तम्**= उवर्णान्तभिन्न वृद्धसंज्ञक बाहीकग्रामवाची कास्तीरशब्द से 'कास्तीरिकी' में ठञ् और 'कास्तीरिका' में ञिठ चरितार्थ हुआ है। यहाँ भगवान् भाष्यकार ने कोई अनुवर्णान्त उदाहरण नहीं दिया है; परन्तु बुद्धिस्थ कास्तीरशब्द से ठञ् और ञिठ का चारितार्थ्य बता रहे हैं। एवं जो वृद्धसंज्ञकभिन्न उवार्णान्त बाहीकग्राम 'निषादकर्षू' है,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उससे ठञ् चरितार्थ है। जो उवर्णान्त वृद्धसंज्ञक बाहीकग्रामवाची नापितवस्तु पद है, उससे ठञ्, ञिठ और ठञ् दोनों प्राप्त है। फिर आप ने अनवकाश होने से 'ओर्देशे ठञ्' को ठञ्, ञिठ का बाधक कैसे कह दिया?

इतर आचार्य—**एवं तर्हीति**। यदि यहाँ ठञ्, ञिठ और ठञ् का विप्रतिषेध नहीं बन सकता है तो अनवकाश के द्वारा **छात्**='छं प्रबाध्य' छ का बाध कर 'ओर्देशे ठञ्' ४.२.११९ और 'कालाट्ठञ्' ४.३.११ प्रवृत्त होंगे।

ननु च तत्राऽप्यवकाशः प्रक्लृप्तः-यद् वृद्धमनुवर्णान्तं स च्छस्याऽवकाशः। यदवृद्धमुवर्णान्तं स ठञोऽवकाशः। यद् वृद्धमुवर्णान्तं देशश्च तस्मादुभयं प्राप्नोति। एवं तर्हि 'वृद्धात्प्राचामि'त्यनेन वृद्धग्रहणेन किं क्रियते? यावद् ब्रूयात् पूर्वस्मिन् योगे वृद्धाच्चाऽवृद्धाच्चेति। यदेतस्मिन् योगे वृद्धग्रहणं, तदनवकाशं, तस्याऽनवकाशत्वादयुक्तो विप्रतिषेधः।

अन्य आचार्य—**ननु च तत्रेति**। इन दोनों का भी सावकाशत्व है; अतः अनवकाश होने से ठञ् बाधक नहीं हो सकता है। दोनों का सावकाशत्व दिखाते हैं-**यद्वृद्धमिति**। उवर्णान्तभिन्न वृद्धसंज्ञक शाला, माला से छ चरितार्थ है तथा अवृद्धसंज्ञक उवर्णान्त निषादकर्षू से 'ओर्देशे ठञ्' ४.२.११९ से ठञ् चरितार्थ है। जो उवर्णान्त देश नापितवास्तु है, उससे छ और ठञ् दोनों प्राप्त है; अतः ठञ् से छ का बाध होना चाहिये।

इतर आचार्य—**एवन्तर्हीति**। छ और ठञ् का भी विप्रतिषेध नहीं है। 'वृद्धात्प्राचाम्' ४.२.१२० सूत्र में आचार्य ने वृद्धग्रहण किया है। यदि पूर्वयोग 'ओर्देशे ठञ्' ४.२.११९ में वृद्धसंज्ञक और अवृद्धसंज्ञक उभयसाधारण से ठञ् विहित होता तो **'एतस्मिन् योगे'**='वृद्धात्प्राचाम्' ४.२.१२० इस सूत्र में वृद्ध से ही ठञ् विधान किया जाता, परन्तु पूर्वसूत्र से वृद्ध, अवृद्ध उभय से विहित नहीं होने से उत्तरसूत्र में वृद्धग्रहण के द्वारा विशेषविहित ठञ् के अनवकाश होने से ही छ का बाध करने लगेगा; अतः इसका विप्रतिषेध उचित नहीं है। यदि 'वृद्धाच्छः' से वृद्धपद की अनुवृत्ति 'ओर्देशे ठञ्' सूत्र में होती तो 'वृद्धात्प्राचाम्' सूत्र नहीं रखते; अतः यह नियमार्थक होगा-'प्राग्देशवाची वृद्ध से ही प्रत्यय हो, अवृद्ध से नहीं'। जैसे-मल्लवास्तु से माल्लवास्तवः।

***योपधप्रस्थादीनां वुञ्* योपधप्रस्थादीनां वुञ् ठञ्ञिठाभ्यां भवति विप्रतिषेधेन। योपधाद् वुञ्भवतीत्यस्यावकाशः-साङ्काश्यसाङ्काश्यकः। काम्पिल्यकः। ठञ्ञिठयोः स एव। दाशरूप्यं नाम**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बाहीकग्रामस्तस्मादुभयं प्राप्नोति-दाशरूप्यकः। 'प्रस्थान्ताद् वुञ्भवती-त्यस्यावकाशः-मालाप्रस्थ-मालाप्रस्थकः। ठञ्ञिठयोः स एव। पाताल-प्रस्थं नाम बाहीकग्रामस्तस्मादुभयं प्राप्नोति-पातालप्रस्थकः।

योपधप्रस्थादीनामिति। ठञ्ञिठाभ्यां=ठञ्ञिठौ प्रबाध्य। ठञ् और ञिठ को परविप्रतिषेध के द्वारा वुञ् से बाध कहना चाहिये। 'साङ्काश्ये भवः साङ्काश्यकः, काम्पिल्ये भवः काम्पिल्यकः' में धन्वयोपधाद् वुञ्' ४.२.१२१ चरितार्थ है। कारतन्तविकी, कारतन्तविका में ठञ्, ञिठ चरितार्थ है। दाशरूप्य–बाहीकग्राम है; इससे दोनों प्राप्त है। अन्यत्र-अन्यत्र चरितार्थ होने से दोनों का समान बल है। परविप्रति-षेध के द्वारा वुञ् से ठञ्, ञिठ का बाध होता है-दाशरूप्यकः। 'मालाप्रस्थे भवो मालाप्रस्थकः' में 'प्रस्थपुरवहान्ताच्च' ४.२.१२२ चरितार्थ है। कारतन्तविकी, कारतन्तविका में ठञ्, ञिठ चरितार्थ है। बाहीक ग्रामवाचक पातालप्रस्थशब्द से ठञ्, ञिठ और वुञ् दोनों प्राप्त है। परविप्रतिपेध के द्वारा वुञ् से ठञ्, ञिठ का बाध होता है।

'पुरान्ताद्वुञ् भवतीत्यस्यावकाशः-काञ्चीपुर'रं'-काञ्चीपुरकः। ठञ्ञिठयोः स एव। नान्दीपुरं नाम बाहीकग्रामस्तस्मादुभयं प्राप्नोति-नान्दीपुरकः। 'वहान्ताद् वुञ्भवतीत्यस्यावकाशः-वातवहं-वातवहकः। ठञ्ञिठयोः स एव। कौक्कुटीवहं नाम बाहीकग्राम-स्तस्मादुभयं प्राप्नोतिकौक्कुटीवहकः *ओश्च ठञः* ओश्च ठञो वुञ्भवति विप्रतिषेधेन। ओष्ठञोऽवकाशः-नैषादकर्षुकः। वुञः स एव। आप्रीतिमायोरुभयं प्राप्नोति-आप्रीतिमायवकः।

'काञ्चीपुरे भवः काञ्चीपुरकः' में पुरान्त ४.२.१२२ से वुञ् चरितार्थ है। कारतन्तविकी, कारतन्तविका में ठञ्, ञिठ चरितार्थ है। बाहीकग्रामवाचक नान्दीपुर पद से ठञ्, ञिठ और वुञ् दोनों प्राप्त है। परविप्रतिषेध के द्वारा वुञ् से ठञ्, ञिठ का बाध होता है-नान्दीपुरकः। वातवहे भवो वातावहकः में वहान्त ४.२.१२२ से वुञ् चरितार्थ है। कारतन्तविकी, कारतन्तविका में ठञ्, ञिठ चरितार्थ है। बाहीकग्रामवाची कौक्कुटीवह पद से 'तत्र भवः' अर्थ में ठञ्, ञिठ और वुञ् दोनों प्राप्त है। परविप्रतिषेध के द्वारा वुञ् से ठञ्, ञिठ का बाध होता है-कौक्कुटीवहकः। **ओश्च ठञ इति।** परविप्रतिषेध के द्वारा वुञ् से 'ओर्देशे ठञ्' ४.२.११९ का बाध होता है। 'निषादकर्ष्वा भवो नैषादकर्षुकः' में 'ओर्देशे ठञ्' ४.२.११९ चरितार्थ है, तथा साङ्काश्यकः में 'धन्वयोपधाद् वुञ्' ४.२.११८ चरितार्थ है। 'आप्रीतिमायौ भवः' इस अर्थ में आप्रीतिमायु पद से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ठञ् और योपधलक्षण वुञ् दोनों प्राप्त है। परविप्रतिषेध के द्वारा वुञ् से ठञ् का बाध होता है-आप्रीतिमायवकः।

*** जनपदानामकाऽणौ * जनपदानाम् अकाणावोष्ठञो भवतो विप्रतिषेधेन। अकस्याऽवकाशः-अङ्गाः-आङ्गकः। ओष्ठञः स एव। जिह्नवो नाम जनपदस्तस्मादुभयं प्राप्नोति-जैह्नवकः। अणोऽवकाशः-ऋषिक-आर्षिकः। ओष्ठञः स एव। इक्ष्वाकवो नाम जनपदस्तस्मादुभयं प्राप्नोति-ऐक्ष्वाकवकः।**

जनपदानामिति। जनपद का वाची प्रातिपदिक से विहित अण् और अक से विप्रतिषेध के द्वारा ठञ् का बाध कहना चाहिये। 'अङ्गेषु भव आङ्गकः' में 'अवृद्धादपि बहुवचनविषयात्' ४.२.१२५ से वुञ् चरितार्थ है। 'नैषादकर्षुकः' में 'ओर्देशे ठञ्' ४.२.११९ चरितार्थ है। बहुवचनविषय जिह्न नामक जनपद से 'तत्र भवः' अर्थ में 'ओर्देशे ठञ्' ४.२.११९ और 'अवृद्धादपि बहुवचनविषयात्' ४.२.१२५ ये दोनों प्राप्त हैं। तुल्यबल होने से पर विप्रतिषेध के द्वारा अक से ठञ् का बाध होता है-जैह्नवकः। ऋषिक नाम का जनपद है। 'ऋषिकेषु भवः' इस अर्थ में 'कोपधादण्' ४.२.१३२ से अण् हो कर 'आर्षिकः' में अण् चरितार्थ है। नैषादकर्षुकः में ठञ् चरितार्थ है। बहुवचनविषय इक्ष्वाकुनामक जनपद से उवर्णान्तलक्षण ठञ् और कोपधलक्षण अण् दोनों प्राप्त हैं। तुल्यबल होने से परविप्रतिषेध के द्वारा अण् से ठञ् का बाध होता है-ऐक्ष्वाकवः।

*** न वा वुञपवादत्वादणः * न वाऽर्थो विप्रतिषेधेन। किं कारणम्? 'वुञपवादत्वादणः'। वुञपवादोऽण्। वुञ्च ओष्ठञं बाधिष्यते * कोपधादणोऽकान्ताच्छः * 'कोपधादण्भवती'त्येतस्मादकान्ताच्छो भवति विप्रतिषेधेन। 'कोपधादण्भवती'त्यस्यावकाशः-निलीनक-नैलीनकः। अकान्ताच्छो भवतीत्यस्यावकाशः-आरीहणकम्-आरीहणकीयः। ब्राह्मणको नाम जनपदस्तस्मादुभयं प्राप्नोति-ब्राह्मणकीयः।**

अन्य आचार्य यहाँ अण् से विप्रतिषेध के द्वारा वुञ् का बाध करने का खण्डन करते हैं-**न वा वुञिति**। वुञ् का अनवकाशत्वलक्षण अपवाद अण् है; अतः अपवाद होने से ही अण् से वुञ् का बाध हो जायेगा। यहाँ अण् और वुञ् का विप्रतिषेध उचित नहीं है। **कोपधादण इति**। 'वृद्धादकेकान्तखोपधात्' ४.२.१४१ सूत्र से विहित अकान्तलक्षण छ से विप्रतिषेध के द्वारा 'कोपधादण्' ४.२.१३२ का बाध कहना चाहिये। 'निलीनके भवो नैलीनकः' में 'कोपधादण्' ४.२.१३२ चरितार्थ है। 'आरीहणके भव आरीहणकीयः' में 'वृद्धादकेकान्तखोपधात्'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४.२.१४१ चरितार्थ है। जनपदवाची ब्राह्मणक पद से 'तत्र भवः' अर्थ में अकान्त-लक्षण छ और कोपधलक्षण अण्, दोनों प्राप्त हैं। तुल्यबल होने से परविप्रतिषेध के द्वारा छ से अण् का बाध होता है-ब्राह्मणकीयः।

*** धन्ववुञश्च * धन्ववुञश्च च्छो भवति विप्रतिषेधेन। 'धन्वनो वुञ्भवती'त्यस्यावकाशः-पारेधन्व-पारेधन्वकः। छस्य स एव। आष्टकं नाम धन्व तस्मादुभयं प्राप्नोति-आष्टकीयः * न वा छस्य पुनर्वचनं छापवादनिवृत्त्यर्थम् * न वाऽर्थो विप्रतिषेधेन। किं कारणम्? 'छस्य पुनर्वचनं छापवादनिवृत्त्यर्थम्'। सिद्धोऽत्र च्छो 'वृद्धाच्छ' इत्येव। तस्य पुनर्वचन एतत्प्रयोजनं-येऽन्ये तदपवादाः प्राप्नुवन्ति तद्बाधनार्थम्। स यथैवाऽन्याँस्तदपवादान्बाधते एवमिमपि बाधिष्यते।।** अव्ययात्त्यप्।।

धन्ववुञश्चेति। परविप्रतिषेध के द्वारा 'वृद्धादकेकान्तखोपधात्' ४.२.१४१ से 'धन्वयोपधाद्वुञ्' ४.२.१२१ का बाध कहना चाहिये। 'पारेधन्वकः' में वुञ् चरितार्थ है। 'आरीहणकीयः' में छ चरितार्थ है। आष्टक नाम का धन्व देश है; एवम् आष्टक पद अकान्त भी है; अतः इससे धन्वलक्षण वुञ् और अकान्त-लक्षण छ दोनों प्राप्त है। परविप्रतिषेध के द्वारा छ से वुञ् का बाध होता है-आष्टके भव आष्टकीयः।

इतर आचार्य 'धन्ववुञश्च' विप्रतिषेध का खण्डन करते हैं-**न वा छस्येति**। 'धन्ववुञश्च' विप्रतिषेध नहीं कहना चाहिये। 'आष्टकः' इत्यादि अकान्त में 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ से ही छ सिद्ध था; पुनः यहाँ छविधान के लिए आचार्य ने 'वृद्धादकेकान्तखोपधात्' ४.२.१४१ का आरम्भ किया, वह व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा-'यह सूत्र वृद्धाच्छः' के अपवाद की निवृत्ति के लिए आरम्भ है'। 'वृद्धाच्छः' के अन्य अपवादों को जैसे 'वृद्धादकेकान्तखोपधात्' ४.२.१४१ बाध करता है, वैसे **इममपि**-धन्वयोपधाद्वुञ्' ४.२.१२१ का भी बाध कर लेगा।। **अव्ययात्त्यप्।।**

जनपदतदवध्योश्च ४.२.१२४

*** जनपदतदवध्योर्वुञ्विधानेऽवयवमात्रात्प्रसङ्गः * जनपदतदवध्योर्वुञो विधानेऽवयवमात्रात् प्राप्नोति। मौञ्जो नाम बाहीकेषु ग्रामस्तस्मिन् भवो मौञ्जीयः। एवं तर्हि-'जनपदादेव जनपदावधेः' * जनपदादिति चेद्वचनानर्थक्यम् * जनपदादिति चेदविधिग्रहणमनर्थकं, सिद्धं 'जन-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पदादि'त्येव। इदं तर्हि प्रयोजनं-जनपदाज्जनपदावधेर्वुञेव यथा स्याद्यन्यत्प्राप्नोति तन्मा भूदिति। किं चाऽन्यत्प्राप्नोति? छः। 'गर्तोत्तरपदाच्छविधेर्जनपदाद् वुञ्पूर्वविप्रतिषिद्ध'मिति वक्ष्यति स पूर्वविप्रतिषेधो न पठितव्यो भवति।। जनपदतदवध्योश्च।।

'वृद्धात्प्राचाम्' ४.२.१२० से 'वृद्धात्', 'धन्वयोपधाद्वुञ्' ४.२.१२१ से विधेयवचन 'वुञ्' की अनुवृत्ति है। 'जनपदतदवध्योश्च' यह पञ्चम्यर्थ में षष्ठी है। 'तदवधिः' में '**सः**=जनपदश्चासौ अवधिश्च तदवधिः' ऐसा कर्मधारयसमास है। जैसे-आदर्शो नाम जनपदस्तत्र भव आदर्शकः। त्रिगर्तो नाम जनपदविशेषस्तस्यावधिः= सीमा, तत्र भवस्त्रैगर्तकः।

पूर्वपक्षी आचार्य 'तस्यावधिस्तदवधिः' ऐसा षष्ठीसमास मान कर पूर्वपक्ष करते हैं-**जनपदेति**। 'जनपदतदवध्योश्च' से वुञ्विधि में अवधिभूत जनपद का अवयवमात्र से वुञ् प्राप्त होगा। अर्थात् विशेष का ग्रहण नहीं होने से जनपद की जो **अवधि**=सीमा, वह यदि जनपदभिन्न है तब भी उससे वुञ् प्राप्त होने से सूत्र की अतिव्याप्ति हो रही है।

इस अतिव्याप्ति को उदाहरणों से स्पष्ट करते हैं-**मौञ्जो नामेति**। 'वटे गावः शेरते' में वटपदोत्तरसप्तमी को औपश्लेषिक मान कर जैसे 'वटसमीपे' अर्थ करते हैं; वैसे '**बाहीकेषु**'=बाहीकग्राम के समीप में मौञ्जनामक कोई जनपद है। 'तत्र भवः' अर्थ में मौञ्जपद से 'मौञ्जीयः' में वुञ् की अतिव्याप्ति हो रही है। 'बाहीकेषु' में औपश्लेषिकसप्तमी मानने से 'बाहीकग्रामेभ्यश्च' ४.२.११७ ठञ्, ञिठ की आपत्ति निरस्त हो गयी।

उत्तरपक्षी आचार्य 'तदवधिः' कर्मधारय मान कर उक्त आपत्ति का निवारण करते हैं-**एवन्तर्हीति**। 'स चासौ अवधिस्तदवधिः' ऐसा कर्मधारय मानिये। 'कस्यासौ अवधिः' इस जिज्ञासा में उपस्थितत्वात् 'जनपद का अवधि' ऐसा ग्रहण करने से 'मौञ्जीयः' में वुञ् की आपत्ति निरस्त हो गयी-।

प्रश्नभाष्य—**जनपदादितीति**। यदि जनपद से वुञ्विधि कर रहे हैं तो 'तदवधि'ग्रहण नहीं करना चाहिये। जनपदग्रहण से गृहीत होने से तदवधि से भी वुञ् सिद्ध हो जायेगा।

उत्तरभाष्य—**इदं तर्हीति**। जनपदग्रहण से तदवधिं में भी वुञ् सिद्ध हो जाने पर भी आचार्य ने जो 'तदवधि'ग्रहण किया उसका प्रयोजन यह है कि 'जनपद और तदवधि से वुञ् ही हो, जो अन्य प्राप्त है वह न हो'।

प्रश्नभाष्य—**किं चान्यदिति**। जनपद और तदवधि से अन्य क्या प्राप्त है?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरभाष्य—**छ इति**। 'गर्तोत्तरपदाच्छः' ४.२.१३७ से छ प्राप्त है। 'तदवधि'ग्रहण से इसका प्रतिषेध हो जाता है। 'गर्तोत्तरपदाच्छः' ४.२.१३७ सूत्र पर 'छ'विधि में गर्तोत्तरपदजनपद से वार्तिककार छ विधि का प्रतिषेध कहेंगे। प्रकृत सूत्र में अवधिग्रहण से यह वार्तिक नहीं कहना पडता है।। जनपद-।।

अरण्यान्मनुष्ये ४.२.१२९

अत्यल्पमिदमुच्यते-मनुष्य इति * पथ्यध्यायन्याय- विहारमनुष्यहस्तिष्विति वक्तव्यम् * **आरण्यकः पन्थाः। आरण्यको ऽध्यायः। आरण्यको न्यायः। आरण्यको विहारः। आरण्यको मनुष्यः। आरण्यको हस्ती * वा गोमयेषु * वा गोमयेष्विति वक्तव्यमम्। आरण्यका गोमयाः। आरण्या गोमयाः।।**

सूत्रार्थ—'मनुष्य अर्थ गम्य होने पर अरण्य पद से वुञ् हो'। यह 'अरण्याण्णः' वा.२७८२ का अपवाद है। अरण्ये भव आरण्यको मनुष्यः।

सिद्धान्ती आचार्य—**अत्यल्पमिदमिति**। यहाँ मात्र मनुष्य अर्थ में वुञ्विधान न्यून है। पथिन्, अध्याय, न्याय, विहार, मनुष्य और हस्ती अर्थ गम्य होने पर भी वुञ् कहना चाहिये। जैसे-'आरण्यकः पन्थाः' इत्यादि। **वा गोमयेष्विति**। गोमय अर्थ वाच्य होने पर अरण्य पद से विकल्प से वुञ् कहना चाहिये-आरण्यका गोमयाः। वुञ् के अभावपक्ष में 'अरण्याण्णः' वा.२७८२ से ण हो कर 'आरण्याः' रूप है।। **अरण्यान्मनुष्ये**।।

विभाषा कुरुयुगन्धराभ्याम् ४.२.१३०

* कुरुयुगन्धरेभ्यो वावचनान्मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ्विधानम् * **'कुरुयुगन्धरेभ्यो वावचनान्मनुष्यतत्स्थयोर्वुञि'त्येतद् भवति विप्रतिषेधेन। कुरुयुगन्धरेभ्यो वावचनस्यावकाशः-कौरवः कौरवकः। यौगन्धरो यौगन्धरकः। 'मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ् भवती'त्यस्यावकाशः-अन्ये कच्छादयः। काच्छको मनुष्यः, काच्छकमस्येप्सितं, जल्पितं, हसितं, स्मितम्। वुञ्भवति विप्रतिषेधेन।**

सूत्रार्थ—'तत्र भवः' इत्यादि अर्थों में कुरु और युगन्धर पद से वुञ् विकल्प हो'। जैसे-वुञ्पक्ष में-'कुरुषु भवः कौरवकः, युगन्धरेषु भवो यौगन्धरकः' अण्पक्ष में-'कौरवः, यौगन्धरः'।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वार्तिककार—**कुरुयुगन्धरेभ्य इति**। परविप्रतिषेध के द्वारा 'मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ्' ४.२.१३४ से 'विभाषा कुरुयुगन्धराभ्याम्' का बाध कहना चाहिये। 'कौरवः-कौरवकः, यौगन्धरः-यौगन्धरकः' में कुरु और युगन्धर पद से 'वा'वचन चरितार्थ है। 'कच्छादिभ्यश्च' ४.२.१३३ सूत्र में कुरु पद का पाठ है। कुरु पद से भिन्न कच्छ आदि से 'मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ्' ४.२.१३४ चरितार्थ है। जैसे-कच्छे जातादिः कच्छको मनुष्यः। काच्छकमस्येप्सितं, जल्पितं, हसितं, स्मितम्। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि 'समुदाय में विहित कार्य किसी अवयव में सावकाश होने पर भी समुदाय में सावकाश होता है' यह मान कर 'मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ्' को सावकाश कहा है। कच्छादिगण ४.२.१३३ में कुरुशब्द पठित है। कुरुशब्द से भिन्न कच्छादिगण में 'मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ्' ४.२.१३४ चरितार्थ है। 'अरण्यान्मनुष्ये' ४.२.१२९ से 'मनुष्ये' पद की अनुवृत्ति कर मनुष्य अर्थ वाच्य होने पर कुरु और युगन्धर पद से वुञ्विकल्प है। एवं 'कच्छादिभ्यश्च' ४.२.१३३ सूत्र से 'कच्छादिभ्यश्च' की अनुवृत्ति उत्तरसूत्र 'मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ्' ४.२.१३४ में हो कर कच्छादि से ही मनुष्य और तत्स्थ अर्थ वाच्य होने पर वुञ् है। दोनों ही सूत्रों में कुरु पद से मनुष्य अर्थ गम्य होने पर प्रत्ययविधान है। अन्यत्र-अन्यत्र दोनों सूत्र चरितार्थ हैं; अतः दोनों का समान बल होने पर 'कुरुषु भवः कौरवको मनुष्यः'। 'कौरवकमस्येप्सितं, हसितं, जल्पितं, स्मितम्' में परविप्रतिषेध के द्वारा 'मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ्' ४.२.१३४ से नित्य वुञ् होगा।

नैष युक्तो विप्रतिषेधः। न हि कुरुशब्दस्याऽन्ये कच्छादयोऽवकाशः। कुरुशब्दस्य यः कच्छादिषु पाठः सोऽनवकाशः। न खल्वपि कुरुशब्दो विभाषां प्रयोजयति। अनेन वुञ्, कच्छादिषु पाठादण्भविष्यति। सैषा युगन्धराऽर्था विभाषा।। विभाषा कुरुयुगन्धराभ्याम्।।

यहाँ अन्य आचार्य विप्रतिषेध का खण्डन करते हैं-**नैष युक्त इति**। यहाँ 'वा'वचन और 'नित्य'वचन का विप्रतिषेध उचित नहीं है।

उक्त स्थल में विप्रतिषेध का अभाव बताने के लिए भाष्य का अवतरण करते हैं-**न हि कुर्विति**। समुदाय में कहा गया कार्य किसी अवयव में चरितार्थ होने पर भी समुदाय में चरितार्थ नहीं होता है। कुरु पद से भिन्न कच्छ आदि में चरितार्थ होने पर भी कुरु में अचरितार्थ ही रहेगा। कच्छादिगण में कुरुशब्द का जो पाठ है वह अनवकाश है। **न खल्वपीति**। कुरुशब्द विकल्प का प्रयोजक नहीं है। कच्छादिगण में नित्यप्रत्ययविधानार्थ कुरु पद का पाठ से ही अन्यत्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुरु पद से विकल्पप्रत्ययविधान सिद्ध है; अतः यहाँ कुरु पद विकल्प का प्रयोजक नहीं हो सकता है। इस तरह मनुष्य और तत्स्थ अर्थ में 'विभाषा कुरुयुगन्धराभ्याम्' से वुञ्, कच्छादिगण में पाठ होने से अण् सिद्ध है। परन्तु जहाँ मनुष्य और तत्स्थ अर्थ वाच्य है वहाँ 'कच्छादिभ्यश्च' ४.२.१३३ से प्राप्त अण् का बाध कर 'मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ्' ४.२.१३४ से वुञ् ही होगा। इस तरह यहाँ विप्रतिषेध व्यर्थ है।। **विभाषा-**।।

कच्छादिभ्यश्च ४.२.१३३

किमर्थं साल्वानां कच्छादिषु पाठः क्रियते? * साल्वानां कच्छादिषु पाठोऽण्विधानार्थः * **साल्वानां कच्छादिषु पाठोऽण्विधानार्थः क्रियते। अण्यथा स्याद्वुञ्मा भूदिति** * न वा पदातिगोयवागूग्रहणमवधारणार्थम् * **न वैतत्प्रयोजनमस्ति। किं कारणम्? अपदातिगोयवागूग्रहणम् अवधारणार्थं भविष्यति-'अपदातावेव साल्वाद्' 'गोयवाग्वोरेव च साल्वा'दिति।।** कच्छादिषु।।

'ओर्देशे ठञ्' ४.२.११९ से मण्डूकप्लुति के द्वारा यहाँ 'देशे' पद अनुवृत्त हो कर पञ्चमीबहुवचनान्त में परिणत है। 'कोपधादण्' ४.२.१३२ से विधेय अण्पद अनुवृत्त है। यह वुञ् आदि का अपवाद है।

सूत्रार्थ—'देशवाची कच्छशब्द से पर में अण्प्रत्यय हो'। जैसे-कच्छे भवः काच्छः। सिन्धौ भवः सैन्धवः।

पूर्वपक्षी—**किमर्थमिति**। कच्छादिगण में साल्वशब्द का पाठ क्यों किया गया है? अर्थगत बहुत्व को शब्द में आरोप कर 'साल्वानाम्' ऐसा भाष्यकार ने कहा है। अथ वा 'साल्वानां वाचकस्य किमर्थं कच्छादिषु पाठः' ऐसा अर्थ समझना चाहिये।

उत्तरपक्षी—**साल्वानामिति**। साल्वशब्द से अण् हो, वुञ् न हो, इसके लिए कच्छादिगण में साल्वपद का पाठ है। कच्छादिगण में साल्वपद का प्रत्याख्यान के लिए कहते हैं-**न वेति**। 'जनपदतदवध्योश्च' ४.२.१२४ से ही वुञ् सिद्ध था; पुनः आचार्य ने 'अपदातौ साल्वात्' ४.२.१३५ और 'गोयवाग्वोश्च' ४.२.१३६ से वुञ्विधान किया है; वह व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा-'साल्व पद से वुञ् हो तो अपदाति अर्थ गम्य होने पर ही हो, अन्यत्र नहीं'। अपदाति आदि से भिन्न अर्थ गम्य होने पर साल्व पद से अण् ही होगा, वुञ् नहीं।। **कच्छादिभ्यश्च**।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गर्तोत्तरपदाच्छः ४.२.१३७

*** गर्तोत्तरपदाच्छविधेर्जनपदाद्वुञ्पूर्वविप्रतिषिद्धम् * गर्तोत्तरपदाच्छविधेर्जनपदाद्वुञ्भवति पूर्वविप्रतिषेधेन। गर्तोत्तरपदाच्छो भवतीत्यस्यावकाशः-श्वाविद्गर्तः श्वाविद्गर्त्तीयः। वुञोऽवकाशः-अङ्गाः-आङ्गकः। इहोभयं प्राप्नोति-त्रैगर्तकः। वुञ्भवति पूर्वविप्रतिषेधेन। स तर्हि पूर्वविप्रतिषेधो वक्तव्यः? न वक्तव्यः। उक्तमेवाधिग्रहणस्य प्रयोजनं-'जनपदाज्जनपदावधेर्वुञेव यथा स्याद्यदन्यत्प्राप्नोति तन्मा भूदि'ति।।** गर्त्तोत्तरपदाच्छः।।

सूत्रार्थ—'देशवाची गर्तोत्तर पद से 'तत्र भवः' इत्यादि अर्थों में छ प्रत्यय हो'। यह अण् का अपवाद है। वृकगर्ते भवो वृकगर्तीयम्। बहुच्पूर्वनिरासार्थ उत्तरपद का ग्रहण है।

एकदेशी आचार्य—**गर्तोत्तरेति**। गर्तोत्तर पद से छ विधि में पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा तनपदवाची से वुञ् कहना चाहिये।

'गर्तोत्तरपदाच्छः' और 'जनपदतदवध्योश्च' का तुल्यबल दिखाने के लिए भाष्य का अवतरण करते हैं-**गर्तोत्तरपदेति**। श्वानं विध्यतीति श्वाविध्, 'क्विप् च' ३.२.७६ से आश्रय अर्थ में क्विप्, एवं 'नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ' ६.३.११६ से दीर्घ है। श्वाविधां गर्तः श्वाविद्गर्तस्तत्र भवः श्वाविद्गर्तीयः' में छ चरितार्थ है। 'अङ्गेषु भव आङ्गकः' में जनपदलक्षण वुञ् चरितार्थ है। 'त्रिगर्ते भवस्त्रैगर्तकः' में 'गर्तोत्तरपदाच्छः' और 'जनपदतदवध्योश्च' ४.२.१२४ दोनों की प्राप्ति है। पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा वुञ् से छ का बाध होता है।

अन्य आचार्य—**स तर्हीति**। तो क्या यह पूर्वविप्रतिषेध कहना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्य इति**। यह पूर्वविप्रतिषेध कहने की आवश्यकता नहीं है। अभी-अभी 'जनपदतदवध्योश्च' ४.२.१२४ सूत्र पर अवधिग्रहण का प्रयोजन बता आया हूँ-'अवधिवाची से वुञ् ही हो, जो अन्य प्राप्त हैं वे न हों' यही अवधिग्रहण का प्रयोजन है। इससे 'त्रैगर्तकः' में नियम से ही छ आदि का निषेध हो जा रहा है; इसके लिए पूर्वविप्रतिषेध मानने की आवश्यकता नहीं है।। **गर्तोत्तरपदात्-**।।

गहादिभ्यश्च ४.२.१३८

*** गहादिषु पृथिवीमध्यस्य मध्यमभावः * गहादिषु पृथिवीमध्यस्य**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मध्यमभावो वक्तव्यः। पृथिवीमध्ये भवो मध्यमीयः * चरण-सम्बन्धेन निवासलक्षणोऽण् * **चरणसम्बन्धेन निवासलक्षणोऽण् वक्तव्यः। त्रयः प्राच्याः। त्रय औदीच्याः। त्रयो माध्यमाः। सर्वे निवासलक्षणाः।।** गहादिभ्यश्च।।

सूत्रार्थ—'गहादिगण पठितशब्दों से 'तत्र भवः' इत्यादि अर्थों में छ प्रत्यय हो'। गहे भवो गहीयः।

वार्तिक—**गहादिष्विति**। गहादिगण में पृथिवीमध्यशब्द पठित है। छ प्रत्यय-सन्नियोग होने पर पृथिवीमध्य को मध्यम आदेश कहना चाहिये-'पृथिवीमध्ये भवो मध्यमीयः'। यहाँ पृथिवीमध्यवाची मध्य शब्द ही गृहीत है, मध्यान्तरवाची नहीं। **चरणसम्बन्धेनेति**। यहाँ पूर्व वार्तिक 'गहादिषु पृथिवीमध्यस्य' की अनुवृत्ति है। चरणसम्बन्ध से **निवासलक्षण**='सोऽस्य निवासः' गम्य होने पर पृथिवीमध्य को मध्यम आदेश और अण् प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे-'पृथिवीमध्यं निवास एषां चरणानाम्' इस अर्थ में अण्प्रत्यय तथा तत्सन्नियोगशिष्ट पृथिवीमध्य को मध्यम आदेश हो कर 'मध्यमाश्चरणाः' रूप समझना चाहिये। यहाँ चरणशब्द से कठ आदि चरण गृहीत हैं।। **गहादि-**।।

वृद्धादकेकान्तखोपधात् ४.२.१४१

* ईकान्तादपि * **'ईकान्तादपी'ति वक्तव्यम्। इहापि यथा स्याद्-ऐणीकीयः। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्** * अकेकान्तग्रहणे कोपध-ग्रहणं सौसुकाद्यर्थम् * **अकेकान्तग्रहणे कोपधग्रहणं कर्त्तव्यम्। किं प्रयोजनम्? 'सौसुकाद्यर्थम्'। सौसुकीयः।।** वृद्धादकेकान्तखोपधात्।।

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये
चतुर्थाऽध्यायस्य द्वितीये पादे द्वितीयमाह्निकम्

●

सूत्रार्थ—'वृद्धसंज्ञक देशवाची अकान्त, इकान्त और खोपध से 'तत्र भवः' अत्यादि अर्थों में छ प्रत्यय हो'। जैसे अकान्तवृद्धसंज्ञक- ब्राह्मणको नाम जनपदो यत्र ब्राह्मणा आयुधजीविनस्तत्र जातो ब्राह्मणकीयः। इकान्तवृद्धसंज्ञक-शाल्मलिक देशवाची वृद्धसंज्ञक है, उससे 'तत्र भवः शाल्मलिकीयः। खोपधवृद्धसंज्ञक-आयोमुख देशवाची है, उससे 'तत्र भवः' अर्थ में 'आयोमुखीयः' रूप है।

वार्तिक—**ईकान्तादपीति**। ईकान्तवृद्धसंज्ञक देशवाची से भी 'तत्र भवः' अर्थ में छ प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे-ऐणीके भव ऐणीकीयः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्य आचार्य—**तत्तर्हीति**। तो क्या 'ईकान्तादपि' यह वार्तिक पढना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। यह वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं है। 'ऐणीकीयः' की सिद्धि के लिए सूत्र में अकान्त, इकान्त के स्थान पर हम कोपधग्रहण करेंगे। इससे 'ब्राह्मणकीयः, शाल्मलिकीयः, ऐणीकीयः' भी सिद्ध होंगे तथा 'सौसुके भवः सौसुकींयः' इत्यादि भी सिद्ध हो जायेगा।। **वृद्धादकेकान्त-**।।

श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य
चतुर्थ अध्याय द्वितीय पाद द्वितीय आह्निक पर
डॉ. हरिनारायण तिवारी द्वारा रचित
'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

द्वितीयपाद भी पूर्ण हुआ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

❀ तृतीये पादे प्रथममाह्निकम् ❀

युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च ४.३.१

*** युष्मदस्मद्भ्यां प्रत्ययविधाने योगविभागः * युष्मदस्मद्भ्यां प्रत्ययविधाने योगविभागः कर्त्तव्यः। 'युष्मदस्मदोरन्यतरस्याम्'। युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां छो भवति। युष्मदीयः। अस्मदीयः। ततः-'खञ्च'। खञ्च भवति युष्मदस्मदोरन्यतरस्याम्। यौष्माकीणः। आस्माकीनः।**

स्वरितत्वप्रतिज्ञा के बल से 'गतोर्त्तोपदाच्छः' ४.२.१३७ से 'छः' पद की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'युष्मद् और अस्मद् पद से खञ्, छ, और पक्ष में अण् प्रत्यय हो'। जैसे-'युवयोर्युष्माकं वा अयं यौष्माकीणः, युष्मदीयः, यौष्माकः। आवयोरस्माकं वा अयमास्माकीनः, अस्मदीयः, आस्माकः।

एकदेशी आचार्य—**युष्मदस्मभ्यामिति**। प्रत्ययविधान में 'युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च' का योगविभाग करना चाहिये। प्रथम योग होगा-'युष्मदस्मदोरन्यतरस्याम्'। द्वितीय योग होगा-'खञ्च'। प्रथम योग में सूर्व सूत्र से 'छ' की अनुवृत्ति होने से युष्मदीयः, अस्मदीयः' रूप है। द्वितीय योग में प्रथम की अनुवृत्ति होने से युष्मद्, अस्मद् से खञ् हो कर 'यौष्माकीणः, आस्माकीनः' रूप है।

किमर्थो योगविभागः? * समसंख्याप्रतिषेधार्थः * समसंख्याप्रतिषेधार्थो योगविभागः। संख्यातानुदेशो मा भूदिति।। युष्मदस्मदो।।

अन्य आचार्य—**किमर्थ इति**। योगविभाग क्यों करते हैं?

उत्तरपक्षी—**समसंख्येति**। समसंख्या का प्रतिषेध करने के लिए योगविभाग है; अन्यथा समसंख्या होने से युष्मद् से छ और अस्मद् से खञ् की आपत्ति होगी। यह भाष्य एकदेशी इस लिए है कि 'अन्यतरस्याम्' ग्रहण से पक्ष में यहाँ अण् भी प्राप्त है। उद्देश्य पद दो और विधेय पद तीन होने पर समसंख्याकविधि नहीं हो पा रहा है; अतः उसका वारण करने के लिए समसंख्याक व्यर्थ है।। **युष्मदस्मदो-**।।

तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ४.३.२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

*** आदेशवचने च * आदेशवचने च। किम्? योगविभागः कर्त्तव्यः। 'तस्मिन्नणि'। तस्मिन्नणि युष्माकास्माकौ भवतः। यौष्माकः। आस्माकः। ततः खञि च। खञि च युष्माकास्माकौ भवतः। यौष्माकीणः। आस्माकीनः। किमर्थो योगविभागः क्रियते? 'समसंख्याप्रतिषेधार्थ' इत्येव।**

यहाँ तद् पद से प्रत्यय विवक्षित है। पूर्वसूत्र से स्थानिवचन 'युष्मदस्मदोः' अनुवृत्त है। अन्वय यथासंख्य होगा।

सूत्रार्थ—'खञ् और अण् प्रत्यय पर में रहते युष्मद् को युष्माक और अस्मद् को अस्माक आदेश हो'। जैसे-यौष्माकीणः, यौष्माकः। आस्माकीनः, आस्माकः।

मध्यम एकदेशी—**आदेशवचने चेति**। आदेशवचन में भी योगविभाग करना चाहिये। प्रथम योग होगा-'तस्मिन्नणि युष्माकास्माकौ'। इससे अण् प्रत्यय पर रहते युष्मद् को युष्माक और अस्मद् को अस्माक आदेश हो कर 'यौष्माकः, आस्माकः' रूप होगा। द्वितीय योग 'खञि च' पढना चाहिये। यहाँ 'युष्मदस्मदोर्युष्माकास्माकौ' की अनुवृत्ति होगी। इससे खञ्निमित्तक युष्मद्, अस्मद् को क्रमशः युष्माक, अस्माक आदेश हो जायेगा-यौष्माकीणः, आस्माकीनः।

अन्य आचार्य—**किमर्थ इति**। उक्त योगविभाग क्यों करते हैं।

मध्यम एकदेशी—**समसंख्येति**। अण्प्रत्यय पर रहते युष्मद् को युष्माक और खञ् पर रहते अस्मद् को अस्माक ऐसा समसंख्याक विधि न हो, इसके लिए योगविभाग करते हैं।

*** तत्र पुनः खञ्ग्रहणम् * तत्र पुनः खञ्ग्रहणं कर्त्तव्यम्। न ह्यन्तरेण खञ्ग्रहणं योगाङ्गमुपजायते। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। एवं वक्ष्यामि-'तस्मिन्खञि युष्माकास्माकौ'। तस्मिन्खञि युष्माकास्माकौ भवतः। ततः 'अणि च'। अणि च युष्माकास्माकौ भवत इति।।** तस्मिन्नणि।।

अन्य आचार्य—**तत्र पुनरिति**। योगविभाग करने के लिए आप को खञ्ग्रहण करना पडेगा। खञ्ग्रहण के अभाव में योगविभाग नहीं हो सकता है। यदि 'खञ्यणि' ऐसा ग्रहण नहीं करेंगे तो पूर्व सूत्र 'युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च' ४.३.१ में 'च' पद से 'छ' का अनुवर्त्तन है; आनन्तर्य होने से 'तस्मिन्' पद के द्वारा उसी का ग्रहण होने लगेगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इतर आचार्य—**तत्तर्हीति**। तो क्या 'तस्मिन्खञ्यणि च युष्माकास्माकौ' ऐसा योगविभाग करना चाहिये?

अन्य आचार्य—**न वक्तव्यमिति**। इसकी आवश्यकता नहीं है। उक्त योग-विभाग के अभाव में भी दोषरहित लक्ष्यसिद्धि बताते हैं-**एवं वक्ष्यामीति**। 'तस्मिन् खञि युष्माकास्माकौ' ऐसा एक सूत्र करेंगे। इससे खञ्निमित्तक युष्माक, अस्माक आदेश होगा। इस तरह का योग करने से अनुकृष्ट 'छ' प्रत्यय-निमित्तक आदेश की अतिव्याप्ति नहीं होगी, तथा समसंख्याकविधि भी नहीं होगा।। **तस्मिन्नणि-**।।

तवकममकावेकवचने ४.३.३

***एकार्थग्रहणं च* एकार्थग्रहणं च कर्त्तव्यम्। 'एकार्थयोर्युष्मदस्मदो'रिति वक्तव्यम्। किमर्थम्?, न एकवचन इत्येव सिद्धम्? न सिध्यति। किं कारणम्? 'एकवचनाभावात्'। एकवचन इत्युच्यते, न चाऽत्रैकवचनं पश्यामः। यदि पुनरेकवचनपरत्वेनाऽण्खञौ विष्येख्येयाताम्। नैवं शक्यम्-इह हि प्रसज्येयातां-युष्माकं छात्रो यौष्माकीणः। अस्माकं छात्र आस्माकीनः। इह च न स्यात्-तव च्छात्रास्तावकीनाः। मामकीनाः। तस्मान्नैवं शक्यम्।**

यहाँ 'खञ्, अणि, युष्मदस्मदोः' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'खञ् और अण् पर रहते एकार्थवाची युष्मद् को तवक और अस्मद् को ममक आदेश हो'। तावकीनः, तावकः। मामकीनः, मामकः।

'कृत्रिमाकृत्रिमयोः कृत्रिमे कार्यसम्प्रत्ययः' न्याय से एकवचन प्रत्यय का ही प्रकृत में ग्रहण होगा। यहाँ एकवचन प्रत्यय का 'अन्तरङ्गानपि विधीन् बहिरङ्गो लुग्बाधते' न्याय से नित्य लुक् है। प्रत्ययलक्षणप्रतिषेध होने से युष्मद्, अस्मद् की एकवचनपरता असम्भव मान कर वार्तिककार कहते हैं-**एकार्थग्रहणं चेति**। 'एकवचने' में निमित्तसप्तमी है। विभक्ति का नित्य लुक् होने से तन्निमित्तक आदेश असम्भव है; अतः एकार्थवाची युष्मद्, अस्मद् को क्रमशः तवक, ममक आदेश कहना चाहिये।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। आप एकार्थवाची युष्मद्, अस्मद् को उक्त आदेश क्यों कर रहे हैं? 'एकवचने' ऐसा निमित्तवचन के द्वारा उक्त आदेश क्यों नहीं होता है? 'एकवचने' ऐसा कहने से उक्त आदेश का अभावत्वसाधक हेतु देते हैं-**एकवचनाभावादिति**। सूत्र में 'एकवचने' ऐसा कहा जा रहा है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'तवायं तावकः' में हम एकवचन नहीं देख रहें हैं। इससे लक्षण का लक्ष्य में अप्रवृत्तिरूप असम्भव दोष होगा। उसका वारण करने के लिए 'एकार्थग्रहणं च' कहा गया है।

वार्तिकमतावलम्बी आचार्य पक्षान्तर में लक्ष्य सिद्ध होने पर भी उसकी अतिव्याप्ति दिखाते हैं—**यदि पुनरिति**। यदि एकवचनपरक खञ्निमित्तक और अञ्निमित्तक उक्त आदेश मान लिया जाये तो 'तवायं तावकः, तावकीनः, ममायं मामकः, मामकीनः' रूप सिद्ध हो जायेगा; परन्तु एकवचनपरक खञ् पर रहते 'युष्माकं छात्रो यौष्माकीणः, अस्माकं छात्र आस्माकीनः' में तवक, ममक रूप आदेश की अनिष्टापत्तिरूप अतिव्याप्ति होगी। एवं 'तवच्छात्रास्तावकीनाः, ममच्छात्रा मामकीनाः' में जहाँ एकार्थपरक नहीं है वहाँ उक्त आदेश की अप्राप्ति होने से अव्याप्ति होगी। इस परह खञ्, अञ् को एकवचन से विशेषित करने पर कहीं अव्याप्ति तथा कहीं अतिव्याप्ति स्पष्ट है। 'एकार्थग्रहणं च' ऐसा वचन पढने पर यह दोष नहीं रहता है।

न चेदेवमेकार्थग्रहणं कर्त्तव्यम्? न कर्त्तव्यम्। नेदं पारिभाषिकस्यैकवचनस्य ग्रहणम्। किं तर्हि? अन्वर्थग्रहणमुच्यते–वचनम्। एकस्याऽर्थस्य वचनम् एकवचनमिति।। तवकममकावेकवचने।।

सिद्धान्ती आचार्य—**न चेदेवमिति**। उक्त सूत्र में एकवचन पद से एकार्थवाचक विभक्ति का ग्रहण नहीं है; जिसे निमित्त मान कर आप आदेश कर रहे हैं; अपि तु 'उच्यते यत्तद्वचनम्ः' ऐसा अन्वर्थ का ग्रहण होगा, पारिभाषिक एकत्व का नहीं। इस व्याकरणशास्त्र में 'उभयगतिरिह भवति' परिभाषा मान्य है। इससे कहीं पर विषयभेद से कृत्रिम का ग्रहण होगा, कहीं पर अकृत्रिम का ग्रहण होगा; एवं कहीं पर कृत्रिम और अकृत्रिम उभय का ग्रहण होगा। अब यदि यहाँ कहा जाये कि 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' १.१.६२ शास्त्र प्राप्त है, उसका आश्रय क्यों नहीं लिया गया है?, तो यहाँ इस तरह समझना चाहिये-अन्वर्थग्रहण करने पर अव्यवहित बोध होता है। परन्तु प्रत्ययलक्षण का निषेधप्रतिबन्ध के द्वारा व्यवहित बोध होता है। अथ च दूसरी वात यह है कि 'त्वमावेकवचने' ७.२.९७ 'प्रत्ययोत्तरपदयोश्च' ७.२.९८ सूत्र पर भी भगवान् भाष्यकार ने इसी सरणी का समादर किया है। एवम् अन्य वात यह भी है कि शास्त्रबाध की अपेक्षा लौकिकन्याय का बाध ही उचित है। 'उच्यते यत्तद्वचनम्, एकस्यार्थस्य वचनमेकवचनम्, ते एकवचने'। यहाँ 'एकस्य' में वाच्यवाचकसम्बन्धषष्ठी है। अर्थात् एकार्थबोध के लिए जो युष्मद्, अस्मद् कहे जाते हैं, उनके स्थान में आदेश है। 'एकवचने' इस प्रथमा द्विवचनान्त को सौत्रत्वात् षष्ठी-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्विवचनार्थ में समझना चाहिये-एकार्थवचनयोर्युष्मदस्मदोरिति।। तवक-।।

अर्द्धाद्यत् ४.३.४

*** अर्द्धाद्यद्विधाने सपूर्वाट्ठञ् * अर्द्धाद्यद्विधाने सपूर्वाट्ठञ् वक्तव्यः। बालेयार्द्धकः। गौतमार्द्धिकः * दिक्पूर्वपदाद्यच्च * दिक्पूर्वपदाद्यच्च ठञ्च वक्तव्यः। पूर्वार्द्ध्यः पौवार्द्धिकः। दक्षिणार्द्ध्यः दाक्षिणार्द्धिकः। उत्तरार्द्ध्य औत्तरार्द्धिकः।**

सूत्रार्थ—'तत्र जातः' इत्यादि अर्थों में अर्ध शब्द से यत् प्रत्यय हो'। अर्द्धे जातोऽर्ध्यः।

वार्तिककार—**अर्द्धाद्यद्विधान इति**। अर्द्धशब्द से यद्विधि में सपूर्व से ठञ् कहना चाहिये। 'बालेयार्द्धे जातो बालेयार्द्धिकः', गोतमार्द्धे जातो गौतमार्द्धिकः'। **दिक्पूर्वपदादिति**। दिक्पूर्वपद अर्द्धशब्द से यत् और ठञ् दोनों कहना चाहिये। पूवार्द्धे जातः पौर्वाध्यः, पौर्वार्द्धिकः। दक्षिणार्द्धे भवो दक्षिणार्ध्यः, दाक्षिणार्द्धिकः। उत्तरार्द्धे जात उत्तरार्ध्यः, औत्तरार्द्धिकः।

किमर्थमिदमुच्यते-यथान्यास एव दिक्पूर्वपदाद् अर्द्धशब्दादुभयमुच्यते इदमद्याऽपूर्वं क्रियते-'अर्थाद्यद्विधाने सपूर्वाट्ठञिति। तद् द्वेष्यं विजानीयात्सर्वमेव विकल्पत इति। तदाचार्यः सुहृद् भूत्वाऽन्वाचष्टे-'दिक्पूर्वपदादर्द्धाद् यथान्यासमेव भवती'ति।। अर्द्धाद्यत्।।

अन्य आचार्य—**किमर्थमिति**। 'दिक्पूर्वपदाद्यच्च' वचन क्यों पढते हैं? आचार्य ने 'दिक्पूर्वपदाट्ठञ् च' सूत्र पढा है। यहाँ स्वरितत्वप्रतिज्ञाबलात् पूर्व सूत्र 'अर्द्धाद्यत्' से 'यत्' की अनुवृत्ति होने से यत् और ठञ् दोनों का विधान हो जा रहा है; फिर 'दिक्पूर्वपदाद्यच्च' वचन पढने की आवश्यकता नहीं है।

उत्तरपक्षी—**इदमद्यापूर्वमिति**। 'अर्द्धाद् विधाने सपूर्वाट् ठञ्' यह अपूर्ववचन है। 'दिक्पूर्वपदाट् ठञ् च' ४.३.६ सूत्र के स्थान पर 'अर्द्धाद्यद्विधाने सपूर्वाट् ठञ्' ऐसा वचन पढा गया है' इस प्रकार का भ्रम किसी को न हो इसके लिए उक्त वचन पढा गया है; अतः करुणापरायण आचार्य ने स्पष्ट सूत्र पढ दिया कि दिक्पूर्व अर्द्ध पद से ठञ् और यत् दोनों समझना। वार्तिककार ने भी 'अर्द्धाद्यद्विधाने सपूर्वाट् ठञ्' ऐसा पढ दिया इससे सपूर्व अर्द्ध पद से ठञ् ही होगा; इससे विकल्प से यद् का भ्रम नहीं रहता है।। **अर्द्धाद्यत्**।।

श्वसस्तुट् च ४.३.१५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

*** श्वसस्तुट्यादेशानुपपत्तिरनादित्वात् * श्वसस्तुटि कृते आदेशानुपपत्तिः। किं कारणम्? 'अनादिष्टत्वात्'। तुटि कृतेऽनादित्वादादेशो न प्राप्नोति। एवन्तर्हि पूर्वान्तः करिष्यते *** पूर्वान्ते कप्रतिषेधः *** यदि पूर्वान्तः कादेशस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः-शौवस्तिकम्। 'तान्ता'दिति कादेशः प्राप्नोति। अस्तु तर्हि परादिः।**

'श्वसः' पञ्चमी-एकवचनान्त पद है। 'कालाट् ठञ्' ४.३.११ से विधेय-वचन 'ठञ्' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'तत्र जातः' इत्यादि अर्थों में श्वस् पद से ठञ् प्रत्यय तथा प्रत्यय ठञ् को तुट् का आगम हो'। श्वसि जातं शौवस्तिकम्। यहाँ 'द्वारादीनां च' ७.३.४ से वृद्धि का निषेध और ऐजागम है।

पूर्वपक्षी—**श्वसस्तुटीति**। 'ठस्येकः' ७.३.५० अङ्गाधिकारीय है। अङ्ग से अव्यवहित परत्वविशिष्ट 'ठ' को ही इकादेश विहित है। आप यदि ठक् को तुडागम करेंगे तो 'त्ठक्' ऐसा रूप होने से प्रत्यय का आद्यवयव ठ नहीं होने से उसको इकादेश प्राप्त नहीं हो सकेगा। **पूर्वान्त इति**। यदि 'श्वसस्तुट् च' सूत्र के स्थान पर 'श्वसस्तुक् च' ऐसा किदागम कर प्रकृति का अन्तावयव मानेंगे तो 'श्वस्त्+ठक्' इस दशा में 'इसुसुक्तान्तात्कः' ७.३.५१ के द्वारा तान्त से पर में 'ठ' को कादेश प्राप्त होगा, उसका प्रतिषेध कहना चाहिये। इस तरह परादि मानने पर 'ठ' को इकादेश अप्राप्त है तथा पूर्वान्त मानने पर 'ठ' को कादेश प्राप्त है, जिसका प्रतिषेध कहने से दोनों ही पक्ष दोषग्रस्त हो गये; यहाँ क्या किया जा सकता है, यह पूर्वपक्षी का आशय है?

उत्तरपक्षी—**अस्तु तर्हीति**। आप सूत्र को यथान्यास पक्ष कर प्रत्यय को तुडागम ही कीजिये।

ननु चोक्तं-'श्वसस्तुट्यादेशानुपपत्तिरनादित्वादि'ति? * सिद्धं त्वादिष्टस्य तुड्वचनात् *** सिद्धमेतत्। कथम्? 'तुट् चातिदिष्टस्ये'ति वक्तव्यम् *** चसन्नियोगाद्वा *** अथ वा चेन सन्नियोगः करिष्यते-'तुट् च'। किं च? यच्चाऽन्यत्प्राप्नोति। किं चाऽन्यत्प्राप्नोति? आदेशः।।** श्वसस्तुट् च।।

इस पक्ष में आप ने इकादेश का अप्राप्तिरूप दोष दिया था, वह नहीं रहेगा। आचार्य परादिपक्ष में दोष वारण करते हैं-**सिद्धं त्विति**। ठक् को तुडागम-विधान नहीं करके ठादेश इक को तुडागम होने से पूर्वोक्त दोष नहीं आयेगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसी को पक्षान्तर में भी समाधान करते हैं-**चसन्नियोगादिति**। 'श्वसस्तुट् च' सूत्र में आचार्य ने 'च' पद पढा है। उससे 'ठ' को इकादेशसन्नियोग तुड्विधान करेंगे। इससे परादिपक्ष में कोई दोष नहीं रहा। यहाँ पूर्वान्तपक्ष का समाधान भगवान् भाष्यकार ने नहीं किया है; परन्तु 'चसन्नियोगाद्वा' वार्तिक से उपलक्षण-विधया इकादेशसन्नियोग आगम 'त्' को पूर्वान्त कर देने से कादेशप्रतिषेध नहीं कहना पडेगा; अतः दोनों ही पक्ष निर्दुष्ट हैं।। **श्वसस्तुट् च**।।

सर्वत्राऽण्च तलोपश्च ४.३.२२

*** हेमन्तस्याऽणि तलोपवचनानर्थक्यं, हेम्नः प्रकृत्यन्तरत्वात् * हेमन्तस्याऽणि तलोपवचनमनर्थकम्। किं कारणम्? 'हेम्नः प्रकृत्यन्तरत्वात्'। हेम्नः प्रकृत्यन्तरं हेमन्तशब्दः। आतश्च प्रकृत्यन्तरम्,-एवं ह्याह-'हेमन्हेमन्नागनीगन्तिकर्णौ तस्मादेतौ हेमन्नशुष्यत' इति * अलोपदर्शनाच्च * अलोपः खल्यवि दृश्यतेपङ्क्तिर्हैमन्तीति।**

'हेमन्ताच्च' ४.३.२१ से 'हेमन्तात्' पद की अनुवृत्ति है। सूत्र में 'सर्वत्र' पद से लोक और वेद उभय विवक्षित है।

सूत्रार्थ—'तत्र जातः' इत्यादि अर्थों में हेमन्त पद से अण् प्रत्यय और तलोप हो, चग्रहण से ऋतु अण् ४.३.१६ भी हो'। अण्सन्नियोगतलोप है; अतः ऋतु-अण्-पक्ष में तलोप नहीं होगा। हेमन्ते जातं हैमनं, हैमन्तम्।

हेमन्तशब्द का पर्याय हेमन्शब्द भी है, ऐसा मान कर भाष्यकार प्रकृत सूत्र का खण्डन करते हैं—**हेमन्तस्याणीति**। हेमन्त के अर्थ में ही ऋतुवाची प्रकृत्यन्तर हेमन्शब्द है, उससे 'तत्र साधुः' इत्यादि अर्थों में ऋतु-अण् ४.३.१६ का विधान कर 'हैमनम्' एवं हेमन्त पद से ऋतु-अण् का विधान कर 'हैमन्तम्' ऐसा उभय रूप की सिद्धि हो जायेगी। इसके लिए हेमन्त पद से अण्वचन तथा तलोपवचन व्यर्थ है।

हेमन्त के अर्थ में प्रकृत्यन्तर हेमन्शब्द को उदाहरण से पुष्ट करते हैं-**एवं ह्याहेति**। 'हेमन्हेमन्नागनीगन्तिकर्णौ तस्मादेतौ हेमन्नशुष्यत'। यहाँ 'हेमन्हेमन्' ऐसा सप्तमी-एकवचन है। 'सुपां सुलुक्पूर्वसवर्ण-' ७.१.३९ से छन्दः में ङि का लुक् है। प्रकृतिभाव होने से 'अन्' इस टि का लोप नहीं हुआ; एवं 'न ङिसम्बुध्योः' ८.२.८ से नलोपप्रतिषेध भी है।

हेमन् के प्रकृत्यन्तर होने में अन्य हेतु देते हैं—**अलोप इति**। 'पङ्क्तिर्हैमन्ती' में 'हैमन्त' का अल्लोप है, तलोप नहीं। इससे लगता है कि हेमन्त का पर्याय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हेमन् प्रकृत्यन्तर है। यदि हेमन्त से 'सर्वत्राण्तलोपश्च' से अण् करते तो तलोप होता, अलोप नहीं।

अपर आह- * हेमन्तस्याऽण्वचनमणि च तलोपवचनमनर्थकं हेम्नः प्रकृत्यन्तरत्वात् *** हेमन्तस्याऽण्वचनमणि च तलोपवचनमनर्थकम्। किं कारणम्? 'हेम्नः प्रकृत्यन्तरत्वात्'। प्रकृत्यन्तरं हेमञ्शब्दः। 'अलोपदर्शनाच्चे'त्येव। तत्र ऋतुभ्य इत्येव सिद्धम्।।**

अन्य आचार्य भी सूत्र का प्रत्याख्यान करते हैं-**अपर आहेति**। हेमन्त का पर्याय हेमन् के प्रकृत्यन्तर होने से हेमन्त से अण् प्रत्यय अण्निमित्तक हेमन्त का अवयव तलोप कहना व्यर्थ है। 'हैमनं, हैमन्तं, हैमन्तिकम्' ये तीनों रूप वेद में ही इष्ट हैं। हेमन्शब्द से ऋतु-अण् होने पर 'हैमनम्' हेमन्त से 'हैमन्तम्' तथा 'हेमन्ताच्च' ४.३.२१ से ठक् होने पर 'हैमन्तिकम्' रूप होता है। लोक में हेमन् और हेमन्त से ऋतु-अण् होने पर 'हैमनं, हैमन्तम्' ऐसा रूप सिद्ध हो जायेगा, अतः सूत्र आवश्यक नहीं है।। **सर्वत्राण्-**।।

सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च ४.३.२३

***** चिरपरुत्परारिभ्यस्त्नः *** चिरपरुत्परारिभ्यस्त्नो वक्तव्यः। चिरत्नम्। परुत्नम्। परारित्नम्।**

सूत्रार्थ—'तत्र साधुः' इत्यादि अर्थों में सायम् आदि से ट्यु और ट्युल् प्रत्यय तथा प्रत्यय को तुडागम हो'। सायन्तनं, चिरन्तनं, प्राह्णेतनं, प्रगेतनं, दोषातनम्।

वार्तिककार—**चिरपरुत्परेति**। चिर, परुत् और परारि से त्न प्रत्यय कहना चाहिये। चिरत्नं, परुत्नं, पीररित्नम्। इससे ट्यु और ट्युल् का बाध नहीं है।

***** अग्रादिपश्चाड्डिमच्स्मृतः *** अग्रादिपश्चाड्डिमज्वक्तव्यः। अग्रिमम्। आदिमम्। पश्चिमम् *** प्रगस्यच्छन्दसि गलोपश्च त्नश्च वक्तव्यः *** प्रत्नमात्मानम् *** अन्ताच्च *** अन्ताच्चेति वक्तव्यम्। अन्तिमम्।**

अग्रादीति। अग्र, आदि और पश्च शब्द से डिमच् प्रत्यय कहना चाहिये। डित्वसामर्थ्य से टिलोप हो कर-अग्रिमम्, आदिमम्, पश्चिमम्।। **प्रगस्येति**। वेद में प्रगशब्द से त्न प्रत्यय और गलोप कहना चाहिये-प्रत्नमात्मानम्। **अन्ताच्चेति**। अन्त पद से भी 'तत्र साधुः' अर्थ में डिमच् कहना चाहिये-अन्ते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

साधुरन्तिमम् ।

अथ सायचिरयोः किं निपात्यते? * सायचिरयोर्मकारान्तत्वं प्रत्ययसन्नियुक्तम् *** सायचिरयोर्मकारान्तत्वं प्रत्ययसन्नियोगेन निपात्यते। सायन्तनम्। चिरन्तनम्। नैतदस्ति प्रयोजनं,-मकारान्तः सायंशब्दः।**

पूर्वपक्षी—**अथ सायचिरयोरिति**। साय और चिरशब्द से क्या निपातन कर रहे हैं?

उत्तरपक्षी—**सायचिरयोरिति**। षो अन्तकर्मणि धा.पा.११४७ धातु से भाव में घञ् प्रत्यय कर सायशब्द को तथा अदन्त चिरशब्द को प्रत्ययसन्नियोग से मान्तनिपातन करते हैं-सायन्तनं, चिरन्तनम्।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। सायम् शब्द मान्त है, उसको मान्त निपातन करने से कोई फल नहीं है। यहाँ भाष्यकार ने मान्त सायम् शब्द का ग्रहण कर निपातन के लिए गृहीत साय शब्द का प्रत्याख्यान कर दिया है। अव्यय होने से ही सायम् शब्द से ट्यु, ट्युल् प्रत्यय सिद्ध हो जायेगा। मात्र चिर शब्द का ही मान्त निपातन करना चाहिये था। घञन्त साय शब्द अवसानमात्रवाची है; कालविशेषवाची नहीं; अतः प्रकृत में उसका ग्रहण नहीं होगा।

यदि मकारान्तः कथं सायाह्नः? * सायमोऽह्ने मलोपः *** सायमोऽह्ने मलोपो वक्तव्यः। कथं सायतरे? *** तरे चेति वक्तव्यम् *** कथं सायं साये? *** वा सप्तम्यां चेति वक्तव्यम् *****

अब यहाँ कालविशेवाची सायम् शब्द का ग्रहण होने पर 'सायतरे' इत्यादि में मान्तप्रयोग क्यों नहीं है?, इस आशय से पूर्वपक्षी आचार्य प्रश्न करते हैं-**यदि मकारान्त इति**। यदि मान्त सायम् शब्द है तो 'सायाह्नः' में मवर्ण का श्रवण क्यों नहीं होता है?

उत्तरपक्षी—**सायम इति**। अहन् शब्द पर रहते सायम् शब्द का मलोप है; अतः 'सायाह्नः' में मवर्ण का श्रवण नहीं होता है।

पूर्वपक्षी—**कथं सायतर इति**। 'सायतरे' में मवर्ण का श्रवण क्यों नहीं होता है?

उत्तरपक्षी—**तरे चेति**। 'सायतरे' यह तरबन्त रूप है। तरप्रत्यय पर रहते सायम् के मवर्ण का लोप कहना चाहिये।

प्रश्नभाष्य—**कथमिति**। यदि मान्त सायम् पद है तो 'सायम्, साये' ऐसा रूप होने से अव्यय होने पर 'साये' सप्तम्यन्त रूप कैसे है? यहाँ 'अव्य-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यादाप्सुपः' २.४.८२ से ङिलुक् होना चाहिये?

उत्तरपक्षी—**वा सप्तम्यामिति**। सप्तमीविभक्ति पर रहते सायम् के मवर्ण का लोपविकल्प तथा मलोपपक्ष में अव्ययसंज्ञा का अभाव कहना चाहिये। 'सांये' ऐसा रूपनिर्द्देश होने से भाष्यकारवचन को प्रमाण मान कर मलोपपक्ष सप्तम्यन्तमात्र में अव्ययसंज्ञा का अभाव समझना चाहिये।

अथ प्राह्णप्रगयोः किं निपात्यते? * प्राह्णप्रगयोरेकारान्तत्वम् *** प्राह्णप्रगयोरेकारान्तत्वं निपात्यते। प्राह्णेतनम्। प्रगेतनम्। नैतदस्ति प्रयोजनं सप्तम्या अलुकाऽपि सिद्धम्। भवेत्सिद्धं यदा सप्तमी, यदा त्वन्या विभक्तयस्तदा न सिध्यति *** टुट्युक्तम् *** तुटि चोक्तम्। किमुक्तम्? 'तुट्यादेशानुपपत्तिरनादित्वादि'ति। तुटि कृतेऽनादित्वादादेशो न प्राप्नोति। एवन्तर्हि पूर्वान्तः करिष्यते *** पूर्वान्ते विसर्जनीयः *** यदि पूर्वान्तः,-विसर्जनीयो वक्तव्यः। प्रातस्तनं, पुनस्तनम्। परादौ पुनः सति 'खरवसानयोर्विसर्जनीय' इति विसर्जनीयः सिद्धो भवति।**

पूर्वपक्षी—**अथेति**। प्राह्ण और प्रग पद में क्या निपातित है?

उत्तरपक्षी—**प्राह्णप्रगयोरिति**। 'प्राह्णेतनं, प्रगेतनम्' ऐसा प्राह्ण और प्रग में एदन्तत्व निपातन है।

अन्य आचार्य—**नैतदस्तीति**। यहाँ एदन्तत्वनिपातन प्रयोजन नहीं बन सकता है। 'घकालतनेषु कालनाम्नः' ६.३.१७ के द्वारा यहाँ सप्तमी का अलुक् कर देने पर भी 'प्राह्णेतनं, प्रगेतनम्' रूप हो जायेगा।

उत्तरपक्षी—**भवेत्सिद्धमिति**। यदि सप्तम्यन्त-एकवचन में विग्रह करेंगे तो सप्तमी का अलुक् होने से उक्त रूप सिद्ध हो जायेगा; परन्तु यदि अन्य विभक्त्यन्त 'प्राह्णः सोढोऽस्येति' विग्रह वाक्य होगा तब अलुक् के द्वारा उक्त रूप की असिद्धि होगी; अतः वहाँ निपातन ही शरण होगा। अब यहाँ सन्देह होता है कि 'युवोरनाकौ' ७.१.१ सूत्र अङ्गाधिकारीय है। अङ्ग से अव्यवहित-परत्वविशिष्ट 'यु, वु' को ही 'अन, अक' आदेश होगा, व्यवहित को नहीं। ट्यु और ट्युल् को तुडागम कर देने पर अङ्ग से व्यवहित 'यु' मिल रहा है; उसको अनादेश प्राप्त नहीं हो सकेगा। इस आपत्ति को उद्धृत करते हैं-**तुट्युक्तमिति**। तुडागम होने पर अनादि होने से 'प्राह्णेतनम्' इत्यादि में यु को अनादेश प्राप्त नहीं है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इतर आचार्य—**एवन्तर्हीति**। यदि परादि करने में अनादेश अप्राप्त हो रहा है तो **पूर्वान्तः**=प्रकृतिभाग का अन्तावयव ही तुट् को रखिये। यदि तुगागम-विधान कर प्रकृति का अन्तावयव करेंगे तो अपदान्त होने से 'प्रातस्तनं, पुनस्तनम्' में पदान्त रेफ को विधीयमान विसर्ग प्राप्त नहीं हो सकेगा; अतः आप को उक्त स्थल में विसर्गविधान करना होगा। यदि आगम 'त्' को प्रत्यय का आद्यवयव करते हैं तो खर् के द्वारा 'त्' का ग्रहण होने से खर्निमित्तक 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' ८.३.१५ से विसर्ग हो जायेगा।

अस्तु तर्हि परादिः। ननु चोक्तं-'तुटि कृतेऽनादित्वादादेशो न प्राप्नोती'ति * सिद्धं त्वादिष्टस्य तुड्वचनात् * सिद्धमेतत्। कथम्? 'आदिष्टस्य तुड्वचनात्'। तुडादिष्टस्येति वक्तव्यम्। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम् * चसन्नियोगाद्वा * अथ वा चेन सन्नियोगः करिष्यते-तुट् च। किं च? यच्चान्यत् प्राप्नोति। किं चान्यत्-प्राप्नोति? आदेशः।। सायंचिरं-।।

उत्तरपक्षी आचार्य 'त्' को परादिपक्ष में प्राप्त दोष का निवारण करते हैं-**अस्तु तर्हीति**। आप तुट् को परादि ही रखिये। परादिपक्ष में अनादेश की आपत्ति दिखायी थी, वह नहीं रहेगी। हम 'यु' को 'अन' आदेश होने पर आदिष्ट अन को तुड्विधान करेंगे।

अन्य आचार्य—**तत्तर्हीति**। तो क्या 'प्राह्णेतनम्' इत्यादि में आदिष्ट को तुड्विधान करने के लिए 'आदिष्टस्य तुड्वचनम्' ऐसा पृथग्वचन पढना पडेगा?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। इसके लिए पृथग्वचन पढने की आवश्यकता नहीं है। 'सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च' ४.२.२३ सूत्र में आचार्य ने 'तुट् च' ऐसा कहा है। 'च' पद का सन्नियोग होने से आदिष्ट को तुडागम होगा। 'च' पद के द्वारा अन्य प्राप्ति का भी समुच्चय करेंगे। अन्य प्राप्ति 'यु' को 'अन' आदेश है; वह भी हो तथा आदिष्ट 'अन' को तुडागम हो। इसी तरह पूर्वान्तपक्ष में भी 'च' के द्वारा अन्य आदेश का भी समुच्चय करना चाहिये। 'प्रातस्तनम्' में प्रकृति को तुगागम हो तथा जो अन्य आदेश रेफ को विसर्ग प्राप्त है, वह भी हो। इससे विसर्ग को ही तुगागम होने से 'पुनस्तनम्' इत्यादि में विसर्ग का अप्राप्तिरूप दोष नहीं है।। सायंचिरं-।।

विभाषा पूर्वाह्णापराह्णाभ्याम् ४.३.२४

*** पूर्वाह्णापराह्णाभ्यां सुबन्तवचनं सप्तमीश्रवणार्थम् * पूर्वाह्णा-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पराह्णाभ्यां सुबन्तत्वं वक्तव्यम्। किं प्रयोजनम्? 'सप्तमीश्रवणार्थम्'। सप्तम्याः श्रवणं यथा स्यात्-पूर्वाह्णेतनम्। अपराह्णेतनम्। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति'भवत्यत्र सप्तमी'ति,- यदयं 'घकालतनेषु कालनाम्न' अति सप्तम्या अलुकं शास्ति।

सूत्रार्थ—'तत्र जातः' इत्यादि अर्थों में पूर्वाह्ण और अपराह्ण पद से ट्यु और ट्युल् प्रत्यय विकल्प से कहना चाहिये'।

एकदेशी—**पूर्वाह्णापराह्णाभ्यामिति**। सप्तम्यन्त का श्रवण हो सके इसके लिए पूर्वाह्ण और अपराह्ण में सुबनत का ग्रहण करना चाहिये। अर्थात् प्रत्यय पूर्वाह्ण और अपराह्ण से न हो कर सप्तम्यन्त 'पूर्वाह्णे' और 'अपराह्णे' से होगा। इससे 'पूर्वाह्णेतनम्, अपराह्णेतनम्' में सप्तमी का श्रवण हो सकेगा।

अन्य आचार्य—**तत्तर्हीति**। तो क्या 'पूर्वाह्णेतनम्' इत्यादि में सप्तमीश्रवणार्थ सुबन्तवचन कहना चाहिये?

उत्तरपक्षी—**न वक्तव्यमिति**। 'घकालतनेषु कालनाम्नः' ६.३.१७ से आचार्य ने सप्तमी का अलुक् कहा है। यदि सप्तम्यन्त से प्रत्यय विहित नहीं होगा तो सप्तमी का अलुक् व्यर्थ पड जायेगा; अतः यहाँ सप्तम्यन्त से ही प्रत्यय होने से उक्त वार्तिक व्यर्थ है।

*** अलुग्वचनं ज्ञापकमिति चेदव्ययात्सप्तमीप्रसङ्गः * 'अलुग्वचनं ज्ञापक'मिति चेदव्ययात् सप्तमी प्राप्नोति। दोषातनं दिवातनम्। अस्तु अव्ययादिति लुग्भविष्यति। इहापि तर्हि लुक्प्राप्नोति- पूर्वाह्णेतनम्। अपराह्णेतनम्। अलुगत्र लुकं बाधिष्यते। इहापि तर्हि बाधेत-दोषातनम्। दिवातनम्। समानाश्रयो लुगलुका बाध्यते। कश्च समानाश्रयः? यश्च प्रत्ययाश्रयः। अत्र च प्रागेव प्रत्ययो- त्पत्तेर्लुग्भवति। न सिध्यति-इह हि सति प्रत्यये लुका भवितव्यम्। सति लुक्यलुका भवितव्यम्। तत्र च प्रत्यय एव नास्ति कुतो लुग्भविष्यति। सैषा ज्ञापकेनाऽसती विभक्तिराकृष्यते। सा यथैवेह बाधिका भवति-पूर्वाह्णेतनम्। अपराह्णेतनमिति,- एवमिहापि स्याद्-दोषातनं दिवातनमिति।**

अन्य आचार्य—**अलुग्वचनमिति**। यदि 'घकालतनेषु कालनाम्नः' ६.३. १७ सूत्र व्यर्थ पड कर 'भवत्यत्र सप्तमी' का ज्ञापन करेगा तो 'दोषातनम्' इत्यादि में अव्यय पद से पर में सप्तमीश्रवण की अतिव्याप्ति होगी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरपक्षी—**अस्त्विति**। 'दिवातनम्' इत्यादि में 'अव्ययादाप्सुपः' २.४.८२ से सुब्लुक् कर देंगे; इससे अव्ययपद से पर में सप्तमीश्रवण की आपत्ति निरस्त हो जायेगी।

आक्षेपक आचार्य—**इहापि तर्हीति**। यदि अव्यय से पर में सप्तमी का अलुक् कहेंगे तो 'पूर्वाह्णेतनम्, अपराह्णेतनम्' में भी 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' २.४.७१ से सप्तमी का लुक् प्राप्त है, उसका भी श्रवण नहीं होना चाहिये?

उत्तरपक्षी—**अलुगत्रेति**। 'पूर्वाह्णेतनम्' इत्यादि में 'सुपो धातु-' २.४.७१ इस सामान्यशास्त्र से सुब्लुक् प्राप्त है, तथा 'घकालतनेषु-'६.३.१७ इस विशेष-शास्त्र से सप्तमी का अलुक् प्राप्त है। विशेष से सामान्य का बाध होता है; अतः विशेषशास्त्र से विहित अलुक् के द्वारा सामान्य का बाध होने से उक्त स्थल में सप्तमी का अलुक् होगा।

आक्षेपक आचार्य—**इहापीति**। यदि उक्तस्थल में विशेषविधि अलुक् के द्वारा सामान्यविधि लुक् का बाध है तो 'दोषातनं, दिवातनम्' में भी विशेष अलुक् के द्वारा सामान्यविधि 'अव्ययादाप्सुपः' २.४.८२ का बाध होना चाहिये। यहाँ लुक् और अलुक् समान आश्रय में प्रवृत्त हैं; अतः अलुक् के द्वारा लुक् का बाध होना चाहिये।

इतर आचार्य—**कश्चेति**। यहाँ समानाश्रय क्या है?

आक्षेपक—**यश्चेति**। प्रत्यय को आश्रय मान कर लुक् और अलुक् दोनों प्राप्त हो रहे हैं। यहाँ दोनों का आश्रय प्रत्यय ही है; अतः लुक् और अलुक् दोनों ही प्रत्ययाश्रय होने से समानाश्रय हैं।

उत्तरपक्षी—**अत्र चेति**। 'अव्ययादाप्सुपः' २.४.८२ सूत्र में अव्ययमात्र की अपेक्षा अन्तरङ्ग होने से लुक् हो जायेगा' अतः 'दोषातनं, दिवातनम्' में तद्धितप्रत्यय उत्पन्न होने से पूर्व ही अव्यय से पर में विहित सप्तमी का लुक् हो जाता है; तन्निमित्तक अलुक् की आपत्ति नहीं दी जा सकती है।

अन्य आचार्य इसका खण्डन करते हैं—**न सिध्यतीति**। 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ सूत्र का अधिकार कर तद्धित का विधान होने से प्रातिपदिक से तद्धित प्रत्यय की उत्पत्ति होगी। 'घकालतनेषु कालनाम्नः' ६.३.१७ सूत्र में आचार्य ने विभक्ति का अलुग्विधान किया है; अतः ज्ञापक के द्वारा प्रातिपदिक से विभक्ति होती है, यह पक्ष आया। यहाँ तद्धितप्रत्यय उत्पन्न होने पर ही विभक्ति होगी, उससे पूर्व नहीं। इसके बाद 'अव्ययादाप्सुपः' २.४.८२ से होने वाला सुब्लुक् तद्धितोत्पत्ति के उत्तरकालभावी होने से सुप्स्थानिक होगा, एवं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तद्धितोत्पत्ति के उत्तरकालभावी सुप् का ही अलुक् कहा जा रहा है। यहाँ लुक् और अलुक् दोनों ही समानाश्रयी हैं; अतः 'दोषातनम्' इत्यादि में अलुक् से लुक् का बाध प्राप्त है।

पूर्वपक्षी—**तत्र चेति**। 'दोषातनं, दिवातनम्' में तद्धितोत्पत्ति से पूर्व सुप्संज्ञक प्रत्यय नहीं है; फिर 'अव्ययादाप्सुपः' २.४.८२ से उसका लुक् कैसे होगा?

अन्य आचार्य—**सैषा ज्ञापकेनेति**। तद्धितोत्पत्ति से पूर्व अप्राप्त सुप्संज्ञक विभक्ति भी 'घकालतनेषु कालनाम्नः' ६.३.१७ इस ज्ञापन के द्वारा तद्धितोत्पत्ति से पूर्व न होती हुई भी सुप् विभक्ति का हम प्रातिपदिक से पर में आकर्षण करेंगे। उस विभक्ति का जैसे 'पूर्वाह्णेतनम्, अपराह्णेतनम्' में अलुक् होता है वैसे 'दोषातनं, दिवातनम्' में भी सप्तमी का अलुक् होगा।

एवन्तर्हि न ब्रूमः-'अलुग्वचनं ज्ञापकं भवत्यत्र सप्तमी'ति। किं तर्हि? 'भवति सुबन्तादुत्पत्ति'रिति।

उत्तरपक्षी—**न ब्रूम इति**। हम यह नहीं कहते हैं कि 'भवत्यत्र सप्तमी'पक्ष का ज्ञापक नहीं है; अपि तु उक्त 'घकालतनेषु कालनाम्नः' ६.३.१७ से 'सुबन्त से तद्धितोत्पत्ति होती है' यह ज्ञापन करेंगे।

किम्पुनर्ज्ञाप्यमेतद्यावता समर्थानां प्रथमादिति वर्त्तते, सामर्थ्यं च सुबन्तेन। ज्ञाप्यमित्याह। कथम्? 'ङ्याप्प्रातिपदिकादि'त्यपि वर्त्तते। तत्र कुत एतत्सुबन्तात् समर्थादुत्पत्तिर्भविष्यति, न पुनर्ङ्याप्प्रातिपदिकादिति?

पूर्वपक्षी आचार्य—**किम्पुनरिति**। क्या 'सुबन्त से तद्धितोत्पत्ति होती है' यह पक्ष ज्ञापन से लेना चाहिये; अथ वा 'समर्थानां प्रथमाद्वा' ४.१.८२ सूत्र का अधिकार कर आचार्य तद्धितविधान करते हैं। सुबन्त के द्वारा सामर्थ्य लेने से सुबन्त से तद्धितोत्पत्तिपक्ष लेना चाहिये?, यहाँ क्या पक्ष उचित है?

उत्तरपक्षी—**ज्ञाप्यमिति**। 'सुबन्त से तद्धितोत्पत्ति होती है' यही पक्ष ज्ञापन से लेना चाहिये।

अन्य आचार्य—**कथमिति**। ज्ञापन से उक्त अर्थ क्यों लिया जाये?

उत्तरपक्षी—**ङ्याप्प्रातिपदिकादिति**। 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ सूत्र का अधिकार आता है। इससे ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिक से ही प्रत्ययविधि प्राप्त होगा। 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ का 'समर्थानां प्रथमाद्वा' ४.१.८२ सूत्र में अन्वय करेंगे। इससे ङ्यन्तसमर्थ, आबन्तसमर्थ और प्रातिपदिकसमर्थ से ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तद्धितोत्पत्ति होने से 'सौत्थितिः' इस इष्टरूप के स्थान पर 'सावुत्थितिः' ऐसा अनिष्टरूप न हो, इसके लिए कृतसन्धिकार्यत्वरूप प्रातिपदिक से ही तद्धितोत्पत्ति प्राप्त होने से सुबन्त से सामर्थ्य नहीं लिया जा सकता है; अतः 'भवति सुबन्तादुत्पत्तिः' पक्ष को ज्ञापन से ही लेना चाहिये। **तत्र कुत इति**। 'ङ्याप्रातिपदिकात्' ४.१.१ का 'समर्थानां प्रथमाद्वा' ४.१.८२ में अनुवृत्ति कर ङ्यन्तसमर्थ, आबन्तसमर्थ और प्रातिपदिकसमर्थ से भी प्रत्ययविधान प्राप्त है, तथा सुबन्तसामर्थ्य से भी प्रत्ययविधान प्राप्त है। फिर ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिकरूप सामर्थ्य से प्रत्ययविधि के नहीं होने में कोई राजाज्ञा नहीं होनें से उसी से प्रत्ययविधान करेंगे; तथा 'घकालतनेषु कालनाम्नः' ६.३.१७ के द्वारा ज्ञापन करके सुबन्त से प्रत्ययविधान करेंगे।

कथं यत्तदुक्तं-'वृद्धावृद्धाववर्णस्वरङ्ग्यञ्लक्षणे च प्रत्ययविधौ तत्सम्प्रत्ययार्थम्' इति? समर्थस्य यद्वृद्धं ङ्याप्प्रातिपदिकमित्येवमेतद्विज्ञायते। यद्येतज्ज्ञाप्येत-कथं द्विपद आगतं द्विपाद्रूप्यम्, प्रष्ठौह आगतं प्रष्ठवाड्रूप्यम्, कीलालप आगतं कीलालपारूप्यम्, पपुष आगतं पपिवद्रूप्यम्। पद्भाव ऊठ् आकारलोपः सम्प्रसारणमित्येते विधयः प्राप्नुवन्ति। लुकि कृते न भविष्यन्ति। इह तर्हि-सामसु साधुः सामन्यः वेमन्यः-'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्ये'ति नलोपः प्राप्नोति। लुकि कृते भत्वान्न भविष्यति।

आक्षेपक आचार्य—**कथमिति**। यदि 'घकालतनेषु कालनाम्नः' ६.३.१७ से विहित अलुग्विधान के द्वारा समर्थ के प्रकृतित्व का अनुमान करेंगे तो 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ अधिकार का वृद्धादिविशेषण से 'वृद्धावृद्धाववर्णस्वरङ्ग्यञ्लक्षणे च प्रत्ययविधौ तत्सम्प्रत्ययार्थम्' ऐसा ङ्याप्प्रातिपदिक का प्रकृतित्वप्रतिपादनपरक प्रयोजन कहा है, उससे विरोध क्यों नहीं होता है?

उत्तरपक्षी आचार्य विरोध का परिहार करते हैं-**समर्थस्येति**। यहाँ 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ का अधिकार कर वृद्धादि के साथ विशेषित करेंगे-'समर्थ का जो वृद्ध ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिक' ऐसा अर्थ करेंगे। अर्थात् 'प्रत्ययप्रकृत्वेन आश्रित समर्थविभक्त्यन्त का अवयवभूत जो ङ्याप्प्रातिपदिक वृद्धादि यदि हों तो तादृशसमर्थ से ही प्रत्ययोत्पत्ति होती है' ऐसा कहने से पूर्वोक्त विरोध का परिहार हो जायेगा।

उत्तरपक्षी के विरोधपरिहार पर आक्षेपक आचार्य—**यद्येतदिति**। यदि अनुवृत्त 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ को वृद्धादि का विशेषण मानेंगे तो 'द्विपद आगतं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्विपादरूप्यं, प्रष्ठौह आगतं प्रष्ठवाड्रूप्यं, कीलालप आगतं कीलालपारूप्यं, पपुष आगतं पपिवद्रूप्यम्' यहाँ सर्वत्र 'हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः' ४.३.८१ से रूप्य प्रत्यय है। विभक्त्यन्त से प्रत्ययोत्पत्तिपक्ष मानने पर अन्तरङ्ग होने से उक्त स्थलों में विभक्तिनिमित्तक-कार्य 'पादः पद्' से पाद्शब्द को पद्भाव, 'वाह ऊठ्' ६.४.१३२ से ऊठ्भाव, 'आतो धातोः' ६.४.१४० से आकारलोप, एवं 'वसोः सम्प्रसारणम्' ६.४.१३३ से सम्प्रसारण होते हैं। प्रत्यय का लुक् कर देने पर यहाँ 'पाद्' का 'पद्'भाव, 'वाह्' को 'ऊठ्' आल्लोप और सम्प्रसारण प्राप्त नहीं है। विभक्त्यन्त से प्रत्ययोत्पत्तिपक्ष में उक्त कार्य सम्भव है। प्रातिपदिक से प्रत्ययोत्पत्तिपक्ष में पाद् आदि को पद् आदि आदेश नहीं हो सकेंगे, यह प्रश्न है।

अन्य आचार्य सुबन्त से प्रत्ययोत्पत्तिपक्ष में अतिव्याप्ति दे रहे हैं-**इह तर्हीति**। सुबन्त से प्रत्ययोत्पत्तिपक्ष में 'द्विपद आगतं द्विपादरूप्यम्' इत्यादि की सिद्धि हो रही है, परन्तु इस पक्ष में 'सामसु साधुः सामन्य, वेमसु साधुर्वेमन्य' में पदान्त 'न्' का 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' ८.२.७ से लोप की आपत्ति होगी।

उत्तरपक्षी—**लुकि कृत इति**। विभक्त्यन्त से प्रत्ययोत्पत्ति होने पर 'सामन्+सुप्+यत्, वेमन्+सुप्+यत्' इस स्थिति में सुप् का लुक् होने पर पदसंज्ञा और भसंज्ञा दोनों प्राप्त हैं। कृताकृतप्रसंग से पदसंज्ञा की अपेक्षा भसंज्ञा नित्य है; अतः भसंज्ञा से पदसंज्ञा का बाध हो जायेगा। इस तरह पदान्त 'न' वर्ण नहीं होने से नलोप नहीं होगा।

इदमिह सम्प्रधार्यं लुक्क्रियतां नलोप इति,-किमत्र कर्त्तव्यम्? परत्वान्नलोपः। एवन्तर्हीदमिह सम्प्रधार्यं-'नलोपः क्रियतां तद्धितोत्पत्ति'रिति,-किमत्र कर्त्तव्यम्? परत्वान्नलोपः। असिद्धो नलोपस्तस्याऽसिद्धत्वात् तद्धितोत्पत्तिर्भविष्यति। परिगणितेषु कार्येषु नलोपोऽसिद्धो न चेदं तत्र परिगण्यते। इदमपि तत्र परिगण्यते। कथम्? सुब्विधिरिति सर्वविभक्त्यन्तः समासः-सुपो विधिः सुब्विधिः। सुबन्ताद्विधिः सुब्विधिरिति।। विभाषा पूर्वाह्णापराह्णाभ्याम्।।

अन्य आचार्य—**इदमिहेति**। 'सामन्+सुप्' इस परिस्थिति में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' २.४.७१ से सुब्लुक् तथा 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' ८.२.७ यह दोनों ही विधि प्राप्त है। यहाँ सुब्लुक् किया जाये, अथ वा नलोप किया जाये?, क्या करना चाहिये?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इतर आचार्य—**परत्वादिति**। सुब्लुक् की अपेक्षा नलोपविधि पर है; अतः परत्वात् सुब्लुक् को बाध कर नलोप ही होगा।

अन्य आचार्य—**एवन्तर्हीति**। 'सामन्+सुप्' 'वेमन्+सुप्' इस परिस्थिति में नलोप और तद्धितोत्पत्ति दोनों प्राप्त हैं; यहाँ क्या करना चाहिये? प्रत्ययलक्षण के द्वारा नलोप को नित्य मान कर यह प्रश्न है।

इतर आचार्य—**परत्वादिति**। पर होने से नलोप होगा। 'यस्य लक्षणान्तरेण निमित्तं विहन्यते, न तदनित्यम्' इस न्याय से नलोप नित्य है। लुक् और नलोप दोनों के नित्य होने से परविप्रतिषेध के द्वारा नलोप से लुक् का बाध हो जाता हो जायेगा। 'अन्तरङ्गानपि विधीन् बहिरङ्गो लुग्बाधते' इस न्याय का अनादर कर भाष्यकार ने 'परत्वान्नलोपः' कहा है। यहाँ इसी पक्ष का आश्रय करना चाहिये; अन्यथा लुक् की अपेक्षा अन्तरङ्ग होने से 'पादः पद्' ६.४.१३० इत्यादि के द्वारा विहित पद्भाव इत्यादि नित्य लुक् का भी बाध करने लगेंगे। 'परत्वान्नलोपः' विषय को स्पष्ट करने वाला 'परनित्यान्तरङ्गप्रतिपदविधयो विरोधि-सन्निपाते परबलीयस्त्वम्' न्याय भी है। विरोधिसन्निपाते=परनित्यान्तरङ्गप्रतिपदविधीनां मिथः प्रसङ्गे परबलीयस्त्वम्' ऐसा अर्थ है।

अन्य आचार्य—**असिद्ध इति**। सपादसप्ताध्यायी की दृष्टि में त्रिपादी के असिद्ध होने से तद्धितोत्पत्ति की कर्त्तव्यता में 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' ८. २.७ असिद्ध हो जायेगा। इस तरह नान्त 'सामन्' और 'वेमन्' से तद्धितोत्पत्ति हो कर 'सामन्यः, वेमन्यः' रूप ही होगा।

इतर आचार्य—**परिगणितेष्विति**। 'नलोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति' ८. २.२, यह परिगणन है। इन्हीं की कर्त्तव्यता में नलोप असिद्ध होता है, अन्यत्र नहीं। जिन परिगणितों में नलोप असिद्ध होता है, उनमें इनका परिगणन नहीं है; अतः यह नलोप असिद्ध नहीं हो सकेगा।

अन्य आचार्य—**इदमपीति**। **इदमपि**=परिगणन में तद्धितोत्पत्ति भी है; अतः तद्धितोत्पत्ति की कर्त्तव्यता में नलोप असिद्ध होगा।

इतर आचार्य—**कथमिति**। 'तद्धितोत्पत्ति की कर्त्तव्यता में नलोप असिद्ध हो' यह कैसे परिगणित है?

अन्य आचार्य—**सुब्विधिरिति**। सुब्विधि की कर्त्तव्यता में नलोप को असिद्ध कहा गया है। 'सुब्विधिः' में सर्वविभक्त्यन्तसमास है। यहाँ 'सुपो विधिः सुब्विधिः' यह पञ्चम्यन्तसमास भी है। सुप्प्रत्यय का ग्रहण होने से तदन्त का ग्रहण होगा-'सुबन्ताद्विधिः सुब्विधिः'। इस तरह सुबन्त से विहित होने के कारण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तद्धित भी सुब्विधि है, उसकी कर्त्तव्यता में नलोप असिद्ध होगा। तद्धितोत्पत्ति होने पर भसंज्ञा से पदसंज्ञा का बाध होने से पुनः नलोप नहीं हो सकेगा; अतः 'सामन्यः, वेमन्यः' यही रूप रहेगा।। **विभाषा-**।।

तत्र जातः ४.३.२५

किमर्थं जातादयोऽर्था निर्द्दिश्यन्ते? जातादिष्वर्थेषु घादयो यथा स्युः, स्वार्थे मा भूवन्निति। नैतदस्ति प्रयोजनं-शेष इति वर्त्तते, तेन स्वार्थे न भविष्यन्ति।

सूत्रार्थ—'सप्तम्यन्तसुबन्त प्रातिपदिक से 'जातः'अर्थ में प्रत्यय हों'। जैसे-स्रुघ्ने जातः स्रौघ्नः।

पूर्वपक्षी—**किमर्थमिति**। 'तत्र जातः, तत्र भवः' इत्यादि अर्थों का निर्द्देश क्यों करते हैं?

उत्तरपक्षी—**जातादिष्विति**। 'राष्ट्रावारपाराद् घखौ' ४.२.६३ इत्यादि से विहित घ आदि प्रत्यय 'तत्र जातः' इत्यादि अर्थों में ही हों, इसके लिए अर्थनिर्द्देश है। जिन प्रत्ययों का अर्थनिर्द्देश नहीं है वे स्वार्थ में होते हैं। यदि जातादि अर्थों का निर्द्देश नहीं करते तो अनिर्द्दिष्ट होने से वे स्वार्थ में ही होते; जातादि अर्थों में हों, इसके लिए अर्थनिर्द्देश है।

अन्य आचार्य—**नैतदस्तीति**। जातादि अर्थनिर्द्देश का यह फल नहीं है। अपत्यादिचतुरर्थ्यन्त अर्थों में प्रत्यय कह कर आचार्य ने 'शेषे' ४.२.६२ सूत्र कहा है। इससे उक्त से अन्य अर्थ-जातादि में प्रत्ययविधान स्वतः सिद्ध हो जाने से 'तत्र जातः' इत्यादि अर्थनिर्द्देश व्यर्थ है। एवं 'शेषे'निर्द्देश करने से घादिप्रत्यय स्वार्थ में न हो कर शेषार्थ में ही होंगे।

अत उत्तरं पठति- * तत्रजातादिषु वचनं नियमार्थम् * नियमार्थोऽयमारम्भः-जातादिष्वेव घादयो यथा स्युरिह मा भूवँ'स्तत्राऽऽस्ते तत्र शेत' इति। यदि नियमः क्रियते-दार्षदाः सक्तवः, औलूखलो यावक इति न सिध्यति? 'संस्कृत'मित्येव भविष्यति। भवेत्सिद्धं दार्षदाः सक्तव इति, इदन्तु न सिध्यति-औलूखलो यावक इति। संस्कृतं नाम तद्भवति यत्तत एवाऽपकृष्याऽभ्यवह्रियते, न च यावक उलूखलादेवाऽपकृष्याऽभ्यवह्रियते, अवश्यं रन्धादीनि प्रतीक्ष्याणि; तस्मान्नार्थोऽनेन नियमेन।

अब इसका उत्तरपक्ष कहते हैं—'जातादि अर्थों में ही घ आदि प्रत्यय हों,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उससे भिन्न 'तत्र आस्ते, तत्र शेते' इत्यादि अर्थों में सप्तम्यन्तसुबन्त प्रातिपदिक से न हों' इस नियम के लिए 'तत्र जातः' इत्यादि सूत्रों का निर्द्देश है।

अन्य आचार्य नियमपक्ष की अतिव्याप्ति दिखाते हैं—**यदि नियम इति**। यदि उक्त सूत्र नियमार्थक है तो 'दृषदि पिष्टा दार्षदाः सक्तवः, उलूखले क्षुण्ण औलूखलो यावकः' में 'तत्र पिष्टस्तत्र क्षुण्णः' इत्यादि अर्थों का निर्द्देश नहीं होने से उस अर्थ में सप्तम्यन्तप्रातिपदिक से प्रत्यय की अप्राप्ति होगी। फलतः 'दार्षदाः, औलूखलः' की असिद्धि होने से नियम की अव्याप्ति होगी।

उत्तरपक्षी—**संस्कृतमिति**। 'संस्कृतम्' ४.४.३ अर्थ में प्रत्ययविधान है।

अन्य आचार्य—**भवेत्सिद्धमिति**। उपयोगफला क्रिया ही संस्कारपदवाच्या है। दृषद् में पिष्ट वस्तु का सीधे-सीधे उपयोग होता है; अतः 'दार्षदाः सक्तवः' में प्रत्ययोत्पत्ति हो जायेगी। परन्तु 'औलूखलो यावकः' में उलूखल में क्षुण्ण यव का रन्धन के विना उपयोग नहीं होता है; अतः अव्याप्ति होने से पूर्वोक्त नियम नहीं किया जा सकता है।

कस्मान्न भवति-तत्रास्ते तत्र शेत इति? अनभिधानात्। तच्चावश्यमनभिधानमाश्रयितव्यम्। क्रियमाणेष्वपि ह्यर्थनिर्द्देशेषु यत्र जातादिषूत्पद्यमानेन प्रत्ययेनाऽर्थस्याऽभिधानं न भवति, तत्र प्रत्ययोत्पत्तिर्न भवति। तद्यथा-अङ्गुल्या खनति, वृक्षमूलादागत इति।

इतर आचार्य—**कस्मान्नेति**। यदि नियम नहीं मानेंगे तो 'तत्राऽऽस्ते, तत्र शेते' इस अर्थ में सप्तम्यन्त प्रातिपदिक से तद्धित क्यों नहीं होता है?

उत्तरपक्षी—**अनभिधानादिति**। शब्द, अर्थ और शब्दार्थसम्बन्ध, ये तीनों नित्य हैं। इन्हीं को मान कर प्रकृत व्याकरण प्रस्तुत है; यह पस्पशाह्नि के 'सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे' वार्तिक पर कह आये हैं। 'तत्राऽऽस्ते, तत्र शेते' इस अर्थ में तद्धितान्त के कहीं भी शक्त नहीं होने से इन अर्थों में तद्धितप्रत्ययों का विधान नहीं है; अतः इन अर्थों में प्रत्यय नहीं हैं। एवं प्रत्ययविधानपक्ष में अनभिधानपक्ष का अवश्य आश्रय लेना चाहिये। इससे 'तत्र जातः' इत्यादि अर्थों में होने वाले प्रत्यय के द्वारा जहाँ पर अर्थ का कथन नहीं हो पा रहा है, वहाँ पर जातादि अर्थों में अनभिधान होने से प्रत्ययोत्पत्ति भी नहीं होगी। जैसे-'अङ्गुल्या खनति' में अनभिधान होने से तृतीयान्त प्रातिपदिक अङ्गुलि से 'तेन दीव्यति खनति जयति जितम्' ४.४.२ से प्रत्यय नहीं होता है। एवम् अनभिधान होने से ही 'वृक्षमूलादागतम्' में 'तत आगतः' ४.३.७४ से तद्धितोत्पत्ति नहीं है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न तर्हीदानीं जातादयोऽर्था निर्द्देष्टव्याः? निर्द्देष्टव्याश्च। किं प्रयोजनम्? अपवादविधानार्थम्। प्रावृषष्ठप्,-प्रावृषि जातः प्रावृषिकः। क्व मा भूत्? प्रावृषि भवाः प्रावृषेण्या बलाहका इति। यानि त्वेतानि निरपवादान्यर्थादेशनानि तानि शक्यान्यकर्त्तुं-'कृतलब्ध-क्रीतकुशलाः'- स्रौघ्नो देवदत्त इति।। तत्र जातः।।

अन्य आचार्य—**न तर्हीदानीमिति**। अर्थनिर्द्देश करने पर भी अनभिधानात् यदि यहाँ प्रत्यय का अभाव है तो अभिधान होने से ही तत्तद् अर्थों में प्रत्ययविधान भी हो जायेगा; फिर इसके लिए जातादि अर्थनिर्द्देश व्यर्थ हैं।

उत्तरपक्षी—**निर्द्देष्टव्या इति**। अपवादविधानार्थ जातादि अर्थों का निर्द्देश अवश्य करना चाहिये। जैसे-'प्रावृषि जातः प्रावृषिकः' में 'प्रावृषष्ठप्' ४.३.२६ से ठप्प्रत्यय हो। 'प्रवृषि भवाः' इस अर्थ में सप्तम्यन्तप्रातिपदिक प्रवृष् से ठप् न हो कर तदपवाद 'प्रावृष एण्यः' ४.३.१७ से एण्यप्रत्यय हो, इसके लिए जातादि अर्थों का निर्द्देश करना चाहिये। परन्तु जिन अर्थों का अपवाद अर्थ में प्रत्ययविधान नहीं है, उनका निर्द्देश व्यर्थ है। जैसे-'कृतलब्धक्रीतकुशलाः' ४.३.३८ 'स्रुघ्ने लब्धः स्रौघ्नो देवदत्तः'।। **तत्र जातः।।**

श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधास्वातितिष्यपुनर्वसुहस्त-विशाखाषाढाबहुलाल्लुक् ४.३.३४.

* लुक्प्रकरणे चित्रारेवतीरोहिणीभ्यः स्त्रियाम् उपसंख्यानम् * **लुक्प्रकरणे चित्रारेवतीरोहिणीभ्यः स्त्रियामुपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। चित्रा-चित्रायां जाता चित्रा स्त्री। चित्रा। रेवती-रेवती स्त्री। रेवती। रोहिणी-रोहिणी स्त्री।**

सूत्रार्थ—'श्रविष्ठा आदि नक्षत्रवाची से पर में जातार्थ प्रत्यय का लुक् हो'। जैसे-'श्रविष्ठासु जातः श्रविष्ठः, फल्गुन्यां जातः फल्गुनः'। यहाँ तद्धितलुक् होने पर 'लुक्तद्धितलुकि' १.२.४९ से उपसर्जनस्त्रीप्रत्यय का लुक् है। इसी तरह 'अनुराधः, स्वातिः, तिष्यः, पुनर्वसुः, हस्तः, विशाखः, आषाढः, बहुलः' रूप भी होगा।

सिद्धान्त वार्तिक—**लुक्प्रकरण इति**। चित्रा, रेवती और रोहिणी से पर में स्त्रीरूप जातार्थक प्रत्यय का लुक् कहना चाहिये। जैसे-'चित्रायां जाता चित्रा स्त्री, रेवत्यां जाता रेवती स्त्री, रोहिण्यां जाता रोहिणी स्त्री'। यहाँ रेवती और रोहिणी से विहित अण्प्रत्यय का 'लुक्तद्धितलुकि' १.२.४९ से लुक् है। 'षिद्-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गौरादिभ्यश्च' ४.१.४१ सूत्रान्तर्गत गौरादिगण में 'पिप्पल्यादयश्च' ऐसा पाठ है। यहाँ आदिशब्द के प्रकारवाची होने से पुनः ङीष् प्रत्यय है।

*** फल्गुन्यषाढाभ्यां टाऽनौ * फल्गुन्यषाढाभ्यां टाऽनौ वक्तव्यौ। फल्गुनी अषाढा उपदधाति * श्रविष्ठाषाढाभ्यां छण् * श्रविष्ठाऽषाढाभ्यां छण्वक्तव्यः। श्राविष्ठीयाः। आषाढीयाः। लुक उपसंख्यानं तर्हि वक्तव्यम्? * न वा नक्षत्रेभ्यो बहुलं लुग्वचनात् * न वा वक्तव्यम्। किं कारणम्? 'नक्षत्रेभ्यो बहुलं लुग्वचनात्'। नक्षत्रेभ्यो बहुलं लुगित्येवमत्र लुग्भविष्यति।**

फल्गुन्यषाढाभ्यामिति। यहाँ पूर्व वार्तिक से 'स्त्रियामुपसंख्यानम्' का अनुवर्त्तन करना चाहिये। 'फल्गुनी और अषाढा से पर में विहित स्त्रीरूप जातार्थक 'ट' और 'अन्' प्रत्यय हो' ऐसा वार्तिकार्थ है। यह 'सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्' ४.३.१६ का अपवाद है। जैसे-'फल्गुन्योर्जातेति फल्गुनी', 'ट' प्रत्यय, 'यस्येति च' ६.४.१४८ से ईकारलोप एवं स्त्रीरूप जातार्थक के टित् होने से ङीप् प्रत्यय है। एवम् 'अषाढासु जातेति अषाढा' यहाँ भी नक्षत्रवाचक पद से विहित अण् प्रत्यय का अपवाद 'अन्' है, 'यस्येति च' ६.४.१४८ से आल्लोप, जातार्थ स्त्रीत्व अर्थ में टाप्-आषाढा। यहाँ विधानसामर्थ्य से 'श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधास्वाति-'४.३.३४ से 'ट' और 'अन्' का लुक् नहीं है। **श्रविष्ठाषाढाभ्यामिति**। श्रविष्ठा और अषाढा पद से जातार्थक छण् प्रत्यय कहना चाहिये। यहाँ शब्दकौस्तुभकार के अनुसार यह छण्प्रत्यय स्त्री और अस्त्री उभयरूप जातार्थक है। 'श्रविष्ठासु जाताः श्रविष्ठीयाः, अषाढासु जाताः आषाढीयाः'।

पूर्वपक्षी आचार्य—**लुक उपसंख्यानमिति**। 'श्राविष्ठीयाः, आषाढीयाः' में 'श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधास्वाति-'४.३.३४ से प्राप्त लुक् का यहाँ प्रत्याख्यान कहना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वेति**। यहाँ लुक् का प्रत्याख्यान कहने की आवश्यकता नहीं है। नक्षत्रवाची से पर में विहित जातार्थक प्रत्ययों का 'नक्षत्रेभ्यो बहुलम्'४.३.३७ से बाहुलक के द्वारा लुक् कहा है। इससे कहीं पर नक्षत्रवाची से जातार्थक प्रत्ययों का लुक् होगा तथा कहीं पर लुक् नहीं होगा। व्याख्यान के द्वारा 'ट, अन्' और 'छण्' का अलुक् और शेष का लुक् समझना चाहिये। अन्यत्र भी लक्ष्यानुसारी व्यवस्था करनी चाहिये।। **श्रविष्ठाफल्गुन्य-**।।

प्रायभवः ४.३.३९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

***** प्रायभवग्रहणमनर्थकं तत्रभवेन कृतत्वात् *** प्रायभवग्रहणमनर्थकम्। किं कारणम्? 'तत्रभवेन कृतत्वात्'। यो हि राष्ट्रे प्रायेण भवति तत्रभवोऽसौ भवति, तत्र 'तत्रभव' इत्येव सिद्धम्। न सिध्यति-अनित्यभवः प्रायभवः, नित्यभवस्तत्र भवः *** अनित्यभवः प्रायभव इति चेन्मुक्तसंशयेन तुल्यम् *** यद्भवान्मुक्तसंशयं तत्रभवे उदाहरणं न्याय्यं मन्यते-स्रौघ्नो देवदत्त इति,-तेनैतत्तुल्यम्। सोऽपि ह्यवश्यमुदकदेशादीन्यभिनिष्क्रामति। अथैतद्भवान् प्रायभवे उदाहरणं न्याय्यं मन्यते,-तत्रभवे किमुदाहरणम्? यत्तत्र नित्यं भवति-स्रौघ्नाः प्रासादाः, स्रौघ्नाः प्राकारा इति।**

सूत्रार्थ—'प्रायभवः' अर्थ में सप्तम्यन्तप्रातिपदिक से अण् आदि घादि प्रत्यय यथायोग्य हों'। यहाँ प्रायपद से बाहुल्य अर्थ विवक्षित है। जैसे-'स्रुघ्ने प्रायेण भवतीति स्रौघ्नाः।

पूर्वपक्षी—**प्रायभवग्रहणमिति**। सामान्य भव अर्थ में विशेष प्रायभव अर्थ का भी अन्तर्भाव होने से 'तत्रभवः' ४.३.५३ से ही 'प्रायभवः' अर्थ में भी प्रत्यय सिद्ध हो जायेगा। इसके लिए पृथक् सूत्र 'प्रायभवः' व्यर्थ है। जो राष्ट्र में प्रायेण होता है वह भी 'तत्र भवः' ही होता है।

अन्य आचार्य इस पक्ष का खण्डन करते हैं-**न सिध्यतीति**। 'तत्रभवः' इस सामान्य से 'प्रायभवः' यह विशेष अर्थ गतार्थ नहीं हो पायेगा। इसका कारण देते हैं-**अनित्य भव इति**। 'प्रायभवः' से अनित्यभवः' विवक्षित है तथा 'तत्र भवः' से 'नित्यभवः' अर्थ विवक्षित है। इसी तरह अर्थभेद होने से 'तत्रभवः' के द्वारा 'प्रायभवः' का ग्रहण नहीं होने से आचार्य ने पृथक् सूत्र पढा है। इससे यह आया कि 'जो कभी होता तथा कभी नहीं होता है, उसे 'प्रायभवः' कहते हैं; परन्तु जिसका आधाराधेयभाव नियत है, वह 'तत्रभवः' है'।

इतर आचार्य इस पक्ष का खण्डन करते हैं-**मुक्तसंशयेनेति**। 'तत्रभवः' का उदाहरण आप 'स्रुघ्ने भवः स्रौघ्नो देवदत्तः' मानते हैं। इस तरह 'तत्रभवः' में सभी संगृहीत हैं; अनभिधानस्वभाव से व्यवस्था करनी चाहिये। देवदत्त की 'अनित्यभवता' बताते हैं-**सोऽपि ह्यवश्यमिति**। 'तत्रभवः' की नित्यभवता मान कर आप ने 'स्रौघ्नो देवदत्तः' उदाहरण दिया है। देवदत्त का स्रुघ्नदेश के साथ नित्य आधाराधेयभाव नहीं है; अपि तु व्यापार, नौकरी आदि के लिए स्रुघ्नदेश छोड कर उदक आदि देशों में भी जाता है। इससे प्रायभवता गतार्थ हो गयी। अथ च अनित्यार्थक 'प्रायभवः' का उदाहरण आप 'स्रौघ्नो देवदत्तः'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मानेंगे तो आप के मत में नित्यार्थक 'तत्रभवः' का क्या उदाहरण होगा?

'प्रायभवः' और 'तत्रभवः' को भिन्नार्थक मानने वाले 'तत्रभवः' का उदाहरण देते हैं-**यत्तत्रेति**। जो नित्यभव है, वही 'तत्रभवः' का उदाहरण है। जैसे-'स्रौघ्नाः प्राकाराः, स्रौघ्नाः प्रासादाः' यह 'तत्रभवः' का उदाहरण है। इससे प्रकृत में यह आया कि भेदवादी आचार्य के मत में 'तत्रभवः' का 'स्रौघ्नाः प्रासादाः' इत्यादि उदाहरण हैं, 'स्रौघ्नो देवदत्तः' इत्यादि नहीं। इस तरह संग्रह आदि ग्रन्थों में जिन लोगों ने 'तत्रभवः' का उदाहरण 'स्रौघ्नो देवदत्तः' दिया है, वह असंगत है।

एवन्तर्हि 'तत्र भव' इति प्रकृत्य जिह्वामूलाङ्गुलेश्छो विधीयते, स यथैव तस्मिन्दृष्टापचारेऽङ्गुलीयमिति भवत्येवं प्रायभवेऽपि भविष्यति। इदन्तर्हि प्रयोजनं-प्रायभव इति प्रकृत्योपजानूपकर्णोपनीवेष्ठकं वक्ष्यति, स प्रायभवे यथा स्यात्तत्रभवे मा भूद्-उपजानु भवं गड्विति। अथेदानीं तत्रभव इति प्रकृत्य शरीरावयवाद् यद्विधीयते, सोऽत्र कस्मान्न भवति? अनभिधानात्। यथैव तर्ह्यनभिधानान्न भवत्येवं ठगपि न भविष्यति।।

अथ च 'तत्रभवः' पद से नित्य अर्थ का ग्रहण होने पर अन्य दोष भी देते हैं-**एवन्तर्हीति**। यदि 'तत्रभवः' से नित्यभवत्व अर्थ लेंगे तो :जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः' ४.३.६२ से छ प्रत्यय विहित है। वह जैसे **दृष्टापचारे**=दृष्टव्यभिचार में 'अङ्गुलीयम्' होता है, वैसे 'प्रायभवः' अर्थ में अङ्गुलिसम्बन्ध न होने पर भी 'अङ्गुलीयम्' की आपत्ति होगी।

'तत्रभवः' और 'प्रायभवः' के भिन्नार्थक होने का प्रयोजन देते हैं-**इदन्तर्हीति**। 'प्रायभवः' का अधिकार कर सूत्रकार 'उपजानूपकर्णोपनीवेष्ठक्' ४.३.४० से 'प्रायभवः' अर्थ में उपजानु, उपकर्ण और उपनीवि पद से ठग्विधान करते हैं। वहाँ 'तत्रभवः' अर्थ में उपजानु आदि पदों से ठक् न हो, यही अर्थभेद का प्रयोजन है। 'जानुनः समीपमुपजानु, तत्र प्रायभव औपजानुकः'। इसी तरह 'औपकर्णिकः, औपनीविकः' भी समझना चाहिये। उपजानु आदि पद अव्ययीभाव हैं। यदि यहाँ 'उपजानु भवम्' ऐसा विग्रह किया जाये तो उक्त ठक् नहीं होगा।

प्राश्निक आचार्य—**अथेदानीमिति**। 'तत्रभवः' का अधिकार कर आचार्य 'शरीरावयवाच्च' ४.३.५५ कहते हैं। **सोऽत्र**=वह 'यत्' प्रत्यय शरीरावयववाची उपजानुपद से क्यों नहीं होता है?

उत्तरपक्षी—**अनभिधानादिति**। शब्द अपने अर्थ में नित्य शक्त है। 'तत्रभवः' अर्थ में यत्प्रत्ययान्त उपजानु आदि पदों का विधान नहीं होने से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'उपजानुभवम्' आदि अर्थ में उपजानुपद से यत् नहीं होता है।

उत्तरभाष्य—**एवन्तर्हीति**। जिस तरह अनभिधान होने से शरीरावयववाची सप्तम्यन्तप्रातिपदिक उपजानुपद से 'तत्रभवः' अर्थ में यत् नहीं होता है, उसी तरह अनभिधान होने से 'उपजानूपकर्णोपनीवेष्ठक्' ४.३.४० से विहित ठक् भी 'तत्रभवः' अर्थ में नहीं होगा। यहाँ 'अनभिधानात्' हेतु के द्वारा सिद्धान्ती आचार्य ने विशेष अर्थ में सामान्य अर्थ की अप्राप्ति दिखायी है। इससे 'प्रायभवः' सूत्र का वैयर्थ्य सिद्ध हो गया।। **प्रायभवः**।।

कोशाड्ढञ् ४.३.४२

*** विकारे कोशाड्ढञ् * विकारे कोशाड्ढञ् वक्तव्यः-कोशस्य विकारः कौशेयम् *** सम्भूते ह्यर्थानुपपत्तिः *** सम्भूत इत्युच्यमानेऽर्थस्याऽनुपपत्तिः स्यात्। न ह्यदः कोशे सम्भवति। किन्तर्हि? कोशस्यादो विकारः। यदि विकार इत्युच्यते भस्मन्यपि प्राप्नोति। भस्माऽपि कोशस्य विकारः।**

'सम्भूते' ४.३.४१ सूत्र का अधिकार कर सप्तम्यन्त प्रातिपदिक से कोश पद से सम्भूत अर्थ में आचार्य ने ढञ् प्रत्यय का विधान किया है।

सिद्धान्ती आचार्य इस प्रकरण को अन्यथा करते हैं-**विकार इति**। 'तस्य विकारः' ४.३.१३४ प्रकरण में 'एण्या ढञ्' ४.१.१५७ सूत्र के अनन्तर 'कोशात्' ऐसा सूत्र पढना चाहिये था। इससे पूर्व सूत्र से विधेयवचन ढञ् की अनुवृत्ति होती तथा 'तस्य विकारः' का अधिकार आता। इससे षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक कोश पद से विकार अर्थ में ढण् हो कर 'कौशेयम्' रूप हो जाता। 'सम्भूते' अर्थ के अधिकार में पढने से अर्थ की अनुपपत्ति दिखाते हैं-**सम्भूत इति**। कोश में सम्भूत अर्थ के असम्भव होने से अर्थ अनुपपन्न हो रहा है। कौशेय कोश में सम्भूत नहीं होता है, अपि तु कोश का विकार है। 'तस्य विकारः' के अधिकार में पढे जाने पर इसकी अतिव्याप्ति दिखाते हैं-**यदि विकार इति**। यदि कोश पद से विकार अर्थ में प्रत्यय करेंगे तो भस्म के भी विकार होने से 'कौशेयं भस्म' ऐसा भी प्रयोग होना चाहिये।

अथ सम्भूत इत्युच्यमाने क्रिमौ कस्मान्न भवति? क्रिमिरपि हि कोशे सम्भवति। अनभिधानात्। यथैव तर्ह्यनभिधानात् क्रिमौ न भवत्येवं भस्मन्यपि न भविष्यति। अर्थश्चोपपन्नो भवति।। कोशाड्ढञ्।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

षष्ठ्यन्त कोश पद से विकार अर्थ में प्रत्यय करने पर इसकी अन्यत्र भी अतिव्याप्ति दिखाते हैं-**अथ सम्भूत इति**। क्रिमि कोश का विकार है। 'कौशेयः क्रिमिः' ऐसा प्रयोग क्यों नहीं होता है?

अन्य आचार्य—**यथैवेति**। जैसे अनभिधान होने से क्रिमि अर्थ में कौशेय रूप नहीं होता है, वैसे अनभिधान होने से भस्म अर्थ में भी नहीं होगा। विकार अर्थ में प्रत्ययविधान करने पर लोक में प्रसिद्ध कौशेय वस्त्र रूप अर्थ ही युक्तियुक्त होगा, भस्म क्रिमि आदि नहीं।। **कोशाड् ढञ्**।।

कलाप्यश्वत्थयवबुसाद् वुन् ४.३.४८

अयुक्तोऽयं निर्द्देशः। 'काला'दिति वर्त्तते। न च कलापी नाम कालोऽस्ति। नैष दोषः-साहचर्यात्ताच्छब्द्यं भविष्यति। कलापि-सहचरितः कालः-कलापी काल इति।। कलाप्यश्वत्थयवबुसाद्वुन्।।

सूत्रार्थ—'देयमृणे' अर्थ में सप्तम्यन्त कलापी, अश्वत्थ और यवबुसशब्द से वुन् प्रत्यय हो'।

सिद्धान्ती—**अयुक्तोऽयमिति**। प्रकृत सूत्र का निर्द्देश व्यर्थ है। 'कालात्साधु-पुष्यत्पच्यमानेषु' ४.३.४३ से 'कालात्' पद की अनुवृत्ति है। जिस काल में मयूर कलापी होते हैं, 'तादर्थ्यत्ताच्छब्द्यम्' इस नियम से वह काल भी कलापी कहा जायेगा। 'तस्मिन् कलापिनि देयमृणमिति कलापकमृणम्'। इसी तरह अश्वत्थ का फल भी अश्वत्थ है, एवं तद्युक्त काल भी उक्तन्याय से अश्वत्थ है। 'यस्मिन्काले-ऽश्वत्थाः फलन्ति तत्र देयमृणमश्वत्थकम्'। एवं 'यस्मिन्काले यवबुसमुत्पद्यते तत्र देयमृणं यवबुसकम्'।

यहाँ यह विशेष समझना चाहिये कि यद्यपि भाष्यकार ने प्रकृत सूत्र का खण्डन कर दिया है, तथापि आशुबोध, ज्ञानलाघव और अदृष्टप्रयोजन के लिए भगवान् पाणिनि का सूत्रप्रणयन है।। **कलाप्यश्वत्थ-**।।

तत्रभवः ४.३.५३

'तत्रे'ति वर्त्तमाने पुनस्तत्रवचनं किमर्थम्? * तत्रप्रकरणे तत्रेति पुनर्वचनं कालनिवृत्त्यर्थम् *** तत्रप्रकरणे तत्रेति पुनर्वचनं क्रियते कालाधिकारनिवृत्त्यर्थम्। कालाधिकारो निवर्त्यते। न हि काको वाश्यत इत्येवाधिकारा निवर्त्तन्ते? को वाऽभिसम्बन्धो यत्तत्रग्रहणं कालाधिकारं निवर्त्तयेत्? एषोऽभिसम्बन्धः-कालाभिसम्बद्धं हि**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तत्रग्रहणमनुवर्त्तते। 'तत्र'ग्रहणं च 'तत्र'ग्रहणस्य निवर्त्तकं भवति। तस्मिँश्च निवृत्ते कालाऽधिकारोऽपि निवर्त्तते।। तत्रभवः।।

सूत्रार्थ—'सप्तम्यन्त प्रातिपदिक से भव अर्थ में 'घ' आदि प्रत्यय हों'। जैसे-राष्ट्रे भवो राष्ट्रियः।

पूर्वपक्षी—**तत्रेति**। 'तत्रजातः' ४.३.२५ से 'तत्र' पद की अनुवृत्ति आ रही थी; पुनः सूत्र में 'तत्र' पद क्यों पढा गया है?

उत्तरपक्षी—**तत्रप्रकरण इति**। 'कालात्' ४.३.४३ से 'कालात्' पद अनुवृत्त हो रहा था; उसकी निवृत्ति के लिए 'तत्र' पद की अनुवृत्ति होने पर भी पुनः 'तत्र' पद पढा गया है।

अन्य आचार्य—**न हि काक इति**। यात्रा पर प्रस्थित पुरुष की यात्रा का अधिकार जिस तरह मध्य में काकरुति से समाप्त नहीं होता है; वैसे 'तत्रभवः' में 'तत्र' पद के पाठ कर देने से कालाधिकार की निवृत्ति कैसे सम्भव है? यदि अनुवृत्त 'तत्र' ४.३.२५ पद के साथ कालाधिकार का अन्वय होता तो 'तत्र' ४.३.५३ के पाठ से कालाधिकार निवृत्त हो सकता था, परन्तु ऐसा नहीं होने से यहाँ 'तत्र'पद का पाठ करने से कालाधिकार निवृत्त नहीं होता है।

उत्तरपक्षी—**एषोऽपीति**। कालाभिसम्बद्ध ही 'तत्र' पद की अनुवृत्ति होती है। यदि 'भवः' मात्र सूत्र रखते तथा 'तत्रजातः' ४.३.२५ से 'तत्र' पद की अनुवृत्ति करते तो यहाँ कालाभिसम्बद्ध 'तत्र' पद की ही अनुवृत्ति होती, जो इष्ट नहीं है; अतः कालाभिसम्बद्ध 'तत्र' पद की निवृत्ति के लिए आचार्य ने पुनः 'तत्र' पद पढा है। यहाँ पढा गया 'तत्र' पद से अनुवृत्त 'तत्र' पद की निवृत्ति हो जाती है। उस 'तत्र' पद की निवृत्ति हो जाने से यहाँ कालाधिकार भी निवृत्त हो जाता है।। **तत्रभवः**।।

गम्भीराञ्ञ्यः ४.३.५८
अव्ययीभावाच्च ४.३.५९

*** ञ्यप्रकरणे परिमुखादिभ्य उपसंख्यानम् * ञ्यप्रकरणे परिमुखादिभ्य उपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। पारिमुख्यम्। पार्योष्ट्यम्। पारिहनव्यम् * अव्ययीभावाद्विधाने उपकूलादिभ्यः प्रतिषेधः * अव्ययीभावाञ्ञ्य-विधाने उपकूलादिभ्यः प्रतिषेधो वक्तव्यः। औपकूलः। औपमूलः। औपशालः।**

सूत्रार्थ—'सप्तम्यन्त गम्भीर पद से भव अर्थ में ञ्य प्रत्यय हो'। गम्भीरे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भवं गाम्भीर्यम् । ४.३.५८.

सूत्रार्थ—'सप्तम्यन्त अव्ययीभाव से भव अर्थ में ञ्य प्रत्यय हो' । परिमुखं भवं पारिमुख्यम् । ४.३.५९.

सिद्धान्त वार्तिक—**ञ्यप्रकरण इति** । ञ्यप्रकरण में परिमुखादिगणपठितशब्दों से ही ञ्य कहना चाहिये । इस तरह गणपाठ करने से 'गम्भीराञ्ञ्यः' तथा 'अव्ययीभावाच्च' यह दो सूत्र करने की आवश्यकता नहीं होगी तथा 'अव्ययीभावाच्च' की अतिव्याप्ति भी नहीं होगी । 'पर्योष्ट्यं भवं पार्योष्ट्यम्, परिहनवं भवं पारिहनव्यम्' ।

'अव्ययीभावाच्च' सूत्र की अतिव्याप्ति दिखा कर प्रतिषेधवचन पढते हैं- **अव्ययीभावेति** । यदि 'अव्ययीभावाच्च' सूत्र रखते हैं तो अव्ययीभावमात्र से 'तत्रभवः' अर्थ में ञ्य प्राप्त होने पर उपकूलादि से पर में अतिव्याप्ति होगी; उसका वारण करने के लिए उपकूलादि से पर में ञ्य प्रतिषेध कहना होगा । यदि परिगणन कर परिमुखादि से पर में 'तत्रभवः' अर्थ में ञ्यविधान करते हैं तो 'औपकूलः, औपमूलः, औपशालः' में जहाँ 'उपकूलं भवम्, उपमूलं भवम्, उपशालं भवम्' विग्रह करते हैं, वहाँ निषेधवचन पढने की आवश्यकता नहीं होगी ।। **अव्ययीभावाच्च** ।।

अन्तःपूर्वपदाट्ठञ् ४.३.६०

अत्यल्पमिदमुच्यते * समानस्य तदादेश्च * समानस्य-**सामानिकः** । तदादेश्च-**सामानग्रामिकः** । **सामानदेशिकः** * अध्यात्मादिषु चेष्यते * **आध्यात्मिकम्** । **आधिदैविकम्** । **आधिभौतिकम्** * ऊर्द्ध्वन्दमाच्च देहाच्च * **ऊर्द्ध्वन्दमाच्च देहाच्च ठञ्वक्तव्यः** । **और्द्ध्वन्दमिकम्** । **और्ध्वदेहिकम्** * लोकोत्तरपदस्य च * **लोकोत्तरपदस्य च ठञ्वक्तव्यः** । **ऐहलौकिकम्** । **पारलौकिकम्** ।

'तत्रभवः' का अधिकार है । 'अव्ययीभावात्' की अनुवृत्ति है; अतः सूत्रार्थ— 'अन्तःपूर्वपद अव्ययीभाव से 'तत्रभवः' अर्थ में ठञ् प्रत्यय कहना चाहिये । जैसे-वेश्मनीति अन्तर्वेशमं, तत्रभवम् आन्तर्वेशिमकम् । गणे इत्यन्तर्गणं, तत्रभवम् आन्तर्गणिकम् ।

सिद्धान्ती—**अत्यल्पमिदमिति** । अन्तःपूर्वपद से ठञ्विधान अल्प है । समान और समानादि से भी 'भवः' अर्थ में ठञ् कहना चाहिये । समाने भवः सामानिकः । **तदादि**=समानग्रामे भवः सामानग्रामिकः । समानदेशे भवः सामानदेशिकः । **अध्यात्मादि-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ष्विति। अध्यात्म आदि गणपठित सप्तम्यन्त प्रातिपदिक से भव अर्थ में ठञ् कहना चाहिये। आत्मनीत्यध्यात्मं, तत्र भवमाध्यात्मिकम्। देवे इति अधिदेवं, तत्रभवम् आधिदैविकम्। भूते इति अधिभूतं, तत्रभवम् आधिभौतिकम्। यहाँ सर्वत्र 'अनुशतिकादीनां च' ७.३.२० से उभयपदवृद्धि है। **उर्द्ध्वेति**। ऊर्द्ध्वन्दम और ऊर्ध्वदेह सप्तम्यन्त प्रातिपदिक से भव अर्थ में भी ठञ् कहना चाहिये। ऊर्द्ध्वन्दमे भवम् और्द्ध्वन्दमिकम्। **लोकोत्तरेति**। लोकोत्तरपद सप्तम्यन्त प्रातिपदिक से भव अर्थ में ठञ् कहना चाहिये। इहलोके भवम् ऐहलौकिकम्। परलोके भवं पारलौकिकम्। यहाँ 'अनुशतिकादीनां च' ४.३.२० से उभयपद-वृद्धि है।

*** मुखपार्श्वतसोरीयः * 'मुखपार्श्व' इत्येताभ्यां तसन्ताभ्यामीयप्रत्ययो वक्तव्यः। मुखतीयम्। पार्श्वतीयम् * कुग्जनस्य परस्य च * जनस्य परस्य च ईयो वक्तव्यः, कुक्चागमः। जनकीयः। परकीयः * ईयः कार्योऽथ मध्यस्य * मध्यस्य ईयः कार्यः। मध्यीयः * मण्मीयौ प्रत्ययौ तथा * मण्मीयौ चापि प्रत्ययौ वक्तव्यौ। माध्यमः। मध्यमीयः।**

मुखपार्श्वेति। यहाँ तस्प्रत्यय का ग्रहण होने से तसन्त का ग्रहण है। तसन्त मुख और पार्श्व सप्तम्यन्त प्रातिपदिक से भव अर्थ में ईय प्रत्यय कहना चाहिये। 'मुखादिति मुखतः, पार्श्वदिति पार्श्वतः'। यह 'आद्यादिभ्यस्तसिरुपसंख्यानम्' से तसि प्रत्ययान्त है। 'मुखतो भवं मुखतीयं, पार्श्वतो भवं पार्श्वतीयम्'। यहाँ ईय प्रत्यय, 'अव्ययानां भमात्रे टिलोपः' वा.४१८७ से टिलोप है। **कुग्जनस्येति**। जन और परशब्द से ईय प्रत्यय और प्रकृति को कुक् का आगम कहना चाहिये-'जने भवो जनकीयः, परे भवः परकीयः'। **ईयः कार्य इति**। सप्तम्यन्त प्रातिपदिक मध्यशब्द से भी भव अर्थ में ईय प्रत्यय कहना चाहिये-'मध्ये भवो मध्यीयः'। **मण्मीयाविति**। यहाँ पूर्व वार्तिक से 'मध्यस्य' की अनुवृत्ति है। सप्तम्यन्त प्रातिपदिक मध्यशब्द से भव अर्थ में मण् और मीय प्रत्यय कहना चाहिये। गहादिगण ४.२.१३८ में 'मध्यो मध्यमं चाऽण्चरणे' ऐसा कहा है, वहाँ 'पृथिवीमध्यवाची ही मध्यशब्द का ग्रहण है' ऐसा कहा जा चुका है। इससे भिन्न अर्थ में शक्त मध्यशब्द से भी भव अर्थ में 'मध्यमीयः' ऐसा प्रयोग है, उसके लिए यहाँ मीय प्रत्यय का विधान है। 'जातः' आदि अर्थों में पृथिवीमध्य-वाची मध्य पद से 'मध्यमीयः' रूप हो, इसके लिए गहादिगण में मध्यशब्द का परिगणन है। 'पृथिवीमध्यवाची मध्यशब्द को मध्यम आदेश होता है' यह गहादिगण ४.२.१३८ पर कह आया हूँ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

* मध्यो मध्यं दिनण्चाऽस्मात् * मध्यशब्दोऽयं मध्यंशब्दमापद्यते दिनण्चाऽस्मात् प्रत्ययो वक्तव्यः। माध्यन्दिन उपगायति * स्थाम्नो लुगजिनात्तथा * लुक्स्थाम्नो वक्तव्यः। अश्वत्थामा * अजिनात्तथा * अजिनान्ताच्च लुग्वक्तव्यः। कृष्णाऽजिनः। उष्ट्राऽजिनः। सिंहाऽजिनः। व्याघ्राऽजिनः।

बाह्यो दैव्यः पाञ्चजन्योऽथ गम्भीराञ्ज्य इष्यते।।1।।
समानस्य तदादेश्च अध्यात्मादिषु चेष्यते।
ऊर्ध्वं दमाच्च देहाच्च लोकोत्तरपदस्य च।।2।।
मुखपार्श्वतसोरीयः कुग्जनस्य परस्य च।
ईयः कार्योऽथ मध्यस्य मण्मीयौ चापि प्रत्ययौ।।3।।
मध्यो मध्यं दिनण्चाऽस्मात्स्थाम्नो लुगजिनात्तथा।
बाह्यो दैव्यः पाञ्चजन्योऽथ गम्भीराञ्ज्य इष्यते।।4।।

मध्यो मध्यमिति। मध्यशब्द को मध्यम् आदेश तथा दिनण्प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे-मध्ये भवो माध्यन्दिनः। यहाँ मध्य को मध्यम् आदेश और दिनण्प्रत्यय, णित्वात् आदि अच् को वृद्धि, म् को अनुस्वारादेश और परसवर्ण है। **स्थाम्न इति**। यहाँ स्थामन् और अजिन में उभत्र तदन्त विवक्षित है। स्थामान्त और अजिनान्त से भव अर्थ में विहित प्रत्यय का लुक् कहना चाहिये। अश्वत्थाम्नि भवोऽश्वत्थामा, कृष्णाजिने भवः कृष्णाजिनः, व्याघ्राजिने भवो व्याघ्राजिनः। यहाँ सर्वत्र विहित भवार्थक प्रत्यय का लुक् है। **बाह्य इति**। 'गम्भीराञ्ज्यः' ४.३.५८ सूत्र पर बहिष्, देव और पाञ्चजन्य पद से ञ्य प्रत्यय कहना चाहिये-बाह्यः, दैव्यः, पाञ्चजन्यः। वहाँ 'गाम्भीर्यः' यह रूप बताया जा चुका है।

यहाँ संगृहीत श्लोकवार्तिकों का उपर अर्थ किया जा चुका है; पाठक वहीं से गतार्थ करें।। **अन्तःपूर्वाट्ठञ्।।**

तस्य व्याख्यान इति
च व्याख्यातव्यनाम्नः ४.३.६६

किमर्थं भवव्याख्यानयोर्युगपदधिकारः क्रियते? * भवव्याख्यानयोर्युगपदधिकारोऽपवादविधानार्थः * **भवव्याख्यानयोर्युगपदधिकारः क्रियते, अपवादविधानार्थः। 'युगपदपवादान्वक्ष्यामी'ति। किमुच्यतेऽपवादविधानार्थ इति, न पुनर्निर्द्देशार्थोऽपि स्यात्? कृतनिर्द्देशौ**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हि तावर्थौ एकस्तत्र भव इति, अपरस्तस्येदमिति। अथ व्याख्यातव्यनाम्नो ग्रहणं किमर्थम्? * तत्र व्याख्यातव्यनाम्नो ग्रहणं भवार्थम् *** तत्र व्याख्यातव्यनाम्नो ग्रहणं क्रियते-भवार्थम्। किमुच्यते भवार्थमिति, न पुनर्व्याख्यानार्थमपि स्यात्?**

यहाँ 'तत्रभवः' से 'तत्र' पद की अनुवृत्ति है; अतः सूत्र का 'तत्र व्याख्यान इति च' एवं 'तस्य व्याख्यान इति च' ऐसा द्विविध अर्थ समझना चाहिये। 'व्याख्यायतेऽनेनेति व्याख्यानो ग्रन्थः'' करण में ल्युट् है।

सूत्रार्थ—'तस्य व्याख्यानः' इस तरह का विग्रह होने पर व्याख्यातव्य ग्रन्थ प्रतिपादक षष्ठ्यन्तप्रातिपदिक से भव अर्थ में, एवं 'तत्रव्याख्यानः' ऐसा विग्रह होने पर व्याख्यातव्यग्रन्थप्रतिपादक सप्तम्यन्तप्रातिपदिक से भव अर्थ में प्रत्यय हों। जैसे-सुपां व्याख्यानः सौपो ग्रन्थः, तिङां व्याख्यानस्तैङो ग्रन्थः, कृतां व्याख्यानः कार्तो ग्रन्थः। एवं-सुप्सु भवः सौपः, तिङ्क्षु भवः तैङः, कृत्सु भवः कार्त्तो ग्रन्थः।

वृत्तिकार ने प्रकृत सूत्र को अधिकार माना है, उसके प्रयोजन की जिज्ञासा करते हैं-**किमर्थमिति**। भव और व्याख्यान इन दो अर्थों का एक साथ अधिकार क्यों करते हैं? यहाँ पूर्वपक्षी का आशय यह है कि यथाविहित विधानार्थ ही भव और व्याख्यान का ग्रहण क्यों नहीं है?

उत्तरपक्षी—**अपवादविधानार्थ इति**। आगे के सूत्रों 'बह्वचोऽन्तोदात्ताट् ठञ्' ४.३.६७ इत्यादि में अपवाद प्रत्यय ठञ् आदि कहे जायेंगे। वे भव और व्याख्यान दोनों का अपवाद बन सकें, इसके लिए भव और व्याख्यान अर्थ में युगपत् प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है।

अन्य आचार्य—**किमुच्यत इति**। आप ने भव और व्याख्यान अर्थ का युगपत् अधिकार का प्रयोजन अपवादविधानार्थ ही क्यों बताया है?; यहाँ अर्थ-निर्द्देश भी किया जा रहा है, इससे अण् आदि और घादि प्रत्ययों का अर्थ-निर्द्देश भी है, अतः इसे आप अर्थनिर्द्देशार्थ भी क्यों नहीं मानते हैं?

उत्तरपक्षी—**कृतनिर्द्देशाविति**। यहाँ अर्थनिर्देश भी है। एक है-'तत्रभवः', तथा दूसरा हैं-'तस्येदम्'। इन अर्थों का निर्द्देश है; अतः प्रकृत सूत्र को अर्थनिर्द्देशार्थ भी समझना चाहिये। इस तरह इस सूत्र का दोनों प्रयोजन है।

पूर्वपक्षी—**अथ व्याख्यातव्येति**। 'व्याख्यातव्यनाम्नः' का ग्रहण क्यों करते हैं?

उत्तरपक्षी—**तत्र व्याख्यातव्येति**। उत्तरसूत्र 'बह्वचोऽन्तोदात्ताट् ठञ्' ४.३.६७ इत्यादि से व्याख्यातव्यनामा से ही भव अर्थ में प्रत्यय हो, इसके लिए

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'व्याख्यातव्यनाम्नः' का ग्रहण किया गया है।

पूर्वपक्षी—**किमुच्यत इति**। व्याख्यातव्यनामा से भव अर्थ में प्रत्ययविधानार्थ यह प्रयोजन आप ने क्यों बताया?, व्याख्यानार्थ 'व्याख्यातव्यनाम्नः' पद का ग्रहण' क्यों नहीं बताया?, यह व्याख्यानार्थ भी हो सकता है?

*** व्याख्याने ह्यवचनात्सिद्धम् * व्याख्याने हि क्रियमाणेऽन्तरेण वचनं सिद्धम्। यत्प्रति व्याख्यानम् इत्येतद्भवति तस्मादुत्पत्तिर्भविष्यति। किं च प्रत्येतद् भवति? व्याख्यातव्यनाम। यदुच्यते भवार्थमिति तन्न, व्याख्यानार्थमपि व्याख्यातव्यनाम्नो ग्रहणं क्रियते। इह मा भूत्-पाटलिपुत्रस्य व्याख्यानी सुकोसलेति।**

उत्तरपक्षी—**व्याख्याने हीति**। व्याख्यान यह सम्बन्धिशब्द है; अतः अपने सम्बन्धी में नित्य साकाङ्क्ष होने से व्याख्यान पद से व्याख्यातव्य का आक्षेप होगा, इससे विना कहे ही 'व्याख्यातव्यनाम्नः' पद से व्याख्यानार्थ अर्थ लब्ध हो जायेगा। 'यत्प्रति व्याख्यानम्' ऐसा जो होगा, उससे प्रत्यय उत्पन्न होंगे।

पूर्वपक्षी—**किं चेति**। किसके प्रति व्याख्यान होता है?

उत्तरपक्षी—**व्याख्यातव्यनामेति**। व्याख्यातव्यनामा के प्रति व्याख्यान होता है; अतः व्याख्यातव्यनाम से प्रत्ययोत्पत्ति होगी। इससे पूर्व प्रकृतसूत्र में ही 'तत्रभवः' ४.३.५३ का अनुवर्त्तन कर व्याख्यातव्यग्रन्थप्रतिपादक षष्ठ्यन्त और सप्तम्यन्त सुबन्त प्रातिपदिक से भव अर्थ में प्रत्ययविधान के लिए 'व्याख्यातव्यनाम्नः' ग्रहण का प्रयोजन बताया है, उसका खण्डन करते हैं-**यदुच्यत इति**। व्याख्यातव्यग्रहण से ही भवार्थ का ग्रहण हो रहा था, पुनः जो 'नाम'पद का ग्रहण किया, उससे व्याख्यातव्यनाम के द्वारा भवार्थ का ग्रहण नहीं होगा; अपि तु व्याख्यातव्यत्वेन प्रसिद्धतम ग्रन्थ का जो नाम उसी का ग्रहण होने से 'पाटलिपुत्रस्य व्याख्यानी सुकोसला' में पाटलिपुत्र पद से प्रत्यय नहीं है। 'सुकोसला नगरी' में यादृश प्राकारादिसन्निवेश है तादृशप्राकारादिसन्निवेश पाटलिपुत्र में भी है, ऐसा होने से पाटलिपुत्र व्याख्यातव्य हो रहा है; अतः पाटलिपुत्रशब्द से भी प्रत्यय की प्राप्ति होने पर उसका वारण करने के लिए नाम पद दिया गया है। इससे व्याख्यातव्यत्वेन प्रसिद्धतम ग्रन्थ का जो नाम उसका ग्रहण होने से उक्त स्थल में प्रत्ययप्राप्तिरूप अतिव्याप्तिदोष निरस्त हो गया।

अथ क्रियमाणेऽपि व्याख्यातव्यनाम्नो ग्रहणे कस्मादेवात्र न भवति? अवयवशो ह्याख्यानं व्याख्यानं, पाटलिपुत्रं चास्मा अवयवश

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आचष्टे ईदृशा अस्य प्राकारा ईदृशा अस्य प्रासादा इति। सत्यमेवमेतत्क्वचित्प्रसृततरा गतिर्भवति। शब्दग्रन्थेषु चैषा प्रसृततरा गतिर्भवति। निरुक्तं व्याख्यायते, व्याकरणं व्याख्यायत इत्युच्यते, न कश्चिदाह पाटलिपुत्रं व्याख्यायत इति।

पूर्वपक्षी आचार्य व्याख्यान पद को परिभाषित कर उक्त 'पाटलिपुत्रस्य व्याख्यानी सुकोसला' में अतिव्याप्ति दिखाते हैं-**अथ क्रियमाणेऽपीति**। 'व्याख्यातव्यनाम्नः' पद का ग्रहण करने पर भी उक्त स्थल में प्रत्यय क्यों नहीं प्राप्त है?,; जब कि **अवयवशः**=खण्ड-खण्ड कथन को ही व्याख्यान कहा जाता है। कोई पाटलिपुत्र के विषय में किसी से **अवयवशः**=मुहल्लों का नाम ले कर बताता है-इस मुहल्ले की **प्राकाराः**=चहारदिवारियाँ ऐसी हैं; अमुक मुहल्ले के भवन राजभवन जैसे हैं। यहाँ पाटलिपुत्र के विषय में अवयवशः ही व्याख्यान है, फिर 'पाटलिपुत्रस्य व्याख्यानी सुकोसला' में पाटलिपुत्र पद से प्रत्ययोत्पत्ति क्यों नही होती है?

अन्य आचार्य पूर्वपक्षी के प्रश्न का समर्थन करते हैं-**सत्यमिति**। विग्रह के द्वारा पूर्वपक्षी ने उक्त स्थल पर पाटलिपुत्र पद से जो प्रत्ययप्राप्ति दिखायी है, तर्कों के द्वारा उस का पक्ष सुनने में अच्छा लग रहा है, परन्तु क्या उक्त व्याख्यान का कहीं पर **'प्रसृततरा गतिः'**=आशुतर प्राप्ति है?

उत्तरपक्षी—**शब्दग्रन्थेष्विति**। उक्त विग्रहार्थ की गति शब्दग्रन्थ में ही है। 'निरुक्त की व्याख्या की जा रही है, व्याकरण की व्याख्या की जा रही है' ऐसा कहा जाता है। कोई भी नही कहता है-'पाटलिपुत्र की व्याख्या की जा रही है; अतः व्याख्यातव्यनाम ग्रहण करने से उक्त स्थल में पाटलिपुत्र पद से प्रत्यय की प्राप्ति नहीं हो रही है।

*** भवे मन्त्रेषु लुग्वचनम् * भवे मन्त्रेषु लुग्वक्तव्यः। अग्निष्टोमे भवो मन्त्रोऽग्निष्टोमः। राजसूयः। वाजपेयः * कल्पे च व्याख्याने * कल्पे च व्याख्याने लुग्वक्तव्यः। अग्निष्टोमस्य व्याख्यानं कल्पोऽग्निष्टोमः। राजसूयः। वाजपेयः। स तर्हि वक्तव्यः? * न वा तादर्थ्यात्ताच्छब्द्यम् * न वा वक्तव्यः। किं कारणम्? तादर्थ्यात्ताच्छब्द्यं भविष्यति। अग्निष्टोमार्थः-अग्निष्टोमः। राजसूयः। वाजपेयः।। तस्य व्याख्यान इति।।**

एकदेशी वार्तिक—**भवे मन्त्रेष्विति**। मन्त्र अर्थ वाच्य होने पर षष्ठ्यन्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ वा सप्तम्यन्त क्रतुवाची प्रातिपदिक से पर में विहित भवार्थक प्रत्यय का लुक् कहना चाहिये। जैसे-'अग्निष्टोमे भवो मन्त्रोऽग्निष्टोमः। राजसूये भवो मन्त्रो राजसूयः, वाजपेये भवो मन्त्रो वाजपेयः'। यहाँ अग्निष्टोम आदि शब्द क्रतुवाची ही लिया जायेगा, व्याख्यातव्यवाची नहीं; अन्यथा अग्निष्टोमादि से भव अर्थ में लुग्विधान होने पर 'क्रतुयज्ञेभ्यश्च' ४.३.६८ सूत्र से भव अर्थ में इञ्विधान व्यर्थ होने लगेगा। **कल्पे चेति**। कल्प व्याख्यान अर्थ वाच्य होने पर विहित ठञ्प्रत्यय का लुक् कहना चाहिये। जैसे-'अग्निष्टोमस्य व्याख्यानः कल्पोऽग्निष्टोमः' एवं 'राजसूयस्य व्याख्यानः कल्पो राजसूयः, वाजपेयस्य व्याख्यानः कल्पो वाजपेयः' यहाँ सर्वत्र 'क्रतुयज्ञेभ्यश्च' ४.३.६८ से विहित ठञ् का लुक् है।

अन्य आचार्य—**स तर्हीति**। तो क्या 'भवे मन्त्रेषु लुग्वचनम्' और 'कल्पे च व्याख्याने लुग्विधानार्थम्' यह दोनों वचन पढना चाहिये? यहाँ उभयत्र विधेय लुग्वचन का एकत्व मान कर 'स तर्हि वक्तव्यः' ऐसा वचनप्रयोग है। अर्थात् 'क्या यह लुग्वचन कहना चाहिये'?

खण्डनभाष्य—**न वेति**। यह लुग्वचन पढने की आवश्यकता नहीं है। तादर्थ्यात् ताच्छब्द्यम्' के द्वारा अग्निष्टोमार्थ मन्त्र भी अग्निष्टोम पद वाच्य होगा, एवं राजसूयार्थ मन्त्र भी राजसूय पद वाच्य होगा, तथा वाजपेयार्थ मन्त्र भी वाजपेय पद वाच्य होगा।। **तस्य-**।।

क्रतुयज्ञेभ्यश्च ४.३.६८

क्रतुग्रहणं किमर्थम्? 'यज्ञेभ्य' इतीयत्युच्यमाने य एव संज्ञीभूतका यज्ञास्तत एवोत्पत्तिः स्याद्-आग्निष्टोमिको राजसूयिको वाजपेयिकः। यत्र वा यज्ञशब्दोऽस्ति- नावयज्ञिकः' पाकयज्ञिकः। इह न स्यात्पाञ्चौदनिकः। दाशौदनिकः। शातौदनिक इति। क्रतुग्रहणे पुनः क्रियमाणे न दोषो भवति।

यहाँ पूर्व सूत्र 'बह्वचोऽन्तोदात्ताट् ठञ्' ४.३.६७ से विधेयवचन ठञ् पद की अनुवृत्ति है। सोमलताद्रव्यक याग में क्रतुशब्द और यज्ञशब्द प्रसिद्ध है। स्वरूपविधिनिरास के लिए बहुवचनान्त निर्द्देश है। अन्यतर का ग्रहण करने से ही उभय का ग्रहण हो जाता, पुनः उभयग्रहण व्यर्थ पड कर असोमक याग से भी प्रत्ययविधान करता है। 'अग्निष्टोमस्य व्याख्यानं तत्र भवो वा आग्निष्टोमिकः'। इसी तरह 'वाजपेयिकः, राजसूयिकः, पाकयाज्ञिकः, नावयाज्ञिकः'। पूर्व सूत्र 'बह्वचोऽन्तोदात्ताट् ठञ्' ४.३.६७ से ही सिद्ध होने पर प्रकृत सूत्र का आरम्भ अन्तोदात्तार्थ है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्वपक्षी—**क्रतुग्रहणमिति**। क्रतु और यज्ञ पर्यायशब्द हैं। 'यज्ञेभ्यश्च' इतना ही सूत्र रखते, बहुवचननिर्द्देश से अर्थ का ग्रहण होता; इससे क्रतुवाची से भी ठञ् सिद्ध हो जाता; पुनः क्रतुशब्द का पाठ क्यों करते हैं?

उत्तरपक्षी—**यज्ञेभ्य इति**। मात्र 'यज्ञेभ्यः' इतना सूत्र रखने से जो **संज्ञीभूतकाः**=मुख्य यज्ञ है उन्हीं से 'तस्य व्याख्यानं तत्र भवो वा' अर्थ में ठञ् होता; इससे मुख्य यज्ञ 'अग्निष्टोम, राजसूत्र, वाजपेय' से ही ठञ् होता, एवं जो जहाँ यज्ञशब्द है, जैसे-नवयज्ञ, पाकयज्ञ इत्यादि, उन्हीं यज्ञान्त पदों से ठञ् हो कर 'नावयाज्ञिकः, पाकयाज्ञिकः' आदि होता; 'पञ्चौदन, दशौदन, शतौदन' पद से 'तस्य व्याख्यानं तत्र भवो वा' इस अर्थ में ठञ् नहीं होने से 'पाञ्चौदनिकः, दाशौदनिकः, शातौदनिकः' की असिद्धि थी, इसकी सिद्धि के लिए क्रतुपद दिया गया है। 'पाञ्चौदनिकः' इत्यादि यज्ञों में सोमरस का पान नहीं होने से इनकी अमुख्यता है;, अतः गौण और मुख्य इन दोनों का संग्रह के लिए उभय पदों का ग्रहण है।

अथ यज्ञग्रहणं किमर्थम्? 'क्रतुभ्य' इतीयत्युच्यमाने य एव संज्ञीभूतका क्रतवस्तत उत्पत्तिः स्याद्-आग्निष्टोमिको राजसूयिको वाजपेयिकः। इह न स्यात्-पाञ्चौदनिकः। दाशौदनिकः। शातौदनिक इति। यज्ञग्रहणे पुनः क्रियमाणे न दोषो भवति।। क्रतुयज्ञेभ्यश्च।।

पूर्वपक्षी—**अथ यज्ञग्रहणमिति**। यज्ञपद का ग्रहण क्यों करते हैं? 'क्रतुभ्यश्च' इतना ही सूत्र रखिये। क्रतु का पर्याय यज्ञ है। बहुवचननिर्द्देश से स्वरूपग्रहण निरस्त हो जायेगा, अतः अर्थ का ग्रहण होने से क्रतुवाची और यज्ञवाची उभय से प्रत्ययप्राप्ति हो जायेगी; फिर यज्ञग्रहण क्यों है?

उत्तरपक्षी—**क्रतुभ्य इति**। यज्ञग्रहण नहीं करके मात्र 'क्रतुभ्यः' ऐसा रखने से जो प्रधान क्रतु है तद्वाची प्रातिपदिक से 'तस्य व्याख्यानं तत्र भवो वा' अर्थ में प्रत्यय होता। जैसे-'आग्निष्टोमिकः, राजसूयिकः, वाजपेयिकः'। 'पञ्चौदनः, दशौदनः, शतौदनः' आदि जो गौण यज्ञ हैं, अतः उनसे प्रत्ययोत्पत्ति नहीं होगी। यज्ञपद का ग्रहण करने पर गौण से भी प्रत्ययोत्पत्ति हो कर 'पाञ्चौदनिकः, दाशौदनिकः, शातौदनिकः' रूप भी होता है।। **क्रतुयज्ञेभ्यश्च**।।

द्व्यजृद्ब्राह्मर्णक्प्रथमाध्वरपुर-श्चरणानामाख्याताट् ठक् ४.३.७२

*** नामाख्यातग्रहणं संघातविगृहीतार्थम् * नामाख्यातग्रहणं संघात-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विगृहीतार्थं द्रष्टव्यम्। नामिकः। आख्यातिकः। नामाख्यातिकः।।

सूत्रार्थ—'तस्य व्याख्यानं तत्र भवो वा' इस अर्थ में द्व्यच्, ऋदन्त, ब्राह्मण, ऋक्, प्रथम, अध्वर, पुरश्चरण, नाम, आख्यात और नामाख्यात पद से ठक् हो'। जैसे द्व्यच्-इष्टस्य व्याख्यानं तत्र भवो वा ऐष्टिकः। पशोर्व्याख्यानं तत्र भवो वा पाशुकः। ऋदन्तादि से-चातुर्होतृकः। ब्राह्मणिकः। आर्चिकः। प्राथमिकः। आध्वरिकः। पौरश्चरणिकः। यहाँ सर्वत्र 'तस्य व्याख्यानं तत्र भवो वा' अर्थ करना चाहिये।

सूत्र में नामाख्यातग्रहण किया गया है; भाष्यकार उसका प्रयोजन बताते हैं-**नामाख्यातग्रहणमिति**। 'नामाख्यात' ऐसा संघातग्रहण संघातविगृहीतार्थ है। अर्थात् नामपद और आख्यात पद से भी ठक् होगा-नामिकः, आख्यातिकः। संघात से भी ठक् होगा-नामाख्यातिकः।। **द्व्यजृद्ब्राह्मर्क्प्रथम-**।।

विदूराञ्ञ्यः ४.३.८४

अयुक्तोऽयं निर्द्देशः, न ह्यसौ विदूरात्प्रभवति। किं तर्हि? वालवायात्प्रभवति विदूरे तु संस्क्रियते। एवं तर्हि- *वालवायो विदूरं च* वालवायशब्दो विदूरशब्दमापद्यतेऽन्यश्चास्मात्प्रत्ययो वक्तव्यः *प्रकृत्यन्तरमेव वा* अथ वा प्रकृत्यन्तरं विदूरशब्दोऽस्ति वालवायस्य।

सूत्रार्थ—'प्रभवति' अर्थ में पञ्चम्यन्त प्रातिपदिक विदूर से ञ्य प्रत्यय हो'। जैसे-'विदूरात्प्रभवति वैदूर्यो मणिः'। यहाँ 'प्रभवति' ४.३.८३ से प्राप्त अण्प्रत्यय क अपवाद ञ्य विधान है।

पूर्वपक्षी—**अयुक्तोऽयमिति**। प्रकृत सूत्र का निर्द्देश उचित नहीं है। वैदूर्यमणि विदूरदेशविशेष में उत्पन्न नहीं होता है, अपि तु वालवाय में उत्पन्न होता है। पर्वतविशेष वालवाय से उत्पन्न हो कर विदूरदेश में मात्र संस्कृत होता है।

एकदेशी आचार्य—**वालवाय इति**। वालवायशब्द का विदूर आदेश कर उससे 'प्रभवति' अर्थ में ञ्य प्रत्यय है।

सिद्धान्ती—**अथ वेति**। पर्वतविशेष वालवाय का वाचक प्रकृत्यन्तर विदूरशब्द है, उससे 'तस्मात्प्रभवति' अर्थ में ञ्य प्रत्यय का विधान है।

न वै तत्र वालवायं विदूर इत्युपाचरन्ति *न वै तत्रेति चेद्ब्रूयाज्, जित्वरीवदुपाचरेत्* तद्यथा-वणिजो वाराणसीं जित्वरीत्यु-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पाचरन्त्येवं वैयाकरणा वालयावं विदूर इत्युपाचरन्ति।

वालवायो विदूरं च प्रकृत्यन्तरमेव वा।
न वै तत्रेति चेद्ब्रूयाज्जित्वरीवदुपाचरेत्।।1।।

इसी को दूसरे पक्ष में कहते हैं-**न वै तत्रेति**। वालवायपद के स्थान में विदूर आदेश करने की आवश्यकता नहीं है; अपि तु वालवाय का ही वाचक वैयाकरणसम्प्रदाय में विदूर पद है। जैसे-व्यापारी लोग वाराणसी को जित्वरी पद से कहते हैं, वैसे वैयाकरण वालवाय को विदूर पद से कहते हैं।

उपर व्याख्यात वार्तिकों का ही यहाँ श्लोकरूप में संग्रह है। इसका अर्थ उपर से गतार्थ करें।। **विदूराञ्ज्यः**।।

अभिनिष्क्रामति द्वारम् ४.३.८६

अयुक्तोऽयं निर्द्देशः। चेतनावत एतद् भवति निष्क्रमणं वाऽपक्रमणं वा। द्वारं चाऽचेतनम्। कथं तर्हि निर्द्देशः कर्त्तव्यः? 'अभिनिष्क्रमणं द्वार'मिति। स तर्हि तथा निर्द्देशः कर्त्तव्यः? न कर्त्तव्यः,- अचेतनेष्वपि चेतनवद् उपचारो दृश्यते। तद्यथा-अयमस्य कोणोऽभिनिःसृतः, अयमभिप्रविष्ट इति।

'तद् गच्छति पथिदूतयोः' ४.३.८५ से द्वितीयान्त 'तद्' पद का अनुवर्त्तन है।

सूत्रार्थ—'तदभिनिष्क्रामति द्वारम्' अर्थ में द्वितीयान्त प्रातिपदिक से प्रत्यय हों'। जैसे-स्रुघ्नमभिनिष्क्रामति स्रौघ्नम्। कान्यकुब्ज का द्वार।

पूर्वपक्षी—**अयुक्तोऽयमिति**। अभिनिष्क्रमण, अपक्रमण पादविक्षेपरूप है। वह चेतन में ही सम्भव है। द्वार अचेतन है; अतः उसमें अभिनिष्क्रमणरूप व्यापार के असम्भव होने से प्रकृत सूत्र में कर्त्ता में लकार का निर्द्देश उचित नहीं है। यद्यपि शकटी आदि का निष्क्रमण आदि होता है, तथापि चेतनाधिष्ठित का ही, स्वतन्त्र का नहीं।

अन्य आचार्य—**कथं तर्हीति**। यदि निष्क्रमण आदि चेतन में ही मानते हैं तो 'द्वारमभिनिष्क्रामति' का निर्द्देश कैसे करेंगे?

उत्तरपक्षी—**अभिनिष्क्रमणमिति**। प्रकृत सूत्र में लकार को कर्त्ता अर्थ में न पढ कर यहाँ ल्युट् प्रत्ययान्त भव का निर्द्देश करना चाहिये-'अभिनिष्क्रमणं द्वारम्' ऐसा। इससे चेतनाधिष्ठित होने से तथा अचेतन में भी व्यापार देखे जाने से प्रत्यय हो जायेगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रश्नभाष्य—**स तर्हीति**। तो क्या भावप्रत्ययान्त अभिनिष्क्रमण पद का सन्निवेश कर प्रकृत सूत्र के स्थान पर 'अभिनिष्क्रमणं द्वारम्' ऐसा सूत्र पढा जाना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न कर्त्तव्य इति**। भावप्रत्ययान्त पद का अभिनिवेश आवश्यक नहीं है। सूत्र को कर्त्रर्थक लकारान्त यथान्यास ही रखिये। यथान्यासपक्ष में प्राप्त दोषों का वारण करते हैं-**अचेतनेष्वपीति**। अचेतन में भी चेतन की तरह व्यवहार देखा जाता है। जैसे-'इस भवन का यह कोना '**अभिनिःसृतः**'=निकल गया, **अयम्**=इस भवन का यह कोण **अभिप्रविष्टः**=अन्दर चला गया'। एवं '**वायुर्निष्क्रामति**' यह प्रयोग भी है; अतः पादविक्षेपमात्र को ही निष्क्रमण नहीं कह सकते हैं। यहाँ 'अभिनिःसृतः' और 'अभिप्रविष्टः' में उभयत्र 'क्त' प्रत्यय गत्यर्थक धातु से 'गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुह- जीर्यतिभ्यश्च' ३.४.७२ से कर्त्ता में है। कर्तृसाध्यक्रिया का आरोप कर 'अभिनिष्क्रामति द्वारम्' में करण का निर्द्देश है।। **अभिनि-**।।

अधिकृत्य कृते ग्रन्थे ४.३.८७

*** लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलम् * अधिकृत्य कृते ग्रन्थ इत्यत्र आख्यायिकाभ्यो बहुलं लुग्वक्तव्यः। वासदत्ता। सुमनोत्तरा। न च भवति भैमरथी।**

'तद् गच्छति पथिदूतयोः' ४.३.८५ से द्वितीयान्त 'तद्' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'ग्रन्थ अर्थ वाच्य होने पर द्वितीयान्त प्रातिपदिक से प्रत्यय हों'। जैसे-शारीरक=आत्मा, तमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः शारीरकीयः=चतुर्लक्षणीसूत्रसन्दर्भ। यहाँ 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ से छ प्रत्यय है।

वार्तिककार—**लुबाख्यायिकाभ्य इति**। 'लुबाख्यायिकाभ्यः' में तादर्थ्य में चतुर्थी माननी चाहिये, अन्यथा आख्यायिवाचक से प्रत्ययोत्पत्ति असम्भव होगी। 'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे' सूत्र से विहित प्रत्यय का आख्यायिका से बाहुलकात् लुक् कहना चाहिये-वासदत्ता सुमनोहरा। बाहुलकात् 'भैमरथी' में लुक् नहीं है।। **अधिकृत्य-**।।

शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादिभ्यश्छः ४.३.८८

*** द्वन्द्वे देवासुरादिभ्यः प्रतिषेधः * द्वन्द्वे देवासुरादिभ्यः प्रतिषेधो वक्तव्यः। दैवाऽसुरं राक्षोऽसुरम्। दैवासुरी राक्षोऽसुरी।।** शिशुक्रन्दयमसभ।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूत्रार्थ—'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे' अर्थ में द्वितीयान्त प्रातिपदिक शिशुक्रन्द, यमसभ, द्वन्द्वसमास, इन्द्रजनन आदि से छ प्रत्यय हो'। शिशूनां क्रन्दः शिशूक्रन्दस्तमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः शिशूक्रन्दीयः। इसी तरह-यमसभीयः, आदि भी इसके उदाहरण हैं। इस सूत्र में निर्दिष्ट 'इन्द्रजननादि' आकृतिगण है; अतः 'विरुद्धभोजनीयम् अध्यायं व्याख्यास्यामि' में भी 'छ' सिद्ध हो गया।

वार्तिककार—**द्वन्द्व इति**। प्रकृत सूत्र में द्वन्द्व से भी प्रत्यय विहित है। द्वन्द्व से प्रत्ययविधि में देवासुरादिगणपठित द्वितीयान्त प्रातिपदिक से छ का प्रतिषेध कहना चाहिये। 'देवाश्चासुराश्चेत्यनयोः समाहारो देवासुरम्, 'येषां च विरोधः शाश्वतिकः' २.४.९ से एकवद्भाव है। 'देवासुरमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः दैवासुरमाख्यानम्'। इसी तरह 'राक्षोऽसुरमाख्यानम्'। देवासुरमधिकृत्य कृतेति दैवासुरी आख्यायिका। इसी तरह-राक्षोऽसुरी आख्यायिका।। **शिशुक्रन्द-**।।

सोऽस्य निवासः ४.३.८९
अभिजनश्च ४.३.९०

अथ निवासाऽभिजनयोः को विशेषः? निवासो नाम यत्र सम्प्रत्युष्यते; अभिजनो नाम यत्र पूर्वैरुषितम्।। अभिजनश्च।।

सूत्रार्थ—'सोऽस्य निवासः' अर्थ में प्रथमान्त प्रातिपदिक से प्रत्यय हों'। जैसे-स्रुघ्नो निवासो वासाधिकरणमस्येति स्रौघ्नः। ४.३.८९.

उत्तरसूत्र में 'सोऽस्य' पद की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'सोऽस्याभिजनः' अर्थ में प्रथमान्त से प्रत्यय हों'। अभिजायते एभ्य इति अभिजनः' इस व्युत्पत्ति से यहाँ अभिजन पद से पूर्व बान्धव अर्थ इष्ट है। तत्सम्बन्ध से देश अभिजन हुआ। जैसे-स्रुघ्नोऽभिजनोऽस्येति स्रौघ्नः। ४.३.९०.

प्रश्नभाष्य—**अथ निवासेति**। अभिजनशब्द से पूर्व बान्धव अर्थ इष्ट है; तत्सम्बन्ध से यहाँ देश लिया जायेगा। 'निवस्यतेऽस्मिन्निति निवासः' अधिकरणघञन्त से ही देश ही वाच्य है। इस तरह निवास और अभिजन दोनों से देश अर्थ ही वाच्य है; फिर 'निवासः' और 'अभिजनः' दोनों का ग्रहण किया है, इसमें क्या भेद है?

सिद्धान्ती—**निवासो नामेति**। जहाँ स्वयं रहता है, वह उसका निवास है। जहाँ पूर्वजों का निवास था वह अभिजन है। यहाँ निवाससाहचर्य से 'सहचरितासहचरितयोः सहचरितस्यैव ग्रहणम्' न्याय से अभिजन पद के द्वारा देश

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थ लिया जायेगा, पूर्वबान्धव अर्थ नहीं।। **अभिजनश्च**।।

वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन् ४.३.९८

किमर्थं वासुदेवशब्दाद्वुन्विधीयते, न 'गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यो बहुलं वु'ञित्येव सिद्धं, न ह्यस्ति विशेषो वासुशब्दाद्वुञो वा वुनो वा। तदेव रूपं स एव स्वरः। इदं तर्हि प्रयोजनं-'वासुदेवशब्दस्य पूर्वनिपातं वक्ष्यामी'ति। अथ वा नैषा क्षत्रियाख्या, संज्ञैषा तत्र भगवतः।। वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्।।

'सोऽस्य निवासः' ४.३.८९ से 'सोऽस्य' और 'भक्तिः' ४.३.९५ की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'साऽस्य भक्तिः' अर्थ में वासुदेव और अर्जुन पद से वुन् हो'। जैसे-वासुदेवो भक्तिरस्येति वासुदेवकः। अर्जुनो भक्तिरस्येति अर्जुनकः।

पूर्वपक्षी—**किमर्थमिति**। 'गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यो बहुलं वुञ्' ४.३.९९ से ही वासुदेव पद से 'साऽस्य भक्तिः' अर्थ में वुञ् सिद्ध था। वुञ् अथ वा वुन् होने पर 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' ६.१.१९५ से निन्निमित्तक अथ वा ञिन्निमित्तक आद्युदात्त ही होगा, इस तरह रूपभेद भी नहीं है। उभय प्रत्ययों में एक सा ही रूप हो रहा है; फिर प्रकृत में वासुदेव पद का ग्रहण क्यों किया गया है?

उत्तरपक्षी—**इदं तर्हीति**। 'अल्पाऽच्तरम्' २.२.३४ की अपेक्षा 'अभ्यर्हितं च' वा.१४१२ की बलवत्ता है; अतः 'अभ्यर्हितत्वात् पूर्वनिपात हो' इसके लिए वासुदेवशब्द का ग्रहण है। पूर्व प्रश्न का ही अन्य उत्तर देते हैं-**अथ वेति**। यहाँ वासुदेवशब्द क्षत्रियविशेष का वाचक नहीं है; अपि तु 'यो वा समस्ते यस्मिन् समस्तं स वासुः, दीव्यतीति देवः, वासुश्चासौ देवश्च वासुदेवः' इस व्युत्पत्ति से वासुदेवशब्द भगवान् में योगरूढ है।। **वासुदेवार्जुनाभ्यां-**।।

जनपदिनां जनपदवत्सर्वं जनपदेन समानशब्दानां बहुवचने ४.३.१००

सर्ववचनं किमर्थम्? *सर्ववचनं प्रकृतिनिर्ह्रासार्थम्* सर्ववचनं क्रियते 'प्रकृतिनिर्ह्रासार्थम्'। प्रकृतिनिर्ह्रासो यथा स्यात् *तच्च मद्रवृज्यर्थम्* तच्च मद्रवृज्यर्थं द्रष्टव्यम्। माद्रो भक्तिरस्य माद्रौ वा भक्तिरस्य मद्रक इत्येव यथा स्यात्। वार्ज्यो भक्तिरस्य वार्ज्यौ वा भक्तिरस्य वृजिक इत्येव यथा स्यात्। जनपदिनां जनपद।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'जनपदवत्' ऐसा वत्यन्तनिर्द्देश होने से यह अतिदेश सूत्र है। 'जनपद-तदवध्योश्च' ४.२.२४ इस प्रकरण में निर्द्दिष्ट प्रत्ययों का यहाँ अतिदेश है।

सूत्रार्थ—'बहुवचने=बहुत्वार्थक प्रत्यय पर रहते जो जनपदेन=जनपदवाचिशब्द के साथ समानशब्दानां=समानः शब्दः श्रवणं येषां तथाविधास्तेषाम्=जनपदवाचिशब्दों के समान, जनपदिनाम्= जनपदवाचिशब्दों का सर्वस्वम्=प्रकृति-प्रत्यय, जनपदवत् हो'। यहाँ सर्वपदसन्निधान से प्रकृति और प्रत्यय दोनों का जनपदातिदेश है। जैसे-'अङ्गा जनपदो भक्तिरस्येति आङ्गकः'। यहाँ 'अवृद्धादपि बहुवचनविषयात्' ४.२.१२५ से वुञ् है। इसी तरह 'अङ्गाः क्षत्रिया भक्तिरस्येति आङ्गकाः' में भी प्रकृत सूत्र से ही वुञ् है।

प्रश्नभाष्य—**सर्ववचनमिति**। यदि सर्वपद का ग्रहण नहीं किया जाये तब भी 'जनपदवत्' यह सामान्य अतिदेश होने से प्रकृति प्रत्यय इत्येतद् उभय का अतिदेश हो जायेगा। इस तरह सामान्यातिदेश से ही उभयातिदेश सिद्ध हो जा रहा था, पुनः उसके लिए सर्वपद का ग्रहण क्यों है?

उत्तरपक्षी—**प्रकृतिनिर्ह्रासार्थमिति**। प्रकृति का न्यूनत्व हो सके, इसके लिए सर्वपद का ग्रहण है। अन्यथा प्रधान होने से प्रत्यय का ही अतिदेश होता, प्रकृति का नहीं। सर्वपद ग्रहण के द्वारा प्रकृति और प्रत्यय उभय का अतिदेश होता है। मूल में 'निर्ह्रास'पद का अर्थ अपचय अथ वा अल्पत्व है। सर्वपदग्रहण से प्रकृति का जनपदवत् अतिदेश करने से प्रकृति का अल्पत्व गृहीत है। इससे एकवचन अथ वा द्विवचन में भी यदि प्रकृति हो तो उसको भी जनपदवत् अतिदेश हो जायेगा।

इसे उदाहरणों से स्पष्ट करते हैं—**तच्चेति**। सर्वपद से प्रकृति का अल्पत्व= एकवचन अथ वा द्विवचन में होने पर भी 'माद्रो भक्तिरस्येति मद्रकः' में प्रकृति के एकवचन में होने पर भी जनपदवत् अतिदेश होने से 'मद्रवृज्योः कन्' ४. २.१३१ होता है। यही वात 'माद्रौ भक्तिरस्येति मद्रकः' में भी समझना चाहिये। यहाँ उभत्र 'मद्रस्याऽपत्यम्' इस अर्थ में 'द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण्' ४.१. १७० से अण्प्रत्यय है। इसी तरह 'वृजेरपत्यं वार्ज्यः' में 'वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्' ४.१.१७१ से ञ्यङ् प्रत्यय है। 'वार्ज्यो भक्तिरस्येति वृजिकः' में एकवचन अथ वा द्विवचन पर रहते भी प्रकृति को जनपदवत् अतिदेश होने से कन् प्रत्यय हो गया।। **जनपदवत्**।।

तेन प्रोक्तम् ४.३.१०१

* प्रोक्तग्रहणमनर्थकं तत्राऽदर्शनात् * **प्रोक्तग्रहणमनर्थकम्**। किं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कारणम्? 'तत्राऽदर्शनात्'। ग्रामेग्रामे काठकं कालापकं च प्रोच्यते तत्राऽदर्शनात्। न च तत्र प्रत्ययो दृश्यते *ग्रन्थे च दर्शनात्* 'ग्रन्थे च दर्शनात्'। यत्र च दृश्यते ग्रन्थः स भवति। 'तत्र कृते ग्रन्थ' इत्येव सिद्धम्।

सूत्रार्थ—'तृतीयान्त प्रातिपदिक से प्रोक्तम्=प्रथम प्रकाशित अर्थ में प्रत्यय हो'। जैसे-पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयं व्याकरणम्। यहाँ 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ से छ प्रत्यय है।

प्रकृत में प्रपूर्वक वच परिभाषणे धा.पा.१०८८ धातु प्रकाशन अथ वा अध्यापना-रूप अर्थ में है, अथ वा करण में है? आद्य='प्रकाशन अर्थ में प्रत्यय नहीं देखा जाता है; अध्यापनारूप द्वितीय अर्थ में सूत्रान्तर से प्रत्यय सिद्ध है' ऐसा मान कर पूर्वपक्ष करते हैं-**प्रोक्तग्रहणमिति**। सुशर्मा आदि ब्राह्मणों के प्रति ग्राम में काठक और कालापक का प्रवचन=प्रकाशन करने पर भी 'सौशर्मणं, कालापकं, काठकं वा' ऐसा प्रयोग नहीं होने से प्रोक्त पद में प्रकाश- नार्थक प्रत्यय नहीं माना जा सकता है; अतः प्रकाशनार्थक प्रोक्तशब्द व्यर्थ है।

अथ च प्रोक्त पद में प्रकाशनार्थक प्रत्यय का अभाव होने में दूसरा हेतु देते हैं-**ग्रन्थे चेति**। जहाँ प्रोक्त पद में प्रकाशनार्थक प्रत्यय देखा जाता है वहाँ प्रकाश्य ग्रन्थ होता है; प्रकाश्य ग्रन्थ अर्थ में 'तेन कृतो ग्रन्थः' ऐसा विग्रह करके 'पाणिनिना कृतो ग्रन्थः पाणिनीयः' रूप सिद्ध हो जायेगा।

छन्दोऽर्थं तर्हीदं वक्तव्यम्। न हि च्छन्दांसि क्रियन्ते। नित्यानि च्छन्दांसीति *छन्दोऽर्थमिति चेत्तुल्यम्* छन्दोऽर्थमिति चेत्तुल्यमेतद्भवति, ग्रामेग्रामे काठकं कालापकं च प्रोच्यते तत्राऽदर्शनात्। न च तत्र प्रत्ययो दृश्यते। 'ग्रन्थे च दर्शनात्'। यत्र च दृश्यते ग्रन्थः स भवति, तत्र कृते ग्रन्थ इत्येव सिद्धम्।

अन्य आचार्य—**छन्दोऽर्थमिति**। 'प्रकर्षेण उक्तं प्रोक्तम्=प्रध्यापनेनार्थव्या-ख्यानेन वा प्रकाशितम्' ऐसा अर्थ लेने से यहाँ प्रकाशनार्थक प्रत्यय का प्रयोग कर प्रोक्त पद का ग्रहण वेद के लिए है।

इतर आचार्य इस पक्ष का खण्डन करते हैं-**न हीति**। वेद कृतक नहीं है; अपि तु कर्त्ता का स्मरण नहीं होने से नित्य है, अतः प्रकृत सूत्र छन्दोऽर्थक नहीं हो सकता है।

अथ च प्रकाशन अर्थ में प्रत्यय मानने पर उसकी अतिव्याप्ति दे रहे हैं-**छन्दोऽ-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

र्थमिति। प्रोक्तग्रहण को छन्दोऽर्थक मानने पर 'ग्रामेग्रामे काठकं कालापकं च प्रोच्यते सूशर्मा' में 'सौशर्मणं, काठकं, कालापकं च' की आपत्ति इस लिए होगी कि काठक और कालापक वेद के तुल्य हैं। इस तरह प्रोक्त पद को छन्दोऽर्थक मानने पर तत्तुल्य में अतिव्याप्ति हो रही है। जब कि 'सौशर्मणं, काठकम्' ऐसा प्रयोग देखा नहीं जाता है। जहाँ प्रकाशन अर्थ में प्रत्यय देखा जा रहा है, वह ग्रन्थ है; जब कि प्रकाश्य अर्थ ग्रन्थ होने पर 'तेन कृते ग्रन्थे' इस शास्त्रान्तर से प्रत्यय सिद्ध हो रहा है; अतः प्रकृत प्रोक्त पद को प्रकाश्य ग्रन्थरूप अर्थ के लिए प्रकानार्थक प्रत्ययान्त नहीं माना जा सकता है। यहाँ पाठकगण को यह ध्यान रखना चाहिये कि भगवान् भाष्यकार 'तेनैकदिक्' ४.३.११२ से तृतीयान्त 'तेन' पद की अनुवृत्ति 'कृते ग्रन्थे' ४.३.११६ में करके 'तेन कृते ग्रन्थे' से 'पाणिनिना कृतो ग्रन्थः पाणिनीयः' में शास्त्रान्तर से ही प्रत्ययसिद्धि बता रहे है।

ननु चोक्तं-'न हि च्छन्दांसि क्रियन्ते, नित्यानि च्छन्दांसी'ति। यद्यप्यर्थो नित्यो या त्वसौ वर्णानुपूर्वी साऽनित्या। तद्भेदाच्चैतद्भवति-काठकं कालापकं मौदकं पैप्पलादकमिति। न तर्हीदानीमिदं वक्तव्यम्? वक्तव्यं च। किं प्रयोजनम्? यत्तेन प्रोक्तं न च तेन कृतं-माधुरी वृत्तिः। यदि तर्ह्यस्य निबन्धनमस्तीमेव वक्तव्यं तन्न वक्तव्यम्। तदप्यवश्यं वक्तव्यम्। यत्तेन कृतं न च तेन प्रोक्तम्। वाररुचं काव्यम्। जालूकाः श्लोकाः।। तेन प्रोक्तम्।।

सिद्धान्ती ने 'न हि च्छन्दांसि क्रियन्ते। नित्यानि च्छन्दांसि' कहा है; वहाँ भी वर्णसज्जा को अनित्य मान कर अपर सिद्धान्ती आचार्य उत्तरपक्ष देते हैं-**ननु चोक्तमिति**। वेदार्थ के नित्य होने पर भी जो वर्णानुपूर्वी शब्दरचना है, वह अनित्य है। महाप्रलय आदि में वेदों के लुप्त हो जाने पर उसके उद्धारार्थ मन्त्रद्रष्टा ऋषिगण स्वम् उत्पन्न हो कर संस्कारातिशय के द्वारा वेदार्थों का स्मरण कर शब्दरचना करते हैं। **तद्भेदात्**=उसी शब्दरचना के भेद से 'काठकं, कालापकं, मौदकं, पैप्पलादकम्' ऐसा प्रयोग होता है। अर्थात् 'कठेन प्रोक्तमिति काठकं, कलापेन प्रोक्तमिति कालापकं, मुदेन प्रोक्तमिति मौदकं, पिप्पलादेन प्रोक्तमिति पैप्पलादकम्'। इस तरह वर्णानुपूर्वी शब्दरचना को अनित्य मान कर 'काठकं, कालापकम्' इत्यादि में प्रकाश्य अर्थ के प्रसिद्ध होने से 'प्रोक्तम्' मे प्रकाशनार्थक प्रत्यय ही मानना चाहिये।

इतर आचार्य सूत्र का खण्डन करते हैं—**न तर्हीदानीमिति**। यदि 'काठकम्'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इत्यादि में प्रकाशनार्थक प्रत्यय मानेंगे तो 'कठेन प्रोक्तं काठकम्' इत्यादि में 'तेन कृते ग्रन्थे' ४.३.११६ से ही प्रत्यय सिद्ध हो जायेगा, उसके लिए प्रकृत सूत्र आवश्यक नहीं है। अन्य आचार्य सूत्र का समर्थन करते हैं-**वक्तव्यं चेति**। 'तेन प्रोक्तं=प्रकर्षेण प्रकाशितम्' इस अर्थ में ही 'काठकम्' इत्यादि हों, 'तेन कृतम्' इस अर्थ में न हों। जैसे-'**मधुरेण कृता**=प्रथतः प्रकाशितेति माधुरी वृत्तिः' ऐसा प्रयोग है वैसे 'कठेन प्रोक्तं काठकम्' नहीं होगा। कल्पान्र में यही वेदभाग किसी अन्य ऋषि द्वारा भी प्रकाशित हो सकता है।

इतर आचार्य—**यदि तर्हीति**। यदि 'काठकं, कालापकम्' में 'तेन प्रोक्तम्' से प्रत्यय सिद्ध है तो 'तेन प्रोक्तम्' सूत्र ही रहने दीजिये; 'कृते ग्रन्थे' ४.३.११६ सूत्र करने की आवश्यकता नहीं है।

अन्य आचार्य 'कृते ग्रन्थे' ४.३.११६ सूत्र का समर्थन करते हैं-**तदप्यवश्यमिति**। 'कृते ग्रन्थे' ४.३.११६ सूत्र भी अवश्य करना चाहिये। तृतीयान्त प्रातिपदिक से जहाँ कृत अर्थ में प्रत्यय होगा, वहाँ प्रोक्त अर्थ में नहीं होगा। कृत और प्रोक्त दोनों भिन्नार्थक हैं, समानार्थक नहीं। उदाहरणों से 'तेन कृतम्' को स्पष्ट करते हैं-**वाररुचमिति**। 'वरुचिना कृतमिति वाररुचं काव्यं, जलूकेन कृता इति जालूकाः श्लोकाः' यहाँ 'तेन कृतम्' अर्थ में प्रत्यय है। 'तेन प्रोक्तम्' का उदाहरण भाष्यकार ने 'काठकम्' आदि भी दिया है; अतः यहाँ 'परकृत का प्रकाशन, अथ वा स्वकृत का प्रकाशन' द्विविध अर्थ लेना चाहिये। इससे यह आया कि प्रोक्ताधिकार में ही कठादि से वक्ष्यमाण प्रत्ययें का विधान करना चाहिये।। **तेन प्रोक्तम्**।।

कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च ४.३.१०४

*** प्रत्यक्षकारिग्रहणम् * प्रत्यक्षकारिग्रहणं कर्त्तव्यमन्तेवास्यन्तेवासिभ्यो मा भूदिति। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम् *** कलापिखाडायनग्रहणं ज्ञापकं-वैशम्पायनान्तेवासिषु प्रत्यक्षकारिग्रहणस्य *** यदयं कलापिखाडायनग्रहणं करोति तज्ज्ञापयत्याचार्योनाऽन्तेवास्यन्तेवासिभ्यो भवती'ति।**

बहुवचननिर्द्देश से सूत्र में स्वरूप का ग्रहण न हो कर अर्थग्रहण है। द्वन्द्वान्त में श्रुत अन्तेवासि पद उभयत्र अन्वित है। 'तेन प्रोक्तम्' ४.३.१०१ का अधिकार है। यहाँ सूर्व सूत्र 'काश्यपकौशिकाभ्यामृषिभ्यां णिनिः' ४.३.१०१ से 'णिनिः' का अनुवर्त्तन है। अतः सूत्रार्थ-'कलापि का अन्तेवासी और वैशम्पायन का अन्तेवासी का वाचक तृतीयान्त प्रातिपदिक से णिनि प्रत्यय हो'।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रोक्तार्थ में विहित अण् का यह अपवाद है। कलाप्यन्तेवासी चार हैं-१-हरिद्रु, २-छगली, ३-तुम्बुरु, ४-उलप। एवं वैशम्पायना- न्तेवासी नव हैं-१-आलम्बिचरक, २-कलिङ्ग, ३-कमल, ४-ऋचाभ, ५-आरुणि, ६-ताण्ड्य, ७-श्यामायन, ८-कठ, ९-कलापि। यहाँ पर साक्षात् शिष्य ही गृहीत हैं, प्रशिष्य नहीं। जैसे-कलाप्यन्तेवासी-हरिद्रुणा प्रोक्तमधीयते इति हारिद्रविणः। वैशम्पायनान्तेवासी-आलम्बिचरकेण प्रोक्तम-धीयत दति आलम्बिचरकिणः।

शिष्य के शिष्य में भी शिष्यत्वव्यवहार देखे जाने से कलापिवैशम्पायनान्तेवासी प्रशिष्य से भी 'तेन प्रोक्तमधीयते' अर्थ में णिनि प्राप्त हो रहा है, तद्व्यावृत्ति के लिए एकदेशी आचार्य वार्तिक का आरम्भ करते हैं-**प्रत्यक्षकारीति**। प्रशिष्यों से प्रत्ययप्राप्ति न हो, अपि तु शिष्यों से ही हो, इसके लिए प्रत्यक्षकारिग्रहण करना चाहिये।

अन्य आचार्य—**तत्तर्हीति**। तो क्या प्रशिष्यों से प्रत्ययप्राप्ति न हो, इसके लिए प्रत्यक्षकारिग्रहण करना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। प्रत्यक्षकारिग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है। प्रत्यक्षकारिग्रहण के अभाव में भी प्रशिष्यों से प्रत्यय की अप्राप्ति दिखाने के लिए भाष्य का अवतरण करते हैं-**कलापिखाडायनेति**। 'शौनकादि-भ्यश्छन्दसि' ४.३.१०६ सूत्र में आचार्य ने णिनिविधान के लिए खाडायनशब्द का पाठ किया है, वह प्रत्यक्षकारिग्रहण में प्रमाण होगा। एवं कलापिग्रहण भी उक्तार्थ में ज्ञापक है कि 'अन्तेवासी का अन्तेवासिवाचक पद से णिनि नहीं होता है'।

कथं कृत्वा ज्ञापकम्? वैशम्पायनान्तेवासी कठः। कठान्तेवासी खाडायनः। वैशम्पायनान्तेवासी कलापी। यद्यन्तेवास्यन्तेवासिभ्योऽपि स्यात्कलापिखाडायनग्रहणमनर्थकं स्यात्। पश्यति त्वाचार्योनान्तेवा-स्यन्तेवासिभ्यो भवतीति-ततः कलापिखाडायनग्रहणं करोति * छन्दोग्रहणं चेतरथा ह्यतिप्रसङ्गः * छन्दोग्रहणं च कर्त्तव्यम्। 'इतरथा ह्यतिप्रसङ्गः'। इतरथा ह्यतिप्रसङ्गः स्यात्। इहापि प्रसज्येत-तित्तिरिणा प्रोक्ताः श्लोका इति।।

प्रश्नभाष्य—**कथं कृत्वेति**। कलापि और खाडायनग्रहण उक्तार्थ का ज्ञापक कैसे है?

उत्तरभाष्य—**वैशम्पायनेति**। वैशम्पायन का अन्तेवासी कठ है, एवं कठ का अन्तेवासी खाडायन है, एवं वैशम्पायन का अन्तेवासी कलापि है। यदि अन्ते-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वास्यन्तेवासी का वाचक प्रातिपदिक से भी णिनि होता तो कलापि एवं खाडायन से भी णिनि सिद्ध था, पुनः शौनकादिगण में आचार्य ने जो खाडायन पद का पाठ किया वह व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा-'कलाप्यन्तेवासी और वैशम्पायनान्तेवासी से ही णिनि होता है, अन्तेवास्यन्तेवासी से नहीं'।

प्रकृत सूत्र की अतिव्याप्ति लोक में भी हो रही है, उसका वारण करने के लिए सिद्धान्ती आचार्य भाष्य का अवतरण करते हैं-**छन्दोग्रहणमिति**। 'तेन प्रोक्तम्' ४.३.१०१ सूत्रस्थ णिनिप्रकरण में 'छन्दसि' पद का सन्निवेश करना चाहिये। इससे प्रकृतसूत्र छन्दोमात्रविषय होगा। इससे 'तित्तिरिणा प्रोक्ताः श्लोकाः' में भी 'तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण्' ६.३.१०२ से छण् नहीं हुआ। यहाँ छण् के अभावपक्ष में अण्प्रत्यय भी नहीं होगा। इसका कारण 'छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि' ४.२.६६ सूत्र पर स्पष्ट कर आया हूँ। वहाँ 'इनिर्वा प्रोक्ते तद्विषयः' ऐसा कहा है। वार्तिक में इनिपद से णिनि भी गृहीत है। इससे प्रोक्तार्थविहित इनि की ही तद्विषयता बतायी गयी है, अण् की नहीं; अतः तद्विषयता का अभाव होने से 'तित्तिरिणा प्रोक्ताः श्लोकाः' में छण् के अभावपक्ष में अण् भी नहीं होगा।। **कलापिवैशम्पायन-**।।

पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु ४.३.१०५

* पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रतिषेधस्तुल्यकालत्वात् * **पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेष्वित्यत्र याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रतिषेधो वक्तव्यः-याज्ञवल्क्यानि ब्राह्मणानि। सौलभानीति। किं कारणम्? 'स्तुल्य-कालत्वात्' एतान्यपि तुल्यकालानीति।।** पुराणप्रोक्तेषु।।

'तेन प्रोक्तम्' ४.३.१०१ और 'णिनिः' का अनुवर्त्तन है। मन्त्रव्यतिरिक्त वेदभाग ब्राह्मणपदवाच्य है। बोधायनादिकल्पसूत्र कल्पपद वाच्य है।

सूत्रार्थ—'पुरातनमुनिप्रोक्त तथाभूत ब्राह्मण एवं कल्पग्रन्थ वाच्य होने पर तृतीयान्त प्रातिपदिक से णिनि हो'। जैसे-'भल्लुना= पुरातनमुनिना प्रोक्ता भाल्लविनो ब्राह्मणग्रन्थाः'। पिङ्गेन प्रोक्तः कल्पग्रन्थ इति पैङ्गी कल्पग्रन्थः। भल्लु, शाट्यायन और ऐतरेय ये ब्राह्मणों में हैं। एवं पिङ्ग तथा अरुण पराजि कल्पों में हैं।

वार्तिककार—**पुराणप्रोक्तेष्विति**। प्रकृत सूत्र में याज्ञवल्क्य आदि गणपठितशब्दों से णिनि का प्रतिषेध कहना चाहिये। भल्लु व पिङ्ग आदि के समान कालिक याज्ञवल्क्य आदि पुरातन मुनि भी है; अतः 'पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु' अर्थ में 'याज्ञवल्क्येन प्रोक्तानि ब्राह्मणानि' में भी णिनि प्राप्त होगा, उसका प्रतिषेध कहने से यहाँ सामान्यविहित अण्प्रत्यय हो गया। एवं 'सुलभेन प्रोक्तानि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सौलभानि' में भी समझें।। पुराण-।।

कृते ग्रन्थे ४.३.११६

*** कृते ग्रन्थे मक्षिकादिभ्योऽण् * कृते ग्रन्थ इत्यत्र मक्षिकादिभ्योऽण्वक्तव्यः। मक्षिकाभिः कृतं माक्षिकम् * तद्विशेषेभ्यश्च * तद्विशेषेभ्यश्चाऽण्वक्तव्यः। सरघाभिः कृतं सारघम्। गार्मुतम्। पौत्तिकम्। स तर्हि वक्तव्यः? न वक्तव्यः।**

यहाँ 'तेन' ४.३.११२ पद की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'तृतीयान्त प्रातिपदिक से 'कृतो ग्रन्थः' अर्थ में प्रत्यय हों'। जैसे-वररुचिना कृतो वाररुचो ग्रन्थः'।

एकदेशी आचार्य—**कृत इति**। 'कृते ग्रन्थे'विधि में मक्षिकादिगणपठित शब्दों से अण्प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे-मक्षिकाभिः कृतं माक्षिकम्। अग्रन्थार्थ इस वार्तिक का आरम्भ है। **तद्विशेषेभ्यश्चेति**। मक्षिकादि का विशेषवाचिशब्दों से भी अण् कहना चाहिये-**सरघा**= मक्षिकाजातिविशेषः, सरघाभिः कृतमिति सारघं मधु। गृमुतेन कृतमिति गार्मुतम्। पुत्तिकेन कृतमिति पौत्तिकम्'।

प्रश्नभाष्य—**स तर्हीति**। तो क्या 'कृते ग्रन्थे मक्षिकादिभ्योऽण्' और 'तद्विशेषेभ्यश्च' यह दोनों वार्तिक पढा जाना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्य इति**। इन वार्तिकों की आवश्यकता नहीं है।

*** योगविभागात्सिद्धम् * योगविभागः करिष्यते। 'कृते ग्रन्थे'। ततः 'संज्ञायाम्'। संज्ञायां च 'तेन कृत' इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। सरघाभिः कृतं सारघम्। गार्मुतम्। पौत्तिकम्। ततः 'कुलालादिभ्यो वुञ्'। 'संज्ञायामित्येव।। कृते ग्रन्थे।।**

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये
चतुर्थाऽध्यायस्य तृतीये पादे प्रथममाह्निकम्

●

उक्त वार्तिक के अभाव में भी इनकी सिद्धि बताते हैं-**योगविभागादिति**। 'कृतेग्रन्थेसंज्ञायांकुलालादिभ्योवुञ्' ऐसा संहितापाठ है। 'संज्ञायांकुलालादिभ्योवुञ्' सूत्र का यागविभाग कर 'संज्ञायाम्' प्रथम सूत्र और 'कुलालादिभ्योवुञ्' द्वितीय सूत्र पढेंगे। इसमें प्रथम योग 'संज्ञायाम्' है। संज्ञा गम्य होने पर उससे यथाविहित प्रत्यय हो कर 'सारघं, गार्मुतं, पौत्तिकम्' रूप हो जायेगा। द्वितीय योग 'कुलालादि-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भ्योवुञ्' में भी 'संज्ञायाम्' की अनुवृत्ति करेंगे। इससे द्वितीय योग भी संज्ञागम्य होने पर ही प्रवृत्त होगा।। **कृते-**।।

श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य
चतुर्थ अध्याय तृतीय पाद प्रथम आह्निक पर
डॉ. हरिनारायण तिवारी द्वारा रचित
'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

❀ तृतीये पादे द्वितीयमाह्निकम् ❀

तस्येदम् ४.१.१२०

*** तस्येदमित्यसन्निहितेऽप्राप्तिरिदमः प्रत्यक्षवाचित्वात् * तस्येदमित्यसन्निहितेऽप्राप्तिः। किं कारणम्? 'इदमः प्रत्यक्षवाचित्वात्'। इदमित्येतत्प्रत्यक्षे वर्त्तते। तेनेहैव स्यात्-तस्येदमिति। तस्याऽद इति तस्य तदित्यत्र न स्यात् * सिद्धं तु यद्योगा षष्ठी तत्र * सिद्धमेतत्। कथम्? 'यद्योगा षष्ठी वर्त्तते तत्रे'ति वक्तव्यम्।**

यहाँ 'तद्' पद से विग्रहवाक्यस्थ षष्ठ्यन्त पद गृहीत है। 'शेषे' ४.२.९२ का अनुवर्तन है। इससे अपत्यादि-चतुरर्थ्यन्त अर्थों से भिन्न शेषभूत सर्वविशेषों का सामान्य व विशेषरूप से प्रत्ययार्थत्व लब्ध है। परन्तु अपत्यादि अर्थों की किसी भी रूप से इदंशब्दवाच्यता नहीं है, इस वात को 'तस्यापत्यम्' ४.१.९२ सूत्र पर कह आया हूँ।

सूत्रार्थ—'साधारण सूत्रों से विहित अण् आदि प्रत्यय तथा 'राष्ट्रावारपाराद् घखौ' ४.२.९३ इत्यादि विशेष सूत्रों से विहित घादिविशेषप्रत्यय षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से इदमर्थ में हों'। सामान्य प्रत्यय-उपगोरिदमौपगवम्। विशेष प्रत्ययराष्ट्रस्येदं राष्ट्रियम्।

सन्निकृष्ट पदार्थ का बोध कराने के लिए इदंशब्द का प्रयोग होता है; अतः उसी अर्थ में प्रत्यय की प्राप्ति मान कर पूर्वपक्ष करते हैं-**तस्येदमिति**। इदंशब्द प्रत्यक्षवाची है, अतः प्रत्यक्षत्वावच्छिन्नरूप अर्थ में ही प्रत्यय की प्राप्ति होगी। जहाँ 'तस्यादः, तस्य तद्' रूप अप्रत्यक्षत्वावच्छिन्न अर्थ होगा वहाँ षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से प्रत्यय प्राप्त नहीं होने से 'उपगोस्तद् औपगवम्' इत्यादि में अव्याप्ति हो रही है।

अब उत्तरपक्षी आचार्य अप्रत्यच्छत्वावच्छिन्न रूप अर्थ में भी षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से प्रत्ययविधान के लिए भाष्य का अवतरण करते हैं-**सिद्धं त्विति**। 'षष्ठीशेषे' २.३.५० से तत्पदोत्तर षष्ठीविभक्ति कर 'तस्येदम्' ऐसा निर्द्देश है। यहाँ षष्ठी-विधायक सूत्र में 'शेषे' विशेषण पद है। विशेषण यत्किञ्चिद् विशेष्यतानिरूपित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होता है, यह नियम है। इससे यद्योगा षष्ठी होने के कारण जिस सम्बन्धी के योग में षष्ठी होगी उसी के अर्थ में प्रत्ययविधान प्राप्त हुआ। इस तरह जहाँ 'उपगोरिदम्' में इदंसम्बन्धी के योग में षष्ठी है, वहाँ तादृश षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से तथा जहाँ 'उपगोस्तद्' एवम् 'उपगोरदः' में 'तद्' और 'अदः' सम्बन्धी षष्ठी है वहाँ तादृश षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से तदर्थ आदि में प्रत्यय होगा। 'तस्येदम्' में यद्योगा षष्ठी मानने पर 'उपगोरनन्तरम्, उपगोः समीपम्' इत्यादि में जहाँ अनन्तर, समीपादिसम्बन्धिनी षष्ठी है तादृश षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से अनन्तरादि अर्थों में प्रत्ययप्राप्ति की अतिव्याप्ति हो रही है।

*** अनन्तरादिषु च प्रतिषेधः * अनन्तरादिषु च प्रतिषेधो वक्तव्यः- तस्याऽनन्तरस्तस्य समीप इति। किं यद्योगा षष्ठी प्रवर्त्तत इत्यतोऽनन्तरादिषु प्रतिषेधो वक्तव्यः? नेत्याह-सर्वथाऽनन्तरादिषु प्रतिषेधो वक्तव्यः * सिद्धं तु परिगणनात् * सिद्धमेतत्। कथम्? 'परिगणनात्'। परिगणनं कर्त्तव्यं- * स्वे ग्रामजनपदमनुष्येभ्यः * स्वे ग्रामजनपदमनुष्येभ्य इति वक्तव्यम्। ग्राम-स्रौघ्नः। माथुरः। ग्राम। जनपद-आङ्गकः। वाङ्गकः। जनपद। मनुष्य-दैवदत्तः याज्ञदत्तः * पत्राद् वाह्ये * पत्राद् वाह्य इति वक्तव्यम्। आश्वम्। औष्ट्रम्। गार्दभम्।**

वार्तिककार उसका वारण करते हैं—**अनन्तरादिष्विति**। अनन्तरादि अर्थों के योग में विहित षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से अण् आदि प्रत्ययों का निषेध कहना चाहिये। उससे 'उपगोः समीपम्' ऐसा विग्रह कर 'औपगवम्' नहीं होगा।

अन्य आचार्य वार्तिक पर आक्षेप करते हैं—**किं यद्योगेति**। क्या 'तस्येदम्' में यद्योगा षष्ठी के पक्ष में 'अनन्तरादिषु च प्रतिषेधः' यह वचन पढना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नेत्याहेति**। न केवल पाणिनीयन्यास 'तस्येदम्'पक्ष में ही उक्त प्रतिषेध पढना चाहिये, अपि तु आचार्य कात्यायन ने भी 'तस्येदम्' ऐसा न्यास किया है, उनके मत में भी उक्त निषेधवार्तिक पढना चाहिये। अब यहाँ यह ध्यान देना चाहिये कि सूत्रन्यासपक्ष में अव्याप्तिरूप असाधारण दोष है, एवं 'सिद्धं तु यद्योगा षष्ठी तत्र' इस वार्तिकन्यासपक्ष में अव्याप्तिरूप साधारण दोष है।

दोनों पक्षों में दोष प्राप्त होने पर एकदेशी आचार्य इसका वारण करते हैं-**सिद्धं त्विति**। असाधारण दोष अव्याप्ति और साधारण दोष अतिव्याप्ति का वारण करने के लिए आचार्य ने परिगणन किया है। अर्थात् प्रथम दोष असन्निहित अर्थ में प्रत्ययविधान के लिए 'सिद्धं तु यद्योगा षष्ठी तत्र' मानना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चाहिये, एवं द्वितीय दोष अनन्तर, समीप आदि अर्थों में प्रत्यय की अप्राप्ति के लिए 'स्वे ग्रामजनपदमनुष्येभ्यः' इत्यादि परिगणन करना चाहिये। उससे इदम् आदि पदों के द्वारा 'स्वे ग्रामजनपदमनुष्येभ्य इति'-**स्वम्**=आत्मीय, ज्ञाति और धन अर्थ वाच्य होने पर ग्रामवाची, जनपदवाची और मनुष्यवाची पदों से ही प्रत्यय होंगे, अनन्तर, समीप आदि अर्थ वाच्य होने पर नहीं। इसे उदाहरणों से स्पष्ट करते हैं-**ग्रामेति**। 'स्रुघ्नस्यायं स्रौघ्नः, मथुराया अयं माथुर आत्मीयः' इत्यादि अर्थ हैं। **जनपद**-अङ्गानामयम् आङ्गकः, वङ्गानामयं वाङ्गकः' यहाँ 'अवृद्धादपि बहुवचनविषयात्' ४.२.१२५ से वुञ् है। **मनुष्य**-देवदत्तस्यायं दैवदत्तः, यज्ञदत्तस्यायं दैवदत्तः। **पत्रादिति**। वाह्य अर्थ गम्य होने पर षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक पत्र=वाहनवाची से प्रत्यय हों। जैसे-अश्वानामिदमाश्वम्, उष्ट्राणामिदम् औष्ट्रं, गर्दभानामिदं गार्दभम्।

*** रथाद्रथाङ्गे * रथाद्रथाङ्ग इति वक्तव्यम्। आश्वरथम्। औष्ट्र-रथम्। गार्दभरथम् * वहेस्तुरणिट् च * वहेस्त्रन्तादण्वक्तव्यः, इट् च वक्तव्यः। संवोढुः स्वं-सांवहित्रम् * अग्नीधः शरणे रण्भं च * अग्नीधः शरणे रण्वक्तव्यो भसंज्ञा च वक्तव्या। अग्नीधः शरणम्-आग्नीध्रम् * समिधामाधाने षेण्यण् * समिधामाधाने षेण्यण्वक्तव्यः। समिधामाधानो मन्त्रः- सामिधेन्यो मन्त्रः। सामिधेनी ऋक् * चरणाद् धर्माम्नाययोः * 'चरणाद् धर्माम्नाययो'रिति वक्तव्यम्। कठानां धर्म आम्नायो वा-काठकम्। कालापकम्। मौदकम्। पैप्पलादकम्।**

रथाद् रथाङ्ग इति। रथ का अङ्ग वाच्य होने पर षष्ठ्यन्त रथान्त प्रातिपदिक से प्रत्यय कहना चाहिये। यहाँ भाष्यकार ने 'आश्वरथम्' आदि रथान्त उदाहरण दिया है, अतः प्रकृत वार्तिक का तदन्त अर्थ किया गया है। अश्व-रथस्येदम् आश्वरथम् इत्यादि। **वहेस्तुरिति**। 'तृ'प्रत्ययान्त वह प्रापणे धा.पा. १००४ धातु को षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक तदन्त से 'स्वम्' अर्थ वाच्य होने पर प्रत्यय और तृच् का आगम कहना चाहिये। यहाँ पूर्ववार्तिक 'स्वे ग्रामजनपद-मनुष्येभ्यः' से 'स्वे' पद की अनुवृत्ति भी करनी चाहिये। संवोढुः **स्वं**=सांवहित्रम्। **अग्नीधः शरण इति**। शरण अर्थ गम्य होने पर अग्नीध् पद से रण् प्रत्यय तथा प्रकृति की भसंज्ञा कहनी चाहिये। 'अग्निमिधे इति अग्नीत्। यहाँ ञिइन्धी दीप्तौ धा.पा.१४४६ धातु अन्तर्भावित ण्यर्थ होने से सकर्मक है। अग्नीधः शरणं-गृहम् आग्नीध्रम्। यहाँ भसंज्ञा के द्वारा 'स्वादिस्वसर्वनामस्थाने' १.४.१७ से प्राप्त पदसंज्ञा का बाध होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब यहाँ यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि प्रकृत वार्तिक से विहित भसंज्ञा आकडारस्था नहीं है। फिर यहाँ 'एकस्यैकैव संज्ञा' यह नियम प्राप्त नहीं होगा। यहाँ भसंज्ञा से पदसंज्ञा का बाध कैसे कर सकते हैं? यदि यहाँ आप को भसंज्ञा से पदसंज्ञा का बाध इष्ट है तो यहाँ अङ्गसंज्ञा का बाध भी क्यों नहीं हो जाये?, तो इसका उत्तर इस प्रकार समझना चाहिये-'आग्नीध्रम्' की सिद्धि के लिए 'यचि भम्' १.४.१८ सूत्र के अनन्तर रण् प्रत्यय तथा तत्सन्नियोशिष्ट भसंज्ञा करनी चाहिये, यह भाष्यकार का आशय है।

समिधामाधान इति। आधान अर्थ वाच्य होने पर समित् पद से षेण्यण् प्रत्यय कहना चाहिये। 'षः प्रत्ययस्य' १.३.६ से 'ष्' की इत्संज्ञा, लोप, 'निमित्तापाये नैमित्तिकस्या- प्यपायः' न्याय से णत्वनिवृत्ति, अनुबन्धलोप हो कर 'एन्य' शेष है। समित्+ एन्य=सामिधेन्यः, आदि अच् को णिन्निमित्तक वृद्धि है। 'सामिधेनी ऋक्' में षिद्गौरादिभ्यश्च' ४.१.४१ से ङीष् और यलोप है। **चरणादिति**। धर्म और आम्नाय अर्थ गम्य होने पर **चरण**=शाखाध्येतृवाचिपद कठ, कलाप आदि से प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे-कठानां धर्म आम्नायो वा काठकं, कलापानां धर्म आम्नायो वा कालापकं, मुदामानां धर्म आम्नायो वा मौदकं, पिप्पलादानां धर्म आम्नायो वा पैप्पलादकम्। यहाँ सर्वत्र 'गोत्रचरणाद्वुञ्' ४.३.१२६ से वुञ् प्रत्यय है।

तत्तर्हीदं बहु वक्तव्यं; सूत्रं च भिद्यते। यथान्यासमेवास्तु। ननु चोक्तं-'तस्येदमित्यसंनिहितेऽप्राप्ति'रिति। किमिदं भवान् प्रत्ययार्थमेवोपालभ्यते, न पुनः प्रकृत्यर्थमपि? यथैव हीदमेतत्प्रत्यक्षे वर्त्तते एवं तदित्येतत्परोक्षे वर्त्तते। तेनेहैव स्यात्तस्येदमिति, अस्याऽमुष्येत्यत्र न स्यात्।

पूर्वपक्षी ने जो पूर्वपक्ष उपस्थापित किया था, उस पर एकदेशी ने परिगणन कर भिन्न-भिन्न समाधान दिया था। पूर्वपक्ष में प्राप्त दोष का वारण करने के लिए अनेक वार्तिक पढना पड रहा है, एवं सूत्रन्यासभेद भी हो रहा है। गौरव और सूत्रन्यासभेदरूप दोष न हो, इसके लिए सूत्र को यथान्यास ही रखिये। सूत्र के यथान्यासपक्ष में पूर्वपक्षी ने इदम्पद का सन्निकृष्टवाची होने से असन्निहित में अप्राप्ति दिखायी थी। उससे पूछना चाहिये कि उसने प्रत्ययार्थ में ही उलहना क्यों दी? जैसे इदम्पद प्रत्यक्षवाची है, वैसे तत्पद परोक्षवाची भी है। इससे प्रकृति के द्वारा जहाँ परोक्ष का कथन हो रहा होगा वहीं पर षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से इदमर्थ में प्रत्यय होंगे। परन्तु जहाँ 'अस्येदम्, अमुष्येदम्' इत्यादि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में प्रकृति के द्वारा प्रत्यक्ष अर्थ वाच्य है, वहाँ षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से प्रत्यय की अप्राप्ति है, इसे भी पूर्वपक्षी को उठाना चाहिये था।

अस्त्यत्र विशेषः-एकशेषनिर्द्देशोऽत्र भविष्यति। तस्य चाऽस्य चाऽमुष्य च-तस्येति। इहाऽपि तर्ह्येकशेषनिर्द्देशो भविष्यति,-तच्च अदश्च इदं च-इदमित्येव। यदप्युच्यते- 'अनन्तरादिषु च प्रतिषेधो वक्तव्य' इति। न वक्तव्यः- अनभिधानाद् अनन्तरादिषूत्पत्तिर्न भविष्यति।। तस्येदम्।।

अब सिद्धान्ती आचार्य यहाँ दोष वारण करते हैं-**अस्त्यत्रेति**। अत्र-'तस्येदम्' सूत्र में 'तस्य च अस्य च अमुष्य च' ऐसा द्वन्द्व कर 'तस्य' यह सौत्र एकशेष-निर्द्देश है। एवं प्रत्ययार्थपक्ष में भी 'तच्च अदश्च इदं चेति इदम्' ऐसा द्वन्द्व कर 'इदम्' यह सौत्र एकशेषनिर्द्देश होने से प्रत्यक्ष और परोक्ष अर्थ वाला उभय प्रत्यय का निर्द्देश है। अनभिधान होने से अनन्तर, समीप आदि अर्थों में षष्ठ्यन्त से प्रत्ययोत्पत्ति नहीं होगी।। **तस्येदम्**।।

द्वन्द्वाद्वुन्वैरमैथुनिकयोः ४.३.१२५

***** वैरे देवासुरादिभ्यः प्रतिषेधः *** वैरे देवासुरादिभ्यः प्रतिषेधो वक्तव्यः। दैवासुरम्। राक्षोऽसुरम्।।** द्वन्द्वाद्वुन्।।

सूत्रार्थ—'इदन्त्वेन वैर और मैथुनिका अर्थ विवक्षित होने पर द्वन्द्व-षष्ठ्यन्त से वुन् हो'। 'तस्येदम्' ४.३.१२० से प्राप्त अण् का अपवाद वुन् है। पर होने से यह 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ का बाध करेगा। जैसे-काकश्चोलूकश्चेत्यनयोः समाहारः काकोलूकम्, तस्य वैरं काकोलूकिका। 'काकोलूकम्' में 'येषां च विरोधः शाश्वतिकः' २.४.६ से एकवद्भाव है। 'कुत्सश्च कुशिका च कुत्सकुशिके, तयो-र्मैथुनिकाविवाहरूपः सम्बन्धः कुत्सकुशिकिका। सूत्र में मैथुनिका पद से 'मिथुनं दम्पती तयोः कर्म=क्रियानिष्पादनम्' इस अर्थ में मिथुन पद से 'द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च' 5.1.133 के द्वारा वुञ् है। शब्दस्वभाववश काकोलूकिका व कुत्सकुशिकिका स्त्रीत्व में है।

वार्तिक—**देवादिसुरादिभ्य इति**। प्रत्ययार्थ वैर वाच्य होने पर देवासुर आदि गणपठितशब्दों से वुन् का प्रतिषेध कहना चाहिये। यहाँ वुन्प्रतिषेध होने पर सामान्यशास्त्र 'तस्येदम्' ४.३.१२० से विहित अण् हो कर 'दैवाऽसुरं, राक्षोऽसुरम्' रूप है।। **द्वन्द्वाद्-**।।

सङ्घाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण् ४.३.१२७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

*** सङ्घाङ्कादिषु घोषग्रहणम् * सङ्घाङ्कादिषु घोषग्रहणं कर्त्तव्यम्। गार्गो घोषः। किमर्थो णकारः? वृद्ध्यर्थः। 'ञ्णिती'ति वृद्धिर्यथा स्यात् *** सङ्घादिषु प्रत्ययस्य णित्करणानर्थक्यं, वृद्धत्वात् प्रातिपदिकस्य *** सङ्घादिषु प्रत्ययस्य णित्करणमनर्थकम्। किं कारणम्? 'वृद्धत्वात् प्रातिपदिकस्य'। वृद्धमेवैतत्प्रातिपदिकम्।**

यहाँ अञ्, यञ् और इञ् प्रत्यय का ग्रहण होने से तदन्त अर्थ लिया जायेगा। अतः सूत्रार्थ-'इदन्त्वेन विवक्षित संघ, अङ्क और लक्षण अर्थ वाच्य होने पर अञन्त, यञन्त और इञन्त से अण्प्रत्यय हो'। जैसे-अञन्त-बिदस्य गोत्रापत्यं बैदम्, 'अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्' ४.१.१०४ से अञ्, तदन्त से 'बैदस्य अङ्कः संघो वा बैदः, लक्षणं वा बैदम्'। यञन्त-गार्गस्याङ्कः संघो वा गार्गः, लक्षणं वा गार्गम्। इञन्त-दाक्षेरङ्कः संघो वा दाक्षः, लक्षणं वा दाक्षम्। अङ्क और लक्षण पद निघन्टुपर्याय में प्रसिद्ध है।

सिद्धान्त वार्तिक—**संघाङ्कादिष्विति**। घोष अर्थ वाच्य होने पर भी अञन्त आदि से पर में अण् कहना चाहिये। यहाँ प्रकृति तीन और प्रत्ययार्थ चार होने से यथासंख्य नहीं है।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थ इति**। विधेय प्रत्यय को णित् क्यों करते हैं?

एकदेशी—**वृद्ध्यर्थ इति**। 'तद्धितेष्वचामादेः' ७.२.११७ से अचों के मध्य में आदि अच् को वृद्धि हो सके इसके लिए णित्करण है।

अन्य आचार्य—**संघादिषु प्रत्ययस्येति**। संघ आदि अर्थों में विहित 'अ' प्रत्यय का णित्करण व्यर्थ है। 'अ' प्रत्यय की प्रकृति वृद्ध है, अतः यहाँ वृद्धि करने या नहीं करने से कोई भी रूपवैशिष्ट्य नहीं है।

***** लिङ्गपुंवद्भावप्रतिषेधार्थं तु *** लिङ्गपुंवद्भावप्रतिषेधार्थं तु णकारः कर्त्तव्यः। लिङ्गार्थ-बैदी। पुंवद्भावप्रतिषेधार्थं-बैदी स्थूणाऽस्य बैदीस्थूणः। वृद्धिनिमित्तस्येति पुंवद्भावप्रतिषेधो यथा स्यात्।।**

सिद्धान्ती—**लिङ्गपुंवद्भावेति**। यहाँ लिङ्ग पद से लिङ्गबोधक प्रत्यय विवक्षित है। लिङ्गबोधकप्रत्ययविधानार्थ तथा पुंवद्भावप्रतिषेधार्थ णित्करण है। जैसे-लिङ्गार्थ-णित् मान कर 'टिड्ढाणञ्-' ४.१.१५ से ङीप्-बैदी। पुंवद्भावप्रतिषेधार्थ-'बैदी स्थूणाऽस्येति बैदीस्थूणः' में 'वृद्धिनिमित्तस्य च तद्धितस्यारक्तविकारे' ६.३.३९ से पुंवद्भावप्रतिषेधार्थ णित्करण है।। संघाङ्क-।।

रैवतिकादिभ्यश्छः ४.३.१३१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

* कौपिञ्जलहास्तिपदादण् * **कौपिञ्जलहास्तिपदादण् वक्तव्यः। कौपिञ्जलः। हास्तिपदः। {रैवतिका}।**

रैवतिकादिगणपठितशब्दों के गोत्रप्रत्ययान्त होने से 'गोत्रचरणाद् वुञ्' ४.३.१२६ से वुञ् प्राप्त होने पर तदपवाद 'छ' प्रत्यय का विधान है। 'रेवत्या अपत्यं रैवतिकः, 'रेवत्यादिभ्यष्ठक्' से ठक् प्रत्यय, 'रैवतिकस्येदम्' इस अर्थ में रैवतिक पद से छ हो कर 'रैवतिकीयम्' रूप है।

कौपिञ्जलेति। कौपिञ्जल और हास्तिपदशब्द से इदमर्थ में अण् कहना चाहिये। यहाँ श्रीकैयटजी के अनुसार हास्तिपदशब्द सूत्रकार द्वारा पठित है तथा कापिञ्जलशब्द वार्तिककार द्वारा पठित है। यहाँ इसी निपातन से पादशब्द को पदादेश है। गोत्रप्रत्ययान्त नहीं होने से वुञ् प्राप्त नहीं है। यहाँ अण् का विधान है-कौपिञ्जलस्येदं कौपिञ्जलम्। हस्तिपाद इव पादो यस्य स हस्तिपाद्, हस्तिपाद इदं हास्तिपदम्।। **रैवतिकादिभ्यश्च**।।

आथर्वणिकस्येकलोपश्च ४.३.१३२

आथर्वणिकस्येकलोपश्चाऽण्च वक्तव्यः। आथर्वणो धर्मः। आथर्वण आम्नायः। इदमाथर्वणार्थमाथर्वणिकार्थं च चतुर्ग्रहणं क्रियते। वसन्तादिषु-अथर्वन्शब्दं आथर्वणशब्दश्च पठ्यते। षष्ठेऽध्याये प्रकृतिभावार्थं ग्रहणं क्रियते। इदं चतुर्थमिकलोपार्थम्। द्विर्ग्रहणं शक्यमकर्त्तुम्। कथम्? 'तेन प्रोक्त'मिति प्रकृत्य ऋषिभ्यो लुग्वक्तव्यः, वशिष्ठोऽनुवाको विश्वामित्रोऽनुवाक इत्येवमर्थम्। ततो वक्तव्यम्-'अथर्वणो वे'ति। तेन सिद्धमथर्वा इति, आथर्वण इति च।

सूत्रार्थ—'तस्येदम्' अर्थ में आथर्वणिक पद से अण् प्रत्यय हो एवम् आथर्वणिक के इक भाग का लोप हो'। अथर्वणा प्रोक्तो वेदः अथर्वा, तमधीते वेत्ति वा आथर्वणिकः। यहाँ 'वसन्तादिभ्यष्ठक्' ४.२.६६ से ठक् है। 'आथर्वणिकस्येदम्' इस अर्थ में अण्, इकलोप हो कर 'आथर्वणो धर्म आम्नायो वा। यह 'गोत्रचरणाद्वुञ्' ४.३.१२६ का अपवाद है; अन्यथा 'तस्येदम्' ४.३.१२० से ही अण् सिद्ध हो जाता।

सूत्रकार ने चार वार अथर्वन् शब्द का प्रयोग किया है, उसे भाष्यकार स्पष्ट करते हैं-**इदमाथर्वणार्थमिति**। आथर्वण और आथर्वणिक की सिद्धि के लिए सूत्रकार चार वार अथर्वन् शब्द का ग्रहण करते हैं; उसे गिनाते हैं-**वसन्तादिष्विति**। 'वसन्तादिभ्यष्ठक्' ४.२.६३ गणपाठ में अथर्वन् और आथर्वण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शब्द दो वार पढा गया है। षष्ठ अध्याय में 'दाण्डिनायनहास्तिनायनाथर्वणिक-जैह्माशिनेयवाशिनायनिभ्रौणहत्यसारवैक्ष्वाकमैत्रेयहिरण्मयानि' ६.४.१७४ में प्रकृतिभावार्थ आथर्वणिकशब्द पढते हैं; एवं चतुर्थाध्या में 'आथर्वणिकज्ञयेकलोपश्च' पढा है।

यहाँ दो वार ही अथर्वन् पद का ग्रहण कर तथा दो वार ग्रहण का परित्याग कर इष्टसिद्धि की जा सकती है। मात्र दो का ही ग्रहण कर इष्टसिद्धि की जा सकती है, इसे स्पष्ट करते हैं-**तेन प्रोक्तमिति**। 'तेन प्रोक्तम्' ४.३.१०१ सूत्र के अनन्तर 'ऋषिभ्यो लुक्' सूत्र पढना चाहिये। इससे 'वशिष्ठेन प्रोक्तो वाशिष्ठोऽनुवाकः, विश्वामित्रेण प्रोक्तो विश्वामित्रोऽनुवाकः' में वशिष्ठ और विश्वामित्र पद से पर में विहित प्रोक्तार्थक प्रत्यय का लुक् हो जायेगा। 'ऋषिभ्यो लुक्' सूत्र के अनन्तर 'अथर्वणो वा' ऐसा सूत्र करना चाहिये। 'ऋषिभ्यो लुक्' से नित्य लुक् प्राप्त होने पर 'अथर्वणो वा' विकल्प से लुक् का विधान करेगा। इससे अप्लुक् होने पर अथर्वा तथा लुक् के अभावपक्ष में 'आथर्वणः' रूप हो जायेगा।

अथ वसन्तादिष्वाथर्वणशब्दः पठितव्यः। तत्र च नार्थः प्रकृतिभावार्थेन, नापीकलोपार्थेन। यदि वसन्तादिष्वाथर्वणशब्दः पठ्यते-अथर्वाणमधीत आथर्वणिक इति न सिध्यति। नैष दोषः-इहास्माभिस्त्रैशब्द्यं साध्यम्अथर्वणामधीते। आथर्वणमधीते। आथर्वणिक इति।

अथ च यदि 'वसन्तादिगण ४.२.६३ में आथर्वणशब्द पढते हैं तो 'दाण्डिनायन-हास्तिनायनाथर्वणिकजैह्माशिनेयवाशिनायनिभ्रौणहत्यसारवैक्ष्वाकमैत्रेयहिरण्मयानि' ६.४.१७४ में प्रकृतिभावविधान के लिए आथर्वणिक पद पढने की आवश्यकता नहीं है। आथर्वण पद से ठक् हो कर टिलोप के द्वारा आथर्वणिक पद सिद्ध हो जायेगा। एवम् आथर्वण की सिद्धि के लिए इग्लोप विधान की भी आवश्यकता नहीं होगी। इस पक्ष में दो वार ग्रहण करने से ही कार्य चल जायेगा, इससे दो का परित्याग होने से लाघव है।

आक्षेपक आचार्य—**यदीति**। यदि वसन्तादिगण में मात्र आथर्वणशब्द ही पढेंगे तो 'अथर्वणमधीत इति आथर्वणिकः' की सिद्धि नहीं हो पायेगी?

सिद्धान्ती आचार्य—**नैष दोष इति**। यह दोष प्रकृतपक्ष में नहीं आयेगा। यहाँ 'अथर्वाणमधीते, आथर्वणमधीते, आथर्वणिकः' यह तीन शब्द साध्य है।

तत्र द्वयोः शब्दयोः समानाथयोरेकेन विग्रहोऽपरस्माद् उत्पत्तिर्भविष्यत्यव्यविकन्यायेन। तद्यथा-अवेर्मांसमिति विगृह्याऽविकशब्दा-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दुत्पत्तिर्भवत्याविकमिति। एवमाथर्वणमधीत इति विगृह्य-आथर्वणिक इति भविष्यति, अथर्वाणमधीत इति विगृह्य-वाक्यमेव। तत्राऽभिसम्बन्धमात्रं कर्त्तव्यम्-आथर्वणिकानामिदमिति। न चेदानीम् अन्यदाथर्वणिकानां स्वं भवितुमर्हत्यन्यदतो धर्माद्वा आम्नायाद्वा।। आथर्वणिकस्येकलोपश्च।।

यहाँ 'आथर्वाणमधीते' ऐसा विग्रह करके अथर्वन् पद से ठक् करेंगे। जैसे-अवि और अविक दोनों पद समानार्थक हैं। परन्तु 'अवेर्मांसम्' ऐसा विग्रह करके आविक पद से अण् हो कर 'आविकम्' रूप बनता है; परन्तु यदि 'अविकस्य मांसम्' ऐसा विग्रह कर दिया जाये, तो वाक्य ही रह जायेगा, आविक पद से प्रत्ययोत्पत्ति नहीं होगी। वैसे ही 'आथर्वणमधीते' ऐसा विग्रह करने पर अव्यविकन्याय के द्वारा अथर्वन् पद से ठक् प्रत्यय होगा। परन्तु यदि 'अथर्वाणमधीते' ऐसा विग्रह कर दिया जाये तो वाक्य ही रहेगा, अथर्वन् पद से प्रत्ययोत्पत्ति नहीं हो सकेगी। प्रकृत सूत्र 'आथर्वणिकस्येकलोपश्च' भी करने की आवश्यकता नहीं है। 'चरणाद् धर्माम्नाययोः' वा.२९१३ इस वचन के होने से धर्म और आम्नाय से भिन्न अर्थ में प्रत्यय की अप्राप्ति रहेगी; अतः 'आथर्वणिकानामिदम्' ऐसा अभिसम्बन्धमात्र का निर्द्देश करना चाहिये। प्रत्ययार्थ धर्म और आम्नाय से भिन्न अर्थ 'आथर्वणिकानां स्वम्' आदि वाच्य होने पर प्रत्ययोत्पत्ति नहीं होगी।। **आथर्वणिकस्येक-।।**

तस्य विकारः ४.३.१३३

तस्येति वर्त्तमाने पुनस्तस्यग्रहणं किमर्थम्? * तस्यप्रकरणे तस्य-पुनर्वचनं शैषिकनिवृत्त्यर्थम् *** तस्यप्रकरणे तस्येति पुनर्वचनं क्रियते, 'शैषिकनिवृत्त्यर्थम्'। शैषिका निवर्त्त्यन्ते। कथं च प्राप्नुवन्ति? *** तस्येदंवचनात्प्रसङ्गः *** तस्येदंवचनात्प्राप्नुवन्ति। तस्येदंविशेषा ह्येतेऽपत्यं समूहो निवासो विकार इति।**

यहाँ से विकारार्थ प्रत्ययों का निरूपण है। विक्रियते इति विकारः=प्रकृति की अन्य अवस्था वाली विक्रिया को प्राप्त।

सूत्रार्थ—षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से विकारार्थक अण् आदि प्रत्यय हों'। जैसे-अश्मनो विकार आश्मः, 'अश्मनो विकारे टिलोपो वक्तव्यः' से यहाँ टिलोप है। भश्मनो विकारो भाश्मनः, मृत्तिकाया विकारो मार्त्तिकः।

पूर्वपक्षी—**तस्येति**। 'तस्येदम्' ४.३.१२० से षष्ठ्यन्त पद 'तस्य' की अनुवृत्ति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हो रही थी। यहाँ प्रकृत सूत्र 'विकारः' मात्र रखते; अनुवृत्ति से लाभ होने पर पुनः 'तस्य' पदग्रहण का क्या प्रयोजन है?

सिद्धान्ती—**तस्यप्रकरण इति**। 'तस्येदम्' ४.३.१२० सूत्रस्थ 'तस्य' पद शैषाधिकारीय होने से 'घ' आदि प्रत्ययों से सम्बन्ध रखता है; अतः उसकी अनुवृत्ति करने से विकारार्थ में भी घादि प्रत्ययों का विधान होने लगता, जो इष्ट नहीं है। प्रकृत सूत्र में 'तस्य' पद का पाठ करने से शैषिक अर्थों की निवृत्ति हो जाती है। यहाँ पाठकगण को ध्यान रखना चाहिये कि 'शैषिका निवर्त्यन्ते' इस भाष्य से शैषिक अर्थों की ही निवृत्ति समझनी चाहिये। अण् आदि प्रत्ययों की निवृत्ति इस लिए नहीं होगी कि 'प्राग्दीव्यतोऽण्' ४.१.८३ सूत्र के द्वारा 'तेन दीव्यतिखनतिजयतिजितम्' ४.४.२ से पूर्व तक अण् आदि का अधिकार है।

अन्य आचार्य—**कथं चेति**। क्या यह निवृत्ति अधिकारवशात् प्राप्त है, अथ वा 'तस्येदम्' ४.३.१२० इस वचन से प्राप्त है? यदि अधिकार से प्राप्तों का 'तस्य'ग्रहण से निवृत्ति करते हैं तो 'तस्येदम्' वचन के द्वारा निवृत्तों की पुनः प्राप्ति हो जायेगी। अथ च यदि 'तस्येदम्' वचन के द्वारा 'तस्य'ग्रहण से प्राप्तों की निवृत्ति करते हैं तो प्रकृत योग के उत्तरार्थक होने तथा उत्तरसूत्रों में ही इसका उपयोग होने से 'तस्येदम्' से प्राप्तों की 'तस्य'ग्रहण से निवृत्ति सम्भव नहीं है, अतः यहाँ पूर्वपक्ष है।

उत्तरपक्षी—**तस्येदंवचनादिति**। 'तस्येदम्' इस वचन से जो प्राप्त है, उस घादिसम्बद्ध 'तस्य'ग्रहण की निवृत्ति हो रही है। 'अपत्यं, समूहः, निवासः, विकारः' ये 'तस्येदम्' के विषय हैं। यहाँ 'तस्य विकारः' ऐसा 'तस्य'पद घटित पाठ से 'अपत्यं, समूहो, निवासः' अर्थ से सम्बद्ध 'तस्य' की निवृत्ति हो जाती है। इस निवृत्तिसामर्थ्य से 'तस्येदम्' ४.३.१२० के द्वारा भी विकार और अवयव अर्थ में घादि प्रत्यय नहीं होते हैं। यदि विकार और अवयव अर्थ में घादि प्रत्ययों का विधान कर दिया जाये तो 'तस्य'ग्रहण की निवृत्ति व्यर्थ हो जायेगी। 'शेषे' ४.२.९२ का जहाँ-जहाँ सम्बन्ध है वहाँ-वहाँ सभी अर्थों की निवृत्ति समझनी चाहिये।

किमर्थमिदमुच्यते? *बाधनार्थं कृतं भवेत् * ये तस्य बाधकास्तद्बाधनार्थम्। कथं पुनरशैषिकः शैषिकं बाधेत? *उत्सर्गः शेष एवासौ * यो ह्युत्सर्गः सोऽपि शेष एव। के पुनः शैषिकाणां विकारावयवयोः प्राप्नुवन्ति यावता सर्वमप्यपवादैर्व्याप्तम्? इह न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किं चिदुच्यते-'हलसीराट् ठगि'ति।

आक्षेपक आचार्य—**किमर्थमिति**। यहाँ सम्पूर्ण सूत्र पर आक्षेप किया जा रहा है-प्रकृत सूत्र का आरम्भ क्यों है?

उत्तरपक्षी—**बाधनार्थमिति**। **तस्य**=सामान्य प्रत्यय अण् आदि के **'ये बाधकाः'**=जो बाधक घादि प्रत्यय हैं, उनका बाध करने के लिए प्रकृत सूत्र का निर्द्देश है। इसका भाव इस प्रकार है-'तस्येदम्' ४.३.१२० इत्यादि से अण् आदि प्रत्ययों का विधान है; एवं 'राष्ट्रावारपाराद् घखौ' ४.२.६३ से अण् आदि प्रत्ययों का अपवाद घादि प्रत्ययों का विधान है। विकार और अवयव अर्थ में अण् आदि प्रत्यय ही हों, इसके लिए 'तस्य विकारः' सूत्र का निर्द्देश है।

आक्षेपक आचार्य—**कथम्पुनरिति**। 'तस्य विकारः' इत्यादि से विहित **अशैषिकः**=शैषिकाधिकार से भिन्न अण् आदि प्रत्यय **शैषिकम्**='शेषे' ४.२.६२ के अधिकार में पठित 'राष्ट्रावारपाराद् घखौ' ४.2.६३ इत्यादि का बाधक कैसे होगा?

उत्तरभाष्य—**उत्सर्ग इति**। 'तस्य विकारः' सूत्र का पृथक् निर्द्देश नहीं होने से विकार अर्थ का भी 'तस्येदम्' में अन्तर्भाव होगा; अतः विकार अर्थ भी शैषिक होगा तथा उसमें घादि प्रत्ययों की प्राप्ति होगी। प्रकृतिविशेष से सम्बद्ध नहीं होने के कारण विकार अर्थ को उत्सर्ग मान कर 'उत्सर्गः शेष एवासौ' कहा है। यदि 'तस्य विकारः' सूत्र का निर्द्देश नहीं करेंगे तो 'बिल्वादिभ्योऽण्' ४.3.१३६ सूत्र में अर्थ का निर्द्देश कर 'बिल्वादिभ्योऽण्विकारे' ऐसा निर्द्देश करना पडेगा। यहाँ पर प्रकृतिविशेष बिल्वादि से सम्बद्ध विकार अर्थ ही उपयुक्त होने से अशेष होगा। परन्तु अनुपयोग होने से प्रकृतिमात्रसम्बद्ध शेष ही होगा। जब योगविभाग कर प्रकृत सूत्र का निर्द्देश करते हैं, तब अण्विधि में चरितार्थ होने से विकार अशेषप्रकरणस्थ होगा, अतः उसके प्रकरण में घादि की प्राप्ति नहीं होगी। यहाँ 'तस्य विकारः' अर्थ में घादि की अप्राप्ति ही बाध समझना चाहिये। अन्यथा सूत्रारम्भपक्ष में विकार अर्थ में घादि की प्राप्ति नहीं होगी; पुनः उसके बाध की कल्पना व्यर्थ होगी।

पूर्वपक्षी—**के पुनरिति**। **शैषिकाणाम्**=यह निर्धारण में षष्ठी है। शैषिक प्रत्ययों में कौन सा प्रत्यय है जो विकार और अवयव अर्थ में प्राप्त हो रहा है?, जब कि आगे कहे जाने वाले अपवाद प्रत्यय कहीं पर 'कोपधादण्' ४.२.१३२, कहीं पर 'ओरञ्' ४.२.७१, कहीं पर 'अनुदात्तादेरञ्' ४.२.४४ इत्यादि के द्वारा सभी निगृहीत हैं? 'हलसीराट्ठक्' ४.४.८१ सूत्र के द्वारा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विकार अर्थ में कोई अण् का अपवाद नहीं है, अतः ठक् का बाध कर 'हालः, सौरः' में अण् ही होता है। 'नञ्विषयस्याऽनिसन्तस्य' फि.सू.२६ से हल पद आद्युदात्त है, एवं क्रन्प्रत्ययान्त सीर शब्द भी 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' ६.१.१९४ से आद्युदात्त है। इससे हल और सीर पद से पर में 'अनुदात्तादेरञ्' ४.२.४४ की प्राप्ति नहीं है।

कथं पुनरिच्छताऽप्यपवादः प्राप्नुवञ्छक्यो बाधितुम्? 'तस्य'ग्रहणसामर्थ्यात्। किमिदं भवानध्यारुह्य 'तस्य'ग्रहणस्यैव प्रयोजनमाह,-न पुनः सर्वस्यैव योगस्य? अवश्यमुत्तरार्थोऽर्थनिर्द्देशः कर्त्तव्यः। समर्थविभक्तिरपि तर्ह्यवश्यमुत्तरार्था निर्द्देष्टव्या। प्रकृता समर्थविभक्तिरनुवर्त्तते तस्येदमिति *न वा सम्प्रत्ययः* न वा सम्प्रत्यय इयता सूत्रेण शैषिकाणां निवृत्तेः। न हि काको वाश्यत इत्येवाऽधिकारा निवर्त्तन्ते। यदि खल्वपि विकारावयवयोः शैषिका नेष्यन्ते महता सूत्रेण निवृत्तिर्वक्तव्या।

अन्य आचार्य—**कथम्पुनरिच्छतेति**। सामान्य विहित अण् का बाध करने के लिए 'हलसीराट्ठक्' ४.४.८१ सूत्र का आरम्भ किया है; अण्बाधनार्थ आरम्भ किया गया 'हलसीराट्ठक्' का पुनः अण् से ही बाध कैसे कह सकते हैं? योगविभाग के उत्तरार्थक होने से आरम्भसामर्थ्य से बाध नहीं किया जा सकता है।

उत्तरपक्षी—**तस्यग्रहणेति**। 'तस्य'पद की अनुवृत्ति आ रही थी, पुनः आचार्य ने 'तस्य' पद का ग्रहण किया है, तत्सामर्थ्य से अण् के द्वारा 'हलसीराट्ठक्' ४.४.८१ का बाध करेंगे।

अन्य आचार्य—**किमिदमिति**। आप ने प्रकृत सूत्र में 'तस्य'ग्रहण का प्रयोजन बताते हुये 'हलसीराट्ठक्' का बाध बताया है, यह मात्र सूत्रैकदेश का प्रयोजन है; जब कि 'किमर्थमिदमुच्यते' यह सम्पूर्ण योग का प्रयोजनविषयक प्रश्न है; आप ने सम्पूर्ण सूत्र का प्रयोजन क्यों नहीं बताया? यहाँ 'तस्य'पद की अनुवृत्ति से ही सिद्ध था, पुनः 'तस्य'ग्रहणसामर्थ्य से उसी 'तस्य' पद का प्रयोजन बताया है। उत्तरसूत्र 'बिल्यादिभ्योऽण्' ४.३.१३६ इत्यादि में 'विकारः' आदि अर्थों की अनुवृत्ति हो सके, इसके लिए 'विकारः, अवयवः' ऐसा अर्थनिर्द्देश अवश्य करना चाहिये। यदि अर्थों का निर्द्देश करते हैं तो 'तस्य' इत्यादि समर्थविभक्ति का भी निर्द्देश अवश्य करना चाहिये। इस तरह समर्थविभक्ति 'तस्येदम्' की अनुवृत्ति होगी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्य आचार्य—**न वेति**। 'तस्य विकारः' सूत्र में 'तस्य' पद का ग्रहण कर शैषिकों की निवृत्ति नहीं की जा सकती है। जैसे यात्रा पर प्रस्थित व्यक्ति का अधिकार मार्ग में काकरुति से निवृत्त नहीं होता है, वैसे मध्य में 'तस्य विकारः' सूत्रस्थ 'तस्य'पद के द्वारा 'तस्येदम्' ४.२.१२० से आ रहा 'तस्य' पद का अधिकार समाप्त नहीं हो सकेगा। यहाँ शैषिकाधिकार की निवृत्ति के लिए **'महता सूत्रेण'**-'घादयो विकारावयवयोर्न' ऐसा सूत्र करना चाहिये। इसका भाव यह है कि घादि प्रत्यय प्रधान है तथा सामान्य अण् आदि अप्रधान हैं। चूँकि प्रधान गुणानुयायी होते हैं, अतः गौण प्रत्यय अण् आदि के निवृत्त हो जाने पर भी प्रधान प्रत्यय घादि की निवृत्ति नहीं होने से विकार और अवयव अर्थ में शैषिक घादि की प्राप्ति होगी, जिसका निषेधवचन 'घादयो विकारावयवयोर्न' ऐसा पढना पडेगा।

*** अवयवे चाऽप्राण्योषधिवृक्षेभ्योऽनिवृत्तिः * अवयवे चाऽप्राण्योषधिवृक्षेभ्योऽनिवृत्तिरिष्टा। तत्र च निवृत्तिः प्राप्नोति-पाटलिपुत्रकाः प्रासादाः, पाटलिपुत्रकाः प्राकारा इति * अण्मयटोश्च विप्रतिषेधानुपपत्तिर्मयडुत्सर्गात् * अण्मयटोश्च विप्रतिषेधो नोपपद्यते। पठिष्यति हि विप्रतिषेधम्-'अणो वृद्धान्मयडि'ति, स विप्रतिषेधो नोपपद्यते। किं कारणम्? 'मयडुत्सर्गात्'। निवृत्तेषु हि शैषिकेषु वृद्धान्मयडुत्सर्गस्तस्याऽण्णपवादः। उत्सर्गापवादयोश्चायुक्तो विप्रतिषेधः * अनुवृत्तौ हि च्छोत्सर्गापवादविप्रतिषेधान् मयट् * अनुवर्त्तमानेषु हि शैषिकेषु वृद्धाच्छ उत्सर्गः, तस्याऽण्मयटावपवादौ। अपवादविप्रतिषेधान्मयड् भविष्यति।**

'अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः' ४.३.१३४ सूत्रनिर्द्देश है; फिर प्राणी, ओषधि और वृक्ष से भिन्न प्रातिपदिक से अवयव अर्थ में निवृत्ति का अभाव कैसे है?, इसे स्पष्ट करते हैं-**अवयवे चेति**। अवयव अर्थ में घादि प्रत्ययों की निवृत्ति नहीं है; जब कि यहाँ निवृत्ति प्राप्त हो रही है; अतः प्राणिभिन्न, ओषधिभिन्न और वृक्षभिन्न प्रातिपदिक से अवयव अर्थ में प्रत्यय की प्राप्ति नहीं होना रूप दोष होगा। 'पाटलिपुत्रस्यावयवाः' इस विग्रह में 'तस्येदम्' अर्थ में 'रोपधेतोः प्राचाम्' ४.२.१२३ से वुञ् है।

निवृत्तिपक्ष में दूसरा दोष देते हैं—**अण्मयटोश्चेति**। 'क्रीतवत्परिमाणात्' ४.३.१५६ सूत्र पर आचार्य 'अणो वृद्धान्मयट्' ऐसा प्रतिषेधवचन पढेंगे। 'तित्तिडिकस्य विकारस्तैत्तिडिकम्' में 'कोपधाच्च' ४.३.१३७ से अण् चरितार्थ है

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा 'काष्ठस्य विकारः काष्ठमयम्' में 'मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः' ४.३.१४३ चरितार्थ है। 'शाकमयम्' में उभय की प्राप्ति होने पर परविप्रतिषेध के द्वारा मयट् से अण् का बाध किया है, वह उपपन्न नहीं हो सकेगा। अब आप जब शैषिक की निवृत्ति कर दे रहे हैं, तब वृद्धसंज्ञक षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से मयट् प्रत्यय सामान्य होगा, एवं 'कोपधाच्च' ४.३.१३७ के द्वारा विशेष विहित अण् अपवाद होगा। इस तरह अण् से ही मयट् का बाध होगा, पुनः आचार्य ने जो परविप्रतिषेध के द्वारा मयट् से अण् की निवृत्ति की है, वह उत्सर्ग और अपवाद में विप्रतिषेध नहीं होने से अण् और मयट् का आचार्य द्वारा कहा गया विप्रतिषेध अयुक्त हो जायेगा। परन्तु जब शैषिक की निवृत्ति करते हैं तब-**अनुवृत्तौ हीति**। 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ उत्सर्गशास्त्र है; एवं 'छ' का अपवाद अण् और मयट् है। 'शाकमयम्' में 'छ' भी प्राप्त है तथा उसका अपवाद कोपधलक्षण अण् तथा 'मयड्वैतयोः-'४.३.१४३ भी प्राप्त है। अपवादों में विप्रतिषेध होने से मयट् प्राप्त हो जाता है।

यत्तावदुच्यते-'न वा सम्प्रत्यय इयता सूत्रेण शैषिकाणां निवृत्ते'-रिति। सम्प्रत्यय एव। न ह्यत्राऽण् दुर्लभः। सिद्धोऽत्राण् तस्येदमित्येव। सोऽयं पुनस्तस्यग्रहणेन तस्य साऽपवादस्याऽणः प्रसङ्गे इमं निरपवादकमणं प्रतिपादयति। तत्र ये तावद् द्वितीयास्तानपवादत्वाद् बाधिष्यन्ते। ये तृतीयास्तान् परत्वात्। ये चतुर्थास्तत्र केचित्पुरस्तादपवादा अनन्तरान् विधीन् बाधन्ते-इत्येवमिमं न बाधिष्यन्ते।

अब सिद्धान्ती आचार्य सूत्र से ही इष्टसिद्धि का प्रतिपादन करते हैं-**यत्तावदिति**। सूत्रपक्ष में जहाँ 'तस्येदम्' ४.३.१२० से 'तस्य' पद की अनुवृत्ति हो रही है वहाँ अण् आदि के निवृत्त हो जाने पर भी विकार और अवयव अर्थ में घादि की प्राप्तिं दिखायी थी, एवम् उसका वारण करने के लिए 'तस्य विकारः' सूत्र में 'तस्य' पद को पर्याप्त नहीं मानते हुए 'घादयो विकारावयवयोर्न' ऐसा अतिरिक्त सूत्र करने की सलाह दी थी, उसका खण्डन करते हैं-**न ह्यत्रेति**। यहाँ 'तस्येदम्' ४.३.१२० इस सामान्यशास्त्र से विहित अण् प्रत्यय भी 'तस्य विकारः' प्रकरण में प्राप्त होगा। परन्तु 'तस्येदम्' ४.३.१२० से विहित अण् का अपवाद घादि है; अतः सापवादक अण् के प्राप्त होने पर **निरपवादक**= अपवाद रहित अण्विधान के लिए आचार्य 'तस्य विकारः' पढते हैं। घादि के निवृत्त होने से प्रकृत सूत्र से विहित अण् निरपवाद है। 'तस्येदम्' ४.३.१२०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के द्वारा ही विकार अर्थ में अण् आदि और घादि सिद्ध हैं; फिर घादि की अनुवृत्ति होने पर योगविभाग व्यर्थ हो जाता है। 'तस्येदम्' ४.३.१२० से अण् प्राप्त होने पर 'हलसीराट्ठक्' ४.३.१२४ का आरम्भ है, अतः यह द्वितीय है; इस द्वितीय प्रत्यय का अपवाद होने से 'तस्य विकारः' से प्राप्त अण् के द्वारा बाध होता है; अतः यह अण् तृतीय हुआ। इस तृतीय कक्ष्या को प्राप्त अण् को भी अपवाद होने से चतुर्थ कक्ष्या को प्राप्त प्रत्यय के द्वारा परत्वाद् बाध होगा। जैसे-'वृजीनां विकारः' में 'तस्येदम्' ४.३.१२० से प्राप्त अण् प्रथम है, 'अवृद्धादपि बहुवचनविषयात्' ४.२.१२५ से प्राप्त वुञ् द्वितीय है, एवं 'मद्रवृज्यो कन्' ४.२.१३१ से प्राप्त कन् तृतीय है। यहाँ द्वितीय वुञ् से प्रथम अण् का बाध, एवं तृतीय कन् के द्वारा द्वितीय वुञ् का बाध है, चतुर्थ कक्ष्या को प्राप्त प्रकृत अण् के द्वारा कन् का भी बाध होता है। इस तरह 'वृजीनां विकारः' ऐसा विग्रह कर 'वार्जम्' रूप होगा। 'हयादीनामसंयुक्तलान्तानामन्तः पूर्व वा' फि.सू.४८ का अनुवर्त्तन कर उत्तर सूत्र 'इगन्तानां च द्व्यसाम्' फि. सू.४९ से वृजिशब्द विकल्प से आद्युदात्त है, अतः इस पक्ष में चतुर्थ कक्ष्या को प्राप्त अण् प्राप्त है। पक्ष में वृजिशब्द को अनुदात्त होने से 'अनुदात्तादेश्च' ४.३.१४० से अञ् प्रत्यय है। परन्तु इस तरह चतुर्थ से तृतीय का बाध होने पर 'त्रिगर्तानां विकारस्त्रैगर्तः' में चतुर्थ कक्ष्या को प्राप्त अवधिग्रहण से विहित वुञ् के द्वारा तृतीय कक्ष्या को प्राप्त गर्तोत्तरपद लक्षण छ प्रत्यय के बाध का प्रसंग उपस्थित हो गया; उसका वारण करते हैं-**ये चतुर्थास्तत्रेति**। कहीं-कहीं पर चतुर्थ कक्ष्या को प्राप्त अपवाद के द्वारा पूर्वप्रत्ययों का बाध नहीं भी होता है। जैसे-'त्रिगर्तानां विकारस्त्रैगर्तः' में जहाँ 'त्रयो गर्ता यस्मिन्देशे स त्रिगर्तो देशः' ऐसा बहुव्रीहि है, वहाँ बहुव्रीहिलक्षण प्रकृतिस्वर के द्वारा त्रिगर्तशब्द अन्तोदात्त होगा। यहाँ 'तस्य विकारः' से प्राप्त अण् प्रत्यय प्रथम है; 'जनपदतदवध्योश्च' ४.२.१२४ से विहित जनपदलक्षण वुञ् द्वितीय है; 'गर्तोत्तरपदाच्छः' ४.२.१३७ से गर्तोत्तरपदलक्षण छ प्रत्यय तृतीय है; एवं तदवधिलक्षण ४.२.१२६ वुञ् चतुर्थ है। 'पूर्व में पढा गया अपवाद अनन्तर विधि का ही बाध करता है, उत्तरविधि का नहीं' इस न्याय से यहाँ चतुर्थ प्रत्यय वुञ् के द्वारा अण् का बाध नहीं होता है। एवं कहीं-कहीं पर 'मध्य में पढा गया अपवाद पूर्वविधि का बाध करता है, उत्तरविधि का नहीं' इस न्याय से भी चतुर्थ के द्वारा पूर्वप्रत्ययों का बाध नहीं होगा। जैसे-'रङ्कूणां विकारो राङ्कवः' में 'तस्य विकारः' से विहित अण् प्रत्यय प्रथम है। इस अण् का अपवाद 'अवृद्धादपि बहुवचनविषयात्' ४.२.१२५ से प्राप्त वुञ् और 'ओर्देशे ठञ्' ४.२.११९ से प्राप्त ठञ् प्रत्यय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में तुल्यकक्ष्या होने से चाहे जो भी प्राप्त कर लें, द्वितीय होगा; एवम् इस तृतीय का भी अपवाद 'कोपधादण्' ४.२.१३२, अथ वा 'कच्छादिभ्यश्च' ४.२.१३३ से प्राप्त अन्यतर अण् तृतीय होगा; एवम् 'मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ्' ४.२.१३४ से प्राप्त वुञ् चतुर्थ होगा।

के चिन्मध्येऽपवादाः पूर्वान् विधीन् बाधन्त इति। एतावन्तश्चैवैते स्युर्यदुत द्वितीयास्तृतीयाश्चतुर्था वा। न पञ्चमाः सन्ति, न षष्ठाः। यदप्युच्यते-'अवयवे चाऽप्राण्योषधिवृक्षेभ्योऽनिवृत्ति'रिति। प्राण्योषधिवृक्षेभ्योऽनिवृत्तिरुच्यते,-तत्र कः प्रसङ्गो यदप्राण्योषधिवृक्षेभ्योऽनिवृत्तिः स्यात्!। यदप्युच्यते-'अड्मयटोश्च विप्रतिषेधाऽनुपपत्तिर्मयडुत्सर्गादि'ति। मा भूद्विप्रतिषेधः-'पुरस्तादपवादा अनन्तरान् विधीन् बाधन्त' इत्येमण्णञं बाधिष्यते, मयटं न बाधिष्यते।। तस्य विकारः।।

यहाँ मध्येऽपवादन्याय के द्वारा उत्तरोत्तर चतुर्थ बाध के द्वारा पूर्व का बाध नहीं होने से प्रकृत में अण् ही होता है-राङ्कवः। यहाँ वुञ् से पूर्व अण् का ही बाध है, विकारार्थक अण् का नहीं। यहाँ पर होने से विकारार्थक अण् के द्वारा वुञ् का ही बाध है, वुञ् से अण् का नहीं। यहाँ वुञ् का बाध होने पर 'ओरञ्' ४.३.१३९ से अञ् प्राप्त होने पर उसी का प्रतिप्रसव 'कोपधाच्च' ४.२.७९ से भी अण् प्राप्त है। पर होने से अण् के द्वारा सभी का बाध हो जाता है। यहाँ चतुर्थ शैषिक ही है, पञ्चम और षष्ठ नहीं।

भगवान् भाष्यकार द्वारा स्पष्ट रूप से निषेध किये जाने पर पञ्चम और षष्ठ शैषिक का अभाव ही समझना चाहिये। परन्तु 'प्रावृषो विकारः प्रावृड्मयः' में विकारार्थक अण् प्रथम है, तदपवाद 'कालाट्ठञ्' ४.३.११ से प्राप्त ठञ् द्वितीय है, उसका भी अपवाद 'प्रावृष एण्यः' ४.३.१७ से एण्य प्रत्यय चतुर्थ है, उसका भी अपवाद अण् प्रत्यय पञ्चम है, उसका भी अपवाद 'नित्यं वृद्धशरादिभ्यः' ४.३.१४ से प्राप्त मयट् षष्ठ है। इससे पूर्व एकदेशी ने 'अवयवे चाऽप्राण्योषधिवृक्षेभ्योऽनिवृत्तिः' कह कर अप्राण्याषधिवृक्ष से निवृत्ति बतायी थी, उसका वारण करते हैं-**तत्रेति**। 'अवयवे चाऽप्राण्योषधिवृक्षेभ्यः' ४.३.१३५ सूत्र में प्रकृतिविशेष से विधीयमान अण् उसी प्रकृति से शैषिकों का बाध करेगा, अन्य प्रकृति से उस प्रत्यय का स्वयम् अभाव होने से अन्यत्र बाधक नहीं हो सकेगा। इस तरह यहाँ घादि प्रत्ययों की निवृत्ति हो जाने पर 'तस्येदम्' ४.३.१२० के द्वारा 'पाटलिपुत्रकाः' में वुञ् सिद्ध हो जा रहा है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकदेशी ने 'अण्मयटोश्च' विप्रतिषेधानुपपत्तिर्मयडुत्सर्गात्' कह कर निवृत्तिपक्ष में अण् और मयट् के विप्रतिषेध की अनुपपत्ति दी थी, वह भी नहीं रहेगी-**मा भूदिति**। वह इस तरह कि पुरस्तादपवादन्याय के द्वारा हम अण् के द्वारा अञ् का बाध करेंगे, मयट् का नहीं; इससे 'शाकमयम्' में अण् और मयट् का विप्रतिषेध नहीं बन सकेगा।। **तस्य-**।।

अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः ४.३.१३५

किमर्थं विकारावयवयोर्युगपदधिकारः क्रियते? * विकारावयवयोरुक्तम् * विकारावयवयोरुक्तम्। किमुक्तम्? तत्र तावदुक्तं-भव्यव्याख्यानयोर्युगपदधिकारोऽपवादविधानार्थः,-कृतनिर्द्देशौ हि ता'विति। इहापि विकारावयवयेर्युगपदधिकारोऽपवादविधानार्थः-कृतनिर्द्देशौ ह्येतावर्थौ-तस्येदमिति।। अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः।।

यहाँ 'च' पद से विकार की भी अनुवृत्ति है। समर्थविभक्ति का लाभ के लिए 'तस्य' पद की भी अनुवृत्ति करेंगे। अतः सूत्रार्थ-'प्राणी, ओषधि और वृक्षवाचि षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से विकार और अवयव अर्थ वाच्य होने पर प्रत्यय हों'। जैसे-प्राणी=मयूरस्यावयवो विकारो वा मायूरः। मूर्वा-ओषधिविशेषस्तस्यावयवो विकारो वा मौर्वः। पिप्पलो=वृक्षविशेषस्तस्यावयवो विकारो वा पैप्पलः।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। विकार और अवयव अर्थ का एक साथ अधिकार क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**विकारावयवयोरिति**। 'तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः' ४.३.६६ सूत्र पर मैं इसे स्पष्ट कर आया हूँ। वहाँ आप ने प्रश्न किया था कि 'भव और व्याख्यान अर्थ का युगपद् अधिकार क्यों करते हैं'?, तो वहाँ मैंने इसका उत्तरपक्ष 'अपवादविधानार्थम्' दिया था। अर्थाद् युगपद् भव और व्याख्यान अर्थ के अपवाद का भी विधान हो सके, इसके लिए भव और व्याख्यान अर्थ का युगपद् अधिकार है। वैसे प्रकृत में भी विकार और अवयव अर्थ के अपवाद प्रत्ययों का युगपद् विधानार्थ युगपद् अधिकार है।। **अवयवे-**।।

बिल्वादिभ्योऽण् ४.३.१३६

किमर्थं बिल्वादिषु गवीधुकाशब्दः पठ्यते, न 'कोपधादणि'त्येव सिद्धम्? * बिल्वादिषु गवीधुकाग्रहणं मयट्प्रतिषेधार्थम् * बिल्वादिषु गवीधुकाग्रहणं क्रियते। 'मयट्प्रतिषेधार्थम्'। मयडतो मा भूदिति।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बिलदिभ्योऽण् ।।

सूत्रार्थ—'बिल्वादिगणपठितशब्दों से विकार और अवयव वाच्य होने पर अण् हो'। जैसे-बिल्वस्य विकारोऽवयवो वा बैल्वम्।

पूर्वपक्षी—**किमर्थमिति**। बिलदिगण में आचार्य ने अवयवार्थक और विकारार्थक अण् का विधान करने के लिए गवीधुकाशब्द पढा है। 'बिल्वादिभ्योऽण्' का ही प्रतिप्रसव 'कोपधाच्च' ४.३.१३७ है। गवीधुका पद कोपध है, अतः उससे उक्तार्थ में कोपधलक्षण अण् से ही लक्ष्य सिद्ध हो जायेगा?

उत्तरपक्षी- **मयट्प्रतिषेधार्थमिति**। उक्तार्थ में गवीधुका पद से मयट् का प्रतिषेध हो सके, इसके लिए बिल्वादिगण में गवीधुकाशब्द का पाठ है।। **बिल्वादिभ्योऽण्** ।।

अनुदात्तादेश्च ४.३.१४०

*** अनुदात्तादेरञो विधान आद्युदात्तान्ङीष उपसंख्यानम् * अनुदात्तादेरञो विधाने आद्युदात्तान्ङीष उपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। कुवली-कौवलम्। बदरी-बादरम्। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यं-निघाते कृतेऽनुदात्तादेरित्येव सिद्धम्। न सिध्यति। किं कारणम्? * पदस्य ह्यनुदात्तादित्वम् * पदस्य हि निघातः। सुबन्तं च पदम्। ङ्याप्रातिपदिकाच्च प्रत्ययो विधीयते।**

यहाँ 'ओरञ्' ४.३.१३९ से अञ् की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'विकार अथ वा अवयव अर्थ वाच्य होने पर अनुदात्तादिषष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से अञ् प्रत्यय हो'। दधित्थस्य अवयवो विकारो वा दाधित्थम्। कपित्थस्यावयवो विकारो वा कापित्थम्।

वार्तिककार—**अनुदात्तादेरिति**। अनुदात्तादि से अञ्विधि में ङीषन्त आद्युदात्त से भी अञ् कहना चाहिये। कुवल और बदरशब्द 'ग्रामादीनाञ्च' फि.सू.३८ से आद्युदात्त है, एवम् उन दोनों से पर में 'षिद्गौरादिभ्यश्च' ४.१.४१ से ङीष् हो कर ङीषन्त आद्युदात्त कुवरी और बदरीशब्द है। उससे विकार अथ वा अवयव अर्थ में अञ् हो कर 'कौवलं, बादरम्' रूप है।

प्रश्नभाष्य—**तत्तर्हीति**। क्या उक्त वार्तिक पढना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। प्रकृत वार्तिक की आवश्यकता नहीं है। प्रकृत वार्तिक के अभावपक्ष में 'कौवलं, बादरम्' की सिद्धि बताते हैं-**निघात**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इति। 'फिषोऽन्त उदात्तः'फि.सू.१ से प्रातिपदिकस्वर के द्वारा कुवल और बदर अन्तोदात्त होने पर 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' ६.१.१५८ से शेषनिघात के द्वारा अनुदात्तादि होगा। इस तरह 'अनुदात्तेश्च' से ही विकार अर्थों में अञ् सिद्ध हो कर 'कौवलं, बादरम्' रूप सिद्ध हो जा रहा है, इसके लिए अतिरिक्त वचन पढने की आवश्यकता नहीं है।

अन्य आचार्य अनुदात्तादि से 'कौवलम्' आदि की असिद्धि बताते हैं-**न सिध्यतीति**। इसका कारण स्पष्ट करते हैं-**पदस्येति**। 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' ६.१.१५८ इस वचन से पद को शेषनिघात किया जा रहा है। 'सुप्तिङन्तं पदम्' १.४.१४ से सुबन्त, तिङन्त को ही पद कहा जा गया है; जब कि 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ का अधिकार कर आचार्य ने 'अनुदात्तादेश्च' ४.. ३.१४० सूत्र पढा है। यहाँ अनुदात्तादि ङी, आप् और प्रातिपदिक में विशेषण है; अतः ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिक से ही प्रत्ययों का विधान है, इस लिए पद के अभाव में यहाँ शेषनिघात नहीं होने से अञ् प्राप्त नहीं है।

*** न वा समर्थस्याऽनुदात्तादित्वात् * न वा कर्त्तव्यम्। किं कारणम्? 'समर्थस्याऽनुदात्तादित्वात्'। समर्थमुदात्तादित्वेन विशेषयिष्यामः। नैवं शक्यम्। इह च प्रसज्येत-वाचो विकारः, त्वचो विकार इति। एतद्धि समर्थमनुदात्तादि। इह च न स्यात्-सर्वेषां विकार इति। तस्मान्नैवं शक्यम्। न चेदेवमुपसंख्यानं कर्त्तव्यम्? न कर्त्तव्यम्। आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति-'यावत्येव द्वितीयस्य स्वरस्य प्रादुर्भावस्तावत्येव पूर्वस्य निघात' इति। यदयं भिक्षादिषु गर्भिणी-शब्दस्य पाठं करोति।**

सूत्रानुयायी आचार्य-**न वेति**। समर्थ अनुदात्तादि है, उससे अञ् हो जायेगा। यहाँ आचार्य विभक्ति उत्पन्न हो जाने पर ङ्यन्त को अनुदात्तादि मान कर 'समर्थस्यानुदात्तादित्वात्' कह रहे हैं। समर्थ को अनुदात्तादि के साथ विशेषित करेंगे-'अनुदात्तादि समर्थ से प्रत्ययोत्पत्ति हो'। ऐसा मानने से 'कौवलं, बादरम्' सिद्ध हो जायेगा।

अन्य आचार्य अनुदात्तादि के साथ समर्थ को विशेषित करने पर इसकी अतिव्याप्ति दे रहे हैं-**नैवं शक्यमिति**। यदि अनुदात्तादि से समर्थ को विशेषित करेंगे तो 'सावेकाचः-'६.१.१६५ से विभक्ति को उदात्त एवं धातुस्वर के द्वारा वाक् और त्वक् के अन्तोदात्त होने तथा 'वाचो विकारस्त्वचो विकारः' में शेषनिघात के द्वारा 'वाचः, त्वाचः' के अनुदात्तादि होने से विकारार्थक अञ् की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अतिव्याप्ति होगी।

अनुदात्तादि के द्वारा समर्थ को विशेषित करने पर अव्याप्ति भी होगी, इसे स्पष्ट करते हैं-**इह च नेति**। 'सर्वेषां विकारः' में 'सर्वेषाम्' अनुदात्तादि समर्थ नहीं है, अपि तु सुप् पर रहते 'सर्वस्य सुपि' ६.१.१९१ से उदात्तादि है, अतः प्रकृत में 'सर्वेषाम्' पद के उदात्तादिसमर्थ नहीं होने से अञ् की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। यदि अनुदात्तादि के साथ समर्थ को विशेषित नहीं करते हैं तो उणादि में सर्व पद अन्तोदात्त निपातित है, अतः शेषनिघात के द्वारा अनुदात्तादि हुआ, यहाँ विभक्ति-उत्पत्ति से पूर्व अनुदात्तादि अवस्था को लेकर विकारार्थक प्रत्यय उत्पन्न हो जा रहा है; अतः कहीं पर अतिव्याप्ति तथा कहीं पर अव्याप्तिरूप दोष होने से अनुदात्तादि के द्वारा समर्थ को विशेषित किया जाना सम्भव नहीं है।

इतर आचार्य—**न चेदेवमिति**। यदि अनुदात्तादि के साथ समर्थ को विशेषित नहीं कर सकते हैं तो क्या 'अनुदात्तादेरञो विधान आद्युदात्तान्ङीष उपसंख्यानम्' यह वचन पढा जाना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। इस वार्तिक की आवश्यकता नहीं है। वार्तिक के अभावपक्ष में भी 'कौवलं, बादरम्' की सिद्धि बताते हैं-**आचार्य-प्रवृत्तिरिति**। 'भिक्षादिभ्योऽण्' ४.२.३८ सूत्र के गणपाठ में आचार्य ने गर्भिणीशब्द का पाठ किया है। इससे आचार्य अपने आचरण से बताते हैं कि 'द्वितीयस्वर का प्रादुर्भाव होने पर भी प्राग्व्यस्थित पूर्व का निघात रहता है'।

कथं कृत्वा ज्ञापकम्? भिक्षादिषु गर्भिणीशब्दस्य पाठे एतत्प्रयोजनम्-'अनुदात्तादिलक्षणोऽञ्मा भूदि'ति। यदि च पदस्य निघातो गर्भशब्दोऽयमाद्युदात्तस्तस्मादिनिः। इन्नन्ताद्यः प्रत्ययः प्राप्नोति स तावत्स्यात्। तस्मिन्नवस्थिते निघातः। तत्र कोऽनुदात्तादिलक्षणस्याऽञः प्रसङ्गः? पश्यति त्वाचार्यः-'यावत्येव द्वितीयस्य स्वरस्य प्रादुर्भावस्तावत्येव पूर्वस्य निघात' इति। अतो भिक्षादिषु गर्भिणीशब्दं पठति।

अन्य आचार्य—**कथं कृत्वेति**। भिक्षादिगण ४.२.३८ में गर्भिणीशब्द का पाठ उक्तार्थ का ज्ञापक कैसे है?

उत्तरपक्षी—**भिक्षादिष्विति**। गर्भिणी पद से अनुदात्तादिलक्षण अञ् न हो, इसके लिए भिक्षादिगण में गर्भिणीशब्द का पाठ है। यदि सुबन्तरूप एवं तिङन्तरूप

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पद को निघात करते तो गृ निगरणे धा.पा.१४११ धातु से 'गिरति मातुः शरीरमिति गर्भः' 'अर्तिगृभ्यां भन्' उ.सू.४३२ के द्वारा भन् प्रत्यय हो कर गर्भशब्द निष्पन्न है। वह नित् होने से 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' ६.१.१९६ से आद्युदात्त होगा। इस आद्युदात्त गर्भशब्द से 'गर्भोऽस्ति यस्यां सा ' अर्थ में 'अत इनिठनौ' ५.२.११५ से इनि हो कर नान्त गर्भिन्शब्द से ङीप् प्रत्यय प्राप्त है। 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' ३.१.४ से ङीप् अनुदात्त है, फिर यहाँ शेषनिघात प्राप्त नही होने से गर्भिणीशब्द से अनुदात्तादिलक्षण अञ् की प्राप्ति नहीं है, फिर उसका वारण करने के लिए आचार्य ने भिक्षादिगण में ४.२.३८ में जो गर्भिणीशब्द का पाठ किया है, वह व्यर्थ हो जायेगा। परन्तु आचार्य देख रहें हैं कि द्वितीयस्वर के प्रादुर्भाव होने पर भी प्राग्व्यस्थित का निघात ही रह रहा है, अतः गर्भिणीशब्द से अनुदात्तादिलक्षण अञ् का वारण करने के लिए भिक्षादिगण में उसका पाठ करते हैं।

पदग्रहणं च किमर्थम्? * पदग्रहणं परिमाणार्थम् *** पदग्रहणं क्रियते। 'परिमाणार्थम्'। पदावधेर्यथा स्याद्वाक्यस्य मा भूद्-'अनुदात्तं पदमेकवर्ज'मिति।**

पूर्वपक्षी—**पदग्रहणमिति**। 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' ६.१.१५८ सूत्र में पदग्रहण क्यों करते हैं?, अनुदात्तमेकवर्जम्' इतना ही सूत्र क्यों नहीं रखते हैं?

उत्तरपक्षी—**परिमाणार्थमिति**। पदसमूह वाक्य का शेषनिघात न हो, इसके लिए पदग्रहण है।। **अनुदात्तादेश्च**।।

मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः ४.३.१४३

किमर्थं मयड्वैतयोरित्युच्यते? * मयड्वैतयोरिति वचनमपवादविषयेऽनिवृत्त्यर्थम् *** मयड्वैतयोरित्युच्यते। 'अपवादविषयेऽनिवृत्त्यर्थम्'। अपवादविषयेऽनिवृत्तिर्यथा स्यात्। बिल्वमयम्। बैल्वम् *** एतयोरित्यर्थनिर्द्देशः *** ऐतयोरित्यर्थनिर्द्देशो द्रष्टव्यः। तद् द्वेष्यं विजानीयाद्योगयोर्वाऽपत्ययोर्वेति, तदाचार्यः सुहृद् भूत्वाऽन्वाचष्टे-'एतयोरित्यर्थनिर्द्देश' इति।।** मयड्वैतयोर्भाषाया।।

सूत्रार्थ—'प्रकृतिमात्र से एतयोः=विकार और अवयव अर्थ में भाषा=लोकभाषा में विकल्प से मयट् हो'। जैसे-भस्मनो विकारः, अवयवो वा भस्ममयः, भास्मनः। अभक्ष्य कहने से 'मुद्गस्य विकारो मौद्गः' में तथा अनाच्छादन निषेध करने से 'कार्पासस्य विकारः कार्पासमाच्छादनम्' में मयट् नहीं हुआ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। 'विकारः' और 'अवयवः' इन दोनों अर्थों का युगपद् अधिकार आ रहा था, पुनः 'एतयोः' पद का ग्रहण क्यो किया गया है?

उत्तरपक्षी—**मयड्वैतयोरिति**। विकार और अवयव अर्थ का अधिकार होने पर भी पुनः जो 'एतयोः' ग्रहण किया, उससे मयट् का पुनः विधान होने से अपवाद के विषय में मयट् की निवृत्ति नहीं होगी; अपि तु अपवाद के विषय में मयट् भी होगा, तथा अपवादप्रत्यय भी। जैसे-'बिल्वस्य विकारः अवयवो वा' में सामान्यशास्त्र 'तस्य विकारः' ४.३.१३४ तथा 'मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः' ४.३.१४३ का अपवाद 'बिल्वादिभ्योऽण्' ४.३.१३६ है। यहाँ बिल्वादि से अपवाद प्रत्यय अण् भी प्राप्त होगा तथा सामान्य प्रत्यय मयट् भी होगा। इस तरह उक्त अर्थ में 'बैल्वम्, बिल्वमयम्' यह दोनों रूप होगा। **एतयोरिति**। 'एतयोः' यह अर्थनिर्द्देश है, स्वरूपनिर्द्देश नहीं। यहाँ कोई द्वेषवश ऐसा भी प्रश्न कर सकता है कि 'एतयोर्योगयोः' अथ वा 'एतयोरर्थयोर्वा मयट् स्यात्' यहाँ इस प्रकार का प्रश्न कोई न कर सके, अतः वार्तिककार ने शिष्य का सन्देहनिवारणार्थ 'एतयोरित्यर्थनिर्द्देशः' ऐसा वार्तिक पढ दिया है।। **मयड्वैतयो-**।।

ञितश्च तत्प्रत्ययात् ४.३.१५५

किमर्थमिदमुच्यते? * विकारावयवयोर्विकारावयव- युक्तत्वान् मयट्प्रतिषेधार्थं ञितश्च तत्प्रत्ययादञो विधानम् * **विकारो विकारेण युज्यते, अवयवश्चावयवेन, विकारावयवयोर्विकारावयवयुक्तत्वान्मयट् प्राप्नोति। इष्यते चाञेव स्यादिति। तच्चान्तरेण यत्नं न सिध्यतीति मयट्प्रतिषेधार्थं ञितश्च तत्प्रत्ययादञो विधानम्। एवमर्थमिदमुच्यते।**

यह मयट् का अपवादसूत्र है। 'ञितः' पञ्चमी-एकवचनान्त, पद है।

सूत्रार्थ—'ञित् जो विकारावयव प्रत्यय, तदन्त से विकार और अवयव अर्थ में ही मयट् हो'। जैसे-शम्या विकारः अवयवो वा शामीलम्, 'शम्याः ष्लञ्' ४.३.१४२ से ष्लञ्, शामीलस्य विकारः अवयवो वा शामीलम्, दधित्थस्य विकारः अवयवो वा दाधित्थम्, 'अनुदात्तादेश्च' ४.३.१४० से अञ् प्रत्यय, दाधित्थस्य विकारः अवयवो वा दाधित्थम्। यहाँ उभयत्र 'नित्यं वृद्धशरादिभ्यः' ४.३.११४ से प्राप्त मयट् का अपवाद प्रत्यय अञ् के द्वारा बाध है।

सूत्र के अभाव में भी लक्ष्यसिद्धि मान कर पूर्वपक्ष करते हैं-**किमर्थमिति**। प्रकृतसूत्र का आरम्भ क्यों करते हैं? यह सम्पूर्ण सूत्र पर प्रश्न है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरपक्षी—**विकारावयवयोरिति**। जब विकार विकार से युक्त है तथा अवयव अवयव से युक्त है तब विकारार्थक अञन्त और अवयवार्थक अञन्त से विकार और अवयव अर्थ में मयट् प्राप्त होगा; जब कि यहाँ अञ् ही इष्ट है, मयट् नहीं; वह विना यत्न के सम्भव नहीं है; अतः विकारावयवार्थक अञन्त से पुनः विकार और अवयव अर्थ वाच्य होने पर पुनः अञ् ही हो,, इसके लिए 'ञितश्च प्रत्ययात्' सूत्र पढते हैं। लोक में अवयव का भी अवयव देखा जाता है, एवं विकार का भी विकार देखा जाता है, ऐसा मान कर समाधान है।

*** न वा दृष्टो ह्यवयवे समुदायशब्दो विकारे च प्रकृतिशब्दस्तस्मान्मयडभावः * न वैतत्प्रयोजनमस्ति। किं कारणम्? 'दृष्टो ह्यवयवे समुदायशब्दः'। तद्यथा-पूर्वे पञ्चालाः। उत्तरे पञ्चालाः। तैलं भुक्तम्। घृतं भुक्तम्। शुक्लो नीलः कृष्ण इति। 'विकारे च प्रकृतिशब्दः'। विकारे च प्रकृतिशब्दो दृश्यते। तद्यथा-शालीन्भुङ्क्ते मुद्गैः। शालिविकारान्मुद्गविकारैरिति। 'तस्मान्मय- डभावः'। तस्मान्मयडतो न भविष्यति।**

अन्य आचार्य—**न वेति**। आप का यह समाधान ठीक नहीं है। अवयव में समुदाय देखा जाता है, अवयव नहीं। जैसे-'पूर्वे पञ्चालाः, उत्तरे पञ्चालाः, तैलं भुक्तं, घृतं भुक्तम्'। यहाँ पञ्चाल के एकदेश अवयव में ही समुदाय का प्रयोग है। एवं घृतैकदेश अवयव और तैलैकदेश अवयव के भुक्त होने पर समुदाय का प्रयोग है। एवं 'शुक्लः, नीलः, कृष्णः' में शुक्लैकदेश अवयव, नीलैकदेश अवयव और कृष्णैकदेश अवयव में समुदायशब्द है। इस तरह जब शमी का अवयव शाखा एवं शमीशाखा का अवयवशाखा आदि की विवक्षा होगी, तब भी शमीपद से ही ष्लञ् होगा-शामीलम्, शामील पद से नहीं। एवं विकार में प्रकृतिशब्द है। जैसे-'शालीन् भुङ्क्ते मुद्गैः' में शालिविकार को मुद्गविकार से खाता है' यही अर्थबोध होता है। जैसे-कपोत का विकार मांस है, उसे 'कापोतम्' कहेंगे। कपोतविकारमांस का विकार भी कपोत का ही विकार है, अतः कपोतविकारमांस का विकार रस अर्थ वाच्य होने पर भी कपोतप्रकृति से ही प्रत्यय होगा, अञन्त कापोत से नहीं।

नैतद्विदामहे-ऽवयवे समुदायशब्दोऽस्ति नास्तीति, विकारे वा प्रकृतिशब्द इति। किं तर्हि? विकारावयवशब्दोऽपि त्वस्ति तत उत्पत्तिः प्राप्नोति।

उत्तरपक्षी—**नैतदिति**। हम अवयव में समुदायशब्द और विकार में प्रकृति-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शब्द का निषेध नहीं कर रहे हैं, अपि तु यह कह रहे हैं कि विकार-प्रत्ययान्त और अवयवप्रत्ययान्त भी शब्द हैं, उनका विकार और अवयव वाच्य होने पर अञन्त से मयट् प्राप्त है।

*** विकारावयवशब्दात्प्रसङ्ग इति चेन्न तेनानभिधानात् * विकारावयव-शब्दात्प्रसंग इति चेत्तन्न। किं कारणम्? 'तेनाऽनभिधानात्'। न हि विकारावयवयशब्दादुत्पद्यमानेन प्रत्ययेनाऽर्थस्याऽभिधानं स्यात्। अनभिधानात्तत उत्पत्तिर्न भविष्यति। तच्चाऽवश्यमनभिधानमाश्रयितव्यम्।**

अन्य आचार्य—**विकारावयेति**। शब्द, अर्थ और शब्दार्थसम्बन्ध को नित्य मान कर यह व्याकरणशास्त्र प्रवृत्त है। विकारार्थक अञन्त और अवयवार्थक अञन्त से विकार और अवयव अर्थ में अनभिधान होने से मयट् की प्राप्ति नहीं होगी। कहीं भी इस तरह का मयट् प्रत्यय से विकार का विकार तथा अवयव का अवयव वाच्य नहीं है। यहाँ भाष्यकार ने अनभिधानपक्ष का आश्रय किया है, अतः इससे प्रकृतसूत्र का खण्डन हो गया।

*** अभिधाने ह्यन्यतोऽपि मयट्प्रसङ्गः * अभिधाने सत्यन्यतोऽपि मयट् प्रसज्येत-बैल्वस्य विकार इति * तस्मात्तत्प्रत्ययान्ताल्लुग्वचनम् * तस्मात् तत्प्रत्ययान्ताल्लुग्वक्तव्यः।**

इतर आचार्य—**अभिधाने हीति**। परन्तु यदि विकारार्थक और अवयवार्थक अञन्त से विकार अर्थ में अनभिधानपक्ष को नहीं मान कर मयट् करेंगे तो 'ञितश्च तत्प्रत्ययात्' सूत्र को हटा कर 'बैल्वमयम्' इत्यादि प्रयोगवारण करने के लिए 'तत्प्रत्ययाल्लुक्' ऐसा सूत्र करना होगा।

यदि लुगुच्यते-कथं गौमयं भस्म, द्रौवयं मानं, कापित्थो रस इति? * अन्यत्र गोमयाद्द्रुवयात्फलाच्च लुक् * अन्यत्रगोमयाद्द्रुवयात्फलाच्च लुग्वक्तव्यः। इह तर्हि-औष्ट्रकी। अञन्तादितीकारो न प्राप्नोति। इष्टमेवैतत् संगृहीतम्,-'औष्ट्रिके'त्येव भवितव्यम्। इह हि सौनागाः पठन्ति- * वुञश्चाञ्कृतप्रसङ्गः *-इति।।

प्रश्नभाष्य—**यदीति**। यदि 'तत्प्रत्ययाल्लुक्' सूत्र पढेंगे तो 'गौमयं भस्म, द्रौवयं मानं, कापित्थो रसः' कैसे सिद्ध होगा?

उत्तरभाष्य—**अन्यत्रेति**। गोमय, द्रुवय और फलवाची से अन्यत्र 'तत्प्रत्ययाल्लुक्' वचन पढेंगे। 'गोश्च पुरीषे' ४.३.१४५ से 'गोमयम्' में विकारार्थक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मयट् है, यदि 'पुरीष अवयव और विकार दोनों नहीं है' ऐसा मानेंगे तब गोमयशब्द तत्प्रत्यय नहीं होगा, इस तरह यहाँ लुक् का प्रसंग नहीं है। 'द्रोर्विकारो द्रुवयः' में 'माने वयः' ४.३.१६२ से वय प्रत्यय होकर विकारार्थक वयप्रत्ययान्त है। गोमय और द्रुवयशब्द से अनुदात्तादिलक्षण अञ् है; उसका लुक् प्राप्त होने पर 'अन्यत्र गोमयाद् द्रुवयात् फलाच्च लुक्' ऐसा वचन पढा गया है। कपित्थशब्द से फलविकार अर्थ में अण् प्रत्यय, 'फले लुक्' ४.३. १६३ के द्वारा अण्लुक्, 'लघावन्ते द्वयोश्च बह्वषो गुरुः' फि.सू.४२ से कपित्थशब्द मध्योदात्त है, अतः फलवाची के अनुदात्त होने से यहाँ भी अनुदात्तादिलक्षण अञ् ही समझना चाहिये।

भाष्यकार ने 'तत्प्रत्यय=विकारावयवप्रत्ययान्त से पुनः अनभिधान होने से प्रत्यय नहीं होता है' कह कर प्रकृत सूत्र का प्रत्याख्यान कर दिया है। द्रुवय और फलवाची से विकार का विकार और अवयव का अवयव वाच्य होने पर 'नित्यं वृद्धशरादिभ्यः' ४.३.१४४ से प्रत्यय इष्ट है; परन्तु 'फले लुक्' ४.३. १६३ से उस मयट् का लुक् हो जायेगा। सूत्रारम्भपक्ष में 'बैल्वस्य विकारः' में भी विकारप्रत्ययान्त से मयट् ४.३.१४४ प्राप्त होने से अतिव्याप्ति होगी, अतः सूत्र का खण्डन किया गया है। परन्तु सूत्रारम्भ नहीं होने के पक्ष में दोष आता है, इसे स्पष्ट करते हैं-**इह तर्हीति**। 'उष्ट्रस्य विकारश्चर्म औष्ट्रकम्' में 'उष्ट्राद्वुञ्' ४.३.१५७ से वुञ्, पुनः 'औष्ट्रकस्य चर्मणो विकार उपानत्' इस अर्थ में वुञन्त आष्ट्रिक पद से अञ् हो कर उसका लुक् कर देने पर 'औष्ट्रिकी' में ङीप् प्राप्त नहीं होने से सूत्र के अभावपक्ष में दोष आ रहा है। परन्तु यहाँ सूत्र का खण्डन करने वाले सिद्धान्ती आचार्य-'इष्टमेवैतत्संगृहीतम्' कह कर 'औष्ट्रिका' यही रूप मानते हैं। अर्थात् उष्ट्र के विकार का विकार भी उष्ट्र का ही विकार है, अतः उष्ट्र का विकार का विकार वाच्य होने पर मूलप्रकृति उष्ट्र से ही वुञ् होगा, अनभिधान होने से औष्ट्रक से नहीं। एवं बिल्व का विकार का विकार वाच्य होने पर भी बिल्व से ही प्रत्यय होगा, अनभिधान होने से बैल्व से नहीं। इस बात को स्पष्ट करने के लिए भगवान् भाष्यकार सौनाग आचार्यों का उद्धरण देते हैं-**इह हीति**। 'इह हि'=उष्ट्र का विकार का विकार वाच्य होने पर सौनाग आचार्य मूलप्रकृति उष्ट्र से वुञ् प्रत्यय ही करते हैं, अञ् नहीं। इस तरह भगवान् भाष्यकार ने सूत्रारम्भपक्ष में दोष दे कर इसका खण्डन कर दिया है।

इह तर्हि पालाशी समिदित्यनुपसर्जनलक्षण ईकारो न प्राप्नोति। मा भूदेवम्-'अञ्योऽनुपसर्जन'मिति, 'अञन्ताद् अनुपसर्जना'दित्येवं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भविष्यति। नैवं शक्यम्-इह हि दोषः स्यात्-काशकृत्स्निना प्रोक्ता मीमांसा काशकृत्स्नीति, तामधीते काशकृत्स्ना ब्राह्मणीति, अण्णन्तादितीकारः प्रसज्येत। तस्मादस्तु 'न तेनानभिधाना'दित्येव। इह तर्हि कापोतो रस इति प्राणिशब्दो नोपपद्यते। नैष दोषः। इदन्तावदयं प्रष्टव्यः-योऽसावाद्यः कपोतः सलोमकः सपक्षः न च सम्प्रति प्राणिति कथं तत्र प्राणिशब्दो वर्त्तत इति? अथ मतमेतत्-'प्रकृत्यन्वया विकारा भवन्ती'ति। इहापि न दोषो भवति।। ञितश्च तत्प्रत्य।।

सूत्रारम्भ नहीं मानने में अन्य दोष देते हैं—**इह तर्हि पलाशीति**। 'पलाशस्य विकार इति पालाशी, तस्या विकारः पालाशी समित्' पाणिनीयलक्षण के पक्ष में अञन्त पालाश से पुनः प्रकृतसूत्र से अञ् हो कर अञ्लक्षण ङीप् के द्वारा पालाशी सिद्ध हो जाता है। परन्तु यदि 'ञितश्च तत्प्रत्ययात्' सूत्र नहीं रखेंगे तो 'पालाशी समित्' में ङीप् सिद्ध नहीं हो सकेगा। वह इस तरह कि सूत्र के अभावपक्ष में अञन्त पालाशशब्द से विकार अर्थ में 'नित्यं वृद्धशरादिभ्यः' ४.३.१४४ से विहित मयट् का लुक् होगा। मयडर्थ में अञन्त पालाशशब्द उपसर्जन हो गया। 'अनुपसर्जनात्' ४.३.१४ का अधिकार कर 'टिड्ढाणञ्-द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः' ४.१.१५ पढा है, अतः अनुपसर्जन अञन्त से ही ङीप् प्राप्त होगा। प्रकृत में मयट् का लुक् हो जाने पर अञन्त समुदाय के मयडर्थ में उपसर्जन होने से अनुपसर्जनाभावात् अञन्तलक्षण ङीप् नहीं होने से 'पालाशी समित्' का अव्याप्ति हो रही है।

अन्य आचार्य इस दोष का वारण करते हैं—**मा भूदेवमिति**। 'अञ्योऽनुपसर्जनं तस्मान्ङीप्' ऐसा अर्थ करेंगे। 'पालाशी समित्' में मयट् के लुक् हो जाने पर प्रकृत में पालाशशब्द अञन्त अनुपसर्जन स्त्रीत्व में है, उससे ङीप् हो जायेगा। अञन्त अनुपसर्जन को स्त्रीत्व में मानने पर अतिव्याप्ति दे रहे हैं-**नैवं शक्तमिति**। यदि अञन्त के स्त्रीत्व में शक्त होने पर अञन्त अनुपसर्जन से ङीप् करेंगे तो 'काशकृत्स्ना ब्राह्मणी' में भी अञन्त काशकृत्स्न पद स्त्रीत्व में शक्त है, उससे भी ङीप् की आपप्ति होने लगेगी। जैसे-काशकृत्स्नस्यापत्यं काशकृत्स्निस्तेन प्रोक्तेति काशकृत्स्नी मीमांसा' में 'तेन प्रोक्तम्' ४.३.१०१ से अण्, एवं तल्लक्षण ङीप् है। 'काशकृत्स्नीमधीत इति काशकृत्स्ना ब्राह्मणी', 'तदधीते तद्वेद' ४.२.५९ से अण्प्रत्यय, एवं 'प्रोक्ताल्लुक्' ४.१.६४ के द्वारा प्रोक्तार्थक अण् से पर में अध्येत्रर्थक अण् का लुक् हो जायेगा। अण्लुक् होने पर इदानीं 'काशकृत्स्ना ब्राह्मणी' यह अण्णन्त पद स्त्रीत्व में शक्त है। इससे ङीप् की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आपत्ति होने लगेगी; अतः 'अञ् योऽनुपसर्जनं, तस्मात्' ऐसा अञन्त को स्त्रीत्व में शक्त मान कर ङीप् नहीं कर सकते हैं। चूँकि सूत्र के अभावपक्ष में मयट् का लुक् होने पर 'पालाशी समित्' सिद्ध नहीं पा रहा है, अतः अनभिधान होने से पालाशी में भी मयट् की अनुत्पत्तिकल्पना ही करनी चाहिये। अथ वा यदि यहाँ अनभिधानपक्ष न भी माना जाये तो भी अध्येत्रर्थक अण् के 'प्रोक्ताल्लुक्' ४.२.६४ से लुक् हो जाने पर भी 'काशकृत्स्ना ब्राह्मणी' में ङीप् नहीं होगा। वह इस तरह कि जिस अध्येत्रर्थक अण् को निमित्त मान कर ङीप् करना है, उसका लुक् हो चुका है, जिस प्रोक्तादि अण् का श्रवण हो रहा है, उससे पर में एक वार ङीप् चरितार्थ हो चुका है; अतः पुनः ईकार नहीं हो सकेगा। सूत्र न मानने के पक्ष में अन्य दोष देते हैं-**इह तर्हीति**। यहाँ प्राणरहित मांस अर्थ में कपोतशब्द का आरोप है। 'कपोतस्य विकारो मांसमिति कापोतं मांसं, तस्य रस इति कापातो रसः' में सूत्र रहने पर विकार वाच्य होने पर अञन्त कापोत पद से अञ् हो कर 'कापोतो रसः' होता है। सूत्र का न्यास नहीं करने पर 'कापोतो रसः' नहीं हो सकेगा; अतः सूत्र के अभावपक्ष में यह दोष है।

उत्तरपक्षी आचार्य इस दोष का वारण करते हैं—**नैष दोष इति**। यहाँ पूछना चाहिये-लोम और पक्ष वाला जो आद्य कपोत है, वह '**न च सम्प्रति**'= प्राणरहित मांस में नहीं है, फिर भी लोक में प्राणरहित मांस अर्थ में भी कपोतशब्द का व्यवहार देखा जाता है; अतः कपोत के विकार का विकार वाच्य होने पर मूलप्रकृति कपोत से ही प्रत्यय होगा, कापोत से नहीं; अतः सूत्र के अभावपक्ष में 'कापोतो रसः' में मयट् की आपत्ति नहीं है।। **ञितश्च तत्प्रत्ययात्**।।

क्रीतवत्परिमाणात् ४.३.१५६.

कथमिदं विज्ञायते-'क्रीते ये प्रत्यया विहितास्ते भवन्ति परिमाणाद्विकारावयवयो'रिति? आहो स्वित्-'परिमाणात्क्रीते ये प्रत्यया विहितास्ते भवन्ति विकारावयवयो'रिति? किं चाऽऽतः? यदि विज्ञायते-'क्रीते ये प्रत्यया विहितास्ते भवन्ति परिमाणाद्विकारावयवयो'रिति,-प्रत्ययमात्रं प्राप्नोति। अथ वा विज्ञायते-'परिमाणात्क्रीते ये प्रत्यया विहितास्ते भवन्ति विकारावयवयो'रिति, प्रकृतिमात्रात्प्राप्नुवन्ति।

वतिनिर्द्देश से यह अतिदेश सूत्र है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूत्रार्थ—'प्राग्वहतेष्ठक्' ४.४.१ सूत्र से आरम्भ कर क्रीत अर्थ में जो प्रत्यय जिस प्रकृति आदि से कहे गये हैं वे परिमाण से विहित हो कर उसी तरह विकार अर्थ में अतिदिष्ट हों'। यह अण् आदि का अपवाद है। 'निष्केण क्रीतं नैष्किकम्' में जैसे प्रत्यय है वैसे अतिदेश के द्वारा 'निष्कस्य विकारः' अर्थ में भी 'असमासे निष्कादिभ्यः' ५.१.२० से विहित प्रत्यय होगा। एवं जैसे 'शतेन क्रीतः शत्यः' में 'शताच्च ठन्यतौ' ५.२.२१ से प्रत्यय होता है वैसे 'शतस्य विकारः' अर्थ में भी शत प्रकृति से ठन् और यत् हो कर 'शतिकः, शत्यः' रूप होगा।

पूर्वपक्षी—**कथमिदमिति**। प्रकृत सूत्र का कैसे अर्थ किया जाये? क्या-'क्रीत अर्थ में जो प्रत्यय विहित हैं, परिमाणवाची से विकार और अवयव अर्थ में हों' ऐसा अर्थ किया जाये; अथ वा परिमाणवाची से क्रीत अर्थ में जो प्रत्यय विहित हैं; वे विकार और अवयव अर्थ में प्रकृतिमात्र से हों' ऐसा अर्थ किया जाये; यहाँ दोनों में कौन सा अर्थ लिया जाये?

अन्य आचार्य—**किं चात इति**। यहाँ दोनों अर्थों में क्या वैशिष्ट्य है? पूर्वपक्षी आचार्य दोनों ही अर्थों में अतिव्याप्ति दे रहे हैं-**यदि विज्ञायते**-यदि क्रीत अर्थ में विहित प्रत्यय का परिमाणवचन से पर में विकार और अवयव अर्थ में क्रीतवत् अतिदेश करेंगे तो इस पक्ष में 'मुद्गैः क्रीतं मौद्गिकम्' में 'तेन क्रीतम्' ५.१.३७ से ठक् विहित है, वह परिमाणवाचक शूर्प पद से विकार अर्थ में प्राप्त होगा। यदि द्वितीय अर्थ 'परिमाणवाची से क्रीत अर्थ में विहित प्रत्यय क्रीतवत् अतिदेश के द्वारा विकार और अवयव अर्थ में प्रकृतिमात्र से हों' ऐसा अर्थ करेंगे तो 'शूर्पादन्यतरस्याम्' ५.१.२६ से विहित अञ् और ठञ् प्रत्यय 'हलस्य विकारः' में हल पद से भी प्राप्त होंगे। इस तरह दोनों ही पक्ष दुष्ट हैं।

तस्मात्- * क्रीतवत्परिमाणादङ्गं च * अङ्गञ्च क्रीतवदिति वक्तव्यम्। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। 'क्रीतवदि'ति वतिनिर्द्देशोऽयम्। यदि च याभ्यः प्रकृतिभ्यो येन विशेषणेन क्रीते प्रत्यया विहितस्ताभ्यः प्रकृतिभ्यस्तेनैव विशेषणेन परिमाणाद्विकारावयवयोर्भवन्ति-ततोऽमी क्रीतवत्क्रीताः स्युः। अथ हि प्रकृतिमात्राद्वा स्युः प्रत्ययमात्रं वा स्यान्नाऽमी क्रीतवत्क्रीताः स्युः।

यह दोनों दोष न हों, इसके लिए प्रकृत सूत्र के स्थान पर आचार्य को 'क्रीतवत्परिमाणादङ्गं च' ऐसा सूत्र पढना चाहिये था। इससे अङ्ग को क्रीतवत्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अतिदेश होने से क्रीत अर्थ में जिस परिमाणवाचि अङ्ग से जो प्रत्यय विहित हैं, उसी परिमाणवाचि अङ्ग से विकार और अवयव अर्थ में भी प्रत्यय होगें, अनन्तर से नहीं।

अन्य आचार्य—**तर्हीति**। तो क्या प्रकृत सूत्र के स्थान पर 'क्रीतवत्परिमाणादङ्गं च' ऐसा सूत्र पढना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। यहाँ सूत्रन्यास बदलने की आवश्यकता नहीं है। आचार्य ने 'क्रीतवत्' ऐसा वतिनिर्द्देश किया है। इससे जिस प्रकृतिविशेष से जिस विशेषण के द्वारा क्रीत अर्थ में प्रत्यय विहित हैं, उसी प्रकृति से उसी विशेषण के द्वारा परिमाणवाचि से विकार और अवयव अर्थ में प्रत्यय होगें, तभी वतिग्रहण सार्थक होगा। यदि क्रीतवत् अतिदेश के द्वारा प्रकृतिमात्र से प्रत्यय हो जायें, अथ वा क्रीत अर्थ में विहित प्रत्यय परिमाण-वाचि से हो जायें, तो वे क्रीतवत् नहीं होंगे। इससे जिस परिमाणवाचीप्रकृति से क्रीत अर्थ में जो प्रत्यय है, उसी परिमाणवाचिप्रकृति से विकार और अवयव अर्थ में वही प्रत्यय होगा।

*** अणो वृद्धान्मयट् * 'अणो वृद्धान्मयडि'-त्येतद् भवति विप्रति-षेधेन। अणोऽवकाशः- तित्तिडीक-तैत्तिडीकम्। मयटोऽवकाशः-काष्ठ-मयम्। इहोभयम् प्राप्नोति-शाकमयम्।**

अणो वृद्धादिति। परविप्रतिषेध के द्वारा मयट् से अण् का बाध होता है। 'तित्तिडीकस्य विकारस्तैत्तिडीकम्' में 'कोपधाच्च' ४.३.१३७ से कोपधलक्षण अण् चरितार्थ है तथा 'काष्ठस्य विकारः काष्ठमयम्' में 'नित्यं वृद्धशरादिभ्यः' ४.२.१४४ चरितार्थ है। 'शाकस्य विकारः शाकमयम्' में कोपधलक्षण अण् वृद्धलक्षण मयट् दोनों प्राप्त होने पर परविषेतिपेध के द्वारा मयट् से अण् का बाध हो जाता है।

*** ओरञोऽनुदात्तादेरञश्च * ओरञोनुदात्तादेरञश्च मयड्भवति विप्रतिषेधेन। ओरञोऽवकाशः- अरडु-आरडवम्। मयटः स एव। इहोभयं प्राप्नोति-दारु-दारुमयम्। 'अनुदात्तादेरञ्भवती'- त्यस्या-वकाशः-कौवलम्। जरद्वृक्ष-जारद्वृक्षम्। मयटः स एव। इहोभयं प्राप्नोतिआम्रमयम्।**

ओरञ इति। यहाँ पूर्व वार्तिक से 'वृद्धान्मयट्' की अनुवृत्ति करनी चाहिये। 'ओरञ्' ४.३.१३९ से प्राप्त अञ् प्रत्यय का परविप्रतिषेध के द्वारा बाध कहना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चाहिये। 'अरडोर्विकार आरडवम्' में 'ओरञ्' चरितार्थ है तथा 'काष्ठमयम्' में 'नित्यं वृद्धशरादिभ्यः' ४.२.१४४ चरितार्थ है। 'दारुणो विकारः' में 'ओरञ्' से विहित अञ् तथा वृद्धलक्षण मयट् दोनों प्राप्त है। तुल्यबल होने से मयट् से अञ् का बाध होता है। 'कुवलस्य विकारः कौवलम्' और 'जारद्वृक्षम्' में 'अनुदात्तादेश्च' ४.३.१४० चरितार्थ है तथा 'काष्ठमयम्' में वृद्धलक्षण मयट् चरितार्थ है। 'आम्रस्य विकार आम्रमयम्' में अनुदात्तादिलक्षण अञ् तथा वृद्धलक्षण मयट् प्राप्त है। समान बल होने से परविप्रतिषेध के द्वारा मयट् से अञ् का बाध होता है। यहाँ 'अमितम्योर्दीर्घश्च' उ.सू.१७३ से आम् पद रगन्त अनुदात्तादि है।

*** मयटः प्राण्यञ्विप्रतिषेधेन * मयटः प्राण्यञ्भवति विप्रतिषेधेन। प्राण्यञोऽवकाशः-गृध्र-गार्द्ध्रम्। मयटः स एव। इहोभयं प्राप्नोति-चाषम्। भासम्। प्राण्यञ्भवति विप्रतिषेधेन।**

मयटः प्राण्यञिति। परविप्रतिषेध के द्वारा प्राणिलक्षण अञ् से मयट् का बाध कहना चाहिये। 'गृध्रस्य विकारो गार्द्ध्रम्' में 'प्राणिरजतादिभ्योऽञ्' ४.३.१५४ से अञ् चरितार्थ है। 'काष्ठमयम्' में वृद्धलक्षण मयट् चरितार्थ है। 'चाषस्य विकारः चाषम्, भासस्य विकारो भासम्' में प्राणिलक्षण अञ् तथा वृद्धलक्षण मयट् दोनों प्राप्त हैं। तुल्य बल होने से परविप्रतिषेध के द्वारा प्राणिलक्षण अञ् से मयट् का बाध होता है।

*** न वाऽनवकाशत्वादपवादो मयट् * न वैष युक्तो विप्रतिषेधो योऽयमञो मयटश्च। किं कारणम्? 'अनवकाशत्वादपवादो मयट्'। अनवकाशो मयट् सावकाशमञं बाधिष्यते। स कथमनवकाशः? यद्यनुवर्त्तन्ते शैषिकाः। अथ निवृत्ताः शैषिकाः। वृद्धमाद्युदात्तं मयटोऽवकाशः।**

अन्य आचार्य 'मयटः प्राण्यञ्विप्रतिषेधेन का खण्डन करते हैं-**न वेति**। वृद्धलक्षण मयट् और अनुदात्तादिलक्षण अञ् का विप्रतिषेध सम्भव नहीं है। अनवकाश होने से अञ् का अपवाद मयट् है, अतः अपवाद मयट् के द्वारा अञ् का बाध हो जायेगा। मयट् का अनवकाशत्व स्पष्ट करते हैं-**यद्यनुवर्त्तन्त इति**। 'तस्य विकारः' ४.३.१३४ सूत्र में शैषिकों की अनुवृत्ति हो कर विकार अर्थ में 'काष्ठमयम्' में वृद्धलक्षण छ प्राप्त होने पर मयट् का आरम्भ है। वह मयट् 'येन नाऽप्राप्ते'न्याय से जैसे छ का बाध करेगा, वैसे अनुदात्तादिलक्षण अञ् का भी बाध करेगा। यदि विकाराधिकार में शैषिकों की अनुवृत्ति नहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करेंगे तो विध्यन्तरपूर्वक मयट् नहीं होगा। 'काष्ठमयम्' आदि में सावकाश होता हुआ पर होने से ही अञ् का बाध करेगा, अपवाद होने से नहीं। आद्युदात्त वृद्धसंज्ञक ही मयट् का अपवाद होगा।

*** प्राण्यञश्च * अयं चाप्ययुक्तो विप्रतिषेधो योऽयं मयटः प्राण्यञश्च। किं कारणम्? 'अनवकाशत्वाद् अपवादो मयडि'त्येव। अनवकाशो मयट् स यथैव ओरञमनुदात्तादेररञं बाधते एवं प्राण्यञमपि बाधेत।**

प्राण्यञश्चेति। प्राणिलक्षण अञ् और वृद्धलक्षण मयट् का भी विप्रतिषेध उचित नहीं है। मयट् अनवकाश है। अनवकाश होने से मयट् जैसे 'ओरञ्' ४.३.१३९ और 'अनुदात्तादेश्च' ४.३.१४० का बाध करेगा, वैसे 'प्राणिरजतादिभ्योऽञ्' ४.३.१५४ का भी बाध करेगा; अतः-

* तस्मान्मयड्विधाने प्राणिप्रतिषेधः * **तस्मान्मयड्विधाने प्राणिभ्यः प्रतिषेधो वक्तव्यः। स तर्हि वक्तव्यः? न वक्तव्यः। 'मध्येऽपवादाः पूर्वान् विधीन् बाधन्त' इत्येवमयं मयट्-ओरञमनुदात्तादेरञं च बाधिष्यते, प्राण्यञं न बाधिष्यते। यद्येतदस्ति-मध्येऽपवादाः पुरस्तादपवादा इति,-माऽनुवृतञ्शैषिकाः। पुरस्तादपवादा अनन्तरान् विधीन् बाधन्त' इत्येवमयमण्-अञं बाधिष्यते, मयटं न बाधिष्यते।**

तस्मादिति—मयड्विधान में प्राणिवाची से प्रतिषेध कहना चाहिये।

अन्य आचार्य—**स तर्हीति**। तो क्या मयड्विधान में प्राणिवाची से प्रतिषेध कहना चाहिये?

इतर आचार्य—**न वक्तव्य इति**। उक्त प्रतिषेध पढने की आवश्यकता नहीं है। मध्य में पठित अपवाद पूर्वविधि का ही बाध करता है, उत्तरविधि का नहीं। 'ओरञ्' ४.३.१३९, 'अनुदात्तादेश्च' ४.३.१४०, 'नित्यं वृद्धशरादिभ्यः' ४.३.१४४ और 'प्राणिरजतादिभ्योऽञ्' ४.३.१५४ यह सूत्र का क्रम है। मध्य में अञ् का अपवाद मयट् पढा गया है। वह अपने से पूर्व में विहित 'ओरञ्' और 'अनुदात्तादेश्च' से विहित अञ् का ही अपवाद होगा, 'प्राणिरजतादिभ्योऽञ्' से विहित अञ् का नहीं।

आक्षेपक आचार्य—**यद्येतदस्तीति**। यदि आप शैषिकों की निवृत्ति नहीं करेंगे तथा मध्येऽपवादन्याय मानेंगे, तो पुरस्तादपवादन्याय भी है; इससे आगे कहा गया अपवाद 'कोपधाच्च' ४.३.१३७ अपने से अनन्तर 'ओरञ्' ४.३.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१३९ का ही बाध करेगा, उत्तर में विहित वृद्धलक्षण मयट् ४.३.१४४ का नहीं। इस तरह अण् से मयट् का बाध प्राप्त नहीं हो रहा है।

*** अनुदात्तादेरञः प्राण्यञ्विप्रतिषेधेन * अनुदात्तादेरञः प्राण्यञ्भवति विप्रतिषेधेन। 'अनुदात्तादेरञ् भवती'त्यस्यावकाशः-जरद्वृक्षः-जारद्वृक्षम्। प्राण्यञः स एव। इहोभयं प्राप्नोति-कपोत-कापोतम्। प्राण्यञ्भवति विप्रतिषेधेन। कः पुनरत्र विशेषः-तेन वा सत्यनेन वा? साऽपवादकः स विधिरयं पुनर्निरपवादकः। यदि तेन स्यादिह न स्यात्-श्वाविधो विकारः शौवाविधम्।।**

अनुदात्तादेरञ इति। परविप्रतिषेध के द्वारा 'प्राणिरजतादिभ्योऽञ्' ४.३.१५४ के द्वारा 'अनुदात्तादेश्च' ४.३.१४० का बाध होता है। 'जरद्वृक्षस्य विकारो जारद्वृक्षम्' में अनुदात्तादेश्च' ४.३.१४० चरितार्थ है। जरद्वृक्ष पद समासस्वर के द्वारा के अन्तोदात्त है; अतः शेषनिघात के द्वारा अनुदात्तादि हुआ, तल्लक्षण अञ् है। 'गृध्रस्य विकारो गार्ध्रम्' में प्राणिलक्षण अञ् चरितार्थ है। 'कपोतस्य विकारः कापोतम्' में प्राणिलक्षण अञ् तथा अनुदात्तादिलक्षण अञ् दोनों प्राप्त है। पर विप्रतिषेध के द्वारा प्राणिलक्षण अञ् से अनुदात्तादिलक्षण अञ् का बाध होता है।

अन्य आचार्य—**कः पुनरत्रेति**। 'कापोतम्' में आप प्राणिलक्षण अथ वा अनुदात्तादिलक्षण अञ् करें, रूपभेद नहीं है। फिर किस विशेषता से यहाँ प्रतिषेध कहा है?

उत्तरपक्षी—**सापवादक इति**। पर प्रत्यय वृद्धलक्षण मयट् के द्वारा अनुदात्तादिलक्षण अञ् का बाध होने से प्राणिलक्षण अञ् निरपवाद है; जब कि किसी से बाध नहीं होने से प्राणिलक्षण अञ् निरपवाद है। यदि 'कापोतम्' में अनुदात्तादिलक्षण अञ् कहेंगे तो 'श्वानं विध्यतीति श्वाविद्, श्वन् उपपद रहते व्यध ताडने धा.पा.११८१ धातु से आश्रय अर्थ में क्विप् प्रत्यय, 'नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ' ६.३.१३६ से दीर्घ, कृत्स्वर से उत्तर को अन्तोदात्त, शेषनिघात के द्वारा 'श्वाविध्' अनुदात्तादि है। अनुदात्तादिलक्षण अञ् सापवाद है। यदि 'श्वाविधो विकारः' में अनुदात्तादिलक्षण अञ् की प्राप्ति दिखायेंगे तो वृद्धसंज्ञक होने से यहाँ वृद्धलक्षण मयट् भी प्राप्त होगा; अतः मयट् से अञ् का बाध हो जायेगा। परन्तु प्राणिलक्षण अञ् निरपवाद होने से उक्त श्वाविध् पद से हो जायेगा; 'द्वारादीनां च' ७.३.४ से वृद्धिप्रतिषेध और 'न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्वौ तु ताभ्यामैच्' से ऐजागम हो कर 'शौवाविधम्' रूप है।। **क्रीतवत्परि-**।।

फले लुक् ४.३.१६३

*** फले लुग्वचनानर्थ्यक्यं प्रकृत्यन्तरत्वात् * फले लुग्वचनमनर्थकम्। किं कारणम्? 'प्रकृत्यन्तरत्वात्'। प्रकृत्यन्तरमामलकशब्दः फले वर्त्तते। 'एकान्तदर्शनात् प्राप्नोति'** *एकान्तदर्शनात्प्रसङ्ग इति चेद् वृक्षे लुग्वचनम् * **एकान्तदर्शनात्प्रसङ्ग इति चेद् वृक्षे लुग्वक्तव्यः। वृक्षोऽपि हि फलैकान्तः।**

सूत्रार्थ—'फल अर्थ वाच्य होने पर विकार और अवयव अर्थ में विहित प्रत्यय का लुक् हो'। जैसे-आमलकी वृक्षस्तस्या फलम् अवयवो विकारो वा आमलकम्'। यहाँ 'नित्यं वृद्धशरादिभ्यः' ४.३.१४४ से विहित मयट् का लुक् हो गया, एवं 'लुक्तद्धितलुकि' १.२.४९ से स्त्रीप्रत्यय ङी का लुक् हो गया।

भाष्यकार प्रकृत सूत्र का खण्डन करते हैं—**फले लुगिति**। फलवाची आमलकी-शब्द भिन्न है तथा वृक्षवाची आमलकशब्द भिन्न है। आमलकशब्द फल अर्थ में यौगिक नहीं है, अपि तु जातिशब्द है। इस लिए वृक्षवाची आमलकीशब्द से विकारावयव फल अर्थ में प्रत्ययविधान कर लुग्वचन नहीं कहना चाहिये।

अन्य आचार्य सूत्र का मण्डन करते हैं—**एकान्तदर्शनादिति**। **एकान्त**= अवयव देखा जात है। अर्थात् आमलकी का अवयव अर्थ में आमलकशब्द देखा जाता है, अतः फल अर्थ में आमलकशब्द यौगिक ही है, जातिशब्द नहीं, इस लिए 'फले लुक्' सूत्र रखना चाहिये।

इतर आचार्य सूत्र रखने पर अतिव्याप्ति दे कर वारण करते हैं-**एकान्त-दर्शनात्प्रसङ्ग इति**। यदि फल को वृक्ष का अवयव मान कर विकारावयवफलवाची प्रत्यय का लुक् कहेंगे तो वृक्ष अर्थ वाच्य होने पर फलवाची से पर में विहित प्रत्यय का भी लुक् कहना चाहिये। इसका हेतु देते हैं-**वृक्षोऽपीति**। फलमे-**कान्तः**=अवयवोऽस्येति फलैकान्तो वृक्षः'। जैसे वृक्ष का अवयव फल है, वैसे फल का अवयव वृक्ष भी है; अतः 'आमलकस्येयमामलकी वृक्षः' में आमलक पद से प्रत्यय उत्पन्न कर लुग्विधान करना चाहिये। इससे यह आया कि उभत्र आमलक आदि जातिशब्द ही स्वभावतः हैं। अनभिधान के द्वारा अतिव्याप्ति का वारण करना चाहिये।। **फले लुक्**।।

लुप्च ४.३.१६६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

*** लुप्रकरणे फलपाकशुषामुपसंख्यानम् * लुप्रकरणे फलपाकशुषामुपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। व्रीहयः यवाः माषा मुद्गाः तिलाः * पुष्पमूलेषु बहुलम् * पुष्पमूलेषु बहुलं लुग्वक्तव्यः। मल्लिका। करवीरम्। बिसम्। मृणालम्। न च भवति-पाटलानि मूलानि।। लुप्च।।**

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये
चतुर्थाऽध्यायस्य तृतीये पादे द्वितीयमाह्निकम्

●

पूर्व सूत्र 'जम्ब्वा वा' ४.३.१६५ की अनुवृत्ति है। 'जम्ब्वाः फलं जम्बूः' 'ओरञ्' ४.३.१३६ से अञ् प्रत्यय, लुप्, 'लुपि युक्तवद्व्यक्तिवचने' १.२.५१ से व्यक्ति और वचन युक्तवद् है। यह 'फले लुक्' ४.३.१६३ का अपवाद है।

सिद्धान्त वार्तिक—**लुप्रकरण इति**। लुप्रकरण में **फलपाकशुषाम्**=ओषधिवाची फल, पाक और शुष से पर में विहित प्रत्यय का भी लुप् कहना चाहिये। फलपाकेन ये शुष्यन्ति व्रीहयस्तद्वाचिनाम्। इसे उदाहरणों से स्पष्ट करते हैं-**व्रीहय इति**।

'व्रीहिपदवाच्यस्य ओषधेः फलानि व्रीहयः' यहाँ 'बिल्वादिभ्योऽण्' ४.३.१३६ से अण्प्रत्यय, एवम् उसका लुप् है। 'यवपदवाच्यस्य ओषधेः फलानि यवाः, माषपदवाच्यस्य ओषधेः फलानि माषाः' यहाँ उभत्र 'तृणधान्यानां च द्व्यषाम्'फि. सू.२६ से यव और माष पद आद्युदात्त है, अतः औत्सर्गिक अण् प्रत्यय है। 'मुद्गपदवाच्यस्य ओषधेः फलानि मुद्गाः' में 'बिल्वादिभ्योऽण्' ४.३.१३६ से अण्प्रत्यय, एवम् उसका लुप् है। 'तिलपदवाच्यस्य ओषधेः फलानि वा तिलाः' में 'तृणधान्यनां च द्व्यषाम्' फि.सू.२६ से तिलशब्द के आद्युदात्त होने से औत्सर्गिक अण्प्रत्यय एवम् उसका लुप् है।

वार्तिक—**पुष्पमूलेष्विति**। पुष्पाणां मूलानि पुष्पमूलानि तेषु। पुष्पमूल वाच्य होने पर विकारावयवप्रत्यय का बाहुलक लुप् कहना चाहिये। मल्लिकायाः पुष्पमूलमिति मल्लिका,; 'अथ द्वितीयं प्रागीषात्' फि.सू.५० का अनुवर्त्तन कर 'मादीनां च' फि.सू. ५३ से मल्लिकाशब्द मध्योदात्त है।

शेषनिघात के द्वारा अनुदात्तादि होने से 'अनुदात्तादेश्च' ४.३.१४० से अञ्, अञ्लुप्, युक्तवद् व्यक्तिवचन से मल्लिकाशब्द है। एवं 'करवीरस्य मूलं करवीरम्, बिसस्य मूलं बिसम्, मृणालस्य मूलं मृणालम्'। पाटलशटद बिल्वादिगण ४.३.१३६ में पठित है। उसका मूल नहीं होता है। यहाँ 'फले लुक्' ४.३.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१३६ से ही प्रत्यय का अदर्शन था, पर 'लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने' १.२.५१ प्रयोजन के लिए लुब्विधान है ।.। लुप्- ।।

श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य
चतुर्थ अध्याय तृतीय पाद द्वितीय आह्निक पर
डॉ. हरिनारायण तिवारी द्वारा रचित
'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

तृतीयपाद भी पूर्ण हुआ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

❀ चतुर्थे पादे प्रथममाह्निकम् ❀

प्राग्वहतेष्ठक् ४.४.१

* ठक्प्रकरणे तदाहेति माशब्दादिभ्य उपसंख्यानम् * ठक्प्रकरणे तदाहेति माशब्दादिभ्य उपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। माशब्दिकः। नैत्यशब्दिकः। कार्यशब्दिकः * आहौ प्रभूतादिभ्यः * आहौ प्रभूतादिभ्यष्ठग्वक्तव्यः। प्रभूतमाह-प्राभूतिकः। पार्याप्तिकः * पृच्छतौ सुस्नातादिभ्यः * पृच्छतौ सुस्नातादिभ्यष्ठग्वक्तव्यः। सौस्नातिकः। सौखरात्रिकः। सौखशायनिकः * गच्छतौ परदारादिभ्यः * गच्छतौ परदारादिभ्यष्ठग्वक्तव्यः। पारदारिकः। गौरुतल्पिकः।

माशब्दादेस्तदाहेति प्रभूतादेश्च ठक्स्मृतः।
गच्छतौ परदारादेः सुस्नातादेश्च पृच्छतौ।।

यह अधिकारसूत्र है। 'तद्वहति रथयूगप्रासङ्गम्' ४.४.७६ से पूर्व तक ठक् का अधिकार है।

सिद्धान्त वार्तिक—**ठक्प्रकरण इति**। 'आहौ प्रभूतादिभ्यः' में भेद से विभक्ति दृष्ट है। 'तदाहेति' में 'तद्' यह कर्म मात्र का निर्द्देश है, समर्थविभक्ति का नहीं, अतः यहाँ पदसमुदाय वाक्य से प्रत्यय होगा। 'तदाहेति' में क्रम भिन्न होने से 'तद्' शब्द के अनन्तर 'इति'शब्द का अन्वय कर-'तदित्याह' इस अर्थ में माशब्द आदिशब्दों से ठक् कहना चाहिये। यहाँ 'तद्'पद से वाक्य विवक्षित है तथा 'इति'शब्द से उस वाक्यार्थ की कर्मता का बोध कराता है जैसे-'माशब्द इत्याहेति माशब्दिकः, नित्यः शब्द इत्याह नैत्यशब्दिकः, कार्यः शब्द इत्याह कार्यशब्दिकः'। यहाँ 'इति'पद के द्वारा पदसमुदायवाक्यार्थ की कर्मसंज्ञा है। वाक्य की प्रातिपदिकसंज्ञा नहीं होने से उक्त वाक्यों में द्वितीया विभक्ति नहीं होती है। **आहाविति**। आह अर्थ वाच्य होने पर प्रभूतादिगणपठितशब्दों से ठक् कहना चाहिये-प्रभूतमाहेति प्राभूतिकः, पर्याप्तमाहेति पार्याप्तिकः। क्रियाविशेषण होने से यहाँ 'प्रभूतम्' आदि की कर्मसंज्ञा है। **पृच्छताविति**। तिङन्त पृच्छति पद का अनुकरण कर भेदविवक्षा में 'पृच्छतौ' ऐसा सप्तम्यन्त निर्द्देश है। यहाँ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शब्द में कार्य असम्भव होने से तिङन्तार्थ में ठक् है। सुस्नातं पृच्छतीति सौस्नातिकः, सुखरात्रिं पृच्छतीति सौखरात्रिकः, सुखशयनं पृच्छतीति सौखशयनिकः। **गच्छताविति**। यहाँ भी तिङन्तानुकरण का 'गच्छतौ' निर्द्देश है। गच्छति अर्थ वाच्य होने पर द्वितीयान्त परदारादिशब्दों से तिङन्तार्थ में ठक् हो। परदारान् गच्छतीति पारदारिकः, गुरुतल्पं गच्छतीति गौरुतल्पिकः।

उपर में व्याख्यात वार्तिकों का श्लोकमुखेन संग्रह है-**माशब्दादेस्तदाहेतीति**।। **प्राग्वहतेष्ठक्**।।

आकर्षात् ष्ठल् ४.४.९

इह केषां चित्सांहितिकं षत्वं केषां चित् षिदर्थमिति, तत्र न ज्ञायते केषां सांहितिकं षत्वं केषां षिदर्थमिति? तत्र किं न्याय्यम्? परिगणनं कर्त्तव्यम्।

आकर्षात्पर्पादेर्भस्त्रादिभ्यः कुसीदसूत्राच्च।
आवसथात्किसरादेः षितः षडेते ठगधिकारे।।

सूत्रार्थ—'तेन चरति अर्थ में तृतीयान्त प्रातिपदिक आकर्ष से ष्ठल् प्रत्यय हो'। आकर्षेण=सुवर्णपरीक्षार्थेन निकषोपलेन चरतीति आकर्षिकः। षित्त्वान्ङीष्-आकर्षिकी।

पूर्वपक्षी—**इह केषामिति**। ठगधिकार में षित् पढा जा रहा है। टवर्ग के योग में 'ष्टुना ष्टुः' ८.४.४१ से ष्टुत्व हो कर 'स्' को 'ष्' आदेश सम्भव है तथा षिदर्थ भी 'ष्' सम्भव है। यहाँ निश्चय नहीं हो पा रहा है कि ष्ठल् आदि में सांहितिक कार्य मूर्धन्यादेश माना जाये, अथ वा षिदर्थ 'ष्'ग्रहण माना जाये? यदि दोनों माना जाये तो किसको सांहितिक तथा किसको षिदर्थ माना जाये?

उत्तरपक्षी—**परिगणनमिति**। यहाँ षिदर्थ का परिगणन करना चाहिये-'आकर्षात् ष्ठल्' ४.४.९ 'पर्पादिभ्यः ष्ठन्' ४.४.१० 'भस्त्रादिभ्यः ष्ठन्' ४.४.१६ 'कुसीद-दशैकादशात् ष्ठन्ष्ठचौ' ४.४.३१ 'आवसथात् ष्ठल्' ४.४.७४ और 'किसरादिभ्यः ष्ठन्' ४.४.५३ ठगधिकार में यह छह षिदर्थ है। यद्यपि यहाँ प्रत्यय सात है, फिर भी विधिवाक्य के छह होने से 'षितः षडेते ठगधिकारे' कहा है।। **आकर्षात्ष्ठल्**।।

विभाषा विवधात् ४.४.१७

*** वीवधाच्चेति वक्तव्यम् * वैवधिकः। वीवधिकः।।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूत्रार्थ—'तृतीयान्त प्रातिपदिक विवध पद से हरति अर्थ में विकल्प से ष्ठन् प्रत्यय हो'। पक्ष में ठक् होगा। विवधेन हरतीति विवधिकः, ठक् होने पर वैवधिकः।

एकदेशी—**वीवधाच्चेति**। तृतीयान्त प्रातिपदिक वीवध पद से भी हरति अर्थ में ष्ठन् हो, पक्ष में ठक् भी होगा। एकदेशविकृतन्याय से विवध से भी वीवध का ग्रहण हो जायेगा, अतः वार्तिक एकदेशी है। वीवधेन हरतीति वीवधिकः, वैवधिकः।। **विभाषा-**।।

त्रेर्मम्नित्यम् ४.४.२०

नित्यग्रहणं किमर्थम्? विभाषा मा भूत्। नैतदस्ति प्रयोजनम्। पूर्वस्मिन्नेव योगे विभाषाग्रहणं निवृत्तम्। इदं तर्हि प्रयोजनम् *त्रेर्मम्नित्यवचनं विषयार्थम्* त्रेर्मब्वचनं नित्यविषयार्थम्। नित्यं त्र्यन्तं मब्विषयमेव यथा स्यात्केवलस्य प्रयोगो मा भूत्। अस्ति प्रयोजनमेतत्? किं तर्हीति?

सूत्रार्थ—'त्रिप्रत्ययान्तप्रकृति तृतीयान्त से निर्वृत्त अर्थ में मप् प्रत्यय हो'। स्वतन्त्ररूप से प्रयोगवारण करने के लिए नित्यग्रहण है। डुकृञ् करणे धा.पा. १४७६ धातु से 'ड्वितः क्त्रिः' ३.३.८८ से क्त्रिप्रत्ययान्त कृत्रिशब्द है। कर्त्र्या निर्वृत्तं कृत्रिमम्। डुपचष् पाके धा.पा.६६६ धातु से त्रिप्रत्यय है। पक्त्र्या निर्वृत्तं पक्त्रिमम्।

प्रश्नभाष्य—**नित्यग्रहणमिति**। सूत्र में नित्यपद का ग्रहण क्यों है?

उत्तरभाष्य—**विभाषेति**। यहाँ विभाषा का वारण करने के लिए नित्य पद का ग्रहण है।

अन्य आचार्य—**नैतदस्तीति**। नित्यग्रहण का यह प्रयोजन नहीं हो सकता है। स्वरितत्वप्रतिज्ञा नहीं होने से 'विभाषा विवधात्' ४.४.१७ से विभाषा पद की अनुवृत्ति उत्तरसूत्र 'अण्कुटिलिकायाः' ४.४.१८ में नहीं आती है; अतः प्रकृतसूत्र के साथ भी उसका योग नहीं हो सकेगा। यहाँ पर दूसरी महाविभाषा सम्भव है, वह नित्यग्रहण से निवृत्त हो जायेगी।

इतर आचार्य स्वाभिप्राय का प्रकाशन करते हैं-**इदं तर्हीति**। त्रिप्रत्ययान्त नित्य मप्-वचन ही हो, **केवलस्य**=वाक्य का प्रयोग न हो, इसके लिए नित्य-ग्रहण है।

अन्य आचार्य आक्षेप करते हैं—**अस्ति प्रयोजनमिति**। तो क्या नित्य-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ग्रहण का यह प्रयोजन है?

*** तत्र यथाधिकारं तद्विषयप्रसङ्गः * तत्र यथाधिकारं तद्विषयता प्राप्नोति। निर्वृत्त इति वर्त्तते। तेन निर्वृत्त एव त्र्यन्तं मब्विषयं स्याद्येऽन्ये उपचारास्तत्र न स्यात्-कृत्रिमं महत्सु विहितमिति। एवं तर्हि भाव इति प्रकृत्येमब्वक्तव्यः। कुट्टिमा भूमिः। सेकिमोऽसिरित्येवमर्थम्। ततो वक्तव्यः-'त्रेः'। त्रेश्चेमब्भवति। 'ततो नित्यम्'। नित्यं त्र्यन्तादिमबिति। किमर्थमिदम्? नित्यं त्र्यन्तमिमब्विषयमेव यथा स्यात्, केवलस्य प्रयोगो मा भूदिति।**

'त्रेर्मम्नित्यवचनं विभाषार्थम्' मानने में अव्याप्ति दे रहे हैं-**तत्र यथाधिकारमिति**। 'निर्वृत्तम्' ४.४.१९ का अधिकार कर मप् प्रत्यय का विधान है, अतः त्र्यन्त से निर्वृत्त अर्थ वाच्य होने पर ही मप् हो सकेगा, तथा उसी वाक्य की निवृत्ति हो सकेगी, जैसे-पवित्रणा निर्वृत्तम्। परन्तु जो अन्य उपचार है, उस वाक्य की निवृत्ति नहीं हो सकेगी। जैसे-पवित्रणा क्रियते। एवम् अन्य दोष यह होगा कि-'कृत्रिमं महत्सु विहितम्' में मप् प्रत्यय के प्रयोग के विना भी महत्त्वादि कृत्रिमशब्दार्थ में विशेषण होने लगेंगे।

इतर आचार्य—**एवन्तर्हीति**। अच्छा तो हम भाववाचिशब्द से पर में इमप् प्रत्यय करेंगे। जैसे-कृट्टिमा भूमिः। इसके बाद दूसरा सूत्र करेंगे-'नित्यम्'। इससे त्र्यन्त से इमप् का विधान होगा।

अन्य आचार्य—**किमर्थमिति**। इस तरह का योगविभाग तथा न्यासभेद क्यों है?

सिद्धान्ती—**नित्यं त्र्यन्तमिति**। त्रिप्रत्ययान्त नित्य इमप् विषय ही हो, **केवलस्य**=त्रिप्रत्ययान्त वाक्य न हो, इसके लिए ऐसा न्यास करेंगे।। **त्रेर्मम्नित्यम्**।।

चूर्णादिनिः ४.४.२३

अयं योगः शक्योऽवक्तुम्। कथं चूर्णी चूर्णिनौ चूर्णिन इति? इनिनैतन्मत्वर्थीयेन सिद्धम्।। चूर्णादिनिः।।

सूत्रार्थ—'तृतीयान्त चूर्ण पद से संसृष्ट अर्थ वाच्य होने पर इनि प्रत्यय हो'। चूर्णैः संसृष्टाश्चूर्णिनोऽपूपाः।

खण्डनभाष्य—**अयं योग इति**। प्रकृत सूत्र करने की आवश्यकता नहीं है। 'चूर्णः संसृष्टोऽस्त्यस्य चूर्णी' आदि रूप 'अत इनिठनौ' ५.२.११५ से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मत्वर्थीय ठन्प्रत्यय के द्वारा ही हो जायेंगे। अनभिधान होने से यहाँ ठन् नहीं होगा, अतः यहाँ ठन् की आपत्ति नहीं है।। चूर्णादिनिः।।

लवणाल्लुक् ४.४.२४.

* लवणाल्लुग्वचनानर्थक्यं रसवाचित्वात् * लवणाल्लुग्वचनमनर्थकम्। किं कारणम्? 'रसवाचित्वात्'। रसवाच्येव लवणशब्दो, नैष संसृष्टिनिमित्तः। आतश्च रसवाची * असंसृष्टे च दर्शनात् * असंसृष्टेऽपि हि लवणशब्दो वर्त्तते। तद्यथा-लवणं क्षीरम्। लवणं पानीयमिति * संसृष्टे चाऽदर्शनात् * संसृष्टेऽपि यदा नोपलभ्यते तदाह-अलवणः सूपः। अलवणा यवागूः। अलवणं शाकमिति।। लवणाल्लुक्।।

सूत्रार्थ—'तृतीयान्त प्रातिपदिक लवण पद से संसृष्ट अर्थ में विहित प्रत्यय का लुक् हो'। लवणेन संसृष्टो लवणः सूपः, लवणं शाकं, लवणा यवागूः।

यहाँ भाष्यकार प्रकृत सूत्र का खण्डन कर रहे हैं-**लुग्वचनानर्थक्यमिति**। मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय और तिक्त ये रसवाची शब्द हैं। रस गुण है। गुण और गुणी का अभेदव्यवहार मान कर लवणशब्द को गुणवृत्ति देखे जाने से 'लवणः सूपः' आदि प्रयोग हो जायेगा। इसी को अन्य प्रकार से भी पुष्ट करते हैं-**असंसृष्टे चेति**। असंसृष्ट अर्थ में भी लवण शब्द का प्रयोग देखा जाता है, जैसे-लवणं क्षीरम्। परन्तु-**संसृष्टे चेति**। लवणरससंसृष्ट भी जो लवणरस सम्भव नहीं है वहाँ लवणशब्द का प्रयोग देखा जाता है। जैसे-अलवणः सूपः, अलवणा यवागूः, अलवणं शाकम्।। **लवणाल्लुक्**।।

प्रयच्छति गर्ह्यम् ४.४.३०

अयुक्तोऽयं निर्द्देशः। यदसावल्पं दत्वा बहु गृह्णाति तद् गर्ह्यम्। कथं तर्हि निर्द्देशः कर्त्तव्यः? * प्रयच्छति गर्ह्यायेति * स तर्हि तथा निर्द्देश कर्त्तव्यः? न कर्त्तव्यः। तादर्थ्यात्ताच्छब्द्यं भविष्यति-गर्ह्यार्थं गर्ह्यम् * मेस्याल्लोपो वा * मेस्याच्छब्दलोपो वा द्रष्टव्यः। द्विगुणं मे स्यादिति-प्रयच्छति-द्वैगुणिकः। त्रैगुणिकः * वृद्धेर्वृधुषिभावः * वृद्धेर्वृधुषिभावो वक्तव्यः। वार्धुषिकः।

'तत्प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्' ४.४.२८ से द्वितीयान्तानुकरण 'तद्' पद है; उसका प्रकृत में अनुवर्त्तन है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूत्रार्थ—'द्वितीयान्त प्रातिपदिक से प्रयच्छति अर्थ में ठक् हो, यदि ग्रहण करने वाला गर्ह्य हो तो'। जैसे-द्विगुणार्थं द्विगुणम्, तात्स्थ्यात्ताच्छब्द्यं, तत्प्रयच्छति द्वैगुणिकः, एवं त्रैगुणिकः, उत्तमर्ण।

पूर्वपक्षी आचार्य प्रकृत सूत्र को अयुक्त बताते हैं-**अयुक्तोऽयमिति**। उत्तमर्ण अल्प प्रदान करता है, यह गर्ह्य नहीं है, परन्तु यदि अल्प प्रदान कर दो गुना तीन गुना ग्रहण करता है तो वही **गर्ह्य**=निन्द्य है।

अन्य आचार्य—**कथं तर्हीति**। यदि प्रकृत सूत्र को 'प्रयच्छति गर्ह्यम्' ऐसा नहीं पढते तो आप इसका निर्द्देश कैसे करते?

एकदेशी—**प्रयच्छतीति**। प्रकृत सूत्र में 'गर्ह्याय' ऐसा चतुर्थ्यन्तनिर्द्देश कर 'प्रयच्छति गर्ह्याय' ऐसा सूत्र पढना चाहिये। इससे 'द्विगुणाय प्रयच्छति द्वैगुणिकः, त्रिगुणाय प्रयच्छति त्रैगुणिकः' में चतुर्थ्यन्त से प्रत्ययविधान करना चाहिये।

इतर आचार्य एकदेशी का खण्डन करते हैं—**न वक्तव्यमिति**। तस्मै इदं तदर्थं, तस्य भावस्तादर्थ्यम्। यहाँ गर्ह्य पद गर्ह्यार्थ है, अतः उसी से चतुर्थ्यर्थ का लाभ हो जायेगा। इसी को इतर पक्ष में सिद्ध करते हैं-**मेस्यादिति**। 'प्रयच्छति गर्ह्यं मेस्यात्' ऐसा सूत्र समझ लीजिये। आचार्य ने सौत्रत्वात् 'मेस्यात्' पद का लोप कर प्रकृत सूत्र पढा है। यहाँ 'मेस्यात्' शब्द का विकल्प से लोप करेंगे। इससे 'द्विगुणं मे स्यात्' इस वाक्य से ठक् प्रत्यय करेंगे तथा 'मेस्यात्' शब्द का लोप कहेंगे। इससे 'द्वैगुणिकः, त्रैगुणिकः, उत्तमर्णः सिद्ध हो जायेगा। यहाँ बहुवृद्धि-उद्देश्यक दानकर्मता होने से गर्ह्यता है। **वृद्धेर्वृध्विति**। वृद्धिशब्द से उक्तार्थ में ठक् प्रत्यय और प्रकृति को वृधुषि-आदेश कहना चाहिये। वृद्ध्यर्थं वृद्धिस्तां प्रयच्छतीति वार्धुषिक उत्तमर्णः।। **प्रयच्छति गर्ह्यम्**।।

धर्मं चरति ४.४.४१

* अधर्माच्च * **अधर्माच्चेति वक्तव्यम्। आधर्मिकः।।** धर्मं चरति।।

सूत्रार्थ—'द्वितीयान्त धर्म पद से चरति अर्थ में ठक् हो'। यहाँ चरति पद का सेवा अर्थ में है, अनुष्ठानमात्र में नहीं। धर्मं चरति धार्मिकः।

वार्तिक—**अधर्माच्चेति**। चरति अर्थ गम्य होने पर अधर्म पद से ठक् हो। अधर्मं चरति आधर्मिकः।। **धर्मं चरति**।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऋतोऽञ् ४.४.४९

*** नृनराभ्यामञ्वचनम् * नृनराभ्यामञ्चेति वक्तव्यम्। नुर्धर्म्या नारी। नरस्यापि नारी * विशसितुरिड्लोपश्च अञ्च * विशसितुरिड्लोपश्च वक्तव्यः। अञ्च वक्तव्यः। विशसितुर्धर्म्यं वैशस्त्रम् * विभाजयितुर्णिलोपश्च * विभाजयितुर्णिलोपश्चाञ्च वक्तव्यः। विभाजयितुर्धर्म्यं वैभाजित्रम्।। ऋतोऽञ्।।**

'तस्य धर्म्यम्' ४.४.४७ की अनुवृत्ति है। अनुवृत्त प्रातिपदिक ४.१.१ पद में विशेषण होने से ऋदन्त प्रातिपदिक अर्थ लब्ध होगा।

सूत्रार्थ—'षष्ठ्यन्त ऋदन्त प्रातिपदिक से धर्म्य अर्थ में अञ् प्रत्यय हो'। यातुर्धर्म्यं यात्रम्। धर्मादनपेतं धर्म्यम्=आचरण करने योग्य।

सिद्धान्त वार्तिक—**नृनराभ्यामिति**। षष्ठ्यन्त नृ और नर पद से भी धर्म्य अर्थ में अञ् कहना चाहिये। ऋदन्त प्रातिपदिक होने से सूत्र के द्वारा ही नृशब्द से अञ् सिद्ध था, परन्तु दृष्टान्त के लिए पुनः ग्रहण किया गया है, जैसे-नृशब्द से अञ् होता है वैसे नरशब्द से भी अञ् हो। नुर्धर्म्या नारी, नरस्य धर्म्या नारी। **विशसितुरिति**। विशसितृ पद से अञ् तथा तृच् का आगम, इट् का लोप कहना चाहिये। यहाँ ऋदन्त होने से सूत्र से ही अण् सिद्ध है, प्रकृतसूत्र से इट् का लोपमात्र विधेय तथा अञ् का अनुवाद समझना चाहिये-विशसितुर्धर्म्यं वैशस्त्रम्। विपूर्वक शसु हिंसायाम् धा.पा.७२७ धातु से तृच्, इट्, अञ् इट् का लोप है। **विभाजयितुरिति**। विभाजयितृ से उक्तार्थ में अञ् प्रत्यय और णिलोप कहना चाहिये। विपूर्वक भज विश्राणने धा.पा. १७३४ धातु से '-चुरादिभ्यो णिच्' ३.१.२५ से णिच्, इडागम, धर्म्य अर्थ में अञ् और लोप हो कर-'विभाजयितुर्धर्म्यं वैभाजजित्रम्'।। **ऋतोऽञ्**।।

शिल्पम् ४.४.५५

किं यस्य मृदङ्गः शिल्पं स मार्दङ्गिकः? किं चाऽऽतः? कुम्भकारे प्राप्नोति। एवं तर्ह्युत्तरपदलोपोऽत्र द्रष्टव्यः। शिल्पमिव शिल्पम्। मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य-मार्दङ्गिकः। मौरजिकः। पाणविकः। पैठरिकः।। शिल्पम्।।

'तदस्य' पद की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'तदस्य शिल्पम्' इस अर्थ में प्रथमान्त से ठक् हो'।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रश्नभाष्य—**किं यस्येति**। शिल्प पद का अभ्यासपूर्वक क्रियाओं में कौशल वाच्य है। मृदङ्गआदि में दो तरह की क्रिया देखी जाती है-वादनकाल में अभ्यासलक्षणा तथा उत्पत्तिकाल में निष्पादनलक्षणा; यहाँ शिल्प पद से किसका ग्रहण किया जाये?, यह निश्चय नहीं हो पा रहा है, अतः पूर्वपक्ष करते हैं-क्या मृदङ्गनिर्माण जिस कुम्भकार, काष्ठकार आदि का शिल्प है उसे मार्दङ्गिक कहेंगे?

अन्य आचार्य—**किं चाऽऽत इति**। मृदङ्गशिल्प वाले को मार्दङ्गिक कहने में क्या आपत्ति है?

पूर्वपक्षी आपत्ति देते हैं—**कुम्भकार इति**। जिसका मृदङ्ग शिल्प है उसे मार्दङ्गिक कहने पर कुम्भकार, काष्ठकार आदि अर्थ की उपस्थिति होगी, परन्तु कुम्भकार अर्थ में मार्दङ्गिक शब्द शक्त नहीं है। इस तरह अर्थ में प्रत्ययविधान न हो पाना ही दोष है। लोक में मार्दङ्गिक पद से मृदङ्गवादनशिल्प अर्थ गम्य है।

उत्तरपक्षी—**एवं तर्हीति**। 'शिल्पम्' सूत्र में उत्तरपद 'इव' का सौत्रत्वात् लोप है। इससे मृदङ्गवादन आदि में शिल्प पद की लक्षणा करेंगे। अनभिधान होने से मुख्यार्थ से तद्धितवृत्ति नहीं होगी। यहाँ शिल्प पद से कौशल अर्थ विवक्षित है; वह मृदङ्गवादनविषय ही होगा; अतः मृदङ्गवादनविषयक में मृदङ्गपद की लक्षणा होगी, यह निष्कर्ष है। इससे 'मृदङ्गवादनं शिल्पमस्येति मार्दङ्गिकः, मुरजवादनं शिल्पमस्येति मौरजिकः, पणववादनं शिल्पमस्येति पाणविकः, पिठरवादनं शिल्पमस्येति पैठरिकः' सिद्ध होता है।। **शिल्पम्**।।

शक्तियष्ट्योरीकक् ४.४.५६

किमर्थमीकगुच्यते, न कगेवोच्येत? का रूपसिद्धिः? शाक्तीको याष्टीक इति। शक्तियष्ट्योरीकारोऽन्ते कक् शब्दश्च प्रत्ययः। न सिध्यति-विभाषा चैव हि शक्तियष्ट्योरीकारः। अपि च केऽण इति ह्रस्वत्वं प्रसज्येत। एवं तर्हि-इकगुच्यते। का रूपसिद्धिः? शाक्तीको याष्टीक इति। सवर्णदीर्घत्वेन सिद्धम्। न सिध्यति। यस्येति लोपः प्राप्नोति। इकारोच्चारणसामर्थ्यान्न भविष्यति।

'अस्य' और 'प्रहरणम्' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'तदस्य प्रहरणम्' अर्थ में प्रथमान्त शक्ति और यष्टि से ईकक् हो'।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। शक्ति और यष्टि पद से ईकक् प्रत्यय क्यों करते हैं? कक्प्रत्यय का ही विधान कीजिये। बह्वादिगण में शक्ति और यष्टि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पद का पाठ होने से 'ब्रह्मादिभ्यश्च' ४.१.४५ से ङीष् हो कर 'शक्तीप्रहरणमस्येति शाक्तीकः, यष्टीप्रहरणमस्येति याष्टीकः' रूप कक्प्रत्यय के द्वारा ही हो जायेगा। यहाँ ङीष् सूत्रान्तर से सिद्ध है, अतः कक् प्रत्यय का ही विधान कीजिये।

उत्तरपक्षी आचार्य कक्प्रत्ययविधानपक्ष में दोष देते हैं—**न सिध्यतीति**। यदि आप ङीषन्त से कक्प्रत्यय का विधान करेंगे तो ङीषन्तपक्ष में दीर्घ ईकारघटित 'शाक्तीकः, याष्टीकः' एवं ङीष् का अभावपक्ष में 'शाक्तिकः, याष्टिकः' ऐसा दो रूप होने से ईकार की विकल्पापत्ति हो रही है।

अथ च कक्प्रत्ययविधानपक्ष में दूसरा दोष भी देते हैं—**अपि चेति**। ङीषन्त से कक् करने पर 'केऽणः' ७.४.१३ से ह्रस्व की आपत्ति होगी, अतः जहाँ दीर्घघटित रूप इष्ट है वहाँ ह्रस्वघटित की आपत्ति होगी। इस पर पूर्वपक्षी आचार्य अन्य पक्ष प्रस्तुत करते हैं-**एवं तर्हीति**। यदि आप को मात्र दीर्घ ईकारघटित 'शाक्तीकः, याष्टीकः' रूप इष्ट है तो ईकक् के स्थान पर ह्रस्व इकारघटित इकक् प्रत्यय का ही विधान कीजिये; इससे 'शक्ति+इकक्, यष्टि+ इकक्' इस स्थिति में 'अकः सवर्णे दीर्घः' ६.१.९९ से सवर्णदीर्घैकादेश के द्वारा 'शाक्तीकः, याष्टीकः' सिद्ध हो जायेगा।

अन्य आचार्य—**न सिध्यतीति**। ह्रस्वघटित इकक् प्रत्यय विधान करने पर उक्त दशा में 'यस्येति च' ६.१.१४८ से प्रकृतिस्थ 'इ' का लोप हो जायेगा, अतः ह्रस्वघटित 'शाक्तिकः' आदि रूप ही होने से दोष है।

पूर्वपक्षी—**इकारोच्चारणेति**। यहाँ इकारोच्चारणसामर्थ्य से इलोप नहीं होगा।

यदि तर्हि प्राप्नुवन् विधिरुच्चारणसामर्थ्याद् बाध्यते सवर्णदीर्घत्वमपि न प्राप्नोति। 'यं विधिं प्रत्युपदेशोऽनर्थकः स विधिर्बाध्यते, यस्य तु विधेर्निमित्तमेव नाऽसौ बाध्यते'। यस्येति लोपं च प्रतीकारोच्चारणमनर्थकं सवर्णदीर्घस्य तु निमित्तमेव।। शक्तियष्ट्योरीकक्।।

अन्य आचार्य—**यदि तर्हीति**। यदि 'शक्ति+इकक्' इस दशा में प्राप्त इलोप का उच्चारणसामर्थ्य से बाध करेंगे तो उच्चारणसामर्थ्य से ही सवर्णदीर्घ-एकादेश का बाध क्यों नहीं करते हैं?

सिद्धान्ती—**यं विधिं प्रतीति**। जिस विधि के प्रति उपदेश अनर्थक होता है, उसी विधि का बाध होता है; परन्तु जिस विधि के प्रति उपदेश निमित्त होता है, उसका बाध नहीं होता है। 'यस्येति च' ६.१.१४८ इस विधि के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रति इकारोच्चारण व्यर्थ है, अतः इकारोच्चारणसामर्थ्य से लोप का ही बाध होगा, परन्तु प्रकृत में इकारनिर्देश सवर्ण-दीर्घ-एकादेश के प्रति निमित्त है, अतः इकारोच्चारणसामर्थ्य से सवर्णदीर्घ का बाध नहीं हो सकता है।। **शक्ति-**।।

अस्तिनास्तिदिष्टं मतिः ४.४.६०

किं यस्याऽस्ति मतिः स आस्तिकः? किं चाऽऽतः? चौरेऽपि प्राप्नोति। एवं तर्हीतिलोपोऽत्र द्रष्टव्यः। अस्तीत्यस्य मतिः-आस्तिकः। नास्तीत्यस्य मतिः-नास्तिकः। दिष्टमित्यस्य मतिः-दैष्टिकः।। अस्तिनास्तिदिष्टं मतिः।।

सूत्रार्थ—'तदस्य मतिः' अर्थ में प्रथमान्त अस्ति, नास्ति और दिष्ट पद से ठञ् प्रत्यय हो'।

प्रश्नभाष्य-**किं यस्येति**। 'अस्ति मतिर्यस्य' ऐसा अर्थ मानने पर चौर की भी मति होने से चौर अर्थ में आस्तिकशब्द की अतिव्याप्ति होगी; एवं मति का अभाव होने से अचेतन पदार्थ नास्तिक होगा।

उत्तरभाष्य—**एवं तर्हीति**। 'अस्ति' आदि में सर्वत्र 'इति' पद है, जिसका सौत्र लोप है। इससे 'अस्ति इति' ऐसा कहने से परलोककर्त्तृका सत्ता गम्य होगी-'अस्ति परलोक इति मतिर्यस्य स आस्तिकः, नास्ति परलोक इति मतिर्यस्य स नास्तिकः'। दिष्टशब्द दैव का पर्याय है, अतः **'दिष्टं**=दैवमिति मतिर्यस्य स **दैष्टिकः**=दैवपारायणिकः।। **अस्ति नास्ति-**।।

छत्रादिभ्यो णः ४.४.६२

किं यस्य च्छत्रधारणं शीलं स छात्रः? किं चाऽऽतः? राजपुरुषे प्राप्नोति। एवं तर्ह्युत्तरपदलोपोऽत्र द्रष्टव्यः-छत्रमिव च्छत्रम्। गुरुश्छत्रम्। गुरुणा शिष्यच्छत्रवच्छाद्यः। शिष्येण च गुरुश्छत्रवत्परिपाल्यः।। छत्रादिभ्यो णः।।

यहाँ 'शीलम्' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'तदस्य शीलम्' अर्थ में प्रथमान्त प्रातिपदिक छत्रादि से ण प्रत्यय हो'।

प्रश्नभाष्य—**किं यस्येति**। क्या छत्रधारण करना जिसका **शीलम्**=स्वभाव है उसे छात्र कहेंगे?, यदि हाँ, तो इस व्युत्पत्ति से छात्रशब्द राजपुरुष अर्थ में शक्त हो जायेगा, जो कहीं भी प्रसिद्ध नहीं है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरभाष्य— **एवं तर्हीति**। छात्रपद राजपुरुष अर्थ में शक्त न हो, इसके लिए हम प्रकृत में उत्तरपद 'इव' पद का लोप कहेंगे-'छत्रमिव च्छत्रं, छत्रं शीलमस्येति च्छात्रः। शिष्यस्याज्ञानं **छादयति**=निवर्त्तयतीति च्छत्रं गुरुः। छत्रं गुरुविषयं पालनमस्येति च्छात्रः। शिष्य का अज्ञाननिवर्त्तन से गुरु शिष्य का छत्रवत् पालन करे, तथा गुरु के दोषों को आच्छादन करता हुआ शिष्य भी गुरु का छत्रवत् पालन करे।। **छत्रादिभ्यो णः**।।

हितं भक्षाः ४.४.६५

***हितं भक्षा इति चतुर्थीनिर्द्देशः * हितं भक्षा इति चतुर्थीनिर्द्देश कर्त्तव्यः * इतरथा ह्यनिर्द्देशः * इतरथा हि निर्द्देशो न भवति। हितशब्देन च योगे चतुर्थी विधीयते सा प्राप्नोति। स तर्हि चतुर्थी-निर्द्देशः कर्त्तव्यः? न कर्त्तव्यः। एवं वक्ष्यामि-'हितं भक्षास्तदस्मै'। ततो 'दीयते नियुक्तम्'। तदस्मा इति।।** हितं भक्षाः।।

'तदस्य' की अनुवृत्ति है। हित के योग में चतुर्थी होने से 'अस्य' इस षष्ठ्यन्त पद को 'अस्मै' ऐसा चतुर्थ्यन्त विपरिणाम करेंगे।

सूत्रार्थ—'तदस्मै हितम्' अर्थ में प्रथमान्त से ठक् हो, जो हित है, वह यदि भक्ष हो तो'।

एकदेशी—**हितं भक्षा इति**। 'हितं भक्षाः' में चतुर्थीनिर्द्देश कीजिये; अन्यथा स्वरितत्वप्रतिज्ञाबलात्पूर्व सूत्र से अनुवृत्त 'अस्य' इस षष्ठ्यन्त पद के साथ 'हितम्' का योग नहीं होने से यहाँ प्रत्ययार्थ निर्द्दिष्ट नहीं हो सकेगा। हितशब्द के योग में चतुर्थी का विधान 'हितयोगे च' वा.१४६१ से है। चतुर्थीनिर्द्देश करने से 'अपूपभक्षणं हितमस्मा इति आपूपिकः' में चतुर्थ्यर्थ में प्रत्यय होगा।

प्रश्नभाष्य—**स तर्हीति**। तो क्या प्रकृत सूत्र में चतुर्थीनिर्द्देश करना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्य इति**। इसकी आवश्यकता नहीं है। चतुर्थीनिर्द्देश के विना भी लक्ष्यसिद्धि बताते हैं-**एवं वक्ष्यामीति**। 'हितंभक्षास्तदस्मैदीयतेनियुक्तम्' ऐसा पाणिनिकृत संहितापाठ है। इसका 'हितंभक्षास्तदस्मै' और 'दीयतेनियुक्तम्' ऐसा योगविभाग करेंगे। इससे चतुर्थीनिर्द्देश होने से पृथग् निर्द्देश की आवश्यकता नहीं है। द्वितीय योग पूर्वयोग से स्वरितत्वप्रतिज्ञाबलात् 'तदस्मै' का अनुवर्त्तन 'दीयतेनियुक्तम्' में करेंगे।। **हितं भक्षाः**।।

तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम् ४.४.७६.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

* वहत्यभिधाने रथशकटहलसीरेभ्यः प्रत्ययविधानानर्थक्यं विहितत्वात् * **वहत्यभिधाने रथशकटहलसीरेभ्यः प्रत्ययविधानानर्थकम्। किं कारणम्? 'विहितत्वात्'। विहितोऽत्र प्रत्ययस्तस्येदमिति। 'शब्दभेदादविधानम्'। शब्दभेदादविधिः स भवति। अन्यो हि शब्दो रथं वहति, अन्यो हि शब्दो रथस्य वोढेति।**

'प्राग्घिताद्यत्' ४.४.७५ से विधेय 'यत्' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'तद्वहति' इस अर्थ में द्वितीयान्त रथ, युग और प्रासङ्ग पद से यत् हो'। रथं वहतीति रथ्यः, युगं वहतीति युग्यः। रथवहनकाल में अश्व के स्कन्ध पर रखा जाने वाला काष्ठविशेष युग पद का वाच्य है। प्रासङ्गं वहतीति प्रासङ्ग्यः। बछडे के दमनकाल में उसके स्कन्ध पर रखा जाने वाला काष्ठविशेष प्रासङ्ग है।

आक्षेपभाष्य—**वहत्याधान इति**। 'वहति' अर्थ में रथ पद ४.४.७६ से, 'शकटादण्' ४.४.८० में शकट पद से और 'हलसीराट्ठक्' ४.४.८१ में हल तथा सीर पद से पूर्व सूत्र 'तस्येदम्' ४.३.१२० से ही प्रत्यय विहित होने से यहाँ पुनः प्रत्ययविधान व्यर्थ है।

समाधानभाष्य—**शब्दभेदादिति**। यहाँ पूर्व सूत्र 'तस्येदम्' ४.३.१२० से प्रत्ययविधि प्राप्त नहीं है। वह इस तरह कि षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से 'तस्येदम्' सूत्र प्रत्ययविधान करता है; जब कि प्रकृत में 'तद्वहति' ऐसा विग्रह कर द्वितीयान्त रथान्त प्रातिपदिक से प्रत्ययविधान है, अतः 'रथस्य वोढा' ऐसा विग्रह कर 'रथं वहति' अर्थ में प्रत्ययविधि के अप्राप्त होने से 'तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्' इत्यादि सूत्रों का आरम्भ किया है।

* शब्दभेदादविधानमिति चेदर्थाश्रयत्वात्प्रत्ययविधानस्याऽर्थसामान्यात्सिद्धम् * **शब्दभेदादविधानमिति चेदर्थाश्रयः प्रत्ययविधिः। य एवर्थो रथं वहति स एवार्थो रथस्य वोढेति। तत्र-'अर्थसामान्यात्सिद्धम्'। इदं तर्हि प्रयोजनं-यो द्वौ रथौ वहति स द्विरथ्यः। यो द्वयो रथयोर्वोढा स द्विरथः। तेन सति लुग्भति। अनेन सति कस्मान्न भवति? प्राग्दीव्यत इत्युच्यते।**

अन्य आचार्य—**शब्दभेदादिति**। यदि 'रथं वहति' और 'रथस्य वोढा' यह भिन्न शब्द होने से यहाँ 'तस्येदम्' ४.३.१२० से प्रत्यय की अप्राप्ति दिखायेंगे तो शब्दभेद होने पर भी उभय वाक्यों के समानार्थक होने से 'रथस्य वोढा'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऐसा विग्रह कर षष्ठ्यन्त रथ पद से यत् प्रत्यय हो जायेगा। यदि यहाँ यह पक्ष उठाया जाये कि 'तस्येदम्' ४.३.१२० सूत्र पर 'रथाद्रथाङ्गे' ऐसा वार्तिक पढा है; अतः रथाङ्ग वाच्य होने पर ही रथशब्द से प्रत्यय होगा, अन्यत्र नहीं, तो यह पक्ष उचित नहीं है। वोढा अर्थ में यत्प्रत्ययान्त रथ्यशब्द का प्रयोग देखा जाता है, अतः यत्प्रत्यय का विधान हो जायेगा।

प्रयोजनवादी आचार्य—**इदं तर्हीति**। 'द्वौ रथ्यौ वहति द्विरथ्यः' में रथ पद से प्रत्ययविधानार्थ सूत्र है। जहाँ षष्ठ्यन्त 'द्वयो रथयोर्वोढा' ऐसा विग्रह करेंगे, वहाँ वोढा अर्थ में 'तस्येदम्' ४.३.१२० से विहित प्रत्यय का लुक् हो कर 'द्विरथः' रूप ही रहेगा। 'रथसीताहलेभ्यो यद्विधौ' भा.वा.१.१.७१ से तदन्तविधि होने से 'द्विरथ्या' में यत् समझना चाहिये।

आक्षेपक आचार्य—**अनेन सतीति**। क्या कारण है कि आप 'तस्येदम्' ४.३.१२० से विहित प्रत्यय का 'द्विरथः' में 'द्विगोर्लुगनपत्ये' ४.१.८८ से लुक् कर रहे हैं?, तथा '**अनेन**=तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्' से विहित यत्प्रत्यय का लुक् नहीं कर रहे हैं? प्रश्न में हेतु यह है कि 'द्वौ रथौ वहति' तथा 'द्वयो रथयोर्वोढा' इन दोनों प्रकार के अर्थों में रथप्रातिपदिकान्त से यत्प्रत्यय ही है। पूर्व व्युत्पत्ति में 'तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्' से तथा उत्तर व्युत्पत्ति में 'तस्येदम्' ४.३.१२० से प्रत्यय है; फिर पूर्व व्युत्पत्ति कर रथान्त से विहित यत्प्रत्यय का लुक् नहीं होता है; जब कि उत्तर व्युत्पत्ति कर षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से विहित यत्प्रत्यय का 'द्विगोर्लुगनपत्ये' ४.१.८८ से लुक् होता है, ऐसा क्यो?

उत्तरपक्षी—**प्राग्दीव्यत इति**। 'प्राग्दीव्यतोऽण्' ४.१.८३ ऐसा अधिकार सूत्र पढा है। दीव्यत्पदघटित 'तेन दीव्यति खनति जयति जितम्' ४.४.२ से पूर्व तक ही उसका अधिकार होने से 'द्विगोर्लुगनपत्ये' ४.१.८८ भी तत्पर्यन्त ही लुग्विधान करेगा। प्रकृत सूत्र प्राग्दीव्यतीय नहीं है, अतः इससे विहित यत् का लुक् नहीं होगा।। **तद्वहति-**।।

संज्ञायां जन्याः ४.४.८२

किं निपात्यते? जनन्या जनीभावो निपात्यते, यच्च प्रत्ययः * जन्या इति निपातनानर्थक्यं पञ्चमीनिर्द्देशात् * जन्या इति निपातनमनर्थकम्। किं कारणम्? 'पञ्चमीनिर्द्देशात्'। जननीशब्दादेषा पञ्चमी। इदं तर्हि प्रयोजनं-'सर्वकालः प्रत्ययविधिर्यथा विज्ञायेत-जनीं वहन्ति जन्याः। जनीं वोढारो जन्याः। जनीमवाक्षुर्जन्या' इति।। संज्ञायां जन्याः।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रश्नभाष्य—**किमिति**। 'जन्याः' में आप क्या निपातन करते हैं? प्रत्यय अथ वा प्रकृति का निपातन है?

उत्तरभाष्य—**जनन्या इति**। जननीशब्द को जनीभाव तथा यत्प्रत्यय दोनों का निपातन है।

अन्य आचार्य—**जन्या इतीति**। जननीशब्द को जनीभाव निपातन उचित नहीं है। यहाँ 'जायतेऽस्यां गर्भो जनी वधूः' जनी भूतप्रादुर्भावे धा.पा.११४९ धातु से 'जनिघसिभ्यामिण्' उ.सू.५६९ के द्वारा इण् प्रत्यय, 'जनिवध्योश्च' ७.३.३५ से वृद्धिप्रतिषेध, एवं 'कृदिकारदक्तिनः'ग.सू.८० से ङीष् हो कर वधूवाची ङीषन्त जनीशब्द है, उसको पञ्चमीविभक्ति के द्वारा 'जन्याः' निर्देश है। 'संज्ञा गम्य होने पर जनी पद से यत्प्रत्यय हो' ऐसा अर्थ होगा।

निपातन का प्रयोजन देते हैं—**इदं तर्हीति**। यहाँ निपातनपक्ष ही रखिये। इस पक्ष में जननीशब्द को जनी निपातन नही करेंगे, अपि तु ङीषन्त जनीशब्द से सार्वकालिक यत्प्रत्यय का निपातन करेंगे। इससे 'जनीं वहन्ति=वरगृहं प्रापयन्ति जन्याः' में जहाँ वर्तमान काल वाच्य है, वहाँ भी यत् होगा, एवं 'जनीं वोढारो=वरगृहं प्रापयितारः' में जहाँ लुट् से भविष्यत् अर्थ गम्य है, वहाँ भी जनीशब्द से यत् हो कर 'जन्या' प्रयोग होगा। एवं जहाँ 'जनीमवाक्षुः=वरगृहं प्रापितवन्त इति जन्याः' में भूतकाल का बोध हो रहा है, वहाँ भी यत् होगा। यद्यपि इसे विधि मानने पर भी संख्या और काल की अविवक्षा होने से उक्त रूप सिद्ध हो जायेगा, तथापि न्याय का अनुसरण करने पर ज्ञानगौरव हो रहा है, अतः निपातन का आश्रय लिया गया है।। **संज्ञायां-**।।

विध्यत्यधनुषा ४.४.८३

*** विध्यत्यकरणेन * विध्यत्यकरणेनेति वक्तव्यम् * इतरथा ह्यतिप्रसङ्गः * अधनुषेत्युच्यमानेऽतिप्रसङ्गो भवति। इहापि प्रसज्येत-शर्कराभिर्विध्यति। कण्टकैर्विध्यतीति। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। कस्मान्न भवति-शर्कराभिर्विध्यति कण्टकैर्विध्यतीति? अनभिधानात्।**

सूत्रार्थ—'द्वितीयान्त से विध्यति अर्थ में यत्प्रत्यय हो, यदि वहाँ धनुः करण न हो तो'। जैसे-पादौ विध्यन्तीति पद्याः शर्कराः। 'पद्यत्यतदर्थे' ६.३.५३ से पादशब्द को पद्भाव है।

एकदेशी—**विध्यत्यकरणेनेति**। 'विध्यत्यधनुषा' सूत्र के स्थान पर 'विध

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यत्यकरणेन' ऐसा सूत्र पढना चाहिये। 'अकरणेन' ऐसा निषेधवचन का फल देते हैं-**इतरथेति**। यदि 'अकरणेन' ऐसा निषेधवचन नहीं पढेंगे तो 'शर्कराभिर्विध्यति, कण्टकैर्विध्यति'' इत्यादि आख्यातस्थलों में क्रिया के विशेष्य होने तथा विशेष्य के विशेषणसापेक्ष होने से यहाँ भी प्रत्यय की प्राप्ति होगी।

अन्य आचार्य—**तत्तर्हीति**। तो क्या प्रकृत सूत्र के स्थान पर 'विध्यत्यकरणेन' ऐसा सूत्र पढना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। इसकी आवश्यकता नहीं है।

इतर आचार्य—**कस्मान्नेति**। यदि 'अकरणेन' ऐसा निषेधवचन नहीं पढेंगे तो 'शर्कराभिर्विध्यति, कण्टकैर्विध्यति' में तृतीयान्त शर्करा और कण्टक पद से यत् क्यों नहीं होता है?

समाधानभाष्य—**अनभिधानादिति**। अनभिधान होने से यहाँ यत्प्रत्यय नहीं होता है। अथ वा 'धनुषा' यह करणविशेष उपलक्षणविधया करणमात्र का बोधक है, अतः सर्वत्र करण में यत् का निषेध होने से उक्त में अतिव्याप्ति नहीं है।। **विध्यत्यधनुषा**।।

गृहपतिना संयुक्ते ञ्यः ४.४.९०

गृहपतिना संयुक्त इत्युच्यते तत्र दक्षिणाग्नावपि प्राप्नोति,-दक्षिणाग्निरपि गृहपतिना संयुज्यते। एवं तर्हि गृहपतिना संयुक्त इत्युच्यते सर्वश्च गृहपतिना संयुक्तस्तत्र प्रकर्षगतिर्विज्ञायते-'साधीयो यो गृहपतिना संयुक्त' इति। कश्च साधीयः? यस्मिन् पत्नीसंयाजाः क्रियन्ते। अथ वा गृहपतिर्नाम मन्त्रः स यस्मिन्नुच्यते। अथ वा संज्ञायामिति वर्त्तते।। गृहपतिना।।

सूत्रार्थ—'संज्ञा गम्य होने पर गृहपति पद से संयुक्त अर्थ में ञ्य हो'। गृहपतिना=यजमानेन संयुक्त इति गार्हपत्योऽग्निः। अथ वा गृहपतिः=अग्निविशेष के साथ गार्हपत्य का ही संयोग है।

प्रश्नभाष्य—**गृहपतिनेति**। संयोग अर्थ गम्य होने पर गृहपतिपद से ञ्य कहा जा रहा है। गृहपति के साथ दक्षिणाग्नि का भी संयोग है, अतः दक्षिणाग्नि वाच्य होने पर गृहपति पद से ञ्य प्रत्यय कर गार्हपत्य की आपत्ति होगी।

उत्तरपक्षी—**एवं तर्हीति**। 'गृहपतिनासंयुक्ते' ऐसा सूत्र कहा जा रहा है। गृहपति=-यजमान से सभी कुछ संयुक्त होता है, अतः यज्ञार्थ संगृहीत सम्पूर्ण वस्तुओं के वाच्य होने पर गृहपति पद से ञ्य प्राप्त होने से नियम करेंगे-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'साधीयः=उचितरूप से जो **गृहपति**=यजमान से संयुक्त हो, उसी अर्थ में ञ्य हो'। **गृहपति**=यजमान और पत्नी दोनों मिल कर जिस यज्ञविशेष का अनुष्ठान करते हैं वह पत्नीसंयाजयज्ञ गार्हपत्य में ही किया जाता है, दक्षिणाग्नि में नहीं, अतः अतिव्याप्ति नहीं है। अथ वा गृहपति पद से मन्त्रविशेषविवक्षित है, उसका जिसमें विनियोग किया जाये वह गार्हपत्य कहा जायेगा। अथ वा 'संज्ञायां जन्याः' ४.४.८२ से 'संज्ञायाम्' की अनुवृत्ति कर संज्ञा गम्य होने पर ञ्य करेंगे। इससे गृहपति से यज्ञीय सभी कुछ संयुक्त होने पर भी सर्वार्थ में ञ्य नहीं हो सकेगा।। **गृहपतिना-**।।

मत्वर्थे मासतन्वोः ४.४.१२८

* मासतन्वोरनन्तरार्थे वा * **'मासतन्वोरनन्तरार्थे वे'ति वक्तव्यम्। मध्वस्मिन्नस्ति मध्वस्मिन्नन-न्तरमिति वा-मधव्यः। माधवः** * लुगकारेकारेफाश्च प्रत्ययाः * **लुगकारेकारेफाश्च प्रत्ययाः वक्तव्याः। लुक्-मधुः। तपः। नभः।** अकारः-**इषः। उर्जः।** इकारः-**शुचिः।** रेफश्च-**शुक्रः।**

'भवे च्छन्दसि' ४.४.११० से 'छन्दसि' का अनुवर्त्तन होने से प्रकृत सूत्र छान्दस है।

सूत्रार्थ—'मास और तनु अर्थ वाच्य होने पर मत्वर्थ में यत् हो'। नभः= अभ्रमस्त्यस्मिन्निति नभस्यो मासः। तपोऽस्त्यस्मिन्निति तपस्यो मासः, मधु अस्त्य-स्मिन्निति मधव्यो मासः। ओजोऽस्त्यस्मिन्निति ओजस्या तनुः।

वार्तिक—**मासतन्वोरिति**। अनन्तर अर्थ वाच्य होने पर यत् कहना चाहिये। यहाँ वार्तिक में 'वा' पद समुच्चयार्थ है, अतः मास, तनु और अनन्तर अर्थ वाच्य होने पर मत्वर्थ में यत् समझना चाहिये-मधु अस्मिन्ननन्तरमिति मधव्यः। यहाँ 'मधोर्ञ च' ४.४.१२८ को ध्यान में रख कर 'मधव्यः' उदाहरण दिया है, अतः इससे विकल्प अर्थ नहीं लिया जा सकता है। **लुगकार इति**। यत् का लुक्, अकार, इकार और रेफ प्रत्यय कहना चाहिये। मधु विधीयते-ऽस्मिन्निति मधुः, तपो विद्यतेऽस्मिन्निति तपः, **नभांसि**=अभ्राणि विद्यन्तेऽ-स्मिन्निति नभः' में यत् प्रत्यय का लुक् है। यद्यपि 'नभो मासः, तपो मासः' में नभः और तपः पद पुल्लिङ्ग में है, तथापि यहाँ छान्दसत्वात् नपुंसक प्रयोग है। अकार का उदाहरण-'एषणमिट्, साऽस्मिन्नस्तीति इषः' में 'अ' प्रत्यय है। 'उर्क् अस्मिन्नस्तीति उर्जः' में 'अ' प्रत्यय है। इकार प्रत्यय-शोचनं शुक्, सम्पदादिभ्यः क्विप्' वा.२२३३ से क्विबन्त शुक्शब्द, साऽस्मिन्नस्तीति शुचिः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एवं रेफ प्रत्यय-शोचनं शुक्, साऽस्मिन्नस्तीति शुक्रः। यहाँ अदन्त 'र' प्रत्यय समझना चाहिये।। मत्वर्थे-।।

वसोः समूहे च ४.४.१४०

*** अक्षरसमूहे छन्दस उपसंख्यानम् * अक्षरसमूहे छन्दस उपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। 'ओ श्रावये'ति चतुरक्षरम्। 'अस्तु श्रौषडि'ति चतुरक्षरं, ये यजामह' इति पञ्चाक्षरं, 'यजे'ति द्व्यक्षरं, द्व्यक्षरो 'वषट्'कारः। एष वै सप्तदशाक्षरश्छन्दस्यः प्रजापतिर्यज्ञमनुविहितः।**

यहाँ 'मये च' ४.४.१३८ से 'मये' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'समूह तथा मयड्र्थ वाच्य होने पर वसु पद से यत्प्रत्यय हो'। वसूनां समूहो वसव्यः। वसु अर्हतीति वसव्यः।

अक्षरसमूह इति। अक्षरसमूह अर्थ में शक्त छन्दः पद से स्वार्थ में यत्प्रत्यय हो-छन्दस्यः। यहाँ आचार्य अक्षरों का परिगणन कर रहे हैं-'ओ श्रावय' यह चतुरक्षर छन्दस्य है। इसी तरह आगे पञ्चाक्षर छन्दस्य आदि मूल में स्पष्ट है।

*** छन्दसि बहुभिर्वसव्यैरुपसंख्यानम् * छन्दसि बहुभिर्वसव्यैरुपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैः * अग्निरीशे वसव्यस्य * अग्निरीशे वसव्यस्योपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। तत्तर्ह्युपसंख्यानं कर्त्तव्यम्? न कर्त्तव्यम् * स्वार्थविज्ञानात्सिद्धम् * स्वार्थविज्ञानात्सिद्धमेतत्। वसव एव वसव्याः पान्तु।**

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये
चतुर्थाऽध्यायस्य चतुर्थे पादे प्रथममाह्निकम्

●

छन्दसि बहुभिरिति। वेद में वसु पद से स्वार्थ में भी यत् प्रत्यय कहना चाहिये। वैदिक उदाहरण स्पष्ट करते हैं-हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैः' यहाँ वसु पद से स्वार्थ में यत् है। 'बहुत वसु=धन से हाथ भर दो' यह अर्थ होने से यहाँ यत्प्रत्यय स्वार्थ में है। एवम् 'अग्निरीशे वयव्यस्य' यह भी स्वार्थ में यत्प्रत्यय है।

अन्य आचार्य—**तत्तर्हीति**। तो क्या उक्त स्थलों में स्वार्थ में प्रत्ययविधान के लिए दोनों वार्तिक पढना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न कर्त्तव्यमिति**। उक्त वार्तिक करने की आवश्यकता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं है। 'वसोः समूहे च' सूत्र का 'वसोः' यह प्रथम योग करेंगे तथा 'समूहे च' यह द्वितीय योग करेंगे। इस योगविभाग से प्रथम योग के द्वारा वसु पद से स्वार्थ में यत्प्रत्यय सिद्ध हो जायेगा। इसके लिए पृथक् वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं है।। **वसोः-**।।

श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य
चतुर्थ अध्याय प्रथम पाद प्रथम आह्निक पर
डॉ. हरिनारायण तिवारी द्वारा रचित
'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

चतुर्थपाद भी पूर्ण हुआ

चतुर्थ अध्याय भी पूर्ण हुआ

●

Acc. 39802/31402

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषयानुकूल ग्रन्थरत्नानि

- **(बृहत्) अनुवाद रत्नाकर** । डॉ० रमाकान्त त्रिपाठी
- **अष्टाध्यायी** । 'चन्द्रलेखा' हिन्दी व्याख्या एवं अनेकोपयोगी विषययुक्त । पं० ईश्वरचन्द्रशर्मा । १-२ भाग
- **अष्टाध्यायी** । 'शान्ति' संस्कृत-हिन्दी टीका सहित । डॉ० नरेश झा
- **काशिका** । विस्तृत हिन्दी व्याख्या सहित । पं० ईश्वरचन्द्र शर्मा
- **कृत्प्रत्ययविश्लेषण** । कृत्प्रत्ययों का व्यापक तथा विशद् विश्लेषण । डॉ० गोपबन्धु मिश्र
- **परमलघुमञ्जूषा** । संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित । पं० वंशीधर मिश्र
- **परिभाषेन्दुशेखर** । तात्याशास्त्रीकृत 'भूति' टीका सहित
- **परिभाषेन्दुशेखर** । 'सुबोधिनी' हिन्दी व्याख्या सहित । आचार्य विश्वनाथ मिश्र
- **पाणिनीयशिक्षा** । 'वेदाङ्गशिक्षाविमर्श' संस्कृत एवं 'नारायणी' हिन्दी व्याख्या एवं परिशिष्ट सहित
- **प्रबन्धरत्नाकर** । (शास्त्री, आचार्य, बी.ए., एम.ए. आदि परीक्षोपयोगि शताधिक निबन्धों का संग्रह) । डॉ० रमेश चन्द्र शुक्ल
- **प्रौढमनोरमा** । (कारकादव्ययीभावान्तोभाग) सशब्दरत्न बालप्रकाशिका संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित । डॉ० रमाकान्तपाण्डेय
- **प्रौढमनोरमा** (पञ्चसन्ध्यन्त) । 'शब्दरत्न', 'भैरवी' एवं हिन्दीव्याख्या सहित । डॉ० रमाकान्त पाण्डेय
- **बृहद्धातुशब्दरूपसंग्रह** । डॉ० रामकिशोरशर्मा
- **बृहद्धातुसुकुमाकर** । (सिद्धान्तकौमुदी के सभी धातु-रूपों का संग्रह) । पं० हरेकान्तमिश्र
- **बृहच्छब्दकुसुमाकर** । (शब्दरूपों का संग्रह) । पं० हरेकान्त मिश्र
- **मुग्धबोधव्याकरण** । बोपदेवविरचित । श्रीदुर्गादासतर्कवागीश, श्रीरामतर्क वागीशकृत टीका सहित । सम्पा. पं० जीवानन्दविद्यासागर
- **लघुशब्देन्दुशेखर** । 'भैरवी', 'चन्द्रकला' एवं 'बैकुण्ठी' हिन्दी टीका सहित । बैकुण्ठनाथ शास्त्री
- **लघुसिद्धान्तकौमुदी** । विवेचनात्मक 'माहेश्वरी' हिन्दी व्याख्या सहित । डॉ० महेशसिंहकुशवाहा । १-२ भाग

चौखम्बा विद्याभवन
वाराणसी

Nepal Sanskrit University Bakhdeki Campus, Kathmandu